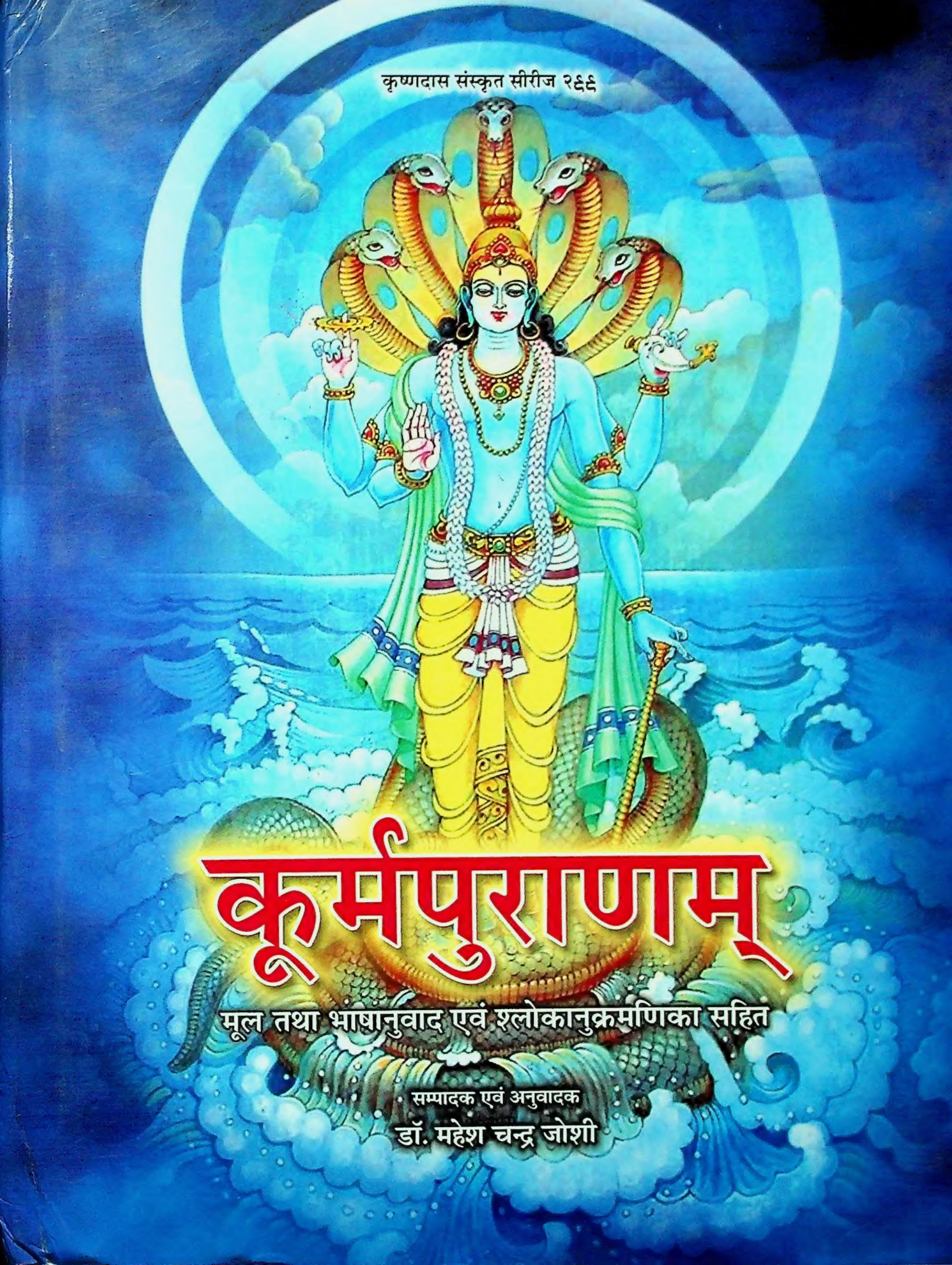
कृष्णदास संस्कृत सीरीज २६६



कूर्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ. महेश चन्द्र जोशी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

२९९

****

कूर्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ. महेश चन्द्र जोशी

एम. ए.,पी-एच.डी. साहित्याचार्य

(बी.एच.यू. से सेवानिवृत्त)

सत्यलोक-5, हल्द्वानी-263139

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०८१, सन् २०२४

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
(गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर)
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : २३३३४५८ (आफिस), २३३४०३२ एवं २३३५०२० (आवास)
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
299
***

KŪRAM PURĀṆAM

Sanskrit Text and Hindi Translation with Sloka Index

Translated by
Dr. Mahesh Chandra Joshi
M.A; ph.D; Sahityacharya (Retd. from B.H.U)
Satya Lok-5, Haldwani-263139

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Varanasi

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi
Edition : First, 2024

Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

Also can be had from :

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

निवेदन

कूर्मपुराण में कहा गया है कि किसी प्रकार भी इसकी कथा सुनने, इसका प्रवचन करने अथवा पाठ पढ़ने से मनुष्य धन्य (धनवान), यशस्वी तथा पुण्य का भागी हो जाता है और मृत्यु के अनन्तर मोक्ष को प्राप्त करता है-

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम्।
पुराणश्रवणं विप्राः कथञ्चन विशेषतः॥ (कूर्म पू० १/१२४)

कूर्मपुराण को अष्टादश पुराणों में पन्द्रहवें पुराण रूप में गिनाया गया है। यह कहा गया है कि इस कूर्मपुराण का सम्पूर्ण स्वरूप चार संहिताओं के रूप में स्थित था जो क्रमशः ब्राह्मी, भागवती, सौरी तथा वैष्णवी संज्ञक थी। वर्तमान समय में मात्र छः हजार श्लोकों वाला जो कूर्मपुराण उपलब्ध है उसको ब्राह्मी संहिता कहा गया है, जो कि चारों वेदों के समान महत्त्व वाला है (कूर्म पू० २१/२३)।

इस कूर्मपुराण का प्रथम बार प्रकाशन वैङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से हुआ था। तदनन्तर मनसुख राय मोर ५ क्लाइव रो कलकत्ता से इसका प्रकाशन हुआ था। इस पुराण का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन सर्वभारतीय काशिराज न्यास, दुर्ग, रामनगर, वाराणसी से हुआ था। तदनन्तर इसका हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से भी इस पुराण का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन हुआ था। गीताप्रेस गोरखपुर से भी कल्याण के विशेषांक (जनवरी १९९७) में इस पुराण को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित किया गया है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस द्वारा प्रकाशित इस संस्करण में मूल-पाठ की शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस संस्करण में अनेकत्र अनर्गल पाठ को संशोधित करके उसी संशोधित पाठ के अनुकूल हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है (द्रष्टव्य- कूर्म पू०२९/३९; पू०५१/२२; उ०१५/१२)। अनेकत्र मूल पाठ में अपेक्षित शब्दों का संयोजन करके (भ्रष्ट पाठ को) टिप्पणी में दिया गया है (द्रष्टव्य-कूर्म पू०२२/५५; पू०२४/११-१३; पू०५२/९; उ०२/४०)। इसके अतिरिक्त पाठकों की जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए अनेकत्र पाद-टिप्पणियों में भी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। (द्रष्टव्य- कूर्म पू०२१/५९; पू०२२/२ की टिप्पणी। कूर्म पू०१/६ में 'सुत्याहे' शब्द का अर्थ अन्य प्रकाशनों में 'यज्ञान्त में स्नान' किया गया है जो कि असंगत है। वस्तुतः 'सुत्याहे' का अर्थ 'सोम सवन का दिन' होता है। 'गुर्वी' (उ०१२/२७) का गुरुपत्नी अर्थ किया गया है, जो कि अशुद्ध है। उसका शुद्ध अर्थ इस पुस्तक में 'गर्भवती' किया गया है। कूर्मपुराण पू० १०/२१ में ब्रह्मा के प्राणत्याग का उल्लेख मात्र है किन्तु इस प्रस्तुत संस्करण में लिङ्गपुराण पू० २२/२६ से लेकर शिव के द्वारा ब्रह्मा को पुनर्जीवित करने का पाठ जोड़ा गया है (कूर्म पू० १०/२२)। वस्तुतः कूर्मपुराण में सैकड़ों स्थलों में कुछ शब्दों के प्रसंगानुकूल न होने के कारण अर्थबोध में कठिनाई का आभास होता है। मैंने इस प्रस्तुत संस्करण

में अनेकत्र समीचीन शब्दों का संयोजन करके पाठकों के समक्ष शुद्ध पाठ प्रस्तुत करने का यथासंभव प्रयास किया है। तथापि अनेक स्थलों के पाठ का संशोधन नहीं कर पाने के कारण सुधीजनों के विचारार्थ यथावत् रखने की विवशता के लिए क्षमा याचना करता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कूर्मपुराण के मूल-पाठ में अनेकत्र ऐसे शब्दों का प्रयोग है जिनका तात्पर्य बोध सरल नहीं है। गुण-ग्राही पाठक इस तथ्य से सुपरिचित होते हैं।

मुझे इस शुभ कार्य हेतु सतत प्रेरित करने वाले चौखम्बा संस्कृत सीरीज के प्रबन्धक श्री सचिन जी तथा उनके सभी पारिवारिक जनों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। इस पुराण की पाण्डुलिपि को पुस्तक का स्वरूप देने में धैर्य और लगन से कार्य करने वाले श्री त्रिलोक सिंह बिष्ट जी के सत्प्रयास हेतु मैं उनको धन्चवाद देता हूँ। मेरे लेखन कार्य के प्रशंसक तथा प्रोत्साहन करने वाले सुपुत्र श्री सच्चिदानन्द जोशी को मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ।

डॉ० सुधाकर मालवीय वर्तमान में काशी के विद्वानों की अग्रगण्य श्रेणी में स्थित हैं। उन्होंने ही 'पुराणम्' पत्रिका में प्रकाशित कूर्मपराण विषय सूची को इस ग्रन्थ में परिशिष्ट रूप में संपादित करने हेतु सुलभ कराया है। डॉ० मालवीय के साथ वैदुष्यपूर्ण सम्बन्ध से मैं सदैव उत्साहित रहता हूँ। एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ० महेश चन्द्र जोशी
एम.ए., पी-एच.डी., साहित्याचार्य
(बी.एच.यू. से सेवानिवृत्त**)**

भूमिका

भारत वर्ष के विशाल सांस्कृतिक और धार्मिक साहित्य में पुराणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पौराणिक साहित्य प्राचीनतम होने पर भी अद्यावधि लोकोपयोगी और लोकप्रिय बना हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि जिस साहित्य में प्राचीन काल से ही सामाजिक हित का ज्ञान समाहित हो तथा लौकिक और पारलौकिक कल्याण की कामना निहित हो तथा जो युगानुरूप व्यवस्थित हो सके वही साहित्य चिर-स्थायी और सनातन हो सकता है। अतः हमारे ऋषि-मुनियों ने ऐसे साहित्य को पुराण संज्ञा दी है। पुराण शब्द की निरुक्ति बतलाते हुए यास्क ने भी यह सूचित किया है कि जो ज्ञान पुराकालीन होने पर भी युगानुरूप नवीनता युक्त अर्थात् लोकोपयोगी नवीन विषयों से भी युक्त हो सकता है उसे पुराण कहा जाता है-

पुराणं कस्मात्। पुरा नवं भवति (निरुक्त-नैघण्टुकाण्ड ३/१९)।

पुराण साहित्य में लोकोपयोगी नवीन विषयों के समावेश की प्रवृत्ति पुराणकारों में भी थी। मूलतः पुराणकार महर्षिवेदव्यास ने प्राचीन आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं और कल्पशुद्धियों को एकत्र संकलित करके पुराण-संहिता की रचना की थी-

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथामिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थ-विशारदः॥ (विष्णु पुराण ३/६/१५)

पुराण-संहिता की रचना करके व्यास जी ने उसका उपदेश अपने शिष्य रोमहर्षण सूत को दिया था-

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै रोमहर्षणः।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महातिः॥ (विष्णु पुराण ३/६/१६)

कालान्तर में सृष्टि, प्रलय, वंश, वंशानुचरित (वंश विशेष के महापुरुषों के चरित का) वर्णन और मन्वन्तरों का वर्णन पुराण का प्रमुख लक्षण बन गया था। वैदिक साहित्य में निहित जन-सामान्य के लिए दुरूह किन्तु उपयोगी ज्ञान को भी पुराणों में संकलित किया गया था। इसीलिए महाभारत में कहा गया है पुराण रूपी चन्द्रमा से श्रुति (वेद) रूपी ज्योत्स्ना प्रकाशित हुई है-

पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्ना प्रकाशिता। (आदिपर्व १/८६)

वस्तुतः इतिहास-पुराण का ज्ञान होने पर ही वैदिक साहित्य का ज्ञान सुगम होता है। अतः महाभारत में कहा गया है कि विद्वान् व्यक्ति इतिहास और पुराण के ज्ञान के आधार पर ही वेद के अर्थज्ञान की वृद्धि करे। जो व्यक्ति (इतिहास-पुराण का ज्ञान न होने के कारण) अल्पज्ञ है उससे वेद को भी यह भय रहता है कि वह उस (वेद) पर प्रहार कर सकता है अर्थात् उसका भ्रामक अर्थ कर सकता है। द्रष्टव्य-

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।
(आदि पर्व १/२६७-२६८; शिवपुराण ७/१/१/४०)

ऋग्वेद में पुराण शब्द प्राचीनता को सूचित करने के लिए प्रयुक्त है।[१] एक साहित्यिक विधा के रूप में वेदों के साथ पुराण साहित्य के अस्तित्व में आने का उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद में प्राप्त होता है-

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥ (अथर्व० ११/७/२४)

एक अन्य प्रसंग में व्रात्य का अनुगमन करने वाली विद्याओं में पुराण को भी गिनाया गया है:-

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत्। तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानु व्यचलन्॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।
(अथर्ववेद ११/१०-११)

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में ही पुराण-वाङ्मय भी अस्तित्व में आ चुका था। शतपथ ब्राह्मण ११/५/६/८ तथा ११/५/७/९ में इतिहास और पुराण को स्नातक के लिए नित्य स्वाध्याय के विषय रूप में गिना गया है। गोपथब्राह्मण (१/२/१०) के अनुसार प्रजापति ने वेदों के साथ ही ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, अन्वाख्यान तथा पुराण साहित्य की भी रचना की थी। छान्दोग्य उपनिषद् में चारों वेदों के साथ पाँचवें वेद के रूप में इतिहास और पुराण को गिनाया गया है।[२] बृहदारण्यकोपनिषद् (२/४/१०) में कहा गया है कि जिस प्रकार गीले इन्धन में अग्न्याधान करने से धुआँ निकलता है उसी प्रकार महाभूत (परमब्रह्म) के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा इतिहास-पुराणादि निकले थे।[३] धर्मसूत्रों की रचना के समय तक वैदिक साहित्य यथा वेद, वेदाङ्ग आदि के साथ पुराणों के अध्ययन की प्रवृत्ति प्रचलित हो चुकी थी। गौतम धर्मसूत्र (१/८/४-६) के अनुसार लोक-व्यवहार के साथ ही वेद-वेदाङ्ग- वाकोवाक्य (?) तथा इतिहास-पुराण के ज्ञान वाला व्यक्ति ही बहुश्रुत होता है। इस धर्मसूत्र में यह भी कहा गया है कि वेद-वेदाङ्ग, उपवेद एवं धर्मशास्त्र और पुराण के ज्ञान पर ही राजा के व्यवहार की सफलता निर्भर होती है।[४] वैदिक साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में पुराण का उल्लेख एक विशिष्ट विधा के रूप में हुआ है, जिससे पुराण विद्या के वेदकालीन या उससे भी प्राचीन होने का संकेत प्राप्त होता है।

---

१. ऋग्वेद ३/५८/६; १०/१३०/६
२. (क) इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं। छान्दोग्य० ७/१/२
(ख) इतिहासपुराणः पञ्चमो वैदानां वेदः। छान्दोग्य० ७/१/४
३. ...अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराण-विद्या उपनिषदः..। बृहदारण्यकोप० २/४/१०
४. तस्य च वयवहारो वेदो धर्मशास्त्राणि अङ्गानि उपवेदाः पुराणम्। गौतम धर्मसूत्र २/२/१९

वाल्मीकि ने सूत को पुराण का ज्ञाता बतलाया है (रामायण १/१६/१; २/१५/१८)। पुराण के ज्ञाता सूत के द्वारा राजा दशरथ को पुराणों में सुने गये प्राचीन वृत्तान्त को सुनाये जाने का उल्लेख भी है।[१] यहाँ 'पुराणेषु' इस बहुवचन के प्रयोग से विदित होता है कि उस समय तक अनेकों पुराणों की रचना हो चुकी थी। पीछे उपनिषदों में जो इतिहास और पुराण का एक साथ प्रयोग किया गया है वह उन दोनों विधाओं की वर्ण्य विषयवस्तु में कुछ समानता का परिचायक है। पुराणों के मूल स्वरूप की रचना महाभारत की रचना से पूर्व ही हो चुकी थी। प्रमाण रूप में स्वयं महाभारत[२] और पुराणों[३] के वचन देखे जा सकते हैं-

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥

पुराणों में उल्लिखित कुछ वचनों में तो यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा ने सभी शास्त्रों से पहले पुराण-वाङ्मय की रचना की थी और तदनन्तर उनके मुखों से वेद निकले थे।

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्माणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः॥

(ब्रह्माण्डपुराण १/१०/४०-४१; वायुपुराण पू० १/५४;
शिवपुराण ७/१/१/३१-३२; द्रष्टव्य-मत्स्यपुराण ५३/३-४)

द्रष्टव्य- **उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।**
पुराणमेतद् वेदाश्च मुखेभ्योऽनु विनिःसृताः॥ (मार्कण्डेयपुराण ४२/२०)

श्रीमद् भागवत पुराण में कहा गया है कि इतिहास-पुराण नामक पञ्चम वेद की रचना ईश्वर (ब्रह्मा) ने अपने सभी मुखों से की थी-

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥ (भागवत ३/१२/३९)

इस प्रकार के वचन पुराण-वाङ्मय के वेद-कालीन होने तथा पुराणों के वेद के समान महत्त्व को सूचित करते हैं। पुराण वाङ्मय की महत्ता के कारण ही याज्ञवल्क्यस्मृति में धर्म के स्रोतों तथा सभी विधाओं में पुराण को सर्वप्रथम रखा गया है-

---

१. एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
श्रूयतां यत् पुरा वृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम्॥ रामायण बालकाण्ड ९/१

२. द्रष्टव्य- पुराण-विमर्श पृ० २०

३. मत्स्यपुराण ५३/७०; देवीभागवत १/३/१७

पुराणन्यासमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाःस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥
(याज्ञ० स्मृति १/३; द्रष्टव्य-विष्णु पुराण ३/६/२८; शिवपुराण ७/१/१/२५)

महर्षि वेदव्यास जैसे प्राचीन मनीषियों के सामाजिक हित के प्रति व्यापक दृष्टिकोण एवं सत्प्रयास से ही पुराण वाङ्मय का विकास संभव हुआ था। अति-क्लिष्ट और नितान्त वैदुष्यपूर्ण वैदिक और दार्शनिक साहित्य की अपेक्षा सरल भाषा में और कथाओं को माध्यम बना कर लिखे गये पुराणों की विषय-वस्तु पाठकों या श्रोताओं को अनायास हृदयंगम हो जाती है। अतः प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि धार्मिक जनों में पुराणों के प्रति आस्था का भाव बना हुआ है। जन सामान्य की रुचि वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों आदि के अध्ययन के प्रति बहुत कम देखी जाती है। वैदिक साहित्य के साथ ही पुराण-साहित्य का आविर्भाव होने पर भी पुराणों की विषय-वस्तु सुग्राह्य और सरल होने के कारण जन सामान्य के मन में पुराणों के पठन पाठन एवं कथा-श्रवण की जिज्ञासा अपेक्षाकृत अधिक रहती थी। वेद का ज्ञान सर्व-जन-सुलभ और सुगम नहीं था। अतः प्राचीन काल में एकमात्र पुराण ही जन-सामान्य को विविध ज्ञान प्रदान के सरल-साधन थे। आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि जैसे विषयों के साथ सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मनवन्तर तथा वंशानुचरित जैसे पञ्चलक्षणात्मक विषयों के संयोजन से पुराणों की विषय-वस्तु कुछ अधिक विस्तृत हो गयी थी। श्रीमद्भागवत पुराण (१२/७/९ एवं २/१०/१) में पुराण के दश लक्षण बतलाये गये हैं, जिनका विस्तृत वर्णन आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय कृत पुराणविमर्श (पृ० १२८-१३९) में देखा जा सकता है, किन्तु अन्य पुराणों में वैसे लक्षण कहीं नहीं बतलाये गये हैं।

भारतवर्ष के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में संस्कृत के काव्यग्रन्थों के रूप में भास, कालिदास, दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट, हर्ष आदि कवियों के गद्य, पद्य, नाटक, चम्पू आदि ग्रन्थ मात्र पढ़ाये जाते हैं। उन ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति का साङ्गोपाङ्ग विवरण नहीं है। तथापि विद्वान् लोग उतने ग्रन्थों के अध्ययन को ही पर्याप्त मान लेते हैं। कुछ विद्वान् तो 'माघे मेघे गतं वयः' और 'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।' जैसी उक्तियों से प्रभावित होकर उन्हीं काव्यों के रसास्वादन से तृप्त हुए रहते हैं। महाभारत और पुराणों में जो विपुल ज्ञानराशि निहित है उससे समाज में अनेक लोग तथा विशेषतः विद्वत् जन भी अधिक लाभान्वित और अधिक प्रबुद्ध हो सकते हैं। लोकहित की दृष्टि से पुराणों में नाना विद्याओं या नाना विषयों को संकलित करके संपादित करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। पञ्चलक्षणात्मक पुराणों में आख्यान, उपाख्यान आदि तो पूर्वतः संकलित थे ही। कालान्तर में उन आख्यानों, उपाख्यानों आदि के साथ विभिन्न प्रकार के लोकोपयोगी और ज्ञानवर्धक विषयों को समाहित कर दिया गया था। विष्णुपुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान् विष्णु तथा विशेषतः उनके कृष्णावतार की लीलाओं का वर्णन किया गया तथा शिवपुराण और लिङ्गपुराण में शिव-महिमा का मण्डन किया गया था। मार्कण्डेय पुराण में

दुर्गा-सप्तशती को सम्मिलित किया गया है तो देवीभागवत शक्ति के अवतारों की कथाओं से पूर्ण है। कालिकापुराण, सौरपुराण आदि नामों से ही स्पष्ट हो जाता है कि वे तत्तद् देवताओं की कथाओं और उनकी उपासना तथा भक्तिविषयक हैं। कूर्मपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण आदि का नाम उनके प्रवक्ता के नामानुसार है। प्रायः सभी पुराणों में प्रतिपाद्य विषय-वस्तु की भाषा सरल है, किन्तु श्रीमद्भागवत महापुराण के अनेक अध्यायों में अत्यन्त सारगर्भित और क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है। अतः 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'[१] की सूक्ति प्रसिद्ध हुई है।

पुराणों में पञ्चलक्षणों के अतिरिक्त प्रायः समाज के सभी वर्गों के लिए विहित वर्णाश्रम व्यवस्था के विधान के साथ ही प्रायः सभी लोकोपयोगी विषयों का वर्णन किया गया है। भुवनकोष वर्णन में सप्तद्वीपा पृथिवी के वर्णन के साथ ही भारतवर्ष की प्रमुख नदियों और पर्वतों आदि का भी वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्तरिक्ष में सूर्य सहित सभी भ्रमणशील ग्रहों, नक्षत्रों तथा ध्रुव की स्थिति का भी वर्णन किया गया है।[२]

एक सूक्ति में देशाटन, पण्डित जनों से मित्रता आदि के साथ ही अनेक शास्त्रों के अध्ययन को मनुष्य की बुद्धिमत्ता (चातुर्य) की वृद्धिकारक कहा गया है-

देशाटनं पण्डितमित्रता च वाराङ्गना राजसभाप्रवेशः।
अनेकशास्त्राध्ययनं तथा च चातुर्यमूलानि भवन्ति पञ्च॥

(सुभाषितरत्नभाण्डागार पृ० १७३ श्लोक ८६४)

इस दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि पुराणों में जन-सामान्य को विविध प्रकार का ज्ञान सुलभ कराने के उद्देश्य से अनेक प्रकार की विधाओं को संकलित किया गया है। पीछे उल्लिखित आख्यान आदि तथा पञ्चलक्षणात्मक विषयों के अतिरिक्त पुराणों में ज्योतिषविद्या[३], वास्तुशास्त्र[४], सामुद्रिक शास्त्र[५], शुभाशुभ शकुन[६], कालमान[७], आयुर्वेद[८], पशुचिकित्सा[९], अष्टांगयोग[१०], राजधर्म, राजा के समस्त

---

१. धनञ्जये हाटकसंपरीक्षा महारणे शस्त्रभृतां परीक्षा।
विपत्तिकाले गृहिणी परीक्षा विद्यावतां भागवते परीक्षा॥

२. द्रष्टव्य- कूर्मपुराण उत्तरार्ध ४०-५० अध्याय; गरुडपुराण I, ५४-५७ अध्याय; मत्स्यपुराण १२१-१२८ अध्याय

३. द्रष्टव्य-अग्निपुराण १२१-१३३ अध्याय

४. अग्निपुराण ९३-१०६ अध्याय एवं २४७ अध्याय

५. अग्निपुराण २४३-२४४ अध्याय; भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व २४-२८ अध्याय

६. अग्निपुराण २३०-२३३ अध्याय; मत्स्यपुराण २४१-२४३ अध्याय

७. अग्नि १२२ अध्याय; कूर्म पू०१/५ अध्याय

८. अग्नि २७९-२८६ तथा ३७० अध्याय; गरुड I. १४६-२०४ अध्याय

९. अग्नि २८७-२९२ अध्याय; गरुड I. २०१ अध्याय

१०. अग्नि ३७२-३७६ अध्याय; गरुड I. २३८ अध्याय

कर्तव्य एवं दायभाग, व्यवहार-निर्णय आदि[१], धनुर्वेद[२], रत्नपरीक्षा[३], काव्य, नाटक आदि विद्याओं के लक्षण[४] तथा छन्दशास्त्र[५] आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है। सनातन धर्म के उपदेश के साथ ही नाना देवियों और देवताओं की उपासना विषयक चर्चा के साथ ही उनकी स्तुतियाँ, उनके सहस्रनाम स्त्रोत्र के साथ ही विभिन्न तीर्थों का वर्णन एवं तीर्थ विशेष के विशिष्ट देवताओं विषयक चर्चा भी पुराणों में अनेकत्र की गयी है। इसके अतिरिक्त अशौच शुद्धि[६], श्राद्धविषयक विधान[७], पार्वणश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध आदि के विधि-विधान[८] तथा गया श्राद्ध[९] का विधान तथा प्रायश्चित्त के विधान[१०] भी अपराधियों की शुद्धि हेतु पुराणों में दिये गये हैं। पुराण वाङ्मय में समाहित सर्वविध ज्ञानराशि को ध्यान में रखकर ही यह कहा गया है कि चारों वेदों और वेदाङ्गों का ज्ञाता व्यक्ति भी यदि पुराणों के ज्ञान से रहित है तो वह सर्वज्ञ विद्वान् नहीं हो सकता-

यो विद्याच्चतुरो वेदान सांगोपनिषदान् द्विजः।
न चेत् पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः॥

(शिवपुराण ७/१/१/३९)

भारत वर्ष के धार्मिक साहित्य में वेदों, धर्मशास्त्रों (विशेषतः स्मृतियों तथा निबन्धों ग्रन्थों चतुर्वर्ग चिन्तामणि, भगवन्त भास्कर, वीरमित्रोदय, विधान पारिजात स्मृतिचन्द्रिका, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु आदि) के साथ ही पुराणों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुराणों में धार्मिक विषयों के साथ ही अधर्म और पाप करने वालों के लिए दण्ड विधान के साथ ही प्रायश्चित्त विधान भी अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के समान ही दिये गये हैं। किन्तु पापी-प्रवृत्ति के मनुष्यों के नितान्त दुराग्रही और जड़बुद्धि होने पर अथवा ढीठ या अत्यन्त उच्छृंखल होने पर उनको कोई सदुपदेश न देने का विधान श्रीमद्‌भागवत में दिया गया है-

नैतत् खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित्।
न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च॥
न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे।
नाभक्ताय च मे ज्ञानं न भद्‌भक्त-द्विषामपि॥ (भागवत ३/३९-४०)

---

१. अग्नि २१८-२२८ एवं २५३-२५८ अध्याय; मत्स्यपुराण २१५-२२९ अध्याय
२. अग्नि २४५-२५२ अध्याय
३. गरुड I. ६७-८० अध्याय
४. अग्नि ३३७-३६३ अध्याय
५. अग्नि ३२८-३३५ अध्याय; गरुड I. २०७-२१२ अध्याय
६. अग्नि १५७-१५८ अध्याय
७. कूर्म उ० २०-२३ अध्याय; मत्स्य पु० १४-२२ अध्याय; मार्कण्डेय पुराण २७-३० अध्याय
८. गरुड I. २१८-२२० अध्याय
९. गरुड I. ८३-८६ अध्याय; वायुपुराण उ० ४३-५० अध्याय
१०. अग्नि १६७-१७१ अध्याय

पौराणिक साहित्य में वर्णित प्रायः सभी प्रमुख विषयों का प्रतिपादन इस कूर्मपुराण में भी किया गया है। इस पुराण के प्रथम अध्याय में ही यह कहा गया है कि संसार की सृष्टि, प्रलय, राजवंशों एवं ऋषियों के वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों का वर्णन तथा वंश-विशेष के प्रमुख महापुरुषों के चरित्र का वर्णन करना ही पुराण का प्रमुख लक्षण है (पू० १/१२)। कूर्मपुराण (पू०१/१३-१५) में अष्टादश महापुराणों का जो क्रम गिनाया गया है वही अन्यत्र भी गिनाया गया है। उन अष्टादश महापुराणों के मूल-स्वरूप की रचना महामुनि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी के द्वारा की गयी थी। कालान्तर में उनके शिष्यों के द्वारा अष्टादश उपपुराणों की रचना की गयी थी। उन अष्टादश उपपुराणों को कूर्मपुराण (पू०१/१७-२०) में भी गिनाया गया है, जो इस प्रकार हैं- सनत्कुमार उपपुराण, नृसिंह पुराण, स्कन्दपुराण, नन्दीश्वरकृत शिवध र्मपुराण, दुर्वासाकृत आश्चर्यपुराण, नारद कथित नारदीय पुराण, कपिलपुराण, मानवपुराण, उशना द्वारा कथित औशनस पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, वारुण (=वरुण)- पुराण, कालिकापुराण, माहेश्वरपुराण, साम्बपुराण, सौरपुराण, पाराशरोपपुराण, मारीचपुराण तथा भार्गवपुराण (कूर्म पू० १/१७-२०)। इन अष्टादश उपपुराणों की अनेक ग्रन्थों में प्राप्त सूची को डॉ० कपिलदेव त्रिपाठनि अपने द्वारा संपादित पाराशरोपपुराण की भूमिका में एकत्र संपादित किया है। अतः सभी जिज्ञासु विद्वानों के लिए डॉ० त्रिपाठी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रायः सभी पुराणों में विभिन्न कथाओं के माध्यम से समाज को धर्म, सदाचार, तीर्थ, व्रत, दान आदि नाना विषयों का ज्ञान भी दिया जाता है तथा पाप से नरक यातना और कुत्सित योनियों में जन्म का भय दिखाकर सदाचारी बनने की शिक्षा भी दी जाती है।

कूर्मपुराण में सृष्टि का वर्णन प्रमुख रूप से पूर्वार्ध अध्याय ४-७ तथा ७-११ अध्याय में है। प्रतिसर्ग वर्णन उत्तरार्ध ४५-४६ अध्याय में है। वंश वर्णन तथा वंश विशेष के विशिष्ट व्यक्तियों का वर्णन (वंशानुचरित वर्णन) कूर्मपुराण पूर्वार्ध अध्याय १३ से २७ तक तथा अध्याय ४० में है। प्राचीन मुनियों तथा राजवंशों का यह वर्णन प्राचीन मनीषियों के इतिहास बोध का प्रबल प्रमाण है। किन्तु कालान्तर में वंश वर्णन की यह प्रवृत्ति अवरुद्ध हो गयी थी। मन्वन्तरवर्णन कूर्म पूर्वार्ध अध्याय ५१ में देखा जा सकता है। अन्य पुराणों के समान कूर्मपुराण में भी समस्त ब्रह्माण्ड सहित सप्तद्वीपा पृथिवी का वर्णन किया गया है (कूर्मपुराण पूर्वार्ध ४०-५० अध्याय)। कूर्मपुराण उत्तरार्ध १-११ अध्याय) में शिव द्वारा कथित ईश्वरगीता में प्रायः श्रीमद्भगवद्गीता के समान धर्म, दर्शन और अध्यात्म सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन है और कई श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता से यथावत् उद्धृत हैं। तदन्तर उत्तरार्ध अध्याय १२ से ३४ अध्याय तक व्यासगीता में प्रायः आह्निकाचार, श्राद्धविधान, दान-धर्म, प्रायश्चित्त आदि का वर्णन है। काशी और प्रयाग के तीर्थों के वर्णन आदि विषय भी इस पुराण में हैं।

पुराणों में आरम्भिक समाज की आर्थिक स्थिति विषयक विवरण वैदिक साहित्य के साक्ष्यों से भी पूर्वकालिक हैं। अन्य पुराणों के समान कूर्मपुराण में भी यह कहा गया है कि आरम्भिक अवस्था में मनुष्य वृक्षों के नीचे निवास करते थे तथा उन वृक्षों में उपलब्ध मधु से ही क्षुधा-निवारण करते थे (द्रष्टव्य कूर्म

पू० २९/१८-४१)। वर्णव्यवस्था त्रेतायुग में आरम्भ हुई थी (कूर्म पू० २९/४१) उस प्राचीन युग में भी अफालकृष्ट और अनुप्त (बिना जोते बोये) चौदह प्रकार की ग्राम्य और आरण्य औषधियाँ (अन्न) उत्पन्न होती थी (कूर्म पू० २९/३५)। उस पूर्वकल्प के प्रजाजन सभी बाधाओं से रहित, शुद्ध अन्तःकरण वाले और स्वधर्म-पालन में तत्पर थे। कालान्तर में राग-द्वेष और अधर्म की प्रवृत्ति के कारण उनकी स्वाभाविक सिद्धियाँ विलुप्त हो गयी थी। तब उनके द्वारा वार्ता (कृषि) को आजीविका हेतु अपनाया था (कूर्म पू० २/३१-३५)।

मानव मात्र का कर्तव्य है कि वह पशु-प्रवृत्ति से ऊपर उठ कर अपने जीवन में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष संज्ञक चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करे। कूर्म पुराण का उपदेश है कि मनुष्य धर्म-विरुद्ध अर्थ और काम का परित्याग करे (पू० २/५१)। धर्मानुकूल अर्थ और काम को सिद्ध करने वाला ही इस लोक में सुखी रहता है और मृत्यु के अनन्तर अमरत्व प्राप्त करता है (पू० २/५५)। इसमें चारों वर्णों के लिए अपेक्षित सभी सद्गुणों को सर्व-सामान्य धर्म के रूप में विहित किया गया है (पू० २/६३-६५)। ध र्मानुकूल आचरण से मनुष्य के चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं-

धर्मात् सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तसमाद् धर्मं समाश्रयेत्॥ (कूर्म पू० २/५२)

सामाजिक सद्व्यवस्थाओं की स्थापना आरम्भिक युग में कैसे हुई थी इसकी चर्चा कूर्मपुराण (पू० २९ अध्याय) में देखी जा सकती है।

कूर्मपुराण पू० ३१-३९ अध्यायों में वाराणसी तथा प्रयाग के तीर्थों की विशेषता का वर्णन भी किया गया है। वाराणसी के विषय में कहा गया है कि यहाँ किया गया दान, जप, होम, तप, ध्यान, अध्ययन और यहाँ प्राप्त ज्ञान आदि सब अक्षय हो जाता है (कूर्म पू० ३१/२९)। यहाँ मृत्यु होने पर पापी व्यक्ति भी नरक में नहीं जाता (कूर्म पू० ३१/३४)। प्रयाग को प्रजापति का क्षेत्र कहा गया है (कूर्म पू० ३६/२०)। वहाँ गंगा-यमुना के संगम में स्नान से राजसूय और अश्वमेघ का फल मिलता है (कूर्म पू० ३७/१२) तथा वहाँ प्राणत्याग से वही गति मिलती है जो योग-युक्त संन्यासी को मिलती है (कूर्म पू० १७/१५)।

कूर्मपुराण में भगवान् विष्णु और महादेव शिव को समान महत्त्व दिया गया है एवं उन दोनों में परस्पर सौमनस्य तथा एकता का भाव बतलाया गया है-

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः। (कूर्म पू० १५/८९)

इसके अतिरिक्त एक ही परम सत्ता के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शिव संज्ञक तीन देवों के रूप में जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार किया जाता है इस तथ्य को परम रुचिकर शब्दों में प्रस्तुत किया गया है (कूर्म पू० ४/५६-६३; पू० २६/९७)। भगवान् विष्णु तथा शिव में परस्पर सामञ्जस्य बतलाने पर भी कतिपय प्रसंगों में शिवोपासना की विशेष संस्तुति करते हुए यह कहा गया है कि जो मनुष्य सभी देवों के

द्वारा पूजित शिव का पूजन नहीं करते उनका दान, तप, यज्ञ तथा उनका जीवन भी व्यर्थ हो जाता है (कूर्म पू० ३०/४२)। भगवान् शिव के षडङ्ग विषयक जो वर्णन कूर्मपुराण (उ० ८/१३) में है वही शिवपुराण (१/८/१२ तथा ७/२/१८/५५) में भी है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव के आविर्भाव विषयक जो कथा कूर्म पुराण पू० अध्याय ९ में है उसमें कहा गया है कि भगवान् शिव के आठ स्वरूपों के नाम क्रमशः रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव हैं तथा सूर्य, जल, पृथिवी, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा तथा [यज्ञ में] दीक्षित ब्राह्मण ये सभी [जन सामान्य के लिए प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर] शिव की आठ मूर्तियाँ हैं। उपर्युक्त रुद्र, भव, शर्व आदि आठ रुद्रों की पत्नियों के नाम क्रमशः सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी हैं एवं शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव (काम?), स्कन्द, सर्ग, सन्तान तथा बुध नामक उनके पुत्र कहे गये हैं (पू० १०/२३-२९)। उन भगवान् शिव में ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति (धैर्य) तथा द्रष्टा जैसे गुण नित्य विद्यमान रहते हैं (पू० १०/३९-४०)।

कूर्मपुराण में अनेकत्र नाना देवों की अनेक स्तुतियाँ की गयी हैं। उनमें सर्वप्रथम विष्णु की स्तुति है।[१] उनके कूर्म अवतार[२] तथा वराह अवतार की भी स्तुति की गयी है।[३] देवी पार्वती स्तुति सहस्रनाम स्तोत्र अत्यन्त रोचक है।[४] पार्वती की एक स्तुति अन्धकासुर के द्वारा की गयी थी।[५] इस पुराण में एक स्तुति ब्रह्मा की[६]; एक स्तुति सरस्वती की[७], एक स्तुति सूर्य की[८] तथा अग्नि की भी एक स्तुति है[९] और सर्वाधिक स्तुतियां भगवान् शिव की हैं।[१०]

कूर्मपुराण में प्रायः सभी देवी-देवीताओं के प्रति भक्तिभाव दृष्टिगत होता है। इसमें देवी लक्ष्मी के विषय में कहा गया है कि अपनी आराधना से प्रसन्न होकर वह देवी विपुल धन-सम्पदा, पुष्टि, सद्बुद्धि, यश और बल प्रदान करती है-

श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम्।
अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥ (कूर्म पू० २/२०)

---

१. कूर्म पू०/१/६८-७८; पू०/१७/१९-२३
२. कूर्म उ०/४६/५३-६३
३. कूर्म पू०/६/११-२१
४. कूर्म पू० १२/६१-१९८
५. कूर्म पू० १६/२१३-२१६
६. कूर्म पू० २०/५२-५४
७. कूर्म पू० २४/१८-२०
८. कूर्म उ० १८/३५-४३
९. कूर्म उ० ३३/११४-१२०
१०. कूर्म पू० १०/४३-७१; १६/१८१-२००; २६/८०-८६; ३०/४३-५१; ३३/३५-४४; उ० १/३३-३५; उ० ५/२१-४० तथा (सोमाष्टक) उ० ३१/४९-५६

इस पुराण में ईश्वर-भक्ति को विशेष महत्त्व देते हुए यह कहा गया है कि भक्तिभाव के बिना केवल तपस्या से या धनबल से या दान या यज्ञ करने मात्र से ईश्वर का ज्ञान संभव नहीं है-

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्॥ (कूर्म उ० ४/२)

वर्णाश्रम-व्यवस्था के प्रसंग में यह कहा गया है कि ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों का मूल आधार गृहस्थ ही है। अन्य तीनों आश्रमों के लोग अपनी जीविका हेतु प्रायः गृहस्थ पर ही निर्भर रहते हैं। अतः गृहस्थाश्रमी ही उनमें सर्वश्रेष्ठ है (कूर्म पू० २/४९)। ब्रह्मचारी और गृहस्थों के लिए विहित कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन कूर्म उ० १३-१९ में है। इसमें कहा गया है कि श्रुति और स्मृति में विहित और सत्पुरुषों के द्वारा सेवित आचार का अनुकरण प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए-

श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित्॥ (कूर्म उ० १५/१९)

श्राद्ध-विधान के प्रसंग में कूर्मपुराण में कहा गया है कि श्राद्ध के एक दिन पूर्व ही ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर देना चाहिए। तभी पितृगण उन ब्राह्मणों के शरीर में वायु रूप में प्रविष्ट होकर श्राद्ध में प्रदत्त भोजन ग्रहण करते हैं।[1] यही तथ्य गरुड पुराण में भी कहा गया है।[2] उसमें यह भी कहा गया है कि श्राद्धकाल में यमराज भी यमालय में स्थित तथा नरक में स्थित प्रेतयोनि के पितरों को भी मनुष्य लोक में भेज देते हैं। जो पितर जिस योनि में गये हों उसी योनि के भोज्य आहार के रूप में श्राद्ध उनको प्राप्त होता है।[3]

अशौच शुद्धि के विषय में कूर्मपुराण के वचन अन्य सभी धर्मशास्त्रीय-ग्रन्थों के समान ही हैं। कुछ विशेष स्थितियों यथा- यज्ञ, विवाह, दुर्भिक्ष आदि या उपद्रव आदि के अवसर पर अशौच से शुद्धि स्नानोपरान्त शीघ्र हो जाती है।[4]

इस पुराण का आद्योपान्त अध्यय करने पर हम पाते हैं कि इसमें पौराणिक साहित्य के अनुकूल सभी धार्मिक, ऐतिहासिक दार्शनिक तथा सामाजिक हित के विषयों को संपादित करके इसे परम लोकोपयोगी बनाया गया है।

डॉ० महेश चन्द्र जोशी
एम.ए., पी-एच.डी., साहित्याचार्य
(बी.एच.यू. से सेवानिवृत्त)

१. कूर्म उ० २२/३-४
२. निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग। प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥ गरुड प्रेतखण्ड १०/२६
३. गरुड प्रेतखण्ड १०/२८-२९
४. कूर्म उ० २३/६७-६९

विषयानुक्रमणी

(पूर्वार्द्धम्)

(उत्तरार्धम्)

❖❖❖

॥ श्री॥

अथ श्रीकूर्मपुराणम्

(पूर्वार्द्धम्)

अथ प्रथमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य मोक्षप्राप्तिवर्णनम्

ॐ नमस्कृत्याप्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे। पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं विश्वयोनिना॥१॥

पृथिवी को धारण करने के लिए कूर्म रूप में अवतार ग्रहण करने वाले विश्व के जन्मदाता अप्रेमय (जिनकी तुलना या उपमा किसी से नहीं हो सकती ऐसे) भगवान् विष्णु को प्रणाम करके उनके द्वारा कथित कूर्म पुराण का मैं प्रवचन करता हूँ॥१॥

सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषेया महर्षयः। पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छु रोमहर्षणम्॥२॥
त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः। इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः॥३॥

नैमिषारण्य निवासी महर्षियों ने दीर्घकालीन सत्र (सोमयाग जो तेरह दिन से लेकर आगे सहस्र दिन तक भी चलता है) के सम्पन्न होने के अन्तिम दिन रोमहर्षण सूत जी से पूछा कि हे महाज्ञानी सूत जी! आपने इतिहास और पुराण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठं भगवान् व्यास जी की सम्यक् रूप से उपासना की है॥२-३॥

तस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत्। द्वैपायनस्य तु भगवांस्ततो वै रोमहर्षणः॥४॥

आपके अनुरोध पूर्ण वचनों से व्यास के रोमहर्षित (पुलकित) हो गये थे। अतः आप का नाम रोमहर्षण हो गया था॥४॥

भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः। मुनीनां संहितां वक्तुं व्यासः पौराणिकीं पुरा॥५॥

स्वयं भगवान् वेदव्यास जी ने आपसे वहाँ उपस्थित मुनियों को पुराण संहिता का प्रवचन करने को कहा था॥५॥

त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितते सति। सम्भूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः॥६॥

आप पूर्वकाल में स्वयंभू ब्रह्मा के यज्ञ में सुत्या[1] (सोम रस निकाल कर होम करने तथा शेष रस

---

१. कुछ विद्वानों ने सुत्या का यज्ञ के अन्त में स्नान अर्थ किया है जो कि नितान्त असंगत है।

का पान करने) के उत्सव के दिन स्वयं भगवान् विष्णु के अंशावतार रूप में पुराण-संहिता का प्रवचन करने हेतु प्रकट हुए थे॥६॥

तस्माद्भवन्तं पृच्छामः पुराणं कौर्ममुत्तमम्। वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद॥७॥

अतः आपसे हम पुराणों में उत्तम कूर्मपुराण के विषय में पूछते हैं। आप पुराणों के तात्पर्यज्ञान में निपुण हैं। अतः आप सर्वोत्तम कूर्मपुराण की कथा सुनावें॥७॥

मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः। प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम्॥८॥

मुनियों के वचनों को सुनकर पौराणिक विद्वानों में श्रेष्ठ रोमहर्षण सूत जी अपने मन से गुरु सत्यवती के पुत्र व्यास जी को प्रणाम करके यह बोले॥८॥

रोमहर्षण उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं कूर्मरूपधरं हरिम्। वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम्॥९॥

रोमहर्षण बोले- इस जगत् की उत्पत्ति के मूल स्रोत कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु को प्रणाम करके मैं पुराण की पापनाशक दिव्य कथा कहूँगा॥९॥

यां श्रुत्वा पापकर्मापि गच्छेत परमां गतिम्। न नास्तिके कथां पुण्यामिमां ब्रूयात्कदाचन॥१०॥

इस कथा को सुनकर पापी व्यक्ति भी परम गति को प्राप्त करता है। इस पुण्यप्रद पवित्र कथा को कदापि नास्तिक व्यक्ति को नहीं कहना चाहिए॥१०॥

श्रद्दधानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये। इमां कथामनुब्रूयात्साक्षान्नारायणेरिताम्॥११॥

साक्षात् नारायण द्वारा कही गयी इस कथा को श्रद्धावान् शान्त स्वभाव वाले धार्मिक द्विजातियों को ही सुनाना चाहिए॥११॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥१२॥

सृष्टि, प्रलय, वंश (सूर्यवंश, चन्द्रवंश आदि), मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (वंश विशेष के विशिष्ट महापुरुषों का विवरण) ये पुराण के पांच लक्षण हैं। अर्थात् पुराण में इन विषयों का विशेष वर्णन होता है॥१२॥

ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च। शैवं भागवतञ्चैव भविष्यं नारदीयकम्॥१३॥
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च। लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च॥१४॥
कौर्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम्। अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम्॥१५॥

अष्टादश महापुराणों में प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण है। तदनन्तर क्रमशः पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, भविष्यपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुडपुराण तथा वायु-प्रोक्त ब्रह्माण्ड पुराण अठारहवाँ महापुराण है[1]॥१३-१५॥

---

१. कूर्म, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, भागवत, मार्कण्डेय, लिङ्ग, वराह तथा विष्णु पुराण में शिवपुराण को महापुराणों में गिनाया गया है (द्रष्टव्य-पुराण विमर्श पृ. ९४)

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु। अष्टादश पुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः॥१६॥

हे द्विजो! संक्षेप में अष्टादश (अठारह) पुराणों का नाम सुन कर मुनियों के द्वारा कथित अन्य उपपुराणों का नाम सुनो॥१६॥

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्। तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्॥१७॥

उपपुराणों में प्रथम उपपुराण सनत्कुमार के द्वारा कथित सनत्कुमार नामक पुराण है। उसके उपरान्त दूसरा उपपुराण नृसिंहपुराण तथा तीसरा उपपुराण कुमार कार्तिकेय के द्वारा कथित स्कन्दपुराण है॥१७॥

चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्। दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम्॥१८॥

चौथा साक्षात् नन्दीश्वर भगवान् शिव के द्वारा कथित शिवधर्म नामक उपपुराण है। पाँचवा दुर्वासा के द्वारा कथित आश्चर्य नामक उपपुराण है। उसके बाद नारदोक्त नारदीय उपपुराण है॥१८॥

कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम्। ब्रह्माण्डं वारुणाञ्चैव कालिकाह्वयमेव च॥१९॥
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम्। पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम्॥२०॥

उससे आगे क्रमशः कपिलपुराण, मनु द्वारा कथित मानवपुराण[1], उशना (शुक्राचार्य) के द्वारा कथित औशनसपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वरुणदेव कथित वारुणपुराण, कालिकापुराण, माहेश्वरपुराण, साम्बपुराण, सभी प्रकार के अर्थों (विषयों) का प्रतिपादन करने वाला सौरपुराण, पराशरोक्त पाराशरोपपुराण, मारीचपुराण तथा अठारहवाँ भार्गवपुराण नामक उपपुराण है॥१९-२०॥

इदं तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्ममुत्तमम्। चतुर्द्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः॥२१॥
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः। चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः॥२२॥

अष्टादश (१८) महापुराणों में यह कूर्मपुराण पन्द्रहवाँ महापुराण है। संहिताओं के भेद से यह कूर्मपुराण चार संहिताओं में संपादित है। इस पुराण की चार पवित्र संहिताएँ क्रमशः ब्राह्मीसंहिता, भागवती संहिता, सौरी (सूर्य सम्बन्धी) संहिता तथा वैष्णवी संहिता कही गयी हैं जो कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष संज्ञक चारों पुरुषार्थों को देने वाली हैं॥२१-२२॥

इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता। भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया॥२३॥
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः। माहात्म्यमखिलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः॥२४॥

यह प्रस्तुत प्रथम ब्राह्मी संहिता चारों वेदों के समान महत्त्व की है। इसकी श्लोक संख्या छः हजार है। हे मुनीश्वरो! इस पुराण में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की महिमा का सम्पूर्ण वर्णन है और इसके अध्ययन से परमब्रह्म परमात्मा का ज्ञान हो जाता है॥२३-२४॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं पुण्याः दिव्याः प्रासङ्गिकी कथा॥२५॥

इस पुराण में सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश (राजर्षि वंशावली), मन्वन्तर (स्वायंभुव मनु से लेकर भविष्यत् कालीन चौदहवें इन्द्रसावर्णि नामक मनु तक के काल का विवेचन) तथा वंशानुचरित (वंश विशेष के महापुरुषों का वर्णन) सहित प्रसंगानुकूल दिव्य कथाओं का वर्णन है॥२५॥

१. कुछ पुस्तकों में 'वामन' पाठ है।

ब्राह्मणाद्यैरियं धार्या धार्मिकैर्वेदपारगैः। तामहं वर्णयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा॥ २६॥

धर्मपरायण और वेद के ज्ञाता ब्राह्मणादि सभी को इसकी कथा को हृदयंगम (जानकर चित्त में धारण) करना चाहिए। प्राचीन काल में व्यास जी के द्वारा कथित कथा का वर्णन मैं (रोमहर्षण सूत) करूँगा॥ २६॥

पुराऽमृतार्थं दैतेयदानवैः सह देवताः। मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम्॥ २७॥

प्राचीन काल में देवताओं ने दैत्यों (दिति के वंशजों) तथा दानवों (दनु के वंशजों) के साथ मिलकर मन्दर पर्वत की मथानी बनाकर क्षीर सागर (समुद्र) का मन्थन किया था॥ २७॥

मथ्यमाने तदा तस्मिन्कूर्मरूपी जनार्दनः। बभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया॥ २८॥

उस सागर के मन्थन के समय देवताओं के हित में भगवान् विष्णु ने कूर्म बनकर मन्दर पर्वत को अपने ऊपर धारण किया था॥ २८॥

देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः। कूर्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम्॥ २९॥

तब सभी देवों और नारद आदि महर्षियों ने उन सर्वसाक्षी अविनाशी भगवान् विष्णु को कूर्मरूप धारण किया हुआ देखकर उनकी स्तुति की थी॥ २९॥

तदन्तरेऽभवद् देवी श्रीर्नारायणवल्लभा। जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः॥ ३०॥
तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः। मोहिताः सह शक्रेण श्रेयो वचनमब्रुवन्॥ ३१॥
भगवन् देवदेवेश नारायण जगन्मय। कैषा देवी विशालाक्षी यथावद् ब्रूहि पृच्छताम्॥ ३२॥

तब उस समुद्रमन्थन से भगवान् विष्णु की प्रिया लक्ष्मी प्रकट हुई थी। उस देवी लक्ष्मी को पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने ही ग्रहण किया था। उस लक्ष्मी के तेज से मन्त्र-मुग्ध इन्द्र सहित नारद आदि महर्षियों ने अव्यक्त स्वरूप वाले भगवान् विष्णु से यह कहा कि हे भगवान्! हे देवदेवेश! हे जगन्मय नारायण! यह विशाल नेत्रों वाली देवी कौन है? हम पूछने वालों को आप यथावत् बतलाइए॥ ३०-३२॥

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्दनः। प्रोवाच देवीं संप्रेक्ष्य नारदादीनकल्मषान्॥ ३३॥
इयं सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी। माया मम प्रियानन्ता ययेदं धार्यते जगत्॥ ३४॥

तब उनके ऐसे वचनों को सुनकर दानवों का मर्दन करने वाले भगवान् विष्णु ने देवी लक्ष्मी की ओर देखकर नारद आदि निष्कलंक मुनियों से यह कहा कि यह मेरी अभिन्न स्वरूपा और परब्रह्मरूपिणी परमाशक्ति है, यह मेरी प्रिया अनन्त रूपों वाली माया है, जो सम्पूर्ण जगत् को धारण करती है॥ ३३-३४॥

अनयैव जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्। मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च॥ ३५॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इसी के द्वारा मैं देवों, असुरों तथा मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् को मोहित करता हूँ, उसका संहार और सृजन भी करता हूँ॥ ३५॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्। विद्यया वीक्ष्य चात्मानं तरन्ति विपुलामिमाम्॥ ३६॥

प्राणियों की उत्पत्ति, प्रलय, जन्म, मरण का अध्यात्म विद्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार करके ज्ञानी जन इस महामाया से पार जा सकते हैं॥ ३६॥

अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् द्विजाः। ब्रह्मेशानादयः सर्वे सर्वशक्तिरियं मम॥ ३७॥

इसी के अंशों का आश्रय लेकर अथवा ग्रहण कर ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता शक्तिमान् हुए थे। यह मेरी सम्पूर्ण शक्तिस्वरूपा है॥३७॥

सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका। प्रागेव मत्तः सञ्जाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी॥ ३८॥

यही वह सत्त्व, रज और तमोगुण युक्त त्रिगुणात्मिका शक्ति है जो सम्पूर्ण जगत् की जननी है। पूर्व काल के श्रीकल्प में यह कमल में निवास करने वाली देवी लक्ष्मी मेरी अर्धाङ्गिनी रूप में मुझसे ही प्रकट हुई थी॥३८॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ता स्रगन्विता। कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ ३९॥

यह देवी चार भुजाओं वाली है। यह अपने चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, पद्म (कमल-पुष्प) तथा पुष्पमाला धारण किये रहती है। करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान यह देवी सभी प्राणियों को मोहित करने वाली है॥३९॥

नालं देवा न पितरो मानवा वासवोऽपि च। मायामेतां समुत्तर्तुं ये चान्ये भुवि देहिनः॥ ४०॥

देवता, पितर, मनुष्य, वसुगण तथा इस पृथिवी के अन्य प्राणी भी इस माया को पार करने में समर्थ नहीं हैं॥४०॥

इत्युक्ता वासुदेवेन मुनयो विष्णुमब्रुवन्। ब्रूहि त्वं पुण्डरीकाक्ष यद्धि कालत्रयेऽपि[1] च।
को वा तरति तां मायां दुर्जयां देवनिर्मिताम्॥ ४१॥

वासुदेव विष्णु के द्वारा यह कहे जाने पर मुनियों ने उनसे कहा कि हे कमलनयन! उस देवनिर्मित अजेय माया को पार करने बाला यदि तीनों कालों में कोई हुआ है तो उसके विषय में आप बतलाइए॥४१॥

अथोवाच हृषीकेशो मुनीन्मुनिगणार्चितः। अस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः॥ ४२॥

तब उन मुनिगणों के द्वारा पूजित हृषीकेश भगवान् विष्णु बोले- इन्द्रद्युम्न नाम से विश्रुत (विख्यात) एक श्रेष्ठ ब्राह्मण है॥४२॥

पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः। दृष्ट्वा मां कूर्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम्।
संहितां मन्मुखाद् दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान्॥ ४३॥

ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः। मच्छक्तौ संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरणं गतः॥ ४४॥

सम्भाषितो मया चाथ विप्रयोनिं गमिष्यति। इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जातिं स्मरसि पौर्विकीम्॥ ४५॥

पूर्वजन्म में वह एक राजा था, जो शिव आदि देवताओं के द्वारा भी जीता नहीं जा सकता था। उसने मुझे कूर्म रूप में अवतार लिया हुआ देखकर तथा मुनीश्वरों को मेरे समक्ष लाकर स्वयं मेरे मुख से पुराण संहिता की दिव्य कथा सुनकर एवं ब्रह्मा और शिव एवं अन्य सभी देवों को भी अपनी शक्तियों सहित मेरी शक्ति में स्थित जानकर वह मेरी ही शरण में आ गया था। तब मैंने उससे कहा था कि तुम

१. कालक्षयेऽपिच (पाठान्तर)

ब्राह्मण कुल में जन्म प्राप्त करोगे। ब्राह्मण रूप में तुम इन्द्रद्युम्न नाम से विख्यात रहोगे तथा तुम्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण रहेगा॥४३-४५॥

सर्वेषामेव भूतानां देवानामप्यगोचरम् वक्तव्यं यद् गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ।
लब्ध्वा तन्मामकं ज्ञानं मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि॥४६॥

जो ज्ञान सभी प्राणियों और देवों के लिए अप्राप्य है तथा जो ज्ञान अत्यन्त गोपनीय कहा जाने योग्य है, हे निष्पाप इन्द्रद्युम्न! वह ज्ञान मैं तुमको दूंगा। मेरा वह ज्ञान प्राप्त करके तुम अन्त में मुझमें ही प्रविष्ट हो जावोगे॥४६॥

अंशान्तरेण भूम्यां त्वं तत्र तिष्ठ सुनिर्वृतः। वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थं मां प्रवेक्ष्यसि॥४७॥

तुम अपने दूसरे अंश से शान्तिपूर्वक पृथिवी पर रहो और वैवस्वत मन्वन्तर के बीत जाने पर तुम अपने अभीष्ट कार्य हेतु मुझमें ही प्रविष्ट (लीन) हो जावोगे॥४७॥

मां प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम्। कालधर्मं गतः कालाच्छ्वेतद्वीपे मया सह॥४८॥
भुक्त्वा तान् वैष्णवान् भोगान्योगिनामप्यगोचरान्। मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा जज्ञे विप्रकुले पुनः॥४९॥

तब वह इन्द्रद्युम मुझे प्रणाम करके अपनी नगरी में जाकर पृथिवी का पालन करने लगा था। समयानुसार जीवन लीला समाप्त होने पर श्वेत द्वीप में आकर मेरे साथ विष्णुभक्तों के लिए विहित और योगियों के लिए भी दुर्लभ भोगों को भोगने के उपरान्त हे मुनिश्रेष्ठो! उसने पुनः ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था॥४८-४९॥

ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं यत्र द्वे निहितेऽक्षरे। विद्याविद्ये गूढरूपे यद् ब्रह्म परमं विदुः॥५०॥
सोऽर्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम्। व्रतोपवासनियमैर्होमैर्ब्राह्मणतर्पणैः॥५१॥

जिसमें विद्या और अविद्या दोनों ही गुप्त रूप में स्थित हैं और जिसे लोग अविनाशी परं ब्रह्म रूप में जानते हैं, जो सभी प्राणियों का आश्रयदाता परमेश्वर है, ऐसे मुझ वासुदेव को जानकर इन्द्रद्युम्न ने व्रत-उपवास आदि नियमों का पालन करते हुए होम और ब्राह्मणों का तर्पण (पूजन) पूर्वक मेरा पूजन किया था॥५०-५१॥

तदाशीस्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः। आराधयन् महादेवं योगिनां हृदि संस्थितम्॥५२॥
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित्परमा कला। स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं विष्णुसमुद्भवम्॥५३॥

वह इन्द्रद्युम्न महादेव भगवान् विष्णु के आशीर्वाद की कामना करते हुए उन्हें नित्य प्रणाम करता था, उनकी एकनिष्ठ भक्ति करता हुआ उनके भजन-पूजन में लीन रहता था। योगियों के हृदय में निवास करने वाले महादेव-भगवान् विष्णु की आराधना में नित्य वर्तमान (संलग्न) उस इन्द्रद्युम्न को एक बार भगवान् विष्णु की अर्धाङ्गिनी रूप में प्रकट हुई परम कला स्वरूपा लक्ष्मी ने अपने स्वरूप का दर्शन कराया था॥५२-५३॥

दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा विष्णोर्भगवतः प्रियाम्। संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः कृताञ्जलिरभाषत॥५४॥

भगवान् विष्णु की प्रेयसी देवी लक्ष्मी का दर्शन करके इन्द्रद्युम्न ने नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करके यह कहा॥५४॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि विष्णुचिह्नाङ्किते शुभे। याथातथ्येन वै भावं तवेदानीं ब्रवीहि मे॥५५॥

इन्द्रद्युम्न बोला- हे विशाल नेत्रों वाली और भगवान् विष्णु के चिह्नों से युक्त शुभाङ्गी देवी आप कौन हैं? इस समय आप अपना यथार्थ परिचय मुझे बतलाइए॥५५॥

तस्य तद्वक्यमाकर्ण्य सुप्रसन्ना सुमङ्गला। हसन्ती संस्मरनूविष्णुं प्रियं ब्राह्मणमब्रवीत्॥५६॥

उसके उस वचन को सुनकर सभी माङ्गलिक लक्षणों वाली देवी लक्ष्मी प्रसन्न हो गयी थी और उसने भगवान् विष्णु का स्मरण कर उस ब्राह्मण से हंसते हुए यह कहा॥५६॥

श्रीरुवाच

न मां पश्यन्ति मुनयो देवाः शक्रपुरोगमाः। नारायणात्मिकामेकां मायाऽहं तन्मयी परा॥५७॥
न मे नारायणाद्भेदो विद्यते हि विचारतः। तन्मयाहं परं ब्रह्म स विष्णुः परमेश्वरः॥५८॥

लक्ष्मी ने कहा- इन्द्रादि देवता तथा मुनिगण भी मुझे नहीं देख पाते हैं। मैं नारायण स्वरूपिणी और नारायणमयी एकमात्र परमा माया हूँ। भगवान् विष्णु और मेरे मैं विचार करने पर कोई भेद दृष्टिगत नहीं होता। वह परमेश्वर भगवान् विष्णु परम ब्रह्म हैं और मैं विष्णुमयी हूँ॥५७-५८॥

येऽर्चयन्तीह भूतानामाश्रयं पुरुषोत्तमम्। ज्ञानेन कर्मयोगेन न तेषां प्रभवाम्यहम्॥५९॥

जो मनुष्य ज्ञानयोग और कर्मयोग से प्राणियों के परम आश्रय रूप पुरुषोत्तम विष्णु की आराधना करते हैं, उन पर मेरा प्रभुत्व नहीं चलता अर्थात् वे मेरे वश में नहीं आते॥५९॥

तस्मादनादिनिधनं कर्मयोगपरायणः। ज्ञानेनाराधयानन्तं ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥६०॥

अतः तुम कर्मयोग परायण रहकर और ज्ञानयोग का आश्रय लेकर अनादिनिधन (जन्ममरण रहित) और अनन्त स्वरूप वाले भगवान् विष्णु की आराधना करो। उससे तुम मोक्ष को प्राप्त करोगे॥६०॥

इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महामतिः। प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥६१॥
कथं स भगवानीशः शाश्वतो निष्कलोऽच्युतः। ज्ञातुं हि शक्यते देवि ब्रूहि मे परमेश्वरि॥६२॥

ऐसा कहे जाने पर उस महाबुद्धिमान् मुन्तिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न ने नतमस्तक होकर और हाथ जोड़कर देवी लक्ष्मी से पुनः यह कहा कि हे देवि! हे परमेश्वरि! उन सनातन, निष्कल (कलारहित), अच्युत भगवान् विष्णु को कैसे जाना जा सकता है? यह मुझे बतलाइए॥६१-६२॥

एवमुक्ताऽथ विप्रेण देवी कमलवासिनी। साक्षान्नारायणो ज्ञानं दास्यतीत्याह तं मुनिम्॥६३॥
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम्। स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत॥६४॥

उस ब्राह्मण इन्द्रद्युम्न के द्वारा ऐसा कहे जाने पर कमल में निवास करने वाली देवी लक्ष्मी उस मुनि (इन्द्रद्युम्न) को दोनों हाथों से स्पर्श करके परात्पर भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए वहीं पर अन्तर्धान हो गयी थी॥६३-६४॥

सोऽपि नारायणं द्रष्टुं परमेण समाधिना। आराधयद्धृषीकेशं प्रणतार्तिप्रभञ्जनम्॥६५॥

उस इन्द्रद्युम्न ने भी भगवान् विष्णु का दर्शन प्राप्त करने के लिए समाधि लगाकर शरणागत भक्तों के कष्टों का हरण करने वाले भगवान् विष्णु की आराधना की थी॥६५॥

ततो बहुतिथे काले गते नारायणः स्वयम्। प्रादुरासीन्महायोगी पीतवासा जगन्मयः॥६६॥

तब बहुत दिनों की कालावधि व्यतीत हो जाने पर वह पीताम्बरधारी जगद्व्यापी महायोगी भगवान् विष्णु प्रकट हुए थे॥६६॥

दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मानमव्ययम्। जानुभ्यामवनिं गत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम्॥६७॥

भगवान् विष्णु को आता हुआ देखकर इन्द्रद्युम्न ने घुटनों के बल बैठकर उनकी स्तुति की थी॥६७॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव। कृष्ण विष्णो हृषीकेश तुभ्यं विश्वात्मने नमः॥६८॥

इन्द्रद्युम्न बोला- हे यज्ञेश्वर! हे अच्युत! हे गोविन्द! हे माधव! हे अनन्त शक्ति वाले केशव! हे कृष्ण! हे विष्णु! हे हृषीकेश! आप विश्वात्मा (विश्व की आत्मा) हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥६८॥

नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्तये। सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये॥६९॥

आप पुराण-पुरुष, हरि, विश्वमूर्ति, अनन्त शक्ति वाले तथा सृष्टि, स्थिति (पालन) और प्रलय के कारण हैं और अनन्त शक्तियों वाले हैं, ऐसे भगवान् विष्णु आपको नमस्कार है॥६९॥

निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलाय नमो नमः। पुरुषाय नमस्तेऽस्तु विश्वरूपाय ते नमः॥७०॥

हे निर्गुण (गुणातीत) और निष्कल (कलातीत) आपको नमस्कार है। परमपुरुष और विश्वरूप धारी आपको नमस्कार है॥७०॥

नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये। आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः॥७१॥

वासुदेव, विष्णु और विश्व के जनक, आदि मध्य और अन्तरहित और ज्ञानी जनों के द्वारा ज्ञान से जानने योग्य हे विष्णु! आपको नमस्कार है॥७१॥

नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः। भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे॥७२॥

आप निर्विकार और प्रपञ्च रहित हैं, आपको नमस्कार है। आप भेद और अभेद से रहित और आनन्दस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है॥७२॥

नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने। अनन्तमूर्तये तुभ्यममूर्ताय नमो नमः॥७३॥

संसार-सागर से पार उतारने वाले, शान्त स्वभाव वाले, अजेय आत्मा वाले आपको नमस्कार है। अनन्त स्वरूप वाले और अमूर्त (निराकार) ईश्वर आपको नमस्कार है॥७३॥

नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः। नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने॥७४॥

परमार्थरूप और माया से रहित आपको नमस्कार है। परमेश्वर परं ब्रह्म परमात्मा! आपको नमस्कार है॥७४॥

नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः। नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने॥७५॥

अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप वाले हे महादेव! आपको नमस्कार है। शुद्धस्वरूप वाले शिवस्वरूप परमेश्वर! आपको नमस्कार है॥७५॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः। त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम॥७६॥

आपने ही इस अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है आप ही परमगति हैं। हे पुरुषोत्तम! आप सभी प्राणियों के माता-पिता हो॥७६॥

त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योम निष्कलम्। सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम्॥७७॥

आप अक्षर (अविनाशी), परं धाम, चिन्मात्र परम व्योम (चिदाकाश), निष्कल (कलारहित), सम्पूर्ण सृष्टि का आधार, अव्यक्त (गूढ़), अनन्त और तमस् (अन्धकार या तमोगुण) से रहित हैं॥७७॥

प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम्। प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम्॥७८॥

हे परमात्मा! आपको ज्ञानीजन केवल ज्ञान-दीप के प्रकाश से देख पाते हैं। मैं आपके उस रूप की शरण में हूँ जिसको वेद में भगवान् विष्णु का परम पद कहा गया है[१]॥७८॥

एवं स्तुवन्तं भगवान् भूतात्मा भूतभावनः। उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां पस्पर्श प्रहसन्निव॥७९॥

इस प्रकार की स्तुति करते हुए उस इन्द्रद्युम्न को सभी प्राणियों के आत्मा एवं भूतभावन (सभी प्राणियों के जनक) भगवान् विष्णु ने कुछ हँसते हुए दोनों हाथों से उसका स्पर्श किया था॥७९॥

स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुङ्गवः। यथावत्परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः॥८०॥

भगवान् विष्णु के स्पर्श मात्र से उस मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न को उनकी कृपा से परम तत्त्व का यथार्थ ज्ञान हो गया था॥८०॥

ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्दनम्। प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमच्युतम्॥८१॥

त्वत्प्रसादादसन्दिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम। ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम्॥८२॥

तब उसने प्रसन्न मन से भगवान् विष्णु को प्रणाम करके विकसित कमल के समान नेत्रों वाले उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु से कहा कि हे पुरुषोत्तम! आपकी कृपा से निःसन्देह मुझे परं ब्रह्म विषयक परम आनन्द का सिद्धिप्रद ज्ञान प्राप्त हो गया है॥८१-८२॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे। किं करिष्यामि योगेश तन्मे वद जगन्मय॥८३॥

आप भगवान् विधाता वासुदेव को नमस्कार है। हे जगद्व्यापी! योगेश्वर! आप मुझे यह बतलाइए कि अब मैं क्या करूँ॥८३॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधवः। उवाच सस्मितं वाक्यमशेषं जगतो हितम्॥८४॥

इन्द्रद्युम्न के वचन सुनकर माता लक्ष्मी के पति भगवान् विष्णु ने मुस्कुराते हुए सम्पूर्ण जगत् के हित में यह वचन कहे॥८४॥

---

१. द्रष्टव्य-तद्विष्णोः परमं पदथं सदा पश्यन्ति सूरयः। ऋग्वेद १/२२/२०; यजुर्वेद ६/५

श्रीभगवानुवाच

वर्णाश्रमाचारवतां पुंसां देवो महेश्वरः। ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा॥८५॥

चारों वर्णों और आश्रमों के लिए विहित आचरण का पालन करने वाले मनुष्यों को ज्ञानयोग और भक्तियोग से देवाधिदेव महादेव का पूजन करना चाहिए उससे भिन्न विधि से नहीं॥८५॥

विज्ञाय तत्परं तत्त्वं विभूतिं कार्यकारणम्। प्रवृत्तिञ्चापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्चयेत्॥८६॥

मोक्ष की कामना करने वाले मनुष्य को इस सृष्टि में स्थित परम तत्त्व को और परमेश्वर की विभूति (अतिमानवीय विशेषताओं) एवं जगत् के कार्य और कारण तथा मेरी प्रवृत्ति का ज्ञान करके ईश्वर की उपासना करनी चाहिए॥८६॥

सर्वसङ्गानूपरित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत्। अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम्॥८७॥

इस संसार को मायाजाल जानकर और सभी प्रकार की आसक्तियों को त्याग कर स्वयं को परमात्मा से अभिन्न समझो। ऐसा करने से तुम परमेश्वर का दर्शन कर सकोगे॥८७॥

त्रिविधा भावनां ब्रह्मनूप्रोच्यमाना विबोध मे। एका मद्विषया तत्र द्वितीया व्यक्तसंश्रया।
अन्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा॥८८॥

आसामन्यतमाञ्चाथ भावनां भावयेद् बुधः। अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥८९॥

हे ब्राह्मण! भावना तीन प्रकार की होती है। मेरे द्वारा कही जा रही उन तीनों भावनाओं को सुनो। उनमें पहली भावना मेरे परमात्म स्वरूप की है। दूसरी भावना व्यक्त स्वरूप (प्रत्यक्ष दृश्यमान् विराट् स्वरूप) विषयक है तथा अन्य (तीसरी) भावना मेरे त्रिगुणातीत (अव्यक्त) स्वरूप विषयक है। इनमें से किसी एक भावना का आश्रय लेकर विद्वान् व्यक्ति मेरा ध्यान करे। जो व्यक्ति असमर्थ हो उसे प्रथम सगुण स्वरूप (परमात्मा विष्णु) की आराधना के मार्ग का आश्रय लेना चाहिए ऐसा वेद का वचन है॥८८-८९॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायणः। समाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥९०॥

अतः समग्र प्रयास से विश्व के स्वामी परमात्मा के सगुण स्वरूप की निष्ठापूर्वक और तत्पर होकर आराधना करो। उससे तुम मोक्ष को प्राप्त करोगे॥९०॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं तत्परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनार्दन। किङ्कार्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव॥९१॥

इन्द्रद्युम्न बोला- हे जनार्दन! वह परात्परतत्त्व क्या है और विभूति क्या है? कार्य क्या है और कारण क्या है? आप कौन हैं और आपकी प्रवृत्ति क्या है?॥९१॥

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम्। नित्यानन्दमयं ज्योतिरक्षरं तमसः परम्॥९२॥

ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते। कार्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम्॥९३॥

श्री भगवान् बोले- परात्पर तत्त्व अविनाशी परं ब्रह्म है। वह नित्य, आनन्दमय, ज्योति रूप, अविनाशी एवं तमस् (अन्धकार) से परे है। उस परब्रह्म का जो नित्य (सनातन) ऐश्वर्य है, उसी को विभूति

कहा जाता है। उस परमात्मा का कार्यरूप यही प्रत्यक्ष जगत् है और अव्यक्त (जो प्रकट नहीं होता) शुद्ध अविनाशी परमात्मा ही इस दृश्यमान् जगत् का कारण है॥९२-९३॥

अहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः। सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते॥९४॥

मैं ही सभी प्राणियों में रहने वाला अन्तर्यामी परमेश्वर हूँ। चराचर जगत् की सृष्टि, उसका पालन तथा प्रलय करना मेरी प्रवृत्ति कही जाती है॥९४॥

एतद्विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज। ततस्त्वं कर्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्च्चय॥९५॥

हे ब्राह्मण! यह सब श्रद्धा भाव से यथावत् जानकर तुम कर्मयोग से सनातन परमात्मा की सम्यक् रूप से आराधना करो॥९५॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः। ज्ञानञ्च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम्॥९६॥
कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः। कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च।
कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च॥९७॥
तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरे। कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः।
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष यथावदधुना पुनः॥९८॥

इन्द्रद्युम्न बोला- वर्णाश्रम धर्म के आचार क्या हैं, जिनसे परमेश्वर की आराधना की जाती है? वह तीनों भावनाओं में स्थित दिव्य ज्ञान कैसा है? पूर्वकाल में इस चराचर जगत् की सृष्टि कैसे हुई थी और फिर इसका संहार कैसे होता है? इस लोक में कितनी सृष्टियाँ हैं और कितने वंश और कितने मन्वन्तर हैं? उनके क्या क्या प्रमाण हैं? पवित्र व्रत और तीर्थ कितने हैं? सूर्य आदि ग्रहों की स्थिति कैसी है? पृथिवी की लम्बाई चौड़ाई कितनी है? द्वीप, समुद्र, पर्वत और नदी-नद कितने हैं? हे पुण्डरीकाक्ष! अब आप मुझे यह सब पुनः बतलाइए॥९६-९८॥

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाहं भक्तानुग्रहकाम्यया। यथावदखिलं सम्यगवोच मुनिपुङ्गवाः॥९९॥
व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु। अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम्॥१००॥

कूर्म ने कहा- उस इन्द्रद्युम्न के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैंने उस भक्त के ऊपर अनुकम्पा की इच्छा से यथावत् सब कुछ कह दिया था। हे श्रेष्ठ मुनियो! उस ब्राह्मण ने जो कुछ पूछा था, वह सब उसी प्रकार विस्तार से बतलाकर उस ब्राह्मण को अनुगहीत करके मैं वहीं पर अन्तर्धान हो गया था॥९९-१००॥

सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमाः। आराधयामास परं भावपूतः समाहितः॥१०१॥
त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः। संन्यस्य सर्वकर्माणि परं वैराग्यमाश्रितः॥१०२॥
आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत्। सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्विकाम्॥१०३॥
अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति। यं विनिद्रा जितश्वासाः कांक्षन्ते मोक्षकांक्षिणः॥१०४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उस इन्द्रद्युम्न ने भी मेरे द्वारा कथित विधि-विधान से पवित्र मनोभाव वाला होकर

पुत्रादि के प्रति स्नेह का त्याग कर निर्द्वन्द्व (सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से रहित) और निष्परिग्रह (धन-सम्पदादि से रहित) होकर समाहित (एक निष्ठ) होकर और सभी कर्मों का त्याग कर परम वैराग्य भाव का आश्रय लेकर अपनी आत्मा में ही परमात्मतत्त्व का तथा (उसी अपनी) आत्मा में सम्पूर्ण जगत् का भी बोध करके अक्षरब्रह्म विषयक अंतिम भावना को प्राप्त कर उस परम योग को प्राप्त किया था, जिससे कि योगी व्यक्ति एक (अद्वितीय) परमात्मा को देखता है और जिसे कि मोक्षाभिलाषी योगी जन नित्य जागृत (निद्रा रहित) होकर और प्राणायाम के द्वारा अपने श्वास पर विजय प्राप्त करके देखना चाहते हैं॥१०१-१०४॥

ततः कदाचिद्योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम्। जगामादित्य-निर्देशान्मानसोत्तरपर्वतम्।
आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्यप्रभावतः॥१०५॥

विमानं सूर्यसङ्काशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम्। अन्वगच्छनूदेवगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
दृष्ट्वाऽन्ये पथि योगीन्द्रं सिद्धा ब्रह्मर्षयो ययुः॥१०६॥

तब किसी समय योगिराज इन्द्रद्युम्न नामक वह द्विजेन्द्र अविनाशी भगवान् सूर्य के आदेशानुसार ब्रह्मा के दर्शन हेतु मानसरोवर के उत्तर में स्थित पर्वत में अपने योग बल के प्रभाव से आकाशमार्ग से गया था। उसको ले जाने को सूर्य के समान दीप्तिमान विमान वहाँ प्रकट हुआ था। उसके पीछे देवगण एवं गन्धर्व और अप्सरागण भी साथ में गये थे। मार्ग में उस योगिराज इन्द्रद्युम्न को देखकर सिद्ध और ब्रह्मर्षिगण भी उसके पीछे चले थे॥१०५-१०६॥

ततः स गत्वा तु गिरिं विवेश सुर-वन्दितम्। स्थानं तद्योगिभिर्जुष्टं यत्रास्ते परमः पुमान्॥१०७॥
संप्राप्य परमं स्थानं सूर्यायुतसमप्रभम्। विवेश चान्तर्भवनं देवानाञ्च दुरासदम्॥१०८॥
विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्वदेहिनाम्। अनादिनिधनं देवं देवदेवं पितामहम्॥१०९॥

तब वह उस पर्वत में पहुँच कर देवताओं के द्वारा पूजित और योगियों द्वारा सेवित उस स्थान में पहुँचे जो दस सहस्र सूर्यों के समान प्रभा वाला था और जहाँ पर परम पुरुष ब्रह्मा विद्यमान थे। वहाँ इन्द्रद्युम्न ने देवों के लिए दुर्गम उस भवन के अन्दर प्रवेश करके सभी प्राणियों को शरण देने वाले अनादिनिधन, देवों के देव पितामह ब्रह्मा का ध्यान किया था॥१०७-१०९॥

ततः प्रादुरभूत्तस्मिन् प्रकाशः परमाद्भुतः।
तन्मध्ये पुरुषं पूर्वमपश्यत् परमं पदम्॥११०॥

महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्। चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिभिरुपशोभितम्॥१११॥

तभी वहाँ परम् अद्भुत प्रकाश हुआ था। उस प्रकाश के मध्य में इन्द्रद्युम्न ने परम पद रूप पुराण पुरुष ब्रह्मा को देखा, जो कि ब्रह्म-द्वेषियों के लिए अगम्य (अदृश्य) है। वह चार मुखों वाले तथा सुन्दर अङ्ग वाले और प्रकाशमान किरणों से सुशोभित थे॥११०-१११॥

सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्य प्रणमन्तमुपस्थितम्। प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषस्वजे॥११२॥

उन ब्रह्मा जी ने योगी इन्द्रद्युम्न को वहाँ उपस्थित होकर प्रणाम करते देखा तो स्वयं उसके पास जाकर उन विश्वात्मा ने उसका आलिङ्गन किया (उसे गले से लगा लिया)॥११२॥

परिष्वक्तस्य देवेन द्विजेन्द्रस्याथ देहतः। निर्गत्य महती ज्योत्स्ना विवेशादित्यमण्डलम्।
ऋग्यजुः सामसंज्ञं तत्पवित्रममलं पदम्॥११३॥

ब्रह्मा जी के द्वारा आलिङ्गन किये जाने पर उस ब्राह्मण के शरीर से महान् तेज निकलकर सूर्य मण्डल में जाकर मिल गया था। वह पवित्र और निर्मल पद (सूर्य मण्डल) ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद नाम से अभिहित है॥११३॥

हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक्। द्वारं तद्योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम्।
ब्रह्मतेजोमयं श्रीमन्निष्ठा चैव मनीषिणाम्॥११४॥

वहाँ पर हव्य (देवताओं को प्रदत्त आहुति) और कव्य (पितरों को प्रदेय श्राद्धान्न का सार) का उपभोग करने वाले भगवान् हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) निवास करते हैं। वह स्थान वेदान्त में प्रतिपादित योगी जनों के लिए प्रवेश द्वार कहा गया है, वह ब्रह्म तेज से युक्त है तथा मनीषियों (योगियों) के लिए परम निष्ठा (अन्तिम गति) का स्थान है॥११४॥

दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्मयो मुनिः। अपश्यदैश्वरं तेजः शान्तं सर्वत्रगं शिवम्॥११५॥
स्वात्मानमक्षरं व्योम यत्र विष्णोः परं पदम्। आनन्दमचलं ब्रह्म स्थानं तत्परमेश्वरम्॥११६॥

भगवान् ब्रह्मा के देखने मात्र से उस प्रकाश पुञ्ज स्वरूप मुनि इन्द्रद्युम्न ने उस ईश्वरीय तेज को देखा जो शान्त, सर्वत्र व्याप्त और कल्याणकारी और स्वकीय आत्मा का स्वरूप, अक्षर (अविनाशी), व्योम (आकाश) तुल्य रिक्त था और जो कि भगवान् विष्णु का परम पद, आनन्द स्वरूप, अचल परब्रह्म परमेश्वर का स्थान था॥११५-११६॥

सर्वभूतात्मभूतस्थः परमैश्वर्यमास्थितः। प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्॥११७॥

तब सभी प्राणियों को आत्मतुल्य समझने वाले परमैश्वर्य में स्थित इन्द्रद्युम्न ने मोक्ष संज्ञक परमात्मा के अविनाशी परम धाम को प्राप्त किया था॥११७॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः। समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मीं तरेद्बुधः॥११८॥

अतः बुद्धिमान् मनुष्य को समस्त प्रयास से वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए जीवन के अन्तिम भाव में जाने पर लक्ष्मी-स्वरूपा माया से पार जाना चाहिए॥११८॥

सूत उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः। शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम्॥११९॥

सूत जी बोले- भगवान् विष्णु के द्वारा ऐसा कहे जाने पर इन्द्र सहित नारद आदि सभी महर्षियों ने गरुडध्वज भगवान् विष्णु से पूछा॥११९॥

ऋषय ऊचुः

देवदेव हृषीकेश नाथ नारायणाव्यय। तद्वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा॥१२०॥
इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम्। शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय॥१२१॥

ऋषि बोले- हे देवदेव! हे हृषीकेश! हे नाथ! हे अविनाशी नारायण! वह सब आप हमें पुनः

बतलाइए जो कि पुराकाल में आपने ब्राह्मण इन्द्रद्युम्न को धर्मादि विषयक वर्णन सुनाये थे। हे जगत्मय जगन्नाथ! आपका यह मित्र इन्द्र भी यह सब आपसे सुनने को इच्छुक है॥१२०-१२१॥

ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः। रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः॥१२२॥
पृष्टः प्रोवाच सकलं पुराणं कौर्ममुत्तमम्। सन्निधौ देवराजस्य तद्वक्ष्ये भवतामहम्॥१२३॥

तब रसातल में स्थित कूर्मरूपी भगवान् विष्णु ने नारद आदि महर्षियों के द्वारा पूछे जाने पर सम्पूर्ण कूर्मपुराण को इन्द्र के सान्निध्य में जो उत्तम कूर्मपुराण की कथा कही थी उसको मैं रामेहर्षण सूत आप लोगों को सुनाता हूँ॥१२२-१२३॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम्। पुराणश्रवणं विप्राः कथनञ्च विशेषतः॥१२४॥

हे ब्राह्मणो! इस पुराण की कथा सुनने से मनुष्यों को धन, यश, दीर्घायु, पुण्य और मोक्ष प्राप्त होता है तथा इसकी कथा कहने से तो उक्त लाभ विशेषतः प्राप्त होते हैं॥१२४॥

श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते। उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते॥१२५॥

इस पुराण के प्रत्येक अध्याय की कथा सुनने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होता है अथवा इसके प्रत्येक उपाख्यान की कथा सुनने से वह ब्रह्मलोक में महिमा-मण्डित होता है॥१२५॥

इदं पुराणं परमं कौर्मं कूर्मस्वरूपिणा। उक्तं वै देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः॥१२६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

कूर्मरूप धारी देवाधिदेव विष्णु के द्वारा कथित इस श्रेष्ठ कूर्मपुराण में द्विजातियों को अवश्य श्रद्धा रखनी चाहिए॥१२६॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

वर्णाश्रमवर्णनम्

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे यत्पृष्टोऽहं जगद्धितम्। वक्ष्यमाणं मया सर्वमिन्द्रद्युम्नाय भाषितम्॥१॥

कूर्म बोले- आप सभी ऋषिगणों ने जगत् के हित के लिए जो कुछ पूछा है और मैंने इन्द्रद्युम्न से जो कुछ कहा था, उसे मैं कहूँगा। आप सब उसे सुनें॥१॥

भूतैर्भव्यैर्भवद्भिश्च चरितैरुपबृंहितम्। पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्मानुकीर्तनम्॥२॥

भूतकालीन तथा वर्तमान और भविष्य में होने वाले चरितों और वृत्तान्तों का इस कूर्मपुराण में

विस्तार से वर्णन है तथा मोक्ष धर्म का वर्णन करने वाला यह पुराण मनुष्यों के लिए पुण्य प्रदान करने वाला है॥२॥

अहं नारायणो देवः पूर्वमासीन्न मे परम्। उपास्य विपुलां निद्रां भोगिशय्यां समाश्रितः॥३॥

प्राचीन काल में एकमात्र मैं ही नारायण नामक देव विद्यमान था। मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। उस समय मैं प्रगाढ़ योगनिद्रा का आश्रय लेकर शेषनाग रूपी शय्या में सोया हुआ था॥३॥

चिन्तयामि पुनः सृष्टिं निशान्ते प्रतिबुध्य तु। ततो मे सहसोत्पन्नः प्रसादो मुनिपुङ्गवाः॥४॥

हे मुनीश्वरो! रात्रि व्यतीत होने पर जब मैं नींद से जगा तो मुझे सहसा प्रसन्नता का आभास हुआ॥४॥

चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः। तदन्तरेऽभवत्क्रोधः कस्माच्चित्कारणात्तदा॥५॥
आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वरः। रुद्रः क्रोधात्मको जज्ञे शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
तेजसा सूर्यसङ्काशस्त्रैलोक्यं संदहन्निव॥६॥

तभी चतुर्मुख (चारमुखों वाले) ब्रह्मा प्रकट हुए थे। तदनन्तर किसी कारण मुझे क्रोध आया। हे श्रेष्ठ मुनियो! तभी क्रोधी स्वभाव वाले महादेव रुद्र प्रकट हुए थे जो तीन नेत्रों वाले और हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए थे। वह अपने तेज से सूर्य के समान थे और ऐसा लगता था कि मानो वह अपने तेज से तीनों लोकों को दग्ध कर रहे हों॥५-६॥

तदा श्रीरभवद्देवी कमलायतलोचना। सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥७॥

तभी कमल के समान विशाल नेत्रों वाली सुन्दर और सौम्य मुखाकृति वाली सभी प्राणियों को मोहित करने वाली देवी लक्ष्मी प्रकट हुई थी॥७॥

शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा। दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता॥८॥

वह देवी सुन्दर रूप वाली, सौम्य मुखाकृति वाली, सभी प्राणियों को मोहित करने वाली, पवित्र मुस्कान वाली, प्रसन्नचित्त, मङ्गलकारिणी, महिमामयी, दिव्यकान्ति से युक्त, दिव्य माला से सुशोभित थी॥८॥

नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया। स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पार्श्वं समुपाविशत्॥९॥

वह अविनाशी मूल-प्रकृति स्वरूपा नारायणी महामाया अपने तेज से इस जागत् को आपूरित करती हुई मेरे पास आकर बैठ गयी थी॥९॥

तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिः। मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम्।
येनेयं विपुला सृष्टिर्वर्द्धते मम माधव॥१०॥

उस देवी को देखकर जगत् के स्वामी ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि इस सुन्दरी देवी को सम्पूर्ण प्राणियों को मोहित करने के लिए नियुक्त कर दो। हे माधव! उससे मेरी इस विशाल सृष्टि की वृद्धि होगी॥१०॥

तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रुवं प्रहसन्निव। देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्।
मोहयित्वा ममादेशात्संसारे विनिपातय॥११॥

ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैंने मुस्कराते हुए देवी लक्ष्मी से यह कहा कि हे देवी! मेरी आज्ञा से तुम देवों, मनुष्यों और असुरों सहित सम्पूर्ण विश्व (के प्राणियों) को मोहित कर इस संसार (के मायाजाल) में फंसा दो॥ ११॥

ज्ञानयोगरतान्दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः। अक्रोधनान् सत्यपरान्दूरतः परिवर्जय॥ १२॥

ज्ञानयोग में संलग्न, जितेन्द्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मवादी, क्रोधरहित और सत्यनिष्ठ मनुष्यों को तुम दूर से वर्जित करना॥ १२॥

ध्यायिनो निर्ममान् शान्तान्धार्मिकान्वेदपारगान्। याजिनस्तापसान्विप्रान्दूरतः परिवर्जय॥ १३॥

परमात्मा का ध्यान करने वाले, माया-ममता रहित, शान्त स्वभाव वाले, धार्मिक, वेद-पारंगत, यज्ञ करने वाले और तपस्या में लीन ब्राह्मणों को तुम दूर से ही त्याग देना॥ १३॥

वेदवेदान्तविज्ञानसंछिन्नाशेषसंशयान्। महायज्ञपरान्विप्रान्दूरतः परिवर्जय॥ १४॥

वेद और वेदान्त के विशिष्ट ज्ञान से जिनके सब सन्देह दूर हो गये हैं और जो महायज्ञों के अनुष्ठान में संलग्न हों ऐसे ब्राह्मणों को तुम दूर से वर्जित कर देना अर्थात् उनके पास मत जाना॥ १४॥

ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम्। स्वाध्यायेनेज्यया दूरात्तान् प्रयत्नेन वर्जय॥ १५॥

जो मनुष्य जप और होम तथा यज्ञ एवं स्वाध्याय के द्वारा देवाधिदेव महादेव की आराधना करते हैं, उनको भी तुम दूर से छोड़ देना॥ १५॥

भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान्। प्राणायामादिषु रतान्दूरात्परिहरामलान्॥ १६॥

जो भक्तियोग में लीन हों, जिन्होंने अपना मन ईश्वर चिन्तन में अर्पित कर दिया हो और जो प्राणायामादि यौगिक क्रिया में संलग्न हों उन निर्मल मन वालों को भी तुम दूर से त्याग देना॥ १६॥

प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान्। अथर्वशिरसो वेत्तॄन् धर्मज्ञान् परिवर्जय॥ १७॥

जो सज्जन प्रणव (ओङ्कार) के जप में आसक्त मन वाले हों, जो रुद्र (शिव) के नाम या मन्त्र के जप में संलग्न हों और जो अथर्वशीर्ष के ज्ञाता हों और जो धर्मशास्त्र के ज्ञाता हों उनको भी तुम वर्जित करना॥ १७॥

बहुनात्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान्। ईश्वराराधनरतान्मन्नियोगान्न मोहय॥ १८॥

अधिक कहने से क्या लाभ। जो लोग अपने धर्म का (सम्यक् रूप से) पालन करते हैं और जो ईश्वर की आराधना में संलग्न हैं, उनको तुम मेरे आदेशानुसार अपने मोहपाश में मत उलझाना॥ १८॥

एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा। यथादेशं चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥ १९॥

इस प्रकार मेरे द्वारा प्रेरित किये जाने पर उस मेरी प्रिया लक्ष्मी ने जैसा आदेश दिया गया था, वैसा ही किया था। अतः लक्ष्मी का सम्यक् रूप से भक्तिभाव पूर्वक यथाविधि पूजन करना चाहिए॥ १९॥

श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम्। अर्चिता भगवत्पत्नीं तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥ २०॥

भगवान् विष्णु की पत्नी अपनी पूजा किये जाने पर विपुल (प्रचुर) धन-सम्पदा, पुष्टि (सब प्रकार की समृद्धि), मेधा (सद्बुद्धि), यश और बल प्रदान करती है। अतः लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए॥ २०॥

ततोऽसृजत्स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः। चराचराणि भूतानि यथापूर्वं ममाज्ञया॥२१॥

तदनन्तर मेरी आज्ञानुसार लोक-पितामह भगवान् ब्रह्मा ने पूर्वकालीन सृष्टि के समान ही सभी चराचर प्राणियों की सृष्टि की थी॥२१॥

मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। दक्षमत्रिं वसिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया॥२२॥

ब्रह्मा ने योग विद्या के बल से मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ की सृष्टि की थी॥२२॥

नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्माणो ब्राह्मणोत्तमाः। ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः॥२३॥

ये मरीचि आदि ब्रह्मा के नौ पुत्र नौ ब्रह्मा कहलाते हैं। ये सभी ब्राह्मणोत्तम ब्रह्मवादी साधक हैं॥२३॥

ससर्ज ब्राह्मणानूवक्त्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद्विभुः। वैश्यानुरुद्वयाद्देवः पद्भ्यां शूद्रान् पितामहः॥२४॥

विभु (सर्वशक्तिमान) देव पितामह ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मणों की, भुजाओं से क्षत्रियों की, दोनों जंघाओं से वैश्यों की तथा दोनों पैरों से शूद्रों की सृष्टि की थी॥२४॥

यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज ह। गुप्तये सर्वदेवानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बभौ॥२५॥

ब्रह्मा ने शूद्र के अतिरिक्त शेष तीन वर्णों की सृष्टि यज्ञ के सम्पादन हेतु की थी, क्योंकि उसी से सभी देवों की रक्षा हो सकती थी और उन्हीं देवों के लिए यज्ञ भी विहित था॥२५॥

ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च। ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया॥२६॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद ब्रह्मा के सहज स्वरूप हैं। ये वेद ब्रह्मा की नित्य और अव्यय (अनश्वर) शक्तिरूप हैं॥२६॥

अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा। आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥२७॥

ब्रह्मा ने आदिकाल में अपने मुख से आदि-अन्तरहित जो दिव्य वाणी निकाली थी वह वेदमय ही थी और उसी के निर्देश से सभी प्रकार की प्रक्रियाओं-सभी लोक व्यवहारों का निर्वाह होता है॥२७॥

अतोऽन्यानि हि शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित्। न तेषु रमते धीरः पाषण्डी रमते बुधः॥२८॥

पृथिवी में वेदों (और वैदिक परम्परा के अनुयायी शास्त्रों) से जो अन्य शास्त्र हैं, उनमें विद्वान् व्यक्ति का मन नहीं लगता, अपितु वैसे शास्त्रों में पाखण्डी व्यक्ति का ही मन लगता है॥२८॥

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा। स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः॥२९॥

वेदार्थ ज्ञान में निष्णात विद्वानों को वही कार्य करना चाहिए जो कि पुराकाल में मुनियों ने विहित किया है एवं उसी को परम धर्म मानना चाहिए तथा वेद विरोधी अन्य शास्त्रों में जो लिखित है, उसको नहीं मानना चाहिए॥२९॥

या वेदाबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः[1]। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥३०॥

जो वेद-विरुद्ध स्मृतियाँ हैं और अन्य जिन स्मृतियों (या अन्य ग्रन्थों) में कुत्सित दृष्टिकोण का

१. मनु १२/९५

प्रतिपादन किया गया हो उनको (उनके अध्ययन को) पारलौकिक दृष्टि से निष्फल बतलाया गया है, क्योंकि वे तमोगुणी बतलायी गयी हैं॥३०॥

पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्वबाधाविवर्जिताः। शुद्धान्तःकरणाः सर्वाः स्वधर्मनिरताःसदा[1]॥३१॥

पूर्वकालीन कल्प की समस्त प्रजा सभी बाधाओं से रहित तथा शुद्ध अन्तःकरण वाली थी और अपने धर्म का पालन करने वाली थी॥३१॥

ततः कालवशात्तासां रागद्वेषादिकोऽभवत्। अधर्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्मप्रतिबन्धकः॥३२॥

कालान्तर में उन प्रजा-जनों में रागद्वेष आदि दोष उत्पन्न हो गये थे। हे श्रेष्ठ मुनियो! तब उनके स्वधर्म को प्रतिबन्धित (बाधित) करने वाला अधर्म समाज में फैल गया था॥३२॥

ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते। रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन्॥३३॥

तब पूर्वकाल से चली आ रही उनकी सहज सात्त्विक सिद्धि अधिक फलीभूत नहीं हो रही थी और तब रजोगुण के आधिक्य वाली अन्य सिद्धियाँ उनको प्राप्त हुई थी॥३३॥

तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः। वार्त्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिञ्च कर्मजात्।
ततस्तासां विभुर्ब्रह्मा कर्माजीवमकल्पयत्॥३४॥

कालान्तर में उन रजोगुणात्मक सिद्धियों के भी क्षीण हो जाने पर उस समय की प्रजाओं ने कर्म से साध्य वार्ता (कृषि, वाणिज्य और पशुपालन) तथा हस्तशिल्प (शिल्पकला, वास्तुकला आदि) को आजीविका का साधन बनाया था। तब प्रभु ब्रह्मा ने ही उन प्रजाओं के लिए उक्त प्रकार के कर्म से आजीविका निर्धारित की थी॥३४॥

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं धर्मान्प्रोवाच सर्वदृक्। साक्षात्प्रजापतेर्मूर्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणो द्विजाः।
भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्मानथोचिरे॥३५॥

हे द्विजो! पूर्वकाल में ब्रह्मा की सृष्टि से उत्पन्न साक्षात् प्रजापति रूप धर्मदर्शी मनु ने धर्म का प्रवचन (उपदेश) किया था। तब उनके मुख से सुनकर भृगु आदि महर्षियों ने भी धर्म का उपदेश दिया था॥३५॥

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहम्। अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः॥३६॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! यज्ञ करना, यज्ञ करवाना दान देना और दान ग्रहण करना, अध्ययन और अध्यापन ये छः कर्म ब्राह्मण के हैं॥३६॥

दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः। दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते॥३७॥

दान, अध्ययन और यज्ञ करना ये क्षत्रिय और वैश्य के धर्म हैं। अपराधियों को दण्ड देना तथा युद्ध करना क्षत्रिय का कर्म है और वैश्य के लिए कृषि कर्म को प्रशस्त बतलाया गया है॥३७॥

शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्। कारुकर्म तथाजीवः पाकयज्ञादि धर्मतः॥३८॥

---

१. स्वधर्मपरिपालकाः

तीनों द्विजाति वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा करना तथा पाकयज्ञ (घर में पकाये हुए अन्न के अग्रिम अंश का हवन) करना शूद्र का धर्म है तथा शिल्पकला का कर्म उसकी आजीविका का साधन है॥३८॥

ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान्। गृहस्थञ्च वनस्थं च भिक्षुकं ब्रह्मचारिणम्॥३९॥

इस प्रकार चारों वर्णों के धर्म और कर्म की व्यवस्था हो जाने पर ब्रह्मा ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की व्यवस्था बनायी थी॥३९॥

अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम्। गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुङ्गवाः॥४०॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! घर में अग्नि-स्थापन करके उसकी परिचर्या, अतिथि-सेवा, यज्ञ, दान और देवपूजा ही संक्षेप में गृहस्थ का धर्म है॥४०॥

होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च। संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम्॥४१॥

होम, कन्द-मूल और फलों का भोजन, स्वाध्याय, तप और यथाविधि सम्पदा का विभाजन ही वानप्रस्थ का धर्म है॥४१॥

भैक्षाशनञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः। सम्यग्ज्ञानञ्च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः॥४२॥

भिक्षा माँग कर खाना, मौन-साधना, तप और विशेषतः परमात्मा का ध्यान, आत्मा परमात्मा विषयक् सम्यक् ज्ञान तथा वैराग्य को संन्यासी का धर्म माना गया है॥४२॥

भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च। सन्ध्याकर्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम्॥४३॥

भिक्षा माँगना, गुरु की सेवा, स्वाध्याय, सन्ध्योपासन तथा अग्नि-परिचर्या ब्रह्मचारियों का धर्म है॥४३॥

ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः। साधारणं ब्रह्मचर्यं प्रोवाच कमलोद्भवः॥४४॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ब्रह्मा ने ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी सभी के लिए ब्रह्मचर्य को समान रूप से पालनीय धर्म कहा है॥४४॥

ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु न चान्यतः। पर्ववर्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्॥४५॥

रजः शुद्धि के बाद पर्वों और वर्जित दिनों के अतिरिक्त अन्य सभी ऋतुकाल के दिनों में अपनी पत्नी के साथ रमण को भी गृहस्थ का ब्रह्मचर्य कहा गया है॥४५॥

आगर्भधारणादाज्ञा कार्या तेनाप्रमादतः। अकुर्वाणस्तु विप्रेन्द्रा भ्रूणहा स भवेद् ध्रुवम्॥४६॥

जब तक पत्नी गर्भधारण न कर ले तब तक गृहस्थ को इस आदेश का पालन करना चाहिए। अन्यथा-ऐसा न करने पर वह भ्रूण-हत्या के पाप से ग्रस्त हो जाता है॥४६॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या श्राद्धञ्चातिथिपूजनम्। गृहस्थस्य परो धर्मो देवताभ्यर्चनं तथा॥४७॥

प्रतिदिन यथाशक्ति जितना संभव हो उतना वेद का अभ्यास (पारायण), श्राद्ध, अतिथि-सत्कार तथा देव पूजा करना गृहस्थ का परम धर्म है॥४७॥

वैवाह्यमग्निमिन्धीत सायं प्रातर्यथाविधि। देशान्तरगतो वाथ मृतपत्नीक एव च॥४८॥

गृहस्थ पुरुष अन्य देश में जाने पर भी अथवा पत्नी के मर जाने पर भी विवाह के समय प्रज्वलित अग्नि को सांयकाल और प्रातःकाल प्रज्वलित करता रहे॥४८॥

त्रयाणामाश्रमाणान्तु गृहस्थो योनिरुच्यते। अन्ये तमुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी॥४९॥

गृहस्थ अन्य तीन आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम) का मूल आधार कहा जाता है। अन्य तीन आश्रम अपनी आजीविका के लिए उसी परं निर्भर रहते हैं। अतः गृहस्थाश्रम में रहने वाला गृहस्थ अन्य तीनों आश्रमों में रहने वालों से श्रेष्ठ है॥४९॥

ऐकाश्रम्यं गृहस्थस्य चतुर्णां श्रुतिदर्शनात्। तस्माद्गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम्॥५०॥

वेदों के अनुसार चारों आश्रमों का एकत्र समावेश एकमात्र गृहस्थाश्रम में होता है। अतः एकमात्र गृहस्थाश्रम को ही धर्म का साधन जानना चाहिए॥५०॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ। सर्वलोकविरुद्धञ्च धर्ममप्याचरेन्न तु॥५१॥

धर्म विरुद्ध विधि से अर्थ के अर्जन और काम के सेवन का गृहस्थ पुरुष परित्याग करे और लोक-विरुद्ध धर्म का पालन भी त्याग दे॥५१॥

धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते। धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्॥५२॥

धर्म का पालन करने से धन भी प्राप्त होता है और धर्म से काम भी सिद्ध होता है और धर्म के पालन से अपवर्ग (मोक्ष) भी प्राप्त होता है। अतः प्रमुख रूप से धर्म का ही आश्रय लेना चाहिए॥५२॥

धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः। सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्॥५३॥

धर्म, अर्थ और काम को त्रिवर्ग कहा जाता है जो कि सत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त होने के कारण त्रिगुणात्मक माना जाता है। अतः इस त्रिवर्ग में से बुद्धिमान् व्यक्ति को धर्म का ही आश्रय लेना चाहिए॥५३॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥५४॥

सत्त्व गुण में स्थित व्यक्ति ऊर्ध्व (ऊपर) के लोक में जाते हैं- ऊपर उठते हैं, रजोगुणी मनुष्य मध्य (भूलोक) में रहते हैं और वर्जित कुकृत्य करने वाले तमोगुणी मनुष्य अधोगति को प्राप्त करते हैं॥५४॥

यस्मिन्धर्मसमायुक्तौ ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ। इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते॥५५॥

जो व्यक्ति अर्थ और काम को धर्म से मिलाकर सद्व्यवस्थानुसार उनका सदुपयोग करता है, वह इस लोक में सुखी रहकर मृत्यु के पश्चात् परलोक में भी अनन्त सुख प्राप्त करता है॥५५॥

धर्मात्सञ्जायते मोक्षो ह्यर्थात्कामोऽभिजायते। एवं साधनसाध्यत्वं चातुर्विध्ये प्रदर्शितम्॥५६॥

धर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है और अर्थ से काम का उदय होता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्विध पुरुषार्थो का साधन क्या है और साध्य क्या है, यह प्रदर्शित किया गया है॥५६॥

य एवं वेद धर्मार्थकाममोक्षस्य मानवः। माहात्म्यं चानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते॥५७॥

इस प्रकार जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के महत्त्व को जानता है और यथाविधि उनको सिद्ध करने का प्रयास करता है, वह अनन्त सुख (मोक्ष) प्राप्त करता है॥५७॥

तस्मादर्थञ्च कामञ्च त्यक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्। धर्मात्सञ्जायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः॥५८॥

अतः अर्थ और काम को त्याग कर धर्म का ही आश्रय लेना चाहिए, तात्पर्य यह कि धर्म का ही पालन करना चाहिए। धर्म का पालन करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है- ऐसा ब्रह्मवादी विद्वानों ने कहा है॥५८॥

धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। अनादिनिधना शक्तिः सैषा ब्राह्मी द्विजोत्तमाः॥५९॥

धर्म के द्वारा ही सम्पूर्ण जड-जङ्गम (चराचर) जगत् को धारण किया जाता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! यह धर्म ब्रह्मा की अनादि निधना (आदि अन्त रहित) शक्ति है॥५९॥

कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः। तस्माज्ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाश्रयेत्॥६०॥

कर्म और ज्ञान दोनों से ही धर्म की प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः मनुष्य को ज्ञान के साथ ही कर्मयोग का भी आश्रय लेना चाहिए॥६०॥

प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधं कर्म वैदिकम्। ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तं यदतोऽन्यथा॥६१॥

वेदोक्त कर्म प्रवृत्ति मार्गी और निवृत्ति मार्गी दो प्रकार का होता है। निवृत्ति मार्ग का कर्म आसक्ति रहित होकर ज्ञानपूर्वक किया जाता है और अज्ञान (आसक्ति) पूर्वक किया गया कर्म प्रवृत्ति मार्ग का होता है॥६१॥

निवृत्तं सेवमानस्तु याति तत्परमं पदम्। तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत् पुनः॥६२॥

निवृत्त कर्म (अनासक्त भाव से किया गया कर्म) करने से मनुष्य परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। अतः निवृत्त कर्म (अर्थात् निवृत्ति मार्ग) का ही आचरण करना चाहिए अन्यथा प्रवृत्ति मार्ग से संसार में आना पड़ता है॥६२॥

क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च। आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा॥६३॥
सत्यं सन्तोषमास्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः। देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः॥६४॥
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कला। सामासिकमिमं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥६५॥

क्षमा, दम (इन्द्रिय संयम), दया, दान, लोभ न करना, त्याग की प्रवृत्ति, सरल स्वभाव, ईर्ष्या न करना, तीर्थयात्रा, सत्य का पालन, सन्तोष, आस्तिक भाव (ईश्वर और परलोक में विश्वास), श्रद्धा, इन्द्रिय संयम, देव पूजा, ब्राह्मणों की पूजा (सम्मान), अहिंसा, प्रिय वचन बोलना, पिशुनता (चुगली) न करना तथा पाप कर्म से दूर रहना- ये सभी धर्म मनु ने चारों वर्णों के लिए समान धर्म के रूप में विहित किये हैं॥६३-६५॥

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्। स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम्॥६६॥
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम्। गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्त्तताम्॥६७॥

अपने लिए विहित सत्कर्म करने वाले ब्राह्मण प्राजापत्य लोक को प्राप्त करते हैं। संग्राम से पलायन नहीं करने वाले क्षत्रियों के लिए इन्द्रलोक, स्वधर्म का पालन करने वाले वैश्यों के लिए वायुलोक और द्विजाति वर्णों की सेवा करने वाले शूद्रों के लिए गान्धर्व लोक की प्राप्ति सुनिश्चित बतलायी गयी है॥६६-६७॥

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तेषान्तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम्॥६८॥

अठासी हजार ऊर्ध्वरेता (अखण्ड ब्रह्मचर्य वाले) ऋषियों का जो स्थान है, वही स्थान गुरुकुल में निवास करने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को भी प्राप्त होता है॥६८॥

सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम्। प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयम्भुवा॥६९॥

सप्तर्षियों का जो स्थान है, वही वानप्रस्थ आश्रम में निवास करने वालों को प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने गृहस्थों के लिए प्राजापत्य (प्रजापति का) स्थान सुलभ बतलाया है॥६९॥

यतीनां जितचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम्। हैरण्यगर्भं तत्स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः॥७०॥

योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम्। आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परा गतिः॥७१॥

जिन ऊर्ध्वरेता (अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले) संन्यासियों ने चित्तवृत्ति पर विजय प्राप्त कर ली हो ऐसे उन यतियों को हिरण्यगर्भ नामक लोक प्राप्त होता है, जहाँ से पुनरागमन इस भूलोक में नहीं होता। योगियों को परम व्योम (आकाश) नामक वह अमृतवत् अविकारी अविनाशी आनन्दमय ईश्वरीय धाम प्राप्त होता है जो निःसीम और परमगति कहलाता है॥७०-७१॥

ऋषय ऊचुः

भगवन्देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन। चत्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते॥७२॥

ऋषि बोले- हे देवों के शत्रुओं का नाश करने वाले! हिरण्याक्ष का वध करने वाले भगवान्! आपने चार आश्रम बतलाए हैं, किन्तु योगियों का तो एक ही आश्रम कहा जाता है॥७२॥

श्रीकूर्म उवाच

सर्वकर्माणि संन्यस्य समाधिमचलं श्रितः। य आस्ते निश्चलो योगी स संन्यासी न पञ्चमः॥७३॥

कूर्म ने कहा- सभी कर्मों को त्याग कर जो अटल समाधि में लीन हो गया हो वह निश्चल योगी ही संन्यासी कहलाता है। (वह चतुर्थ आश्रम का होता है) पाँचवाँ कोई आश्रम नहीं होता॥७३॥

सर्वेषामाश्रमाणां तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम्। ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः॥७४॥

योऽधीत्य विधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रममाव्रजेत्। उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः॥७५॥

वेद के अनुसार सभी आश्रम दो प्रकार के होते हैं। ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं- उनमें से एक है, उपकुर्वाण और दूसरा नैष्ठिक ब्रह्मचारी। जो विधिवत् वेदों का अध्ययन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे उसे उपकुर्वाण जानना चाहिए और जो आजीवन गुरु के आश्रम में रहे उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं॥७४-७५॥

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्। कुटुम्बभरणे यत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत्॥७६॥

गृहस्थ भी दो प्रकार का होता है- एक उदासीन और दूसरा साधक। जो अपने परिवार के भरण-पोषण में संलग्न हो उसको साधक गृहस्थ कहते हैं॥७६॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम्। एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः॥७७॥

जो गृहस्थ देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण को चुकाकर एवं पत्नी और धन आदि को त्यागकर मोक्ष प्राप्ति के लिए एकाकी विचरण करता है, उसको उदासीन कहते हैं॥७७॥

तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान् जुहोति च। स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसो मतः॥७८॥

तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्। सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः॥७९॥

जो वानप्रस्थी वन में तप करता है, देवों की पूजा और हवन करता है, उसको तापस कहते हैं। जो वानप्रस्थाश्रमी तपश्चर्या से अपने शरीर को अत्यन्त कृश (दुर्बल) करते हुए परमात्मा के ध्यान में निरत रहे उस वानप्रस्थ को सांन्यासिक वनाश्रमी समझना चाहिए॥७८-७९॥

योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः। ज्ञानाय वर्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः॥८०॥

जो संन्यासी नित्य योगाभ्यास में संलग्न हो और योग मार्ग में आगे जाने का इच्छुक हो, जितेन्द्रिय हो और ज्ञानप्राप्ति में तत्पर रहे उसे पारमेष्ठिक कहते हैं॥८०॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः। सम्यग्दर्शनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुचयते॥८१॥

आत्मा (परमात्मा) के चिन्तन में ही आनन्द का अनुभव करने वाला, नित्य तृप्ति का अनुभव करने वाला, सम्यक् दर्शन वाला जो योगी महामुनि (के समान) हो उसे भिक्षु कहते हैं॥८१॥

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्वेदसंन्यासिनोऽपरे। कर्मसंन्यासिनः केचित् त्रिविधाः पारमेष्ठिकाः॥८२॥

(ऊपर श्लोक ८० में कथित) पारमेष्ठिक संन्यासी के तीन भेद होते हैं। उनमें कोई ज्ञान-संन्यासी होते हैं, कोई वेदसंन्यासी होते हैं और कोई कर्मसंन्यासी होते हैं॥८२॥

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः सांख्य एव च। तृतीयोऽत्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममाश्रितः॥८३॥

योगी भी तीन प्रकार के होते हैं। उनमें से एक तो भौतिक योगी है, दूसरा सांख्य और तीसरा अत्याश्रमी कहलाता है, जो कि उत्तम योग में स्थित होता है॥८३॥

प्रथमा भावना पूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना। तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी॥८४॥

पूर्वोक्त भौतिक योगी में प्रथम कोटि की भावना (परमात्मा के सगुण स्वरूप की भावना) दूसरे सांख्य संज्ञक योगी में अक्षर भावना और तीसरे अत्याश्रमी में पारमेश्वरी संज्ञक अन्तिम (गुणातीत परमेश्वर विषयक) भावना रहती है॥८४॥

तस्मादेतद्विजानीध्वमाश्रमाणां चतुष्टयम्। सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमो नोपपद्यते॥८५॥

हे द्विजो! अतः आप यह जान लीजिए कि सभी वेदों और शास्त्रों में चार ही आश्रम बतलाये गये हैं, पाँचवाँ आश्रम कहीं नहीं है॥८५॥

एवं वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जनः। दक्षादीनूप्राह विश्वात्मा सृजध्वं विविधाः प्रजाः॥८६॥

इस प्रकार चारों वर्णों और चारों आश्रमों की सृष्टि करके देवों के देव निरञ्जन (शुद्ध भाव वाले) विश्वात्मा ब्रह्मा ने दक्ष आदि प्रजापतियों से कहा कि आप लोग विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करें॥८६॥

ब्रह्मणो वचनात्पुत्रा दक्षाद्या मुनिसत्तमाः। असृजन्त प्रजाः सर्वे देवमानुषपूर्विकाः॥८७॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! ब्रह्मा के वचन सुनकर दक्ष आदि प्रजापतियों ने देव, मनुष्य आदि सभी की सृष्टि की थी॥८७॥

इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्रष्टृत्वे संव्यवस्थितः। अहं वै पालयामीदं संहरिष्यति शूलभृत्॥८८॥

इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा सृष्टि-कार्य में सम्यक् प्रकार से संलग्न हैं। मैं (कूर्म रूप में अवतरित) विष्णु इस सृष्टि का पालन करता हूँ और इसके संहारकर्ता शूलपाणि भगवान् शंकर होंगे॥८८॥

तिस्रस्तु मूर्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। रजःसत्त्वतमोयोगात्परस्य परमात्मनः॥८९॥

ब्रह्मा, विष्णु और महादेव शिव को परम ब्रह्म परमात्मा की तीन मूर्तियाँ कहा गया है, जो क्रमशः रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण से युक्त हैं॥८९॥

अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः। अन्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः॥९०॥

ये तीनों परमेश्वर अपनी लीला से परस्पर अनुरक्त, परस्पर आश्रित तथा परस्पर अभिवादन करने वाले हैं॥९०॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना। तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सततं द्विजाः॥९१॥

हे द्विजो! भगवान् शिव में ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा अक्षर (वैष्णवी) संज्ञक तीनों भावनाएँ नित्य विद्यमान रहती हैं॥९१॥

प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या त्वक्षरभावना। द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना॥९२॥

मुझ (विष्णु) में प्रथम अक्षर भावना नित्य विद्यमान रहती है। दूसरी अक्षर भावना भगवान् ब्रह्मा में बतलायी गयी है॥९२॥

अहं चैव महादेवो न भिन्नः परमार्थतः। विभज्य स्वेच्छयाऽऽत्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः॥९३॥

मैं विष्णु और महादेव शिव वस्तुतः भिन्न नहीं हैं। वह अन्तर्यामी शिव स्वेच्छा से ही स्वयं को विभक्त करके (शिव और विष्णु संज्ञक) दो रूपों में स्थित हैं॥९३॥

त्रैलोक्यमखिलं स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम्। पुरुषः परमोऽव्यक्तो ब्रह्मत्वं समुपागमत्॥९४॥

देवों, असुरों और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण तीनों लोकों की सृष्टि करने के लिए वह अव्यक्त परम पुरुष ही ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुए थे॥९४॥

तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः। एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनूः कार्यवशात्प्रभोः॥९५॥

अतः ब्रह्मा, शिव और विश्व के स्वामी परमात्मा विष्णु के रूप में एक ही परम ब्रह्म ने कार्य विशेष के लिए तीन रूप धारण किये हैं॥९५॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्याः विशेषतः। यदीच्छेदचिरात्स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्॥९६॥

वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुतः। पूजयेद्भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया॥९७॥

अतः पूर्ण प्रयास करके इन तीनों देवों की वन्दना और पूजा करनी चाहिए। यदि मोक्ष नामक अविनाशी धाम को शीघ्र प्राप्त करने की कामना हो तो वर्णाश्रम धर्म में विहित विधान से प्रसन्नता के साथ प्रतिज्ञा (संकल्प) करके भक्तिभाव से आजीवन इन तीनों देवों का पूजन करे॥९६-९७॥

चतुर्णामाश्रमाणान्तु प्रोक्तोऽयं विधिवद् द्विजाः। आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इति त्रयः॥९८॥
तल्लिङ्गधारी नियतं तद्भक्तजनवत्सलः। ध्यायेदथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायणः॥९९॥

हे द्विजो! मैंने चारों आश्रमों के लिए यह धर्म विधिवत् कहा है। वैष्णव, ब्राह्म और शैव नामक तीन आश्रम (सम्प्रदाय) होते हैं, जो व्यक्ति जिस आश्रम (सम्प्रदाय) का हो वह उस (सम्प्रदाय) के चिह्न को धारण करके उसके देवता के भक्तों के प्रति प्रेमभाव रखते हुए और ब्रह्मविद्या परायण होकर सदैव इन तीनों देवों का ध्यान और पूजन करे॥९८-९९॥

सर्वेषामेव भक्तानां शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम्। सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्॥१००॥

सभी भक्तों को शिव का उत्तम प्रतीक श्वेत भस्म से निर्मित त्रिपुण्ड्र को ललाट में धारण करना चाहिए॥१००॥

यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम्। धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः॥१०१॥

जो व्यक्ति परम पद भगवान् विष्णु की शरण में गये हों और उनके भक्त हों उनको अपने ललाट में जल-मिश्रित सुगन्धित चन्दन से त्रिशूल का चिह्न धारण करना चाहिए॥१०१॥

प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्। तेषां ललाटे तिलकं धारणीयन्तु सर्वदा॥१०२॥

जो मनुष्य जगत् के बीज (सृष्टिकर्ता) परमेष्ठी ब्रह्मा के शरणागत भक्त हैं, उनको भी ललाट में सदैव तिलक धारण करना चाहिए॥१०२॥

योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्मासौ धृतो भवेत्। उपर्यधो भावयोगात् त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात्॥१०३॥

जो शिव अनादि हैं और प्राणियों के आदि (कारण) हैं और कालस्वरूप हैं, उन भगवान् शिव को ही त्रिपुण्ड्र को अपने ललाट में ऊपर नीचे श्रद्धाभाव से धारण करने वाला अपने ललाट में धारण करता है॥१०३॥

यत्तत्प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। धृतन्तु शूलधरणाद्भवत्येव न संशयः॥१०४॥

जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव-स्वरूप प्रधान पुरुष परमात्मा है, उसी को त्रिशूल की आकृति का तिलक धारण करने वाला पुरुष अपने ललाट में धारण करता है॥१०४॥

ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मण्डलं रवेः। भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते॥१०५॥

सूर्य मण्डल का जो ब्रह्मतेज युक्त शुक्ल वर्ण ईश्वरीय स्थान है, उसी को तिलक लगाकर मनुष्य अपने ललाट में धारण करता है॥१०५॥

तस्मात्कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथा च तिलकं शुभम्। आयुष्यञ्चापि भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम्॥१०६॥

अतः तीनों देवों के भक्तों को विधि-पूर्वक शुभंकर और आयु वृद्धि कारक त्रिपुण्ड्र या त्रिशूल की आकृति का तिलक चन्दन आदि ललाट में धारण करना चाहिए॥१०६॥

यजेत जुहुयादग्नौ जपेद् दद्याज्जितेन्द्रियः। शान्तो दान्तो जितक्रोधो वर्णाश्रमविधानवित्॥१०७॥

वर्णाश्रम धर्म के विधान को जानने वाला शान्त स्वभाव का, दान्त (इन्द्रिय संयम करने वाला)

एवं क्रोध पर विजय करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष देवों के निमित्त यज्ञ करे, अग्नि में हवन करे, जप और दान करे॥१०७॥

एवं परिचरेद्देवान् यावज्जीवं समाहितः। तेषां स्वस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति॥१०८॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वर्णाश्रमवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

इस प्रकार जीवन पर्यन्त एकाग्रचित्त होकर देवों की आराधना करे। (ऐसे सत्कर्म के फल स्वरूप) वह उन देवताओं के अचल स्थान में शीघ्र पहुँचता है॥१०८॥

॥श्रीकूर्मपुराण में वर्णाश्रम वर्णनं नाम द्वितीय अध्याय समाप्त॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

वर्णाश्रमक्रमवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वर्णा भगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा। इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणां वद प्रभो॥१॥

ऋषि बोले- हे प्रभो! आपने भगवत् सान्निध्यप्रद चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों का वर्णन किया है। इस समय आप हमें आश्रमों का क्रम बतलाइए॥१॥

श्रीकूर्म उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा। क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ताः कारणादन्यथा भवेत्॥२॥

कूर्म बोले- ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम क्रमशः बतलाये गये हैं। कभी-कभी किसी कारणवश इस क्रम का उल्लंघन भी हो सकता है॥२॥

उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमं गतः। प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्यात्तु यदीच्छेत्परमां गतिम्॥३॥

जिस ब्रह्मचारी को ज्ञान-विज्ञान का बोध और वैराग्य हो जाय और यदि वह परम गति को प्राप्त करने की इच्छा करे तो वह ब्रह्मचर्य आश्रम से ही संन्यास ले सकता है॥३॥

दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखैः। यजेदुत्पादयेत्पुत्रान् विरक्तो यदि संन्यसेत्॥४॥

अन्यथा वह दारग्रहण (विवाह) करके विविध प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करके एवं पुत्रों को उत्पन्न करके वैराग्य होने पर संन्यास ग्रहण करे॥४॥

अनिष्ट्वा विधिवद्यज्ञैरनुत्पाद्य तथात्मजम्। न गार्हस्थं गृही त्यक्त्वा संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विजः॥५॥

विधिपूर्वक यज्ञों का अनुष्ठान किये विना और पुत्रों को उत्पन्न किये विना गृहस्थाश्रम छोड़ कर कोई भी बुद्धिमान् गृहस्थ द्विज संन्यास ग्रहण न करे॥५॥

अथ वैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे। तत्रैव संन्यसेद्विद्वाननिष्ट्वापि द्विजोत्तमः॥६॥

यदि कोई विद्वान् वैराग्य भाव के प्रचण्ड वेग के कारण घर में रहने का साहस नहीं कर पा रहा हो तो वह यज्ञानुष्ठानादि किये विना भी वहीं से संन्यास ग्रहण करे॥६॥

अन्यथा विविधैर्यज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयेत्। तपस्तप्त्वा तपोयोगाद्विरक्तः संन्यसेत् ततः॥७॥

अन्यथा (यदि तीव्र वैराग्य न हो तो) गृहस्थ पुरुष विविध प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान आदि करने के पश्चात् वन में जाकर वानप्रस्थ बनकर वहाँ तपोयोग से तपश्चर्या करते हुए विरक्त हो जाने पर संन्यास ग्रहण करे॥७॥

वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत्पुनः। न संन्यासी वनञ्चाथ ब्रह्मचर्यं च साधकः॥८॥

वानप्रस्थाश्रम में जाकर पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करे और न संन्यासी वानप्रस्थ आश्रम में लौटे और साधक गृहस्थ भी ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश न करे॥८॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा द्विजः[१]। प्रव्रजेत्तु गृही विद्वान् वनाद्वा श्रुतिचोदनात्॥९॥

वेद के निर्देशानुसार विद्वान् द्विजाति को प्राजापत्य इष्टि[१] अथवा आग्नेयी इष्टि (? अग्निष्टोम यज्ञ) को सम्पन्न करके ही गृहस्थ जीवन से संन्यास आश्रम में जाना चाहिए अथवा वानप्रस्थ आश्रम में जाने के पश्चात् संन्यास लेना चाहिए॥९॥

प्रकर्तुमसमर्थोऽपि जुहोति यजतिक्रियाः। अन्धः पङ्गुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद् द्विजः॥१०॥

हवन और यज्ञ करने में असमर्थ (रोगी तथा) अन्धा, पंगु (लंगड़ा) एवं दरिद्र और विरक्त गृहस्थ द्विजाति भी संन्यास ले सकता है॥१०॥

सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासे तु विधीयते। पतत्येवाविरक्तो यः संन्यासं कर्तुमिच्छति॥११॥

संन्यास ग्रहण करने के लिए सभी को संसार से वैराग्य होना आवश्यक है। जो व्यक्ति संसार से विरक्ति के विना ही (भावावेश में) संन्यास की इच्छा करता है (संन्यास लेता है) उसका पतन होता ही है॥११॥

एकस्मिन्नथवा सम्यग्वर्तेतामरणं द्विजः। श्रद्धावानाश्रमे युक्तः सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१२॥

अथवा जो द्विज श्रद्धापूर्वक एक ही आश्रम में निष्ठा के साथ रहते हुए स्वधर्म का सम्यक् रूप से पालन करता है, वह भी अमृतत्त्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है॥१२॥

न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः। स्वधर्मपालको नित्यं ब्रह्मभूयाय कल्पते॥१३॥

न्यायपूर्वक धन अर्जित करने वाला, शान्त प्रकृति का, ब्रह्मविद्या (ब्रह्मज्ञान) में निरत और नित्यमेव स्वधर्म का पालन करने वाला द्विज मोक्ष को प्राप्त करता है॥१३॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसङ्गः कामवर्जितः। प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम्॥१४॥

अपने समस्त कर्मों को परब्रह्म को अर्पित करके आसक्ति रहित होकर निष्काम भाव से और प्रसन्न मन से कर्म करने वाला व्यक्ति परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है॥१४॥

१. प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणणाम्। आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्॥ मनु ६/३८

ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे सम्प्रदीयते। ब्रह्मैव दीयते चेति ब्रह्मार्पणमिदं परम्॥१५॥

जो कुछ देय (देने योग्य) है, उसे परब्रह्म ही देता है और उसे ब्रह्म को ही दिया जाता है और ब्रह्म ही देय वस्तु के रूप में दिया जाता है। यही परं ब्रह्मार्पण है॥१५॥

नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा। एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥१६॥

मैं कर्ता नहीं हूँ और यह सब जो भी सत्कर्म हो रहा है, उसका कर्ता ब्रह्म ही है। इसी भावना को तत्त्वदर्शी ऋषियों ने ब्रह्मार्पण कहा है॥१६॥

प्रीणातु भगवानीशः कर्मणानेन शाश्वतः। करोति सततं बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमिदं परम्॥१७॥

मेरे द्वारा किये जाने वाले इस कर्म से सनातन परमात्मा विष्णु प्रसन्न हों इस प्रकार की बुद्धि से कर्म करना ही परम ब्रह्मार्पण है॥१७॥

यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात्परमेश्वरे। कर्मणामेतदप्याहुर्ब्रह्मार्पणमनुत्तमम्॥१८॥

अथवा सभी कर्मों के फलों को परमेश्वर के प्रति समर्पण करे। इसको भी अति उत्तम ब्रह्मार्पण कहा गया है॥१८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं सङ्गवर्जितम्। क्रियते विदुषा कर्म तद्भवेदपि मोक्षदम्॥१९॥

जो कर्म निश्चित रूप से करना ही है, उस कर्म को विद्वान् व्यक्ति आसक्ति रहित होकर करता है तो वह भी मोक्ष-प्रद होता है॥१९॥

अन्यथा[1] यदि कर्माणि कुर्यान्नित्यमपि द्विजः। अकृत्वा फलसंन्यासं बध्यते तत्फलेन तु॥२०॥

अन्यथा कर्मों को नित्यमेव करने पर भी यदि उनका कर्ता द्विज उन कर्मों के फलों का त्याग (ब्रह्म को समर्पण) न करने पर तो वह स्वयं उन कर्म फलों से बँध जाता है॥२०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रितं फलम्। अविद्वानपि कुर्वीत कर्माप्नोतिचिरात्पदम्॥२१॥

अतः पूरे प्रयत्न के साथ अनासक्त भाव से कर्म फल के प्रति त्याग (अनासक्ति) की भावना से कर्म करने वाला अज्ञानी पुरुष भी कर्म करे तो वह शीघ्र परम पद को प्राप्त करता है॥२१॥

कर्मणा क्षीयते पापमैहिकं पौर्विकं तथा। मनःप्रसादमन्वेति ब्रह्म विज्ञायते नरः॥२२॥

अनासक्त भाव से कर्म करने से मनुष्य का इस जन्म में किया हुआ तथा पूर्व जन्म में किया हुआ पाप भी नष्ट हो जाता है, मन में आह्लाद (प्रसन्नता) होती है और वह मनुष्य ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता है॥२२॥

कर्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग्योगोऽभिजायते। ज्ञानं च कर्मसहितं जायते दोषवर्जितम्॥२३॥

निष्काम कर्म सहित जो ज्ञान होता है, उससे सम्यक्तया योग सिद्ध होता है और कर्म सहित ज्ञान दोष रहित होता है॥२३॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र तत्राश्रमे रतः। कर्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात्॥२४॥

१. अथवा

अतः जो जिस आश्रम में भी रहता हो वह संपूर्ण प्रयत्न पूर्वक परमात्मा की सन्तुष्टि हेतु कर्म करे। उससे वह नैष्कर्म्य (निष्काम कर्म के) भाव को प्राप्त करता है॥२४॥

सम्प्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्म्यं तत्प्रसादतः। एकाकी निर्ममः शान्तो जीवन्नेव विमुच्यते॥२५॥

परम ज्ञान को प्राप्त करके उसके फलस्वरूप निष्काम भाव से कर्म करने वाला एकाकी जीवन व्यतीत करने वाला, ममता (मायामोह) रहित और शान्त स्वभाव वाला मनुष्य जीवन-मुक्त हो जाता है॥२५॥

वीक्षते परमात्मानं परं ब्रह्म महेश्वरम्। नित्यानन्दं निराभासं तस्मिन्नेव लयं व्रजेत्॥२६॥

वह परमात्मा परं ब्रह्म महेश्वर का दर्शन करता है और नित्य आनन्दमय, निराभास परम ब्रह्म में लीन हो जाता है॥२६॥

तस्मात्सेवेत सततं कर्मयोगं प्रसन्नधीः। तृप्तये परमेशस्य तत्पदं याति शाश्वतम्॥२७॥

अतः परमात्मा की सन्तुष्टि हेतु प्रसन्नचित्त होकर निरन्तर कर्मयोग में संलग्न रहे। उसके फलस्वरूप वह परमात्मा के सनातन पद (स्थान) को प्राप्त करता है॥२७॥

एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्। न ह्येतत्समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥२८॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे चातुराश्रम्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

इस प्रकार मैंने आप (सभी मुनियों) को चारों आश्रमों का उत्तम वर्णन कर दिया है। चारों आश्रमों के इस क्रम का अतिक्रमण करके कोई मनुष्य सिद्धि को नहीं पा सकता है॥२८॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'चतुराश्रमकथन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥३॥

❖❖❖

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्राकृतसर्ग-वर्णनम्

सूत उवाच

श्रुत्वाऽऽश्रमविधिं कृत्स्नमृषयो हृष्टचेतसः। नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्रुवन्॥१॥

सूत जी बोले- आश्रम सम्बन्धी सम्पूर्ण विधि विधानों को सुनकर प्रसन्नचित्त ऋषि-मुनियों ने हृषीकेश भगवान् विष्णु को नमस्कार करके पुनः यह कहा॥१॥

मुनय ऊचुः

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्। इदानीं श्रोतुमिच्छामो यथा सम्भवते जगत्॥२॥

कुतः सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेष्यति। नियन्ता कश्च सर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम॥३॥

मुनि बोले- हे भगवन् आपने चारों आश्रमों का उत्तम वर्णन कर दिया है। इस समय हम यह सुनना चाहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् कैसे उत्पन्न हुआ और किसमें विलय होगा और इसका नियन्ता (संचालन और नियन्त्रण करने वाला) कौन है? हे पुरुषोत्तम! यह हमें बतलाइए॥२-३॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्मरूपधृक्। प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवोऽव्ययः॥४॥

कूर्म रूप धारी सभी प्राणियों के जनक अविनाशी नारायण ने ऋषियों के वचन सुनकर गम्भीर वाणी में यह कहा॥४॥

श्रीकूर्म उवाच

महेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्व्यूहः सनातनः। अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता सर्वतोमुखः॥५॥

कूर्म ने कहा- महेश्वर अव्यक्त स्वरूप वाले परात्पर, चतुर्व्यूह रूप, सनातन, अनन्त, अप्रमेय, जगत् के नियन्ता और चारों ओर मुख वाले हैं॥५॥

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्। प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥६॥

वह अव्यक्त रूप वाले जगत् के कारण (सृष्टि के जनक), नित्य विद्यमान और सत् (विद्यमान) होते हुए भी असत् (अमूर्त) भी हैं। उन्हीं परमात्मा को तत्त्व-चिन्तकों ने प्रधान (पुरुष) तथा प्रकृति भी कहा है॥६॥

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्। अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥७॥

वह गन्ध, वर्ण और रस से रहित, शब्द-और स्पर्श गुण से रहित, अजर, ध्रुव (अटल), अविनाशी, नित्य विद्यमान और अपनी आत्मा में स्थित हैं॥७॥

जगद्योनिर्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम्। विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठितं महत्॥८॥

वह जगत् की उत्पत्ति के मूल स्रोत, महाभूत, सनातन, परब्रह्म, सभी प्राणियों के विग्रह (मूर्त रूप) में स्वयं विद्यमान और महत् तत्त्व रूप में स्थित हैं॥८॥

अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्। असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत॥९॥

वह अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म, त्रिगुण (सत्व, रज और तमोगुण युक्त), प्रभव (सृष्टिकर्ता), अव्यय (अविनाशी), असाम्प्रत (त्रिकालव्यापी, शाश्वत, सनातन) और अविज्ञेय ब्रह्म ही आदि काल में विद्यमान था॥९॥

गुणसाम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे वात्मनि स्थिते। प्राकृतः प्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भवः॥१०॥

उस आदिकालीन गुणत्रय की साम्यावस्था में जब वह परम पुरुष परमात्मा स्वयं की आत्मा में स्थित था और जब तक विश्व का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, तब तक की अवस्था को प्राकृत प्रलय जानना चाहिए॥१०॥

ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता ह्यहः सृष्टिरुदाहृता। अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः॥११॥

उस प्राकृत प्रलय काल को ब्रह्मा की रात्रि कहा गया है और सृष्टि को ब्रह्मा का दिन कहा गया है। वस्तुतः उस सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का न तो कोई दिन होता है और न रात्रि॥११॥

निशान्ते प्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान्। सर्वभूतमयोऽव्यक्तो ह्यन्तर्यामीश्वरः परः॥१२॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वरः। क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः॥१३॥

रात्रि (ब्रह्मा की रात्रि) बीतने पर जगत् के आदि कारण अनादि (जिनसे पहले अन्य कोई नहीं था), सर्वभूतमय, अव्यक्त, अन्तर्यामी परमेश्वर ने प्रकृति और पुरुष में प्रवेश करके परम योगबल से उनको [सृष्टिकार्य हेतु] क्षुब्ध (उत्तेजित) किया था॥१२-१३॥

यथा मदो नरस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः। अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्तिमान्॥१४॥

जिस प्रकार कामोन्माद एवं वसन्त ऋतु की वायु स्त्री-पुरुषों को परस्पर मिलन हेतु प्रेरित करता है। हे विप्रो! तद्वत् वह परमात्मा भी प्रकृति और पुरुष में उत्तेजना करने के लिए प्रविष्ट हुआ था॥१४॥

स एव क्षोभको विप्राः क्षोभ्यश्च परमेश्वरः। स सङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वे व्यवस्थितः॥१५॥

हे विप्रो! वह परमात्मा ही क्षुब्ध (उत्तेजित) करने वाला है और वही क्षुब्ध होने वाला भी है। संसार की सृष्टि और संहार (प्रलय) करने के कारण उसे प्रधान भी कहा जाता है॥१५॥

प्रधानात्क्षोभ्यमानाच्च तथा पुंसः पुरातनात्। प्रादुरासीन्महद्बीजं प्रधानपुरुषात्मकम्॥१६॥

उस प्रधान (प्रकृति) तथा पुरातन पुरुष के क्षुब्ध (उत्प्रेरित) किये जाने पर प्रकृति- पुरुषात्मक महद्बीज का प्रादुर्भाव हुआ था॥१६॥

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः। प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः संविदेतस्मादिति तत्स्मृतम्॥१७॥

वह महद्बीज ही महत् (महान्), आत्मा, मति (बुद्धि), ब्रह्मा, प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, धृति, स्मृति और संवित् कहलाता है॥१७॥

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः। त्रिविधोऽयमहङ्कारो महतः संबभूव ह॥१८॥

उस महत् तत्त्व से पञ्च भूतों का आदि स्रोत वैकारिक, तैजस और तामस संज्ञक त्रिविध अहंकार उत्पन्न हुआ था॥१८॥

अहङ्कारोऽभिमानश्च कर्ता मन्ता च स स्मृतः। आत्मा च पुद्गलो जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥१९॥

उस अहंकार को अभिमान, कर्ता, मन्ता, आत्मा, पुद्गल और जीव भी कहा गया है। उसी से प्रेरित होकर समस्त सृष्टि प्रक्रिया प्रारम्भ होती है॥१९॥

पञ्चभूतान्यहङ्कारात्तन्मात्राणि च जज्ञिरे। इन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं तस्यात्मजं जगत्॥२०॥

अहंकार से पञ्च तनमात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध), पञ्च महाभूत, सभी इन्द्रियाँ और उनकी अधिष्ठातृ देवताओं सहित सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ था॥२०॥

मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तं विकारः प्रथमः स्मृतः। येनासौ जायते कर्ता भूतादींश्चानुपश्यति॥२१॥

मन को अव्यक्त (मूल प्रकृति) से उत्पन्न कहा गया है। वह सर्व प्रथम प्रकट होने वाला विकार है। वह कर्ता और पञ्च भूतों का द्रष्टा भी है॥२१॥

वैकारिकादहङ्कारात्सर्गो वैकारिकोऽभवत्। तैजसानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश॥२२॥

वैकारिक अहंकार से वैकारिक सृष्टि हुई थी। तैजस अहंकार से दश इन्द्रियों (पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रियों) का प्रादुर्भाव हुआ था। इनके दस अधिष्ठातृ देवता वैकारिक हैं॥२२॥

एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्। भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवद् द्विजा[1]ः॥२३॥

दश इन्द्रियों के साथ ग्यारहवाँ मन है जो उभयात्मक[2] (ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के गुणों से युक्त) होता है। इन भूतादि से ही पञ्च भूतों की सृष्टि हुई थी॥२३॥

भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह। आकाशो जायते तस्मात्तस्य शब्दो गुणो मतः॥२४॥

भूतादि संज्ञक तामस अहंकार में विकार उत्पन्न होने पर शब्द तन्मात्रा की सृष्टि हुई थी और उस शब्द तन्मात्रा से आकाश बना था। वह शब्द गुण वाला है॥२४॥

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह। वायुरुत्पद्यते तस्मात्तस्य स्पर्शो गुणो मतः॥२५॥

आकाश में विकार आने पर उससे स्पर्श तन्मात्रा का आभिर्भाव हुआ और उस स्पर्श तन्मात्रा से वायु उत्पन्न हुआ, जो स्पर्श गुण वाला था॥२५॥

वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह। ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते॥२६॥

वायु में विकार आने पर रूप-तन्मात्रा प्रकट हुई थी तो उससे ज्योति (अग्नि) प्रकट हुआ, जिसको रूप गुण वाला कहा जाता है॥२६॥

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह। सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च॥२७॥

ज्योति (अग्नि) में विकार आने पर उससे रस तन्मात्रा का जन्म हुआ और उस रस तन्मात्रा से जल प्रकट हुआ था, जो कि रस का आधार है॥२७॥

आपश्चापि विकुर्वाणा गन्धमात्रं ससर्जिरे। सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः॥२८॥

जल में विकार आने पर गन्ध तन्मात्रा की सृष्टि हुई, जिसके घनीभूत होने पर पृथिवी तत्त्व का आविर्भाव हुआ, जो गन्धगुण से युक्त था॥२८॥

आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत्। द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत्॥२९॥

शब्द तन्मात्रा वाले आकाश ने स्पर्श तन्मात्रा को आवृत किया, जिससे वायु शब्द और स्पर्श संज्ञक दो गुणों से युक्त हो गया था॥२९॥

रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शौ गुणावुभौ। त्रिगुणः स्यात्ततो वह्निः स शब्दस्पर्शरूपवान्॥३०॥

शब्द और स्पर्श संज्ञक दोनों गुण रूप में समाहित हो गये थे, जिससे अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप संज्ञक तीनों गुणों से युक्त होता है॥३०॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसमात्रं समाविशत्। तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः॥३१॥

---

१. प्रजाः पाठान्तर

२. ज्ञानेन्द्रिय के रूप में मन सुख-दुःखादि का ज्ञान कराता है और कर्मेन्द्रिय के रूप में कोई बात या काम करने या न करने के विषय में निर्णय लेता है।

तब शब्द, स्पर्श और रूप भी रस-तन्मात्रा में समाविष्ट हुए थे। अतः रसात्मक जल को शब्द, स्पर्श, रूप और रस इन चार गुणों से युक्त जानना चाहिए॥३१॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धं समाविशत्। तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शब्द्यते॥३२॥

शब्द, स्पर्श, रूप और रस जब गन्ध तन्मात्रा में प्रविष्ट हुए तब पाँच गुणों से युक्त पृथिवी बनी थी, जिसको स्थूल पञ्च महाभूतों में अन्यतम कहा जाता है॥३२॥

शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः। परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम्॥३३॥

ये आकाशादि पञ्च महाभूत शान्त, घोर, मूढ और विशेष (?) कहे गये हैं। ये परस्पर एक-दूसरे में अनुप्रविष्ट होकर एक-दूसरे को धारण करते हैं॥३३॥

एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात्। नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः॥३४॥

ये सात महात्मा (महत् अहंकार और आकाशादि पञ्च महाभूत) एक-दूसरे का आश्रय लेने पर भी पूर्णतः मिले विना प्रजाओं की सृष्टि करने में समर्थ नहीं थे॥३४॥

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च। महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते॥३५॥

परम् पुरुष (परमात्मा) से अधिष्ठित अर्थात् सम्मिलित रहने से तथा अव्यक्त (परमात्मा) के अनुग्रह से महत् तत्त्व से लेकर पञ्चभूत पर्यन्त विशेष तत्त्व मिलकर ही अण्डे को उत्पन्न करते हैं॥३५॥

एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्। विशेषेभ्योऽण्डमभवद्बृहत्तदुदकेशयम्॥३६॥

जैसे जल में बुलबुले उठते हैं, उसी प्रकार पञ्च महाभूतों के मिलन से जल में शयन करने वाला बृहत् आकार का अण्ड उत्पन्न हुआ था॥३६॥

तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धं[1] परमेष्ठिनः। प्रकृतेऽण्डे विवृत्तः स[2] क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः॥३७॥

उस विराट अण्ड में परमात्मा के कार्य का साधन सिद्ध (पूर्ण) हो गया था। उस प्राकृत अण्ड से ब्रह्म संज्ञक क्षेत्रज्ञ प्रकट हुआ था॥३७॥

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते। आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत॥३८॥

वह सर्वप्रथम शरीर-धारी था, जिसको पुरुष कहते हैं। वह प्राणियों की आदि सृष्टि का कर्ता ब्रह्मा सर्वप्रथम आविर्भूत हुआ था॥३८॥

यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात्परतः स्थितम्। हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्तिं सनातनम्॥३९॥

प्रधान तत्त्व से परे स्थित उन परम पुरुष ब्रह्मा को हंस, हिरण्यगर्भ, कपिल, छन्दोमूर्ति और सनातन कहा गया है॥३९॥

मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्चापि पर्वताः। गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्परमात्मनः॥४०॥

उस परमात्मा का उल्ब (गर्भ को वेष्टित करने वाला चर्म) मेरु पर्वत था, पर्वत उसके जरायु (भ्रूण की ऊपरी झिल्ली) थे तथा समुद्र उसके गर्भ में स्थित जल थे॥४०॥

तस्मिन्नण्डेऽभवद्विश्वं सदेवासुरमानुषम्। चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना॥४१॥

१. संसिद्धिः २. विवृद्धे तु

उस अण्ड में देवों, असुरों, मनुष्यों सहित चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र और सभी ग्रह एवं वायु सहित सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ था॥४१॥

अद्भिर्दशगुणादिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम्। आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः॥४२॥
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनावृतम्। आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिना वृतम्॥४३॥
भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्। एते लोका महात्मानः सर्वे तत्त्वाभिमानिनः॥४४॥
वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मनो व्यवस्थिताः। ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः॥४५॥
सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः। एतैरावरणैरण्डं प्राकृतैः सप्तभिर्वृतम्॥४६॥

उस अण्ड के दशगुना अधिक जल से वह (अण्ड) बाहर से आवृत (घिरा हुआ) है तथा वह जल भी उसके दश गुना अधिक तेज (अग्नि तत्त्व) से आवृत (ढका) हुआ है तथा वह तेज बाहर से दश गुना वायु से आवृत है और वायु आकाश से आवृत है और आकाश भूतादि (पञ्च भूतों) से आवृत है और भूतादि महत् तत्त्व से आवृत हैं। महत् तत्त्व अव्यक्त से आवृत (आच्छादित) है। (पीछे श्लोक ४१ में कथित सूर्य, चन्द्र आदि तथा देव, असुर, मानव आदि के) ये सभी लोक तत्त्वाभिमानी हैं। इन लोकों में उन्हीं के समान तत्त्व वाले पुरुष रहते हैं जो उन लोकों से तादात्म्य वाले सम्यक् व्यवस्थित, ऐश्वर्य सम्पन्न, योग परायण, तत्त्व चिन्तक, सर्वज्ञ, शान्त, रजोगुण वाले, नित्य प्रसन्न चित्त वाले होते हैं। वह अण्ड (ब्रह्माण्ड पीछे श्लोक ४२ से ४४ में कथित) प्राकृत तत्त्वों से आवृत (घिरा हुआ) है॥४२-४६॥

एतावच्छक्यते वक्तुं मायैषा गहना द्विजाः। एतत्प्राधानिकं कार्यं यन्मया बीजमीरितम्।
प्रजापतेः परा मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः॥४७॥

हे ब्राह्मणो! इस सृष्टि क्रिया के विषय में यही कहा जा सकता है कि यह माया बहुत गहन है। जो मैंने बीज रूप में अभी कहा वह प्रधान (प्रकृति) का कार्य है। यह माया जिसे प्रकृति भी कहा गया है, वह प्रजापति की ही मूर्ति (स्वरूप) है, ऐसा वेदों में कहा गया है॥४७॥

ब्रह्माण्डमेतत्सकलं सप्तलोकतलान्वितम्। द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः॥४८॥

पृथिवी आदि सात लोकों तथा सात पातालों सहित यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तो परमेष्ठी देव ब्रह्मा का दूसरा शरीर है॥४८॥

हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डजः। तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः॥४९॥

वेदार्थ के ज्ञाता यह बतलाते हैं कि स्वर्णिम अण्ड से प्रकट हुए हिरण्यगर्भ ही अन्य नाम वाले ब्रह्मा जी भगवान् का तीसरे रूप हैं॥४९॥

रजोगुणमयं चान्यद्रूपं तस्यैव धीमतः। चतुर्मुखस्तु भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्तते॥५०॥

महाबुद्धिमान् भगवान् ब्रह्मा का जो चार मुखों वाला अन्य रूप है, वही जगत् सृष्टि के कार्य में प्रवृत्त होता है॥५०॥

सृष्टं च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः। सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम्॥५१॥

ब्रह्मा के द्वारा रची गयी सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा विश्वात्मा, विश्वतोमुख (सर्वदर्शी), विश्वेश्वर, विष्णु सत्त्वगुण का आश्रय लेकर स्वयं करते हैं॥५१॥

अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत्॥५२॥

अन्तकाल में स्वयं परमात्मा ही सर्वात्मा देव रुद्र रूप में तमोगुण का आश्रय लेकर जगत् का संहार करते हैं॥५२॥

एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः। सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः।
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा गुणैः॥५३॥

वह महादेव एक होते हुए भी तथा निर्गुण और निरञ्जन होते हुए भी सृष्टि, रक्षा (पालन) तथा प्रलय करने के तीन गुणों के कारण तीन देवों के रूप में प्रकट होते हैं। वह अनेक गुणों के कारण कभी एक, कभी दो, कभी तीन तथा कभी अनेक रूप वाले हो जाते हैं॥५३॥

योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च। नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया॥५४॥
हिताय चैव भक्तानां स एव ग्रसते पुनः। त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये सम्प्रवर्तते।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषतः॥५५॥

वह योगेश्वर परमात्मा अपनी लीला से भक्तों का हित करने के लिए नाना आकृतियों, नाना रूपों और नाना क्रियाओं को करने में सक्षम शरीरों को धारण करता है (और दुष्टों का) संहार भी करता है। वह परमात्मा स्वयं को भक्तों के हित में त्रिधा (तीन रूपों में) विभक्त करके तीनों लोकों में विचरण करता है। वह जगत् की सृष्टि करता है, संहार करता है और विशेषतः देख-रेख (पालन) करता है॥५४-५५॥

यस्मात्सृष्ट्वाऽनुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः। गुणात्मकत्वात् त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते॥५६॥

वह परमात्मा प्रजाओं की सृष्टि करके उनका पालन करता है और पुनः संहार भी करता है। वह एक ही परमात्मा तीनों कालों में तीन गुणों वाला होता है। अतः उसे एक (अद्वैत) कहा जाता है॥५६॥

अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतः सनातनः। आदित्वादादिदेवोऽसौ अजातत्वादजः स्मृतः॥५७॥

वह सनातन परमात्मा प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ के रूप में प्रकट हुआ था। आदिकाल में प्रकट होने पर उसको आदिदेव और अजन्मा होने के कारण अज कहा गया है॥५७॥

पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः। देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः॥५८॥

वह सभी प्रजाओं की रक्षा करता है, अतः प्रजापति कहलाता है। वह सभी देवों से महान् है, अतः महादेव कहलाता है॥५८॥

बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात्परमेश्वरः। वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः॥५९॥

बृहत्काय होने के कारण वह ब्रह्मा कहलाता है और परमोत्तम होने के कारण वह परमेश्वर

कहलाता है। सबको वशीभूत करने के कारण तथा स्वयं किसी के वशीभूत न होने के कारण उस देव को ईश्वर कहा जाता है॥५९॥

ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वहरो यतः।
अनुत्पादाच्च पूर्वत्वात्स्वयंभूरिति स स्मृतः॥६०॥

सर्वत्रगामी होने के कारण वह परमात्मा ऋषि कहलाता है और सर्व संहारकर्ता होने के कारण हरि कहलाता है। किसी अन्य के द्वारा उत्पन्न नहीं किये जाने के कारण और सर्वप्रथम स्वयं उत्पन्न होने के कारण उस परमात्मा को स्वयंभू कहा गया है॥६०॥

नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः। हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते॥६१॥

नरों (मनुष्यों) का आश्रय स्थान होने के कारण वह नारायण कहलाता है। संसार का हरणकर्ता होने से वह हर और सर्वव्यापी होने के कारण विष्णु कहलाता है॥६१॥

भगवान्सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः। सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः॥६२॥

सर्वविधि ज्ञान वाला होने से वह भगवान् कहलाता है और रक्षा करने के कारण 'ओ३म्' कहलाता है। सर्वज्ञाता होने के कारण वह सर्वज्ञ कहलाता है और सर्वमय होने के कारण सर्व कहलाता है॥६२॥

शिवः स्यान्निर्मलो यस्माद्विभुः सर्वगतो यतः।
तारणात्सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते॥६३॥

वह प्रमात्मा निर्मल होने के कारण शिव और सर्वत्र व्याप्त होने के कारण विभु तथा सभी दुःखों से तारने (उद्धार करने) के कारण तारक कहलाता है॥६३॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत्। अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः॥६४॥

बहुत कहने से क्या लाभ। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है। परमेश्वर अनेक रूपों में अवतार लेकर नानाविध क्रीडा (लीला) करता है॥६४॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात्कथितो मया। अबुद्धिपूर्विको विप्रा ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत॥६५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे प्राकृतसर्गवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

हे ब्राह्मणो! यह मैंने परमात्मा के द्वारा अबुद्धिपूर्वक की गयी प्राकृत सृष्टि का वर्णन किया है। अब आप ब्राह्मी सृष्टि का वर्णन सुनें॥६५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'प्राकृतसर्गवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कालमानविवरणम्

श्रीकूर्म उवाच

स्वयम्भुवो व्यतीतस्य[१] कालसंख्या द्विजोत्तमाः। न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम्॥१॥

कूर्म बोले- हे श्रेष्ठ द्विजो! स्वयंभू ब्रह्मा के व्यतीत हुए काल की गणना स्वयं ब्रह्मा के द्वारा सैकड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती॥१॥

कालसंख्या समासेन परार्द्धद्वयकल्पिता। स एव स्यात्परः कालस्तदन्ते प्रतिसृज्यते[२]॥२॥

काल की अधिकतम संख्या संक्षेप में दो परार्ध कल्पित की गयी है। वही परम काल है। उस काल के बीत जाने पर प्रलय होती है॥२॥

निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्। तत्पराख्यं तदर्धञ्च परार्द्धमभिधीयते॥३॥

स्वयं ब्रह्मा के काल-मान के अनुसार उनकी आयु एक सौ वर्ष की होती है। उस आयु को 'पर' कहते हैं तथा उस आयु के आधे को परार्ध कहते हैं॥३॥

काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः। काष्ठास्त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्तिकी गतिः[३]॥४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! पन्द्रह निमेष (आँख झपकने का समय) की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठा की एक कला होती है और तीस कला का एक मुहूर्त होता है॥४॥

तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्। अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥५॥

उतनी ही संख्या (तीस) मुहूर्त का मनुष्यों का एक अहोरात्र (रात और दिन) होता है। तीस अहोरात्रों का एक मास होता है। एक मास में दो पक्ष (शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष) होते हैं॥५॥

तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे। अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥६॥

छः मास का एक अयन होता है। एक वर्ष में दो अयन- दक्षिणायन और उत्तरायण होते हैं। दक्षिणायन देवों की रात्रि और उत्तरायण उनका दिन होता है॥६॥

दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्। चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत॥७॥

बारह हजार दिव्य वर्षों का सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग संज्ञक चार युगों का चतुर्युग होता है। उसके विभागों को सुनो॥७॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्। तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु॥८॥

चार हजार वर्षों का कृतयुग (सत्ययुग) होता है और उतने ही सौ वर्षों अर्थात् चार सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश (सन्धिकाल) होता है॥८॥

त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात्। अंशकं षट्शतं तस्मात्कृतसन्ध्यांशकैर्विना॥९॥

---

१. विवृत्तस्य, २. सृज्यते पुनः, ३. तु०- मनु १/६४

कृतयुग (सत्ययुग) के सन्ध्यांश के अतिरिक्त अन्य (त्रेता द्वापर कलि) युगों की सन्ध्या और सन्ध्यांश क्रमशः तीन सौ, दो सौ और एक सौ वर्ष के होते हैं। इस प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांश छः सौ वर्षों के होते हैं॥९॥

त्रिद्व्येकसाहस्रमितो[१] विना सन्ध्यांशकेन तु। त्रेताद्वापरतिष्याणां कालज्ञाने प्रकीर्तितम्॥१०॥

कालज्ञान में सन्ध्या और सन्ध्यांश के अतिरिक्त त्रेता, द्वापर और कलियुग का समय क्रमशः तीन, दो और एक सहस्र दिव्य युग बतलाया गया है॥१०॥

एतद् द्वादशसाहस्रं साधिंक परिकल्पितम्। तदेकसप्ततिगुणं मनोरन्तरमुच्यते॥११॥

इस प्रकार एक चतुर्युग बारह हजार वर्ष से कुछ अधिक दिव्य वर्षों का परिकल्पित किया गया है। उसके इकहत्तर गुना अधिक दिव्य वर्षों का एक मन्वन्तर होता है॥११॥

ब्रह्मणो दिवसे विप्रा मनवःस्युश्चतुर्दश। स्वायम्भुवादयः सर्वे ततः सावर्णिकादयः॥१२॥

ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। वे सब स्वायम्भुव मनु से लेकर वैवस्वत मन्वन्तर तक सात और उसके आगे के भविष्यत् कालीन सावर्णि मनु आदि हैं॥१२॥

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता। पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः॥१३॥

उन चौदह मन्वन्तरों के अधिकारी मनुओं के द्वारा पर्वतों सहित सात द्वीपों वाली इस पृथिवी का सहस्र युगों तक पूर्णतः पालन किया जाता है॥१३॥

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै। व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पे कल्पे न चैव हि॥१४॥

एक मन्वन्तर के वर्णन में जो स्थितियाँ होती हैं, वही सभी मन्वन्तरों में और एक कल्प की जैसी स्थितियाँ भी निःसन्देह सभी कल्पों में होती हैं॥१४॥

ब्राह्ममेकमहः कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते। चतुर्युगसहस्रं तु कल्पमाहुर्मनीषिणः॥१५॥

ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प की अवधि का होता है और उतनी ही (एक कल्प की) ब्रह्मा की रात्रि भी होती है। विद्वानों ने कहा है कि एक हजार चतुर्युगी का एक कल्प होता है॥१५॥

त्रीणि कल्पशतानि स्युस्तथा षष्टिर्द्विजोत्तमाः।
ब्रह्मणो वत्सरस्तज्ज्ञैः कथितो वै द्विजोत्तमाः।
स च कालः शतगुणः परार्धं चैव तद्विदुः॥१६॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! तीन सौ साठ कल्पों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है और ब्रह्मा के सौ वर्षों की अवधि को 'पर' कहते हैं॥१६॥

तस्यान्ते सर्वतत्त्वानां स्वहेतौ प्रकृतौ लयः। तेनायं प्रोच्यते सद्भिः प्राकृतः प्रतिसञ्चरः॥१७॥

'पर' नामक उस कालावधि के अन्त में सभी तत्त्व अपने उद्भव के स्रोत प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। ऐसी स्थिति को विद्वानों ने प्राकृत प्रलय कहा है॥१७॥

ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौ लयः। प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः॥१८॥

१. त्रिद्वयेकधा च साहस्रं

ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों देवों का (कल्पान्तावधि के अन्त में) प्रकृति में लय हो जाता है और कालान्तर में सुयोग आने पर उनका पुनः प्रादुर्भाव होता है॥१८॥

एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शङ्करः। कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः॥१९॥

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव और अन्य प्राणी काल के द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं और काल ही उन्हें पुनः ग्रस्त करता है॥१९॥

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः। सर्वगत्वात्स्वतन्त्रत्वात्सर्वात्मत्वान्महेश्वरः॥२०॥

यह काल रूपी भगवान् अनादि, अनन्त, अजर, अमर है। यह सर्वत्रगामी, स्वतन्त्र और सबका आत्मा स्वरूप होने के कारण महेश्वर कहलाता है॥२०॥

ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादयः। एको हि भगवानीशः कालः कविरिति श्रुतिः॥२१॥

देवता तो अनेक हैं, किन्तु वास्तव में (प्रमुख) भगवान् तो एक ही है, जिसको ईश, काल और कवि कहा जाता है, ऐसा श्रुति (वेद) का वचन है॥२१॥

एकमत्र व्यतीतं तु परार्धं ब्रह्मणो द्विजाः। साम्प्रतं वर्तते त्वर्धं तस्य कल्पोऽयमष्टमः॥२२॥

हे ब्राह्मणो! ब्रह्मा का एक परार्ध बीत गया है। अब ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध का आठवां कल्प चल रहा है॥२२॥

योऽतीतः सोऽन्तिमः कल्पः पाद्म इत्युच्यते बुधैः। वाराहो वर्तते कल्पस्तस्य वक्ष्यामि विस्तरम्॥२३॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे कालसंख्याकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

ब्रह्मा का जो अन्तिम (सातवाँ) कल्प व्यतीत हो चुका है, उसे विद्वानों ने पाद्मकल्प कहा है। वर्तमान समय में वाराह कल्प चल रहा है। उसका मैं विस्तार से वर्णन करूँगा॥२३॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'कालसंख्याकथन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

वराहकृत पृथिव्युद्धारः

श्री कूर्मउवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्। शान्तवातादिकं सर्वं न प्रज्ञायत किञ्चन॥१॥

कूर्म बोले- सृष्टि के पूर्व एकमात्र घोर अन्धकार-पूर्ण समुद्र विद्यमान था। उस समय वायु आदि सब कुछ शान्त था और कुछ भी ज्ञात नहीं होता था॥१॥

एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे। तदा समभवद् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥२॥

उस एकार्णव (एक मात्र समुद्र) में तब सम्पूर्ण चराचर जगत् नष्ट हो गया था। तभी सहस्र आँखों एवं सहस्र चरणों वाले ब्रह्मा प्रकट हुए थे॥२॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः। ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥३॥

तब वह सहस्र शिरों वाले, सुवर्ण (सोना) के समान वर्ण वाले नारायण नामक अतीन्द्रिय पुरुष ब्रह्मा उस समुद्र जल में सो गये थे॥३॥

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति। ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाव्ययम्॥४॥

जगत् के सृष्टिकर्ता अव्यय (अविनाशी) ब्रह्म-स्वरूपी देव नारायण के विषय में यह (आगे का) श्लोक कहा जाता है॥४॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ता यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः॥५॥

'आप्' (जल) को 'नार' कहा जाता है। वह आप 'नर' (विष्णु) से उत्पन्न हुए हैं। वह 'नार' भगवान् विष्णु के अयन (आवास) भी हैं। अतः विष्णु को नारायण कहा जाता है॥५॥

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः। शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात्॥६॥

उस जल में सहस्र युगों के बराबर रात्रि का समय व्यतीत करने के बाद वह नारायण सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं॥६॥

ततस्तु सलिले तस्मिन्विज्ञायान्तर्गतां महीम्। अनुमानात्तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः॥७॥
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः। अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम्॥८॥

तब पृथिवी को समुद्र जल में डूबी हुई जानकर प्रजापति कहलाने वाले विष्णु ने उसके उद्धार का अनुमान करके जल-क्रीड़ा में निपुण सुन्दर वाराह का रूप धारण किया जो अन्य किसी के द्वारा भी अधृश्य (अजेय) और ब्रह्मसंज्ञक एवं वाङ्मय अर्थात् शब्द करने वाला था॥७-८॥

पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम्। दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः॥९॥

आत्मा के आधार और धरा को धारण करने वाले वाराह रूपधारी भगवान् ने पृथिवी के उद्धार हेतु रसातल में प्रवेश करके अपने दंष्ट्रा (दाढ) से उसे उठाकर बाहर निकाला था॥९॥

दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथ्वीं प्रथितपौरुषम्। अस्तुवन्जनलोकस्थाः सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम्॥१०॥

उनके दंष्ट्रा में रखी हुई पृथिवी को देखकर जनलोक निवासी सिद्धों एवं ब्रह्मर्षियों ने विख्यात पौरुष वाले वराहरूपी विष्णु की स्तुति की थी॥१०॥

ऋषय ऊचुः

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने। पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च॥११॥

ऋषि बोले- देवाधिदेव, परमेष्ठी, परब्रह्म, पुराण पुरुष सनातन और विजयी रहने वाले परमेश्वर को नमस्कार है॥११॥

नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने। नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने॥१२॥

स्वयंभू, जगत्स्रष्टा, सर्वार्थ ज्ञाता, हिरण्यगर्भ, विधाता, परमात्मा को नमस्कार है॥१२॥

नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये। नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे॥१३॥

वासुदेव, विष्णु, विश्व के स्रष्टा, नारायण, देवों के हितकारी देव को नमस्कार है॥१३॥

नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र शार्ङ्गचक्रासिधारिणे। सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थाय नमो नमः॥१४॥

शार्ङ्ग धनुष, चक्र और तलवार धारण करने वाले, समस्त प्राणियों के आत्मा में रहने वाले, कूटस्थ चतुर्मुख देव आपको नमस्कार है॥१४॥

नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये। नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे॥१५॥

वेद के रहस्य स्वरूप, वेद के जनक, बुद्ध, शुद्ध और ज्ञानरूपी देव को नमस्कार है॥१५॥

नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतां नमः। अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च॥१६॥

आनन्दरूप, जगत् के साक्षी, अनन्त, अप्रमेय, कार्य और कार्य के साधन रूप आपको नमस्कार है॥१६॥

नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः। नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः॥१७॥

पञ्चभूत-स्वरूप और पञ्चभूतों के आत्मा आपको नमस्कार है। मूल प्रकृति रूप और माया रूप आपको नमस्कार है॥१७॥

नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे। नमो योगाधिगम्याय नमः सङ्कर्षणाय ते॥१८॥

हे वराहरूप और मत्स्य रूपधारी आपको नमस्कार है। योग के द्वारा ज्ञात होने योग्य देव आपको नमस्कार है। हे संकर्षण आपको नमस्कार है॥१८॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं त्रिधाम्ने दिव्यतेजसे। नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभागिने॥१९॥

तीन मूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) वाले, तीन धामों वाले, दिव्य तेज वाले आपको नमस्कार है। हे सिद्ध, पूज्य और गुणत्रय का विभाजन करने वाले देव! आपको नमस्कार है॥१९॥

नमोऽस्त्वादित्यरूपाय नमस्ते पद्मयोनये। नमोऽमूर्ताय मूर्ताय माधवाय नमो नमः॥२०॥

आदित्यस्वरूप वाले हे पद्मयोनि आपको नमस्कार है। अमूर्त और मूर्त रूप वाले देव आपको नमस्कार है। हे माधव! आपको नमस्कार है॥२०॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव लयमेष्यति। पालयैतज्जगत्सर्वं त्राता त्वं शरणं गतिः॥२१॥

आपने ही अखिल विश्व की सृष्टि की है और आप ही में इसका लय होगा। आप इस सम्पूर्ण जगत् का पालन करें। आप ही रक्षक हैं और शरणदाता और परम गति हैं॥२१॥

इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकाद्यैरभिष्टुतः। प्रसादमकरोत्तेषां वराहवपुरीश्वरः॥२२॥

सनक आदि के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर वराह रूप धारी भगवान् विष्णु ने उन पर कृपा की थी॥२२॥

ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः। मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा प्रजापतिः॥२३॥

तब पृथिवी को धारण करने वाले वराह भगवान् ने पृथिवी को उसके स्थान में लाकर स्थापित करके मन से अपने वराह रूप को त्याग दिया था॥२३॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता। विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम्॥२४॥

उस समुद्र की अगाध जल राशि के ऊपर पृथिवी एक विशाल नौका के समान स्थित हो गयी थी। अपने विस्तृत आकार के कारण यह पृथिवी (समुद्र की बाढ़ में) बहती या डूबती नहीं है॥२४॥

पृथिवीं स समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्। प्राक् सर्गदग्धानखिलान् ततः सर्गेऽदधन्मनः॥२५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे पृथिव्युद्धारे षष्ठोऽध्यायः॥६॥

तब भगवान् विष्णु ने पृथिवी को समतल करके पूर्वकालीन सृष्टि में दग्ध हुए सभी पर्वतों को लाकर उस पृथिवी के ऊपर रखा था और तदनन्तर सृष्टि करने में अपना मन लगाया था॥२५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'पृथ्वी-उद्धार' नामक छठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥६॥

❖❖❖

अथ सप्तमोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

श्रीकूर्म उवाच

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा। अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥१॥

कूर्म बोले- वह ब्रह्मा जब पूर्वकालीन कल्पों के समान सृष्टि करने के विषय में विचार कर रहे थे तभी उनके द्वारा अबुद्धिपूर्वक (उचित विचार किये बिना) तमोमय (अन्धकारपूर्ण) सृष्टि की रचना हो गयी थी॥१॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः। अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः॥२॥

उन महात्मा प्रजापति से तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध संज्ञक पञ्चपर्वा (पञ्च विध) अविद्या प्रकट हुई थी॥२॥

पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः। संवृतस्तमसा चैव बीजकुम्भवदावृतः॥३॥

सृष्टि के अभिमानी प्रजापति के द्वारा ध्यान किये जाने पर आवृत्त (ढके हुए) बीज-पूर्ण घड़े के समान तमोगुण या तमस् (अन्धकार) से आच्छादित पांच प्रकार की सृष्टि अस्तित्व में आयी थी (जो मुख्य सर्ग, तिर्यक् स्रोत सर्ग, ऊर्ध्व स्रोत सर्ग, अर्वाक् स्रोत सर्ग और भूतादि सर्ग नाम से आगे कही गयी है)॥३॥

बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च। मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसर्गस्तु स स्मृतः॥४॥

उस आरम्भिक सृष्टि में पर्वत ही मुख्य थे जो बाहर और अन्दर से भी प्रकाश रहित, स्तब्ध (गतिहीन) और संज्ञाहीन (अचेतन, ज्ञान रहित) थे। उस सृष्टि को मुख्य सर्ग कहा गया है॥४॥

तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरं प्रभुः। तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोतोऽभ्यवर्तत॥५॥

सृष्टिकर्ता प्रभु ब्रह्मा ने उस मुख्य सर्ग को सृष्टि की वृद्धि करने में असमर्थ देखकर अन्य सृष्टि का विचार किया था। तब उनके ध्यान करते ही तिर्यक् स्रोत नामक सृष्टि हुई॥५॥

यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतः ततः स्मृतः। पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः॥६॥

हे द्विजो! इस सृष्टि के पशु-पक्षी आदि प्राणी तिरछा चलते हैं अतः इसे तिर्यक् स्रोत सर्ग कहते हैं। इस सर्ग के प्राणी कुमार्गगामी अर्थात् अमर्यादित भी होते हैं॥६॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यं ससर्ज ह। ऊर्ध्वस्रोत इति प्रोक्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः॥७॥

उस तिर्यक् स्रोत सर्ग को भी असाधक (अभीष्ट सृष्टि करने में असमर्थ) जानकर ब्रह्मा ने अन्य सृष्टि की थी। सात्त्विक प्रकृति वाले देवों की उस सृष्टि को ऊर्ध्वस्रोत सर्ग कहा जाता है॥७॥

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः। प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंज्ञिताः॥८॥

वे देवता स्वभावतः सुखी, अधिकांशतः परस्पर प्रेम भाव वाले और बाह्य रूप से तथा आन्तरिक रूप से भी अनावृत (खुले मन वाले, निष्कपट) तथा प्रकाशमान (तेजोमय) होते हैं॥८॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा। प्रादुरासीत्तदाऽव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः॥९॥

तदनन्तर सत्य संकल्प वाले ब्रह्मा के द्वारा पुनः अन्य सृष्टि विषयक ध्यान किये जाने पर अव्यक्त (प्रकृति) से अर्वाक्स्रोत संज्ञक कार्य-साधक सृष्टि हुई थी॥९॥

ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः। दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्तिताः॥१०॥

उस अर्वाकस्रोत सृष्टि में जो मनुष्य उत्पन्न हुए थे, उनमें प्रकाश (ज्ञान) का बाहुल्य (अधिकता), तमोगुण की अधिकता और रजोगुण की अधिकता थी और वे सत्त्वगुण सम्पन्न भी थे और तीव्र दुःखों को भी झेलते थे॥१०॥

तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद्भगवानजः। तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्॥११॥

उस अर्वाक्स्रोत सृष्टि को देखकर भगवान् ब्रह्मा ने एक अन्य सृष्टि का भी विचार किया। तब उनके द्वारा ध्यान किये जाने पर भूतादि की सृष्टि हुई थी॥११॥

तेऽपरिग्रहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः। खादिनश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्तिताः।
इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुङ्गवाः॥१२॥

वे सभी धन-सम्पदा आदि संचय की प्रवृत्ति से रहित, जो उपलब्ध हो उसको परस्पर विभाजित करके खाने वाले एवं चरित्रहीन थे। उनको भूतादि कहा गया है। हे श्रेष्ठ द्विजो! यह पाँच प्रकार की सृष्टि कही गयी है॥१२॥

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः। तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः॥१३॥

ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि 'महत्' तत्त्व की है।[१] तदनन्र द्वितीय सृष्टि पञ्च तन्मात्राओं की है, जिसको सूक्ष्म पञ्चभूत (महाभूतों की पूर्वावस्था) कहते हैं॥१३॥

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः। इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतोऽबुद्धिपूर्वकः॥१४॥

तीसरी सृष्टि इन्द्रियों की थी जिसको वैकारिक सृष्टि कहा गया है। यह प्राकृत सृष्टि विधाता के द्वारा अबुद्धिपूर्वक (अर्थात् बिना विचारे) हुई थी॥१४॥

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः। तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः॥१५॥

चौथी सृष्टि को मुख्य सर्ग कहा गया है। स्थावर (जड़) सृष्टि को मुख्य कहा गया है। तिर्यक्स्रोत सर्ग को पाँचवीं सृष्टि कहा गया है। इसके प्राणी तिर्यक् योनि के अर्थात् तिरछे चलने वाले होते हैं॥१५॥

तथोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः। ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः॥१६॥

तदनन्तर छठाँ ऊर्ध्वस्रोत सर्ग हुआ था, जिसको देवों की सृष्टि कहते हैं। तत्पश्चात् सातवीं सृष्टि को अर्वाक् स्रोत सर्ग कहा गया है, जिसमें मनुष्य उत्पन्न हुए थे॥१६॥

अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्तितः। नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विमे॥१७॥

आठवीं सृष्टि को भौतिक सर्ग कहा गया है, जिसमें भूतादि उत्पन्न हुए थे। नवाँ कौमार सर्ग है। ये सर्ग प्राकृत और वैकृत सर्ग कहे जाते हैं॥१७॥

प्राकृतास्तु त्रयः पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः। बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याद्या मुनिपुङ्गवाः॥१८॥

प्रथम तीन सर्ग (महत् सर्ग, पञ्चभूत सर्ग, वैकारिक सर्ग) प्राकृत सर्ग कहलाते हैं, जिनकी सृष्टि अबुद्धिपूर्वक (ब्रह्मा के द्वारा कोई विशेष निर्णय लिए विना) की गयी थी। हे श्रेष्ठ मुनियो! मुख्य आदि जो सृष्टियाँ हैं, उनकी सृष्टि विधाता ने बुद्धिपूर्वक (विचार करके) की थी॥१८॥

अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्। सनकं सनातनं चैव तथैव च सनन्दनम्।
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वमेव प्रजापतिः॥१९॥

इसके आगे प्रजापति ब्रह्मा ने अपने समान (बुद्धिमान्) सनक, सनातन, सनन्दन, ऋभु और सनत्कुमार की सृष्टि की थी॥१९॥

पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः। ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दधिरे मतिम्॥२०॥

हे विप्रो! ये पाँचों ही परम वैराग्ययुक्त योगी ईश्वर-चिन्तन में लीन मन वाले थे और सृष्टि कार्य में इनका मन नहीं लगा था॥२०॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः। मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः॥२१॥

उनको लोक सृष्टि में इस प्रकार अनिच्छुक देखकर वह प्रजापति ब्रह्मा परमात्मा की माया से मोहित (किं कर्तव्य-विमूढ) हो गये थे॥२१॥

सम्बोधयामास च तं जगन्मायो महामुनिः। नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः॥२२॥

१. द्रष्टव्य- प्रकृतेमहाँस्ततोऽहङ्कारः (इत्यादि सांख्यकारिका)

तब योगियों के चित्त को आह्लादित करने वाले और जगत् को अपनी माया से मोहित करने वाले महायोगी महामुनि नारायण ने ब्रह्मा को प्रबोधित किया था॥२२॥

बोधितस्तेन विश्वात्मा ततापं परमं तपः। स तप्यमानो भगवान्न किञ्चित्प्रत्यपद्यत॥२३॥

उनके द्वारा प्रबोधित किये जाने पर विश्व की आत्मा स्वरूप ब्रह्मा ने बहुत तपस्या की थी और उस तपस्या से उनको कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ था॥२३॥

ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत। क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥२४॥

दीर्घकाल तक तप के निष्फल होने से ब्रह्मा दुःखी और क्रोधित हुए थे। उन क्रोधाविष्ट ब्रह्मा के नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिर पड़ी थी॥२४॥

भृकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्परमेष्ठिनः। समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः॥२५॥

तभी उन ब्रह्मा की टेढ़ी भोंहों (भृकुटि) वाले ललाट से सबको शरण प्रदान करने वाले नीललोहित महादेव उत्पन्न हुए थे॥२५॥

स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः। यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम्॥२६॥

वही सनातन तेजो राशि ईश्वर भगवान् शिव थे, उन्हीं परमेश्वर शिव को विद्वान् लोग अपने हृदय में विद्यमान देखते हैं॥२६॥

ओङ्कारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः। तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः॥२७॥

तब भगवान् ब्रह्मा ने ओङ्कार का स्मरण करके हाथ जोड़कर शिव से कहा कि आप विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करें॥२७॥

निशम्य भगवद्वाक्यं शङ्करो धर्मवाहनः। आत्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः।
कपर्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान्नीललोहितान्॥२८॥

भगवान् ब्रह्मा के वचन सुनकर धर्म ही (वृषभ रूप में) जिनका वाहन है, ऐसे कल्याणकारी शिव ने अपने मन से (मानसी सृष्टि द्वारा) अपने समान रुद्रों की सृष्टि की थी। वे सभी जटाजूटधारी, निरातंक (निर्भीक), त्रिनेत्र (तीन नेत्रों वाले) और नीललोहित थे॥२८॥

तं प्राह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः। सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः।
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ सृज त्वमशुभाः प्रजाः॥२९॥

तब भगवान् ब्रह्मा ने शिव से कहा कि अब आप ऐसी प्रजा की सृष्टि करें जो कि स्वयं जन्म ले और जिसकी कालानुसार मृत्यु भी हो। तब शिव ने कहा मैं ऐसी प्रजा की सृष्टि नहीं करूँगा, जो कि वृद्ध हो और जिसकी मृत्यु हो। हे जगन्नाथ ब्रह्मा! वैसी अशुभ प्रजा की सृष्टि आप स्वयं करो॥२९॥

निवार्य स तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्भवः। स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान्निबोधत॥३०॥

तब ब्रह्मा ने शिव को सृष्टि कार्य से निवारित करके सभी स्थानाभिमानियों की सृष्टि की थी, जो मैं बता रहा हूँ, आप लोग सुनें॥३०॥

आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा। नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुध एव च॥३१॥

लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः। अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः॥ ३ २॥

जल, अग्नि अन्तरिक्ष, द्युलोक (स्वर्ग), वायु, पृथिवी, नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, लताएँ तथा लव (काल की सूक्ष्म इकाई, एक निमेष का छठाँ भाग) काष्ठा (अठारह निमेष की एक काष्ठा) कला (तीस काष्ठा की एक कला) मूहूर्त[1], दिन, रात, अर्धमास (पक्ष), मास, अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन) वर्ष और युग आदि स्थानाभिमानियों की सृष्टि की थी॥ ३ १-३ २॥

स्थानाभिमानिनः सृष्ट्वा साधकानसृजत्पुनः। मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्मं सङ्कल्पमेव च॥ ३ ३॥

उपर्युक्त स्थानाभिमानियों की सृष्टि करके ब्रह्मा ने पुनः मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, धर्म और संकल्प की सृष्टि की थी॥ ३ ३॥

प्राणाद् ब्रह्मासृजद्दक्षं चक्षुषर्भ्यां च मरीचिनम्। शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद्भृगुमेव च॥ ३ ४॥
श्रोत्राभ्यामत्रिनामानं धर्मं च व्यवसायतः। सङ्कल्पं चैव सङ्कल्पात्सर्वलोकपितामहः॥ ३ ५॥

[ब्रह्मा ने] प्राणवायु से दक्ष को, नेत्रों से मरीचि को, शिर से अङ्गिरा को, हृदय से भृगु को, कानों से अत्रि को, व्यवसाय (कर्म) से धर्म को और संकल्प से संकल्प को सर्वलोक पितामह ने उत्पन्न किया था॥ ३ ४-३ ५॥

पुलस्त्यं च तथोदानाद् व्यानाच्च पुलहं मुनिम्। अपानात् क्रतुमव्यग्रं समानाच्च वसिष्ठकम्॥ ३ ६॥

उन ब्रह्मा जी ने उदान वायु से पुलस्त्य को, व्यान वायु से पुलह मुनि को, अपान वायु से क्रतु को और समान वायु से वसिष्ठ को उत्पन्न किया था॥ ३ ६॥

इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः। आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्तैः सम्प्रवर्तितः॥ ३ ७॥

ब्रह्मा ने सृष्टि कार्य को सिद्ध करने वाले इन गृहस्थों की सृष्टि की थी। इन सभी ने मानव रूप धारण करके सम्यक् रूप से धर्म का प्रवर्तन किया था॥ ३ ७॥

ततो देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम्। सिसृक्षुर्भगवानीशः स्वमात्मानमयोजयत्॥ ३ ८॥

तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने देवों, असुरों, पितरों और मनुष्यों की सृष्टि करने की इच्छा से स्वयं को कार्य में संलग्न किया था॥ ३ ८॥

युक्तात्मनस्तमोमात्रा ह्युद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः। ततोऽस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः॥ ३ ९॥

उस कार्य में संलग्न आत्मा वाले प्रजापति ब्रह्मा में तमोगुण की मात्रा बढ़ गयी थी। तब उनके जघन प्रदेश (जंघा के ऊपरी भाग) से प्रथम बार असुर उत्पन्न हुए थे॥ ३ ९॥

उत्ससर्जासुरान् सृष्ट्वा तां तनुं पुरुषोत्तमः। सा चोत्सृष्टा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत।
सा तमोबहुला यस्मात्प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः॥ ४ ०॥

असुरों की सृष्टि करके पुरुषोत्तम ब्रह्मा ने अपने उस शरीर को त्याग दिया था। ब्रह्मा के द्वारा

---

१. निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत् तु ताः कला। त्रिंशत् कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः॥ मनु १/६४

त्यागा गया वह शरीर शीघ्र ही रात्रि रूप बन गया था। वह रात्रि तमोगुण की अधिकता वाली होती है। अतः उस रात्रि में प्रजाजन सो जाते हैं॥४०॥

सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यां गृहीतवान्। ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यतः सम्प्रजज्ञिरे॥४१॥

तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने सत्त्वगुण युक्त अन्य शरीर धारण किया था। तब उनके मुख से दीप्तिमान् देवता उत्पन्न हुए थे॥४१॥

त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद्दिनम्। तस्मादहो धर्मयुक्ता देवताः समुपासते॥४२॥

ब्रह्मा ने अपने उस शरीर को भी त्याग दिया था। उस शरीर से सत्त्वगुण प्रधान (प्रकाशमान) दिन बना था। अतः धर्म-भावना से युक्त देवता दिन का सेवन करते हैं, दिन में विचरण करते हैं॥४२॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्। पितृवन्मन्यमानस्य पितरः सम्प्रजज्ञिरे॥४३॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने सत्त्वगुणयुक्त अन्य शरीर धारण किया था। उस समय ब्रह्मा स्वयं को पितृतुल्य मान रहे थे। अतः उनसे पितर उत्पन्न हुए थे॥४३॥

उत्ससर्ज पितॄन् सृष्ट्वा ततस्तामपि विश्वदृक्। सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या व्यजायत॥४४॥

विश्वद्रष्टा ब्रह्मा ने पितरों की सृष्टि करके उस शरीर को भी त्याग दिया था। उन ब्रह्मा जी के द्वारा त्यागा गया वह शरीर सन्ध्या (सायंकाल) बन गया था॥४४॥

तस्मादहर्देवतानां रात्रिः स्याद्देवविद्विषाम्। तयोर्मध्ये पितृणां तु मूर्तिः सन्ध्या गरीयसी॥४५॥

अतः दिन देवताओं का और रात्रि देवों के शत्रु असुरों की और दिन और रात्रि के मध्य में पितरों की महत्त्वपूर्ण मूर्ति सन्ध्या होती है॥४५॥

तस्माद्देवासुराः सर्वे मुनयो मानवास्तदा। उपासते सदा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम्॥४६॥

अतः सभी देव, असुर, मुनि तथा मनुष्य सभी एक चित्त होकर सदा रात और दिन के मध्य की ब्रह्मा की देह स्वरूपा सन्ध्या की उपासना करते हैं॥४६॥

रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यां ततोऽसृजत्। ततोऽस्य जज्ञिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृताः॥४७॥

तब ब्रह्मा ने एकमात्र रजोगुण युक्त अन्य शरीर धारण किया था, जिससे उन ब्रह्मा के पुत्र रूप में रजोगुणी मनुष्य पैदा हुए थे॥४७॥

तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः। ज्योत्स्ना सा चाभवद्विप्राः प्राक्सन्ध्या याभिधीयते॥४८॥

उस शरीर को भी प्रजापति ब्रह्मा ने शीघ्र त्याग दिया था, जो कि ज्योत्स्ना (चन्द्रमा का प्रकाश) बन गया था, जिसे सन्ध्या के पूर्व की अवस्था (प्राक्सन्ध्या) कहा जाता है॥४८॥

ततः स भगवान् ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुङ्गवाः। मूर्तिं तमोरजः प्रायां पुनरेवाभ्यपूजयत्॥४९॥
अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे। पुत्रास्तमोरजः प्राया बलिनस्ते निशाचराः॥५०॥

हे द्विजो! तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा तमोगुण और रजोगुण से युक्त शरीर धारण करके पुनः योगनिष्ठ हुए तो अन्धकार में उनके राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए थे जो प्रायः तमोगुण और रजोगुण युक्त थे और भूख से व्याकुल थे। वे बहुत बलवान् और निशाचर (रात्रि में विचरण करने वाले) थे॥४९-५०॥

सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वाः सम्प्रजज्ञिरे। रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत्प्रभुः॥५१॥

उनके साथ ही सर्प, यक्ष, भूत तथा गन्धर्व भी उत्पन्न हुए थे। उन प्रभु ब्रह्मा ने इसी प्रकार रजोगुण और तमोगुण से युक्त अन्य प्राणियों की भी सृष्टि की थी॥५१॥

वयांसि वयसः सृष्ट्वा अवयो वक्षसोऽसृजत्। मुखतोऽजान् ससर्जान्यान् उदराद्गाश्च निर्ममे॥५२॥

ब्रह्मा ने अपनी वय (अवस्था?) से पक्षियों की सृष्टि करके अपने वक्षः स्थल से भेड़ों की सृष्टि और मुख से बकरियों और अपने पेट में से गायों की सृष्टि की थी॥५२॥

पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गान्रासभान् गवयान्मृगान्। उष्ट्रानश्वतरांश्चैव अरत्नेश्च प्रजापतिः।
ओषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥५३॥

ब्रह्मा ने अपने पैरों से अश्व, हाथी, गधा, गवय (गाय के समान पशु, नील गाय आदि), और मृगों को उत्पन्न किया था। उस प्रजापति ने अरत्नि (कुहनी से छोटी अंगुली तक का भाग) से ऊँट और खच्चरों को उत्पन्न किया था। औषधियों[1] और फलों के वृक्ष तथा कन्दमूल आदि पौधे प्रजापति ब्रह्मा के रोमों से उत्पन्न हुए थे॥५३॥

गायत्रीं च ऋचश्चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम्। अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥५४॥

ब्रह्मा नें अपने प्रथम (पूर्व के) मुख से गायत्री मन्त्र, ऋग्वेद, त्रिवृत्साम, रथन्तर साम तथा यज्ञों में प्रमुख अग्निष्टोम यज्ञ को उत्पन्न किया था॥५४॥

यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा। बृहत्साम तथोक्थञ्च दक्षिणादसृजनमुखात्॥५५॥

यजुर्वेद, त्रिष्टुभ छन्द, पञ्चदश स्तोम, बृहत्साम और उक्थ[2]-याग को दक्षिण मुख से उत्पन्न किया था॥५५॥

सामानि जागतं छन्दःस्तोमं सप्तदशं तथा। वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥५६॥

सामवेद, जगती दन्द, सप्तदश-स्तोम तथा वैरूप और अतिरात्र यज्ञ को पश्चिम मुख से उत्पन्न किया था॥५६॥

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च। अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्॥५७॥

ब्रह्मा ने इक्कीस शाखाओं वाले अथर्ववेद, आप्तोर्याम नामक याग, अनुष्टुप् तथा विराट् छन्द को पश्चिम मुख से उत्पन्न किया था॥५७॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे। ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तु प्रजापतेः॥५८॥

प्रजापति ब्रह्मा के द्वारा प्रजाओं की सृष्टि करते समय उनके शरीर से अनेक प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए थे॥५८॥

सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम्। ततोऽसृजच्च भूतानि स्थावराणि चराणि च॥५९॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसः शुभाः। नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान्।
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम्॥६०॥

---

१. ओषध्यः फलपाकान्ताः

२. द्रष्टव्य- वैदिक कोश पृ. ५२ (डा. सूर्यकान्त द्वारा लिखित)

ब्रह्मा ने देवों, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों की सृष्टि करके अन्य सभी चर और अचर प्राणियों, यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों तथा सुन्दर अप्सराओं एवं नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और सर्पों सहित नित्य-स्थायी और नाश-शील स्थावर-जंगम (चराचर) जगत् की सृष्टि की थी॥५९-६०॥

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टौ प्रतिपेदिरे। तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥६१॥

उन प्राणियों के जो कर्म पूर्वकालीन सृष्टि में निश्चित थे बार-बार सृष्टि किये जाने पर भी वे उन्हीं कर्मों को स्वभावतः करते हैं॥६१॥

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते। तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥६२॥

पूर्वजन्म के उन कर्मों से प्राणी वर्तमान जीवन में भी हिंसक या अहिंसक, कोमल स्वभाव वाला या क्रूर, धर्म करने वाला या अधर्मी, सत्यपरायण या असत्यवादी होता है और वही उसको रुचिकर लगता है॥६२॥

महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु। विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम्॥६३॥

विधाता ब्रह्मा ने स्वयं ही पञ्च महाभूतों, इन्द्रिय-विषयों एवं मूर्त जगत् की अनेकता और प्राणियों के उपयोग या करणीय कार्य की व्यवस्था स्वयं की थी॥६३॥

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च[1] प्रपञ्चनम्। वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥६४॥

महेश्वर ब्रह्मा ने आदिकाल में वेद के शब्दों से ही प्राणियों के नाम और रूप तथा उनके विविध कर्मों की भी व्यवस्था की थी॥६४॥

आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु सृष्टयः। शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥६५॥

वेदों में जो ऋषियों के (और उन ऋषियों से सम्बन्धित विषयों के) जो नाम हैं और वेदों में जो सृष्टि वर्णन है, प्रलय रूपी रात्रि के पश्चात् की सृष्टि होने पर विधाता उनको वही वेदों में कहे गये नाम पुनः देता है॥६५॥

यावन्ति प्रतिलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये। दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥६६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे सृष्टिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

प्रलय के पूर्व जो लिङ्ग (नाम, रूप) आदि थे, वही विधाता के द्वारा पुनः की गयी सृष्टि के आदि युग में दृष्टिगत होते हैं॥६६॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'सृष्टिवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥७॥

१. प्राकृतानां

अथाष्टमोऽध्यायः

मुख्यादिसर्गकथनम्

श्री कूर्म उवाच

एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च। यदास्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमतः॥१॥
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाऽशोचत दुःखितः। ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्॥२॥

कूर्म ने कहा- ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार चर, अचर प्राणियों की सृष्टि की गयी थी। जब बुद्धिमान् ब्रह्मा के द्वारा की गयी सृष्टि में उन प्रजाओं की वृद्धि नहीं हुई तब तमोगुण की अधिक मात्रा से युक्त ब्रह्मा ने दुःखी होकर चिन्तन किया। तभी उन्होंने अपने उद्देश्य को निश्चित रूप से सफल करने का मन बनाया था॥१-२॥

अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्। रजः सत्त्वं च संवृत्य वर्तमानां स्वधर्मतः॥३॥

तब ब्रह्मा ने अपने अन्दर रजोगुण और सत्त्वगुण को आच्छादित की हुई तमोगुण की नियन्त्रणकारी मात्रा का आधिक्य देखा॥३॥

तमस्तु व्यनुदत्पश्चाद्रजः सत्त्वेन संयुतः। तत् तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत॥४॥
अधर्माचरणो विप्रा हिंसा चाशुभलक्षणा। स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्॥५॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने रजोगुण और सत्त्वगुण से युक्त होकर उस तमोगुण को त्याग कर दूर कर दिया था। तब वह परित्यक्त तमोगुण एक युगल (जोड़ा) के रूप में प्रकट हुआ। हे द्विजो! उस युगल का पुरुष अधर्म का आचरण करने वाला मूर्तिमान अधर्म और नारी अशुभ लक्षणों वाली मूर्तिमान् हिंसा थी। तब ब्रह्मा ने अपनी उस भास्वर (दीप्तिमान) देह को त्याग दिया था॥४-५॥

द्विधाकरोत्पुनर्देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्धेन नारी पुरुषो विराजमसृजत् प्रभुः॥६॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने अपने अन्य शरीर को द्विधा विभक्त किया, जिसके आधे भाग से एक विराट पुरुष और आधे से नारी बनी थी॥६॥

नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं ससृजे शुभाम्। सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता।
योगैश्वर्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता॥७॥

ब्रह्मा के द्वारा सृजित वह शतरूपा नामक नारी योगिनी थी। वह अपनी महिमा से द्युलोक और भूलोक को व्याप्त कर रही थी। वह योग और ऐश्वर्य के बल से युक्त और ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न थी॥७॥

योऽभवत्पुरुषात्पुत्रो विराडव्यक्तजन्मनः। स्वायंभुवो मनुर्देवः सोऽभवत्पुरुषो मुनिः॥८॥

अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा ने जो विराट् पुरुष उत्पन किया था, वह देव पुरुष स्वायंभुव मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए थे॥८॥

सा देवी शतरूपाख्या तपः कृत्वा सुदुश्चरम्। भर्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत॥९॥

उस शतरूपा नामक देवी ने अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके यशस्वी स्वायम्भुव मनु को ही पतिरूप में वरण किया था॥९॥

तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत। प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम्॥१०॥

उन स्वायम्भुव मनु से शतरूपा ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो उत्तम पुत्र और दो कन्याओं को जन्म दिया था॥१०॥

तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददौ पुनः। प्रजापतिरथाकूतिं मानसो जगृहे रुचिः॥११॥

उन दो कन्याओं में से प्रसूति नामक कन्या को दक्ष प्रजापति को दिया गया था अर्थात् उसके साथ विवाह कराया गया था और आकूति नामक कन्या को ब्रह्मा के मानस पुत्र रुचि नामक प्रजापति ने पत्नी रूप में ग्रहण किया था॥११॥

आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्। यज्ञश्च दक्षिणां चैव याभ्यां संवर्धितं जगत्॥१२॥

ब्रह्मा के मानस पुत्र रुचि प्रजापति से उनकी पत्नी आकूति में यज्ञ और दक्षिणा नामक युगल (जोड़े) का जन्म हुआ था, जिनसे इस जगत् की वृद्धि हुई थी॥१२॥

यज्ञस्य दक्षिणायां च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे। यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेऽन्तरे॥१३॥

यज्ञ से दक्षिणा में बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में 'यामा' नामक देवताओं के रूप में प्रख्यात हुए थे॥१३॥

प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिं तथा। ससर्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निबोधत॥१४॥

दक्ष ने अपनी पत्नी प्रसूति से चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया था। उन कन्याओं के नामों को आप लोग सम्यक् रूप से जानें॥१४॥

श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा। बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी॥१५॥
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः शुभाः। ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः॥१६॥
ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा। सन्नति[1]श्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥१७॥

श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेघा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति नामक इन तेरह शुभंकरी दक्ष कन्याओं को धर्म ने पत्नी रूप में ग्रहण किया था। उनसे आगे की छोटी सुन्दर नयनों वाली कन्याओं में ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा नामक कन्याएँ थी॥१५-१७॥

भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः। पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित्॥१८॥
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्। ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो ज्ञानसत्तमाः॥१९॥

इन ख्याति आदि एकादश दक्ष कन्याओं को ज्ञानियों में श्रेष्ठ मुनियों क्रमशः भृगु, भव (शिव), मरीचि, मुनि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, परम धर्मज्ञ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ तथा अग्नि और पितृगणों ने पत्नी रूप में ग्रहण किया था॥१८-१९॥

श्रद्धाया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः। धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते॥२०॥

१. सन्ततिः। (अशुद्धपाठ)

धर्म की उपर्युक्त श्रद्धा, लक्ष्मी आदि पत्नियों में से श्रद्धा का पुत्र काम, लक्ष्मी का पुत्र दर्प, धृति का पुत्र नियम और तुष्टि का पुत्र सन्तोष था॥२०॥

पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः शमस्तथा। क्रियायाश्चाभवत्पुत्रो दण्डश्च नय एव च॥२१॥

पुष्टि का पुत्र लाभ, मेधा का पुत्र शम और क्रिया के दो पुत्र दण्ड और नय नाम के थे॥२१॥

बुद्ध्या बोधः सुतस्तद्वदप्रमादो[1]ऽप्यजायत। लज्जाया विनयः पुत्रो वपुषो व्यवसायकः॥२२॥

बुद्धि के बोध और अप्रमाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। लज्जा का पुत्र विनय नामक था और वपु का व्यवसाय नामक पुत्र था॥२२॥

क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सिद्धिः सिद्धेरजायत। यशः कीर्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्मसूनवः॥२३॥

शान्ति का क्षेम नामक पुत्र था और सिद्धि का सिद्ध नामक पुत्र हुआ था। इसी प्रकार कीर्ति का यश नामक पुत्र था। धर्म की तेरह पत्नियों में से ये पुत्र उत्पन्न हुए थे॥२३॥

कामस्य हर्षः पुत्रोऽभूद्देवानन्दोऽप्यजायत। इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः॥२४॥

काम का हर्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। यह सब धर्म की सुखप्रद सृष्टि कही गयी है॥२४॥

जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिं चानृतं सुतम्। निकृतेस्तनयो जज्ञे भयं नरकमेव च॥२५॥

अधर्म से हिंसा नामक कन्या और निकृति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। निकृति से भय और नरक नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे॥२५॥

माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः। भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्॥२६॥

माया तथा वेदना क्रमशः भय और नरक की पत्नियाँ हैं। भय से माया ने प्राणियों का संहार करने वाले मृत्यु को जन्म दिया था॥२६॥

वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्। मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे॥२७॥

वेदना ने रौरव [नरक] से दुःख नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। मृत्यु से व्याधि (रोग), जरा (वृद्धावस्था), शोक, तृष्णा और क्रोध का जन्म हुआ था॥२७॥

दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः। नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥२८॥

ये सभी अधर्म के लक्षण स्वरूप और दुःख से पुनः दुःख में ले जाने वाले हैं। इनकी न कोई भार्या है और न कोई पुत्र। ये सभी ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचर्यव्रती) हैं॥२८॥

इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः। संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुङ्गवाः॥२९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे मुख्यादिसर्गकथनेऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

इस प्रकार यह धर्म की नियामक (अधर्मपरक) तामस सृष्टि हुई थी। हे श्रेष्ठमुनियो! मैंने संक्षेप में इस विशिष्ट सृष्टि का वर्णन किया है॥२९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'मुख्यादि सर्गकथन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥८॥

❖❖❖

१. तद्वत्प्रमादो (अपपाठ)

अथ नवमोऽध्यायः

पद्मोद्भवप्रादुर्भाव वर्णनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदाद्या महर्षयः। प्रणम्य वरदं विष्णुं पप्रच्छुः संशयान्विताः॥१॥

सूत जी बोले- कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु से यह सुनकर संशयग्रस्त नारद आदि महर्षियों ने वर प्रदान करने वाले उन भगवान् से यह पूछा॥१॥

मुनय ऊचुः

कथितो भवता सर्गो मुख्यादीनां जनार्दन। इदानीं संशयं चेयमस्माकं छेत्तुमर्हसि॥२॥

मुनि बोले- हे जनार्दन! आपने मुख्य सृष्टि आदि का वर्णन कर दिया है। इस समय आप हमारे इस संशय का निराकरण करें॥२॥

कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक्। पुत्रत्वमगमच्छम्भुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥३॥
कथं च भगवान् जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामहः। अण्डजो[1] जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि॥४॥

वह पिनाकधारी भगवान् शिव पूर्वकाल में उत्पन्न होने पर भी अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा के पुत्र कैसे बने थे और जगत् के स्वामी लोक-पितामह ब्रह्मा अण्ड (ब्रह्माण्ड) से कैसे उत्पन्न हुए थे? यह सब हमको बतलाइए॥३-४॥

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शङ्करस्यामितौजसः। पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च॥५॥

कूर्म बोले- आप सभी ऋषिगण यह सुनें कि अमित तेजयुक्त भगवान् शिव कैसे ब्रह्मा के पुत्र बने और ब्रह्मा कैसे कमल से उत्पन्न हुए थे॥५॥

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम्। आसीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न चर्षयः॥६॥

पूर्वकाल में जो कल्प व्यतीत हुआ था, उसके अन्त में तीनों लोकों में घोर अन्धकार छा गया था। एकमात्र समुद्र ही सर्वत्र था। उस समय न तो देव और न ऋषि आदि कोई भी नहीं थे॥६॥

तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपप्लवे। आश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः॥७॥

उस निर्जन और उपद्रव रहित शान्त वातावरण में पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु शेषनाग रूपी शय्या में आश्रय लेकर शयन कर रहे थे॥७॥

सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्। सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः॥८॥
पीतावासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः। महाविभूतियोगात्मा योगिनां हृदयालयः॥९॥

विद्वानों के द्वारा जिनका ध्यान किया जाता है, ऐसे वह भगवान् विष्णु हजारों शिर, हजारों नेत्र, हजारों चरण, हजारों भुजाओं, हजारों पैर वाले, पीतवस्त्रधारी, विशाल नेत्रों वाले, नीले मेघ के समान वर्ण

---

१. अण्डतो

वाले, महा-विभूति और योगियों के हृदय में निवास करने वाले योगात्मा (उस आदि काल में विद्यमान) थे॥८-९॥

कदाचित् तस्य सुप्तस्य लीलार्थं दिव्यमद्भुतम्। त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पङ्कजमुद्बभौ॥१०॥
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम्। दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥११॥

एक बार जब वह भगवान् विष्णु शेष शय्या पर सोये हुए थे तब उस समय उनकी नाभि से लीला करने के लिए तीनों लोकों का साररूप एक दिव्य अद्भुत और निर्मल कमल उत्पन्न हुआ था, जो सौ योजन विस्तृत, नवोदित सूर्य के समान (लालिमायुक्त), दिव्य सुगन्ध वाला तथा कर्णिका (कमल गट्टा) और केसर से युक्त था॥१०-११॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्तमानस्य शार्ङ्गिणः। हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे॥१२॥

शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले भगवान् विष्णु जब चिरकाल तक सोये रह गये तब (उस कमल में उत्पन्न) भगवान् हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उस स्थान पर गये जहाँ कि विष्णु सोये हुए थे॥१२॥

स तं करेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम्। प्रोवाच मधुरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः॥१३॥

उन भगवान् विष्णु की माया से मोहित ब्रह्मा ने अपने हाथ से उन सनातन विश्वात्मा विष्णु को उठाकर मधुरवाणी में यह वचन कहे थे॥१३॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते। एकाकी को भवाश्चेति ब्रूहि मे पुरुषर्षभ॥१४॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! इस अन्धकारपूर्ण निर्जन और घोर (भयंकर) एकार्णव (अगाध और विशाल समुद्र) में अकेले शयन करने वाले आप कौन हैं? मुझे बतलाइए॥१४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः। उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥१५॥
भो भो नारायणं देवं लोकानां प्रभवाव्ययम्। महायोगेश्वरं मां वै जानीहि पुरुषोत्तमम्॥१६॥

उनके ऐसे वचन सुनकर गरुडध्वज भगवान् विष्णु ने हँसते हुए मेघ-गर्जना के समान गम्भीरवाणी में देव ब्रह्मा से कहा- हे ब्रह्मा! यह जान लो कि मैं तीनों लोकों का सृजन और संहार करने वाला महायोगेश्वर पुरुषोत्तम देव नारायण हूँ॥१५-१६॥

मयि पश्य जगत्कृत्स्नं त्वं च लोकपितामहम्। सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम्॥१७॥

सम्पूर्ण जगत् सहित लोक-पितामह (ब्रह्मा) को और सातों समुद्रों से घिरे हुए पर्वतों सहित सभी महाद्वीपों को आप मुझमें देखो॥१७॥

एवमाभाष्य विश्वात्मा प्रोवाच पुरुषं हरिः। जानन्नपि महायोगी को भवानिति वेधसम्॥१८॥
ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः। प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा॥१९॥

उस पुरुष (ब्रह्मा) से ऐसा कह कर विश्व की आत्मा महायोगी भगवान् विष्णु ने सब कुछ जानते हुए भी ब्रह्मा से कहा कि आप कौन हैं? तब वेदनिधि (वेदों के विद्वान) प्रभु ब्रह्मा ने हँसते हुए मधुरवाणी में कमल के समान नेत्रों वाले भगवान् विष्णु से यह कहा॥१८-१९॥

अहं धाता विधाता च स्वयंभूः प्रपितामहः। मय्येव संस्थितं विश्वं ब्रह्माहं विश्वतोमुखः॥२०॥

(ब्रह्मा बोले-) मैं धाता (विश्व को धारण करने वाला), विधाता (विधान बनाने वाला) स्वयंभू (स्वयं उत्पन्न) और प्रपितामह हूँ। सम्पूर्ण विश्व मुझमें ही स्थित है। मैं चारों ओर मुखवाला (चार मुखों वाला) ब्रह्मा हूँ॥२०॥

श्रुत्वा वाचं स भगवान्विष्णुः सत्यपराक्रमः। अनुज्ञाप्याथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणस्तनुम्॥२१॥

ब्रह्मा के इन वचनों को सुनकर अमोघ (दृढ) पराक्रम वाले भगवान् विष्णु उन ब्रह्मा से अनुमति लेकर उनके शरीर में प्रविष्ट हुए थे॥२१॥

त्रैलोक्यमेतत्सकलं सदेवासुरमानुषम्। उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥२२॥

ब्रह्मा के उदर (पेट) में देवों, असुरों और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण त्रिलोकी को देख कर भगवान् विष्णु आश्चर्यान्वित हो गये थे॥२२॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः। अथापि भगवान्विष्णुः पितामहमथाब्रवीत्॥२३॥
भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम्। प्रविश्य लोकान्पश्यैतान्विचित्रान्पुरुषर्षभ॥२४॥

तब शेषनाग की शय्या में शयन करने वाले भगवान् विष्णु उन पितामह ब्रह्मा के मुख से बाहर निकल करके उनसे यह बोले कि हे पुरुषश्रेष्ठ! आप भी इसी प्रकार मेरे शाश्वत (नित्य स्थायी) उदर (पेट) में प्रवेश करके इन विचित्र लोकों को देखो॥२३-२४॥

ततः प्रह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च। श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश कुशध्वजः॥२५॥

तब लक्ष्मी के पति भगवान् विष्णु की आह्लादित करने वाली वाणी को सुनकर उनका अभिनन्दन करके कुशध्वज वाले ब्रह्मा ने लक्ष्मी के पति विष्णु के उदर में प्रवेश किया था॥२५॥

तानेव लोकान्गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रमः। पर्यटित्वाथ देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः॥२६॥

सत्यानुगामी ब्रह्मा ने विष्णु के उदर में वे सभी लोक देखे जो कि स्वयं उनके अन्दर भी थे। विष्णु के उदर में भ्रमण करते हुए ब्रह्मा को उसका कोई अन्त नहीं मिला था॥२६॥

ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना। जनार्दनेन ब्रह्मासौ नाभ्यां द्वारमविन्दत॥२७॥

तब महान् आत्मा वाले जनार्दन भगवान् विष्णु ने अपनी सभी इन्द्रियों के द्वारों को बंद कर दिया था। तब ब्रह्मा को उनकी नाभि में द्वार प्राप्त हुआ था॥२७॥

तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डजः। उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः॥२८॥

तब स्वर्णिम अण्ड से उत्पन्न चतुर्मुख ब्रह्मा ने अपनी योग-शक्ति के बल पर विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल में अपने स्वरूप को प्रकट किया था॥२८॥

विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः। ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् जगद्योनिः पितामहः॥२९॥

वह स्वयंभू जगत्स्रष्टा पितामह भगवान् ब्रह्मा उस कमल के ऊपर विराजमान होने पर कमल के अन्दर स्थित लालिमा के समान दीप्तिमान लग रहे थे॥२९॥

स मन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम्। प्रोवाच विष्णुं पुरुषं मेघगम्भीरया गिरा॥३०॥
कृतं किं भवतेदानीमात्मनो जयकांक्षया। एकोऽहं प्रबलो नान्यो मा वै कोऽपिभविष्यति॥३१॥

तब ब्रह्मा ने स्वयं को विश्व का स्वामी और परम पद (सर्वोत्तम) मानते हुए मेघ गर्जना के समान गम्भीर वाणी में विष्णु से कहा कि आपने अपनी विजय की आकांक्षा से ऐसा कार्य क्यों किया? इस त्रिलोकी में सबसे प्रबल मैं ही हूँ। मुझे कौन पराजित कर सकता है॥३०-३१॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यं बभाषे मधुरं हरिः॥३२॥
भवान्धाता विधाता च स्वयंभूः प्रपितामहः। न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणि पिहितानि मे॥३३॥
किन्तु लीलार्थमेवैतन्न त्वां बाधितुमिच्छया। को हि बाधितुमन्विच्छेद्देवदेवं पितामहम्॥३४॥

परमेष्ठी ब्रह्मा के वचन सुनकर भगवान् विष्णु ने शान्तिपूर्वक यह मधुर वचन कहे- आप धाता (जगत् को धारण करने वाले), विधाता (सृष्टिकर्ता), स्वयंभू और प्रपितामह हैं। मैंने ईर्ष्या के वशीभूत होकर इन्द्रियों के द्वार बन्द नहीं किये थे। किन्तु लीला करने के लिए ही ऐसा किया था। देवदेव पितामह ब्रह्मा को भला कौन प्रतिबन्धित कर सकता है॥३२-३४॥

न हि त्वं बाध्यसे ब्रह्मन् मान्यो हि सर्वथा भवान्। मम क्षमस्व कल्याणं? यन्मयापकृतं तव॥३५॥

हे ब्रह्मा! आपको कोई बाधित (प्रतिबन्धित) नहीं कर सकता है। आप तो सर्वथा सम्माननीय हैं। मैंने जो आपका अपकार किया है, उसके लिए मुझे क्षमा करके मेरा कल्याण करें॥ ।३५॥

अस्माच्च कारणाद् ब्रह्मन् पुत्रो भवतु मे भवान्। पद्मयोनिरिति ख्यातो मत्प्रियार्थं जगन्मय॥३६॥

हे ब्रह्मा! मेरी प्रसन्नता के लिए आप मेरे पुत्र बनें। हे जगन्मय! आप 'पद्मयोनि' (कमल से उत्पन्न) इस नाम से ख्याति प्राप्त करोगे॥३६॥

ततः स भगवान्देवो वरं दत्त्वा किरीटिने। प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत॥३७॥

तब भगवान् ब्रह्मा ने मुकुट धारण करने वाले भगवान् विष्णु को वरदान देकर परम प्रसन्न होकर पुनः भगवान् विष्णु से यह कहा॥३७॥

भवान्सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः। सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम्॥३८॥
अहं वै सर्वलोकानामात्मा लोकमहेश्वरः। मन्मयं सर्वमेवेदं ब्रह्मणः पुरुषः परः॥३९॥

आप सभी प्राणियों के आत्मा-स्वरूप और अनन्त (आदि अन्तरहित) और सभी के पूज्य परमेश्वर, सभी प्राणियों के अन्तरात्मा तथा सनातन पर ब्रह्म हैं और मैं भी सभी लोकों का आत्मा और सम्पूर्ण लोकों का महेश्वर (सबसे बड़ा देवता) हूँ। यह सम्पूर्ण सृष्टि मुझ परम पुरुष ब्रह्मा का ही स्वरूप है॥३८-३९॥

नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः। एका मूर्तिर्द्विधा भिन्ना नारायणपितामहौ॥४०॥

हम दोनों के अतिरिक्त इन लोकों का अन्य कोई परमेश्वर नहीं है। एक ही मूर्ति नारायण विष्णु और पितामह ब्रह्मा के रूप में द्विधा विभक्त हुई है॥४०॥

तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम्। इयं प्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति॥४१॥

ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वासुदेव-विष्णु ने उन (ब्रह्मा) से कहा कि यह प्रतिज्ञा (कथन) आपके विनाश का कारण बनेगी॥४१॥

किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम्। प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम्॥४२॥

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या अपि महेश्वरम्। अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज॥४३॥

क्या आप योगेश्वर ब्रह्मा के अधिपति, अव्यय (अविनाशी) प्रकृति और पुरुष के स्वामी को नहीं देखते हो? उन परमेश्वर को मैं जानता हूँ। योगी जन और सांख्य दर्शन के ज्ञाता भी जिन महेश्वर को नहीं जानते हैं, आप उन आदि अन्त रहित महादेव की शरण में जाओ॥४२-४३॥

ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्। भवान् न नूनमात्मानं वेत्ति तत्परमाक्षरम्॥४४॥
ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम्। नावाभ्यां विद्यते त्वन्यो लोकानां परमेश्वरः॥४५॥

तब ब्रह्मा ने क्रुद्ध होकर कमल की आभा के समान नेत्रों वाले भगवान् विष्णु से कहा कि हे भगवन्! निश्चय ही आप स्वयं को परम अविनाशी जगत् का आत्मास्वरूप परम पद के रूप में नहीं जानते हैं। हम दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई भी तीनों लोकों का परमेश्वर नहीं है॥४४-४५॥

संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय। तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत[1]॥४६॥

आप अपनी इस चिरकालीन निद्रा को त्याग कर स्वयं अपने आप को अच्छी तरह देखो अर्थात् ठीक से पहचानो। तब ब्रह्मा के उन क्रोध-पूर्ण वचनों को सुनकर वह भगवान् विष्णु (शान्ति पूर्वक) बोले॥४६॥

मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः। न मे ह्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाहं वदामि ते॥४७॥

हे कल्याणमय ब्रह्मा! ऐसा नहीं कहो, महात्मा (महादेव) की निन्दा मत करो। ऐसा नहीं कि मुझे कुछ ज्ञात न हो। मैं आपसे असंगत (मिथ्या) बात नहीं कर रहा हूँ॥४७॥

किन्तु मोहयति ब्रह्मन् भवन्तं पारमेश्वरी[2]। मायाशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा॥४८॥

किन्तु हे ब्रह्मा! आपको भगवान् महादेव की वह माया मोहित कर रही है जो कि स्वयं उत्पन्न है और समस्त विशेषताओं की कारण है॥४८॥

एतावदुक्त्वा भगवान्विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह। ज्ञात्वा तत्परमं तत्त्वं स्वमात्मानं सुरेश्वरः॥४९॥

इतना कहकर देवेश्वर भगवान् विष्णु उस परम तत्त्व (शिव) को आत्म-स्वरूप जानकर मौन (चुप) हो गये थे॥४९॥

कुतो[3]ऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः। प्रसादं ब्रह्मणे कर्तुं प्रादुरासीत्ततो हरः॥५०॥

तब ब्रह्मा पर अनुग्रह करने के लिए अतुल्य पराक्रम युक्त आत्मा वाले प्राणियों के परमेश्वर भगवान् शिव वहाँ प्रकट हुए थे॥५०॥

ललाटनयनोऽनन्तो जटामण्डलमण्डितः। त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः॥५१॥

अनन्त महिमा वाले वह भगवान् शिव ललाट में नेत्र वाले, जटाजूट-विभूषित और हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए थे और वह परम तेजो निधान थे॥५१॥

दिव्यां विशालां ग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः। मालामत्यद्भुताकारां धारयन्पादलम्बिनीम्॥५२॥

---

१. श्रुत्वापि स तदा पभुः।, २. ब्रह्मन्ननन्ता, ३. कुतोह्यपरि

भगवान् शिव ने सूर्य, चन्द्र, तारे और नक्षत्रों से ग्रथित और पैरों तक लम्बी अद्भुत आकार की विशाल और दिव्य माला को धारण किया हुआ था॥५२॥

तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मा लोकपितामहः। मोहितो माययाऽत्यर्थं पीतवाससमब्रवीत्॥५३॥
क एष पुरुषोऽनन्तः[1] शूलपाणिस्त्रिलोचनः। तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन॥५४॥

उन भगवान् शिव को देखकर उनकी माया से अत्यन्त मोहित होकर लोकों के पितामह ब्रह्मा ने पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु से कहा- हे जनार्दन विष्णु! यह तीन नेत्रों वाला, तेजोराशि, अमेयात्मा हाथ में त्रिशूलधारी कौन पुरुष यहाँ को आ रहा है॥५३-५४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानवमर्दनः। अपश्यदीश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलेऽम्भसि॥५५॥

दानवों का संहार करने वाले भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा के उस वचन को सुनकर निर्मल जल के ऊपर देदीप्यमान देव शिव को देखा॥५५॥

ज्ञात्वा तं परमं भावमैश्वरं ब्रह्मभावनम्। प्रोवाचोत्थाय भगवान्देवदेवं पितामहम्॥५६॥
अयं देवो महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः। अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान्॥५७॥

भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा की सृष्टि विषयक ईश्वर के परमोत्कृष्ट भाव को जानकर स्वयं उठकर देवदेव पितामह से कहा कि यह देव महादेव स्वयमेव प्रकाशमान, सनातन, आदि अन्त (जन्म-मरण) रहित, अचिन्त्य और तीनों लोकों के महान् ईश्वर हैं॥ ।५६-५७॥

शङ्करः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः। भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः॥५८॥

यह शङ्कर, शम्भु, ईशान, सर्वात्मा (सभी प्राणियों का आत्मा), परमेश्वर, सभी प्राणियों के स्वामी, योगी, महादेव और निर्मल स्वभाव वाले शिव हैं॥५८॥

एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वरः। यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविताः॥५९॥

यह धाता, विधाता, प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष और ईश्वर हैं, जिनको ब्रह्म भावना से ध्यान करने से भावित योगी जन ही देख पाते हैं॥५९॥

सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा। कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः॥६०॥

यह सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और उसकी रक्षा करते हैं तथा यही महादेव निष्कल (कलातीत) शिव काल बन कर संहार भी करते हैं॥६०॥

ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः। वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायाति शङ्करः॥६१॥

जिस सनातन देव ने पूर्वकाल में आपको ब्रह्मा बनाया था और आपको चारों वेद प्रदान किये थे, वही शंकर यह हैं, जो यहाँ आ रहे हैं॥६१॥

अस्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम्। वासुदेवाभिधानां मामवेहि प्रपितामह॥६२॥

हे प्रपितामह! मुझे आप इनकी ही दूसरी मूर्ति जानें, जो कि विश्व की जंनक सनातनी और वासुदेव नामक है॥६२॥

---

१. नीलः।

किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम्। दिव्यं भवतु ते चक्षुर्येन द्रक्ष्यसि तत्परम्॥६३॥

क्या आप ब्रह्मा के भी अधिपति, अविनाशी योगेश्वर शिव को नहीं देख पा रहे हैं। आपको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाय, जिससे कि आप उन परम शिव को देख सकें॥६३॥

लब्ध्वा शैवं तदा चक्षुर्विष्णोर्लोकपितामहः। बुबुधे परमेशानं[1] पुरतः समवस्थितम्॥६४॥

तब शिव से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त कराने वाली दिव्य दृष्टि को विष्णु से प्राप्त करके लोक के पितामह ब्रह्मा ने अपने समक्ष स्थित परमेश्वर शिव को ज्ञात कर लिया था॥६४॥

स लब्ध्वा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रपितामहः। प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम्॥६५॥

वह प्रपितामह ब्रह्मा तब ईश्वर शिव विषयक परम ज्ञान प्राप्त करके उन्हीं परम पिता शिव की शरण में गये थे॥६५॥

ओङ्कारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना। अथर्वशिरसा देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः॥६६॥

तब ब्रह्मा ने सम्यक् रूप से ॐकार का स्मरण (जप) करके आत्मचिन्तन करते हुए आत्मा (मन) को नियन्त्रित करके हाथ जोड़कर अथर्वशीर्ष से भगवान् शिव की स्तुति की थी॥६६॥

संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः। अवाप परमां प्रीतिं व्याजहार स्मयन्निव॥६७॥
मत्समस्त्वं न सन्देहो मद्भक्तश्च यतो[2] भवान्। मयैवोत्पादितः पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्ययम्॥६८॥

उन ब्रह्मा के द्वारा स्तुति किये जाने पर परमात्मा शिव परम प्रसन्न हुए और मुस्कराते हुए यह बोले- निःसन्देह आप मेरे समान हो, क्योंकि आप मेरे भक्त हो। आप अविनाशी को तीनों लोकों की सृष्टि करने के लिए पूर्वकाल में मैंने ही उत्पन्न किया था॥६७-६८॥

त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो मम देहसमुद्भवः। वरं वरय विश्वात्मन्वरदोऽहं तवानघ॥६९॥

हे विश्वात्मा! तुम मेरी देह से उत्पन्न मेरी आत्मा और आदि पुरुष हो। हे अनघ! ब्रह्मा! तुम अभीष्ट वर माँगो। मैं तुम्हें (तुम्हारा अभीष्ट) वर प्रदान करूँगा॥६९॥

स देवदेववचनं निशम्य कमलोद्भवः। निरीक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्योवाच शङ्करम्॥७०॥
भगवन् भूतभव्येश महादेवाम्बिकापते। त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशं सुतम्॥७१॥

देवों के देव महादेव के वचन सुनकर ब्रह्मा ने विष्णु को देखकर परम पुरुष शिव को प्रणाम करके कहा कि हे अम्बिका के पति भगवान् महादेव! मैं पुत्र रूप में आपको ही पाना चाहता हूँ (यह संभव न हो तो) आपके समान पुत्र मुझे प्राप्त हो॥७०-७१॥

मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया। न जाने परमं भावं याथातथ्येन ते शिव॥७२॥

हे महादेव! मैं आपकी सूक्ष्म माया से मोहित (वशीभूत) हो गया हूँ। हे शिव! मैं यथार्थ रूप में आपके परम भाव को नहीं जानता हूँ॥७२॥

त्वमेव देव भक्तानां माता भ्राता पिता सुहृत्। प्रसीद तव पादाब्जं नमामि शरणं गतः॥७३॥

---

१. परमं ज्ञानं।

२. वत्स भक्तश्च मे

हे देव! आप ही भक्त-जनों के माता, पिता, भ्राता और सुहृत् हैं। आप प्रसन्न हो जावें। मैं आपकी शरण में आकर आपके चरण-कमलों में नमस्कार करता हूँ॥७३॥

स तस्य वचनं श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वजः। व्याजहार तदा पुत्रं समालोक्य जनार्दनम्॥७४॥
यदर्थितं भगवता तत्करिष्यामि पुत्रक। विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघम्॥७५॥

तब ब्रह्मा के वचन सुनकर जगदीश्वर वृषभध्वज भगवान् शिव ने विष्णु की ओर देखते हुए उस पुत्र ब्रह्मा से कहा- हे पुत्र! तुमने जो कामना की है, मैं उसे पूर्ण करूँगा। हे अनघ! तुम्हारे मन में दिव्य ईश्वरीय ज्ञान का उदय होगा॥७४-७५॥

त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजितः। तथा कुरुष्व देवेश मया लोकपितामह॥७६॥

मैंने तुमको सभी प्राणियों का प्रथम बार सृष्टिकर्ता नियुक्त किया है। हे लोक के पितामह देवेश! जैसा मैंने कहा है, वैसा करो॥७६॥

एष नारायणोऽनन्तो ममैव परमा तनुः। भविष्यति तवेशानो योगक्षेमवहो हरिः॥७७॥

यह अनन्त भगवान् विष्णु मेरा ही परमोत्तम शरीर है। यह परमेश्वर भगवान् विष्णु तुम्हारे योग-क्षेम कर्ता बनेंगे॥७७॥

एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रीतात्मा परमेश्वरः। संस्पृश्य देवं ब्रह्माणं हरिं वचनमब्रवीत्॥७८॥

प्रसन्न मन वाले परमेश्वर शिव ने ऐसा कह कर ब्रह्मा को अपने हाथों से स्पर्श करके विष्णु से यह वचन कहे॥७८॥

तुष्टोऽस्मि सर्वथाहं ते भक्त्या त्वं जगन्मय। वरं वृणीष्व नावाभ्यामन्योऽस्ति परमार्थतः॥७९॥

हे जगन्मय! आपकी भक्ति से मैं आप पर सर्वथा प्रसन्न रहता हूँ। आप मुझसे वर माँगो। वस्तुतः हम दोनों से पृथक् अन्य कोई भी यहाँ नहीं है॥७९॥

श्रुत्वाथ देववचनं विष्णुर्विश्वजगन्मयः। प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य च तन्मुखम्॥८०॥

भगवान् शिव के वचन सुनकर सर्वजगत्मय विष्णु ने शिव के मुख को देखकर प्रसन्नतापूर्वक यह वचन कहे॥८०॥

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं परमेश्वरम्। पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि॥८१॥

मेरे लिए यही वर श्लाघनीय है जो कि मैं परमेश्वर शिव को देख रहा हूँ। हे परमात्मा शिव! मेरी आप में भक्ति बनी रहे॥८१॥

तथेत्युक्त्वा महादेवः पुनर्विष्णुमभाषत। भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम्॥८२॥

महादेव ने तथास्तु कह कर विष्णु से पुनः यह कहा- आप समस्त कार्यों के कर्ता हैं और मैं उनका अधिदेवता हूँ॥८२॥

त्वन्मयं मन्मयं चैव सर्वमेतन्न संशयः। भवान् सोमस्त्वहं सूर्यो भवान्रात्रिरहं दिनम्॥८३॥

यह सम्पूर्ण जगत् आप से और मुझसे युक्त (अर्थात् विष्णुमय और शिवमय) है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप चन्द्रमा हैं, मैं सूर्य हूँ। आप रात्रि हैं, मैं दिन हूँ॥८३॥

भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च। भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान्मायाहमीश्वरः॥८४॥

आप प्रकृति हैं, में ही अव्यक्त पुरुष हूँ। आप ज्ञान हैं, मैं ज्ञाता हूँ। आप माया हैं और मैं ईश्वर हूँ॥८४॥

भवान्विद्यात्मिका शक्तिः शक्तिमानहमीश्वरः। योऽहं स निष्कलो देवः सोऽपि नारायणः प्रभुः॥८५॥

आप विद्या स्वरूपा शक्ति हैं और मैं शक्तिमान ईश्वर हूँ। जो मैं निष्कल (कला रहित) देव शिव हूँ वही साक्षात् भगवान् विष्णु है॥८५॥

एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिनः। त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन्न योगी मामुपैष्यति।
पालयैतज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्॥८६॥

ब्रह्मवादी योगी जन हम दोनों को एक भाव से (अर्थात् अभिन्न रूप में) देखते हैं। हे विश्वात्मा विष्णु! आपका आश्रय लिए बिना कोई भी योगी मुझे नहीं प्राप्त कर सकता है। आप देवों, असुरों और मनुष्यों सहित इस सम्पूर्ण जगत् का पालन करें॥८६॥

इतीदमुक्त्वा भगवाननादिः स्वमायया मोहितभूतभेदः।
जगाम जनमर्द्धिविनाशहीनं धामैकमव्यक्तमनन्तशक्तिः॥८७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

अपनी माया से समस्त प्राणियों को मोहित करने वाले अनन्त शक्ति-सम्पन्न अनादि भगवान् (कूर्मरूप धारी विष्णु) इतना सब कह कर अपने जन्म, वृद्धि और विनाश से रहित (शाश्वत) अव्यक्त धाम को चले गये थे॥८७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णन' नामक नवाँ अध्याय पुरा हुआ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

रुद्रसृष्टिः

श्रीकूर्म उवाच

गते महेश्वरे देवे भूय एव पितामहः। तदेव सुमहत्पद्मं भेजे नाभिसमुत्थितम्॥१॥

भगवान् शिव के अपने स्थान को प्रस्थान के उपरान्त पितामह ब्रह्म जी भगवान् विष्णु की नाभि से उत्पन्न उसी विशालकाय सुन्दर कमल में निवास करने लगे थे॥१॥

अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ। महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ॥२॥

तब दीर्घकाल बीतने पर वहाँ अतुलनीय बलशाली मधु और कैटभ नामक विशालकाय असुर आये॥२॥

क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ। कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः॥३॥

वे दोनों अत्यन्त क्रोधान्वित थे। उनका शरीर विशाल पर्वत के समान था। वे देवाधिदेव शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् विष्णु के कान के अन्दर से उत्पन्न हुए थे॥३॥

तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः। त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि॥४॥

उन दोनों को आया हुआ देखकर अजन्मा प्रभु ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु से कहा कि तीनों लोकों के लिए कण्टक-स्वरूप इन दोनों असुरों का आप वध कर सकते हैं॥४॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हरिर्नारायणः प्रभुः। आज्ञापयामास तयोर्वधार्थं पुरुषावुभौ॥५॥
तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद् द्विजाः। व्यजयत्कैटभं जिष्णुः विष्णुश्च व्यजयन्मधुम्॥६॥

ब्रह्मा के इन वचनों को सुनकर भगवान् नारायण विष्णु ने उन दोनों असुरों के वध हेतु दो पुरुषों (जिष्णु और विष्णु) को आदेश दिया था। हे द्विजो! तब भगवान् नारायण की आज्ञानुसार उन दोनों (जिष्णु और विष्णु) ने दो असुरों के साथ महायुद्ध किया था। जिष्णु ने कैटभ और विष्णु ने मधु नामक असुर पर विजय प्राप्त की थी॥५-६॥

ततःपद्मासनासीनं जगन्नाथःपितामहम्। बभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः॥७॥
अस्मान्मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो। नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयं गुरुम्॥८॥

तब स्नेह से परिपूर्ण मन वाले जगत् के स्वामी भगवान् हरि ने कमल के आसन में विराजमान पितामह ब्रह्मा से मधुर वचनों में यह कहा कि हे प्रभो! मेरे द्वारा वहन किये जाने वाले इस कमल के ऊपर से आप उतर जाइए। परम तेजोमय और गुरु (भारी) आपको मैं सहन करने में असमर्थ हूँ॥७-८॥

ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः। अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूतोऽथ विष्णुना॥९॥

तब वह विश्वात्मा ब्रह्मा उस कमल से उतर कर भगवान् विष्णु की देह में प्रविष्ट होकर उनके साथ एकाकार होकर वैष्णवी निद्रा (अर्थात् विष्णु के साथ एकाकार होकर उनके ही स्वरूप में निद्रा) में मग्न हो गये थे॥९॥

सह तेन तथाविश्य शङ्खचक्रगदाधरः। ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा॥१०॥

इस प्रकार भगवान् हरि के शरीर में प्रविष्ट होकर वह शंख, चक्र और गदाधारी नारायण नामक बनकर वह ब्रह्मा क्षीरसागर के जल में सो गये थे॥१०॥

सोऽनुभूय चिरं कालमानन्दं परमात्मनः। अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥११॥
ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वा देवश्चतुर्मुखः। ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः॥१२॥

उन देव ब्रह्मा ने (विष्णु के शरीर में रहते हुए) चिरकाल तक परमात्मा के अनादि, अनन्त, ब्रह्म संज्ञक आत्मा के स्वरूप के आनन्द का अनुभव करने के बाद प्रभात काल में योगात्मा चतुर्मख (चार मुखों वाला) वाला वैष्णव भाव (विष्णु-स्वरूप) धारण करके उसी (वैष्णव) रूप वाली सृष्टि की थी॥११-१२॥

पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा। ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वजं तं सनातनम्॥१३॥

तब ब्रह्मा ने सर्वप्रथम सनन्दन, सनक, ऋभु, सनत्कुमार और सनातन संज्ञक पूर्वजों की सृष्टि की थी॥१३॥

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिताः। विदित्वा परमं भावं ज्ञानं सृष्टौ दधिरे मतिम्॥१४॥

वे (सुख-दुःख) आदि द्वन्द्वों और मोह (आसक्ति) से रहित और परम वैराग्य भाव वाले थे। उन्होंने परम भाव (तत्त्व) का ज्ञान हो जाने के कारण सृष्टि करने में अपनी बुद्धि नहीं लगायी थी॥१४॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ पितामहः। बभूव नष्टचेता वै मायया परमेष्ठिनः॥१५॥

लोक-सृष्टि के प्रति उनके विरक्त हो जाने के कारण परमेष्ठी भगवान् विष्णु की माया से वह पितामह ब्रह्मा नष्ट चेतना वाले अर्थात् कर्तव्य-विमूढ हो गये थे॥१५॥

ततः पुराणपुरुषो जगन्मूर्तिः सनातनः। व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम्॥१६॥

तब जगत् की प्रतिमूर्ति स्वरूप पुराण पुरुष सनातन परमात्मा विष्णु ने अपने पुत्र ब्रह्मा का मोहभंग करने के लिए उनसे यह कहा॥१६॥

विष्णुरुवाच

कच्चिन्नु विस्मृतो देवः शूलपाणिः सनातनः। यदुक्तो वै पुरा शम्भुः पुत्रत्वे भव[1] शङ्कर॥१७॥

विष्णु बोले- कहीं आप त्रिशूलधारी सनातन देव शिव को विस्मृत तो नहीं कर दिये हो, जो कि पूर्वकाल में आपने शिव से कहा था कि हे शिव तुम मेरे पुत्र बनो॥१७॥

अवाप्य[2] संज्ञां गोविन्दात्पद्मयोनिः पितामहः। प्रजाः स्रष्टुं मनश्चक्रे तपः परमदुस्तरम्॥१८॥

भगवान् विष्णु से चेतना प्राप्त कर पद्मयोनि (कमल में उत्पन्न) ब्रह्मा ने प्रजाओं की सृष्टि का मन बनाकर परम दुश्चर (कठिन) तपस्या की थी॥१८॥

तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्तत। ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत॥१९॥

उनके द्वारा इस प्रकार तपस्या किये जाने पर जब कुछ भी नहीं हो सका (और तप करते हुए) दीर्घकाल बीत गया तो ब्रह्मा को बहुत दुःख हुआ और फिर क्रोध आ गया था॥१९॥

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः। ततस्तेभ्यः समुद्भूताः भूताः प्रेतास्तथाभवन्॥२०॥

तब क्रोधाविष्ट ब्रह्मा के नेत्रों से आँसुओं की बूंदें टपक पड़ी थी और आँसुओं की बूँदों से भूत-प्रेत उत्पन्न हो गये थे॥२०॥

सर्वांस्तानग्रतो दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत। जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः॥२१॥

उन सबको अपने आगे देखकर ब्रह्मा स्वयं अपनी निन्दा करने लगे और क्रोधित होकर उन प्रजापति ने अपने प्राण त्याग दिये थे॥२१॥

तदा प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्। प्राणांस्तस्य ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः।[3]
सहस्रादित्यसङ्काशो युगान्तदहनोपमः॥२२॥

तब उन प्रभु ब्रह्मा के मुख से प्राणमय रुद्र का प्रादुर्भाव हुआ। उन त्रिशूलधारी नीललोहित

१. तप, २. अवाप, ३. द्रष्टव्य- लिङ्गपुराण पू० २२/२६

भगवान् शिव ने ब्रह्मा को प्राणदान करके पुनर्जीवित कर दिया था। वह रुद्र सहस्रों सूर्यों के समान दीप्तिमान और प्रलयकालीन अग्नि-ज्वाला के समान ज्वलन्त तेज वाले थे॥२२॥

रुरोद सुस्वरं घोरं देवदेवः स्वयं शिवः। रोदमानं ततो ब्रह्मा मा रोदीरित्यभाषत।
रोदनाद् रुद्र इत्येवं लोके ख्यातिं गमिष्यसि॥२३॥

वह देवों के देव शिव उच्च स्वर से घोर रुदन करने लगे थे। उन रुदन करते हुए शिव से ब्रह्मा ने कहा आप रुदन मत करो। रुदन करने से लोक में आप रुद्र नाम से ख्याति प्राप्त करोगे॥२३॥

अन्यानि सप्त नामानि पत्नीः पुत्रांश्च शाश्वतान्। स्थानानि तेषामष्टानां ददौ लोकपितामहः॥२४॥

लोकपितामह ब्रह्मा ने रुद्र को अन्य सात तत्सदृश स्वरूप वाले रुद्रों सहित उनकी पत्नियाँ और चिरन्तन पुत्रों सहित उन आठों रुद्रों को उनके स्थान भी प्रदान किये थे॥२४॥

भवः शर्वस्तथेशानः पशूनां पतिरेव च। भीमश्चोग्रो महादेवस्तानि नामानि सप्त वै॥२५॥

सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च। दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्तयः॥२६॥

आठ रुद्रों में रुद्र के अतिरिक्त भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ये सात नाम हैं। सूर्य, जल, पृथिवी, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा और यज्ञ में दीक्षित ब्राह्मण सहित ये शिव की प्रत्यक्ष आठ मूर्तियाँ हैं॥२५-२६॥

स्थानेष्वेतेषु ये रुद्रं ध्यायन्ति प्रणमन्ति च। तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परमं पदम्॥२७॥

जो मनुष्य इन आठ स्थानों में रुद्र का ध्यान करते हैं और उनको प्रणाम करते हैं, उनको अष्टमूर्ति भगवान् रुद्र परम पद प्रदान करते हैं॥२७॥

सुवर्चला तथैवोमा विकेशी च शिवा तथा। स्वाहा दिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नयः॥२८॥

सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा तथा रोहिणी ये क्रमशः आठों रुद्रों की पत्नियाँ हैं॥२८॥

शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः। स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चैषां सुताः स्मृताः॥२९॥

शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव (काम), स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध नामक आठ पुत्र उन आठ रुद्रों के थे॥२९॥

एवं प्रकारो भगवानूदेवदेवो महेश्वरः। प्रजाधर्मञ्च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमाश्रितः॥३०॥

इस प्रकार के उन देवों के देव भगवान् महादेव ने प्रजा-धर्म (सृष्टिकार्य) और कामोपभोग की भावना को त्याग कर वैराग्य भाव को स्वीकार कर लिया था॥३०॥

आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थितः। पीत्वा तदक्षरं ब्रह्म शाश्वतं परमामृतम्॥३१॥

अविनाशी अक्षर ब्रह्मरूपी शाश्वत (सनातन) परम अमृत का पान करके अपनी आत्मा में परम अमृतत्व को धारण करके वह रुद्र ईश्वरीय भाव में स्थित हो गये थे॥३१॥

प्रजाः सृजेति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः। स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः॥३२॥

ब्रह्मा के द्वारा प्रजाओं की सृष्टि करने का आदेश दिये जाने पर उन नीललोहित शिव ने मन से (अर्थात् मानसी सृष्टि से) अपने समान रुद्रों की सृष्टि की थी॥३२॥

कपर्दिनो निरातङ्कान्नीलकण्ठान् पिनाकिनः। त्रिशूलहस्तानृष्टिघ्नान् सदानन्दांस्त्रिलोचनान्॥३३॥
जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान्। वीतरागांश्च सर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान्प्रभुः॥३४॥

वे सभी रुद्र जटाजूटधारी, निरातंक (निर्भीक), नीले कण्ठ वाले, पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले, हाथ में त्रिशूल को धारण किये हुए, ऋष्टिघ्न (कृपाण से प्रहार करने वाले), सैदव आनन्दित रहने वाले, तीन नेत्रों वाले, जरामरण से रहित, महा वृभष वाहन वाले, वीतराग और सर्वज्ञ थे। ऐसे कोटि कोटि (करोड़ों) रुद्रों की भगवान् शिव ने मानसी सृष्टि की थी॥३३-३४॥

तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान्। जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहार हरं गुरुः॥३५॥
मा स्राक्षीरीदृशीर्देव प्रजा मृत्युविवर्जिताः। अन्याः सृजस्व भूतेश जन्ममृत्युसमन्विताः॥३६॥

उन विविध प्रकार के निर्मल, नीललोहित, जरामरण रहित रुद्रों को देखकर गुरु ब्रह्मा ने शिव से कहा कि हे देव! इस प्रकार की मृत्यु रहित प्रजा की सृष्टि मत करो। हे भूतेश! आप जन्म और मरण (मृत्यु) प्राप्त करने वाली अन्य प्रजा की सृष्टि करो॥३५-३६॥

ततस्तमाह भगवान् कपर्दी कामशासनः। नास्ति मे तादृशः सर्गः सृज त्वमशुभाः प्रजाः॥३७॥

तब कामदेव के दहनकर्ता जटाजूटधारी भगवान् शिव ने ब्रह्मा से कहा कि मेरे पास वैसी सृष्टि नहीं है। वैसी अशुभ प्रजा की सृष्टि आप ही करें॥३७॥

ततःप्रभृति देवोऽसौ न प्रसूतेऽशुभाः प्रजाः[1]। स्वात्मजैरेव तै रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत।
स्थाणुत्वं तेन तस्यासीद्देवदेवस्य शूलिनः॥३८॥

तब से भगवान् शिव ने अशुभ प्रजाओं की सृष्टि नहीं की। वह सृष्टिकर्म से निवृत्त होकर (विरक्त भाव से) अपने आत्मजों (भव, शर्व, ईशान आदि) के साथ वीतराग होकर रहने लगे थे। उसी कारण त्रिशूलधारी भगवान् शिव का 'स्थाणु' (=अटल) नाम प्रसिद्ध हुआ था॥३८॥

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः। द्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च॥३९॥
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शङ्करे। एवं स शङ्करः साक्षात्पिनाकी परमेश्वरः॥४०॥

ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति (धैर्य), द्रष्टृत्व (द्रष्टा होना), आत्मबोध और अधिष्ठातृत्व ये दस अविनाशी गुण सदैव शिव में विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार वह पिनाकधारी शिव साक्षात् परमेश्वर हैं॥३९-४०॥

ततः स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देवं त्रिलोचनम्। सहैव मानसैः पुत्रैः प्रीतिविस्फारिलोचनः॥४१॥
ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा। तुष्टाव जगतामीशं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥४२॥

तब भगवान् ब्रह्मा ने प्रसन्नता के कारण निर्निमेष (पलकों को झपकाये बिना एकटक) दृष्टि से शिव और उनके आठ मानस पुत्रों (भव, शर्व, ईशान आदि पूर्वोक्त) को देखते हुए ज्ञान रूपी नेत्रों से उन

१. स्रष्टृत्व

भगवान् शिव के परात्पर ईश्वरीय भाव (परमेश्वर रूप) को जान कर अपने हाथ जोड़कर उन हाथों में शिर को झुका कर जगदीशवर शिव की स्तुति की थी॥४१-४२॥

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर। नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे॥४३॥

ब्रह्मा बोले- हे महादेव आपको नमस्कार है। हे परमेश्वर आपको नमस्कार है। भगवान् शिव को नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूप देव को नमस्कार है॥४३॥

नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे। प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः॥४४॥

हे महादेव आपको नमस्कार है। हे शान्त स्वभाव वाले, जगत् के कारण आपको नमस्कार है। प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष के स्वामी और योगाधिपति आपको नमस्कार है॥४४॥

नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने। नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः॥४५॥

कालस्वरूप, रुद्र, महाग्रास स्वरूप (प्रलय कारक), त्रिशूलधारी, पिनाक नामक धनुषधारी, तीन नेत्रों वाले आपको नमस्कार है॥४५॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय ते। ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने॥४६॥

हे त्रिमूर्ति! ब्रह्मा के पिता, ब्रह्मविद्या के अधिपति और ब्रह्मविद्या के प्रदाता आपको नमस्कार है॥४६॥

नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः। वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्तये॥४७॥

हे वेद के रहस्य, हे काल के काल आपको नमस्कार है। हे वेदान्त के सारांश के सार स्वरूप और वेदों की आत्मा के मूर्तरूप आपको नमस्कार है॥४७॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय योगिनां गुरवे नमः। प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते॥४८॥

हे बुद्ध और शुद्ध रूप आपको नमस्कार है। योगी जनों के गुरु को नमस्कार है। शोक रहित विविध प्राणियों से घिरे हुए आपको नमस्कार है॥४८॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः। त्र्यम्बकायादिदेवाय नमस्ते परमेष्ठिने॥४९॥

ब्रह्मण्य देव और ब्रह्मा के अधिपति को नमस्कार है। त्र्यम्बक, आदिदेव और परमेष्ठी को नमस्कार है॥४९॥

नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने। अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः॥५०॥

दिगम्बर, मुण्डमालाधारी और दण्डधारी देव को नमस्कार है। अनादि, निर्मल और ज्ञानगम्य भगवान् को नमसकार है॥५०॥

नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे। नमो धर्मादिगम्याय योगगम्याय ते नमः॥५१॥

तारण करने वाले, तीर्थ-स्वरूप, योगसिद्धियों के हेतु रूप आपको नमस्कार है। हे धर्माचरण से प्राप्य और योगाभ्यास से संप्राप्य देव आपको नमस्कार है॥५१॥

नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः। ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने॥५२॥

हे प्रपञ्चरहित आपको नमस्कार है। हे निराभास! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा संज्ञक विश्वरूप परमात्मा को नमस्कार है॥५२॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्। त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय॥५३॥

हे जगत्मय! आपने ही अखिल जगत् की सृष्टि की है। आप ही इसकी स्थितिकर्ता (पालनकर्ता) हैं और आपके द्वारा ही प्रधान (=प्रकृति) आदि समग्र विश्व का संहार किया जाता है॥५३॥

त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः। परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः॥५४॥

आप ही ईश्वर, महादेव, परमब्रह्म, महेश्वर, परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल तथा हर भी हैं॥५४॥

त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः। त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा॥५५॥

आप अक्षर (अविनाशी), परं ज्योति, काल स्वरूप और परमेश्वर हैं। आप ही अनन्त, पुरुष तथा प्रधान प्रकृति हैं॥५५॥

भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहङ्कार एव च। यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम्॥५६॥

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश और अहंकार भी जिसका रूप है, ऐसे परं ब्रह्म संज्ञक आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥५६॥

यस्य द्यौरभवन्मूर्द्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः। आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम्॥५७॥

स्वर्ग लोक जिनका मस्तक है, पृथिवी जिनका चरण हैं, दिशाएँ जिनकी भुजा हैं, आकाश जिनका उदर (पेट) है, ऐसे विराट् पुरुष को मैं नमस्कार करता हूँ॥५७॥

सन्तापयति यो विश्वं स्वभाभिर्भासयन् दिशः। ब्रह्मतेजोमयं नित्यं तस्मै सूर्यात्मने नमः॥५८॥

जो अपनी आभा से सभी दिशाओं को आलोकित करते हुए इस विश्व को अपनी उष्मा से उष्ण (गरम) रखता है, ऐसे नित्यमेव ब्रह्मतेजोमय सूर्य रूपी शिव को नमस्कार है॥५८॥

हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः। कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः॥५९॥

जो नित्यमेव देवों के लिए हव्य और पितरों के लिए कव्य को पहुँचाता है, उस रुद्रतेजोमय आपके अग्निस्वरूप को नमस्कार है॥५९॥

आप्याययति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत्। पीयते देवतासंघैस्तस्मै सोमात्मने नमः॥६०॥

जो अपने तेज से नित्यमेव सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करते हैं और जिनको देवसमूहों के द्वारा (अमृतरूप में) पान किया जाता है, आपके उस सोम स्वरूप को नमस्कार है॥६०॥

बिभर्त्यशेषभूतानि योऽन्तश्चरति सर्वदा। शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः॥६१॥

जो सम्पूर्ण प्राणिजगत् को धारण करती है और उनके अन्दर (सांस रूप में) विचरण करती है, ऐसी वायु रूपी माहेश्वरी शक्ति आपको नमस्कार है॥६१॥

सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः। आत्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः॥६२॥

जो सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों को उनके कर्मानुसार विभिन्न योनियों में उत्पन्न करते हैं, उन अपनी आत्मा में स्थित चतुर्मुख ब्रह्मास्वरूप आपको नस्कार है॥६२॥

यः शेषशयने शेते विश्वमावृत्य मायया। स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विष्ण्वात्मने नमः॥६३॥

जो अपने आत्मा में अनुभव किये जाने वाले योग के बल से माया के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को आवृत करके शेष-शय्या में शयन करते हैं, उन विष्णु स्वरूप आपको नमस्कार है॥६३॥

बिभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम्। ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः॥६४॥

जो चौदह भुवनों (लोकों) वाले इस ब्रह्माण्ड को अपने शिर पर धारण करते हैं, उन अखिल ब्रह्माण्ड के आधार शेषनाग रूपी आत्मा वाले आपको नमस्कार है॥६४॥

यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकसाक्षिकम्। नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः॥६५॥

जो परान्त में (ब्रह्मा की आयु के अन्त में जब प्रलय काल आता है, तब) एकमात्र साक्षी बनकर परम आनन्द रूपी दिव्य रस का पान करके नृत्य करते हैं, ऐसे अनन्त महिमा वाले रुद्र स्वरूप आपको नमस्कार है॥६५॥

योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः। तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ये विश्वतस्तनुम्॥६६॥

सभी प्राणियों के अन्दर नियन्ता (शासक) के रूप में विद्यमान सर्वसाक्षी विश्वरूप ईश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ॥६६॥

यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु। कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः॥६७॥

जिनके केशों में मेघ हैं, जिनके सभी अंगों-प्रत्यङ्गों की सन्धियों (?धमनियों) में नदियाँ हैं तथा उदर में चारों समुद्र हैं, ऐसे जलरूप आत्मा वाले आपको नमस्कार है॥६७॥

यं विनिद्रा जितश्वासाः सन्तुष्टाः समदर्शिनः। ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः॥६८॥

निद्रा रहित, श्वास पर विजय पाने वाले, सन्तुष्ट और समदर्शी तथा योगसाधना में निरत योगी जन जिन ज्योति स्वरूप परमात्मा का दर्शन करते हैं, उन योगात्मा को नमस्कार है॥६८॥

यया सन्तरते मायां योगी संक्षीणकल्मषः। अपारतरपर्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः॥६९॥

निष्पाप योगी जन जिस विद्या के बल पर अत्यन्त दुस्तर माया को पार करते हैं, उस विद्या स्वरूप देव आपको नमस्कार है॥६९॥

यस्य भासा विभात्यर्को महो यत्तमसः परम्। प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं तद्रूपं परमेश्वरम्॥७०॥

जिनके प्रकाश से सूर्य दीप्तिमान होता है, जो अन्धकार से परे परम प्रकाशमय हैं, मैं उसी प्रकाशमान परमतत्त्व रूप परमेश्वर की शरण में जाता हूँ॥७०॥

नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम्। प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम्॥७१॥

मैं नित्य, आनन्दमय, निराधार, कलातीत, परमात्मा परम शिव संज्ञक परमेश्वर की शरण में जाता हूँ॥७१॥

एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा तद्भावभावितः। प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम्॥७२॥

इस प्रकार महादेव की स्तुति करके ब्रह्मा उनके ही ध्यान में भावविभोर होकर उन सनातन परं ब्रह्म का गुणगान करते हुए हाथ जोड़ कर वहीं प्रणाम करने की मुद्रा में स्थित हो गये थे॥७२॥

ततस्तस्मै महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम्। ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः॥७३॥

तब महोदव शिव ने ब्रह्मा को अति उत्तम दिव्य योग का ज्ञान, ऐश्वर्य, ब्रह्म विषयक उत्तम भावना और वैराग्य भाव प्रदान किया था॥७३॥

कराभ्यां कोमलाभ्यां च संस्पृश्य प्रणतार्तिहा। व्याजहार स्मयन्नेव सोऽनुगृह्य पितामहम्॥७४॥
यत्त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वे भव त्वं[1] मम। कृतं मया तत्सकलं सृजस्व विविधं जगत्॥७५॥

तब शरणागत भक्तों के कष्टहर्ता भगवान् शिव ने अपने कोमल हाथों से ब्रह्मा का स्पर्श करके उन पर अनुग्रह करके मुस्करा कर यह कहा- हे ब्रह्मा जो आपने मुझसे कहा था कि तुम मेरे पुत्र बनो, आपका वह आदेश (पुत्र का कार्य) मैंने पूर्णतः कर दिया है। अब आप विविध प्रकार के जगत् की सृष्टि करो॥७४-७५॥

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया। सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः॥७६॥

हे ब्रह्मा! मैं कलातीत (कलारहित) परमेश्वर ही सृष्टि करने, पालन करने और संहार करने के विभिन्न गुणों के कारण ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन रूपों विभक्त होकर प्रकट हुआ हूँ॥७६॥

स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः। ममैव दक्षिणादङ्गाद्वामाङ्गात्पुरुषोत्तमः॥७७॥

हे ब्रह्मा! आप मेरे सर्वप्रथम उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र हो और सृष्टिकार्य हेतु बनाये गये हो। आप मेरे दक्षिण (दाहिने) अङ्ग से उत्पन्न हुए हो और वामाङ्ग से पुरुषोत्तम विष्णु उत्पन्न हुए हैं॥७७॥

तस्य देवाधिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः। सम्बभूवाथ रुद्रो वा सोऽहं तस्य परा तनुः॥७८॥

देवाधिदेव शम्भु के हृदय क्षेत्र से रुद्र उत्पन्न हुए थे, उन्हीं का दूसरा शरीर मैं स्वयं हूँ॥७८॥

ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः। विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शङ्करः स्थितः॥७९॥

हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा विष्णु और शिव क्रमशः सृष्टि, स्थिति (पालन) और संहार के हेतु हैं। एक भगवान् शंकर ही स्वेच्छया इन तीन देवों के रूप में विभक्त होकर स्थित हैं॥७९॥

तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि च। अरूपः केवलः स्वस्थो महादेवः स्वभावतः॥८०॥

इसी प्रकार जो भी अन्य देवों के रूप हैं, वे भी मेरी ही माया के द्वारा बने हैं। महादेव तो स्वभावतः रूप रहित अद्वितीय और स्वस्थ (स्वात्मा में ही रमणशील) हैं॥८०॥

य एभ्यः परतो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः। माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा॥८१॥

इन तीनों देवों से पृथक् त्रिमूर्ति का समन्वित परम श्रेष्ठ महेश्वर संज्ञक स्वरूप तीन नेत्रों वाला है और योगियों को सदा शान्ति देने वाला है॥८१॥

---

१. भवते, भवतो, भवता

तस्या एव परां मूर्तिं मामवेहि पितामह। शाश्वतैश्वर्यविज्ञानं तेजोयोगसमन्वितम्॥८२॥

हे पितामह! आप मुझको उन्हीं परम माहेश्वर का दूसरा स्वरूप समझो जो कि सनातन ऐश्वर्य, विज्ञान, तेज और योग शक्ति से युक्त है॥८२॥

सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम्। कालो भूत्वा न मनसा मामन्योऽभिभविष्यति॥८३॥

वही मैं तमोगुण का आश्रय लेकर काल बन कर सम्पूर्ण जगत् का संहार करता हूँ। अन्य कोई मन से भी मुझे पराजित नहीं कर सकता॥८३॥

यदा यदा हि मां नित्यं विचिन्तयसि पद्मज। तदा तदा मे सान्निध्यं भविष्यति तवानघ॥८४॥

हे कमल में उत्पन्न अनघ (निष्पाप) ब्रह्मा! आप नित्यमेव जब जब मेरा स्मरण करोगे तब तब आप मुझे अपने समीप पाओगे॥८४॥

एतावदुक्त्वा ब्रह्माणं सोऽभिवन्ध गुरुं हरः। सहैव मानसैः पुत्रैः क्षणादन्तरधीयत॥८५॥

गुरु ब्रह्मा से इतना कहकर उनका अभिवादन करके वह महादेव अपने मानस पुत्रों सहित क्षण मात्र में अन्तर्धान हो गये थे॥८५॥

सोऽपि योगं समास्थाय ससर्ज विविधं जगत्। नारायणाख्यो भगवान्यथापूर्वं प्रजापतिः॥८६॥

तब उन नारायण नामक भगवान् प्रजापति ने योग शक्ति का आश्रय लेकर पूर्ववत् विविध जीव जगत् की सृष्टि की थी॥८६॥

मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। दक्षमत्रिं वसिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया॥८७॥

उन्होंने योग विद्या के बल से मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ की सृष्टि की थी॥८७॥

नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयो मतः। सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधका ब्रह्मवादिनः॥८८॥

पुराणों के अनुसार निश्चयमेव ये नौ ब्रह्मा माने गये हैं॥ वे सभी ब्रह्मा के तुल्य साधक और ब्रह्मवादी हैं॥८८॥

सङ्कल्पं चैव धर्मञ्च युगधर्मांश्च शाश्वतान्। स्थानाभिमानिनः सर्वान्यथा ते कथितं पुरा॥८९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे रुद्रसृष्टिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

—***—

जैसा कि पहले कहा था, वही संकल्प, धर्म तथा शाश्वत युगधर्मों और स्थानाभिमानी देवादि की कथा मैंने तुमको कह दी है॥८९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में रुद्रसृष्टि वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१०॥

❖❖❖

अथैकादशोऽध्यायः
देव्या अवतार-वर्णनम्

श्रीकूर्म उवाच

एवं सृष्ट्वा मरीच्यादीन्देवदेवः पितामहः। सहैव मानसैः पुत्रैस्तताप परमं तपः॥१॥

श्री कूर्म बोले- देवदेव पितामह ब्रह्मा ने इस (पूर्वोक्त) प्रकार से मानसी सृष्टि करके अपने उन मानस पुत्रों (मरीचि, भृगु, अङ्गिरा आदि) के साथ ही परम दुश्चर तप किया था॥१॥

तस्यैवं तपतो वक्त्राद्रुद्रः कालाग्निसन्निभः। त्रिशूलपाणिरीशानः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः॥२॥

इस प्रकार तपश्चर्यारत ब्रह्मा जी के मुख से कालाग्नि (प्रलयकालीन अग्नि) के समान [दीप्तिमान] रुद्र प्रकट हुए थे। वे ईशान (शिव) तीन नेत्रों वाले थे और हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए थे॥२॥

अर्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योऽतिभयङ्करः। विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्मा चान्तर्दधे भयात्॥३॥

उनका आधा शरीर नारी का और आधा नर का था। उनको देख पाना कठिन था। वह अति भयंकर थे। भयभीत ब्रह्मा ने उनसे कहा कि आप अपने शरीर को (स्त्री और पुरुष रूप) दो भागों में विभक्त करें। ऐसा कह कर वह ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये थे॥३॥

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वमथाकरोत्। बिभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा पुनः॥४॥

ऐसा कहे जाने पर उन्होंने अपने शरीर को द्विधा (दो रूपों में) विभाजित करके एक रूप स्त्री का और दूसरा पुरुष का बनाकर उस पुरुष रूप को भी ग्यारह रूपों में विभक्त किया था॥४॥

एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः। कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः॥५॥

ये एकादश रुद्र तीनों लोकों के स्वामी कहे गये हैं। ये कपाली (कपालधारी) ईश आदि रुद्र देवों के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए नियुक्त किये गये थे॥५॥

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः। बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः॥६॥

उन प्रभु रुद्र ने (अपने शरीर से पृथक् किये गये) नारी स्वरूप को भी सौम्य, असौम्य (रौद्र), शान्त, अशान्त तथा गौर वर्ण एवं कृष्ण (काला) वर्ण वाले अनेक स्वरूपों में विभक्त किया था॥६॥

ता वै विभूतयो विप्रा विश्रुताः शक्तयो भुवि। लक्ष्म्यादयो यद्वपुषा विश्वं व्याप्नोति शाङ्करी॥७॥

हे विप्रो! वे नारी रूपी विभूतियाँ इस पृथिवी में शक्ति रूप में प्रसिद्ध हैं। उन लक्ष्मी आदि देवियों के रूप में ही भगवान् शंकर की अर्धाङ्गिनी शक्ति विश्व में व्याप्त है॥७॥

विभज्य पुनरीशानी स्वात्मांशमकरोद् द्विजाः। महादेवनियोगेन पितामहमुपस्थिता॥८॥

तामाह भगवान् ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव। सापि तस्य नियोगेन प्रादुरासीत्प्रजापतेः॥९॥

हे द्विजो! शंकर की ईशानी शक्ति ने अपने एक अंश को विभाजित कर पृथक् देवी के रूप में प्रकट किया था। वह देवी भगवान् महादेव के आदेशानुसार पितामह ब्रह्मा के पास गयी। तब ब्रह्मा ने उससे कहा कि तुम दक्ष प्रजापति की कन्या बनो। तब उनकी आज्ञानुसार वह प्रजापति दक्ष की कन्या रूप में उत्पन्न हुई थी॥८-९॥

नियोगाद् ब्रह्मणो देवीं ददौ रुद्राय तां सतीम्। दाक्षीं रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत्॥१०॥

ब्रह्म के आदेशानुसार दक्ष ने अपनी कन्या सती रुद्र को दी थी। त्रिशूल धारण करने वाले रुद्र ने उस दक्ष कन्या सती को अपनी पत्नी रूप में ग्रहण किया था॥१०॥

प्रजापतिविनिर्देशात्कालेन परमेश्वरी। विभज्य पुनरीशानी आत्मानं शङ्कराद्विभोः॥११॥
मेनायामभवत्पुत्री तदा हिमवतः सती। स चापि पर्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम्॥१२॥

कालान्तर में प्रजापति ब्रह्मा के ही निर्देशानुसार उस परमेश्वरी सती ने स्वयं को भगवान् शिव से पृथक् करके हिमवान् की पुत्री के रूप में माता मेना के गर्भ से जन्म लिया था। उस पर्वतराज हिमालय ने भी अपनी वह कन्या पार्वती भगवान् शिव को प्रदान की थी॥११-१२॥

हिताय सर्वदेवानां त्रैलोक्यस्यात्मनो द्विजाः। सैषा माहेश्वरी देवी शङ्कराद्धशरीरिणी॥१३॥

हे द्विजो! सभी देवों, तीनों लोकों तथा स्वयं अपने हित के लिए भी वह माहेश्वरी देवी पार्वती भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी बनी थी॥१३॥

शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता। तस्याः प्रभावमतुलं सर्वे देवाः सवासवाः॥१४॥
विदन्ति[1] मुनयो वेत्ति शङ्करो वा स्वयं हरिः। एतद् वः कथितं विप्राः पुत्रत्वं परमेष्ठिनः।
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं शङ्करस्यामितौजसः॥१५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे देव्यवतारे एकादशोऽध्यायः॥११॥

वह शिवा, सती, हिमवान् की पुत्री देवों और असुरों के द्वारा भी वन्दनीय और पूजनीय रही है। उस देवी के अतुलनीय प्रभाव को इन्द्र सहित सभी देवता और मुनिगण जानते हैं तथा स्वयं भगवान् शिव और विष्णु भी जानते हैं। हे विप्रगणो! जिस प्रकार अतुलनीय तेज वाले शिव जी ब्रह्मा के पुत्र बने थे और ब्रह्मा कमल में उत्पन्न हुए थे, वह सब मैंने आपको बतला दिया है॥१४-१५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में देवी के अवतार से सम्बन्धित ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥११॥

❖❖❖

---

१. वदन्ति

अथ द्वादशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यम्

सूत उवाच

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्मरूपेण भाषितम्। विष्णुना पुनरेवैनं पप्रच्छुः प्रणता हरिम्॥१॥

कूर्मरूपी भगवान् विष्णु के इन वचनों को सुनकर मुनियों ने पुनः उनको प्रणाम करके यह पूछा॥१॥

ऋषय ऊचु

कैषा भगवती देवी शङ्करार्द्धशरीरिणी। शिवा सती हैमवती यथावद् ब्रूहि पृच्छताम्॥२॥

ऋषि बोले- भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी भगवती देवी शिवा सती और हिमवान् की पुत्री कौन है? हम जिज्ञासु पूछने वालों को वास्तविकता बतलाइए॥२॥

तेषा तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां पुरुषोत्तमः। प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमं पदम्॥३॥

उन मुनियों के उस वचन को सुनकर महायोगी पुरुषोत्तम कूर्मरूपी भगवान् ने अपने परम पद का ध्यान करके यह कहा॥३॥

श्रीकूर्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभनम्। रहस्यमेतद्विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः॥४॥

कूर्म बोले- प्राचीन काल में मेरु पर्वत के शिखर में स्थित पितामह ब्रह्मा ने यह सुन्दर रहस्यमय विज्ञान कहा था, जो कि विशेषतः गोपनीय है॥४॥

सांख्यानां परमं सांख्यं ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्। संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामेकमोचनम्॥५॥

सांख्य दर्शन के ज्ञाताओं के लिए यह परमोत्तम सांख्य का ज्ञान है। यह उत्तम ब्रह्मज्ञान है और संसार-सागर में डूब रहे प्राणियों के कष्टों को हरने वाला एकमात्र उपाय है॥५॥

या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा। व्योमसंज्ञा परा काष्ठा सेयं हैमवती मता॥६॥

भगवान् महेश्वर (शिव) की जो ज्ञानरूपा, उत्कृष्ट कामना स्वरूपा, व्योम संज्ञा वाली और परम कला स्वरूपा शक्ति है, उसी को हैमवती (हिमवान की कन्या पार्वती) कहा गया है॥६॥

शिवा सर्वगतानन्ता गुणातीतातिनिष्कला। एकानेकविभागस्था ज्ञानरूपातिलालसा॥७॥
अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा। स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला॥८॥

भगवान् शिव की इस शक्ति को शिवा, सर्वगता, अनन्ता, त्रिगुणातीता, निष्कला, एकस्वरूप वाली होने पर भी अनेक स्वरूपों वाली, ज्ञानरूपा, परम इच्छा रूपा, अनन्या, और भगवान् शिव के तेज से युक्त होकर निष्कल (कलारहित) तत्त्व में स्थित, स्वाभाविक (स्वभावतः स्वयं प्रकट) होने पर भी पूर्व काल में शिव के आधे शरीर से निर्गत होने के कारण शिव ही उसके उद्गम स्रोत होने के कारण उसी प्रकार उनसे अभिन्न हैं, जिस प्रकार कि सूर्य से निकली किरणें उनकी ही होती हैं॥७-८॥

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः। परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य सन्निधौ॥९॥

भगवान् महेश्वर की अर्धांगिनी वह शक्ति एक होने पर भी बड़े छोटे अनेक नामों और अनेक रूपों को धारण करके उनके सान्निध्य में नाना लीलाएं करती है॥९॥

सेयं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत्। न कार्यं नापि करणमीश्वरस्येति सूरयः॥१०॥

वह (इस जगत् के हित में) सभी कार्य करती है। यह सम्पूर्ण जगत् उनका ही कार्य (अर्थात् उसी देवी के द्वारा रचित) है। भगवान् शिव न तो कोई कार्य करते हैं और न उनके पास कार्य करने के लिए कोई साधन है॥१०॥

चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः। अधिष्ठानवशात्तस्याः शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः॥११॥
शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः। चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः॥१२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! उस देवी में स्वरूपतः आश्रय लेकर चार देवियाँ स्थित हैं। उन्हें आप सुनें। वह चार क्रमशः शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति कहलाती हैं। उन चारों से युक्त होने के कारण भगवान् शिव को चतुर्व्यूह कहा जाता है॥११-१२॥

अनया परया देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते। चतुर्ष्वपि च वेदेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः॥१३॥

चारों वेदों में वर्णित चतुर्मूर्ति महेश्वर शिव इसी परम शक्ति के साथ आत्मानन्द का अनुभव करते हैं॥१३॥

अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत्। तत्सम्बन्धादनन्तैषा रुद्रेण परमात्मना॥१४॥

उन परमात्मा रुद्र के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध होने के कारण यह देवी अनन्ता कहलाती है। इनका अनादि और अतुलनीय ऐश्वर्य सर्वत्र प्रसिद्ध है॥१४॥

सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका। प्रोच्यते भगवान् कालो हरिः प्राणो महेश्वरः॥१५॥

यह सर्वेश्वरी देवी सभी प्राणियों को उनके कृत्यों में प्रवृत्त करने वाली कही गयी है और भगवान् महादेव को काल, हरि और प्राण-स्वरूप कहा गया है॥१५॥

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतञ्चैवाखिलं जगत्। स कालोऽग्निर्हरो देवो गीयते वेदवादिभिः॥१६॥

उन भगवान् शिव में यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत (वस्त्र के समान बुना हुआ) है। वेद के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा उन महादेव को काल, अग्नि और हर कहा जाता है॥१६॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे॥१७॥

काल ही प्राणियों की सृष्टि करता है और उनका संहार करता है। सभी प्राणी काल के वश में होते हैं, किन्तु काल किसी के वश में नहीं होता॥१७॥

प्रधानं पुरुषस्तत्त्वं महानात्मा त्वहंकृतिः। कालेचान्यानि[1] तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना॥१८॥

महायोगी महाकाल स्वरूप भगवान् शिव ने प्रधान (प्रकृति), पुरुष, महत् तत्त्व (बुद्धि) और अंहकार तथा अन्य तत्त्वों को काल में समाविष्ट किया है॥१८॥

---

१. कालेनान्यानि

तस्य सर्वजगन्मूर्तिः शक्तिर्मायेति विश्रुता। तयेदं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः॥१९॥

सम्पूर्ण जगत् उन भगवान् शिव का ही मूर्तिमान स्वरूप है और उनकी शक्ति माया के नाम से प्रसिद्ध है। वह मायावी पुरुषोत्तम भगवान् शिव उस माया से ही सम्पूर्ण जगत् को मोहित करते हैं॥१९॥

सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी। विश्वरूपं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत्॥२०॥

सभी प्रकार के आकारों वाली वह सनातनी माया रूपा शक्ति भगवान् महेश्वर के विश्वरूप को सदैव प्रकाशित करती है॥२०॥

अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः। ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम्॥२१॥

उन देवाधिदेव के द्वारा निर्मित शक्तियों में ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और प्राणशक्ति ये तीनों मुख्य हैं॥२१॥

सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः। माययैवाथ विप्रेन्द्राः सा चानादिरनश्वराः॥२२॥

हे विप्रो! माया ने सभी शक्तियों के लिए शक्तिमान भी बनाये हैं। वह माया अनादि और अविनाशी है॥२२॥

सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया। मायावी सर्वशक्तीशः कालः कालकरः प्रभुः॥२३॥

सर्वशक्ति सम्पन्न माया का निवारण कर पाना (रोकना) और उस पर विजय प्राप्त कर पाना सरल नहीं है। सभी शक्तियों के स्वामी मायावी शिव स्वयं भी काल और काल के कर्ता भी हैं॥२३॥

करोति कालः सकलं संहरेत्काल एव हि। कालः स्थापयते विश्वं कालाधीनमिदं जगत्॥२४॥

काल ही सम्पूर्ण जगत् का कर्ता तथा उसका संहार कारक भी है। काल ही विश्व को स्थापित करता है (अर्थात् विश्व की स्थिति बनाये रखता है)। यह जगत् काल के ही अधीन है॥२४॥

लब्ध्वा देवाधिदेवस्य सन्निधिं परमेष्ठिनः। अनन्तस्याखिलेशस्य शम्भोः कालात्मनः प्रभोः॥२५॥

प्रधानं पुरुषो माया माया चैवं प्रपद्यते। एका सर्वगतानन्ता केवला निष्कला शिवा॥२६॥

अनन्त, अखिल जगत् के स्वामी देवाधिदेव परमेष्ठी कालात्मा प्रभु शम्भु का सान्निध्य (समीपता) प्राप्त करके उनकी माया ही प्रधान (प्रकृति), पुरुष और स्वयं माया रूप भी बन जाती है, तथापि शिव की वह एकमात्र शक्ति सर्वत्र व्याप्त अनन्त रूप वाली और कला रहित शिवा स्वरूपिणी भी है॥२५-२६॥

एका शक्तिः शिवैकोऽपि[1] शक्तिमानुच्यते शिवः। शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः॥२७॥

शक्ति एक ही है और शिव भी एक ही हैं। शिव को शक्तिमान कहा जाता है। उस एक ही शक्ति से अन्य शक्तियाँ और अन्य शक्तिमान उत्पन्न हुए हैं॥२७॥

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः। अभेदञ्चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः॥२८॥

लोक में शक्ति और शक्तिमान को भिन्न भिन्न कहा जाता है, किन्तु तत्त्व चिन्तन करने वाले योगी जन परमार्थ रूप में उन दोनों को अभिन्न (एक रूप) ही देखते हैं॥२८॥

शक्तयो गिरिजा देवी शक्तिमानथ शङ्करः। विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः॥२९॥

---
१. शिवैकोऽपि

सभी शक्तियाँ पार्वती स्वरूप हैं और सभी शक्तिमान् शिव हैं। यह बात ब्रह्मतत्त्व का विवेचन करने वाले विद्वानों के द्वारा पुराण में विशेष रूप से कही गयी है॥२९॥

भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता। प्रोच्यते भगवान्भोक्ता कपर्दी नीललोहितः॥३०॥

भगवान् महादेव की पतिव्रता पत्नी विश्वेश्वरी देवी पार्वती उनकी भोग्या है और जटाजूटधारी नीललोहित भगवान् शिव को भोक्ता कहा गया है॥३०॥

मन्ता विश्वेश्वरो देवः शङ्करो मन्मथान्तकः। प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारतः॥३१॥

कामदेव का अन्त करने वाले विश्व के नाथ भगवान् शङ्कर मन्ता (मनन करने वाले) हैं और (उनकी भार्या) ईशानी (पार्वती) को मति और विचार के द्वारा मन्तव्या (मनन या ध्यान करने योग्य) कहा गया है॥३१॥

इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम्। प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥३२॥

हे विप्रो! तत्त्वदर्शी मुनियों के द्वारा सभी वेदों में यह कहा गया है कि यह सम्पूर्ण जगत् शक्ति और शक्तिमान् से उत्पन्न हुआ है॥३२॥

एतत्प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुत्तमम्। सर्ववेदान्तवादेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः॥३३॥

सभी वेदों और वेदान्तों में ब्रह्मतत्त्ववेत्ता मुनियों के द्वारा निश्चित किया गया देवी माहात्म्य का यह प्रदर्शन अर्थात् वर्णन आपके समक्ष किया गया है॥३३॥

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्। योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥३४॥

महादेवी के एकमात्र किन्तु सर्वत्र व्याप्त, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल, ध्रुव (स्थिर) परम पद का दर्शन योगी जन ही कर पाते हैं॥३४॥

आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम्। योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥३५॥

महादेवी के अक्षर (अविनाशी), अद्वितीय आनन्दमय, निष्कल (कला रहित) परं ब्रह्म रूप परम पद को योगी जन ही देख पाते हैं। ।३५॥

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्। अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमं पदम्॥३६॥

परात्पर से भी परे जो परमतत्त्व है, वही शिव कहलाता है। वह अनन्त प्रकृति में लीन तत्त्व ही देवी का परमपद है॥३६॥

शुभं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम्। आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत्परमं पदम्॥३७॥

जो शुभ, निरञ्जन (निष्कलंक), शुद्ध, निर्गुण, अद्वैत (द्वैतरहित) तथा आत्मज्ञान का विषय है, वही देवी का परम पद है॥३७॥

सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम्। संसारतापानखिलान्निहन्तीश्वरसंश्रयात्॥३८॥

परम आनन्द की कामना करने वालों के लिए वह देवी धात्री (धारण करने वाली) और विधात्री (विधान विहित करने वाली) और भगवान् शिव का आश्रय लेकर वह भक्तों के सभी सांसारिक कष्टों को दूर करने वाली है॥३८॥

तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम्। आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम्॥ ३९॥

अतः [सांसारिक कष्टों से] मुक्ति प्राप्ति की कामना करने वाला मनुष्य सभी प्राणियों की आत्मा स्वरूपा एवं शिव-स्वरूपा परमेश्वरी पार्वती का आश्रय ग्रहण करे अर्थात् उनकी शरण में जावे॥ ३९॥

लब्ध्वा च पुत्रीं शर्वाणीं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरन्। सभार्यः शरणं यातः पार्वतीं परमेश्वरीम्॥ ४०॥

तां दृष्ट्वा जायमानाञ्च स्वेच्छयैव वराननाम्। मेना हिमवतः पत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्॥ ४१॥

अति दुष्कर तपस्या के फलस्वरूप शर्वाणी (पार्वती) को पुत्री रूप में प्राप्त करके हिमवान् अपनी पत्नी मेना सहित उन पार्वती की शरण में गया था। उस सुमुखी पार्वती को स्वेच्छया जन्म ग्रहण करते हुए देखकर पर्वतराज हिमवान की पत्नी मेना ने उस हिमवान से यह कहा॥ ४०-४१॥

मेनोवाच

पश्य बालामिमां राजन्राजीवसदृशाननाम्। हिताय सर्वभूतानां जातां च तपसावयोः॥ ४२॥

मेना बोली- हे राजन्! इस कमल के समान सुन्दर मुख वाली कन्या को देखिये। हम दोनों की तपस्या से प्रसन्न होकर यह देवी सम्पूर्ण जगत् का हित करने के लिए उत्पन्न हुई है॥ ४२॥

सोऽपि दृष्ट्वा ततो देवीं तरुणादित्यसन्निभाम्। कपर्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम्॥ ४३॥

अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम्। निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्जिताम्॥ ४४॥

तब हिमवान् ने उस देवी को देखा जो कि उदीयमान आदित्य के समान कान्तिवाली, जटाजूट युक्त, चार मुखों वाली, तीन नेत्रों वाली, अति कामना वाली, आठ हाथों वाली, विशालाक्षी (विशाल नेत्रों वाली), चन्द्रमा को आभूषण रूप में धारण की हुई, निर्गुणा (गुणातीत) होते हुए भी सगुणा (त्रिगुण युक्त) तथा सत् एवं असत् भावों की अभिव्यक्ति से रहित थी॥ ४३-४४॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चातिविह्वलः। भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम्॥ ४५॥

उस देवी के तेज से व्याकुल और संत्रस्त हिमवान् ने भूमि में विनत होकर हाथ जोड़ कर उस परमेश्वरी से कहा॥ ४५॥

हिमवानुवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि शशाङ्कावयवाङ्किते। न जाने त्वामहं वत्से यथावद् ब्रूहि पृच्छते॥ ४६॥

हिमवान् ने कहा- हे देवी! विशाल नेत्रों वाली और चन्द्रमा की कलाओं से सुशोभित आप कौन हो? हे पुत्री! मैं आपको नहीं जानता हूँ। मैं आपसे पूछता हूँ। आप मुझे अपने विषय में यथावत् बतलाइए॥ ४६॥

गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी। व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा॥ ४७॥

पर्वतराज हिमवान् के वचन सुनकर योगियों को अभयदान देने वाली परमेश्वरी ने उससे कहा॥ ४७॥

श्रीदेव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम्। अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः॥ ४८॥

श्रीदेवी बोली- मुझे आप महेश्वर के आश्रय में रहने वाली परम शक्ति समझो। मैं अनन्या, अविनाशी एकमात्र देवी हूँ। मोक्ष कामना वाले योगी जन मेरा दर्शन कर पाते हैं॥४८॥

अहं हि सर्वभावानामात्मा सर्वान्तरा[1] शिवा। शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका॥४९॥

मैं सभी चराचर जीवों की आत्मा हूँ और सबके अन्दर निवास करने वाली और सबका कल्याण करने वाली हूँ॥४९॥

अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमैश्वरम्॥५०॥

मैं सनातन ऐश्वर्य और विज्ञान की मूर्ति हूँ और सभी को (कर्म में) प्रवृत्त करने वाली, अनन्ता और अनन्त महिमा वाली तथा संसार-सागर से पार लगाने वाली हूँ॥५०॥

एतावदुक्त्वा विज्ञानं दत्त्वा हिमवते स्वयम्। स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यं तत्परमेश्वरम्॥५१॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोबिम्बं निराकुलम्। ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्॥५२॥
दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमण्डितम्। त्रिशूलवरहस्तञ्च घोररूपं भयानकम्॥५३॥

मैं आपको दिव्य नेत्र प्रदान करती हूँ। आप मेरे ईश्वरीय रूप को देखिए। इतना कहकर उस देवी ने स्वयं हिमवान को विशिष्ट ज्ञान देकर अपने परम ईश्वरीय विराट् रूप का दर्शन कराया, जो करोड़ों सूर्यों के समान तेजो राशि वाला और निर्मल था। वह रूप हजारों ज्वाला-मालाओं से घिरा हुआ और सैकड़ों कालाग्नियों के समान था। वह भयंकर दाँतों वाला, दुर्धर्ष (अपराजेय) और जटा-समूह से युक्त था। उस उग्र और भयानक रूप वाली देवी के हाथ में सुन्दर त्रिशूल था॥५१-५३॥

प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्ताश्चर्यसंयुतम्। चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥५४॥

उस देवी का मुख-मण्डल शान्त, सौम्य, अनन्त, अद्भुत एवं चन्द्रमा के अवयवों अर्थात् कलाओं से युक्त और करोड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्तिमान था॥५४॥

किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम्। दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥५५॥

वह देवी मस्तक में मुकुट, हाथ में गदा और चरणों में नुपूरों (पाजेब) से सुशोभित थी। दिव्य माला और वस्त्रों को धारण की हुई थी और दिव्य गन्धों से अनुलेपित थी॥५५॥

शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम्। अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमाभ्यन्तरं परम्॥५६॥

वह शंख और चक्र को धारण किये हुए थी। कमनीय त्रिनेत्र वाली और कृत्तिवासा (व्याघ्रचर्म धारण की हुई) और ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर भी सर्वत्र विद्यमान दिख रही थी॥५६॥

सर्वशक्तिमयं शुभ्रं सर्वाकारं सनातनम्। ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम्॥५७॥

सभी शक्तियों से युक्त, उज्ज्वल, सर्व-स्वरूप वाली, सनातनी उस देवी की चरण-वन्दना ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा योगी जनों के द्वारा की जा रही थी॥५७॥

सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वमावृत्य तिष्ठन्ती ददर्श परमेश्वरीम्॥५८॥
दृष्ट्वा तदीदृशं रूपं देव्या माहेश्वरं परम्। भयेन च समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः॥५९॥

१. सर्वात्मना

आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन्। नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम्॥६०॥

सभी ओर हाथ-पैर वाली, सभी ओर आँख, शिर और मुख वाली और सर्वत्र व्याप्त उस देवी के माहेश्वर (शिवात्मक) परम स्वरूप को देखकर भय से आक्रान्त मन वाले पर्वतराज हिमवान ने प्रसन्नचित्त और आत्मनिष्ठ होकर ओङ्कार का स्मरण (अर्थात् उच्चारण) करते हुए उस परमेश्वरी की एक,हजार आठ नामों से स्तुति की थी॥५८-६०॥

हिमवानुवाच

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलाऽमला। शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती परमाक्षरा॥६१॥
अचिन्त्या केवलानन्ता शिवात्मा परमात्मिका। अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाऽचला॥६२॥
एकाऽनेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला। महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना॥६३॥
काष्ठा सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा। नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा॥६४॥

हिमवान् बोला- शिवा, उमा, परमा शक्ति, अनन्ता, निष्कला, अमला, शान्ता, माहेश्वरी, नित्या, शाश्वती, परमा, अक्षरा, अचिन्त्या, केवला, अनन्ता, शिवात्मा, परमात्मिका, अनादि, अव्यया, शुद्धा, देवात्मा, सर्वगा, अचला, एका, अनेक विभागस्था (अनेक रूपों में स्थित), मायातीता, सुनिर्मला, महामाहेश्वरी, सत्या, महादेवी, निरञ्जना, काष्ठा, सर्वान्तरस्था, चित्शक्ति, अतिलालसा, नन्दा, सर्वात्मिका, विद्या, ज्योतिरूपा, अमृता, अक्षरा॥६१-६४॥

शान्तिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा। व्योममूर्तिर्व्योमलया व्योमाधाराच्युतामरा॥६५॥
अनादिनिधनामोघा कारणात्मा कलाकला। स्वतः प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसंश्रया॥६६॥
प्राणेश्वरप्रिया माता महामहिषघातिनी। प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी॥६७॥
महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी। सर्वशक्तिकलाकारा ज्योत्स्ना द्यौर्महिमास्पदा॥६८॥
सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी। संसारयोनिः सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा॥६९॥
संसारपारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा। प्राणशक्तिः प्राणविद्या योगिनी परमा कला॥७०॥
महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा। अनाद्यनन्तविभवा परमाद्यापकर्षिणी॥७१॥
सर्गस्थित्यन्तकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया। शब्दयोनिः शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा॥७२॥
अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी। आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी॥७३॥
महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी। प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका॥७४॥

शान्ति, प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृतप्रदा, व्योममूर्ति, व्योमलया, व्योमाधारा, अच्युता, अमरा, अनादिनिधना, अमोघा, कारणात्मिका, कला, अकला, प्रथमजा, अमृतानाभि, आत्मसंश्रया, प्राणेश्वरप्रिया, माता, महामहिषघातिनी, प्राणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधानपुरुषेश्वरी, महामाया, सुदुष्पूरा, मूल प्रकृति, ईश्वरी, सर्वशक्तिकलाकारा, ज्योत्सना, द्यौः (द्युलोकरूपिणी) महिमास्पदा, सर्वकार्यनियन्त्री, सर्वभूतेश्वरेश्वरी संसारयोनि, सकला, सर्वशक्तिसमुद्भवा, संसारपारा, दुर्वारा, दुर्निरीक्ष्या, दुरासदा, प्राणशक्ति, प्राणविद्या, योगिनी, परमा, कला, महाविभूति, दुर्धर्षा, मूलप्रकृतिसम्भवा, अनाद्यनन्तविभवा, परमा, आद्या, अपकर्षिणी, सर्गस्थित्यन्त-

कारिणी, सुदुर्वाच्या, दुरत्यया, शब्दयोनि, शब्दमयी, नादाख्या, नादविग्रहा, अनादि, अव्यक्तगुणा, महानन्दा, सनातनी, आकाशयोनि, योगस्था, महायोगेश्वरेश्वरी, महामाया, सुदुष्पारा, मूल प्रकृति, ईश्वरी, प्रधानपुरुषातीता, प्रधानपुरुषात्मिका॥६५-७४॥

पुराणी चिन्मयी पुंसामादिः पुरुषरूपिणी। भूतान्तरस्था कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता॥७५॥
जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता। व्यापिनी चानवच्छिन्ना प्रधानानुप्रवेशिनी॥७६॥
क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता। अनादिमायासम्भिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुहा॥७७॥
महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषी ध्रुवा। व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला प्रसूतिका॥७८॥
अकार्या कार्यजननी नित्यं प्रसवधर्मिणी। सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी॥७९॥
ब्रह्मगर्भा चतुर्विंशा पद्मनाभाच्युतात्मिका। वैद्युती शाश्वती योनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया॥८०॥
सर्वाधारा महारूपा सर्वैश्वर्यसमन्विता। विश्वरूपा महागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी॥८१॥

पुराणी, चिन्मयी, पुंसामादिपुरुषरूपिणी, भूतान्तरस्था, कूटस्था, महापुरुषसंज्ञिता, जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता, व्यापिनी, अनवच्छिन्ना, प्रधाना, अनुप्रवेशिनी, क्षेत्रज्ञशक्ति, अव्यक्तलक्षणा, मलवर्जिता, अनादिमायासम्भिन्ना, त्रितत्त्वा, प्रकृति, गुहा, महामायासमुत्पन्ना, तामसी, पौरुषी, ध्रुवा, व्यक्ता, अव्यक्तात्मिका, कृष्णा, रक्ता, शुक्ला, प्रसूतिका, अकार्या, कार्यजननी, नित्यप्रसवधर्मिणी, सर्गप्रलयनिर्मुक्ता, सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी, ब्रह्मगर्भा, चतुर्विंशा, पद्मनाभा, अच्युतात्मिका, वैद्युती, शाश्वती, योनि, जगन्माता, ईश्वरप्रिया, सर्वाधारा, महारूपा, सर्वैश्वर्यसमन्विता, विश्वरूपा, महागर्भा, विश्वेशेच्छानुवर्तिनी॥७५-८१॥

महीयसी ब्रह्मयोनिर्महालक्ष्मीसमुद्भवा। महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका॥८२॥
सर्वसाधारणी सूक्ष्मा ह्यविद्या पारमार्थिका। अनन्तरूपानन्तस्था देवी पुरुषमोहिनी॥८३॥
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता। ब्रह्मजन्मा हरेर्मूर्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका॥८४॥
ब्रह्मेशविष्णुजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंश्रया। व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ब्रह्मरूपिणी॥८५॥

महीयसी, ब्रह्मयोनि, महालक्ष्मीसमुद्भवा, महाविमानमध्यस्था, महानिद्रा, आत्महेतुका, सर्वसाधारणी, सूक्ष्मा, अविद्या, पारमार्थिका, अनन्तरूपा, अनन्तस्था, देवी, पुरुषमोहिनी, अनेकाकारसंस्थाना, कालत्रयविवर्जिता, ब्रह्मजन्मा, हरिमूर्ति, ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका, ब्रह्मेशविष्णुजननी, ब्रह्माख्या, ब्रह्मसंश्रया, व्यक्ता, प्रथमजा, ब्राह्मी, महती, ब्रह्मरूपिणी॥८२-८५॥

वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हृदिस्थिता। अपां योनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा॥८६॥
ईश्वराणी च शर्वाणी शङ्करार्धशरीरिणी। भवानी चैव रुद्राणी महालक्ष्मीरथाम्बिका॥८७॥
महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा॥८८॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शङ्करेच्छानुवर्तिनी। ईश्वरार्द्धासनगता महेश्वरपतिव्रता॥८९॥
सकृद्विभाता सर्वार्तिसमुद्रपरिशोषिणी। पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी॥९०॥
गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकासिनी। सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरसिस्थिता॥९१॥

वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा, ब्रह्ममूर्ति, हृदिस्थिता, अपां योनि, स्वयम्भूति, मानसी, तत्त्वसम्भवा, ईश्वराणी, शर्वाणी, शङ्करार्द्धशरीरिणी, भवानी, रुद्राणी, महालक्ष्मी, अम्बिका, महेश्वरसमुत्पन्ना, भुक्तिमुक्तिफलप्रदा, सर्वेश्वरी, सर्ववन्द्या, नित्यमुदितमानसा, ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता, शंकरेच्छानुवर्तिनी ईश्वरार्धासनगता, महेश्वरपतिव्रता, सकृद्विभाता, सर्वार्तिसमुद्रपरिशोषिणी, पार्वती, हिमवत्पुत्री, परमानन्ददायिनी, गुणाढ्या, योगजा, योग्या, ज्ञानमूर्ति, विकासिनी, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री अनन्तरोरसिस्थिता॥८६-९१॥

सरोजनिलया गङ्गा योगनिद्रासुरार्दिनी। सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला॥९२॥
वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका। योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना॥९३॥
गुह्यविद्यात्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता। स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः॥९४॥
नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी। पूज्या विभावती सौम्या भोगिनी भोगशायिनी॥९५॥
शोभा च शङ्करी लोला मालिनी परमेष्ठिनी। त्रैलोक्यसुन्दरी नम्या सुन्दरी कामचारिणी॥९६॥
महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्दिनी। पद्मनाभा पापहरा विचित्रमुकुटाङ्गदा॥९७॥
कान्ता चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता। हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्द्धिनी॥९८॥
नियन्त्री यन्त्रमध्यस्था नन्दिनी भद्रकालिका। आदित्यवर्णा कौबेरी मयूरवरवाहना॥९९॥
वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता। अदितिर्नियता रौद्रा पद्मगर्भा विवाहना॥१००॥

सरोजनिलया, गङ्गा, योगनिद्रा, असुरार्दिनी, सरस्तवी, सर्वविद्या, जगज्ज्येष्ठा, सुमंगला, वाग्देवी, वरदा, वाच्या, कीर्ति, सर्वार्थसाधिका, योगीश्वरी, ब्रह्मविद्या, महाविद्या, सुशोभना, गुह्यविद्या, आत्मविद्या, धर्मविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा, विश्वम्भरा, सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति, श्रुति, नीति, सुनीति, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी, पूज्या, विभावती, सौम्या, भोगिनी, भोगशायिनी, शोभा, शंकरी, लोला, मालिनी, परमेष्ठिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी, नम्या, सुन्दरी, कामचारिणी, महानुभावा, सत्त्वस्था, महामहिषमर्दिनी, पद्मनाभा, पापहरा, विचित्रमुकुटाङ्गदा, कान्ता, चित्राम्बरधरा, दिव्याभरणभूषिता, हंसाख्या, व्योमनिलया, जगत्सृष्टिविवर्धिनी, नियन्त्री, यन्त्रमध्यस्था, नंदिनी, भद्रकालिका, आदित्यवर्णा, कौबेरी, मयूरवरवाहना, वृषासनगता, गौरी, महाकाली, सुरार्चिता, अदिति, नियता, रौद्रा, पद्मगर्भा, विवाहना॥९२-१००॥

विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी। महाफलानवद्याङ्गी कामरूपा विभावरी॥१०१॥
विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्तिप्रभञ्जनी। कौशिकी कर्षणी रात्रिस्त्रिदशार्तिविनाशिनी॥१०२॥
बहुरूपा सुरूपा च विरूपा रूपवर्जिता। भक्तार्तिशमनी भव्या भवतापविनाशिनी॥१०३॥
निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा। तपस्विनी सामगीतिर्भवाङ्कनिलयालया॥१०४॥

विरूपाक्षी, लेलिहाना, महासुरविनाशिनी, महाफला, अनवद्याङ्गी, कामरूपा विभावरी, विचित्ररत्नमुकुटा, प्रणतार्तिप्रभञ्जनी, कौशिकी, कर्षणी, रात्रि त्रिदशार्तिविनाशिनी, बहुरूपा, सुरूपा, विरूपा, रूपवर्जिता, भक्तार्तिशमनी, भव्या, भवतापविनाशिनी, निर्गुणा, नित्यविभवा, निःसारा, निरपत्रपा, तपस्विनी, सामगीति, भवाङ्कनिलयालया॥१०१-१०४॥

दीक्षा विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी। सर्वातिशायिनी विश्वा सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥१०५॥

सर्वेश्वरप्रियाभार्या समुद्रान्तरवासिनी। अकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धा निरामया॥१०६॥
कामधेनुर्बृहद्‌गर्भा धीमती मोहनाशिनी। निःसङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रिया॥१०७॥
ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोमयी। महाभगवती भर्गा वासुदेवसमुद्‌भवा॥१०८॥
महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा। ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गतिः॥१०९॥
दक्षिणा दहती दीर्घा सर्वभूतनमस्कृता। योगमाया विभागज्ञा महामोहा गरीयसी॥११०॥
सन्ध्या सर्वसमुद्‌भूतिर्ब्रह्मविद्याश्रयानतिः। बीजाङ्कुरसमुद्‌भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः॥१११॥
क्षान्तिः प्रज्ञा चितिः सच्चिन्महाभोगीन्द्रशायिनी। विकृतिः शाङ्करी शास्त्री गणगन्धर्वसेविता॥११२॥
वैश्वानरी महाशाला महासेना गुहप्रिया। महारात्रिः शिवानन्दा शची दुःस्वप्ननाशिनी॥११३॥

दीक्षा, विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्रविनिपातिनी, सर्वातिशायिनी, विश्वा, सर्वसिद्धिप्रदायिनी, सर्वेश्वरप्रियाभार्या, समुद्रान्तरवासिनी, अकलङ्का, निराधारा, नित्यसिद्धा, निरामया, कामधेनु, ब्रहद्‌गर्भा, धीमती, मोहनाशिनी, निःसङ्कल्पा, निरातङ्का, विनया, विनयप्रिया। ज्वालामालासहस्राढ्या, देवदेवी, मनोमयी, महाभगवती, भर्गा, वासुदेवसमुद्भवा, महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी, भक्तिगम्या, परावरा, ज्ञानज्ञेया, जरातीता, वेदान्तविषया, गति, दक्षिणा, दहती, दीर्घा, सर्वभूतनमस्कृता, योगमाया, विभागज्ञा, महामोहा, गरीयसी, सन्ध्या, सर्वसमुद्भूति, ब्रह्मविद्याश्रया, नति, बीजांकुरसमुद्‌भूति, महाशक्ति, महामति, क्षान्ति, प्रज्ञा, चिति, सच्चित महाभोगीन्द्रशायिनी, विकृति, शाङ्करी, शास्त्री, गणगन्धर्वसेविता, वैश्वानरी, महाशाला, महासेना, गुहप्रिया, महारात्रि, शिवा, आनन्दा, शची, दुःस्वप्ननाशिनी॥१०५-११३॥

इज्या पूज्या जगद्‌धात्री दुर्विज्ञेया सुरूपिणी। तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता॥११४॥
गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता। हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा॥११५॥
जगद्योनिर्जगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा। बुद्धिर्महाबुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी॥११६॥
तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता। सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदिस्थिता॥११७॥

इज्या, पूज्या, जगद्धात्री, दुर्विज्ञेया, सुरूपिणी, तपस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसंस्थिता, गुहाम्बिका, गुणोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहान्तरागादि, हव्यवाहसमुद्भवा, जगद्‌योनि, जगन्माता, जन्ममृत्युजरातिगा, बुद्धि, महाबुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी, तरस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसंस्थिता, सर्वेन्द्रियमनोमाता, सर्वभूतहृदिस्थिता॥११४-११७॥

संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया। ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणिः॥११८॥
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्तिका। सुमालिनी सुरूपा च भाविनी हारिणी प्रभा॥११९॥
उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी। सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा॥१२०॥

संसारतारिणी, विद्या, ब्रह्मवादिमनोलया, ब्रह्माणी, बृहती, ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भवारणी, हिरण्मयी, महारात्रि, संसारपरिवर्तिका, सुमालिनी, सुरूपा, भाविनी, हारिणी, प्रभा, उन्मीलनी, सर्वसहा, सर्वप्रत्ययसाक्षिणी, सुसौम्या, चन्द्रवदना, ताण्डवासक्तमानसा॥११८-१२०॥

सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी। जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया॥१२१॥

निराश्रया निराहारा निरंकुशपदोद्भवा। चन्द्रहस्ता विचित्राङ्गी स्रग्विणी पद्मधारिणी॥१२२॥
परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा। विश्वेश्वरप्रिया विद्युत् विद्युज्जिह्वा जितश्रमा॥१२३॥
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा। सहस्ररश्मिः सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया॥१२४॥
क्षालिनी मृण्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मबोधिका। महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा॥१२५॥
व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितानामितप्रभा। वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी॥१२६॥

सत्त्वशुद्धिकरी, बुद्धि, मलत्रयविनाशिनी, जगत्प्रिया, जगन्मूर्ति, त्रिमूर्ति, अमृताश्रया, निराश्रया, निराहारा, निरंकुशपदोद्भवा, चन्द्रहस्ता, विचित्राङ्गी, स्रग्विणी, पद्मधारिणी, परावरविधानज्ञा, महापुरुषपूर्वजा, विश्वेश्वरप्रिया, विद्युत् विद्युज्जिह्वा, जितश्रमा, विद्यामयी सहस्राक्षी, सहस्रवदनात्मजा, सहस्ररश्मि, सत्त्वस्था, महेश्वरपदाश्रया, क्षालिनी, मृण्मयी, व्याप्ता, तेजसी, पद्मबोधिका, महामायाश्रया, मान्या, महादेवमनोरमा, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकिताना, अभितप्रभा, वीरेश्वरी, विमानस्था, विशोका, शोकविनाशिनी॥१२१-१२६॥

अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मभासिनी। सदानन्दा सदाकीर्तिः सर्वभूताश्रयस्थिता॥१२७॥
वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणिः। ब्रह्मश्रीर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया॥१२८॥
व्योमशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः परागतिः। क्षोभिका बन्धिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता॥१२९॥
अभिन्नाऽभिन्नसंस्थाना वशिनी वंशहारिणी। गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी॥१३०॥
भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालहारिणी। सर्ववित् सर्वतोभद्रा गुह्यातीता गुहावलिः॥१३१॥
प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वेश्वरेश्वरी। कलिला कपिला कान्ता कमलाभा कलान्तरा॥१३२॥
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरन्दरपुरस्सरा। पोषिणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा॥१३३॥

अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मभासिनी, सदानन्दा, सदाकीर्ति, सर्वभूताश्रयस्थिता, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलारणी, ब्रह्मश्री, ब्रह्महृदया, ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, परागति, क्षोभिका, बन्धिका, भेद्या, भेदाभेदविवर्जिता, अभिन्ना, भिन्नसंस्थाना, वशिनी, वंशहारिणी, गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वतोमुखी, भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला, कालहारिणी, सर्ववित्, सर्वतोभद्रा, गुह्या, अतीता, गुहावलि, प्रक्रिया, योगमाता, गङ्गा, विश्वेश्वरेश्वरी, कलिला, कपिला, कान्ता, कमलाभा, कलान्तरा, पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरन्दरपुरस्सरा, पोषिणी, परमैश्वर्यभूतिदा, भूतिभूषणा॥१२७-१३३॥

पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमार्थार्थविग्रहा। धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा॥१३४॥
मनोरमा मनोरस्का तापसी वेदरूपिणी। वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी॥१३५॥
योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी। विश्वावस्था वियन्मूर्तिर्विद्युन्माला विहायसी॥१३६॥
किन्नरी सुरभी विद्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा। भारती परमानन्दा परापरविभेदिका॥१३७॥
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी। अचिन्त्यानन्तविभवा भूलेखा कनकप्रभा॥१३८॥

पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति, परमार्थार्थविग्रहा, धर्मोदया, भानुमती, योगिज्ञेया, मनोजवा, मनोरमा, मनोरस्का, तापसी, वेदरूपिणी, वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्याप्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी, माता, महाशक्ति, मनोमयी, विश्वावस्था, वियन्मूर्ति, विद्युन्माला, विहायसी, किन्नरी, सुरभी, विद्या, नन्दिनी, नन्दिवल्लभा, भारती, परमानन्दा,

परापरविभेदिका, सर्वप्रहरणोपेता, काम्या, कामेश्वरेश्वरी, अचिन्त्या, अनन्तविभवा, भूलेखा, कनक-प्रभा॥ १३४-१३८॥

कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी। त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिवोदया॥ १३९॥
सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना। शान्तिः प्रभावती दीप्तिः पङ्कजायतलोचना॥ १४०॥
आद्या भूः कमलोद्भूता गवां माता रणप्रिया। सत्क्रिया गिरिशा शुद्धिर्नित्यपुष्टा निरन्तरा॥ १४१॥
दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिताङ्गा सुविग्रहा। हिरण्यवर्णा जगती जगद्यन्त्रप्रवर्तिका॥ १४२॥
मन्दराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी। रत्नमाला रत्नगर्भा पुष्टिर्विश्वप्रमाथिनी॥ १४३॥
पद्मनाभा पद्मनिभा नित्यतुष्टामृतोद्भवा। धुन्वती दुष्प्रकम्पा च सूर्यमाता दृषद्वती॥ १४४॥

कूष्माण्डी, धनरत्नाढ्या, सुगन्धा, गन्धदायिनी, त्रिविक्रमपदोद्भूता, धनुष्पाणि, शिवोदया, सुदुर्लभा, धनाध्यक्षा, धन्या, पिंगललोचना, शान्ति, प्रभावती, दीप्ति, पङ्कजायतलोचना, आद्या, भू, कमलोद्भूता, गवां माता, रणप्रिया, सत्क्रिया, गिरिशा, शुद्धि, नित्यपुष्टा, निरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी, चण्डी, चर्चिताङ्गा, सुविग्रहा, हिरण्यवर्णा, जगती, जगद्यन्त्रप्रवर्तिका, मन्दराद्रिनिवासा, शारदा, स्वर्णमालिनी, रत्नमाला, रत्नगर्भा, पुष्टि, विश्वप्रमाथिनी, पद्मनाभा, पद्मनिभा, नित्यतुष्टा, अमृतोद्भवा, धुन्वती, दुष्प्रकम्पा, सूर्यमाता, दृषद्वती॥ १३९-१४४॥

महेन्द्रभगिनी सौम्या वरेण्या वरदायिका। कल्याणी कमलावासा पञ्चचूडा वरप्रदा॥ १४५॥
वाच्यामरेश्वरी विद्या दुर्जया दुरतिक्रमा। कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता॥ १४६॥
भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी। कराला पिङ्गलाकारा कामभेदा महास्वना॥ १४७॥
यशस्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्तिका। शङ्खिनी पद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रवर्तिका॥ १४८॥
चैत्रा संवत्सरारूढा जगत्सम्पूरणी ध्वजा। शुम्भारिः खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया॥ १४९॥
खगध्वजा खगारूढा वाराही पूगमालिनी। ऐश्वर्यपद्मनिलया विरक्ता गरुडासना॥ १५०॥
जयन्ती हृद्गुहागम्या गह्वरेष्ठा गणाग्रणीः। सङ्कल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी॥ १५१॥

महेन्द्रभगिनी, सौम्या, वरेण्या, वरदायिका, कल्याणी, कमलावासा, पञ्चचूडा, वरप्रदा, वाच्या, अमरेश्वरी, विद्या, दुर्जया, दुरतिक्रमा, कालरात्रि, महावेगा वीरभद्रप्रिया, हिता, भद्रकाली, जगन्माता, भक्तानां भद्रदायिनी, कराला, पिंगलाकारा, कामभेदा, महास्वना, यशस्विनी, यशोदा, षडध्वपरिवर्तिका, शङ्खिनी, पद्मिनी, सांख्या, सांख्ययोगप्रवर्तिका, चैत्रा, संवत्सरारूढा, जगत्सम्पूरणी, ध्वजा, शुम्भारि, खेचरी, स्वस्था, कम्बुग्रीवा, कलिप्रिया, खगध्वजा, खगारूढा, वाराही, पूगमालिनी, ऐश्वर्यपद्मनिलया, विरक्ता, गरुडासना, जयन्ती हृद्गुहागम्या, गह्वरेष्ठा, गणाग्रणी, सङ्कल्पसिद्धा, साम्यस्था, सर्वविज्ञानदायिनी॥ १४५-१५१॥

कलिकल्मषहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा। निष्ठा दृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती॥ १५२॥
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता। लोहिता सर्पमाला च भीषणी वनमालिनी॥ १५३॥
अनन्तशयनानन्ता नरनारायणोद्भवा। नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदाधरा॥ १५४॥
सङ्कर्षणसमुत्पत्तिरम्बिकापादसंश्रया। महाज्वाला महाभूतिः सुमूर्तिः सर्वकामधुक्॥ १५५॥

सुप्रभा सुस्तना सौरी धर्मकामार्थमोक्षदा। भ्रूमध्यनिलया पूर्वा पुराणपुरुषारणिः॥१५६॥

कलिकल्मषहन्त्री, गुह्योपनिषद्, उत्तमा, निष्ठा, दृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रियावती, विश्वा, अमरेश्वरा, ईशाना, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता, लोहिता, सर्पमाला, भीषणी, वनमालिनी, अनन्तशयना, अनन्ता, नरनारायणोद्भवा, नृसिंही, दैत्यमथनी, शङ्खचक्रगदाधरा, सङ्कर्षण-समुत्पत्ति, अम्बिका-पादसंश्रया, महाज्वाला, महाभूति, सुमूर्ति, सर्वकामधुक्, सुप्रभा, सुस्तना, सौरी, धर्मकामार्थमोक्षदा, भ्रूमध्यनिलया, पूर्वा, पुराणपुरुषारणि॥१५२-१५६॥

महाविभूतिदा मध्या सरोजनयना समा। अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदलप्रभा॥१५७॥
सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मविवर्जिता। वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका निरिन्द्रिया॥१५८॥
विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी। स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी॥१५९॥
अशेषदेवतामूर्तिर्देवता वरदेवता। गणाम्बिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी॥१६०॥
अवर्णा वर्णरहिता त्रिवर्णा जीवसम्भवा। अनन्तवर्णानन्यस्था शङ्करी शान्तमानसा॥१६१॥
अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणोत्तरा। गौर्गीर्गव्यप्रिया गौणी गणेश्वरनमस्कृता॥१६२॥

महाविभूतिदा, मध्या, सरोजनयना, समा, अष्टादशभुजा, अनाद्या, नीलोत्पलदलप्रभा, सर्वशक्त्यासनारूढा, धर्माधर्मविवर्जिता, वैराग्यज्ञाननिरता, निरालोका, निरिन्द्रिया, विचित्रगहनाधारा, शाश्वतस्थानवासिनी, स्थानेश्वरी, निरानन्दा, त्रिशूलवरधारिणी, अशेषदेवतामूर्ति, देवता, वरदेवता, गणाम्बिका, गिरेः पुत्री, निशुम्भविनिपातिनी, अवर्णा, वर्णरहिता, त्रिवर्णा, जीवसम्भवा, अनन्तवर्णा, अनन्यस्था, शङ्करी, शान्तमानसा, अगोत्रा, गोमती, गोप्त्री, गुह्यरूपा गुणोत्तरा, गौः, गीः, गव्यप्रिया, गौणी, गणेश्वरनमस्कृता॥१५७-१६२॥

सत्यभामा सत्यसन्धा त्रिसन्ध्या सन्धिवर्जिता। सर्ववादाश्रया सांख्या सांख्ययोगसमुद्भवा॥१६३॥
असंख्येयाप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा। बिन्दुनादसमुत्पत्तिः शम्भुवामा शशिप्रभा॥१६४॥
पिशङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी। महाश्रीः श्रीसमुत्पत्तिस्तमःपारे प्रतिष्ठिता॥१६५॥
त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया। शान्त्यतीता मलातीता निर्विकारा शिवाश्रया॥१६६॥
शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी। दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकर्णिका॥१६७॥
शास्त्रयोनिः क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका। नारायणी नरोत्पत्तिः कौमुदी लिङ्गधारिणी॥१६८॥
कामुकी कलिता भावा परावरविभूतिदा। पराङ्गजातमहिमा बडवा वामलोचना॥१६९॥
सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा। मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा॥१७०॥

सत्यभामा, सत्यसन्धा, त्रिसन्ध्या, सन्धिवर्जिता, सर्ववादाश्रया, सांख्या, सांख्ययोगसमुद्भवा, असंख्येया, अप्रमेया, शून्या, शुद्धकुलोद्भवा, बिन्दुनादसमुत्पत्ति, शम्भुवामा, शशिप्रभा, विशङ्गा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, महाश्रीः श्रीसमुत्पत्ति, तमःपारे प्रतिष्ठिता, त्रितत्त्वमाता, त्रिविधा, सुसूक्ष्मपदसंश्रया, शान्त्यतीता, मलातीता, निर्विकारा, शिवाश्रया, शिवाख्या, चित्तनिलया, शिवज्ञानस्वरूपिणी, दैत्यदानवनिर्मात्री, काश्यपी, कालकर्णिका, शास्त्रयोनि, क्रियामूर्ति, चतुर्वर्गप्रदर्शिका, नारायणी, नरोत्पत्ति, कौमदी, लिङ्गधारिणी, कामुकी,

कलिता, भावा, परावरविभूतिदा, पराङ्गजातमहिमा, बडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी, सीता, वेदवेदाङ्गपारगा, मनस्विनी, मन्युमाता, महामन्युसमुद्भवा॥ १६३-१७०॥

अमन्युरमृतास्वादा पुरुहूता पुरुष्टुता। अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया॥ १७१॥
हिरण्या राजती हैमी हेमाभरणभूषिता। विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा॥ १७२॥
महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रा सत्यदेवता। दीर्घा ककुद्मिनी हृद्या शान्तिदा शान्तिवर्द्धिनी॥ १७३॥
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका। त्रिशक्तिजननी जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता॥ १७४॥
सुधौता कर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका। सङ्कर्षणी जगद्धात्री कामयोनिः किरीटिनी॥ १७५॥
ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी। प्रद्युम्नदयिता दात्री युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना॥ १७६॥
मदोत्कटा हंसगतिः प्रचण्डा चण्डविक्रमा। वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी॥ १७७॥

अमन्यु, अमृतास्वादा, पुरुहूता, पुरुष्टुता, अशोच्या, भिन्नविषया, हिरण्यरजतप्रिया, हिरण्या, राजती, हैमी, हेमाभरणभूषिता, विभ्राजमाना, दुर्ज्ञेया, ज्योतिष्टोमफलप्रदा, महानिद्रासमुद्भूति, अनिद्रा, सत्यदेवता, दीर्घा, ककुद्मिनी, हृद्या, शान्तिदा, शान्तिवर्द्धिनी, लक्ष्मी, आदिशक्तिजननी, शक्तिचक्रप्रवर्तिका, त्रिशक्तिजननी, जन्या, षडूर्मिपरिवर्जिता, सुधौता, कर्मकरणी, युगान्तदहनात्मिका, संकर्षणी, जगद्धात्री, कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री, त्रैलोक्यनमिता, वैष्णवी, परमेश्वरी, प्रद्युम्नदयिता, दात्री, युग्मदृष्टि; त्रिलोचना, मदोत्कटा, हंसगति, प्रचण्डा, चण्डविक्रमा, वृषावेशा, वियन्माता, विन्ध्यपर्वतवासिनी॥ १७१-१७७॥

हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी। चाणूरहन्तृतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी॥ १७८॥
वेदविद्याव्रतस्नाता ब्रह्मशैलनिवासिनी। वीरभद्रप्रिया वीरा महाकामसमुद्भवा॥ १७९॥
विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृतिः। आप्यायनी हरन्ती च पावनी पोषणी कला॥ १८०॥
मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया। करीषिणी सुधावाणी वीणावादनतत्परा॥ १८१॥
सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती। अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्का मानदायिनी॥ १८२॥
वसुप्रदा वसुमती वसोर्धारा वसुन्धरा। धाराधरा वरारोहा परावाससहस्रदा॥ १८३॥

हिमवन्मेरुनिलया, कैलासगिरिवासिनी, चाणूरहन्तृतनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी, वेदविद्याव्रतस्नाता, ब्रह्मशैलनिवासिनी, वीरभद्रप्रिया, वीरा, महाकामसमुद्भवा, विद्याधरप्रिया, सिद्धा, विद्याधरनिराकृति, आप्यायनी, हरन्ती, पावनी, पोषणी, कला, मातृका, मन्मथोद्भूता, वारिजा, वाहनप्रिया, करीषिणी, सुधावाणी, वीणावादनतत्परा, सेविता, सेविका, सेव्या, सिनीवाली, गरुत्मती, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मृगाङ्का, मानदायिनी, वसुप्रदा, वसुमती, वसोर्द्धारा, वसुन्धरा, धाराधरा, वरारोहा, परावाससहस्रदा॥ १७८-१८३॥

श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया। श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्धशरीरिणी॥ १८४॥
अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया। निहन्त्री दैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना॥ १८५॥
सुवर्चला च सुश्रोणी सुकीर्तिश्छिन्नसंशया। रसज्ञा रसदा रामा लेलिहानामृतस्रवा॥ १८६॥
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजीवनी। वज्रदण्डा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा॥ १८७॥

मङ्गल्या मङ्गला माला निर्मला मलहारिणी। गान्धर्वी गारुडी चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया॥१८८॥
सौदामिनी जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना। कर्णिकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी॥१८९॥
युगन्धरा युगावर्ता त्रिसन्ध्या हर्षवर्धिनी। प्रत्यक्षदेवता दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा॥१९०॥

श्रीफला, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवासा, शिवप्रिया, श्रीधरा, श्रीकरी, कल्या, श्रीधरार्द्धशरीरिणी, अनन्तदृष्टि, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनदप्रिया, दैत्यसंघानां निहन्त्री, सिंहिका, सिंहवाहना, सुवर्चला, सुश्रोणी, सुकीर्ति, छिन्नसंशया, रसज्ञा, रसदा, रामा, लेलिहाना, अमृतस्रवा, नित्योदिता, स्वयंज्योति, उत्सुका, मृतजीवना, वज्रदण्डा, वज्रजिह्वा, वैदेही, वज्रविग्रहा, मङ्गल्या, मङ्गला, माला, निर्मला, मलहारिणी, गान्धर्वी, गारुडी, चान्द्री, कम्बलाश्वतरप्रिया, सौदामिनी, जनानन्दा, भ्रुकुटीकुटिलानना, कर्णिकारकरा, कक्षा, कंसप्राणापहारिणी, युगन्धरा, युगावर्ता, त्रिसन्ध्या, हर्षवर्द्धिनी, प्रत्यक्षदेवता, दिव्या, दिव्यगन्धा, दिवापरा॥१८४-१९०॥

शक्रासनगता शाक्री साध्या चारुशरासना। इष्टा विशिष्टा शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता॥१९१॥
शतरूपा शतावर्ता विनता सुरभिः सुरा। सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना सुषुम्नाः सूर्यसंस्थिता॥१९२॥
समीक्ष्या सत्प्रतिष्ठा च निवृत्तिर्ज्ञानपारगा। धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना॥१९३॥
धर्माधर्मविनिर्मात्री धार्मिकाणां शिवप्रदा। धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी॥१९४॥
धर्मान्तरा धर्ममेधा धर्मपूर्वा धनावहा। धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा॥१९५॥
कापाली शकला मूर्तिः कला कलितविग्रहा। सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया॥१९६॥
सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी। प्रधानपुरुषेशेषा महादेवैकसाक्षिणी॥१९७॥
सदाशिवा वियन्मूर्तिर्वेदमूर्तिरमूर्तिका। एवं नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वाऽसौ हिमवान् गिरिः॥१९८॥
भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः। यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि॥१९९॥
भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत्प्रदर्शय। एवमुक्ताथ सा देवी तेन शैलेन पार्वती॥२००॥
संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरं पुनः। नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धिकम्॥२०१॥

शक्रासनगता, शाक्री, साध्या, चारुशरासना, इष्टा, विशिष्टा, शिष्टेष्टा, शिष्टाशिष्टप्रपूजिता, शतरूपा, शतावर्ता, विनता, सुरभि, सुरा, सुरेन्द्रमाता, सुद्युम्ना, सूर्यसंस्थिता, समीक्ष्या, सत्प्रतिष्ठा, निवृत्ति, ज्ञानपारगा, धर्मशास्त्रकुशला, धर्मज्ञा, धर्मवाहना, धर्माधर्मविनिर्मात्री, धार्मिकाणां शिवप्रदा, धर्मशक्ति, धर्ममयी, विधर्मा, विश्वधर्मिणी, धर्मान्तरा, धर्ममेधा, धर्मपूर्वा, धनावहा, धर्मोपदेष्ट्री, धर्मात्मा, धर्मगम्या, धराधरा, कापाली, शकला, मूर्ति, कला, कलितविग्रहा, सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता, सर्वशक्त्याश्रयाश्रया, सर्वा, सर्वेश्वरी, सूक्ष्मा सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी, प्रधानपुरुषेशेषा, महादेवैकसाक्षिणी, सदाशिवा, वियन्मूर्ति, वेदमूर्ति और अमूर्तिका। इस प्रकार सहस्र नामों से पर्वतराज हिमवान ने उस देवी की स्तुति की और पुनः उस देवी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर यह कहा कि हे परमेश्वरी! आपका जो यह घोर ईश्वरीय रूप है, इसे देखकर मैं भयतभीत हो गया हूँ। अब आप मुझको अन्य सौम्य रूप का दर्शन करावें। पर्वतराज के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उस देवी पार्वती ने उस घोर रूप को अन्तर्धान करके पुनः अन्य सौम्य रूप का दर्शन कराया, जो कि नीले कमलदल के समान सुन्दर और नीलकमल के समान सुगन्धित था॥१९१-२०१॥

द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम्। रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम्॥ २०२॥

देवी का वह सौम्य रूप दो नेत्रों और दो भुजाओं वाला था तथा नीले रंग के अलकों (घुंघराले बालों) से सुशोभित था। उसके चरणों के तल (नीचे का भाग) लालिमा युक्त थे और कर-कमल भी अरुणिम थे॥ २०२॥

श्रीमद्विशालसंवृत्तं ललाटतिलकोज्ज्वलम्। भूषितं चारुसर्वाङ्गं भूषणैरतिकोमलम्॥ २०३॥

उनका श्रीसम्पन्न विशाल ललाट तिलक से शोभायमान था। उनका अतिकोमल सुन्दर शरीर सम्पूर्णतः आभूषणों से अलंकृत था॥ २०३॥

दधानमुरसा मालां विशालां हेमनिर्मिताम्। ईषत्स्मितं सुबिम्बोष्ठं नूपुरारावसंयुतम्॥ २०४॥

वह अपने वक्षःस्थल में स्वर्णनिर्मित विशाल माला को धारण की हुई थी। उनकी मन्द मुस्कान से युक्त अरुणिम ओष्ठ (होंठ) पके हुए बिम्ब फल के समान सुन्दर थे। उनके चरण नूपुरों की झङ्कार से युक्त हो रहे थे॥ २०४॥

प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम्। तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः॥ २०५॥
भीतिं सन्त्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम्।

उनका प्रसन्न मुख दिव्य और अनन्त महिमा युक्त था। उस देवी के इस प्रकार के स्वरूप को देखकर पर्वतराज हिमवान् ने भय को त्याग कर प्रसन्नचित्त होकर उस परमेश्वरी से यह कहा॥ २०५॥

हिमवानुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः॥ २०६॥

यन्मे साक्षात्त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरम्। त्वया सृष्टं जगत् सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम्॥ २०७॥

हिमवान् ने कहा- आज मेरा जन्म सफल हो गया है, आज मेरी तपस्या फलीभूत हो गयी है, क्योंकि मैंने आज तुम अव्यक्त स्वरूप वाली प्रसन्नचित्त देवी का दर्शन प्राप्त किया है। हे देवि! तुमने ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की है। प्रधान (प्रकृति) आदि सभी तत्त्व तुम पर ही स्थित है॥ २०६-२०७॥

त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव परमा गतिः। वदन्ति केचित्त्वामेव प्रकृतिं प्रकृतेः पराम्॥ २०८॥

हे देवि! तुम में ही यह जगत् विलीन हो जाता है। तुम ही परम गति हो। कुछ विद्वान् तुमको ही प्रकृति और प्रकृति से परे भी कहते हैं॥ २०८॥

अपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रये। त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वरः॥ २०९॥

परमार्थ के ज्ञाता अन्य लोग आपको शिव के आश्रय में होने के कारण शिवा कहते हैं। तुम में ही प्रधान (प्रकृति), पुरुष तथा महत् तत्त्व एवं ब्रह्मा और ईश्वर (शिव) विद्यमान हैं॥ २०९॥

अविद्या नियतिर्माया कलाद्याः शतशोऽभवन्। त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी॥ २१०॥

अविद्या, नियति, माया तथा सैकड़ों कलाएं तुमसे ही उत्पन्न हुई हैं। तुम ही वह अनन्ता, परमेष्ठी परम शक्ति हो॥ २१०॥

सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रयाश्रया। त्वामधिष्ठाय योगेशि महादेवो महेश्वरः॥ २११॥

प्रधानाद्यं जगत्सर्वं करोति विकरोति च। त्वयैव सङ्गतो देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते॥ २१२॥

तुम सभी भेदों से मुक्त हो तथा सभी भेदों की आश्रय हो। हे योगेशी! तुम में अधिष्ठित (आश्रित) होकर ही महादेव शिव महेश्वर बन कर प्रधान (प्रकृति) आदि सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और संहार करते हैं। तुमसे मिल कर ही भगवान् शिव स्वात्मानन्द का अनुभव करते हैं॥ २११-२१२॥

त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी। त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम्॥ २१३॥
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम्। त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि॥ २१४॥

तुम ही परम आनन्द स्वरूप हो और तुम ही आनन्द प्रदान करने वाली हो। तुम अक्षर (अविनाशी) परम व्योम, महान ज्योति और निरञ्जन (निष्कलंक), शिव (कल्याणकारी), सर्वव्यापी, सूक्ष्म, परं ब्रह्म और सनातन हो। तुम सभी देवों में इन्द्र और ब्रह्मज्ञानियों में ब्रह्मा हो॥ २१३-२१४॥

वायुर्बलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारकः। ऋषीणाञ्च वसिष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामसि॥ २१५॥

हे देवि! तुम बलवानों में वायुरूप और योगियों में कुमार (सनत्कुमार), ऋषियों में वसिष्ठ और वेद के विद्वानों में व्यास (वेदव्यास) हो॥ २१५॥

सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणाञ्चापि शङ्करः। आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनाञ्चैव पावकः॥ २१६॥

तुम सांख्यदर्शन के ज्ञाताओं में कपिल हो, एकादश रुद्रों में भी तुम महादेव-शंकर हो, द्वादश आदित्यों में उपेन्द्र (विष्णु) हो और अष्टवस्तुओं में पावक हो॥ २१६॥

वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामसि। अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः॥ २१७॥

चारों वेदों में तुम सामवेद हो, छन्दों में गायत्री छन्द हो, विद्याओं में अध्यात्म विद्या हो और गतियों में परमगति हो॥ २१७॥

माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामसि। ओङ्कारः सर्वगुह्यानां वर्णानाञ्च द्विजोत्तमः॥ २१८॥

सभी शक्तियों में तुम माया हो और कलन (ग्रस्त) करने वालों में काल हो। सभी गोपनीय मन्त्रों में तुम ओङ्कार हो और चारों वर्णों में उत्तम ब्राह्मण हो॥ २१८॥

आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वरः। पुंसां त्वमेकः पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः॥ २१९॥

चारों आश्रमों में तुम गृहस्थाश्रम हो, ईश्वरों में महेश्वर हो, पुरुषों में तुम वह परम पुरुष हो जो कि सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है॥ २१९॥

सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे। ईशानश्चासि कल्पानां युगानां कृतमेव च॥ २२०॥

हे देवि! तुम सभी उपनिषदों में गुह्योपनिषद हो। कल्पों में तुम ईशानकल्प हो और युगों में कृतयुग (सत्ययुग) हो॥ २२०॥

आदित्यश्च ग्रहाणां त्वं[1] वाचां देवी सरस्वती। त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि॥ २२१॥

आकाशस्थ सभी ग्रहों में तुम आदित्य (सूर्य) हो और वाणियों में तुम सरस्वती हो, सुन्दर रूप वालों में लक्ष्मी हो और मायावियों में विष्णु हो॥ २२१॥

---

१. आदित्यः सर्वमार्गाणां

अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि। सूक्तानां पौरुषं सूक्तं साम ज्येष्ठं च सामसु॥ २२२॥

पतिव्रताओं में तुम अरुन्धती हो, पक्षियों में गरुड हो, सूक्तों में पुरुषसूक्त हो और सामवेद के साम गानों में ज्येष्ठसाम हो॥ २२२॥

सावित्री चासि जाप्यानां यजुषां शतरुद्रियम्। पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामसि।
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि॥ २२३॥

जप करने योग्य मन्त्रों में सावित्री हो और यजुर्वेद के मन्त्रों में तुम शतरुद्रिय हो। पर्वतों में तुम महामेरु हो और नागों में अनन्त (शेषनाग) हो। जगत् के सम्पूर्ण भावों में तुम परं ब्रह्म हो, सम्पूर्ण जगत् में तुम ही व्याप्त हो॥ २२३॥

रूपं तवाशेषविकारहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम्।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात्॥ २२४॥

तुम्हारा रूप सभी विकृतियों (विकारों) से रहित, अदृश्य, निर्मल, अद्वितीय, आदि-मध्य और अन्त रहित, अनन्त, आदि सत्य और तमोगुण से परे है, उस रूप को मैं नमस्कार करता हूँ॥ २२४॥

यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः।
आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये॥ २२५॥

वेदान्त-विज्ञान का सुनिश्चित अकाट्य अर्थ करने वाले सन्त जन ओङ्कार वाच्य जगत् के जन्मदाता जिस आनन्दमय रूप का दर्शन करते हैं, मैं उसी रूप की शरण में जाता हूँ॥ २२५॥

अशेषभूतान्तरसन्निविष्टं प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम्।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २२६॥

जो समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान है, प्रकृति और पुरुष के संयोग और वियोग का हेतु (कर्ता) है, तेजोमय, जन्म-मरण से रहित और प्राणसंज्ञक है, मैं उस रूप को नमस्कार करता हूँ॥ २२६॥

आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात्।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तथैव नमामि रूपं पुरुषाभिधानम्॥ २२७॥

आदि अन्त रहित, जगत् का आत्मा स्वरूप, नाना रूपों में स्थित, प्रकृति से परे, कूटस्थ (अचल) और अव्यक्त शरीर वाले पुरुष नामक तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ॥ २२७॥

सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम्।
सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम्॥ २२८॥

सबको आश्रय देने वाले, सम्पूर्ण जगत् का विधाता, सर्वत्रगामी, जन्म-मरण से रहित, सूक्ष्म, विचित्र, गुणत्रय युक्त, प्रधान (प्रकृति) संज्ञक निराकार रूप को मैं नमस्कार करता हूँ॥ २२८॥

आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम्।
ऐश्वर्यविज्ञानविरागधर्मैः[1] समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम्॥ २२९॥

---

१. विरोधधर्मैः

हे देवि! तुम्हारा जो रूप जगत् में आदिकाल से विद्यमान, महान, पुरुष संज्ञक, तथा प्रकृति में स्थित, त्रिगुणात्मक बीजरूप है और जो ऐश्वर्य, विज्ञान तथा वैराग्य भाव से युक्त है, उस रूप को मैं नमस्कार करता हूँ॥२२९॥

द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम्।
अनन्तभूतैरधिवासितं[1] ते नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसंज्ञम्॥२३०॥

तुम्हारा जो रूप चौदह लोकों वाला है, जो जल में विद्यमान है, विचित्र भेदवाला, एकमात्र परम पुरुष ही जिसका स्वामी है, जिसमें असंख्य प्राणी निवास करते हैं, उस ब्रह्माण्ड संज्ञक तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ॥२३०॥

अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं स्वतेजसा पूरितलोकभेदम्।
त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसंज्ञं नमामि रूपं रविमण्डलस्थम्॥२३१॥

सभी वेदों का एकात्मरूप, आदि कालीन (सबसे पूर्व विद्यमान), अपने तेज से सभी लोकों में व्याप्त, तीनों कालों का हेतु एवं सूर्यमण्डल में स्थित परमेष्ठी संज्ञक तुम्हारे रूप को नमस्कार है॥२३१॥

सहस्रमूर्द्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।
शयानमन्तः सलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥२३२॥

सहस्र शिरों वाले, सहस्र भुजाओं वाले, अनन्त-शक्ति सम्पन्न, क्षीरसागर में शयन करने वाले तुम्हारे पुराण पुरुष नारायण नामक रूप को मैं प्रणाम करता हूँ॥२३२॥

दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं युगान्तकालानलकर्तृरूपम्।
अशेष भूताण्डविनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालसंज्ञम्॥२३३॥

विकराल दाँतों (ढाढों) वाले, देवों के द्वारा वन्दनीय, प्रलयकालीन अग्नि के समान जाज्वल्यमान, सम्पूर्ण प्राणिजगत् सहित ब्रह्माण्ड के विनाशक तुम्हारे कालसंज्ञक रूप को मैं प्रणाम करता हूँ॥२३३॥

फणासहस्रेण विराजमानं भोगीन्द्रमुख्यैरपि पूज्यमानम्।
जनार्दनारूढतनुं प्रसुप्तं नतोऽस्मि रूपं तव शेषसंज्ञम्॥२३४॥

सहस्रफणों से शोभायमान और सभी नागराजों के द्वारा पूज्यमान तुम्हारे जिस शरीर पर भगवान् विष्णु शयन करते हैं, उसको मैं प्रणाम करता हूँ॥२३४॥

अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं ब्रह्मामृतानन्दरसंज्ञमेकम्।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम्॥२३५॥

अव्याहत (असीम) ऐश्वर्य वाले, तीन नेत्रों वाले, ब्रह्मानन्द संज्ञक आनन्द रस का आस्वादन करने वाले प्रलयकाल में भी विद्यमान रहते हुए द्युलोक में नृत्य करने वाले तुम्हारे उस अद्वितीय रुद्र संज्ञक रूप को मैं नमस्कार करता हूँ॥२३५॥

---

१. अनेकभेदैःरधिवासितं,

प्रहीणशोकं विमलं पवित्रं[१] सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्।
सुकोमलं देवि विभाति[२] शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि॥२३६॥

हे देवि! आपके शोकरहित, निर्मल, पवित्र, अत्यन्त कोमल और उज्ज्वल जिस रूप के चरण कमलों का पूजन सुरों (देवों) और असुरों के द्वारा भी किया गया है, हे भवानी! मैं उस रूप को नमस्कार करता हूँ॥२३६॥

ॐ नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्ते परमेश्वरि। नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः॥२३७॥

हे महादेवी! तुमको नमस्कार है, हे परमेश्वरी! तुमको नमस्कार है। हे भगवती! हे ईशानी! शिवा तुमको नमस्कार है॥२३७॥

त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम। त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि॥२३८॥

हे देवी मैं तुम पर ही निर्भर हूँ, तुम पर आधारित हूँ। तुम ही मेरी गति हो। हे परमेश्वरी! तुम प्रसन्न हो जाओ। मैं तुम्हारी शरण में आता हूँ॥२३८॥

मया नास्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा। जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यतः॥२३९॥

मेरे समान (भाग्यशाली) कोई देव या दानव इस लोक में नहीं है, क्योंकि मेरी तपस्या के कारण जगत-जननी ही मेरी पुत्री रूप में उत्पन्न हुई है॥२३९॥

एषा तवाम्बिके देवि किलाभूत्पितृकन्यका। मेनाशेषजगन्मातुरहो मे पुण्यगौरवम्॥२४०॥

हे देवी! यह पितरों की कन्या मेना तुम्हारी माता बनी है, जबकि तुम सम्पूर्ण जगत् की माता हो। अहो यह मेरे पुण्य के गौरव की ही देन है॥२४०॥

पाहि माममरेशानि मेनया सह सर्वदा। नमामि तव पादाब्जं व्रजामि शरणं शिवम्[३]॥२४१॥

हे देवेशि! मेना सहित मेरी सदैव रक्षा करो। मैं तुम्हारे चरण कमल को नमस्कार करता हूँ और तुम्हारी कल्याणकारी शरण में जाता हूँ॥२४१॥

अहो मे सुमहद्भाग्यं महादेवीसमागमात्। आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामि शङ्करि॥२४२॥

अहो यह मेरा सौभाग्य है कि महादेवी मेरे घर आयी है। हे महादेवी! हे शंकरी! मुझे आज्ञा दो मैं क्या करूँ?॥२४२॥

एतावदुक्त्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः। सम्प्रेक्षमाणो गिरिजा प्राञ्जलिः पार्श्वतोऽभवत्॥२४३॥

इतना कह कर पर्वतीराज हिमवान् पार्वती को देखते हुए हाथ जोड़ कर उसके पास खड़ा हो गया था॥२४३॥

अथ सा तस्य वचनं निशम्यैव जगत्प्रसूः[४]। सस्मितं प्राह पितरं स्मृत्वा पशुपतिं पतिम्॥२४४॥

तब उस हिमवान के वचन को सुनकर जगत् की माता उस कन्या (पार्वती) ने अपने पति पशुपति भगवान् का स्मरण करके मुस्कुराते हुए अपने पिता हिमवान् से यह कहा॥२४४॥

---

१. प्रविहीन रूपम्, २. विभासि,
३. शिवाम्, ४. जगतोऽरणिः,

श्रीदेव्युवाच

शृणुष्व चैतत्परमं गुह्यमीश्वरगोचरम्। उपदेशं गिरिश्रेष्ठ! सेवितं ब्रह्मवादिभिः॥२४५॥

देवी बोली- हे पर्वतश्रेष्ठ! मेरे इस परम गोपनीय उपदेश को सुनो जो कि केवल ईश्वर को विदित है और जिसका पालन ब्रह्मवादी विद्वान् करते हैं॥२४५॥

यन्मे साक्षात् परं रूपमैश्वरं दृष्टमद्भुतम्। सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम्॥२४६॥

शान्तः समाहितमना मानाहङ्कारवर्जितः। तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरणं व्रज॥२४७॥

तुमने जो मेरा परम अद्भुत सर्वशक्ति-सम्पन्न और प्रेरणाप्रद अनन्त ईश्वरी रूप देखा है तुम शान्त, एकाग्रचित्त, अभिमान और अहंकार रहित होकर मेरे उसी रूप के प्रति समर्पित और तत्पर होकर उसी की शरण में जाओ॥२४६-२४७॥

भक्त्या त्वनन्यया तात मद्भावं परमाश्रितः। सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्चय सर्वदा॥२४८॥

हे तात् अनन्य भक्तिभाव से मेरे परम भाव (देवी स्वरूप) का आश्रय लेकर सभी यज्ञों, तपश्चर्या और दान-धर्म से मेरे उसी स्वरूप की सदैव उपासना किया करो॥२४८॥

तदेव मनसा पश्य तद् ध्यायस्व जपस्व तत्। ममोपदेशात्संसारं नाशयामि तवानघ॥२४९॥

मेरे उपदेश के अनुसार मेरे स्वरूप को तुम मन में देखो, उसी का ध्यान करो और मन्त्र का जप करो। हे अनघ! मेरे उपदेश के अनुसार ऐसा करने पर मैं तुम्हारे सांसारिक कष्टों को नष्ट कर दूँगी॥२४९॥

अहं वै मत्परान् भक्तानैश्वरं योगमास्थितान्[१]। संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु॥२५०॥

मेरी भक्ति में लीन होकर ईश्वरीय योगसाधना में निरत भक्तों को मैं इस संसार रूपी सागर से शीघ्र उद्धार कर देती हूँ॥२५०॥

ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि। प्राप्याहं ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभिः॥२५१॥

हे पर्वतराज! तुम मुझे ध्यान से, कर्मयोग से, भक्ति से, अथवा ज्ञान से प्राप्त कर सकते हो, तदतिरिक्त कोटि (करोड़ों) कर्मों से भी मुझे नहीं पा सकते हो॥२५१॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्कर्म वर्णाश्रमात्मकम्। अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु॥२५२॥

वेदों और मनु आदि की स्मृतियों में चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लिए कथित सम्यक् कर्म को तुम अध्यात्म-ज्ञान के साथ अपनी मुक्ति के लिए निरन्तर करते रहो॥२५२॥

धर्मात्सञ्जायते भक्तिर्भवत्यां सम्प्राप्यते परम्। श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मतः॥२५३॥

धर्म का पालन करने से परमतत्त्व (परमात्मा) की प्राप्ति होती है। श्रुति (वेद) और स्मृतियों में कथित यज्ञादि करना ही धर्म है॥२५३॥

नान्यतो जायते धर्मो वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ। तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत्॥२५४॥

धर्म (का ज्ञान) अन्यत्र कहीं से नहीं हो सकता। वेद से ही धर्म (धर्म के ज्ञान) का उद्‌गम हुआ था। अतः धर्म की कामना वाला जिज्ञासु मेरे ही स्वरूप वेद का आश्रय ले अर्थात् वेद का अध्ययन करे॥२५४॥

---

१. अहं त्वां परया भक्त्या ऐश्वरं योगमास्थितम्।

ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी। ऋग्यजुः सामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते॥२५५॥

सृष्टि के आदि काल में मेरी यह वेदसंज्ञक पुरातनी (पुरानी) शक्ति ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के रूप में प्रवर्तित (प्रारम्भ) होती है॥२५५॥

तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः। ब्राह्मणादीन्ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत्॥२५६॥

भगवान् अज (ब्रह्मा) ने उन वेदों की रक्षा के लिए ही ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की सृष्टि की थी और उनको उनके तत्तत् कार्यों में नियुक्त किया था॥२५६॥

येन कुर्वन्ति मद्धर्मं तदर्थं ब्रह्मनिर्मितम्। तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्रादीनकल्पयत्॥२५७॥

उन चारों वर्णों के लिए ब्रह्मा के द्वारा निश्चित किये गये धर्मकृत्यों को जो नहीं करते हैं, उनके लिए अधोवर्ती (नीचे के) तामिस्र आदि नरकों को (यातना देने हेतु) बनाया है॥२५७॥

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम्। योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभिः॥२५८॥

धर्म को बतलाने वाला वेद के अतिरिक्त अन्य कोई भी शास्त्र नहीं है। जो व्यक्ति अन्य विषयों में अपना मन लगाता है, उसके साथ द्विजातियों को वार्तालाप भी नहीं करना चाहिए॥२५८॥

यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विविधानि तु। श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी॥२५९॥

वेद और स्मृतियों के विरुद्ध जो भी विविध प्रकार के अन्य शास्त्र लोक में देखे जाते हैं, उनकी निष्ठा (आस्था, परिणति) तमोगुण में होती है॥२५९॥

कापालं भैरवञ्चैव यामलं वाममार्हतम्। एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु॥२६०॥

जो कापालिक, भैरव, यामल (रुद्रयामल आदि) तथा वाममार्ग के या आर्हत (जैन धर्म के) ग्रन्थ हैं तथा इसी प्रकार के जो अन्य ग्रन्थ हैं, वे सब बुद्धि को भ्रमित करने वाले हैं॥२६०॥

ये कुशास्त्राभियोगेन मोहयन्तीह मानवान्। मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायैषां भवार्णवे॥२६१॥

जो लोग ऐसे कुशास्त्रों के उपदेश से मनुष्यों को दिग्भ्रमित करते हैं, उन्हीं लोगों को इस भवसागर में मोहित करने के लिए मैंने वैसे शास्त्रों को बनाया है॥२६१॥

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं कर्म वैदिकम्। तत्प्रयत्नेन कुर्वन्ति मत्प्रियास्ते हि ये नराः॥२६२॥

वेद के अर्थ के ज्ञाता श्रेष्ठतम विद्वानों ने जो वैदिक कर्म कहा है, वही कर्म करना चाहिए। जो मनुष्य उस वेदोक्त कर्म को प्रयत्नपूर्वक करते हैं- वे मुझे बहुत प्रिय लगते हैं॥२६२॥

वर्णानामनुकम्पार्थं मन्नियोगाद्विराट् स्वयम्। स्वायम्भुवो मनुर्धर्मान्मुनीनां पूर्वमुक्तवान्॥२६३॥

मेरे आदेशानुसार पूर्वकाल में विराट्पुरुष स्वायम्भुव मनु ने चारों वर्णों पर अनुकम्पा करने के लिए मुनियों को धर्म का उपदेश दिया था॥२६३॥

श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद्धर्ममुत्तमम्। चक्रुर्धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि॥२६४॥

स्वायम्भुव मनु के मुख से उस परम उत्तम धर्म को सुनकर उस धर्म की प्रतिष्ठा (सर्वत्र प्रचार) हेतु मुनियों ने धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचना की थी॥२६४॥

तेषु चान्तर्हितेष्वेवं युगान्तेषु महर्षयः। ब्रह्मणो वचनात्तानि करिष्यन्ति युगे युगे॥२६५॥

युग का अन्त (प्रलय) होने पर उन धर्मशास्त्रों के अन्तर्हित (अर्थात् विलुप्त) हो जाने पर पुनः सृष्टि के प्रत्येक युग के आरम्भ में ब्रह्मा के द्वारा प्रवचन किये जाने पर महर्षिगण पुनः उनकी रचना किया करेंगे॥२६५॥

अष्टादश पुराणानि व्यासाद्यैः कथितानि तु। नियोगाद् ब्रह्मणो राजंस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः॥२६६॥

हे राजन्! ब्रह्मा के आदेशानुसार व्यास आदि के द्वारा अष्टादश पुराणों की रचना की गयी है। उन पुराणों में धर्म प्रतिष्ठित है अर्थात् उनमें धर्म का वर्णन किया गया है॥२६६॥

अन्यान्युपपुराणानि तच्छिष्यैः कथितानि तु। युगे युगेऽत्र सर्वेषां कर्ता वै धर्मशास्त्रवित्॥२६७॥

उन पुराणों के अतिरिकत अन्य उपपुराणों की रचना भी उन व्यास जी के शिष्यों के द्वारा ही की गयी है। प्रत्येक युग में धर्मशास्त्र के ज्ञाता ही सभी पुराण, स्मृति आदि ग्रन्थों की रचना करते हैं॥२६७॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च। ज्योतिः शास्त्रं न्यायविद्या मीमांसा चोपबृंहणम्॥२६८॥
एवं चतुर्दशैतानि तथा हि द्विजसत्तमाः। चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते॥२६९॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, न्याय-विद्या और मीमांसा तथा वेदों के उपबृंहणकारक इतिहास-पुराण एवं चारों वेदों सहित चतुर्दश विद्या-स्थान कहे गये हैं। धर्म का उपदेश इनके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है॥२६८-२६९॥

एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम्। स्थापयन्ति ममादेशाद्यावदाभूतसंप्लवम्॥२७०॥

इस प्रकार पितामह (ब्रह्मा) के द्वारा कथित परम धर्म को मनु और व्यास आदि मेरे आदेशनुसार प्रलय पर्यन्त स्थापित रखते हैं॥२७०॥

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे। परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परम्पदम्॥२७१॥

महाप्रलय का काल आने पर ब्रह्मा सहित वे सभी मनु और व्यास आदि पुण्यात्मा परम पद को प्राप्त करते हैं॥२७१॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्। धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत्॥२७२॥

अतः समग्र प्रयत्न करके धर्म के ज्ञान हेतु वेद का आश्रय लेना चाहिए अर्थात् वेद का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। जो ज्ञान धर्म सहित होता है, वही ज्ञान परम ब्रह्म को प्रकाशित करता है अर्थात् परमब्रह्म का बोध कराता है॥२७२॥

ये तु सङ्गान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः। उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः॥२७३॥
सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः। अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः॥२७४॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा मज्ज्ञानकथने रताः। संन्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः॥२७५॥
तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वं समुत्थितम्। नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन मा चिरात्॥२७६॥

जो मनुष्य आसक्ति को त्याग कर मेरी शरण में आ जाते हैं और ईश्वरीय योग में स्थित होकर भक्तिपूर्वक सदा उपासना करते हैं, सभी प्राणियों के प्रति दयावान हैं, शान्त, दान्त (इन्द्रियों पर संयम रखने वाले), ईर्ष्या-द्वेष से रहित तथा अभिमान रहित हैं, तपश्चर्या में रत, विहित व्रत करने वाले, मेरी

भक्ति में अपने चित्त और प्राण को लगाने वाले तथा मेरे द्वारा कथित ज्ञान की चर्चा करने में संलग्न जो भी संन्यासी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारी हैं, नित्य मेरी भक्ति में संलग्न उन भक्तों के माया तत्त्व से जनित समस्त मोह और अज्ञानरूपी अन्धकार को मैं शीघ्र ही ज्ञानरूपी दीपक से नष्ट कर देती हूँ॥२७३-२७६॥

ते सुनिर्धूत तमसो ज्ञानेनैकेन मन्मयाः। सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनःपुनः॥२७७॥

मेरी भक्ति में लीन जिन भक्तों का ज्ञान रूपी दीपक से अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो गया है, वे सदैव परम ब्रह्म विषयक आनन्द को प्राप्त करते हैं और पुनः (बारंबार) संसार में जन्म ग्रहण नहीं करते हैं॥२७७॥

तस्मात्सर्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायणः। मामेवार्चय सर्वत्र मनसा शरणं गतः॥२७८॥

अतः सभी प्रकार से मेरा भक्त बनकर और मेरे प्रति समर्पित बनकर सच्चे मन से मेरी शरण में आकर सर्वत्र मेरा ही पूजन करो॥२७८॥

अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरं रूपमव्ययम्। ततो मे परमं रूपं कालाद्यं शरणं व्रज॥२७९॥

यदि तुम मेरे अविनाशी ईश्वरीय स्वरूप का ध्यान करने में असमर्थ हो तो तब मेरे कालादि(?) परम रूप की शरण में जाओ॥२७९॥

तद्यत्स्वरूपं मे तात मनसो गोचरं तव। तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव॥२८०॥

हे तात! मेरा जो भी स्वरूप तुम्हारे मन को अभीष्ट लगे उसी पर एकाग्र चित्त और तत्पर होकर उसी के पूजन में संलग्न हो जाओ॥२८०॥

यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम्। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम्॥२८१॥
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम्। ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्ति ते॥२८२॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः। गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥२८३॥

मेरा जो रूप निष्कल (कला रहित), चिन्मात्र (विशुद्ध ज्ञानमात्र) केवल अद्वितीय, कल्याणकारी, सभी भेदों (उपाधियों) से रहित, अनन्त, अमर और परमेश्वरात्मक है, उस परम पद रूप को बड़े कष्ट से और एकमात्र ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है। अभीष्ट ज्ञान का साक्षात्कार (अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति) करने वाले ज्ञानी मेरे स्वरूप में ही प्रविष्ट (लीन) हो जाते हैं॥२८१-२८३॥

मामनाश्रित्य परमं निर्वाणममलं पदम्। प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज॥२८४॥

हे पर्वतराज! मेरा आश्रय लिए बिना परम निर्वाण (मोक्ष) रूप निर्मल पद नहीं प्राप्त हो सकता है। अतः तुम मेरी शरण में आओ॥२८४॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयतोऽपि वा। मामुपास्य महीपाल ततो यास्यसि तत्पदम्॥२८५॥

हे राजन्! तुम एक भाव से (अद्वैत भाव से) अथवा पृथक्भाव (द्वैतभाव) से अथवा दोनों भावों से भी मेरी उपासना करके उस मेरे परम पद को प्राप्त करोगे॥२८५॥

मामनाश्रित्य तत्तत्त्वं स्वभावविमलं शिवम्। ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज॥२८६॥

हे राजेन्द्र! मेरा आश्रय लिए विना निर्मल स्वभाव वाले उस कल्याणकारी तत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता है। अतः तुम मेरी शरण में जाओ॥२८६॥

तस्मात् त्वमक्षरं रूपं नित्यं वा रूपमैश्वरम्। आराधय प्रयत्नेन ततो बन्धं[1] प्रहास्यसि॥२८७॥

अथवा तुम प्रयत्नपूर्वक मेरे अविनाशी सनातन ईश्वरीय स्वरूप की प्रयत्नपूर्वक आराधना करो उससे तुम [शुभाशुभ कार्मों के] बन्धन से मुक्त हो जावोगे॥२८७॥

कर्मणा मनसा वाचा शिवं सर्वत्र सर्वदा। समाराधय भावेन ततो यास्यसि तत्पदम्॥२८८॥

मन, वचन और कर्म से सदैव और सर्वत्र श्रद्धाभाव से शिव की आराधना करो उससे तुम उस परम पद को प्राप्त करोगे॥२८८॥

न वै पश्यन्ति[2] तं देवं मोहिता मम मायया। अनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम्॥२८९॥

उस अनादि, अनन्त, अजन्मा महेश्वर देव परम शिव को मेरी माया से मोहित मनुष्य नहीं देख पाते हैं॥२८९॥

सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं निरञ्जनम्। नित्यानन्दं निराभासं निर्गुणं तमसः परम्॥२९०॥
अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम्। स्वसंवेद्यमवेद्यं तत्परे व्योम्नि व्यवस्थितम्॥२९१॥

वह भगवान् शिव सभी प्राणियों के अन्दर आत्मा रूप में विराजमान, सभी के आधार, निरञ्जन (निष्कलंक), प्रपञ्चरहित, नित्य आनन्दमय, निराभास, निर्गुण, अन्धकार से दूर (प्रकाशमय), अद्वैत, अचल, प्रपञ्च-रहित निष्कल ब्रह्म हैं। वह स्वसंवेद्य, अज्ञेय शिव परम व्योम में स्थित हैं॥२९०-२९१॥

सूक्ष्मेण तमसा नित्यं वेष्टिता मम मायया। संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनःपुनः॥२९२॥

मेरी माया के द्वारा सूक्ष्म तमोगुण से वेष्टित (घिरे हुए) प्राणी इस घोर संसार में पुनः पुनः (बार-बार) जन्म लेते हैं॥२९२॥

भक्त्या त्वनन्यया राजन् सम्यग्ज्ञानेन चैव हि। अन्वेष्टव्यं हि तद् ब्रह्म जन्मबन्धनिवृत्तये॥२९३॥

हे राजन्! जन्म-[मरण] रूपी बन्धन से मुक्ति हेतु मेरी अनन्य भक्ति तथा सम्यक् ज्ञान से उस परम ब्रह्म का अन्वेषण अर्थात् ध्यान करना चाहिए॥२९३॥

अहङ्कारञ्च मात्सर्यं कामं क्रोधं परिग्रहम्। अधर्माभिनिवेशञ्च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितः॥२९४॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। अवेक्ष्य चात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते॥२९५॥

अहंकार, ईर्ष्या, काम, क्रोध, संग्रह की प्रवृत्ति और अधर्म में अभिनेवेश (आसक्ति) को त्यागकर वैराग्य भाव का आश्रय लेकर एवं सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को देखने और सभी प्राणियों को अपने आत्मा में तथा स्वयं अपने आत्मा से आत्मा अर्थात् परमात्मा को देखने वाला ब्रह्मत्व [ब्रह्म के सान्निध्य] को प्राप्त करता है॥२९४-२९५॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः। ऐश्वरीं परमां भक्तिं विन्देतानन्यभाविनीम्॥२९६॥

---

१. ततोऽन्धत्वं, २. यास्यन्ति

तब वह ब्रह्म स्वरूप, प्रसन्न चित्त वाला, सभी प्राणियों को अभयदान देने वाला होकर ईश्वर की अनन्य भक्ति को प्राप्त करता है॥२९६॥

वीक्ष्यते तत्परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्मनिष्कलम्। सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते॥२९७॥

वह ईश्वर के परम तत्त्व स्वरूप निष्कल (कलातीत) ब्रह्म का दर्शन करता है और समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर उस पर-ब्रह्म में ही स्थित (लीन) हो जाता है॥२९७॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठानं[१] परस्य परमः शिवः। अनन्यश्चाव्ययश्चैकश्चात्माधारो महेश्वरः॥२९८॥

यह अनन्य, अविनाशी, अद्वितीय और आत्मा के आधार परम शिव महेश्वर ही पर ब्रह्म की प्रतिष्ठा (आश्रय) स्वरूप हैं॥२९८॥

ज्ञानेन कर्मयोगेन भक्तियोगेन वा नृप। सर्वसंसारमुक्त्यर्थमीश्वरं शरणं व्रज॥२९९॥

हे राजन्! समस्त संसार के बन्धन से मुक्ति हेतु तुम ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग से ईश्वर शिव की शरण में जाओ॥२९९॥

एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर। अन्वीक्ष्य चैतदखिलं यथेष्टं कर्तुमर्हसि॥३००॥

हे पर्वतराज! मैंने तुमको यह गोपीनय उपदेश दिया है। इस पूरे उपदेश पर अच्छी तरह विचार कर जैसा उचित और अभीष्ट लगे वैसा कर सकते हो॥३००॥

अहं वै याचिता देवैः सञ्जाता परमेश्वरात्। विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम्॥३०१॥

भगवान् शिव की निन्दा करने वाले अपने पिता दक्ष की निन्दा करके मैं देवताओं के द्वारा याचना (प्रार्थना) किये जाने पर परमेश्वर से उत्पन्न हुई हूँ॥३०१॥

धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात्। मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता॥३०२॥

तुम्हारे द्वारा मेरी आराधना किये जाने के कारण में धर्म की स्थापना हेतु तुमको पिता रूप में आश्रित (तात्पर्य यह कि स्वीकार) करके मेना की देह से उत्पन्न हुई हूँ॥३०२॥

स त्वं नियोगाद्देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः। प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे॥३०३॥

वही मेरे पिता बनकर तुम परमात्मा देव ब्रह्मा के आदेश से स्वयंवर के अवसर पर भगवान् शिव को प्रदान करोगे॥३०३॥

तत्सम्बनधाच्च ते राजन् सर्वे देवाः सवासवाः। त्वां नमस्यन्ति वै तात प्रसीदति च शङ्करः॥३०४॥

हे तात्! उस वैवाहिक सम्बन्ध के सुयोग के अवसर पर इन्द्र सहित सभी देवता तुमको प्रणाम करेंगे और शिव भी तुम पर प्रसन्न हो जावेंगे॥३०४॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम्। सम्पूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं व्रज॥३०५॥

अतः सम्पूर्ण प्रयास से मुझको परमेश्वर शिव के आश्रित जानो और उन्हीं परमेश्वर शिव का पूजन करके उनकी शरण में जाओ॥३०५॥

स एवमुक्तो हिमवान् देवदेव्या गिरीश्वरः। प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥३०६॥

१. ब्रह्मणोऽयं प्रतिष्ठानं

विस्तरेण महेशानि योगं माहेश्वरं परम्। ज्ञानं चैवात्मनो योगं साधनानि प्रचक्ष्व मे॥३०७॥

देवी पार्वती के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह पर्वतराज हिमवान् नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर उस देवी से पुनः यह बोला कि हे महेशानी! तुम मुझे परमश्रेष्ठ माहेश्वर योग, ज्ञान तथा आत्मयोग को और उसके साधनों को भी बतलाओ॥३०५-३०७॥

तस्यैतत्परमं ज्ञानमात्मयोगमुत्तमम्[1]। यथावद् व्याजहारेशा साधनानि च विस्तरात्॥३०८॥

तब ईशानी पार्वती ने उस हिमवान् को परम ज्ञान और परम उत्तम आत्मज्ञान को यथावत् (सम्यक् रूप से) बतलाया तथा उसके साधनों को भी विस्तार से बतलाया था॥३०८॥

निशम्य वदनाम्भोजाद्गिरीन्द्रो लोकपूजितः। लोकमातुः परं ज्ञानं योगासक्तोऽभवत्पुनः॥३०९॥

जगज्जननी पार्वती के मुखारविन्द से परम ज्ञान को सुनकर लोक में पूजित पर्वतराज हिमवान् पुनः योगसाधना में प्रवृत्त हो गया था॥३०९॥

प्रददौ च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात्। नियोगाद् ब्रह्मणः साध्वीं देवानाञ्चैव सन्निधौ॥३१०॥

[पार्वती के विवाह योग्य हो जोन पर] हिमवान् ने ब्रह्मा के आदेशानुसार देवताओं के सान्निध्य में अपने सौभाग्य की गौरववृद्धि करते हुए पार्वती का दान शिव को दिया था॥३१०॥

य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकीर्तनम्। शिवस्य सन्निधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः॥३११॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः। उल्लंघ्य ब्रह्मणो लोकं देव्याः स्थानमवाप्नुयात्॥३१२॥

जो मनुष्य देवी के माहात्म्य का वर्णन करने वाले इस अध्याय का पाठ शिव के समीप उनके भक्ति-भाव से प्रभावित होकर शुद्ध मन से करता है, वह सभी पापों से मुक्त और दिव्ययोग से युक्त होकर ब्रह्मा के लोक को पार करके देवी के स्थान को प्राप्त करता है॥३११-३१२॥

यश्चैतत् पठते स्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपतः। समाहितमनाः सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३१३॥

जो मनुष्य एकाग्र चित्त होकर ब्राह्मणों के सान्निध्य में इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥३१३॥

नाम्नामष्टसहस्रन्तु देव्या यत्समुदीरितम्। ज्ञात्वार्कमण्डलगतामावाह्य परमेश्वरीम्॥३१४॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तियोगसमन्वितः। संस्मरन्परमं भावं देव्या माहेश्वरं परम्॥३१५॥
अनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद् द्विजः। सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति॥३१६॥

सूर्यमण्डल में गयी हुई परमेश्वरी, देवी शिवा का आवाहन करके जो उस देवी के अष्टोत्तर सहस्र नामों वाले इस स्तोत्र का पाठ करता है तथा भक्तिभाव से युक्त होकर देवी के परम माहेश्वर भाव का ध्यान करते हुए गन्ध-पुष्प आदि से उनका पूजन करता है और अनन्य (एकाग्र) मन से आजीवन उस स्तोत्र का जप (पाठ) करता है, वह द्विज अन्तकाल में उस देवी की स्मृति पाकर अर्थात् स्मरण करके परम ब्रह्म को प्राप्त करता है॥३१४-३१६॥

---

१. मात्मना योगमुत्तमम्

अथवा जायते विप्रो ब्राह्मणानां शुचौ कुले।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥ ३ १ ७॥

अथवा वह ब्राह्मणों के शुद्ध कुल में ब्राह्मण रूप में जन्म लेता है और पूर्वजन्म के संस्कार के माहात्म्य के कारण ब्रह्मविद्या (वेदादि का ज्ञान) प्राप्त करता है॥ ३ १ ७॥

सम्प्राप्य योगं परमं दिव्यं तत्पारमेश्वरम्। शान्तः सुसंयतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ३ १ ८॥

तब वह परमेश्वर विषयक दिव्य योग को प्राप्त करके शान्त और संयमित रहकर शिव का सायुज्य प्राप्त करता है॥ ३ १ ८॥

प्रत्येकञ्चाथ नामानि जुहुयात्सवनत्रयम्। महामारिकृतैर्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते॥ ३ १ ९॥

जो व्यक्ति दिन में तीन बार (प्रातः मध्याह्न तथा सांयकाल) देवी के प्रत्येक नाम से हवन करता है, वह महामारी आदि (हैजा आदि संक्रामक) रोगों के दोषों से तथा ग्रहदोषों से मुक्त हो जाता है॥ ३ १ ९॥

जपेद्वाऽहरहर्नित्यं संवत्सरमतन्द्रितः। श्रीकामः पार्वतीं देवीं पूजयित्वा विधानतः॥ ३ २ ०॥
सम्पूज्य पार्श्वतः शम्भुं त्रिनेत्रं भक्तिसंयुतः।
लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः॥ ३ २ १॥

अथवा लक्ष्मी (धन-सम्पदा) की कामना वाला भक्त एक वर्ष तक प्रतिदिन आलस्य रहित (जागरूक) रहकर देवी पार्वती का पूजन करे और देवी के सहस्रनाम का नित्य पाठ करे और देवी के पास (पार्श्व में) भक्तिभावपूर्वक त्रिनेत्र वाले भगवान् शिव का पूजन करे। ऐसा करके वह महादेव की कृपा से महती लक्ष्मी (विपुल धन-सम्पदा) को प्राप्त करता है॥ ३ २ ०-३ २ १॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जप्तव्यं हि द्विजातिभिः।
सर्वपापापनोदार्थं देव्या नाम सहस्रकम्॥ ३ २ २॥

अतः द्विजातियों को सभी पापों को दूर करने के लिए देवी के सहस्रनाम का पाठ पूर्ण प्रयत्न के साथ करना चाहिए॥ ३ २ २॥

सूत उवाच

प्रसङ्गात्कथितं विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम्। अतःपरं प्रजासर्गं भृग्वादीनां निबोधत॥ ३ २ ३॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे देव्या माहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः॥ १ २॥

सूत जी बोले- हे ब्राह्मणो! मैंने प्रसङ्गवश देवी के उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया है। अब आगे आप लोग भृगु आदि ऋषियों की प्रजासृष्टि का वर्णन सुनें॥ ३ २ ३॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में देवीमाहात्म्य-वर्णन-सम्बन्धी बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १ २॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः
भृगुप्रभृतिमुनीनां दक्षकन्यानां च वंशवर्णनम्

सूत उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया। देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ शुभौ॥१॥

सूत जी बोले- भृगु ऋषि से उनकी पत्नी ख्याति में भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी का जन्म हुआ था और धाता एवं विधाता नामक दो शुभकारी पुत्र उत्पन्न हुए थे, वे दोनों मेरु के जामाता (दामाद) बने थे॥१॥

आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः। तयोर्धातृविधातृभ्यां द्वौ च जातौ सुतावुभौ॥२॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः। तथा वेदशिरा नाम प्राणस्य द्युतिमान्सुतः॥३॥

मेरु की आयति और नियति नामक दो कन्याएं उत्पन्न हुई थी। उन दोनों के धाता और विधाता नामक पतियों से प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें मृकण्डु का मार्कण्डेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था और प्राण का वेदशिरा नामक तेजस्वी पुत्र हुआ था॥२-३॥

मरीचेरपि सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत। कन्याचतुष्टयञ्चैव सर्वलक्षणसंयुतम्॥४॥
तुष्टिर्ज्येष्ठा तथा वृष्टिः कृष्टिश्चापचितिस्तथा। विरजाः पर्वतश्चैव पौर्णमासस्य तौ सुतौ॥५॥

मरीचि से उनकी पत्नी सम्भूति में पौर्णमास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था और सभी शुभ लक्षणों से युक्त चार कन्याएं उत्पन्न हुई थी। उनमें से ज्येष्ठ पुत्री का नाम तुष्टि था तथा उसकी बहनें क्रमशः वृष्टि, कृष्टि तथा अपचिति नाम वाली थी। पौर्णमास के दो पुत्र क्रमशः विरजा और पर्वत नाम वाले थे॥४-५॥

क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः। कर्दमञ्च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम्॥६॥
तथैव च कनीयांसं तपोनिर्धूतकल्मषम्। अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्॥७॥
सोमं दुर्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्च योगिनम्। स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी[1]जज्ञे लक्षणसंयुता॥८॥
सिनीवालीं कुहूञ्चैव राकामनुमतीमपि। प्रीत्यां पुलस्त्यो भगवान् दम्भोलिमसृजत्प्रभुः॥९॥
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे। वेदबाहुं तथा कन्यां सन्नतिं नाम नामतः॥१०॥

प्रजापति पुलह की पत्नी क्षमा ने कर्दम, वरीयान् तथा मुनिश्रेष्ठ सहिष्णु को जन्म दिया था। वह सहिष्णु सबसे कनिष्ठ थे और उन्होंने तपश्चर्या से पापों को नष्ट कर दिया था। अनसूया ने अत्रि से तीन निष्पाप पुत्रों क्रमशः सोम, दुर्वासा तथा दत्तात्रेय को जन्म दिया था। अङ्गिरा की शुभ लक्षणों वाली पत्नी स्मृति ने सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक कन्याओं को जन्म दिया था। भगवान् पुलस्त्य ने अपनी पत्नी प्रीति से दम्भोलि नामक पुत्र को जन्म दिया था। वह स्वायम्भुव मन्वन्तर के अपने पूर्वजन्म में अगस्त्य नामक ऋषि थे। पुलस्त्य का ही वेदबाहु नामक एक अन्य पुत्र था और एक सन्नति नामक कन्या थी॥६-१०॥

---

१. पुत्री

पुत्राणां षष्टिसाहस्रं सन्नतिः[1] सुषुवे क्रतोः। ते चोर्ध्वरेतसः सर्वे बालखिल्या इति स्मृताः॥ ११॥

अपने पति क्रतु से सन्नति ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया था। वे सभी बालखिल्य नाम से प्रसिद्ध हुए थे और ऊर्ध्वरेता (आजीवन ब्रह्मचारी) हो गये थे॥ ११॥

वसिष्ठश्च तथोर्ज्जायां सप्त पुत्रानजीजनत्। कन्याञ्च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम्॥ १२॥

वसिष्ठ ने अपनी पत्नी ऊर्जा में सात पुत्रों तथा पुण्डरीकाक्षा नामक सर्वशोभायुक्त सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया था॥ १२॥

रजःसुहोत्रोर्ध्वबाहुः[2]सवनश्चानघस्तथा। सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः॥ १३॥

वसिष्ठ के महाओजस्वी सात पुत्र क्रमशः रज, सुहोत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र नाम वाले थे[3]॥ १३॥

योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः। स्वाहा तस्मात्सुतान् लेभे त्रीनुदारान्महौजसः॥ १४॥
पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च रूपतः। निर्मथ्यः पवमानः स्याद्वैद्युतः पावकः स्मृतः॥ १५॥
यश्चासौ तपते सूर्यः शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः। तेषान्तु संततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च॥ १६॥
पवमानः पावकश्च शुचिस्तेषां पिता च यः। एते चैकोनपञ्चाशवह्नयः परिकीर्तिताः॥ १७॥

हे द्विजो! ब्रह्मा का जो रुद्र स्वरूप वाला अग्नि नामक पुत्र था, उससे उसकी स्वाहा नामक पत्नी में तीन महातेजस्वी श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए थे। स्वरूपतः उनके नाम क्रमशः पावक, पवमान और शुचि नामक अग्नि था। जो अग्नि अरणिमन्थन से उत्पन्न होता है, उसका नाम पवमान, विद्युत् से जनित अग्नि पावक कहलाता है और जो सूर्य का ताप है, वह शुचि नामक अग्नि कहा गया है। इन तीन अग्नियों की पैंतालीस सन्तानें है। इन (पैंतालीस) अग्नियों के पिता क्रमशः पवमान, पावक और शुचि नामक अग्नियों और इन तीनों के पिता अग्नि को मिलाकर उनचास (४९) अग्नि बतलाये गये हैं॥ १४-१७॥

सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वे यज्ञेषु भागिनः। रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः॥ १८॥

ये सभी उनचास (४९) अग्नि तपस्वी और रुद्रस्वरूप कहे गये हैं और सभी के मस्तक त्रिपुण्ड्र से अङ्कित रहते हैं तथा सभी यज्ञों में आहुति का भाग पाने के अधिकारी हैं॥ १८॥

अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः सुताः। अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः॥ १९॥

अग्निष्वात्ता और बर्हिषद नामक पितर भी ब्रह्मा के पुत्र थे। वे यज्वा (यज्ञ करने वाले) और अयज्वा (यज्ञ न करने वाले) के भेद से दो प्रकार की व्यवस्था में विभक्त हैं॥ १९॥

तेभ्यः स्वधा सुतां जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा। ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः॥ २०॥

(अर्थात् यज्ञ करने वाले पितर अग्निष्वात्ता) और यज्ञ न करने वाले बर्हिषदः कहलाते हैं द्रष्टव्य- अग्निष्वात्ताश्चयज्वानःशेषाबर्हिषदः स्मृताः-लिङ्गपुराण १/६/४। उन पितरों से उनकी पत्नी स्वाधा ने मेना

१. संन्ततिः
२. रंजोहश्चोर्ध्वव्याहुश्च,
३. वसिष्ठ के सात पुत्रों की सूची कूर्मपुराण (नागपब्लिसर्स प्रकाशन) तथा लिङ्गपुराण (१/१५/४९) तथा विष्णुपुराण १/१०/१३-१४ में है।

और धारिणी नामक दो कन्याओं को जन्म दिया था। हे श्रेष्ठ मुनियो! वे दोनों ही योगिनी और ब्रह्मवादिनी थी॥२०॥

असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चन्तस्यानुजन्तथा। गङ्गा हिमवतो जज्ञे सर्वलोकैकपावनी॥२१॥

मेना ने मैनाक तथा उसके अनुज क्रौञ्च (पर्वत) को जन्म दिया था। उनके अतिरिक्त हिमवान् से गङ्गा नदी उत्पन्न हुई थी, जो सारे लोकों को पवित्र करती है॥२१॥

स्वयोगाग्निबलाद्देवीं पुत्रीं लेभे महेश्वरीम्। यथावत्कथितं पूर्वं देव्या माहात्म्यमुत्तमम्॥२२॥

हिमवान की पत्नी मेना ने अपनी योगशक्ति के बल से देवी महेश्वरी पार्वती को पुत्री रूप में प्राप्त किया था, जिसके विषय में यथार्थ वर्णन पीछे कथित उत्तम देवी माहात्म्य में कहा गया है॥२२॥

धारिणी मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना। देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातारावुभौ॥२३॥

कमल के समान नेत्रों वाली धारिणी पर्वतराज मेरु की पत्नी थी। मेरु के दो जामाता धाता और विधाता नाम वाले थे॥२३॥

एषा दक्षस्य कन्यानां मयापत्यानुसन्ततिः। व्याख्याता भवतामद्य मनोः सृष्टिं निबोधत॥२४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे भृगु प्रभृति मुनीनां दक्षकन्यानां च वंश वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

मैंने दक्ष कन्याओं और उनकी सन्तानों का वर्णन आप लोगों को सुनाया है। अब आप मनु की सृष्टि का वर्णन सुनें॥२४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में भृगु आदि मुनियों तथा दक्ष कन्याओं का वंश-वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

स्वायम्भुवमनुवंशादि वर्णनम्

सूत उवाच

प्रियव्रतोत्तनपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु। धर्मज्ञौ तौ महावीर्यौ शतरूपा व्यजीजनत्॥१॥

स्वायम्भुव मनु की पत्नी शतरूपा ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्रों को जन्म दिया था, जो धर्म के ज्ञाता और महा बलशाली थे॥१॥

ततस्तूत्तानपादस्य ध्रुवो नाम सुतोऽभवत्। भक्त्या नारायणे देवे प्राप्तवान् स्थानमुत्तमम्॥२॥

उनमें से उत्तानपाद का ध्रुव नामक पुत्र हुआ था, जिसने भगवान् नारायण देव की भक्ति से उत्तम स्थान को प्राप्त किया था॥२॥

ध्रुवात् शिष्टिं[१] च भव्यं च भार्याशम्भुर्व्यजायत। [२]शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥३॥

ध्रुव से उसकी शम्भु नामक पत्नी ने शिष्टि तथा भव्य नामक पुत्र को जन्म दिया था। शिष्टि से उसकी सुच्छाया नामक पत्नी ने पाँच निष्कलंक पुत्रों को जन्म दिया था॥३॥

वसिष्ठवचनाद्देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्। आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम्॥४॥
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं[३] वृषतेजसम्। नारायणपरान्शुद्धान्स्वधर्मपरिपालकान्॥५॥

उस देवी सुच्छाया ने वसिष्ठ मुनि के वचनानुसार शालग्राम तीर्थ में अति कठोर तप करके भगवान् विष्णु की आराधना के फलस्वरूप रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल और वृषतेजा नामक पुत्रों को जन्म दिया था, जो शुद्ध आचरण वाले, स्वधर्म का पालन करने वाले और नारायण के भक्त थे॥४-५॥

रिपोराधत्त बृहती[४] चक्षुषं[५] सर्वतेजसम्। सोऽजीजनत्पुष्करिण्यां सुरूपं चाक्षुषं मनुम्॥६॥
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः। मनोरजायन्त दश सुतास्ते सुमहौजसः॥७॥
कन्यायां सुमहावीर्यो वैराजस्य प्रजापतेः। ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः॥८॥
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः। ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाबलान्॥९॥
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम्। अङ्गाद्वेनोऽभवत्पश्चाद्वैन्यो वेनादजायत॥१०॥

रिपु की पत्नी बृहती ने सर्वतेजसम्पन्न पुत्र चक्षुष को जन्म दिया था। उस चक्षुष से प्रजापति महात्मा वीरण की पुत्री पुष्करिणी में अति सुन्दर चाक्षुष मनु का जन्म हुआ था। उन चाक्षुष मनु के वैराज नामक प्रजापति की पुत्री में महा तेजस्वी और महा पराक्रमी दश पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो क्रमशः ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, शुचि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभिमन्यु नाम वाले थे। ऊरु की पत्नी आग्नेयी ने अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और शिव नामक छः महाबली पुत्रों को जन्म दिया था। अङ्ग का वेन नामक पुत्र हुआ था और वेन का वैन्य (पृथु) नामक पुत्र हुआ था॥६-१०॥

योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः। येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकाम्यया॥११॥
नियोगाद् ब्रह्मणः सार्धं देवेन्द्रेण महौजसा। वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे॥१२॥
सूतः पौराणिको जज्ञे मायारूपः स्वयं हरिः। प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुरुवत्सलः॥१३॥

वेन का वह प्रजापालक महाबलशाली पुत्र पृथु नाम से विख्यात हुआ था, जिसने पूर्वकाल में ब्रह्मा के आदेशानुसार महापराक्रमी इन्द्र के साथ मिलकर प्रजाओं के हित की इच्छा से पृथिवी का दोहन किया था। पुराकाल में जब वेन के पुत्र पृथु के द्वारा पितामह ब्रह्मा सम्बन्धी यज्ञ किया जा रहा था, तब माया रूपी भगवान् विष्णु स्वयं पुराण की कथा कहने वाले सूत के रूप में उत्पन्न हुए थे। वह सभी शास्त्रों के प्रवक्ता, धर्म के ज्ञाता और गुरुवत्सल (गुरु के प्रिय) थे॥११-१३॥

तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भूतं सनातनम्। अस्मिन् मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥१४॥
श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणं पुरुषो हरिः। मदन्वये तु ये सूताः सम्भूता वेदवर्जिताः॥१५॥

१. शिलष्टिं, २. शिलष्टे, ३. कपिल। ऊपर संशोधित तीन नाम विष्णु पुराण (१/१३/१-२) में भी हैं।
४. महिषी, ५. चाक्षुषं

तेषां पुराणवक्तृत्वं वृत्तिरासीदजाज्ञया। स च वैन्यः पृथुर्धीमान्सत्यसन्धो जितेन्द्रियः॥१६॥
सार्वभौमो महातेजाः स्वधर्मपरिपालकः। तस्य बाल्यात्प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत्॥१७॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! पूर्वकाल में उत्पन्न सनातन पुरुष मैं ही हूँ। इस वर्तमान मन्वन्तर में स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यास रूपी पुराण पुरुष भगवान् विष्णु ने पीतिपूर्वक मुझको पुराण सुनाया है। मेरे वंश में जो वेद के ज्ञान से रहित सूत हुए हैं, ब्रह्मा की आज्ञानुसार पुराण की कथा कहना ही उनकी आजीविका का साधन था। वेन का पुत्र वह पृथु परम बुद्धिमान् सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय, महातेजस्वी और स्वधर्म का पालन करने वाला था। बाल्यावस्था से ही उसकी भगवान् विष्णु पर भक्ति थी॥१४-१७॥

गोवर्धनगिरिं प्राप्य तपस्तेपे जितेन्द्रियः। तपसा भगवान्प्रीतः शङ्खचक्रगदाधरः॥१८॥
आगत्य देवो राजानं प्राह दामोदरः स्वयम्। धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभृतां वरौ॥१९॥
मत्प्रसादादसन्दिग्धौ पुत्रौ तव भविष्यतः। एवमुक्त्वा हृषीकेशः स्वकीयां प्रकृतिं गतः॥२०॥

उसने गोवर्धन पर्वत में जाकर जितेन्द्रिय रह कर तपस्या की थी। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले दामोदर भगवान् विष्णु ने स्वयं आकर यह कहा कि मेरी कृपा से निःसन्देह तुम्हारे दो पुत्र उत्पन्न होंगे जो धार्मिक, सुन्दर और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ होंगे। ऐसा कह कर हृषीकेश भगवान् विष्णु अपनी प्रकृति (अर्थात् अपने धाम) में चले गये थे॥१८-२०॥

वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्वहन्। सोऽपालयत्स्वकं राज्यं चिन्तयन्मधुसूदनम्॥२१॥

वेन के पुत्र पृथु ने भी वेदोक्त विधि से भगवान् विष्णु का ध्यान और उनकी अटल भक्ति करते हुए अपने राज्य का पालन किया था॥२१॥

अचिरादेव तन्वङ्गी भार्या तस्य शुचिस्मिता। शिखण्डिनं हविर्धानमन्तर्धाना व्यजायत॥२२॥

अल्पकाल में ही उस पृथु की पवित्र मुस्कान वाली और कृशाङ्गी पत्नी अन्तर्धाना ने शिखण्डी और हविर्धान नामक पुत्रों को जन्म दिया था॥२२॥

शिखण्डिनोऽभवत्पुत्रः सुशील इति विश्रुतः। धार्मिको रूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः॥२३॥

शिखण्डी का सुशील नामक लोक प्रसिद्ध पुत्र हुआ था। वह धार्मिक, सुन्दर आकृति वाला और वेद-वेदाङ्ग में पारङ्गत था॥२३॥

सोऽधीत्य विधिवद्वेदान्धर्मेण तपसि स्थितः। मतिश्चक्रे भाग्ययोगात्संन्यासम्प्रति धर्मवित्॥२४॥

वह स्वधर्मानुसार यथाविधि वेदों का अध्ययन करके तपश्चर्या में लीन हो गया था। भाग्यवश उस धर्मज्ञ ने संन्यास ग्रहण करने का मन बनाया था॥२४॥

स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः। जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित्सिद्धसेवितम्॥२५॥

तीर्थ-सेवन करते हुए स्वाध्याय और तपश्चर्या-निरत रहते हुए एक बार वह सिद्धों के द्वारा सेवित हिमालय पर्वत पर गया था॥२५॥

तत्र धर्मवनं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम्। अपश्यद्योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्॥२६॥

वहाँ उसने धर्म की सिद्धि करने वाले वन धर्मवन को देखा, जहाँ केवल योगी जन जा सकते हैं और ब्रह्मद्वेषी जनों के लिए वह अगम्य है॥ २६॥

तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्या विमला नदी। पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता॥ २७॥

वहाँ अत्यन्त पवित्र, निर्मल और कमल के वन से युक्त और सिद्धों के आश्रमों से सुशोभित मन्दाकिनी नामक नदी थी॥ २७॥

स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैर्योगिभिर्युतम्। सुपुण्यमाश्रमं रम्यमपश्यत्प्रीतिसंयुतः॥ २८॥

उस नदी के दक्षिणवर्ती तट पर मुनीन्द्रों और योगियों से युक्त अत्यन्त पवित्र आश्रम को उसने प्रसन्न होकर देख था॥ २८॥

मन्दाकिनीजले स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः। अर्चयित्वा महादेवं पुष्पैः पद्मोत्पलादिभिः॥ २९॥
ध्यात्वार्कसंस्थमीशानं शिरस्याधाय चाञ्जलिम्। सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ३०॥

उसने मन्दाकिनी के जल में स्नान करके तथा पितरों और देवों को अच्छी तरह तृप्त करके और कमल एवं नीलकमल के पुष्पों से महादेव शिव की पूजा करके सूर्यमण्डल में स्थित देव ईशान का ध्यान करके शिर झुका कर अञ्जलि बाँध कर (हाथ जोड़कर) भगवान् भास्कर को देखते हुए उन देदीप्यमान परमेश्वर की स्तुति की थी॥ २९-३०॥

रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चरितेन च। अन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शाम्भवैर्वेदसम्भवैः॥ ३१॥

उसने यजुर्वेद के रुद्राध्याय तथा पुराणोपनिषद् आदि में वर्णित शिवचरित तथा शिव विषयक वेद आदि में कथित अन्य स्तोत्रों से उन भगवान् शिव की स्तुति की थी॥ ३१॥

अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत्समायान्तं महामुनिम्। श्वेताश्वतरनामानं महापाशुपतोत्तमम्॥ ३२॥

तब उसी अन्तराल में उसने महापशुपतों (पशुपति के महान भक्तों) में उत्तम श्वेताश्वतर नामक महामुनि को आते हुए देखा॥ ३२॥

भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम्। तपसा कर्षितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम्॥ ३३॥

वह सम्पूर्ण शरीर में भस्मलेपन किये हुए थे। कौपीन (लंगोटी) धारण किये हुए थे। उनका शरीर तपश्चर्या से कृश (दुर्बल) हो गया था और वह सफेद यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे॥ ३३॥

समाप्य संस्तवं शम्भोरानन्दास्राविलेक्षणः। ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ३४॥

तब शिव की स्तुति सम्पन्न करके आनन्द के आँसुओं से पूरित नेत्रों वाले उस राजा ने उन श्वेताश्वतर मुनि के चरणों में मस्तक रख कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर यह वचन कहे॥ ३४॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षात्मुनीश्वरः। योगीश्वरोऽद्य भगवान्दृष्टो योगविदां वरः॥ ३५॥

आज मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ जो कि आज योग के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ योगीश्वर आप भगवान् के समान मुनीश्वर के दर्शन प्राप्त हुए हैं॥ ३५॥

अहो मे सुमहद्भाग्यं तपांसि सफलानि मे। किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयानघ॥ ३६॥

अहो ये मेरा बहुत बड़ा भाग्य है और आज मेरे सभी तप फलीभूत हो गये हैं। मैं आपका शिष्य हूँ। मैं क्या करूँ? हे अनघ[1] मेरा पालन करें॥३६॥

सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम्। शिष्यत्वे प्रतिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम्॥३७॥

तब तपस्या से जिसके पाप नष्ट हो गये हैं, ऐसे उस सुशील नामक सच्चरित्र राजा पर कृपा करके उन मुनिराज श्वेताश्वतर ने उसे अपना शिष्य बनाया था॥३७॥

सांन्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः। ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितं व्रतम्॥३८॥

उन विद्वान् मुनिवर ने संन्यास-ग्रहण की सम्पूर्ण विधि को पूर्णतः सम्पन्न कराकर उस राजा को ईश्वरीय ज्ञान और अपनी शाखा में विहित व्रत का उपेदश दिया था॥३८॥

अशेषं वेदसारं तत्पशुपाशविमोचनम्। अन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्॥३९॥

उस राजा को जो ज्ञान दिया गया था, वह सभी वेदों का सार था और पशुतुल्य मनुष्य को माया रूपी पाश से मुक्त करने वाला था। साथ ही उस राजा को ब्रह्मा आदि के द्वारा पालन किये जाने वाले अन्त्याश्रम (संन्यास) में भी उसको दीक्षित किया था॥३९॥

उवाच शिष्यानुसंप्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः। ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् ब्रह्मचर्य-परायणान्॥४०॥

तब मुनिवर श्वेताश्वतर ने उस आश्रम में निवास करके ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शिष्यों को देखकर यह कहा॥४०॥

मया प्रवर्तितां शाखामधीत्यैवेह योगिनः। समासते महादेवं ध्यायन्तो निष्कलं शिवम्[2]॥४१॥

मेरे द्वारा प्रवर्तित वेद-शाखा का अध्ययन करके ही योगीजन इस आश्रम में निष्कल भगवान् महादेव शिव का ध्यान करते हुए निवास करते हैं॥४१॥

इह देवो महादेवो रममाणः सहोमया। अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया॥४२॥

देवाधिदेव भगवान् शिव भी उमा-पार्वती के साथ रमण करते हुए भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिए यहाँ निवास करते हैं॥४२॥

इहाशेषजगद्धाता पुरा नारायणः स्वयम्। आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया॥४३॥

प्राचीनकाल में सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले स्वयं भगवान् विष्णु भी लोक-हित की कामना से भगवान् शिव की आराधना करते हुए यहाँ रहते थे॥४३॥

इहैनं देवमीशानं देवानामपि दैवतम्। आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः॥४४॥

यहीं पर देवों के भी देव भगवान् शिव की आराधना करके देवों और दानवों ने महती सिद्धि प्राप्त की थी॥४४॥

इहैव मुनयः सर्वे मरीच्याद्या महेश्वरम्। दृष्ट्वा तपोबलाद्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम्॥४५॥

यहीं पर मरीचि आदि सभी मुनियों ने तपस्या के बल पर भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त करके उनसे सार्वकालिक ज्ञान प्राप्त किया था॥४५॥

---

१. अनघ = निष्पाप, २. विश्वमैश्वरम्,

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र तपोयोगसमन्वितः। तिष्ठ नित्यं मया सार्धं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥४६॥

अतः हे राजन्! तुम भी तपश्चर्या और योगसाधना करते हुए नित्य मेरे साथ रहो। उससे तुम अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करोगे॥४६॥

एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम्। आचचक्षे महामन्त्रं यथावत्सर्वसिद्धये॥४७॥

ऐसा कहकर उन द्विजराज श्वेताश्वतर ने पिनाकधारी भगवान् शिव का ध्यान करके सर्वार्थ सिद्धिप्रद महामन्त्र का यथावत् उपदेश दिया था॥४७॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारं विमुक्तिदम्। अग्निरित्यादिकं पुण्यमृषिभिः सम्प्रवर्तितम्॥४८॥

वह 'अग्नि'[1] शब्द से प्रारम्भ होने वाला ऋषियों के द्वारा प्रवर्तित अर्थात् पढ़ा जाने वाला वेदों का सार रूप पवित्र मन्त्र सभी पापों को समाप्त करने वाला और मुक्ति प्रदान करने वाला था॥४८॥

सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः। साक्षात्पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत्॥४९॥

तब उन ऋषि श्वेताश्वतर के वचनानुसार राजा सुशील भी श्रद्धाभाव युक्त साक्षात् पाशुपत बन कर वेदाभ्यास में संलग्न हो गया था॥४९॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः। शान्तो दान्तो जितक्रोधः संन्यासविधिमाश्रितः॥५०॥

संन्यास की दीक्षा लेकर वह समपूर्ण शरीर में भस्मलेपन किये रहता था, कन्द, मूल और फलों का भोजन करता था और वह शान्त स्वभाव वाला, जितेन्द्रिय और क्रोध पर विजय पाने वाला हो गया था॥५०॥

हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम्। प्राचीनबर्हिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम्॥५१॥

वेन के दूसरे पुत्र हविर्धान की पत्नी आग्नेयी ने प्राचीनबर्हि नामक पुत्र को जन्म दिया था। वह धनुर्वेद में पारंगत था॥५१॥

प्राचीनबर्हिर्भगवान्[2] सर्वशस्त्रभृतां वरः। समुद्रतनयायां वै दश पुत्रानजीजनत्॥५२॥

प्राचीनबर्हि नामक उस यशस्वी और सभी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राजा ने अपनी पत्नी समुद्रकन्या में दस पुत्र उत्पन्न किये थे॥५२॥

प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः। अधीतवन्तः स्वं वेदं नारायणपरायणाः॥५३॥

प्राचीनबर्हि के वे दस पुत्र प्रचेतस (प्रचेता) नाम से विख्यात राजा हुए थे। उन्होंने अपने अभीष्ट वेद का अध्ययन किया था और वे भगवान् विष्णु के परम भक्त थे॥५३॥

दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः। दक्षो जज्ञे महाभागो यः पूर्वं ब्रह्मणः सुतः॥५४॥

उन दस प्रचेताओं से मारिषा में महाभाग्यशाली प्रजापति दक्ष का जन्म हुआ था। वह दक्ष पूर्वजन्म में ब्रह्मा का पुत्र था॥५४॥

स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता। कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तःप्राचेतसोऽभवत्॥५५॥

१. चारों वेदों में अग्नि से प्रारम्भ होने वाले अनेकानेक मन्त्र हैं। यहाँ अभीष्ट मन्त्र को स्पष्टतः नहीं कहा गया है।

२. यहाँ भगवान् शब्द श्रेष्ठता बोधक है,

वह दक्ष पूर्व जन्म में परम् बुद्धिमान् महादेव रुद्र के साथ विवाद करने और उनके द्वारा शाप दिये जाने पर अगले जन्म में दस प्रचेताओं के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था॥५५॥

समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः। दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददौ स्वयम्॥५६॥
तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः। पूजामनर्हामन्विच्छन् जगाम कुपितो गृहम्॥५७॥

एक बार दक्ष जब अपनी कन्या देवी सती के घर आया तो तब उनको आता देखकर भगवान् शिव ने स्वयं ही उनका (दक्ष का) यथोचित पूजन (सत्कार) किया था। तब भी अपनी पूजा (सत्कार) को अनुचित अर्थात् अपेक्षा से कम मानकर अधिक पूजा की अपेक्षा करने वाला तमोगुण से ग्रस्त वह ब्रह्मा का पुत्र दक्ष कुपित होकर अपने घर को लौट गया था॥५६-५७॥

कदाचित्स्वगृहं प्राप्तां सतीं दक्षः सुदुर्मनाः। भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामास वै रुषा॥५८॥

तब एक बार अपने घर आयी पुत्री सती की तथा उसके पति शिव की भी उस कलुषित मन वाले दक्ष ने निन्दा की और भर्त्स्ना की थी॥५८॥

अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिनः। त्वमप्यसत्सुतास्माकं गृहाद्गच्छ यथागतम्॥५९॥

दक्ष ने पार्वती से कहा तुम्हारे पिनाकधारी पति से अच्छे मेरे अन्य जामाता हैं। तुम भी अच्छी नहीं हो। तुम मेरे घर से निकल कर जहाँ से आयी हो वहीं चली जाओ॥५९॥

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवी शङ्करप्रिया। विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना॥६०॥
प्रणम्य पशुभर्तारं भर्तारं कृत्तिवाससम्। हिमवद्दुहिता साभूत्तपसा तस्य तोषिता॥६१॥

दक्ष के उस वचन को सुनकर शंकर की प्रिय पत्नी पार्वती ने उस पिता दक्ष की निन्दा करके चर्माम्बरधारी पशुपति भगवान् शिव को प्रणाम किया और तब स्वयं को अपने आप (योगाग्नि/यज्ञाग्नि) में भस्म कर लिया था। तदनन्तर वह पर्वतराज हिमवान् की तपस्या से प्रसन्न होकर उसकी पुत्री बनी थी॥६०-६१॥

ज्ञात्वा तद् भगवान्रुद्रः प्रपन्नार्तिहरो हरः। शशाप दक्षं कुपितः समागत्याथ तद्गृहम्॥६२॥
त्यक्त्वा देहमिमं ब्राह्मं क्षत्रियाणां कुले भव। स्वस्या सुतायां मूढात्मन् पुत्रमुत्पादयिष्यसि॥६३॥

सती के देह त्याग के विषय में जान कर शरणागत का कष्टहरण करने वाले भगवान् रुद्र ने कुपित होकर दक्ष के घर जाकर उसको यह शाप दिया कि तुम इस ब्राह्मण शरीर का त्याग कर (मरणोपान्त पुनः) क्षत्रिय कुल में जन्म लोगे और हे मूर्ख! तुम अपनी ही कन्या में पुत्र उत्पन्न करोगे॥६२-६३॥

एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलासपर्वतम्। स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत्॥६४॥

ऐसा कहकर वह महादेव कैलास पर्वत में चले गये थे और स्वायम्भुव मन्वन्तर में उत्पन्न वह दक्ष दस प्रचेताओं के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था॥६४॥

एतद्वः कथितं सर्वं मनोः स्वायम्भुवस्य तु। विसर्गं दक्षपर्यन्तं शृण्वतां पापनाशनम्॥६५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे स्वायंभुव मनु वंशादि वर्णनादि चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

(इतना कहकर सूत जी ने ऋषियों से कहा कि) मैंने आप लोगों को स्वायम्भुव मनु से लेकर दक्ष-जन्म पर्यन्त वृत्तान्त कह दिया है। यह वृत्तान्त सुनने वालों का भी पाप नष्ट कर देता है॥६५॥

॥ इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में स्वायंभुवमनुवंशादि वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

दक्षयज्ञविध्वंस-वर्णनम्

नैमिषीया ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम्। उत्पत्तिं विस्तराद्ब्रूहि सूत वैवस्वतेऽन्तरे॥१॥

नैमिषारण्य के ऋषि बोले- हे सूत जी! वैवस्वत मन्वन्तर में देवों, दानवों, गन्धर्वों, नागों और राक्षसों की उत्पत्ति को आप विस्तार से बतलाइए॥१॥

स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः। किमकार्षीन्महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥२॥

हे महाबुद्धिशाली सूत जी! भगवान् शिव के द्वारा शाप दिये जाने पर उस दस प्रतेताओं के पुत्र दक्ष ने क्या किया था, वह सब अभी हम सुनना चाहते हैं॥२॥

सूत उवाच

वक्ष्ये नारायणेनोक्तं पूर्वकल्पानुषङ्गिकम्। त्रिकालबद्धं पापघ्नं प्रजासर्गस्य विस्तरम्॥३॥

सूत जी बोले- पूर्वकाल के प्रसंग में भगवान् विष्णु के द्वारा तीनों कालों से सम्बन्धित प्रजासृष्टि का विस्तार से वर्णन अब मैं करता हूँ। उसको सुनने से पाप नष्ट होते हैं॥३॥

स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः। विनिन्द्य पूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेऽयजद्भवम्॥४॥

पूर्वकाल में (स्वायम्भुव मन्वन्तर) में दक्ष के द्वारा शिव की निन्दा किये जाने पर भगवान् शिव ने उसे [वैवस्वत मन्वन्तर में दस प्रचेताओं का पुत्र होने का] शाप दिया था। तब [वैवस्वत मन्वन्तर में] प्रचेता पुत्र रूप में उत्पन्न दक्ष ने शिव के प्रति पूर्वजन्म के वैर का स्मरण करते हुए हरिद्वार में यज्ञ का अनुष्ठान किया था॥४॥

देवाश्च सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुना सह। सहैव मुनिभिः सर्वैरागता मुनिपुङ्गवाः॥५॥

दक्ष के द्वारा निमन्त्रित विष्णु सहित सभी देवता तथा मुनिगण यज्ञ में भाग लेने के लिए वहाँ आये थे॥५॥

दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शङ्करेण विनागतम्। दधीचो नाम विप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत्॥६॥

वहाँ पर भगवान् शंकर के अतिरिक्त सम्पूर्ण देव समूह को आया हुआ देख कर दधीचि नामक ब्रह्मर्षि ने प्रचेता पुत्र दक्ष से यह कहा॥६॥

दधीच उवाच

ब्रह्माद्यास्तु पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः। स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किंन पूज्यते॥७॥

दधीचि बोले- ब्रह्मा आदि देवों से लेकर पिशाचों तक सभी भगवान् शिव की आज्ञा का पालन करते हैं। उन भगवान् रुद्र की सम्प्रति (अभी) इस यज्ञ में विधिपूर्वक पूजा क्यों नहीं कर रहे हो॥७॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः। न मन्त्रा भार्यया सार्द्धं शङ्करस्येति नेज्यते॥८॥

दक्ष ने कहा- सभी यज्ञों में भार्या सहित रुद्र के भाग लेने की परिकल्पना नहीं की गयी है और न मन्त्र विहित हैं। अतः उनकी पूजा नहीं की जाती है॥८॥

विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः। शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयः स्वयम्॥९॥

यह सुनकर दक्ष पर क्रुद्ध होकर सर्वज्ञ महामुनि दधीचि ने देतवाओं को भी सुनाते हुए हँस कर स्वयं यह बचन कहे॥९॥

दधीच उवाच

यतः प्रवृत्तिर्विश्वस्य[1] यश्चास्य[2] परमेश्वरः। सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वा किल[3] शङ्करः॥१०॥

जिस [परमात्मा शिव] से सम्पूर्ण जगत् का प्रादुर्भाव होता है, जो सम्पूर्ण जगत् के परमेश्वर हैं, उन भगवान् शङ्कर [की महिमा] को जान कर ही सभी यज्ञों में उनकी पूजा की जाती है॥१०॥

दक्ष उवाच

न ह्ययं शङ्करो भद्रः[4] संहर्ता तामसो हरः। नग्नः कपाली विकृतो विश्वात्मा नोपपद्यते॥११॥

दक्ष बोला- यह रुद्र न तो शुभ हैं, न कल्याणकारी हैं। यह संहार करने वाले, तमोगुणी, नग्न, कपालधारी और विकृत वेशवाले हर विश्वात्मा नहीं हो सकते॥११॥

ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणो हरिः। सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यते सर्वकर्मसु॥१२॥

ईश्वर तो जगत् की सृष्टि करने वाले प्रभु नारायण विष्णु हैं। वह सत्त्वगुण युक्त भगवान् विष्णु ही सभी यज्ञादि शुभ कर्मो में पूजे जाते हैं॥१२॥

दधीच उवाच

किं त्वया भगवानेष सहस्रांशुर्न दृश्यते। सर्वलोकैकसंहर्ता कालात्मा परमेश्वरः॥१३॥

यं गृणन्तीह[5] विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः। सोऽयं साक्षी तीव्ररोचिः कालात्मा शाङ्करी तनुः॥१४॥

दधीचि ने कहा- क्या तुम्हें यह सहस्रों किरणों वाले और सर्वलोक संहारक काल रूप आत्मा वाले परमेश्वर भगवान् सूर्य नहीं दिखायी देते? ब्रह्मवादी धार्मिक विद्वान् जिनकी स्तुति करते हैं, वहीं परम दीप्तिमान् सर्वसाक्षी कालात्मा (कालचक्र प्रवर्तक) सूर्य ही भगवान् शिव के शरीर रूप में स्थित हैं॥१३-१४॥

एष रुद्रो महादेवः कपाली च घृणी हरः। आदित्यो भगवान्सूर्यो नीलग्रीवो विलोहितः॥१५॥

---

१. विश्वात्मा २. यश्चासौ, ३. किन्न, ४. रुद्रः, ५. गृह्णन्तीह

अदिति के पुत्र भगवान् सूर्य ही रुद्र, महादेव, कपाली, घृणी, हर, नीलकण्ठ और नीललोहित नामों वाले भगवान् शिव हैं॥१५॥

संस्तूयते सहस्रांशुः सामगाध्वर्युहोतृभिः। पश्यैनं विश्वकर्माणं रुद्रमूर्तिं त्रयीमयम्॥१६॥

सहस्रों किरणों वाले जिन भगवान् सूर्य की स्तुति सामवेद का गान करने वाले, अध्वर्यु (यजुर्वेदी) तथा होता (ऋग्वेदी) के द्वारा की जाती है, उन वेदत्रयी स्वरूप विश्व के सृष्टिकर्ता भगवान् रुद्र की मूर्ति भगवान् सूर्य को देख सकते हो॥१६॥

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः। सर्वे सूर्या इति ज्ञेया न ह्यन्यो विद्यते रविः॥१७॥

दक्ष बोला- ये जो द्वादश आदित्य यज्ञ में भाग लेने के लिए यहाँ आये हैं- ये सभी सूर्य हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई सूर्य नहीं होता है॥१७॥

एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः। बाढमित्यब्रुवनूदक्षं तस्य साहाय्यकारिणः॥१८॥

दक्ष के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वहाँ यज्ञ को देखने की इच्छा से आये हुए मुनियों ने दक्ष की सहायता अर्थात् समर्थन करते हुए कहा कि हाँ यही ठीक है॥१८॥

तमसाविष्टमनसो न पश्यन्ति वृषध्वजम्। सहस्रशोऽथ शतशो बहुशो भूय एव हि॥१९॥

निन्दन्तो वैदिकान्मन्त्रान् सर्वभूतपतिं हरम्। अपूजयनूदक्षवाक्यं मोहिता विष्णुमायया॥२०॥

भगवान् विष्णु की माया से मोहित (भ्रमित बुद्धि वाले) उन मुनियों ने वेद वचनों की तथा सभी प्राणियों के स्वामी शिव की निन्दा करते हुए दक्ष के वचन का समर्थन किया था॥१९-२०॥

देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः। नापश्यनूदेवमीशानमृते नारायणं हरिम्॥२१॥

यज्ञ में भाग लेने के लिए आये हुए इन्द्र आदि सभी देवों ने भगवान् विष्णु के अतिरिक्त (अन्य देवों ने भी) देव ईशान-शिव की नहीं देखा॥२१॥

हिरण्यगर्भो भगवानूब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत॥२२॥

तभी ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा सभी देवों के देखते देखते क्षण भर में अन्तर्धान हो गये थे॥२२॥

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम्। रक्षकं जगतां देवं जगाम शरणं स्वयम्॥२३॥

भगवान् ब्रह्मा के अन्तर्धान हो जाने पर [भयभीत] दक्ष स्वयं जगत् की रक्षा करने वाले देव नारायण विष्णु की शरण में गया॥२३॥

प्रवर्तयामास च तं यज्ञं दक्षोऽथ निर्भयः। रक्षको भगवान्विष्णुः शरणागतरक्षकः॥२४॥

तब दक्ष निर्भय होकर उस यज्ञ का अनुष्ठान करने लगा था, क्योंकि शरणागत की रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु उसके रक्षक थे॥२४॥

पुनः प्राह च तं दक्षं दधीचो भगवानृषिः। संप्रेक्ष्यर्षिगणानूदेवानूसर्वानूवै रुद्रविद्विषः॥२५॥

भगवान् शिव के प्रति द्वेष करने वाले सभी ऋषिगणों तथा देवों को देख कर संमान्य ऋषि दधीचि ने दक्ष से पुनः यह कहा॥२५॥

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने। नरः पापमवाप्नोति महद् वै नात्र संशयः॥२६॥

अपूज्य का पूजन करने और पूजनीय का पूजन न करने वाला मनुष्य महापाप को प्राप्त करता है (महापापी होता है), इसमें कोई सन्देह नहीं है॥२६॥

असतां प्रग्रहो यत्र सताञ्चैव विमानना। दण्डो दैवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः॥२७॥

जहाँ दुर्जनों को सम्मान दिया जाता है और सज्जनों का अनादर किया जाता है, वहाँ ऐसा करने वाले दुर्जनों को दैव द्वारा अतिशीघ्र कठोर दण्ड दिया जाता है॥२७॥

एवमुक्त्वाथ विप्रर्षिः शशापेश्वरविद्विषः। समागतान्ब्राह्मणांस्तान्दक्षसाहाय्यकारिणः॥२८॥

ऐसा कह कर दक्ष की सहायता हेतु वहाँ उपस्थित जो शिव के प्रति द्वेषभाव वाले ब्राह्मण थे, उनको ब्रह्मर्षि दधीचि ने यह शाप दिया॥२८॥

यस्माद्बहिष्कृतो देवो[1] भवद्भिः परमेश्वरः। विनिन्दितो महादेवः शङ्करो लोकवन्दितः॥२९॥
भविष्यध्वं[2] त्रयीबाह्याः सर्वेऽपीश्वरविद्विषः। निन्दन्तो ह्यैश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तचेतसः॥३०॥

क्योंकि आप लोगों ने सर्व लोकपूजित परमेश्वर महादेव भगवान् शिव को यज्ञ से बहिष्कृत रखा है और उनकी निन्दा की है। अतः आप सभी शिवद्वेषी जन वेदत्रयी से बहिष्कृत (अर्थात् वेदत्रयी के ज्ञान से रहित) हो जाओगे और असत् (निन्दित) शास्त्रों के अध्ययन में आसक्त चित्त वाले होकर ईश्वर प्राप्ति कारक मार्ग (उपासना पद्धति) की निन्दा करोगे॥२९-३०॥

मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः। प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजैः परिपीडिताः॥३१॥
त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान्पुनः। भविष्यति हृषीकेशः स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुखः॥३२॥

घोर कलियुग आने पर मिथ्या (व्यर्थ के) विषयों का अध्ययन करके विचरण करते हुए तथा मिथ्या ज्ञान का प्रलाप करते हुए कलिकाल के दोषों से पीड़ित होकर और तपोबल से पूर्णतः रहित होकर नरकों में गिरोगे। भगवान् हृषीकेश विष्णु के आश्रय (शरण) में जाने पर भी वह तुम लोगों से पराङ्मुख (विमुख) हो जावेंगे॥३१-३२॥

एवमुक्त्वाथ विप्रर्षिर्विरराम तपोनिधिः। जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम्॥३३॥

ऐसा कह कर वह तपोनिधि ब्रह्मर्षि दधीचि चुप हो गये थे तथा मन ही मन समस्त पापनाशक भगवान् शिव की शरण में गये थे॥३३॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवं महेश्वरम्। पतिं पशुपतिं देवं ज्ञात्वैतत्प्राह सर्वदृक्॥३४॥

तभी उसी समय सर्वज्ञ देवी पार्वती ने यह सब बातें ज्ञात करके अपने पतिदेव पशुपति महेश्वर महादेव से कहा॥३४॥

---

१. वेदा, २. भविष्यन्ति

श्रीदेव्युवाच

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि। विनिन्द्य भवतो भावमात्मानं चापि शङ्कर॥३५॥
देवा महर्षयश्चासंस्तत्र साहाय्यकारिणः। विनाशयाशु तं यज्ञं वरमेतं[1] वृणोम्यहम्॥३६॥

देवी बोली- मेरे पूर्वजन्म के पिता दक्ष आपके परमात्म-भाव तथा आत्मा (अर्थात् शारीरिक स्वरूप) की निन्दा करके यज्ञ से (अन्य देवों का) यजन (आहुति प्रदान करके अर्चन) कर रहे हैं। देवता तथा महर्षिगण उस यज्ञ में उनकी सहायता कर रहे हैं। मैं आप से यही वर मांगती हूँ कि आप इस यज्ञ का विध्वंस कर दें॥३५-३६॥

एवं विज्ञापितो देव्या देवदेवः परः प्रभुः। ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया॥३७॥
सहस्रशिरसं क्रुद्धं सहस्राक्षं महाभुजम्। सहस्रपाणिं दुर्धर्षं युगान्तानलसन्निभम्॥३८॥

देवी पार्वती के द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जाने पर देवाधिदेव परमेश्वर महादेव ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने के लिए (वीरभद्र नामक) रुद्र की सृष्टि की थी। वह सहस्र शिरों, सहस्र नेत्रों और सहस्र हाथों और विशाल भुजाओं वाले, दुर्जेय, प्रलयकालीन अग्नि सदृश और क्रोध से युक्त थे॥३७-३८॥

दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रगदाधरम्। दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम्॥३९॥
वीरभद्र इति ख्यातं नाना[2] देवसमन्वितम्। स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलिः॥४०॥

वह विकराल दाढों वाले, भयंकर दिखलायी देने वाले, शङ्ख, चक्र, गदा और दण्ड (डण्डा) धारण किये हुए, उच्च स्वर से गर्जन करने वाले, शार्ङ्ग (सींग से निर्मित) धनुष को धारण किये हुए तथा भस्म से विभूषित थे और वीरभद्र नाम से प्रसिद्ध हुए थे। अनेक देवता उनके साथ उपस्थित थे। वह वीरभद्र प्रकट होते ही हाथ जोड़ कर देवाधिदेव शिव के समक्ष उपस्थित हुए थे॥३९-४०॥

तमाह दक्षस्य मखं विनाशाय शिवोऽस्तु ते। विनिन्द्य मां स यजते गङ्गाद्वारे गणेश्वर॥४१॥

(तब भगवान् शिव ने) उनसे कहा- हे गणेश्वर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम दक्ष के यज्ञ को विनष्ट कर दो। वह मेरी निन्दा करके गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में यज्ञ कर रहा है॥४१॥

ततो बन्धप्रमुक्तेन सिंहेनेव च[3] लीलया। वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत्क्रतुः॥४२॥

तब वीरभद्र ने बन्धन से मुक्त किये गये सिंह के समान लीला करते हुए जाकर दक्ष के यज्ञ को विनष्ट कर दिया था॥४२॥

मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी। तया च सार्धं वृषभं समारुह्य ययौ गणः॥४३॥

शिव की पत्नी पार्वती ने भी क्रोधित होकर महेश्वरी भद्रकाली की सृष्टि की थी। उस देवी के साथ वीरभ्रद नामक गण ने वृषभ में आरूढ़ होकर गङ्गाद्वारस्थ दक्ष के यज्ञस्थल को प्रस्थान किया था॥४३॥

अन्ये सहस्रशो रुद्रा निसृष्टास्तेन धीमता। रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहाय्यकारिणाः॥४४॥

उन वीरभद्र के साथ सहायक रूप में जाने के लिए विवेकशील भगवान् शिव ने अन्य सहस्रों रुद्रों को उत्पन्न किया था, जो उनके रोमों से उत्पन्न होने के कारण 'रोमज' नाम से विख्यात हुए थे॥४४॥

---

१. वरमेकं, २. देव, ३. सिंहेनैकेन,

शूलशक्तिगदाहस्ता दण्डोपलकरास्तथा। कालाग्निरुद्रसङ्काशा नादयन्तो दिशो दश॥४५॥

उन सभी 'रोमज' नामक गणों के हाथों में त्रिशूल, शक्ति (बर्छी, भाला) गदा, दण्ड (डण्डा) तथा उपल (पत्थर) थे। वे कालाग्नि रुद्र के समान दशों दिशाओं को निनादित कर रहे थे॥४५॥

सर्वे वृषसमारूढा[1] सभार्याश्चातिभीषणाः। समावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखं प्रति॥४६॥

वे सभी भीषण आकृति वाले गण अपनी पत्नियों सहित बैलों में सवार होकर गणों में सर्वश्रेष्ठ वीरभद्र को घेर कर दक्ष के यज्ञ स्थान की ओर चल पड़े थे॥४६॥

सर्वे सम्प्राप्य तं देशं गङ्गाद्वारमिति श्रुतम्। ददृशुर्यज्ञदेशं वै दक्षस्यामिततेजसः॥४७॥

वे सभी गङ्गाद्वार नाम से विख्यात क्षेत्र में पहुँचे और उन्होंने वहाँ अत्यन्त तेजस्वी दक्ष की यज्ञभूमि को देखा॥४७॥

देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम्। वेणुवीणानिनादाढ्यं वेदवादाभिनादितम्॥४८॥

वह स्थान सहस्रों देवाङ्गनाओं से सुशोभित था, अप्सराओं के गीतों से गुञ्जायमान था, वेणु (मुरली) और वीणा के वाद्यों की ध्वनि से निनादित था और वेदमन्त्रों के सस्वर पाठ से मुखरित था॥४८॥

दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवैः समासीनं प्रजापतिम्। उवाच भद्रया वाचा[2]वीरभद्रः स्मयन्निव॥४९॥

वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः। भागार्थं लिप्सया प्राप्ता भागान् यच्छध्वमीप्सितान्॥५०॥

वहाँ महर्षियों और देवताओं के साथ बैठे हुए दक्ष प्रजापति को देखकर वीरभ्रद ने मुस्कराते हुए मधुरवाणी में यह कहाकि हम अतुल तेजस्वी भगवान् शिव के अनुचर (सेवक) हैं। हम यज्ञ में भाग प्राप्त करने की कामना से यहाँ आये हैं। अतः हमें हमारा इच्छित भाग दीजिए॥४९-५०॥

अथ चेत्कस्यचिदियमाज्ञा मुनिवरोत्तमाः। भागो भवद्भ्यो देयस्तु नास्मभ्यमिति कथ्यताम्।
तं ब्रूताज्ञापयति यो वेत्स्यामो हि वयं ततः॥५१॥

हे श्रेष्ठ मुनिवरो! यदि किसी की यह आज्ञा हो कि यज्ञ में आप लोगों को ही भाग मिले और हम लोगों को नहीं तो यह बतलावें। जो इस प्रकार की आज्ञा देता है, वह कौन है? यह भी बतलावें, जिससे कि हम उसको जान सकें॥५१॥

एवमुक्ता गणेशेन प्रजापतिपुरःसराः। देवा ऊचुर्यज्ञभागे न च मन्त्रा इति प्रभुम्॥५२॥

गणों के स्वामी वीरभद्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर दक्ष प्रजापति सहित वहाँ उपस्थित सभी देवों ने भी प्रभु वीरभद्र से कहा कि आप लोगों को यज्ञ में भाग देने के विषय में कोई विधान मन्त्रों में नहीं है॥५२॥

मन्त्रा ऊचुः सुरा यूयं तमोपहतचेतसः। ये नाध्वरस्य राजानं पूजयेयुर्महेश्वरम्॥५३॥

तब मन्त्रों ने उन देवादि से यह कहा कि अरे देवो! आप लोगों का मन तमोगुण से दूषित हो गया है, जो कि आप लोग यज्ञ के अधीश्वर भगवान् महादेव की पूजा नहीं कर रहे हैं॥५३॥

ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वदेवतनुर्हरः। पूज्यते सर्वयज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः॥५४॥

---

१. वृषभारूढा, २. रुद्रैर्वीरभद्रः

सभी प्राणियों के स्वामी और सभी देवताओं के शरीर रूपी भगवान् शिव को सभी यज्ञों में पूजा जाता है। वह सभी प्रकार के अभ्युदय (उन्नति) और सिद्धिकर्ता हैं॥५४॥

एवमुक्ता अपीशानं[१] मायया नष्टचेतनाः। न मेनिरे ययुर्मन्त्रा देवानूमुक्त्वा स्वमालयम्॥५५॥

मन्त्रों के द्वारा ऐसा कहे जाने पर भी ईश्वरीय माया के द्वारा विनष्ट चेतना वाले उन यज्ञ मण्डप में स्थित देवों ने उनकी बात नहीं मानी। अतः वे मन्त्र उन देवों को त्याग कर अपने लोक को चले गये थे॥५५॥

ततः स भद्रो भगवान् सभार्यः सगणेश्वरः। स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्मर्षिं दधीचं प्राह देवताः॥५६॥

मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलदर्पितैः। यस्मात्प्रसह्य तस्माद्वो नाशयाम्यद्य गर्वितान्॥५७॥

तब भगवान् वीरभद्र ने अपनी पत्नी और गणेश्वरों को साथ लेकर ब्रह्मर्षि दधीचि का दोनों हाथ जोड़कर (चरण) स्पर्श करके देवताओं से कहा-क्योंकि तुम लोगों ने अपने बल के अभिमान के कारण मन्त्रों को प्रमाण नहीं माना, अतः मैं भी आज तुम गर्व करने वालों का बलपूर्वक नाश करता हूँ॥५६-५७॥

इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुङ्गवः। गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः॥५८॥

ऐसा कह कर शिव के गणों में श्रेष्ठतम वीरभद्र ने उस यज्ञशाला को दग्ध करके भस्म कर दिया था और गणेश्वरों ने क्रोधित होकर यज्ञशाला के खम्बों को उखाड़कर फेंक दिया था॥५८॥

प्रस्तोत्रा सह होत्रा च अश्वश्चैव गणेश्वराः। गृहीत्वा भीषणाः सर्वे गङ्गास्रोतसि चिक्षिपुः॥५९॥

उन गणेश्वरों ने प्रस्तोता (यजुर्वेद के मन्त्रों से आहुति देने वाले) और होता (ऋग्वेद के मन्त्रों से स्तुति करने वाले) को तथा यज्ञ के अश्व को पकड़कर गङ्गा के प्रवाह में फेंक दिया था॥५९॥

वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्यैवोद्यतं करम्। व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम्॥६०॥

भगनेत्रे तथोत्पाट्य कराग्रेणैव लीलया। निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत्॥६१॥

तथा चन्द्रमसं देवं पादांगुष्ठेन लीलया। धर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः॥६२॥

दीप्त तेज वाले अदीनात्मा अर्थात् पराक्रमी वीरभद्र ने (अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग हेतु उठे) इन्द्र के तथा अन्य देवताओं के हाथों को स्तम्भित कर दिया था और अपने नखों से आसानी के साथ खेलते हुए 'भग' नामक देवता की दोनों आँखों को उखाड़ कर फेंक दिया था एवं मुष्टि-प्रहार करके पूषा के दाँतों को तोड़कर गिरा दिया था। उन गणेश्वर बलशाली वीरभद्र ने मुस्कुराते हुए चन्द्रमा को अपने पैर के अँगूठे से रौंद दिया था॥६०-६२॥

वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया। जघान मूर्ध्नि पादेन मुनीनपि मुनीश्वराः॥६३॥

हे मुनीश्वरो! वीरभद्र ने अग्निदेव के दोनों हाथों को काटकर तथा लीलापूर्वक (अर्थात् खेलते हुए) उनकी जीभ को भी उखाड़ दिया था और उस यज्ञ में उपस्थित मुनियों के मस्तक पर लात मार कर उन्हें गिरा दिया था॥६३॥

तथा विष्णुं सगरुडं समायान्तं महाबलः। विव्याध निशितैर्बाणैः स्तम्भयित्वा सुदर्शनम्॥६४॥

१. एवमुक्त्वा महेशानं

वीरभद्र ने वहाँ को आने वाले गरुड़ में आरूढ़ भगवान् विष्णु को तीखे बाणों से बींध दिया था तथा उनके सुदर्शन चक्र को स्तम्भित (निष्क्रिय) कर दिया था॥६४॥

समालोक्य महाबाहुरागत्य गरुडो गणम्। जघान पक्षैः सहसा ननादाम्बुनिधिर्यथा॥६५॥

यह देखकर महाबाहु गरुड़ ने वहाँ आकर उस गणश्रेष्ठ वीरभद्र पर अपने पंखों से जोर से प्रहार करके समुद्र के समान गर्जन किया था॥६५॥

ततः सहस्रशो भद्रः[1] ससर्ज गरुडान् स्वयम्। वैनतेयादभ्यधिकान् गरुडं ते प्रदुद्रुवुः॥६६॥

तान्दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजवः। विसृज्य माधवं वेगात्तदद्भुतमिवाभवत्॥६७॥

तब वीरभद्र ने स्वयं विष्णु के उस वाहन गरुड़ से भी अधिक पराक्रमी सहस्रों गरुडों की सृष्टि की थी। वे सभी गरुड उस विनता पुत्र पर आक्रमण के लिए दौड़ पड़े थे। उनको देखकर अत्यन्त तेज गति वाला वह विनता का पुत्र बुद्धिमान् गरुड भगवान् विष्णु को छोड़ कर जल्दी से पलायित हो गया था। वह एक अद्भुत सी घटना थी॥६६-६७॥

अन्तर्हिते वैनतेये भगवान् पद्मसम्भवः। आगत्य वारयामास वीरभद्रञ्च केशवम्॥६८॥

विनता के पुत्र गरुड़ के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ आकर वीरभ्रद और विष्णु भगवान् को युद्ध करने से रोका था॥६८॥

प्रासादयामास च तं गौरवात्परमेष्ठिनः। संस्तूय भगवानीशं शम्भुस्तत्रागमत्स्वयम्॥६९॥

तब वीरभद्र ने ब्रह्मा की गरिमा (महिमा) का विचार करते हुए उनको प्रसन्न किया तथा उनकी स्तुति की थी। तभी भगवान् शिव [अम्बा (पार्वती) सहित] स्वयं वहाँ आये थे॥६९॥

वीक्ष्य देवाधिदेवं तं साम्बं सर्वगणैर्वृताम्। तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्षः सर्वे दिवौकसः॥७०॥

देवाधिदेव महादेव को पार्वती और सभी गणों के साथ देखकर दक्ष प्रजापति और सभी देवों सहित भगवान् ब्रह्मा ने उनकी स्तुति की थी॥७०॥

विशेषात्पार्वतीं देवीमीश्वरार्द्धशरीरिणीम्। स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्य च कृताञ्जलिः॥७१॥

दक्ष ने विशेष रूप से भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी देवी पार्वती को प्रणाम करके हाथ जोड़ कर नाना प्रकार के स्तोत्रों से उनकी स्तुति की थी॥७१॥

ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम्। प्रसन्नमनसा रुद्रं वचः प्राह घृणां निधिः॥७२॥

तब दया-निधान स्वरूपा भगवती पार्वती ने प्रसन्न चित्त होकर हँसते हुए महेश्वर भगवान् शिव से यह कहा॥७२॥

त्वमेव जगतः स्रष्टा शासिता चैव रक्षकः। अनुग्राह्यो भगवता दक्षश्चापि दिवौकसः॥७३॥

आप ही जगत् की सृष्टि करने वाले, उसका शासन-पालन करने वाले तथा रक्षा करने वाले हैं। अतः आप दक्ष प्रजापति तथा सभी देवों पर अनुग्रह (कृपा) करें॥७३॥

ततः प्रहस्य भगवान् कपर्दी नीललोहितः। उवाच प्रणतान्देवान् प्राचेतसमथो हरः॥७४॥

---

१. रुद्रः

गच्छध्वं देवताः सर्वाः प्रसन्नो भवतामहम्। सम्पूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः॥७५॥

तब कपर्दी, नीललोहित भगवान् शिव ने हँसते हुए प्राचेतस दक्ष तथा सभी शरणागत देवों से कहा कि आप सभी देवता यहाँ से (निश्चिन्त होकर) जावें। मैं आप लोगों पर प्रसन्न हूँ। मैं सभी यज्ञों में विशेषतः पूजनीय हूँ और मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिए॥७४-७५॥

त्वञ्चापि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्। त्यक्त्वा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्नतः॥७६॥

भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम। तावत्तिष्ठ ममादेशात्स्वाधिकारेषु निर्वृतः॥७७॥

हे दक्ष! तुम भी मेरी बात सुनो। मेरे वचन सर्वदा सब की रक्षा के लिए होते हैं। तुम अपनी इस लोकेषणा को प्रयत्न पूर्वक त्याग करके मेरे भक्त बन जाओ। तुम इस कल्प के अन्त में मेरी कृपा से गणों (शिवभक्तों) के अधिपति बन जाओगे। तब तक मेरे आदेशानुसार संतोष भाव के साथ अपने वर्तमान अधिकार (कार्य क्षेत्र) में बने रहो॥७६-७७॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सपत्नीकः सहानुगः। अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः॥७८॥

ऐसा कह कर भगवान् शिव अपनी पत्नी पार्वती तथा अनुगामी गणों सहित अमित तेजस्वी दक्ष के सामने से अन्तर्धान (ओझल) हो गये थे॥७८॥

अन्तर्हिते महादेवे शङ्करे पद्मसम्भवः। व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम्॥७९॥

भगवान् महादेव शिव के अन्तर्धान हो जाने पर पद्मोद्भव ब्रह्मा ने सम्पूर्ण जगत् के हित में दक्ष से स्वयं यह कहा॥७९॥

ब्रह्मोवाच

किञ्चायं भवतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे। यदा च स स्वयं देवः पालयेत् त्वामतन्द्रितः॥८०॥

ब्रह्मा बोले- भगवान् शिव के प्रसन्न हो जाने पर भी आपको यह मोह क्यों है? जबकि वह भगवान् शिव सदैव जागृत रह कर तुम्हारा पालन करने वाले हैं॥८०॥

सर्वेषामेव भूतानां हृद्येष वसतीश्वरः[१]। पश्यन्त्येनं[२] ब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः॥८१॥

वह भगवान् शिव सभी प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं। वेदों के ज्ञाता ब्रह्म साक्षत्कर्ता विद्वान् उन भगवान् शिव का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं॥८१॥

स चात्मा सर्वभूतानां स बीजं परमा गतिः। स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः॥८२॥

वह भगवान् शिव सभी प्राणियों के आत्मा (परमात्मा) हैं। वह (सृष्टि के) बीज-स्वरूप हैं और वही परमगति हैं। उन देवाधिदेव महेश्वर की वेदमन्त्रों से स्तुति की जाती है॥८२॥

तमर्चयति ये रुद्रं स्वात्मन्येकं[३] सनातनम्। चेतसा भावयुक्तेन स याति परमं पदम्॥८३॥

प्रत्येक व्यक्ति के अपने आत्मा में विराजमान उन सनातन भगवान् शिव का जो व्यक्ति भक्तिभाव युक्त मन से पूजन करता है, वह परम पद को प्राप्त करता है॥८३॥

तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम्। कर्मणा मनसा वाचा समाराधय यत्नतः॥८४॥

---

१. परमेश्वरः, २. पश्यन्ति यं, ३. स्वात्मना च

अतः आदि, मध्य और अन्त से रहित परमेश्वर शिव को जान कर उनकी मन, वचन और कर्म से यत्न पूर्वक आराधना करो॥८४॥

यत्नात्परिहरेशस्य निन्दा स्वात्मविनाशनीम्। भवन्ति सर्वदोषाय निन्दकस्य क्रिया हि ताः॥८५॥

भगवान् शिव की निन्दा करना त्याग दो, क्योंकि उनकी निन्दा करने से स्वयं अपना विनाश होता है। निन्दा करने वाले की सभी धार्मिक क्रियाएं सभी दोषों से दूषित हो जाती हैं॥८५॥

यस्तु चैष महायोगी रक्षको विष्णुरव्ययः। स देवो भगवान् रुद्रो महादेवो न संशयः॥८६॥

यह जो रक्षा करने वाले अविनाशी भगवान् विष्णु हैं, वही देव महादेव भगवान् रुद्र हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥८६॥

मन्यन्ते ये जगद्योनिं विभिन्नं विष्णुमीश्वरात्। मोहादवेदनिष्ठत्वात्ते यान्ति नरकं नराः॥८७॥

जो मनुष्य मोहवश (अज्ञान के कारण) या वेद में निष्ठा (श्रद्धा या विश्वास) न रखने के कारण जगत् के मूल कारण भगवान् विष्णु को शिव से भिन्न मानते हैं, वे नरक में जाते हैं॥८७॥

वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा। एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥८८॥

वेदों के वचनों का [प्रमाण मान कर] अनुपालन करने वाले विद्वान् भगवान् शिव को तथा नारायण विष्णु को समान भाव से (एक रूप) से देखते हैं, वे मोक्ष-प्राप्ति के अधिकारी होते हैं॥८८॥

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः। इति मत्वा भजेद्देवं स याति परमां गतिम्॥८९॥

जो भगवान् विष्णु हैं, वही स्वयं शिव भी हैं और जो शिव हैं, वही जनार्दन विष्णु हैं। यह मान कर जो मनुष्य भगवान् की आराधना करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है॥८९॥

सृजत्येष जगत्सर्वं विष्णुस्तत्पश्यतीश्वरः। इत्थं जगत्सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम्॥९०॥

भगवान् विष्णु इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं और शिव उसकी देख-रेख (अर्थात् पालन) करते हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् रुद्र (शिव) तथा नारायण (विष्णु) से ही प्रादुर्भूत हुआ है॥९०॥

तस्मात् त्यक्त्वा हरेर्निन्दां हरस्यापि[1] समाहितः। समाश्रय महादेवं शरण्यं ब्रह्मवादिनाम्॥९१॥

अतः भगवान् विष्णु तथा शिव की निन्दा करना छोड़ कर एकाग्र मन से भगवान् शिव की शरण में जाओ। वह भगवान् शिव ब्रह्मवादियों को शरण प्रदान करने वाले हैं॥९१॥

उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्चस्य प्रजापतिः। जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्तिवाससम्॥९२॥

ब्रह्मा के इन वचनों को सुनकर प्रजापति दक्ष कृत्तिवासा (व्याघ्रचर्म धारण करने वाले) पशुपति भगवान् शिव की शरण में गया था॥९२॥

येऽन्ये शापाग्निनिर्दग्धा दधीचस्य महर्षयः। द्विषन्तो मोहिता देवं सम्बभूवुः कलिष्वथ॥९३॥

त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसम्भवाः। पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मणो वचनादिह॥९४॥

मुक्तशापास्ततः सर्वे कल्पान्ते रौरवादिषु। निपात्यमानाः कालेन सम्प्राप्यादित्यवर्चसम्।
ब्रह्माणं जगतामीशमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥९५॥

---

१. हरे चापि

समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम्। भविष्यन्ति यथा पूर्वं शङ्करस्य प्रसादतः॥९६॥

जो अन्य महर्षिगण मोहवश शिव के प्रति द्वेष रखने के कारण दधीचि की शापाग्नि से दग्ध होकर कलियुग में उत्पन्न हुए थे, वे सम्पूर्ण तपोबल का त्याग करके ब्राह्मणों के कुल में जन्म लेकर अपने पूर्वजन्म के संस्कार के कारण और ब्रह्मा के वचनों के अनुसार रौरव आदि नरकों में गिराये जाने के पश्चात् कल्प के अन्त में शापमुक्त होकर सूर्य-सदृश तेजस्वी ब्रह्मा के आदेशानुसार वे सभी तपोबल से देवाधिदेव भगवान् शिव की आराधना करके उनकी कृपा से पूर्ववत् हो जावेंगे॥९३-९६॥

एतद्वः कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम्। शृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासां चैव सन्ततिम्॥९७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

सूत जी बोले- मैंने आप लोगों को दक्ष यज्ञ के विध्वंस की कथा कही है, अब आप दक्ष-कन्याओं की सन्तानों की कथा सुनें॥९७॥

॥ इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'दक्ष-यज्ञ-विध्वंस' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

दक्षकन्यावंश-वर्णनम्

सूत उवाच

प्रजाः सृजेति सन्दिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा। ससर्ज देवान् गन्धर्वानृषींश्चैवासुरोरगान्॥१॥

अति प्राचीनकाल में स्वयंभू ब्रह्मा के द्वारा दक्ष को प्रजाओं की सृष्टि करो- ऐसा आदेश दिये जाने पर उन्होंने देवों, गन्धर्वों, ऋषियों, असुरों और नागों की सृष्टि की थी॥१॥

यदास्य सृजमानस्य पूर्वं न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः। तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव सर्वतः॥२॥

जब दक्ष प्रजापति के द्वारा सृष्टि किये जाने पर भी उन प्रजाओं की सृष्टि में कहीं से भी कोई वृद्धि नहीं हुई तो तब दक्ष ने मैथुन (पत्नी के साथ संभोग) करके सर्वतः नाना प्राणियों की सृष्टि की थी॥२॥

असिक्न्यां जनयामास वीरणस्य प्रजापतेः। सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणान्तु सहस्रकम्॥३॥

दक्ष ने वीरण नामक प्रजापति की धर्मचारिणी असिक्नी नामक पुत्री से एक हजार पुत्र उत्पन्न किये थे॥३॥

तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य तु। षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या वैरिण्यां वै प्रजापतिः॥४॥

नारद की माया से उन पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्रजापति दक्ष ने अपनी पत्नी उस वीरणी (वीरण की पुत्री) में साठ कन्याओं को उत्पन्न किया था॥४॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥५॥
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते। द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत् तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम्॥६॥

दक्ष ने उन कन्याओं में से दश कन्याएँ धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस कन्याएँ सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को और दो कन्याएँ बुद्धिमान् कृशाश्व को तथा उसी प्रकार दो कन्याएँ अङ्गिरा को दी थी। अब मैं उनके वंश को विस्तार से बतलाता हूँ॥५-६॥

मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुन्धती। सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च नामतः॥७॥
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान्निबोधत। विश्वेदेवास्तु विश्वायां साध्या साध्यानजीजनत्॥८॥

[दक्ष ने जो दश कन्याएँ धर्म को दी थी उनके नाम थे क्रमशः] मरुत्वती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, अरुन्धती, संकल्पा, मूहूर्ता, साध्या तथा विश्वा। ये धर्म की दश पत्नियों के नाम हैं। अब इनके पुत्रों के नामों को सुनिए। विश्वा के पुत्र विश्वेदेव थे, साध्या ने साध्यगणों को जन्म दिया था॥७-८॥

मरुत्वन्तो मरुत्वत्यां वसवोऽष्टौ वसोः सुताः। भानोस्तु भानवाश्चैव मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः॥९॥

मरुत्वती से मरुत्गणों का जन्म हुआ था। वसु के पुत्र आठ वसु थे। भानु से भानुगण और मुहूर्ता से मुहूर्तगणों का जन्म हुआ था॥९॥

लम्बायाश्चाथ घोषो वै नागवीथी तु यामिजा। पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत।
सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः॥१०॥

लम्बा से घोष नामक पुत्र का जन्म हुआ था और यामी से नागवीथी का जन्म हुआ था। अरुन्धती से पृथिवी सम्बन्धी प्राणियों का जन्म हुआ था। संकल्पा से संकल्प नामक पुत्र का जन्म हुआ था। इसी प्रकार धर्म के दश पुत्र बतलाये गये हैं[१]॥१०॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानलोऽनिलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥११॥

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहे गये हैं॥११॥

आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः श्रान्तो धुनिस्तथा। ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः[२]॥१२॥

आप के वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त और धुनि नामक पुत्र थे। ध्रुव के पुत्र का नाम काल था। वह भगवान् काल ही लोक के संहारक हैं॥१२॥

सोमस्य भगवान्वर्चा धरस्य[३] द्रविणः सुतः। मनोजवोऽनिलस्यासीदविज्ञातगतिस्तथा॥१३॥

सोम के पुत्र भगवान् वर्चा हैं और धर के पुत्र का नाम द्रविण था। अनिल के मनोजव और अविज्ञातगति नामक पुत्र थे॥१३॥

१. धर्म की दश पत्नियों और उनकी सन्तानों का ऐसा ही वर्णन विष्णुपुराण १/१५/१०६-१०९ में भी है।
२. प्रकाशनः। संपादित पाठ का समर्थन विष्णुपुराण १/१५/११२ में भी हुआ है।
३. धर्मस्य पुत्रो द्रविणो-विष्णुपुराण१/१५/११३

कुमारो ह्यनलस्यासीत्सेनापतिरिति स्मृतः। देवलो भगवान्योगी प्रत्यूषस्याभवत्सुतः।
विश्वकर्मा प्रभासस्य शिल्पकर्ता प्रजापतिः॥१४॥

अनल का पुत्र कुमार था, जिसको देव-सेना का पति कहा गया है। देवल नामक भगवान् योगी प्रत्यूष के पुत्र थे। शिल्पशास्त्र के कर्ता प्रजापति विश्वकर्मा प्रभास के पुत्र थे॥१४॥

अदितिर्दितिर्दनुस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा। सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा त्विरा।
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञा तत्पुत्रान्वै निबोधत॥१५॥

कश्यप की अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, कद्रू, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि नामक पत्नियाँ थी। हे धर्मज्ञ मुनियो! अब आप लोग कश्यप की उन पत्नियों के पुत्रों को जानें॥१५॥

अंशो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा। विवस्वान् सविता पूषा ह्यंशुमान्विष्णुरेव च॥१६॥

अंशु धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान और विष्णु ये अदिति के द्वादश पुत्र थे॥१६॥

तुषिता नाम ते पूर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। वैवस्वतेऽन्तरे प्रोक्ता आदित्याश्चादितेः सुताः॥१७॥

ये द्वादश आदित्य चाक्षुष मन्वन्तर में 'तुषित' नामक देवता थे और वैवस्वत मन्वन्तर में ये अदिति के पुत्र आदित्य कहलाते हैं॥१७॥

दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपाबलगर्वितम्। हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथानुजम्॥१८॥

दिति ने कश्यप से दो पुत्रों को प्राप्त किया था, जो बल के अभिमान से ग्रस्त थे। उनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम हिरण्यकशिपु था तथा उसके अनुज का नाम हिरण्याक्ष था॥१८॥

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो महाबलपराक्रमः। आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेश्वरम्।
दृष्ट्वा लेभे वरान्दिव्यान् स्तुत्वासौ विविधैः स्तवैः॥१९॥

महाबली और पराक्रमी हिरण्यकशिपु ने तपस्या करके परमेश्वर ब्रह्मा की आराधना की और उनका दर्शन प्राप्त कर विविध प्रकार के स्तोत्रों से उनकी स्तुति करके उनसे अनेक दिव्य वर प्राप्त किये थे॥१९॥

अथ तस्य बलाद् देवाः सर्व एव महर्षयः। बाधितास्ताडिता जग्मुर्देवदेवं पितामहम्॥२०॥

तब उसके द्वारा बलपूर्वक पीडित एवं प्रताडित सभी देवता एवं सभी महर्षि देवाधिदेव पितामह ब्रह्मा की शरण में गये थे॥२०॥

शरण्यं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम्। ब्रह्माणं लोककर्तारं त्रातारं पुरुषं परम्।
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम्॥२१॥

वह परम पुरुष भगवान् ब्रह्मा सब को शरण देने वाले, कल्याणकारी, सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त, लोक की सृष्टि करने वाले, संबकी रक्षा करने वाले, कूटस्थ (अचल, शाश्वत), जगत् के एकमात्र पुराण-पुरुष पुरुषोत्तम हैं॥२१॥

स याचितो देववरैर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः। सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः॥२२॥
संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि। क्षीरोदस्योत्तरं कूलं यत्रास्ते हरिरीश्वरः॥२३॥

हे मुनीश्वरो! श्रेष्ठ देवों और मुनिवरों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर और सभी विनीत मुनिवरों और देवों के द्वारा स्तुति किये जाते हुए वह ब्रह्मा सभी देवादि के हित के लिए क्षीरसागर के उत्तरी तट पर गये जहाँ पर भगवान् विष्णु थे॥२२-२३॥

दृष्ट्वा देवं जगद्योनिं विष्णुं विश्वगुरुं शिवम्। ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभाषत॥२४॥

सम्पूर्ण जगत् के जनक विश्वगुरु कल्याणकारी भगवान् विष्णु को देखकर ब्रह्मा ने नतमस्तक होकर उनको प्रणाम किया और यह कहा॥२४॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः। व्यापी सर्वामरवपुर्महायोगी सनातनः॥२५॥

आप सभी प्राणियों की गति (शरणदाता), अनन्त स्वरूप वाले और अखिल विश्व के आत्मा-स्वरूप हैं। आप सर्वव्यापी सभी देवताओं के समन्वित शरीर रूप, महायोगी और सनातन हैं॥२५॥

त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानप्रकृतिः परा। वैराग्यैश्वर्यनिरतो रागातीतो निरञ्जनः॥२६॥

आप सभी प्राणियों की आत्मा, परम पुरुष और परा प्रकृति स्वरूप हैं। आप वैराग्य के साथ ही ऐश्वर्य में भी निरत हैं तथा राग (अनुराग, आसक्ति) से रहित और निरञ्जन (निष्कलंक) हैं॥२६॥

त्वं कर्ता चैव भर्ता च विहन्ता च सुरद्विषाम्। त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्रातासि परमेश्वर॥२७॥

आप सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा देवों से द्वेष करने वालों के संहारकर्ता हैं। हे अनन्तेश! हे परमेश्वर! आप सबके रक्षक हैं। आप हम लोगों की रक्षा करें॥२७॥

इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणा सम्प्रबोधितः। प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासा सुरान् द्विजाः[1]॥२८॥
किमर्थं सुमहावीर्याः सुप्रजापतिकाः सुराः। इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः॥२९॥

हे द्विजो! ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जाने पर विकसित कमल पुष्प के समान नेत्रों वाले पीतवस्त्र धारी भगवान् विष्णु ने देवों से कहा- हे महाबली देवो! आप लोग प्रजापति सहित इस देश में किस उद्देश्य से आये हैं। अथवा (यह बतालाइए कि) मैं आपका क्या काम करूँ॥२८-२९॥

देवा ऊचुः

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः। बाधते भगवन्दैत्यो देवान् सर्वान् सहर्षिभिः॥३०॥

देवता बोले- हे भगवन्! ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करके हिरण्यकशिपु अभिमानी होकर ऋषियों सहित देवों को पीड़ित कर रहा है॥३०॥

अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तम। हन्तुमर्हसि सर्वेषां त्रातासि त्वं जगन्मय॥३१॥

हे पुरुषोत्तम! आपके अतिरिक्त अन्य सभी प्राणी उसका वध नहीं कर सकते। हे जगन्मय! आप सबकी रक्षा करने वाले हैं। आप ही उसका वध कर सकते हैं॥३१॥

---
१. सुरद्विषः

श्रुत्वा तद्दैवतैरुक्तं स विष्णुर्लोकभावनः। वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत्पुरुषं स्वयम्॥३२॥

देवों के द्वारा कहे गये उस वचन को सुनकर लोकभावन (लोक-सृष्टिकर्ता) भगवान् विष्णु ने उस महादैत्य के वध हेतु स्वयं एक पुरुष की सृष्टि की थी॥३२॥

मेरुपर्वतवर्ष्माणं घोररूपं भयानकम्। शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः॥३३॥
हत्वा तं दैत्यराजानं हिरण्यकशिपुं पुनः। इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमर्हसि पौरुषात्॥३४॥

वह सुमेरु पर्वत के समान विशाल शरीर वाला, घोर और भयानक था। वह शंख, चक्र और गदा को अपने हाथों में धारण किये हुए था। गरुडध्वज भगवान् विष्णु ने उससे कहा- तुम उस दैत्यराज हिरण्यकशिपु का अपने पुरुषार्थ से वध करके शीघ्र लौटकर पुनः मेरे पास आओ॥३३-३४॥

निशम्य वैष्णवं वाक्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्। महापुरुषमव्यक्तं ययौ दैत्यमहापुरम्॥३५॥

भगवान् विष्णु के वचन सुनकर वह उन अव्यक्त महापुरुष पुरुषोत्तम विष्णु को प्रणाम करके उस दैत्य हिरण्यकशिपु के महा पुर (नगर) को गया था॥३५॥

विमुञ्चन् भैरवं नादं शङ्खचक्रगदाधरः। आरुह्य गरुडं देवो महामेरुरिवापरः॥३६॥

वह शंख, चक्र और गदा को धारण किया हुआ दूसरे महामेरु पर्वत के समान पुरुष गरुड में आरूढ होकर भंयकर शब्द (गर्जन) करते हुए गया था॥३६॥

आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम्। समं च चक्रिरे नादं तदा दैत्यपतेर्भयात्॥३७॥

महामेघ के गर्जन के समान भंयकर शब्द को सुनकर हिरण्यकशिपु के अनुचर दैत्यों ने भी भयभीत होकर उसी शब्द के समान जोर से गर्जन किया था॥३७॥

असुरा ऊचुः

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवनोदितः। विमुञ्चन् भैरवं नादं तं जानीमो जनार्दनम्॥३८॥

असुर बोले- देवों के द्वारा भेजा गया कोई विशालकाय पुरुष भंयकर शब्द करते हुए यहाँ को आ रहा है। हम जानते हैं कि वह जनार्दन-विष्णु हैं॥३८॥

ततः सहासुरवरैर्हिरण्यकशिपुः स्वयम्। सन्नद्धैः सायुधैः पुत्रैः सप्रह्लादैस्तदा ययौ॥३९॥

तब आयुधों से सुसज्जित असुरों तथा प्रह्लाद आदि पुत्रों सहित हिरण्यकशिपु ने उस ओर प्रस्थान किया था॥३९॥

दृष्ट्वा तं गरुडारूढं सूर्यकोटिसमप्रभम्। पुरुषं पर्वताकारं नारायणमिवापरम्॥४०॥
दुद्रुवुः केचिदन्योन्यमूचुः सम्भ्रान्तलोचनाः। अयं स देवो देवानां गोप्ता नारायणो रिपुः॥४१॥
अस्माकमव्ययो नूनं तत्सुतो वा समागतः। इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि ससृजुः पुरुषाय ते।
स तानि चाक्षतो देवो नाशयामास लीलया॥४२॥

करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी और पर्वत के समान आकार वाले और गरुड में आरूढ़ दूसरे विष्णु के समान उस पुरुष को देखकर कुछ असुर वहाँ से पलायन कर गये थे और कुछ आश्चर्यचकित नेत्रों वाले परस्पर यह बोले कि यह देवों की रक्षा करने वाले अविनाशी भगवान् विष्णु हमारे शत्रु हैं अथवा यह

उनका पुत्र ही यहाँ आया है। ऐसा कह कर वे उस पुरुष पर शस्त्रों की वर्षा करने लगे थे, किन्तु उस देव ने स्वयं सुरक्षित रहते हुए उनके अस्त्रों को खेल खेल में नष्ट कर दिया था॥४०-४२॥

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः। पुरुषं नारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनिःस्वनाः।
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च॥४३॥

तब हिरण्यकशिपु के प्रख्यात पराक्रम वाले और मेघ के समान गर्जन करने वाले चार पुत्रों प्रह्लाद[१], अनुह्लाद[२], संह्लाद[३] और ह्लाद[४] ने भगवान् विष्णु से प्रकट हुए उस पुरुष के साथ युद्ध किया था॥४३॥

प्रह्लादः प्राहिणोद् ब्राह्ममनुह्लादोऽथ वैष्णवम्। संह्लादश्चापि कौमारमाग्नेयं ह्लाद एव च॥४४॥

प्रह्लाद ने ब्राह्म अस्त्र (ब्रह्मास्त्र), अनुह्लाद ने वैष्णवास्त्र, संह्लाद ने कौमार अस्त्र और ह्लाद ने आग्नेयास्त्र का प्रक्षेपण किया था॥४४॥

तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि वैष्णवम्। न शेकुश्चालितुं विष्णुं वासुदेवं यथा तथा॥४५॥

वे चारों अस्त्र उस वैष्णव पुरुष के पास पहुँच कर भी उन वासुदेव विष्णु स्वरूप को हिला भी नहीं सके थे॥४५॥

अथासौ चतुरः पुत्रान्महाबाहुर्महाबलः। प्रगृह्य पादेषु करैश्चिक्षेप च ननाद च॥४६॥

तब उन महाबाहु और महाबली पुरुष ने हिरण्यकशिपु के उन चारों पुत्रों के पैरों को पकड़ कर उन सभी को दूर फैंक दिया और तब जोर से गर्जन किया था॥४६॥

प्रक्षिप्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपुः स्वयम्। पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं बली॥४७॥

उस महाबली पुरुष के द्वारा हिरण्यकशिपु के पुत्रों को फेंक दिये जाने पर स्वयं उस बलशाली हिरण्यकशिपु ने भी तीव्र गति से उस पुरुष के वक्षस्थल (छाती) पर पैर से प्रहार किया था॥४७॥

स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन सहानुगः। अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणः प्रभुः।
गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा॥४८॥

उस प्रहार से अत्यन्त पीड़ा होने पर वह वैष्णव पुरुष गरुड तथा अनुचरों सहित शीघ्र अदृश्य होकर शीघ्र वहाँ चला गया जहाँ पर कि प्रभु नारायण विष्णु विराजमान थे। वहाँ जाकर उसने जो कुछ हुआ था, वह सब उन्हें बतलाया था॥४८॥

सञ्चिन्त्य मनसा देवः सर्वज्ञानमयोऽमलः। नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं तथा॥४९॥
नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे। आविर्बभूव सहसा मोहयन्दैत्यदानवान्॥५०॥

तब सर्वज्ञ और निर्मल स्वभाव वाले भगवान् विष्णु मन में अच्छी तरह विचार करके आधा शरीर पुरुष का तथा आधा शरीर सिंह वाला बनाकर अव्यक्त (वर्णनातीत) नृसिंह रूप का शरीर धारण करके दैत्यों और दानवों को दिग्भ्रमित करते हुए अकस्मात् हिरण्यकशिपु के नगर में जाकर प्रकट हुए थे॥४९-५०॥

दंष्ट्राकरालो योगात्मा युगान्तदहनोपमः। समारुह्यात्मनः शक्तिं सर्वसंहारकारिकाम्।
भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रविः॥५१॥

१. प्रह्लाद, २. अनुह्लाद, ३. संह्लाद, ४. ह्लाद

भयंकर दाढों वाले प्रलयकालीन अग्नि के समान जाज्वल्यमान लगने वाले वह योगात्मा अपनी सर्व संहारकारक शक्ति पर आरूढ (अर्थात् उस शक्ति से युक्त) होकर चलते हुए मध्याह्नकालीन सूर्य के समान दीप्तिमान लग रहे थे॥५१॥

दृष्ट्वा नृसिंहं पुरुषं प्रह्लादं ज्येष्ठपुत्रकम्। वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः॥५२॥
इमं नृसिंहं पुरुषं पूर्वस्मादूनशक्तिकम्। सहैव तेऽनुजैः सर्वैर्नाशयाशु मयेरितः॥५३॥

नृसिंह रूपी पुरुष को देख कर उस असुर हिरण्यकशिपु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रह्लाद को उसके वध हेतु प्रेरित करते हुए यह कहा कि तुम मेरी आज्ञा से अपने सभी अनुज भ्राताओं के साथ जाकर पहले वाले पुरुष से भी कम शक्ति वाले इस नृसिंह रूपी पुरुष को (मार कर) शीघ्र नष्ट कर दो॥५२-५३॥

स तन्नियोगादसुरः प्रह्लादो विष्णुमव्ययम्। युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः॥५४॥

उसकी आज्ञानुसार उस असुर प्रह्लाद ने पूर्ण प्रयास पूर्वक नरसिंह रूप वाले भगवान् विष्णु के साथ युद्ध किया और उस युद्ध में नरसिंह ने उसे पराजित कर दिया था॥५४॥

ततः सञ्चोदितो[1] दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः। ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च॥५५॥

तब हिरण्यकशिपु के आदेशानुसार उसके अनुज दैत्य हिरण्याक्ष ने ध्यान करके पाशुपत अस्त्र को नृसिंह पर छोड़ा और गर्जन करने लगा॥५५॥

तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः। न हानिमकरोदस्त्रं तथा देवस्य शूलिनः॥५६॥

और देवाधिदेव अत्यन्त तेजस्वी भगवान् विष्णु स्वरूप नृसिंह को भगवान् शिव के उस अस्त्र ने कोई हानि नहीं पहुँचायी थी॥५६॥

दृष्ट्वा पराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात्। मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम्॥५७॥

उस पाशुपत अस्त्र को विफल देखकर सौभाग्यवश प्रह्लाद ने उन भगवान् नृसिंह को सर्वात्मा सनातन वासुदेव विष्णु स्वरूप समझ लिया था॥५७॥

सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा। ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम्॥५८॥

तब उसने सभी शस्त्रों को त्याग कर सत्त्वगुण चित्त वाला होकर योगियों के हृदय में विराजमान रहने वाले देव नृसिंह रूप में स्थित भगवान् विष्णु को नतमस्तक होकर प्रणाम किया था॥५८॥

स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रैः ऋग्यजुः सामसम्भवैः। निवार्य पितरं भ्रातॄन् हिरण्याक्षं तदाब्रवीत्॥५९॥

प्रह्लाद ने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के स्तोत्रों से उन भगवान् नारायण की स्तुति करके पिता हिरण्यकशिपु, अपने अनुजों तथा हिरण्याक्ष को युद्ध से निवारित करके यह कहा॥५९॥

अयं नारायणोऽनन्तः शाश्वतो भगवानजः। पुराणपुरुषो देवो महायोगी जगन्मयः॥६०॥

ये भगवान् नारायण अनन्त, सनातन, अजन्मा, पुराण पुरुष, महायोगी और जगन्मय (जगत् के मूल रूप) देव हैं॥६०॥

अयं धाता विधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः। प्रधानं पुरुषं तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्ययः॥६१॥

१. संमोहितो

ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः। गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम्॥६२॥

यह धाता, विधाता, स्वयं प्रकाशित, निरञ्जन, प्रधान पुरुष रूप, मूलत्तत्व, मूल प्रकृति रूप, अविनाशी, सभी प्राणियों के अन्तर्यामी और त्रिगुणातीत हैं। आप सब इन अव्यक्त और अविनाशी भगवान् विष्णु की शरण में जावें॥६१-६२॥

एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुः स्वयम्। प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया॥६३॥

अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः। समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदितः॥६४॥

प्रह्लाद के द्वारा ऐसा कहे जाने पर विष्णु की माया से अत्यन्त मोहित दुर्बुद्धि हिरण्यकशिपु ने पुत्र प्रह्लाद से कहा कि यह अल्प पराक्रम वाला नृसिंह सर्वथा वध योग्य है। इस समय यह काल के द्वारा प्रेरित किये जाने पर हमारे भवन में आया है॥६३-६४॥

विहस्य पितरं पुत्रो वचः प्राह महामतिः। मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम्॥६५॥

तब महामति पुत्र प्रह्लाद ने हँस कर पिता से कहा आप सभी प्राणियों के स्वामी (ईशान) अविनाशी भगवान् विष्णु की निन्दा मत करो॥६५॥

कथं देवो महादेवः शाश्वतः कालवर्जितः। कालेन हन्यते विष्णुः कालात्मा कालरूपधृक्॥६६॥

सनातन महान देवता विष्णु कालस्वरूप, कालरूप आत्मावाले और काल से वर्जित हैं। उनको काल के द्वारा कैसे मारा जा सकता है?॥६६॥

ततः सुवर्णकशिपुर्दुरात्मा कालचोदितः। निवारितोऽपि पुत्रेण युयुधे हरिमव्ययम्॥६७॥

तब पुत्र प्रह्लाद के द्वारा निवारित किये जाने पर भी हिरण्यकशिपु ने अविनाशी नृसिंह रूपी भगवान् विष्णु के साथ युद्ध किया था॥६७॥

संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्। नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः॥६८॥

तब रक्तवर्ण के नेत्रों वाले अनन्त शक्ति वाले भगवान् नृसिंह ने प्रह्लाद के समक्ष ही हिरण्याक्ष के अग्रज हिरण्यकशिपु को अपने नखों से विदीर्ण कर दिया था॥६८॥

हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः। विसृज्य पुत्रं प्रह्लादं दुद्रुवे भयविह्वलः॥६९॥

हिरण्यकशिपु का वध हो जाने पर भय से व्याकुल महाबलशाली हिरण्याक्ष प्रह्लाद को त्यागकर वहाँ से पलायित हो गया था॥६९॥

अनुह्लादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः। नृसिंहदेहसम्भूतैः सिंहैर्नीता यमालयम्॥७०॥

हिरण्यकशिपु के अनुह्लाद आदि तीन पुत्रों तथा अन्य सैकड़ों असुरों को नृसिंह की देह से प्रकट हुए सिंहों ने यमलोक में पहुँचा दिया था॥७०॥

ततः संहृत्य तद्रूपं हरिर्नारायणः प्रभुः। स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम्॥७१॥

तब प्रभु नारायण विष्णु ने उस नृसिंह रूप को त्याग कर अपने मूल स्वरूप भगवान् नारायण-विष्णु रूप को प्राप्त कर लिया था॥७१॥

गते नारायणे दैत्यः प्रह्लादोऽसुरसत्तमः। अभिषेकेण युक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत्॥७२॥

भगवान् विष्णु के वहाँ से चले जाने के पश्चात् असुरों में श्रेष्ठ दैत्य प्रह्लाद ने हिरण्याक्ष को राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया था॥७२॥

स बाधयामास सुरानूरणे जित्वा मुनीनपि। लब्ध्वाऽन्धकं महापुत्रं तपसाराध्य शङ्करम्॥७३॥
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बध्वा च धरणीमिमाम्। नीत्वा रसातलं चक्रे वेदान् च निष्प्रभांस्तथा[1]॥७४॥

उस हिरण्याक्ष ने युद्ध में देवों और मुनियों को भी जीतकर उनको पीडित किया था। उसने तपस्या से भगवान् शिव की आराधना करके अन्धकासुर नामक महाबली पुत्र को प्राप्त किया था। तब उसने देवराज इन्द्र सहित सभी देवों पर विजय प्राप्त करके कमल के समान कान्ति वाली इस पृथिवी को रसातल में ले जाकर वेदों को भी निष्प्रभ (प्रभाव रहित) कर दिया था॥७३-७४॥

ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः। गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम्॥७५॥

तब श्रीविहीन और म्लान मुखों वाले ब्रह्मा सहित सभी देवताओं ने भगवान् विष्णु के घर में जाकर उनको समस्त वृत्तान्त बतलाया॥७५॥

स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्ययः। सर्वदेवमयं शुभ्रं वाराहं वपुरादधे॥७६॥

तब अविनाशी विश्वात्मा भगवान् विष्णु ने उस असुर के वध के उपाय का विचार करके सर्वदेवमय वाराह का उज्ज्वल (धवल) स्वरूप धारण किया था॥७६॥

गत्वा हिरण्यनयनं हत्वा तं पुरुषोत्तमः। दंष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम्॥७७॥

तब वाराह रूप पुरुषोत्तम प्रभु नारायण ने जाकर हिरण्याक्ष का वध करके कल्पादि में अपने दाढों से पृथिवी को पकड़ कर उसका उद्धार किया था॥७७॥

त्यक्त्वा वाराहसंस्थानं संस्थाप्यैवं सुरद्विजान्। स्वामेव प्रकृतिं दिव्यां ययौ विष्णुः परं पदम्॥७८॥

तब उस पृथिवी में देवों और द्विजों को यथास्थान प्रतिष्ठापित करके वह वाराह रूप को त्यागकर अपने मूल स्वरूप (चतुर्भुज विष्णु स्वरूप को) धारण करके अपने परमधाम-क्षीरसागर को चले गये थे॥७८॥

तस्मिन् हतेऽमररिपौ प्रह्लादो विष्णुतत्परः। अपालयत्स्वकं राज्यं भावं त्यक्त्वा तदासुरम्॥७९॥

देवों के शत्रु उस हिरण्याक्ष का वध हो जाने पर प्रह्लाद ने आसुरी प्रवृत्ति का त्याग करके भगवान् विष्णु की भक्ति में तत्पर रहते हुए अपने राज्य का पालन किया था॥७९॥

यजते विधिवद्देवान्विष्णोराराधने रतः। निःसपत्नं सदा राज्यं तस्यासीद्विष्णुवैभवात्॥८०॥

वह विष्णु की आराधना में संलग्न रहकर यथाविधि देवों का पूजन करता था। भगवान् विष्णु की कृपा से उसका राज्य शत्रु-विहीन हो गया था॥८०॥

ततः कदाचिदसुरो ब्राह्मणं गृहमागतम्। तापसं नार्चयामास[2] देवानाञ्चैव मायया॥८१॥
स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानितः। शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः॥८२॥
यत्तद्बलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे। सा शक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाशन्ते गमिष्यति॥८३॥

१. वन्दीमिन्दीवरप्रभाम्, २. न च सम्भाषयामास

तब एक बार देवों की माया से मोहित (भ्रमित बुद्धि वाले) असुर प्रह्लाद ने अपने घर में आये हुए तपस्वी ब्राह्मण का अर्चन (आदर सत्कार) नहीं किया। इससे अपमानित होकर क्रोध के कारण लाल नेत्रों वाले उस तपस्वी ब्राह्मण ने उस असुर राजा को शाप देते हुए यह कहा कि जिसका आश्रय लेकर तुम ब्राह्मणों का अपमान कर रहे हो तुम्हारी वह दिव्य वैष्णवी शक्ति विनष्ट हो जायेगी॥८१-८३॥

इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद् द्विजः। मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात्ततः॥८४॥

ऐसा कह कर वह ब्राह्मण प्रह्लाद के घर से शीघ्र निकल कर चला गया था। वह प्रह्लाद भी राज्य कार्य में व्यस्त रहने के कारण और ब्राह्मण के शाप के फलस्वरूप मोहग्रस्त हो गया था॥८४॥

बाधयामास विप्रेन्द्रान् न विवेद जनार्दनम्। पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरिं प्रति॥८५॥

वह द्विजेन्द्रों को पीडित करने लगा था और भगवान् विष्णु को भी उसने विस्मृत कर दिया था। वह नृसिंह के द्वारा अपने पिता के वध का स्मरण करके भगवान् विष्णु के प्रति क्रोध करने लगा था॥८५॥

तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्। नारायणस्य देवस्य प्रह्लादस्यामरद्विषः॥८६॥

तब भगवान् नारायण विष्णु तथा देवों से द्वेष करने वाले प्रह्लाद के बीच रोमांचकारी घोर युद्ध हुआ था॥८६॥

कृत्वा स सुमहद्युद्धं विष्णुना तेन निर्जितः। पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात्परस्मिन् पुरुषे हरौ।
सञ्जातं तस्य विज्ञानं शरण्यं शरणं ययौ॥८७॥

भगवान् विष्णु ने बहुत घोर युद्ध करके उस प्रह्लाद पर विजय प्राप्त की थी। तब पूर्वकालिक शुभ संस्कार के प्रभाव के फलस्वरूप उस प्रह्लाद को परम पुरुष भगवान् विष्णु का वास्तविक ज्ञान हो गया और तब वह उन शरणदाता भगवान् की शरण में गया था॥८७॥

ततःप्रभृति दैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्वहन्। नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे॥८८॥

तब से वह दैत्यराज प्रह्लाद पुरुषोत्तम नारायण विष्णु में अनन्य भक्ति करने लगा था और उसने महायोग को प्राप्त किया था॥८८॥

हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि। अवाप तन्महद्राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः॥८९॥

जब वह हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद योग में आसक्त चित्त वाला हो गया था तो उसके विशाल राज्य का शासन असुरराज अन्धकासुर करने लगा था॥८९॥

हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्वर[१]-समुद्भवः। मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम्॥९०॥

भगवान् शिव के वरदान के फलस्वरूप उत्पन्न हिरण्याक्ष का वह पुत्र अन्धकासुर मन्दराचल में स्थित पर्वतराज हिमवान की पुत्री पार्वती के प्रति कामासक्त हो गया था॥९०॥

पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः। ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः॥९१॥

प्राचीनकाल में हजारों गृहस्थ मुनियों ने ईश्वर की आराधना हेतु दारुवन में जाकर तपस्या की थी॥९१॥

१. देह

तदा[1] कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा। अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद्भूतविनाशिनी॥९२॥
समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम्। अयाचन्त क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम्॥९३॥

तभी एक बार काल के दुर्योग से अत्यन्त दुस्तर और प्राणिमात्र को (भूख से) मार देने वाली अति उग्र अनावृष्टि हुई थी। तब सभी क्षुधाकुल मुनिगणों ने एकत्रित होकर तपोनिधि गौतम से अपने प्राणों की रक्षा हेतु भोजन की याचना की थी॥९२-९३॥

स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः। सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा॥९४॥

उन विद्वान् मुनिवर गौतम ने उन सभी मुनियों को पर्याप्त मात्रा में मृष्ट (पका हुआ) भोजन प्रदान किया था। तब उन सभी विप्रों ने निश्चिन्त मन से वहाँ पर भोजन किया था॥९४॥

गते च द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शाङ्करी। बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत्॥९५॥

तब बारह वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद कल्पान्त में होने वाली वर्षा के समान कल्याणकारिणी महावृष्टि हुई थी, जिससे सम्पूर्ण जगत् जैसा [अनावृष्टि से] पहले था, वैसा ही हो गया था॥९५॥

ततः सर्वे मुनिवराः समामन्त्र्य परस्परम्। महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः॥९६॥

तब उन सभी श्रेष्ठ मुनियों ने परस्पर मन्त्रणा करने के बाद महर्षि गौतम से कहा कि अब हम सभी लोग यहाँ से शीघ्र चले जाते हैं॥९६॥

निवारयामास च तान् कञ्चित्कालं यथासुखम्। उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः॥९७॥

तब गौतम ने उनको रोका और यह कहा कि हे पण्डितो! कुछ और अधिक समय तक मेरे घर में सुखपूर्वक अवश्य रहने के पश्चात् ही जावें॥९७॥

ततो मायामयीं सृष्ट्वा कृष्णां गां सर्व एव ते। समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्य महात्मनः॥९८॥

तब उन सभी मुनियों ने एक मायामयी (नकली) कृषकाय गाय की रचना करके उसे महात्मा गौतम मुनि के पास पहुँचा दिया था॥९८॥

सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः। गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा॥९९॥

उन दयालु मुनि गौतम ने उस गाय को देखकर उसकी रक्षा के लिए उत्सुक होकर उसे गोष्ठ में ले जाकर बाँध दिया था, किन्तु गौतम के द्वारा स्पर्श करने मात्र से वह गाय मर गयी थी॥९९॥

स शोकेनाभिसन्तप्तः कार्याकार्यं महामुनिः। न पश्यति स्म सहसा तमृषिं मुनयोऽब्रुवन्॥१००॥
गोवध्येयं द्विजश्रेष्ठ यावत्तव शरीरगा। तावत्तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेव हि॥१०१॥

तब वह महामुनि गौतम शोक-सन्तप्त किंकर्तव्यविमूढ होकर सहसा क्या करूँ क्या न करूँ ऐसा कुछ नहीं समझ पा रहे थे। तब उन मुनियों ने महर्षि दधीचि से कहा कि हे द्विजश्रेष्ठ! जब तक यह गोहत्या आपके शरीर में स्थित है, तब तक आपका अन्न हमें नहीं खाना चाहिए। अतः हम लोग यहाँ से जाते हैं॥१००-१०१॥

एवमुक्त्वा[2] मुनिवरं गौतमं तपसां निधिम्। जग्मुः पापवशं नीता तपश्चर्तुं यथा पुरा॥१०२॥

१. ततः, २. एवमुक्ता

तपोनिधि गौतम से ऐसा कहकर वे सभी पाप के वशीभूत ब्राह्मण पूर्ववत् तपस्या करने चले गये थे॥१०२॥

स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः। केनापि हेतुना ज्ञात्वा शशापातीवकोपतः॥१०३॥
भविष्यन्ति त्रयीबाह्या महापातकिभिः समाः। बभूवुस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः॥१०४॥

उन गौतम मुनि ने किसी प्रमाण से यह ज्ञात कर लिया कि गोहत्या उन मुनियों की माया से हुई है और तब अत्यन्त क्रोध में उनको यह शाप दिया कि वे वेद से बहिष्कृत होकर महापापियों के समान हो जावेंगे। उस शाप से वे ब्राह्मण बार-बार जन्म लेने पर भी वैसे ही होते थे॥१०३-१०४॥

सर्वे सम्प्राप्य देवेशं शङ्करं विष्णुमव्ययम्। अस्तुवन् लौकिकैः स्तोत्रैरुच्छिष्टा इव सर्वगौ॥१०५॥

तब जूठे अन्न के समान (पाप से अपवित्र) उन सभी ब्राह्मणों ने सर्वत्र गमन करने वाले भगवान् शिव तथा अविनाशी विष्णु के पास जाकर उनकी लौकिक स्तोत्रों से स्तुति की थी॥१०५॥

ऊचुर्देवौ[1] महादेवौ भक्तानामार्तिनाशनौ। कामवृत्त्या महायोगौ पापान्नस्त्रातुमर्हतः॥१०६॥

उन ब्राह्मणों ने उन दोनों महान देवों से कहा आप दोनों भक्तों का कष्ट हरने वाले तथा स्वेच्छया महायोगी बने हैं। आप हमें पाप से मुक्त करें॥१०६॥

तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य वृषभध्वजः। किमेतेषां भवेत्कार्यं प्राह पुण्यैषिणामिति॥१०७॥

तब अपने समीप स्थित भगवान् विष्णु को देखकर वृषभध्वज भगवान् शिव ने कहा कि इन पुण्य प्राप्ति की कामना वाले ब्राह्मणों का क्या कार्य हो सकता है॥१०७॥

ततः स भगवान्विष्णुः शरण्यो भक्तवत्सलः। गोपतिं प्राह विप्रेन्द्रानालोक्य प्रणतान् हरिः॥१०८॥
न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽपि शङ्कर। सङ्गच्छते महादेव धर्मो वेदाद्विनिर्बभौ॥१०९॥
तथापि भक्तवात्सल्याद्रक्षितव्या महेश्वर। अस्माभिः सर्व एवैते गन्तारो नरकानपि॥११०॥

तब सबको शरण देने वाले भक्तवत्सल (भक्तों पर कृपा करने वाले) भगवान् विष्णु ने उन विनम्र विप्रेन्द्रों को देखकर पशुपति भगवान् शिव से कहा हे शङ्कर! वेद से बहिष्कृत (वेदाध्ययन रहित) पुरुष के पास लेशमात्र भी पुण्य नहीं होता। हे महादेव! वेद से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है। तथापि हे महेश्वर! हम दोनों भक्तवत्सल (भक्तों पर कृपा करने वाले) हैं। अतः इन नरक में जाने वालों की रक्षा हमको करनी चाहिए॥१०८-११०॥

तस्माद्धि वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम्। विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज॥१११॥

अतः हे वृषध्वज! इन वेदबाह्य (वेद से बहिष्कृत) पापियों की रक्षा हेतु हम इनको मोहित (अर्थात् भ्रमित) करने वाले शास्त्रग्रन्थों की रचना करेंगे॥१११॥

एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा। चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः॥११२॥

मुर नामक राक्षस के शत्रु माधव-विष्णु के द्वारा इस प्रकार प्रेरित किये जाने पर भगवान् शिव ने

१. देवदेवौ

और शिव के द्वारा प्रेरित किये जाने पर भगवान् विष्णु ने भी मोहित अर्थात् मति-भ्रम करने वाले शास्त्रों की रचना की थी॥११२॥

कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्। पाञ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः॥११३॥
सृष्ट्वा तानूचतुर्देवौ कुर्वाणाः शास्त्रचोदितम्। पतन्तो नरके घोरे बहून् कल्पान् पुनः पुनः॥११४॥
जायन्तो मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः। ईश्वराराधनबलाद्गच्छध्वं सुकृताङ्गतिम्।
वर्तध्वं मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि वः॥११५॥

उन दोनों देवों ने कापाल (कापालिक), नाकुल (नकुलीश सम्बन्धी), वाम (वाममार्ग विषयक), भैरव सम्बन्धी, पूर्व और पश्चिम सम्बन्धी, पाञ्चरात्र, पाशुपत तथा अन्य भी सहस्रों प्रकार के शास्त्रों की रचना की थी। तब शिव और विष्णु दोनों ही देवों ने उन ब्राह्मणों से कहा कि आप लोग उपर्युक्त शास्त्रों में विहित कर्मों को करने के कारण बहुत कल्पों तक बार-बार घोर नरक में गिरते रहेंगे और कालान्तर में पाप समूह के नष्ट हो जाने पर आप लोग मनुष्य योनि में जन्म लेकर ईश्वर की आराधना के पुण्य बल से पुण्यात्माओं की जो गति होती है, उसी गति को प्राप्त करोगे। आप लोग मेरी कृपा से ऐसा ही करें। इसके अतिरिक्त आप लोगों की अन्य कोई निष्कृति (प्रायश्चित्त) संभव नहीं है॥११३-११५॥

एवमीश्वरविष्णुभ्यां चोदितास्ते महर्षयः। आदेशं प्रत्यपद्यन्त शिवस्यासुरविद्विषः॥११६॥

इस प्रकार भगवान् शिव और विष्णु के द्वारा प्रेरित किये जाने पर उन महर्षि द्विजों ने दोनों देवों-शिव और विष्णु के आदेश का पालन किया था॥११६॥

चक्रुस्तेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रताः पुनः। शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वा फलानि च॥११७॥

उन महर्षियों ने तत्तत् ग्रन्थों के अध्ययन में निरत होकर (कापालिक लकुलीश आदि तथा पाञ्चरात्र, पाशुपत आदि से सम्बन्धित) अन्य शास्त्रों की भी रचना की थी और उनके अध्ययन से अभीष्ट फल प्राप्ति दिखलाकर शिष्यों को भी उनका अध्ययन कराया था॥११७॥

मोहयन्[1] स इमं लोकमवतीर्य महीतले। चकार शङ्करो भिक्षां हितायैषां द्विजैः सह॥११८॥

तब भगवान् शिव (मन्दराचल से) उतर कर इस लोक में आकर उन द्विजों के हित में उनके साथ मिलकर भिक्षाटन करने लगे थे॥११८॥

कपालमालाभरणः प्रेतभस्मावगुण्ठितः। विमोहयँल्लोकमिमं जटामण्डलमण्डितः॥११९॥

मुण्डों की माला को आभूषण रूप में धारण कर तथा चिता की भस्म का शरीर में लेपन करके और जटाजूट से शिर को अलंकृत करके वह शिव इस भूलोक [के मनुष्यों] को मोहित अर्थात् वशीभूत कर रहे थे॥११९॥

निक्षिप्य पार्वतीं देवीं विष्णावमिततेजसि। नियोज्य भगवान्रुद्रो भैरवं दुष्टनिग्रहे॥१२०॥

भगवान् शिव ने देवी पार्वती को अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु के समीप (संरक्षण में) रखा था और दुष्टों के दमन हेतु वहाँ भैरव को नियुक्त किया था॥१२०॥

---

१. मोहयन्त

दत्त्वा नारायणे देवीं नन्दिनं कुलनन्दिनम्। संस्थाप्य तत्र गणान् देवानिन्द्रपुरोगमान्॥१२१॥

भगवान् शिव ने देवी पार्वती को नारायण विष्णु के संरक्षण में देने के बाद कुलनन्दिन नन्दी तथा इन्द्र आदि देवों और अपने गणों को भी उस देवी की रक्षा हेतु वहाँ रखा था॥१२१॥

प्रस्थिते च महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम्। स्त्रीरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम्॥१२२॥

महादेव शिव के प्रस्थानोपरान्त स्वयं विश्वमूर्ति भगवान् विष्णु स्त्री का रूप धारण करके नियत (सावधन) होकर महेश्वरी पार्वती की सेवा करने लगे थे॥१२२॥

ब्रह्मा हुताशनः शक्रो यमोऽन्ये सुरपुङ्गवाः। सिषेविरे महादेवीं स्त्रीरूपं शोभनं गताः॥१२३॥

ब्रह्मा, अग्निदेव, इन्द्र, यम तथा अन्य प्रमुख देवता भी सुन्दर स्त्रियों का रूप धारण करके महादेवी पार्वती की सेवा करते थे॥१२३॥

नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवल्लभः। द्वारदेशे गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत॥१२४॥

भगवान् शिव के अत्यन्त प्रिय गणाध्यक्ष नन्दीश्वर भी पूर्ववत् प्रवेश द्वार में सजग होकर रहते थे॥१२४॥

एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मतिः। आहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम्॥१२५॥

इसी अन्तराल में अन्धकासुर नामक दुष्ट बुद्धि दैत्य पार्वती का अपहरण करने की इच्छा से मन्दराचल में आया था॥१२५॥

सम्प्राप्तमन्धकं दृष्ट्वा शङ्करः कालभैरवः। न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हरः॥१२६॥

अन्धकासुर को आया हुआ देखकर कालरूपधारी अतुल पराक्रमशाली शंङ्कर स्वरूप कालभैरव ने उसे रोका था॥१२६॥

तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्। शूलेनोरसि तं दैत्यमाजघान वृषध्वजः॥१२७॥

तब उन दोनों में अति भंयकर और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था। वृष-चिह्नांकित ध्वजा वाले कालभैरव ने उस दैत्य के वक्षस्थल में शूल से प्रहार किया था॥१२७॥

ततः सहस्रशो दैत्यः ससर्जान्धकसंज्ञितान्। नन्दीश्वरादयो दैत्यैरन्धकैरभिनिर्जिताः॥१२८॥

तब उस दैत्य अन्धकासुर ने हजारों अन्धक नामक दैत्यों की सृष्टि की थी। उन अन्धकसंज्ञक दैत्यों ने नन्दीश्वर आदि गणों को पराजित कर दिया था॥१२८॥

घण्टाकर्णो मेघनादश्चण्डेशश्चण्डतापनः। विनायको मेघवाहः सोमनन्दी च वैद्युतः॥१२९॥

सर्वेऽन्धकं दैत्यवरं सम्प्राप्यातिबलान्विताः। युयुधुः शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वधैः॥१३०॥

घण्टाकर्ण, मेघनाद, चण्डेश, चण्डतापन, विनायक, मेघवाह, सोमनन्दी तथा वैद्युत (?) आदि सभी बलशाली शिव के गणों ने जाकर दैत्यराज अन्धकासुर के साथ त्रिशूल, शक्ति (भाला, बर्छी), ऋष्टि (तलवार), गिरिकूट (पर्वत-शिखर) तथा परशु संज्ञक अस्त्रों से युद्ध किया था॥१२९-१३०॥

भ्रामयित्वा तु हस्ताभ्यां गृहीत्वा चरणद्वयम्। दैत्येन्द्रेणातिबलिना क्षिप्तास्ते शतयोजनम्॥१३१॥

उस अतिबलशाली दैत्यराज ने उन सभी के दोनों पैरों को पकड़ कर उनको आकाश में घुमाकर सौ योजन दूर फेंक दिया था॥१३१॥

ततोऽन्धकनिसृष्टा ये शतशोऽथ सहस्रशः। कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवञ्चाभिदुद्रुवुः॥१३२॥

तदनन्तर उस अन्धकासुर के द्वारा सृजित सैकड़ों किं वा हजारों प्रलयकालीन सूर्य के समान विनाशकारी दैत्य भैरव पर आक्रमण के लिए दौड़ पड़े थे॥१३२॥

हा हेति शब्दः सुमहान् बभूवातिभयङ्करः। युयुधे भैरवो देवः शूलमादाय भीषणम्॥१३३॥

तब वहाँ अत्यन्त भंयकर हाहाकार की ध्वनि हो रही थी। वहाँ भैरव नामक उन रुद्र ने भंयकर शूल को हाथ में लेकर युद्ध किया था॥१३३॥

दृष्ट्वान्धकानां सुबलं दुर्जयन्निर्जितो हरः। जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम्॥१३४॥

अन्धकों की अपराजेय सेना को देखकर भयभीत और पराजित होकर वह भैरव वहाँ से सर्वशक्तिमान अजर अमर भगवान् वासुदेव विष्णु की शरण में गये थे॥१३४॥

सोऽसृजद्भगवान्विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम्। देवीपार्श्वस्थितो देवो विनाशाय सुरद्विषाम्॥१३५॥

तब देवी पार्वती के समीपस्थ उन भगवान् विष्णु ने उन देवों के शत्रुओं के विनाश हेतु उत्तम कोटि की एक सौ देवियों की सृष्टि की थी॥१३५॥

तदान्धकसहस्रन्तु देवीभिर्यमसादनम्। नीतं केशवमाहात्म्याल्लीलयैव रणाजिरे॥१३६॥

तब भगवान् विष्णु की महिमा से उन देवियों ने उन हजारों अन्धकों को उस युद्ध के प्रांगण में सरलता से यमलोक में पहुँचा दिया था॥१३६॥

दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्धकोऽपि महासुरः। पराङ्मुखो रणात्तस्मात्पलायत महाजवः॥१३७॥

अपनी सेना की पराजय को देखकर वह महादैत्य अन्धकासुर उस युद्ध से पराङ्मुख होकर तीव्रगति से पलायित हो गया था॥१३७॥

ततः क्रीडां महादेवः कृत्वा द्वादशवार्षिकीम्। हिताय लोके भक्तानामाजगामाथ मन्दरम्॥१३८॥

तभी इस लोक में भक्तों के हित के लिए बारह वर्ष तक क्रीड़ा करते हुए विचरण करने के पश्चात् महादेव शिव मन्दर पर्वत में लौट आये थे॥१३८॥

सम्प्राप्तमीश्वरं ज्ञात्वा सर्व एव गणेश्वराः। समागम्योपतिष्ठन् तं भानुमन्तमिव द्विजाः॥१३९॥

भगवान् शिव के मन्दर पर्वत में आगमन का समाचार जान कर सभी गणेश्वर भी उनके समीप उसी प्रकार एकत्रित हो गये थे जैसे कि सूर्योदय होने पर द्विजगण उनकी उपासना हेतु जाते हैं॥१३९॥

प्रविश्य भवनं पुण्यमयुक्तानां दुरासदम्। ददर्श नन्दिनं देवं भैरवं केशवं शिवः॥१४०॥

तब भगवान् शिव ने अपने उस पवित्र भवन में प्रवेश किया जिसमें प्रवेश पाना योगी जनों के अतिरिक्त अन्य जनों के लिए असंभव है। वहाँ भगवान् शिव ने नन्दिकेश्वर, भैरव और विष्णु को देखा॥१४०॥

प्रणामप्रवणं देवं सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम्। प्रीत्यैनं पूर्वमीशानः केशवं परिषस्वजे॥१४१॥

तब भगवान् शिव ने प्रणाम करने के लिए विनत (झुके हुए) देव नन्दिकेश्वर के ऊपर कृपा करके भगवान् विष्णु का प्रेम पूर्वक आलिङ्गन किया था॥१४१॥

दृष्ट्वा देवी महादेवं प्रीतिविस्फारितेक्षणाम्। ननाम[1] शिरसा तस्य पादयोरीश्वरस्य सा॥१४२॥

अपने पति महादेव को देखकर प्रीति से विकसित नेत्रों वाली पार्वती ने उनके चरणों में शिर झुका कर प्रणाम किया था॥१४२॥

न्यवेदयज्जयं तस्मै शङ्करायाथ शङ्करः। भैरवो विष्णुमाहात्म्यं प्रणतः पार्श्वगोऽभवत्॥१४३॥

तब पास में ही आकर भैरव नामक रुद्र ने भगवान् शिव को प्रणाम करके अन्धकासुर पर विजय के वृत्तान्त सहित भगवान् विष्णु की महत्ता का भी निवेदन किया था॥१४३॥

श्रुत्वा तद् विजयं शम्भुर्विक्रमं केशवस्य च। समास्ते भगवानीशो देव्या सह वरासने॥१४४॥

उस अन्धकासुर पर विजय का तथा भगवान् विष्णु के पराक्रम का समाचार सुनने के बाद भगवान् शिव देवी पार्वती के साथ सुन्दर आसन पर बैठ गये थे॥१४४॥

ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः। आजग्मुर्मन्दरंद्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम्॥१४५॥

तब सभी देवगण और मरीचि आदि द्विज भी देवाधिदेव भगवान् शिव के दर्शन हेतु मन्दराचल में आ पहुँचे थे॥१४५॥

येन तद्विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम्। समागतं दैत्यसैन्यमीशदर्शनकांक्षया॥१४६॥

कुछ समय पहले जिन सौ देवियों ने दैत्य अन्धकासुर की सेना पर विजय प्राप्त की थी वे भी भगवान् शिव के दर्शन की कामना से वहाँ आ गयी थी॥१४६॥

दृष्ट्वा वरासनासीनं देव्या चन्द्रविभूषणम्। प्रणेमुरादराद्देव्यो गायन्ति स्मातिलालसाः॥१४७॥

चन्द्रमा रूपी आभूषण से अलंकृत भगवान् शिव को देवी पार्वती के साथ सुन्दर आसन में बैठे हुए देखकर उन देवियों ने उन्हें सादर प्रणाम किया तथा अतीव सुन्दर लय में गायन किया था॥१४७॥

प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपार्श्वे पिनाकिनः। देवासनगतां देवीं नारायणमनोमयीम्॥१४८॥

भगवान् शिव के वाम पार्श्व (बांयीं ओर) में उनके साथ सुन्दर आसन में बैठी हुई नारायणमयी देवी पार्वती को भी उन देवियों ने प्रणाम किया था॥१४८॥

दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्यो नारायणं तथा। प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वराङ्गनाः॥१४९॥

उन देवियों ने सिंहासन पर बैठे हुए नारायण विष्णु को देखकर उन्हें प्रणाम किया और तब उन दिव्याङ्गनाओं ने भगवान् शिव से पूछा॥१४९॥

कन्या ऊचुः

कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयं बालारविप्रभा। कोऽन्वयं भाति वपुषा पङ्कजायतलोचनः॥१५०॥

कन्याएँ बोली- अपनी कान्ति से प्रकाशमान आप कौन हैं? और प्रभातकाल में उदीयमान सूर्य के समान कान्तिवाली यह देवी कौन है? विकसित कमल के समान नेत्रों वाले और अपने शरीर से शोभायमान यह देव कौन हैं?॥१५०॥

निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहनः। व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्ययः॥१५१॥

१. प्रणतः

अयं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी। विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः॥१५२॥

उन देवियों के वचन सुनकर श्रेष्ठ वृषभ नन्दी जिनका वाहन है, ऐसे वे महायोगी भगवान् शिव यह बोले- यह नारायण विष्णु हैं और यह सनातनी देवी जगत् की माता पार्वती हैं। यह देव विष्णु स्वयं को अनेक रूपों में विभक्त करके प्रकट हुए हैं॥१५१-१५२॥

न मे विदुः परं तत्त्वं देव्याश्च न महर्षयः। एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च॥१५३॥

मेरे परम तत्त्व को महर्षिगण भी नहीं जानते। एकमात्र यह विश्वात्मा विष्णु और देवी भवानी ही (मेरे परम तत्त्व को) जानती हैं॥१५३॥

अहं हि निस्पृहः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः। मामेव केशवं प्राहुर्लक्ष्मीं देवमथाम्बिकाम्॥१५४॥

मैं निष्काम, शान्त, केवल (अद्वितीय), और परिग्रह रहित (अकिञ्चन) हूँ। मुझको ही लोग केशव (विष्णु) कहते हैं और अम्बिका (पार्वती) को लक्ष्मी कहते हैं। (अर्थात् मेरे में और विष्णु में तथा पार्वती और लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं है- ऐसा भगवान् शिव का कथन है)॥१५४॥

एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च। कर्ता कारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥१५५॥

यह भगवान् विष्णु ही सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, सृष्टि के कारण तथा कार्य भी हैं। यह कर्ता, कार्य को करवाने वाले तथा भोग और मोक्ष को देने वाले भी हैं॥१५५॥

भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्ता कालरूपधृक्। स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः॥१५६॥
कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायणोऽव्ययः। तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम्॥१५७॥

यह भगवान् विष्णु ही भोक्ता, परम पुरुष, अप्रमेय (असीम), संहारकर्ता तथा काल-स्वरूप भी हैं। यह सृष्टिकर्ता, उस सृष्टि के रक्षक, वासुदेव, विश्व के आत्मा-स्वरूप तथा विश्वतोमुख[1] (सम्पूर्ण विश्व ही जिनका मुख है), कूटस्थ (सर्वोच्च पदस्थ), अक्षर (अविनाशी), सर्वव्यापी, योगी, नारायण, तारक (रक्षक) परम-पुरुष, आत्मा (परमात्मा), केवल (अद्वितीय), और पदम-पद स्वरूप हैं॥१५६-१५७॥

सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना। शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः॥१५८॥

यह माहेश्वरी (पार्वती, गौरी), मेरी निरञ्जन (शुद्ध, निष्कलंक) शक्ति है। श्रुति (वेद) में इनको शान्त स्वभाव वाली, सत्य-स्वरूपा, सदानन्दा (सदैव आनन्दित) और परम-पद रूपा कहा गया है॥१५८॥

अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति। एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः॥१५९॥

इन्हीं देवी से इस सम्पूर्ण सृष्टि का आविर्भाव हुआ है और इन्हीं देवी में इसका लय भी होगा। यह देवी सभी प्राणियों की गतियों में उत्तमगति देने वाली हैं॥१५९॥

तयाहं सङ्गतो देव्या केवलो निष्कलः परः। पश्याम्यशेषमेवाहं परमात्मानमव्ययम्॥१६०॥

इन्हीं देवी पार्वती के साथ मिलकर मैं केवल (अद्वितीय), निष्कल (कला-रहित) तथा परमस्वरूप होने पर भी इस सम्पूर्ण जगत् को देखता हूँ। इस तथ्य को जो जानता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है॥१६०॥

१. द्रष्टव्य- विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो (इत्यादि) वाजसनेयी संहिता १७/१९

तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम्। एकमेव विजानीथ ततो यास्यथ निर्वृतिम्॥१६१॥

अतः अनादि, अद्वैत विष्णु और आत्मस्वरूप ईश्वर-शिव को एक ही (अर्थात् एक-दूसरे से अभिन्न) समझो। इस प्रकार की भावना करने से सुख-शान्ति प्राप्त होगी॥१६१॥

मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयान्विताः। ये भिन्नदृष्ट्या चेशानं पूजयन्तो न मे प्रियाः॥१६२॥

जो श्रद्धालु जन अव्यक्त आत्मा-स्वरूप भगवान् विष्णु को (शिव से) भिन्न मान कर शिव की पूजा करते हैं, वह मेरे प्रिय नहीं हैं- (यह स्वयं शिव का कथन है)॥१६२॥

द्विषन्ति ये जगत्सूतिं मोहिता रौरवादिषु। पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि॥१६३॥

मोहवश जगत् के जनक भगवान् विष्णु से द्वेष करने वाले मनुष्य रौरव आदि नरकों में सैकड़ों करोड़ वर्षो तक यातना भोगते रहने पर भी वहाँ से मुक्त नहीं हो पाते हैं॥१६३॥

तस्मादशेषभूतानां रक्षको विष्णुरव्ययः। यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः॥१६४॥

अतः सम्पूर्ण प्राणियों के रक्षक अविनाशी भगवान् विष्णु को यथावत् (सम्यक् रूप से) जानकर उन प्रभु का सभी विपत्तियों में ध्यान करना चाहिए॥१६४॥

श्रुत्वा भगवतो वाक्यं देवाः सर्वे गणेश्वराः। नेमुर्नारायणं देवं देवीं च हिमशैलजाम्॥१६५॥

प्रार्थयामासुरीशाने भक्तिं भक्तजनप्रिये। भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे॥१६६॥

भगवान् शिव के वचन सुनकर सभी देवों और गणेश्वरों ने उन प्रभु नारायण को तथा हिमवान् की पुत्री देवी पार्वती को प्रणाम किया था और उन्होंने भक्तजनों के प्रिय भगवान् शिव तथा पार्वती के चरण-कमलों तथा नारायण विष्णु के चरण-कमलों में भक्ति हेतु प्रार्थना की थी॥१६५-१६६॥

ततो नारायणं देवं गणेशा मातरोऽपि च। न पश्यन्ति जगत्सूतिं तदद्भुतमिवाभवत्॥१६७॥

तभी गणेश्वरों और मातृगणों ने भी वहाँ पर जगत् को उत्पन्न करने वाले देव नारायण को नहीं देखा। यह अद्भुत सी घटना हुई थी॥१६७॥

तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्धको मन्मथार्दितः[1]। मोहितो गिरिजां देवीमाहर्तुं गिरिमाययौ॥१६८॥

उसी समय कामवासना से भ्रष्ट-बुद्धि वाला महादैत्य अन्धकासुर देवी पार्वती का अपहरण करने हेतु उस मन्दर पर्वत पर आ पहुँचा था॥१६८॥

अथानन्तवपुः श्रीमान्योगी नारायणोऽमलः। तत्रैवाविरभूद् दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तमः॥१६९॥

तब अनन्त शरीरों वाले निर्मल योगी श्रीमान् नारायण पुरुषोत्तम विष्णु भी दैत्यों के साथ युद्ध हेतु वहीं पर प्रकट हो गये थे॥१६९॥

कृत्वाथ पार्श्वे भगवन्तमीशो युद्धाय विष्णुं गणदेवमुख्यैः।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः स कालरुद्रोऽपि जगाम देवः॥१७०॥

तदनन्तर कालाग्नि रुद्र स्वरूपी शिव ने भगवान् विष्णु को अपने पार्श्व (बगल) में लेकर प्रमुख गणेश्वरों, शिलाद के पुत्र नन्दी और मातृकाओं सहित युद्ध के लिए प्रस्थान किया था॥१७०॥

१. मन्मथान्धकः

त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात्।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः॥१७१॥

अपने हाथ में अग्नि के समान तीक्ष्ण त्रिशूल को लेकर भगवान् शिव युद्ध हेतु सबसे आगे चल रहे थे और उनके पीछे प्रमुख गणेश्वर तथा सहस्त्रों भुजाओं वाले भगवान् विष्णु चल रहे थे॥१७१॥

रराज मध्ये भगवान् सुराणां विवाहनो वारिजपर्णवर्णः।
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढस्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः॥१७२॥

कमल-दल सदृश वर्ण वाले एवं 'वि-वाहन' अर्थात् पक्षिराज गरुड वाहन वाले भगवान् विष्णु देवताओं के मध्य में सुमेरु पर्वत के शिखर पर आरूढ एवं तीन लोकों के नेत्र स्वरूप सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे॥१७२॥

जगत्यनादि[1]-र्भगवानमेयो हरः सहस्राकृतिराविरासीत्।
त्रिशूलपाणिर्गगने सुघोषः पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः॥१७३॥

उस युद्ध क्षेत्र में इस जगत् के अनादि, अनुपम, और त्रिशूलधारी भगवान् शिव सहस्र स्वरूपों में प्रकट हो गये थे। तब आकाश में जयघोष होने लगा था और उन देवाधिदेव पर पुष्पवृष्टि होने लगी थी॥१७३॥

समागतं वीक्ष्य गणेशराजं समावृतं देवरिपुर्गणेशैः।
युयोध शक्रेण समातृकाभिर्गणैरशेषैरमरप्रधानैः॥१७४॥

गणेश्वरों के द्वारा चारों ओर से घिरे हुए उन सभी गणेश्वरों के अधिपति (भगवान् शिव) को आते हुए देखकर वह देवों का शत्रु अन्धकासुर (उस युद्ध क्षेत्र में पूर्वतः आये हुए) इन्द्र तथा मातृकाओं तथा सभी गणों (शिव के गणों) एवं अन्य प्रमुख देवों के साथ युद्ध करने लगा था॥१७४॥

विजित्य सर्वानपि बाहुवीर्यात्स संयुगे शम्भुमनन्तधाम।
समाययौ यत्र स कालरुद्रो विमानमारुह्य विहीनसत्त्वः॥१७५॥

उन सभी को युद्ध में अपने बाहुबल से पराजित करके वह सत्त्वविहीन अन्धकासुर विमान में आरूढ होकर अनन्त तेजस्वी कालरुद्र स्वरूप देवाधिदेव शिव के पास जाने लगा था॥१७५॥

दृष्ट्वान्धकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः। व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम्॥१७६॥
हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धकं लोककण्टकम्। त्वामृते भगवन्[2] शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते॥१७७॥

अन्धकासुर को आता हुआ देख कर गरुडध्वज (जिनकी ध्वजा में गरुड अंकित था) भगवान् विष्णु ने भस्म से विभूषित देह वाले भैरव[3] स्वरूप महादेव शिव से यह कहा- हे भगवान्! सम्पूर्ण लोकों के लिए कण्टक स्वरूप इस दैत्यराज का वध आप ही कर सकते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इसका वध करने में समर्थ नहीं है॥१७६-१७७॥

---

१. जयन्ननादि, २. भगवान्, ३. भैरव (शिव का एक स्वरूप) का अर्थ 'भयानक' है।

त्वं हर्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः। स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्भिर्विचक्षणैः॥१७८॥

आप सभी लोकों के संहारकर्ता, कालरूपी आत्मा वाले ईश्वर स्वरूप हैं। वेद के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा विविध वेद-मन्त्रों से आपकी ही स्तुति की जाती है॥१७८॥

स वासुदेवस्य वचो निशम्य भगवान् हरः। निरीक्ष्य विष्णुं हनने दैत्येन्द्रस्य मतिं दधौ॥१७९॥

तब उन भगवान् वासुदेव विष्णु के वचन को सुनकर भगवान् शिव ने उनकी ओर देखकर दैत्यराज अन्धक के वध का निश्चय किया था॥१७९॥

जगाम देवतानीकं गणानां हर्षवर्द्धनम्। स्तुवन्ति भैरवं देवमन्तरिक्षचरा जनाः॥१८०॥

वह गणों की प्रसन्नता (और उत्साह) की वृद्धि करते हुए देवों की सेना के पास गये। उस समय अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले [सिद्ध आदि देव] उन भगवान् भैरव-शिव की इस प्रकार स्तुति करने लगे थे॥१८०॥

जयानन्त महादेव कालमूर्ते सनातन। त्वमग्निः सर्वभूतानामन्तश्चरसि[1] सर्वगः॥१८१॥

हे अनन्त! हे कालमूर्ति! हे सनातन महादेव! आपकी जय हो। आप सर्वत्रगामी हैं और अग्नि रूप बनकर नित्यमेव सभी प्राणियों के अन्दर विचरण करते हैं॥१८१॥

त्वमन्तको लोककर्ता त्वं धाता हरिरव्ययः। त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम्॥१८२॥

आप यज्ञ-स्वरूप हैं, आप वषट्कार हैं। आप धाता (सृष्टिकर्ता) और अविनाशी विष्णु-स्वरूप हैं। आप ही ब्रह्मा हैं, महादेव हैं, आप परम धाम और परम पद हैं॥१८२॥

ओङ्कारमूर्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः। महाविभूतिर्देवेशो जयानन्त जगत्पते॥१८३॥

आप मूर्तिमान् ओङ्कार हैं, योगात्मा, वेदत्रयी रूपी नेत्र वाले त्रिलोचन हैं। आप महा-विभूति रूप, देवों के स्वामी हैं। हे अशेष (सम्पूर्ण) जगत् के स्वामी! आपकी जय हो॥१८३॥

ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वान्धकमीश्वरः। त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त सतां गतिः॥१८४॥

तब सज्जनों के रक्षक कालाग्नि रुद्र स्वरूपी भगवान् शिव उस अन्धकासुर को पकड़ कर उसे त्रिशूल के अग्रभाग (नोक) में रखकर नृत्य करने लगे थे॥१८४॥

दृष्ट्वान्धकं देवगणाः शूलप्रोतं पितामहः। प्रणेमुरीश्वरं देवं भैरवं भवमोचनम्॥१८५॥

त्रिशूल में पिरोकर टांगे गये अन्धकासुर को देखकर देवगणों और पितामह ब्रह्मा ने भव-बन्धन से मुक्त करने वाले एवं भैरव रूप वाले देवेश्वर शिव को प्रणाम किया था॥१८५॥

अस्तुवन्मुनयः सिद्धा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः। अन्तरिक्षेऽप्सरः सङ्घा नृत्यन्ति स्म मनोहराः॥१८६॥

तब मुनियों और सिद्धजनों ने शिव की स्तुति की थी, गन्धर्वो ने गीत गाये थे और अन्तरिक्ष में अप्सरागणों ने मनोहर नृत्य किया था॥१८६॥

संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्बिषः। उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम्॥१८७॥

१. मन्तस्तिष्ठसि

त्रिशूल के अग्रभाग (नोक) में स्थापित (अर्थात् टांगे हुए) अन्धकासुर ने अपने पाप के भस्म हो जाने पर और सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर परमेश्वर शिव की स्तुति की थी॥१८७॥

अन्धक उवाच

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं समाहितो यं विदुरीशतत्त्वम्।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं कालं कविं योगवियोगहेतुम्॥१८८॥

अन्धकासुर ने कहा- मैं मस्तक झुका कर उन एकमात्र भगवान् शिव को नमस्कार करता हूँ जिनके ईश्वरीय तत्त्व को एकाग्र चित्त वाले भक्त ही जानते हैं, जो (परमात्मा शिव) पुरातन, अत्यन्त पवित्र, अनन्त रूपों वाले, काल संज्ञा वाले, कवि, संयोग और वियोग के हेतु हैं॥१८८॥

दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम्।
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम्॥१८९॥

विकराल (भयानक) दाढों वाले, आकाश में नृत्य करने वाले, अग्नि सदृश्य दीप्तिमान मुख वाले, जाज्वलमान (दहकते हुए) सूर्य के समान, सहस्र चरणों, सहस्र नेत्रों तथा सहस्र शिरों वाले आप अद्वितीय भगवान् रुद्र को मैं प्रणाम करता हूँ॥१८९॥

जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे विभागहीनामलतत्त्वरूप।
त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यो बाह्यादिभेदैरखिलात्मरूपः॥१९०॥

देवों के द्वारा पूजित चरण-कमलों वाले, अविभाज्य (जिनका विभाजन असंभव हो), निर्मल तत्त्व स्वरूप वाले आपकी जय हो। आप वस्तुतः एक (अद्वितीय) हैं और अखिल जगत् की आत्मा-स्वरूप हैं। तथापि अग्नि, वायु आदि नाना भेदों (रूपों) में स्थित होने से आप अनेकधा पूजे जाते हैं॥१९०॥

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं त्वमन्तको योगिगणानुजुष्टः॥१९१॥

आपको ही एकमात्र पुराण-पुरुष (प्राचीनतम देवता) कहा गया है। आप अन्धकार (माया रूपी अन्धकार) से परे सूर्य के समान देदीप्यमान वर्ण वाले हैं। आप इस सम्पूर्ण जगत् को देखते हैं और निरन्तर इसका पालन भी करते हैं और इसका संहार (अन्त) भी करते हैं। योगियों के समूह के द्वारा आपकी आराधना की जाती है॥१९१॥

एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः।
त्वमात्मतत्त्वं परमात्माभूतं[1] भवन्तमाहुः शिवमेव केचित्॥१९२॥

आप एक अन्तरात्मा होने पर भी तथा किसी देह (शरीर) आदि से विशेष आसक्ति रहित होने पर भी अनेक शरीरों में विभिन्न रूपों में स्थित हैं। आप आत्मतत्त्व रूपी हैं, आप ही परमात्मा हैं। कुछ लोगों ने आपको ही शिव कहा है॥१९२॥

---

१. परमात्मशब्दं

त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूपं प्रणवाभिधानम्।
त्वमीश्वरो वेदपदेषु सिद्धः[1] स्वयंप्रभो[2]ऽशेषविशेषहीनः॥१९३॥

हे प्रभो! आप अविनाशी, परम पवित्र, आनन्दरूप तथा ओंकार शब्द से कहे जाने वाले परम ब्रह्म हैं। आप वेद-वचनों में ईश्वर शब्द से प्रसिद्ध हैं। हे प्रभो! आप समस्त विशेषताओं से रहित (परे) हैं॥१९३॥

त्वमिन्द्ररूपो वरुणाग्निरूपो हंसः प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञः।
प्रजापतिर्भगवानेकरुद्रः नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्भिः॥१९४॥

वेद के ज्ञाताओं के द्वारा अनेकत्र इन्द्र रूप में, वरुण रूप में, अग्नि रूप में तथा हंस, प्राण, मृत्यु, अन्त एवं यज्ञ रूप में, प्रजापति, भगवान् एक रुद्र और नीलग्रीव रूप में आपकी स्तुति की गयी है॥१९४॥

नारायणस्त्वं जगतामनादिः पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि॥१९५॥

आप जगत् के आदि पुरुष नारायण हैं, आप ही पितामह और प्रपितामह हैं। वेदान्त दर्शन में तथा गुह्य उपनिषदों में आपको ही सदाशिव और परमेश्वर कहा गया है॥१९५॥

नमः परस्तात् तमसः परस्मै[3] परात्मने पञ्चनवात्ममे च[4]।
त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय॥१९६॥

तमोगुण से परे, परम पुरुष, परमात्मा चतुर्दश लोकों के आत्मा स्वरूप, तीनों शक्तियों से परे, निरञ्जन (निष्कलंक) एवं सहस्रशक्तियों से युक्त आसन में स्थित परमात्मा शिव को नमस्कार है॥१९६॥

त्रिमूर्तयेऽनन्तपदात्ममूर्तये जगन्निवासाय जगन्मयाय।
नमो जनानां हृदि संस्थिताय फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥१९७॥

तीन देवों की मूर्ति (त्रिमूर्ति) स्वरूप, अनन्त पदों (चरणों) वाले, आत्ममूर्ति, सम्पूर्ण जगत् में निवास करने वाले, जगत-स्वरूप, सभी मनुष्यों के हृदय में निवास करने वाले, नागराज को हार रूप में धारण करने वाले आपको नमस्कार है॥१९७॥

मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्म ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय।
नमः परान्ताय भवोद्भवाय सहस्रचन्द्रार्कसहस्रमूर्ते॥१९८॥

मुनीश्वरों और सिद्धजनों के द्वारा जिनके चरण-कमलों की उपासना की जाती है, जो ऐश्वर्य और धर्म रूपी आसन पर विराजमान होते हैं, जो परमोत्कृष्ट हैं और जगत् की सृष्टिकर्ता हैं, ऐसे परमात्मा! आपको नमस्कार है॥१९८॥

नमोस्तु सोमाय सुमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यबाहो।
नमोऽग्निचन्द्रार्कविलोचनाय नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय॥१९९॥

सुन्दर कटि (कमर) वाले सोम (चन्द्रमा? अथवा उमा सहित भगवान् शिव) को नमस्कार है। हे

१. वेदविदां प्रसिद्धः, २. स्वायंभुवो, ३. नमः परस्मै तमसः परस्तात् ४. पञ्चनवान्तराय

'हिरण्यबाहु' देव! आपको नमस्कार है। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य रूपी नेत्रों वाले, अम्बिका (पार्वती) के पति, मृड नाम वाले भगवान् शिव को नमस्कार है॥१९९॥

नमोऽस्तु गुह्याय गुहान्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय॥२००॥

जो गुह्य (गोपनीय) हैं, गुहान्तर्गत हैं, जिनको वेदान्त के विशिष्ट ज्ञान से निश्चित किया गया है, जो त्रिकाल से परे और शुद्ध तेजोमय आवास वाले हैं, ऐसे महेश्वर को नमस्कार है। शिव जी को नमस्कार है॥२००॥

एवं स्तुतः स भगवान् शूलाग्राादवतार्य तम्। तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा च परमेश्वरः॥२०१॥
प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेन साम्प्रतम्। सम्प्राप्य गाणपत्यं मे सन्निधाने सदा वस॥२०२॥

अन्धकासुर के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किये जाने पर प्रसन्न हुए भगवान् शिव ने उसे त्रिशूल से उतार कर उसके शिर पर अपने हाथ का स्पर्श करते यह कहा कि हे दैत्य तुम्हारे द्वारा की गयी इस स्तुति से मैं अब सर्वथा (पूर्ण रूप से) प्रसन्न हूँ। अब तुम गणेश्वर बन कर सदा मेरे सान्निध्य में रहो॥२०१-२०२॥

अरोगश्छिन्नसंदेहो देवैरपि सुपूजितः। नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः॥२०३॥

अब तुम निरोगी, संशय-रहित और सभी दुःखों से रहित होकर नन्दीश्वर के अनुचर (सेवक) बन कर यहाँ रहो॥२०३॥

एवं व्याहृतमात्रे तु गणेश्वराश्च[1] देवताः। ददृशुस्तं महादैत्यमन्धकं देवसन्निधौ॥२०४॥
सहस्रसूर्यसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिह्नितम्। नीलकण्ठं जटामौलिं शूलासक्तमहाकरम्॥२०५॥

भगवान् शिव के ऐसा कहते ही वहाँ पर स्थित गणेश्वरों और देवों ने शिव के समीप स्थित उस दैत्य को हजारों सूर्यों के समान दीप्तिमान, तीन नेत्रों वाला, मस्तक में चन्द्रमा वाला, नीले कण्ठ वाला, जटा-जूट युक्त शिर वाला तथा अपने विशाल हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए देखा था॥२०४-२०५॥

दृष्ट्वा तं तुष्टुवुर्दैत्यमाश्चर्यं परमं गताः। उवाच भगवान् विष्णुर्देवदेवं स्मयन्निव॥२०६॥

उस दैत्य अन्धकासुर को देखकर (वे देवता और गणेश्वर) परम आश्चर्यान्वित होकर उसकी स्तुति (प्रशंसा) करने लगे थे। तब भगवान् विष्णु ने मुस्कुराते हुए देवाधिदेव महादेव से यह कहा॥२०६॥

स्थाने तव महादेव प्रभावः पुरुषो महान्। नेक्षतेऽज्ञानजान् दोषान् गृह्णाति च गुणानपि॥२०७॥

हे महादेव! आपने अपना प्रभाव यथोचित स्थान (अन्धक दैत्य) पर दिखलाया है। महापुरुष (अज्ञानियों के) अज्ञान जनित दोषों को नहीं देखते हैं, अपितु उसके गुणों को ही ग्रहण करते हैं॥२०७॥

इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवः। सकेशवः सहान्धको जगाम शङ्करान्तिकम्॥२०८॥

भगवान् विष्णु के द्वारा शिव से ऐसा कहे जाने के बाद भैरव एवं सभी गणेश्वरों एवं प्रमुख देवों और अन्धकासुर सहित भगवान् विष्णु देवाधिदेव शङ्कर के पास गये थे॥२०८॥

---

१. देवदेवेन

निरीक्ष्य देवमागतं स शङ्करः सहान्धकम्। समाधवं समातृकं जगाम निर्वृतिं हरः॥२०९॥

अनधकासुर सहित भगवान् विष्णु एवं मातृगणों (तथा गणेश्वरों) सहित देव भैरव को आया हुआ देखकर भगवान् शिव प्रसन्न हुए थे॥२०९॥

प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजम्। जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा॥२१०॥

तब भगवान् शिव हिरण्याक्ष-पुत्र अन्धकासुर को हाथ से पकड़कर अपने साथ विमान में स्थित अपनी प्रिय पत्नी पार्वती के पास ले गये थे॥२१०॥

विलोक्य सा समागतं पतिं भवार्तिहारिणम्। अवाप सान्धकं सुखं प्रसादमन्धकम्प्रति॥२११॥

सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाने वाले भगवान् शिव को अन्धकासुर सहित आते हुए देखकर पार्वती को सुखानुभूति हुई तथा उन्होंने अन्धक पर भी कृपा की थी॥२११॥

अथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगाम्। पपात दण्डवत् क्षितौ ननाम पादपद्मयोः॥२१२॥

शिव के पास बैठी हुई महादेवी पार्वती को देखकर अन्धकासुर ने भूमि में दण्डवत् लेटकर उनके चरण कमलों में प्रणाम किया था॥२१२॥

नमामि देववल्लभामनादिमद्रिजामिमाम्। यतः प्रधानपुरुषौ निहन्ति याखिलं जगत्॥२१३॥

(तब पार्वती की स्तुति करते हुए अन्धकासुर ने कहा-) प्रकृति और पुरुष को उत्पन्न करने वाली तथा सम्पूर्ण जगत् का संहार करने वाली भगवान् शिव की प्रेयसी अनादि देवी पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ॥२१३॥

विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया। हिरण्मयेऽतिनिर्मले नमामि तां हिमाद्रिजाम्॥२१४॥

जो देवी भगवान् शिव के साथ अत्यन्त निर्मल, स्वर्णिम और सुखद आसन पर विराजमान हैं, उन हिमवत् कन्या पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ॥२१४॥

यदन्तराखिलंजगज्जगन्ति यान्ति संक्षयम्। नमामि यत्र तामुमामशेषदोषवर्जिताम्॥२१५॥

जिनके अन्दर सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है तथा सम्पूर्ण जगत् प्रलय काल में जिनमें लीन हो जाता है और जो सभी दोषों से रहित हैं, उन देवी पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ॥२१५॥

न जायते न हीयते न वर्धते च तामुमाम्। नमामि तां गुणातिगां गिरीशपुत्रिकामिमाम्॥२१६॥

जिनका न तो जन्म होता है और न ह्रास तथा न वृद्धि ही होती है, उन त्रिगुणातीत हिमवत् पुत्री उमा को मैं नमस्कार करता हूँ॥२१६॥

क्षमस्व देवि शैलजे विमोहितो त्वहं पुरा[1]। सुरासुरैर्नमस्कृते नमामि ते पदाम्बुजम्॥२१७॥

हे पार्वती! मैंने मोहवश जो आचरण किया था, उसके लिए मुझे क्षमा करें। देवों और असुरों के द्वारा भी आपकी वन्दना की जाती है। आपके चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ॥२१७॥

इत्थं भगवती देवी भक्तिनम्रेण पार्वती। संस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वे जगृहेऽन्धकम्॥२१८॥

---

१. कृत मया विमोहितम्

दैत्यराज अन्धकासुर के द्वारा इस प्रकार विनम्रता पूर्वक भक्तिभाव से स्तुति किये जाने पर देवी भगवती पार्वती ने उस अन्धकासुर को अपने पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया था अर्थात् अपने पुत्र के समान मान लिया था॥२१८॥

ततः स मातृभिः सार्धं भैरवो रुद्रसम्भवः। जगाम त्वाज्ञया शम्भोः पातालं परमेश्वरः॥२१९॥

तदनन्तर भगवान् शिव से प्रकट हुए (अन्धकासुर के वधकर्ता) भैरव उन शिव जी की आज्ञानुसार मातृकताओं सहित पाताल में चले गये थे॥२१९॥

यत्र सा तामसी विष्णोर्मूर्तिः संहारकारिका। समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वरः॥२२०॥

वहाँ (पाताल में) भगवान् विष्णु की संहारकारक तामसी मूर्ति भगवान् नृसिंह के स्वरूप में अव्यक्त रूप में स्थित है॥२२०॥

ततोऽनन्ताकृतिः शम्भुः शेषेणापि सुपूजितः। कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजात्मानमात्मनि॥२२१॥

तभी वहाँ शेषनाग के द्वारा सुपूजित अनन्त आकृति वाले कालाग्निरुद्र स्वरूपी भगवान् शम्भु ने स्वयं अपने आत्मा को परमात्मा में लीन कर दिया था॥२२१॥

युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातरः। बुभुक्षिता महादेवं प्रणम्याहुस्त्रिलोचनम्॥२२२॥

उन देव भैरव के परमात्मा में लीन होते समय क्षुधाकुल सभी मातृकाओं ने उन त्रिलोचन महादेव (भैरव) को प्रणाम करके यह कहा॥२२२॥

मातर ऊचुः

बुभुक्षिता महादेव त्वमनुज्ञातुमर्हसि। त्रैलोक्यं भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्ति नः॥१२३॥

मातृकाओं ने कहा- हे महादेव! हम सब भूखी हैं। आप हमें अनुमति प्रदान करें। हम तीनों लोकों का भक्षण करेंगी। इसके बिना हमें तृप्ति नहीं मिलेगी॥२२३॥

एतावदुक्त्वा वचनं मातरो विष्णुसम्भवाः। भक्षयाञ्चक्रिरे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥२२४॥

इतना कह कर भगवान् विष्णु से आविर्भूत वे मातृकाऐं तीनों लोकों के सम्पूर्ण चराचर जीवों का भक्षण करने लगी थी॥२२४॥

ततः स भैरवो देवो नृसिंहवपुषं हरिम्। दध्यौ नारायणं देवं प्रणम्य च कृताञ्जलिः॥२२५॥

तब उन देव भैरव ने हाथ जोड़कर नृसिंह रूप धारी भगवान् नारायण विष्णु का ध्यान किया॥२२५॥

उमेश-चिन्तितं ज्ञात्वा क्षणात्प्रादुरभूद्धरिः। विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः।
निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीया भगवन्निति॥२२६॥

भैरव के द्वारा ध्यान किये जाने का ज्ञान होने पर वहाँ पर क्षण भर में ही वह नृसिंह रूप धारी विष्णु प्रकट हो गये थे। तब भैरव ने उनसे यह निवेदन किया कि आपकी मातृकाएं तीनों लोकों का भक्षण करने जा रही हैं। हे भगवन् आप इन्हें रोकिये॥२२६॥

संस्मृता विष्णुना देव्यो नृसिंहवपुषा पुनः। उपतस्थुर्महादेवं नरसिंहाकृतिं ततः॥२२७॥

तब नृसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु के द्वारा स्मरण किये जाने पर वे मातृकाएँ उन महादेव नरसिंह के पास आ गयी थीं॥२२७॥

सम्प्राप्य सन्निधिं विष्णोः सर्वसंहारकारिकाः। प्रददुः शम्भवे शक्तिं भैरवायातितेजसे॥२२८॥

उन नृसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु के सान्निध्य में आकर उन सर्व-संहारकारक देवियों ने अपनी (संहारक-) शक्ति उन अत्यन्त तेजस्वी भैरव नामक रुद्र को प्रदान कर दी थी॥२२८॥

अपश्यंस्ता जगत्सूतिं नृसिंहमतिभैरवम्। क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिं चापि मातरः॥२२९॥

तभी उन मातृकाओं ने क्षण मात्र में ही जगत् की सृष्टि करने वाले भगवान् नरसिंह और भैरव नामक रुद्र तथा शेषनाग को एक-रूप होते हुए देखा था॥२२९॥

व्याजहार हृषीकेशो ये भक्ताः शूलपाणिनः। ये च मां संस्मरन्तीह पालनीयाः प्रयत्नतः॥२३०॥

तब हृषीकेश भगवान् विष्णु ने कहा जो लोग त्रिशूलधारी भगवान् शिव के भक्त हैं और जो मेरा (विष्णु का) स्मरण (ध्यान, भजन) करते हैं, उन सभी का यहां समान रूप से पालन करना चाहिए॥२३०॥

ममैव मूर्तिरतुला सर्वसंहारकारिका। महेश्वराङ्गसम्भूता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥२३१॥

भगवान् शिव के अङ्ग से प्रकट हुई भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली और सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करने वाली यह भैरव संज्ञक अतुलनीय मूर्ति मेरी ही है अर्थात् मुझसे अभिन्न है॥२३१॥

अनन्तो भगवान् कालो द्विधावस्था ममैव तु। तामसी राजसी मूर्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः॥२३२॥

अनन्त (शेषनाग) और कालभैरव ये दोनों ही मेरी तामसी मूर्ति के दो स्वरूप हैं और देवाधिदेव चार मुख वाले ब्रह्मा मेरी राजसी मूर्ति हैं॥२३२॥

सोऽहं देवो दुराधर्षः कालो लोकप्रकालनः। भक्षयिष्यामि कल्पान्ते रौद्रेण निखिलं जगत्॥२३३॥

मैं दुराधर्ष (अपराजेय) और समस्त लोकों को ग्रस्त करने वाला (संहारकर्ता) काल स्वरूप भी हूँ। मैं कल्प के अन्त में अपने रौद्र रूप से सम्पूर्ण जगत् को निगल जाऊँगा॥२३३॥

या सा विमोहिनी मूर्तिर्मम नारायणाह्वया। सत्त्वोद्रिक्ता जगत्सर्वं संस्थापयति नित्यदा॥२३४॥

सम्पूर्ण जगत् को मोह (माया-ममता) में संलिप्त करने वाली जो मेरी नारायण नामक मूर्ति है, वह सत्त्वगुण प्रधान है। वह नित्यमेव जगत् की स्थिति और पालन करती है॥२३४॥

स हि विष्णुः परं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः। मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देति कथ्यते॥२३५॥

मेरी वही मूर्ति भगवान् विष्णु, परं ब्रह्म, परमात्मा, परमगति प्रदान करने वाली, मूलप्रकृति, अव्यक्त और सदैव आनन्दमय कही जाती है॥२३५॥

इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विष्णुमातरः। प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं परम्॥२३६॥

भगवान् विष्णु के द्वारा इस प्रकार का बोध दिये जाने पर वे विष्णु देव की मातृकाएँ उन्हीं महान् देव विष्णु की शरण में गयी थीं॥२३६॥

एतद्वः कथितं सर्वं मयान्धकनिषूदनम्। माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः॥२३७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे अन्धकनिबर्हणं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

सूत जी ने कहा- मैंने अन्धकासुर के अन्त और अतुल ओजस्वी देवाधिदेव भैरव के माहात्म्य की सम्पूर्ण कथा आप लोगों से कह दी है॥२३७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'अन्धकनिबर्हण' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

त्रिविक्रमचरितवर्णनम्

सूत उवाच

अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मनः। विरोचनो नाम बली बभूव नृपतिः सुतः॥१॥

सूत जी बोले- अन्धकासुर का दमन हो जाने के बाद प्रह्लाद का विरोचन नामक बलशाली पुत्र राजा बना था॥१॥

देवान्जित्वा सदेवेन्द्रान् बहून्वर्षान्महासुरः। पालयामास धर्मेण त्रैलोक्यं सचराचरम्॥२॥

उस महादैत्य ने इन्द्र सहित सभी देवों पर विजय प्राप्त करके सभी चराचर प्राणियों सहित तीनों लोकों का बहुत वर्षों तक पालन किया था॥२॥

तस्यैव वर्तमानस्य कदाचिद्विष्णुचोदितः। सनत्कुमारो भगवान् पुरं प्राप महामुनिः॥३॥

उसके इस प्रकार शासन में निरत रहते हुए एक बार भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित महामुनि भगवान् सनत्कुमार उसके नगर में पहुँचे थे॥३॥

दृष्ट्वा[1] सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः। ननामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥४॥

उन ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार को देखकर सिंहासन पर बैठे हुए महादैत्य विरोचन ने उठकर नतमस्तक होकर उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर यह वचन कहे थे॥४॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरातनः[2]। योगीश्वरोऽद्य भगवान्यतोऽसौ ब्रह्मवित्स्वयम्॥५॥

मैं धन्य हो गया हूँ, अनुगृहीत हो गया हूँ क्योंकि आज यह पुराण-पुरुष ब्रह्मवेत्ता योगीश्वर भगवान् सनत्कुमार स्वयं यहाँ आये हैं॥५॥

किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वयं देवः पितामहः। ब्रूहि मे ब्रह्मणः पुत्र किं कार्यं करवाण्यहम्॥६॥

१. गत्वा, २. पुरोत्तमम्

हे ब्रह्मन्! आप स्वयं देव पितामह ब्रह्मा के पुत्र हैं। आप किस प्रयोजन से आये हैं? मुझे बतलाइए। मैं क्या करूँ?॥६॥

सोऽब्रवीद्भगवान्देवो धर्मयुक्तं महासुरम्। द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तं भाग्यवानसि॥७॥

तब भगवान् देव सनत्कुमार ने उस धर्मात्मा महान् असुर [विरोचन] से कहा मैं आपको ही देखने आया हूँ। आप भाग्यशाली हो॥७॥

सुदुर्लभा नीतिरेषा दैत्यानां दैत्यसत्तम। त्रिलोके धार्मिको नूनं त्वादृशोऽन्यो व विद्यते॥८॥

हे दैत्यराज! तुम्हारी जैसी नीति (अर्थात् धार्मिक प्रवृत्ति) दैत्यों में अत्यन्त दुर्लभ है। तीनों लोकों में तुम्हारे समान धार्मिक व्यक्ति अन्य कोई नहीं है॥८॥

इत्युक्तोऽसुरराजोऽसौ पुनः प्राह महामुनिम्। धर्माणां परमं धर्मं बूहि मे ब्रह्मवित्तम॥९॥

सनत्कुमार के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उस दैत्यराज ने उन महामुनि से पुनः यह कहा कि हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! सभी धर्मों में से जो सर्वश्रेष्ठ धर्म है, वह मुझे बतलाइए॥९॥

सोऽब्रवीद् भगवान्योगी दैत्येन्द्राय महात्मने। सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम्॥१०॥

उन भगवान् योगी ने महात्मा दैत्यराज को सर्वाधिक गोपनीय धर्म के रूप में आत्मज्ञान को बतलाया था॥१०॥

स लब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्। निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत्॥११॥

तब वह विरोचन परम ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन सनत्कुमार को गुरु दक्षिणा प्रदान करके अपने पुत्र को राज्य देकर योगाभ्यास में निरत हो गया था॥११॥

स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुरः। ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरन्दरम्॥१२॥

उस विरोचन का वह बुद्धिमान् पुत्र महादैत्य बलि नामक राजा अत्यन्त धार्मिक और ब्राह्मणभक्त था। उसने देवराज इन्द्र पर भी विजय प्राप्त की थी॥१२॥

कृत्वा तेन महद्युद्धं शक्रः सर्वामरैर्वृतः। जगाम निर्जितो विष्णुं देवं शरणमच्युतम्॥१३॥

उसके साथ भीषण युद्ध करने पर भी पराजित हो जाने पर इन्द्र सभी देवों सहित इन्द्र अच्युत भगवान् विष्णु की शरण में गया था॥१३॥

तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता। दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम्॥१४॥

तताप सुमहाघोरं तपोराशिस्तपः परम्। प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम्॥१५॥

इसी अवधि में अपने पुत्रों की पराजय से परम दुःखी देवों की माता तपोनिधि देवी अदिति ने मेरा पुत्र दैत्येन्द्रों का वध करने वाला हो ऐसा विचार करके अत्यन्त कठिन तप किया था और अव्यक्त स्वरूप वाले शरणागत वत्सल भगवान् विष्णु की शरण में गयी थी॥१४-१५॥

कृत्वा हृत्पद्मकिञ्जल्के निष्कलं परमम्पदम्। वासुदेवमनाद्यन्तमानन्दं व्योम केवलम्॥१६॥

वह अदति अपने हृदय-कमल रूपी कलिका में निष्कल, परमपद-स्वरूप, आदि अन्त रहित, आनन्द स्वरूप, व्योम (आकाश) मय एकमात्र वासुदेव के ध्यान में निरत थी॥१६॥

प्रसन्नो भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः। आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः॥१७॥

तब उस देवमाता अदिति की तपस्या से प्रसन्न शङ्ख-चक्र-गदाधारी योगात्मा भगवान् विष्णु उसके समक्ष प्रकट हुए थे॥१७॥

दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता। मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम्॥१८॥

भक्तिभाव वाली अदिति ने भगवान् विष्णु को आया हुआ देखकर स्वयं को कृतार्थ (सफल-मनोरथ) माना और तब वह उनकी स्तुति करके उनको प्रसन्न करने लगी थी॥१८॥

अदितिरुवाच

जयाशेष-दुःखौघनाशैकहेतो जयानन्तमाहात्म्य-योगाभियुक्त।
जयानादिमध्यान्तविज्ञानमूर्ते जयाकाशकल्पामलानन्दरूप॥१९॥

अदिति बोली- हे सम्पूर्ण दुःखराशि-नाश के एकमात्र कारण! आपकी जय हो। हे अनन्त माहात्म्य वाले! हे योगाभ्यास निरत! आपकी जय हो। आदि, मध्य और अन्त रहित हे विज्ञान-मूर्ति! आपकी जय हो। हे आकाश-तुल्य! हे विशुद्ध-आनन्दरूप! आपकी जय हो॥१९॥

नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम्।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते॥२०॥

हे कालरूप विष्णु! आपको नमस्कार है। नरसिंह रूप वाले तथा शेषनाग रूप वाले आपको नमस्कार है। संहारकर्ता कालरूप वाले आपको नमस्कार है। हे वासुदेव! आपको नमस्कार है॥२०॥

नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम्।
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते॥२१॥

सांसारिक माया का विधान करने वाले आपको नमस्कार है। योग-साधना के द्वारा जानने-देखने योग्य प्रभो! आपको नमस्कार है। धर्म और विज्ञान में निष्ठा वाले आपको नमस्कार है। वराह अवतार वाले आपको बारंबार नमस्कार है॥२१॥

नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्ते नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य।
नमो देवदेवादिदेवाय[1] तुभ्यं प्रभो विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते॥२२॥

सहस्र सूर्यों और सहस्र चन्द्रमाओं के प्रकाश तुल्य कान्ति वाले आपको नमस्कार है। वेदों के विशिष्ट ज्ञान और धर्म (के पालन) से जिनको जाना जा सकता है, ऐसे भगवान् आपको नमस्कार है। हे देवाधिदेव आदिदेव! हे विश्व के जनक प्रभो! आपको नमस्कार है। आपको बारम्बार नमस्कार है॥२२॥

नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम्।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते॥२३॥

सत्यनिष्ठ शम्भु (आनन्ददाता, कल्याणकारी) आपको नमस्कार है। हे जगत् के कारण और

१. भूधरायाप्रमेयाय

जगत् स्वरूपी आपको नमस्कार है। योगपीठ के मध्य में विराजमान प्रभु आपको नमस्कार है। हे शिव (कल्याणकारी) अद्वितीय देव आपको नमस्कार है॥२३॥

एवं स भगवान् विष्णुर्देवमात्रा जगन्मयः। तोषितश्छन्दयामास वरेण प्रहसन्निव॥२४॥

देवमाता अदिति के द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने पर जगद्व्यापी भगवान् विष्णु ने कुछ मुस्कुराते हुए उनसे वर माँगने को कहा॥२४॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वव्रे वरमुत्तमम्। त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम्॥२५॥

तब अदिति ने भूमि में शिर झुकाकर प्रणाम करके उत्तम वर मांगते हुए यह कहा कि मैं देवों के हित के लिए आपको ही पुत्र रूप में प्राप्त करने का वर माँगती हूँ॥२५॥

तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः। दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत॥२६॥

तब शरणागत-वत्सल भगवान् विष्णु अदिति को 'तथास्तु' कहते हुए अभीष्ट वरों (वरदानों) को देकर वहीं अन्तर्धान हो गये थे॥२६॥

ततो बहुतिथे काले भगवन्तं जनार्दनम्। दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम्॥२७॥

तब बहुत दिनों की कालावधि के बाद देवमाता अदिति ने जनार्दन भगवान् विष्णु को अपने गर्भ में धारण किया था॥२७॥

समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम्। उत्पाता जज्ञिरे घोरा बलेर्वैरोचनेः पुरे॥२८॥

देवमाता अदिति के गर्भ में भगवान् विष्णु के आते ही विरोचन-पुत्र बलि के नगर में भयानक उत्पात होने लगे थे॥२८॥

निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान्दैत्येन्द्रो भयविह्वलः। प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम्॥२९॥

उन सभी उत्पातों को देखकर दैत्यराज बलि ने भय से व्याकुल होकर अपने वृद्ध पितामह प्रह्लाद को प्रणाम करके यह कहा॥२९॥

बलिरुवाच

पितामह महाप्राज्ञ जायन्तेऽस्मत् पुरेऽधुना।[1] उत्पाताः किं निमित्तकाः किं चास्माकं भवेत् कार्यम्[2]॥३०॥

बलि बोला- हे महाज्ञानी पितामह! अब हमारे नगर में ये उत्पात क्यों हो रहे हैं? और किस कारण से हो रहे हैं? [इनसे रक्षा के लिए] हमको क्या करना चाहिए॥३०॥

निशम्य तस्य वचनं चिरं ध्यात्वा महासुरः। नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्॥३१॥

उस बलि के वचनों को सुनकर महान् असुर प्रह्लाद ने हृषीकेश [भगवान् विष्णु] को नमस्कार करके यह वचन कहे॥३१॥

प्रह्लाद उवाच

यो यज्ञैरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिदं जगत्। दधारासुरनाशार्थं माता तं त्रिदिवौकसाम्॥३२॥

---

१. जायतेऽसिमन् पुरान्तरे

२. किमुत्पाता भवेत् कार्यमसमाकं किं निमित्तकाः॥

प्रह्लाद बोला- जिन भगवान् विष्णु की उपासना यज्ञों के द्वारा की जाती है, जिनका यह सम्पूर्ण जगत् है, उनको ही असुरों के विनाश हेतु देवमाता अदिति ने अपने गर्भ में धारण किया हुआ है॥३२॥

यस्मादभिन्नं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि। स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत्॥३३॥

यह सम्पूर्ण जगत् जिन भगवान् विष्णु से अभिन्न है और जो इस सम्पूर्ण जगत् से भिन्न हैं। वह भगवान् वासुदेव-विष्णु देवमाता अदिति के देह में (अर्थात् उनके गर्भ में) प्रवष्टि हुए हैं॥३३॥

न यस्य देवा जानन्ति स्वरूपं परमार्थतः। स विष्णुरदितेर्देहं स्वेच्छयाऽद्य समाविशत्॥३४॥

जिनके वास्तविक स्वरूप को देवता भी सम्यक् रूप से नहीं जानते हैं, वह भगवान् विष्णु आज स्वेच्छया अदिति की देह में प्रवष्टि हुए हैं॥३४॥

यस्माद्भवन्ति भूतानि यत्र संयान्ति संक्षयम्। सोऽवतीर्णो महायोगी पुराणपुरुषो हरिः॥३५॥

जिनसे सभी प्राणी जन्म लेते हैं तथा अन्ततः जिनमें विलीन हो जाते हैं, वह महायोगी पुराणपुरुष भगवान् विष्णु अवतार ग्रहण कर रहे हैं। (मूल पाठ में 'अवतीर्णो' पाठ 'अवतरिष्यति' के स्थान पर प्रयुक्त है)॥३५॥

न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना। सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेन जायते॥३६॥

जिनके नाम और जाति की कोई कल्पना विद्यमान नहीं है। सत्तामात्र रूप में विद्यमान वह भगवान् विष्णु अंशावतार रूप में जन्म ग्रहण करने वाले हैं॥३६॥

यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी। माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्दनः॥३७॥

जगत-जननी माता भगवती, जो कि माया स्वरूपा तथा धर्म को धारण करने वाली है, वह महालक्ष्मी जिनकी शक्ति है, वह जनार्दन भगवान् विष्णु अवतरित हो रहे हैं॥३७॥

यस्य सा तामसी मूर्तिः शङ्करो राजसी तनुः। ब्रह्मा सञ्जायते विष्णुरंशेनैकेन सत्त्वभृत्॥३८॥

जिनकी तामसी (तमोगुणी) मूर्ति भगवान् शिव हैं और जिनकी राजसी (रजोगुणी) मूर्ति ब्रह्मा हैं, वह सत्त्वगुण वाले भगवान् अंशावतार ग्रहण करने जा रहे हैं॥३८॥

इति सञ्चिन्त्य गोविन्दं भक्तिनम्रेण चेतसा। तमेव गच्छ शरणं ततो यास्यसि निर्वृतिम्॥३९॥

ऐसा विचार करके भक्तिभाव युक्त एवं विनम्र मन वाले होकर तुम उन भगवान् विष्णु की शरण में जाओ। तभी तुमको शान्ति प्राप्त होगी॥३९॥

ततः प्रह्लादवचनाद्बलिर्वैरोचनिर्हरिम्। जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मतः॥४०॥

तब प्रह्लाद के वचनानुसार विरोचन का पुत्र वह राजा बलि ध्यान लगाकर भगवान् विष्णु की शरण में गया और तब से धर्मानुसार इस विश्व का पालन करने लगा था॥४०॥

काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्धनम्। असूत कश्यपाच्चैनं देवमातादितिः स्वयम्॥४१॥

तब उचित समय आने पर देवमाता अदिति ने अपने पति कश्यप से देवों का हर्ष बढ़ाने वाले महान देवता विष्णु को उत्पन्न किया था॥४१॥

चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम्॥४२॥

वह चार भुजाओं वाले, विशाल नेत्रों वाले, श्रीवत्स से चिह्नित वक्षस्थल वाले, नीलवर्ण के मेघ के समान कान्ति वाले, श्री सम्पन्न (शोभायमान) और अपने तेज से दीप्तिमान थे॥४२॥

उपतस्थुः सुराः सर्वे सिद्धाः साध्याश्च चारणाः। उपेन्द्रमिन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चर्षिगणैर्वृतः॥४३॥

तब उन उपेन्द्र (विष्णु) के दर्शनार्थ सभी देवता, सिद्ध, साध्यगण, चारण, इन्द्र और सभी ऋषिगणों सहित ब्रह्मा भी वहाँ उपस्थित हो गये थे॥४३॥

कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः। सदाचारं भरद्वाजात् त्रिलोकाय प्रदर्शयन्॥४४॥

उन भगवान् हरि ने उपनयन होने के बाद (स्वयं सर्वज्ञ होने पर भी) तीनों लोकों को (लोकाचार का) प्रदर्शन कराते हुए भरद्वाज मुनि से वेदों की और सदाचार की शिक्षा ग्रहण की थी॥४४॥

एवञ्च लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥४५॥

इस प्रकार वह भगवान् लोक को लौकिक मार्ग का प्रदर्शन कराते हैं। वह प्रमाण रूप में जो कार्य करते हैं, उसी का अनुकरण अन्य लोग करते हैं॥४५॥

ततः कालेन मतिमान् बलिर्वैरोचनिः स्वयम्। यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्चयामास सर्वगम्॥४६॥

तदनन्तर विरोचन के पुत्र उस बुद्धिमान् बलि ने स्वयमेव उन सर्वव्यापी यज्ञेश्वर भगवान् विष्णु का यज्ञ करके पूजन किया था॥४६॥

ब्राह्मणान्पूजयामास दत्त्वा बहुतरं धनम्। ब्रह्मर्षयः समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः॥४७॥

उस राजा बलि ने [दक्षिणा रूप में] बहुत धन देकर ब्राह्मणों का पूजन किया था। उस महात्मा बलि के यज्ञ-स्थल में ब्रह्मर्षियों का भी आगमन हुआ था॥४७॥

विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदितः। आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत्॥४८॥

उसके यज्ञ का समाचार जानकर भगवान् विष्णु भी महर्षि भरद्वाज की प्रेरणा से वामन का रूप धारण करके उस यज्ञ-स्थल में आये थे॥४८॥

कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेन विराजितः। ब्राह्मणो जटिलो वेदानुद्गिरन् भस्ममण्डितः[1]॥४९॥

उन्होंने अपने शरीर में कृष्णमृग का चर्म तथा यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था तथा अपने हाथ में वह दण्ड (लाठी) पकड़े हुए थे। वह जटाधारी और भस्म-विलेपन से अलंकृत होकर वेदमन्त्रों का पाठ करते हुए चल रहे थे॥४९॥

सम्प्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः। स्वपादैः[2] क्रमितं देशमयाचत बलिं त्रिभिः॥५०॥

उन भिक्षुक वेश धारी भगवान् विष्णु ने असुर राजा बलि के समीप जाकर अपने तीन पगों से नापी जा सकने वाली भूमि की याचना की थी॥५०॥

प्रक्षाल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वितः। आचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्मितम्॥५१॥

दास्ये तथेदं भवते पदत्रयं प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे निपातयामास सुशीतलं जलम्॥५२॥

१. सुमहाद्युतिः २. स्वपद्भ्यां

तब बलि ने भक्तिभाव से युक्त होकर भगवान् विष्णु के चरणों को धोकर स्वर्ण-निर्मित भृङ्गार (=टोंटीदार पात्र, टोंटीदार कमण्डलु) हाथ में लेकर उनको आचमन कराकर यह कहा कि मैं आपको तीन पग रखने योग्य भूमि प्रदान करता हूँ। इससे अविनाशी भगवान् विष्णु प्रसन्न होवें। ऐसा संकल्प करके उसने उन परमात्मा विष्णु के कर-कमल के अग्रभाग में सुशीतल जल को डाला था॥५१-५२॥

विचक्रमे पृथिवीमेष चैतामथान्तरिक्षं दिवमादिदेवः।
व्यपेतरागं दितिजेश्वरं तं प्रकर्तुकामः शरणं प्रपन्नम्॥५३॥
आक्रम्य लोकत्रयमीशपादः प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकं जगाम।
प्रणेमुरादित्य-सहस्रकल्पं[१] ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः॥५४॥

उस शरणागत दैत्यराज बलि को आसक्ति-रहित बनाने के उद्देश्य से भगवान् ने अपने चरण को तीनों लोकों पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक तक फैलाया और तीनों लोकों को आक्रान्त अर्थात् पार करके उनका वह चरण प्राजापत्य लोक से होकर ब्रह्मलोक तक पहुँच गया था। उस लोक के निवासी सिद्धों ने सहस्रों सूर्यों के समान (दीप्तिमान) उस चरण को प्रणाम किया था॥५३-५४॥

अथोपतस्थे भगवाननादिः पितामहस्तोषयामास विष्णुम्।
भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं जगाम दिव्यावरणानि भूयः॥५५॥
अथाण्डभेदान्निपपात शीतलं महाजलं तत् पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम्।
प्रवर्तिता चापि सरिद्वरा तदा गङ्गेत्युक्त्वा ब्रह्मणा व्योमसंस्था॥५६॥

तब अनादि भगवान् पितामह ने वहाँ उपस्थित होकर भगवान् विष्णु की आराधना करके उनको प्रसन्न किया था। तब भगवान् विष्णु का वह चरण उस अण्ड (ब्रह्माण्ड) के कपाल का भेदन करके उसके आगे के दिव्य आवरणों को चला गया था। उस अण्ड का भेदन होने पर उसमें से पुण्यात्माओं के द्वारा सेवन किया जाने वाला सुशीतल महान् जल नीचे गिरने लगा था। तब उसी से आकाश में परम श्रेष्ठ नदी प्रवाहित होने लगी थी। उस आकाशस्थ नदी को ब्रह्मा ने गङ्गा नदी कहा था॥ ।५५-५६॥

गत्वा महान्तं प्रकृतिं प्रधानं ब्रह्माणमेकं पुरुषं विश्वयोनिम्।
अतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तुवन्ति॥५७॥

भगवान् विष्णु का वह चरण प्रकृति, महत्तत्त्व (बुद्धि) तथा संसार के जनक एक मात्र प्रधान-पुरुष, अद्वितीय अविकारी ब्रह्म संज्ञक देव तक पहुँच कर वहीं स्थित हो गया था। उस अविनाशी चरण को देखकर जहाँ कहीं भी देवता थे, वे सभी उसकी स्तुति करने लगे थे॥५७॥

आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम्।
ननाम नारायणमेकमव्ययं स्वचेतसा यं प्रणमन्ति वेदाः॥५८॥

समग्र विश्व रूपी देह वाले जिन परम पुरुष को वेद भी प्रणाम करते हैं, ऐसे अविनाशी नारायण विष्णु को देखकर महात्मा बलि ने भक्तियोग से युक्त मन से प्रणाम किया था॥५८॥

---

१. प्रणेमुरादित्यमुखाः सुरेन्द्राः

तमब्रवीद्भगवानादिकर्ता भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं लोकत्रयं भवता भावदत्तम्॥५९॥

सृष्टि के आदिकर्ता वासुदेव भगवान् विष्णु ने (अपने विराट स्वरूप को समेट कर) पुनः वामन का रूप धारण करके उस बलि से कहा- हे दैत्यराज! तुमने भक्तिभाव से जो तीनों लोक मुझको प्रदान किये हैं, अब वह मेरे ही हैं॥५९॥

प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो निपातयामास जलं कराग्रे।
दास्ये तवात्मानमनन्तधाम्ने त्रिविक्रमायामितविक्रमाय॥६०॥

दैत्यराज बलि ने पुनः नत-मस्तक होकर वामन रूप धारी भगवान् के हाथ के अग्रभाग में जल गिराया और यह कहा कि हे अनन्त तेजस्वी, महापराक्रमी त्रिविक्रम भगवान् वामन अब मैं स्वयं अपने को भी आपको प्रदान करता हूँ॥६०॥

प्रगृह्य सूनोरपि सम्प्रदत्तं प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणिः।
जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा पातालमूलं प्रविशेति भूयः॥६१॥

अपने हाथ में शङ्ख धारण करने वाले जगत् के अन्तरामा स्वरूप वामन भगवान् ने प्रह्लाद के पुत्र विरोचन के भी पुत्र बलि के द्वारा प्रदत्त दान को ग्रहण करके उस दैत्य से पुनः यह कहा कि अब तुम पाताल-मूल में प्रवेश करो॥६१॥

समास्यतां भवता तत्र नित्यं भुक्त्वा भोगान्देवतानामलभ्यान्।
ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम्॥६२॥

देवताओं के लिए भी दुर्लभ भोगों का नित्य उपभोग करते हुए तुम वहाँ निवास करके भक्तियोग से निरन्तर मेरा ध्यान करते रहना। कल्पान्त होने पर तुम पुनः मुझमें प्रवेश करोगे॥६२॥

उक्त्वैवं दैत्यसिंहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः। पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः॥६३॥

उस दैत्यराज से ऐसा कहकर सत्य-पराक्रमी प्रशस्त यशस्वी वामन रूपधारी भगवान् विष्णु ने तीनों लोक इन्द्र को प्रदान कर दिये थे॥६३॥

संस्तुवन्ति महायोगं सिद्धा देवर्षिकिन्नराः। ब्रह्मा शक्रोऽथ भगवान् रुद्रादित्यमरुद्गणाः॥६४॥

उन महायोगी वामनावतार भगवान् विष्णु की स्तुति देवता, सिद्ध, किन्नर, देवर्षिगण, ब्रह्मा और इन्द्र तथा रुद्र एवं द्वादश आदित्य और मरुद्गण भी करते हैं॥६४॥

कृत्वैतदद्भुतं कर्म विष्णुर्वामनरूपधृक्। पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत॥६५॥

ऐसा अद्भुत कार्य करके वामन रूपधारी वह भगवान् विष्णु सभी देवों तथा ऋषियों के देखते ही वहाँ से अन्तर्धान हो गये थे॥६५॥

सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान्पातालं प्राप नोदितः। प्रह्लादेनासुरवरैर्विष्णुभक्तस्तु तत्परः॥६६॥

भगवान् विष्णु की भक्ति में लीन वह श्री-सम्पन्न दैत्यराज बलि अपने पितामह प्रह्लाद के द्वारा भी प्रेरित किये जाने पर पाताल में चला गया था॥६६॥

अपृच्छद् विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम्। पूजाविधानं प्रह्लादं तदाहासौ चकार सः॥६७॥

उस बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद से भगवान् विष्णु का माहात्म्य एवं भक्तियोग तथा पूजा के विधान के विषय में पूछा और प्रह्लाद ने उसे वह सब बतलाया और तब उसने वैसा ही किया था॥६७॥

अथ रथचरणाब्जशङ्खपाणिं सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम्।
शरणमुपययौ स भावयोगात्प्रणतगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम्॥६८॥

तब वह दैत्यराज बलि भक्तिभाव के साथ कर्मयोग का भी पालन करते हुए हाथों में शंख, चक्र, कमल और शंख को धारण करने वाले, कमल-नयन, अप्रतिम, शरणागतों के आश्रयप्रद भगवान् विष्णु की शरण में गया था॥६८॥

एष वः कथितो विप्रा वामनस्य पराक्रमः। स देवकार्याणि सदा करोति पुरुषोत्तमः॥६९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे त्रिविक्रमचरितवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

हे ब्राह्मणो! यह मैंने वामन अवतार के पराक्रम को बतलाया है। वह पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु सदैव देवों के कार्य को सम्पन्न करते हैं॥६९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'त्रिविक्रमचरितवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१७॥

❖❖❖

अथाष्टादशोऽध्यायः

वंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

बलेः पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम्। तेषां प्रधानो द्युतिमान्बाणो नाम महाबलः॥१॥

सूत जी बोले- राजा बलि के महाबली और पराक्रम करने वाले एक सौ पुत्र थे। उनमें से प्रमुख पुत्र बाण नामक असुर था, जो परम तेजस्वी और महाबलशाली था॥१॥

सोऽतीव शङ्करे भक्तो राजा राज्यमपालयत्। त्रैलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम्॥२॥

वह भगवान् शिव पर अत्यन्त भक्ति वाला था। उसने अपने राज्य का पालन किया और तीनों लोकों को अपने आधीन करके उसने इन्द्र को उत्पीडित किया था॥२॥

ततः शक्रादयो देवा गत्वोचुःकृत्तिवाससम्। त्वदीयो बाधते ह्यस्मान्बाणो नाम महासुरः॥३॥

तब इन्द्रादि देवों ने (कृत्तिवासा) भगवान् शिव के पास जाकर उनसे कहा कि आप का भक्त बाणासुर हमें पीडित कर रहा है॥३॥

व्याहृतो दैवतैः सर्वैर्देवदेवो महेश्वरः। ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया॥४॥

सभी देवों के द्वारा ऐसा कहे जाने पर देवाधिदेव भगवान् शिव ने लीला से (आसानी से खेलते हुए) एक ही बाण से उस बाणासुर के नगर को दग्ध कर दिया था॥४॥

दह्यमाने पुरे तस्मिन्बाणो रुद्रं त्रिशूलिनम्। ययौ शरणमीशानं गोपतिं नीललोहितम्॥५॥
मूर्धन्याधाय तल्लिङ्गं शाम्भवं रागवर्जितः। निर्गत्य तु पुरात्तस्मात् तुष्टाव परमेश्वरम्॥६॥

जब वह नगर जलने लगा तो वह बाणासुर तव वृषभ नन्दी के स्वामी त्रिशूलधारी नीलकण्ठ भगवान् शिव की शरण में गया तथा उसने आसक्ति रहित होकर भगवान् शिव के लिङ्ग को शिर में रख कर उस नगर से बाहर जाकर उन परमेश्वर शिव की स्तुति की थी॥५-६॥

संस्तुतो भगवानीशः शङ्करो नीललोहितः। गाणपत्येन बाणं तं योजयामास भावतः॥७॥

उसके द्वारा स्तुति किये जाने पर उसके भक्तिभाव से प्रसन्न कल्याणकारी नीललोहित भगवान् शिव ने उस बाणासुर को अपने गणों के अधिपति रूप में नियुक्त कर दिया था॥७॥

अथैवञ्च दनोः पुत्रास्ताराद्याश्चातिभीषणाः। तारस्तथा शम्बरश्च कपिलः शङ्करस्तथा।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥८॥

कश्यप की पत्नी दनु के तार आदि अत्यन्त भयंकर पुत्र हुए थे। उनमें से तार, शम्बर, कपिल, शंकर, स्वर्भानु और वृषपर्वा प्रमुख रूप से कहे गये हैं॥८॥

सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणामभवद् द्विजाः। अनेकशिरसां तद्वत् खेचराणां महात्मनाम्॥९॥
अरिष्टा जनयामास गन्धर्वाणां सहस्रकम्। अनन्ताद्या महानागाः काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः॥१०॥

हे द्विजो! सुरसा के गर्भ से अनेक फणों वाले सहस्रों सर्प उत्पन्न हुए थे। अरिष्टा ने भी सहस्रों आकाशचारी महात्मा गन्धर्वों को उत्पन्न किया था। कद्रू के पुत्र अनन्त आदि महानाग बतलाये गये हैं॥९-१०॥

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुङ्गवाः। शुकीं श्येनीञ्च भासीञ्च सुग्रीवां गृध्रिकां शुचिम्॥११॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! ताम्रा ने शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवा, गृध्रिका और शुचि नामक छः कन्याओं को जन्म दिया था॥११॥

गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा। इरा वृक्षलतावल्लीतृणजातीश्च सर्वशः॥१२॥

सुरभि ने गायों तथा भैंसों को जन्म दिया था। इरा ने वृक्ष, लता, वल्ली तथा सभी प्रकार के तृणों (तिनकों, घास-फूस) को उत्पन्न किया था॥१२॥

खसा वै यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा। रक्षोगणं क्रोधवशां जनयामास सत्तमाः॥१३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! खसा ने यक्षों और राक्षसों को तथा मुनि ने अप्सराओं को, क्रोधवशा ने राक्षसों को जन्म दिया था॥१३॥

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ। तयोश्च गरुडो धीमानूतपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
प्रसादाच्छूलिनः प्राप्तो वाहनत्वं हरेः स्वयम्॥१४॥

आराध्य तपसा देवं महादेवं तथारुणः। सारथ्ये कल्पितः पूर्वं प्रीतेनार्कस्य शम्भुना॥१५॥

विनता के दो प्रख्यात पुत्र गरुड और अरुण थे। उन दोनों में से बुद्धिमान् गरुड ने कठोर तप करके भगवान् शिव की कृपा से स्वयं भगवान् विष्णु का वाहन बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था तथा अरुण ने तपस्या से देवाधिदेव शिव की आराधना की थी। तब उससे प्रसन्न होकर शिव ने उसको भगवान् सूर्य के रथ का सारथी बना दिया था॥१४-१५॥

एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः। वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वतां पापनाशनम्॥१६॥

इस वैवस्वत मन्वन्तर में ये सब कश्यप के चर और अचर वंशज कहे गये हैं। इनकी कथा सुनने वालों के पाप नष्ट हो जाते हैं॥१६॥

सप्तविंशत्सुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्याश्च सुव्रताः। अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश[1]॥१७॥

हे सद्व्रती द्विजो! दक्ष की सत्ताईस कन्याएँ सोम (चन्द्रमा) की पत्नी कही गयी हैं। अरिष्टनेमि की पत्नियों के सोलह पुत्र थे॥१७॥

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः। तद्वदङ्गिरसः पुत्रा ऋषयो ब्रह्मसत्कृताः॥१८॥

विद्वान् बहुपुत्र के विद्युत् संज्ञक चार पुत्र कहे गये हैं। इसी प्रकार अङ्गिरा के पुत्र भी ऋषि थे, जिनका सम्मान ब्रह्मा ने भी किया था॥१८॥

कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः सुताः। एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यकार्यैः स्वनामभिः॥१९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वंशानुकीर्तनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

कृशाश्व के पुत्र देव-प्रहरण (देवों के अस्त्र) संज्ञक थे। ये सभी सहस्र युगों के अन्त होने तक प्रत्येक मन्वन्तर में अपने नामानुकूल कार्यों को सम्पन्न करने के लिए पुनर्जन्म ग्रहण करते रहते हैं॥१९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में वंशवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

ऋषिवंशकथनम्

सूत उवाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात्। कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत्तपः॥१॥

इन (पिछले अध्याय में कथित) पुत्रों को उत्पन्न करने के बाद पुनः सन्तान-परम्परा को अविच्छिन्न बनाने के लिए पुत्र की कामना वाले कश्यप ने महान् तप किया था॥१॥

१. ह्यनेकशः

तस्यैवं तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ। वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ॥२॥

इस प्रकार उनके द्वारा किये गये कठोर तपके फल-स्वरूप उनके वत्सर और असित नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे दोनों ही ब्रह्मवादी (वेद-वेदान्त वेत्ता) हो गये थे॥२॥

वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रेभ्यश्च सुमहायशाः। रेभ्यस्य जज्ञिरे रैभ्याः[1] पुत्राः श्रुतिमतां वराः॥३॥

उन दोनों में से वत्सर के नैध्रुव और रेभ्य नामक महा-यशस्वी पुत्र हुए थे। रेभ्य के रैभ्य नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो कि वेद के ज्ञाता विद्वानों में श्रेष्ठ थे॥३॥

च्यवनस्य सुता भार्या नैध्रुवस्य महात्मनः। सुमेधा जनयामास पुत्रान्वै कुण्डपायिनः॥४॥

च्यवन की पुत्री सुमेधा महात्मा नैध्रुव की पत्नी थी। उसने कुण्डपायी नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था॥४॥

असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत। नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः॥५॥

असित से उनकी एकपर्णा नामक पत्नी ने ब्रह्मनिष्ठ (परमात्म-चिन्तन में लीन) महातपस्वी और योगाचार्य पुत्र को जन्म दिया था, जिसका नाम देवल था॥५॥

शाण्डिल्यः परमः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थविच्छुचिः। प्रसादात्पार्वतीशस्य योगमुत्तमवाप्तवान्॥६॥

शाण्डिल्य परम श्री-सम्पन्न, सर्व-तत्त्वज्ञ और शुद्ध प्रकृति का था। उसने पार्वती-पति भगवान् शिव की कृपा से उत्तम योग को प्राप्त किया था॥६॥

शाण्डिल्यो नैध्रुवो रैभ्यः त्रयः पुत्रास्तु काश्यपाः। नरप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः॥७॥

शाण्डिल्य, नैध्रुव और रैम्य ये तीनों पुत्र काश्यप के थे और मनुष्यों के समान प्रकृति (स्वभाव) वाले थे। अब में पुलस्त्य के वंश का वर्णन करता हूँ॥७॥

तृणबिन्दोः सुता विप्रा नाम्ना त्विलविला[2] स्मृता। पुलस्त्याय तु राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्॥८॥

हे ब्राह्मणो! तृण बिन्दु की इलविला नामक पुत्री थी। उस राजर्षि ने वह कन्या पुलस्त्य को प्रदान की थी॥८॥

ऋषिस्त्वैलविलस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत। तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धिकाः॥९॥
पुष्पोत्कटा च राका[3] च कैकसी देववर्णिनी। रूपलावण्यसम्पन्नास्तासाञ्च शृणुत प्रजाः॥१०॥

उस इलविला से विश्रवा नामक ऋषि का जन्म हुआ था। उन ऋषि विश्रवा की पुलस्त्य के वंश की वृद्धि करने वाली चार पत्नियाँ थी जो क्रमशः पुष्पोत्कटा, राका, कैकसी तथा देववर्णिनी नामक थी। वे सभी रूप और लावण्य (सौन्दर्य) से सम्पन्न थी। अब आप लोग उनकी सन्तानों को सुनें॥९-१०॥

ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी। कैकसी जनयत्पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम्॥११॥
कुम्भकर्णं शूर्पणखां तथैव च विभीषणम्। पुष्पोत्कटाप्यजनयत् पुत्रान् विश्रवसः शुभान्॥१२॥
महोदरं प्रहस्तञ्च महापार्श्वं खरं तथा। कुम्भीनसीं तथा कन्यां राकायाः[4] शृणुत प्रजाः॥१३॥

१. रैभ्यस्य जज्ञिरे शूद्राः, २. ऐलविला
३. वाका, ४. वाका

त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबलः। इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश।
सर्वे तपोबलोत्कृष्टा रुद्रभक्ताः सुभीषणाः॥१४॥

देववर्णिनी ने ज्येष्ठ पुत्र वैश्रवण (कुबेर) को जन्म दिया था। कैकसी ने राक्षस-राज रावण तथा कुम्भकर्ण, विभीषण और शूर्पणखा को जन्म दिया था। पुष्पोत्कटा ने विश्रवा से महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व तथा खरनामक पुत्रों और कुम्भीनसी नामक कन्या को जन्म दिया था। अब आप राका की सन्तानों को सुनें। वे त्रिशिरा, दूषण और महाबलशाली विद्युज्जिह्व नामक थे। पुलस्त्य कुल में जन्मे ये दश राक्षस क्रूर कर्म करने वाले, भयानक, किन्तु उत्तम तपोबल वाले और शिव के भक्त भी थे॥११-१४॥

पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः। भूताः पिशाचा ऋक्षाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा॥१५॥

सभी मृग, सर्प, दाढ़ वाले प्राणी, भूत पिशाच, रीछ (भालू), शूकर तथा हाथी पुलह के पुत्र थे॥१५॥

अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे। मरीचेः कश्यपः पुत्रः स्वयमेव प्रजापतिः॥१६॥

वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु सन्तान-रहित थे। मरीचि के पुत्र स्वयं प्रजापति कश्यप थे॥१६॥

भृगोरथाभवच्छुक्रो दैत्याचार्यो महातपाः। स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युतिः॥१७॥

भृगु के पुत्र महातपस्वी दैत्यगुरु शुक्राचार्य थे। वह महातेजस्वी, स्वाध्याय में संलग्न योगाभ्यास-निरत रहते थे और भगवान् शिव के भक्त थे॥१७॥

अत्रेःपत्न्योऽभवन् बह्व्यः सोदर्यास्ताः पतिव्रताः[1]। कृशाश्वस्य तु विप्रेन्द्रा घृताच्यामिति मे श्रुतम्॥१८॥

अत्रि की अनेक पत्नियाँ थी वे सभी पतिव्रता पत्नियाँ सहोदर (सगी) बहनें थी। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैंने सुना है कि वे सभी कृशाश्व से घृताची नामक अप्सरा में उत्पन्न हुई थी॥१८॥

स तासु जनयामास स्वस्त्यात्रेयान्महौजसः। वेदवेदाङ्गनिरतान्तपसा हतकिल्बिषान्॥१९॥

अत्रि मुनि की उन पत्नियों से महातेजस्वी, वेद-वेदाङ्गों के अध्ययन में संलग्न एवं तपश्चर्या से विनष्ट पापों वाले कल्याणकारी आत्रेयों (अत्रिवंशजों) का जन्म हुआ था॥१९॥

नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ देवीमरुन्धतीम्। ऊर्ध्वरेतास्तत्र मुनिः शापाद्दक्षस्य नारदः॥२०॥

नारद ने देवी अरुन्धती का कन्यादान वसिष्ठ को दिया था। दक्ष प्रजापति के शाप से नारद मुनि ऊर्ध्व रेता (आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी) हो गये थे॥२०॥

हर्यश्वेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु। शशाप नारदं दक्षः क्रोधसंरक्तलोचनः॥२१॥
यस्मान्मम सुताः सर्वे भवतो मायया द्विज। क्षयं नीतास्त्वशेषेण निरपत्यो भविष्यसि॥२२॥

नारद की माया से हर्यश्वों के नष्ट हो जाने (वनवासी होने) पर क्रोध से लाल नेत्रों वाले दक्ष ने नारद को यह शाप दिया था कि हे द्विज! क्योंकि तुम्हारी माया से मेरे सभी पुत्र पूर्णतः नष्ट हुए हैं, अतः तुम भी सन्तान रहित रहोगे॥२१-२२॥

---

१. अत्रेः पुत्रोऽभवद्वह्निः सोदर्यस्तस्य नैध्रुवः

द्रष्टव्य- अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापतेः। तस्य पत्न्यश्च सुन्दर्यो दशैवासन् पतिव्रताः वायुपुराण २/९/६७

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम्। शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्वज्ञस्तपतां वरः॥२३॥

अरुन्धती से वसिष्ठ ने शक्ति नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। शक्ति के पुत्र पराशर थे, जो श्री-सम्पन्न, सर्वज्ञ, तपस्वियों में श्रेष्ठतम थे॥२३॥

आराध्य देवदेवेशमीशानं त्रिपुरान्तकम्। लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्॥२४॥

पराशर ने त्रिपुरान्तकारी देवाधिदेव भगवान् शिव की आराधना करके कृष्ण द्वैपायन नामक अप्रतिम पुत्र को प्राप्त किया था॥२४॥

द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शङ्करः। अंशांशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम्॥२५॥

कृष्ण द्वैपायन से उनके पुत्र शुक के रूप में साक्षात् भगवान् शिव ही अंशांश रूप में अवतरित होकर अपने परम पद को प्राप्त हुए थे॥२५॥

शुकस्याप्यभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः। भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः।
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता॥२६॥

एतेऽत्रि वंश्याः कथिता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनाम्। अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं कश्यपाद्राजसन्ततिम्॥२७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे ऋषिवंशवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

शुक के पाँच पुत्र हुए थे जो महान् तपस्वी थे। वे भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण और गौर नाम वाले थे। शुक की कीर्तिमती, योगमाता और धृतव्रता नामक कन्याएं भी थी। यह सब ब्रह्मवादी ब्राह्मणों के वंशज कहे गये हैं। अब इसके आगे कश्यप से उत्पन्न राजवंशों की सन्तानों का वर्णन आप लोग सुनें॥२६-२७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'ऋषिवंश-वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

राजवंशवर्णनम्

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात्प्रभुम्। तस्यादित्यस्य चैवासीद्भार्याणां तु चतुष्टयम्।
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां निबोधत॥१॥

संज्ञा त्वाष्ट्री तु सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम्। यमञ्च यमुनाञ्चैव राज्ञी रैवतमेव च॥२॥

प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सावर्णिमात्मजम् शनिञ्च तपतीञ्चैव विष्टिञ्चैव यथाक्रमम्॥३॥

मनोस्तु प्रथमस्यासन्नव पुत्रास्तु तत्समाः। इक्ष्वाकुश्चैव नभगो धृष्टः शर्यातिरेव च॥४॥

अदिति ने कश्यप से आदित्य नामक देवता को जन्म दिया था। उन आदित्य की चार पत्नियाँ थी, जो संज्ञा, राज्ञी, प्रभा और छाया नाम वाली थी। अब उनके पुत्रों को जानो। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने सूर्य से परमोत्तम पुत्र मनु तथा यम और यमुना को उत्पन्न किया था। राज्ञी ने रैवत को जन्म दिया था। प्रभा ने उन भगवान् आदित्य (सूर्य) से प्रभात को जन्म दिया था और छाया ने क्रमशः सावर्ण, शनि, तपती और विष्टि नामक सन्तानों को जनम दिया था॥१-४॥

नरिष्यंतश्च नाभागो ह्यरिष्टः कारुषस्तथा। पृषध्रश्च महातेजा नवैते शक्रसन्निभाः॥५॥

प्रथम मनु के उन्हीं के समान नौ पुत्र थे। जो क्रमशः इक्ष्वाकु, नभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, कारूष, पृषध्र नामक थे। ये सभी इन्द्र के समान महातेजस्वी थे[1]॥५॥

इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च सोमवंशं व्यवर्धयत्। बुधस्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण सङ्गता॥६॥
असूत सोमजाद्देवी पुरूरवसमुत्तमम्। पितृणां तृप्तिकर्तारं बुधादिति हि नः श्रुतम्॥७॥

मनु की ज्येष्ठ और श्रेष्ठ पुत्री इला ने सोम के वंश (चन्द्रवंश) की वृद्धि की थी। उसने सोम के पुत्र बुध के भवन में जाकर उसके साथ समागम के फलस्वरूप पुरूरवा नामक उत्तम पुत्र को जन्म दिया था, जो पितरों को तृप्ति प्रदान करने वाला बना था, ऐसा हमने सुना है॥६-७॥

संप्राप्य पुंस्त्वममलं[2] सुद्युम्न इति विश्रुतः। इला पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमविन्दत॥८॥

तदनन्तर इला ने विशुद्ध रूप से पुरुषत्व (पुरुष का स्वरूप) प्राप्त कर सुद्युम्न के रूप में प्रसिद्ध होकर तीन पुत्रों को प्राप्त किया और तब पुनः वह स्त्रीत्व को प्राप्त कर इला बन गयी थी॥८॥

उत्कलश्च गयश्चैव विनतश्च तथैव च। सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्भवम्॥९॥

उस सुद्युम्न के उत्कल, गय और विनत नामक तीन पुत्र थे। वे सभी पुत्र अतुलनीय कीर्ति वाले थे और ब्रह्मा की शरण में गये थे॥९॥

इक्ष्वाकोश्चाभवद्वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिवः। ज्येष्ठपुत्रः स तस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुताः॥१०॥

इक्ष्वाकु का पुत्र विकुक्षि नामक वीर राजा उसके सभी पुत्रों में ज्येष्ठ था। उसके पन्द्रह पुत्र हुए थे॥१०॥

तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत्काकुत्स्थस्तु सुयोधनः। सुयोधनात्पृथुः श्रीमान्विश्वकश्च पृथोः सुतः॥११॥
विश्वकादार्द्रको धीमान्युवनाश्वश्च तत्सुतः। स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान्॥१२॥

उन (पन्द्रह पुत्रों) में ज्येष्ठ पुत्र ककुत्स्थ नामक था। ककुत्स्थ का पुत्र सुयोधन था। सुयोधन का पुत्र श्रीमान् पृथु था और पृथु का विश्वक् नामक पुत्र था। विश्वक् का बुद्धिमान् पुत्र आर्द्रक था और उस आर्द्रक का पुत्र युवनाश्व था। वह प्रतापी युवनाश्व गोकर्ण तीर्थ में गया था॥११-१२॥

दृष्ट्वाऽसौ गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम्। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ पुत्रकामो महीपतिः।
अपृच्छत्कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम्॥१३॥

१. विष्णु पुराण ४/१/७ के अनुसार मनु के दश पुत्र क्रमशः इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र नामक थे। मत्स्य पुराण ११/४० के अनुसार मनु के दश पुत्रों के नाम क्रमशः इल, इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करूष, शर्याति, पृषध्र और नाभाग नामक थे।

२. प्राप्य पुत्रं सुविमलं,

वहाँ पर उस राजा युवनाश्व ने तपश्चर्या में संलग्न अग्नि के समान द्युतिमान गौतम को देखा। पुत्र की कामना वाले राजा ने दण्डवत् प्रणाम करके यह पूछा कि किस सत्कर्म से धार्मिक पुत्र प्राप्त किया जा सकता है॥१३॥

गौतम उवाच

आराध्य पुरुषं पूर्वं नारायणमनामयम्। अनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम्॥१४॥

गौतम बोले- आदि अन्त रहित पुराण पुरुष नारायण पद वाच्य अनामय (विष्णु) देव की आराधना करके धार्मिक पुत्र को प्राप्त किया जा सकता है॥१४॥

यस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः। तमादिकृष्णमीशानमाराध्याप्नोति सत्सुतम्॥१५॥

स्वयं ब्रह्मा उनके पुत्र हैं और नील लोहित शिव उनके पौत्र हैं। उन आदि पुरुष कृष्णावतार वाले भगवान् विष्णु की आराधना करके उत्तम पुत्र को प्राप्त किया जा सकता है॥१५॥

न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः। तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम्॥१६॥

जिनके प्रभाव को ब्रह्मा भी यथावत् ठीक से नहीं जानते हैं, उन भगवान् विष्णु की आराधना करके धार्मिक पुत्र को प्राप्त किया जा सकता है॥१६॥

स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वो महीपतिः। आराधयन्महायोगं वासुदेवं सनातनम्॥१७॥

गौतम के वचनों को सुनकर राजा युवनाश्व ने महायोगी सनातन वासुदेव भगवान् हृषीकेश-विष्णु की आराधना की थी॥१७॥

तस्य पुत्रोऽभवद् वीरः श्रावस्तिरिति विश्रुतः। निर्मिता येन श्रावस्तिः गौडदेशे महापुरी॥१८॥

[उस आराधना से] युवनाश्व का श्रावस्ति नामक विख्यात वीर पुत्र पैदा हुआ था, जिसने गौड देश में श्रावस्ती नामक महानगर का निर्माण किया (करवाया) था॥१८॥

तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत्तस्मात्कुवलयाश्वकः। धुन्धुमारः समभवत् धुन्धुं हत्वा महासुरम्॥१९॥

उस श्रावस्ति का बृहदश्व नामक पुत्र हुआ था और उस बृहदश्व का कुवलयाश्व नामक पुत्र हुआ था, जो कि धुन्धु नामक महा असुर का वध करने पर धुन्धुमार नाम से प्रसिद्ध हुआ था॥१९॥

धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्ता द्विजोत्तमाः। दृढाश्वश्चैव दण्डाश्वः कपिलाश्वस्तथैव च॥२०॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! धुन्धुमार के तीन पुत्र कहे गये हैं, जो क्रमशः दृढाश्व, दण्डाश्व तथा कपिलाश्व नामक थे॥२०॥

दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः। हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात्संहताश्वकः॥२१॥

दृढाश्व का पुत्र प्रमोद था और उसका पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ था और निकुम्भ का संहताश्व नामक पुत्र था॥२१॥

कृताश्वोऽथ रणाश्वश्च संहताश्वस्य वै सुतौ। युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि॥२२॥

संहताश्व के दो पुत्र क्रमशः कृताश्व और रणाश्व नामक थे। रणाश्व का पुत्र युवनाश्व था, जो युद्ध में इन्द्र के समान बलशाली था॥२२॥

कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः। लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम्।
मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम्॥ २३॥

उस युवनाश्व ने ऋषियों की कृपा से वारुणी इष्टि का अनुष्ठान करके अप्रतिम (अद्वितीय व्यक्तित्व वाले), महाबुद्धिमान्, सभी शस्त्रधारियों में सर्वश्रेष्ठ एवं विष्णुभक्त मान्धाता नामक सर्वोत्तम पुत्र को प्राप्त किया था॥ २३॥

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान्। मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा सर्वे शक्रसमा युधि॥ २४॥

मान्धाता के तीन पुत्र हुए थे, जो क्रमशः पुरुकुत्स, बलशाली अम्बरीश तथा पुण्यात्मा मुचुकुन्द नामक थे। वे सभी युद्ध में इन्द्र के समान (पराक्रमी और अजेय) थे॥ २४॥

अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः। हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत्॥ २५॥

अम्बरीष का पुत्र दूसरा युवनाश्व था। उस युवनाश्व का पुत्र हरित नामक था और उस हरित का पुत्र हारित था॥ २५॥

पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः। नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तत्सुतः स्मृतः॥ २६॥
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत्ततः। बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तत्सुतोऽभवत्॥ २७॥

मान्धाता के दूसरे पुत्र पुरुकुत्स का नर्मदा नामक पत्नी में उत्पन्न महा यशस्वी पुत्र त्रसद्दस्यु नामक था[१] और उसका पुत्र सम्भूति नामक था।[२] उस (सम्भूति) का पुत्र विष्णुवृद्ध और उसका पुत्र अनरण्य था। अनरण्य का पुत्र बृहदश्व था और उसका पुत्र हर्यश्व था॥ २६-२७॥

सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः। प्रसादाद्धार्मिकं पुत्रं लेभे सूर्यपरायणम्॥ २८॥
स तु सूर्यं समभ्यर्च्य राजा वसुमनाः शुभम्। लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिन्दमम्॥ २९॥

उस अत्यन्त धार्मिक राजा हर्यश्व ने कर्दम प्रजापति की कृपा से सूर्य की उपासना में निरत (वसुमना नामक) पुत्र को प्राप्त किया था। उस (हर्यश्व के पुत्र) वसुमना ने सूर्य की आराधना से त्रिधन्वा नामक शत्रुहन्ता अनुपम शुभंकर पुत्र को प्राप्त किया था॥ २८-२९॥

अयजच्चाश्वमेधेन शत्रून् जित्वा द्विजोत्तमाः। स्वाध्यायवान्दानशीलस्तितिक्षुर्धर्मतत्परः॥ ३०॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उस राजा वसुमना ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अश्वमेध यज्ञ किया था। वह स्वाध्याय करने वाला, दान करने वाला, सहिष्णु और धर्म-कृत्यों में संलग्न रहने वाला था॥ ३०॥

ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः। वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः॥ ३१॥

उस राजा के यज्ञ-स्थल में वसिष्ठ, कश्यप आदि प्रमुख ऋषिगणों तथा इन्द्र आदि देवगणों का आगमन हुआ था॥ ३१॥

तान् प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः। समाप्य विधिवद्यज्ञं वसिष्ठादीन्द्विजोत्तमान्॥ ३२॥

राजा वसुमना ने विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान को सम्पन्न करके उन वसिष्ठ कश्यप आदि मुनियों को प्रणाम करके विनय पूर्वक यह पूछा॥ ३२॥

१. पुरुकुत्सो नर्मदायां त्रसद्दस्युमजीजनत् विष्णु ४/३/१६

२. नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः। वायु पुराण उ. २६/७४

वसुमना उवाच

किं हि श्रेयस्करतरं लोकेऽस्मिन् ब्राह्मणर्षभाः। यज्ञस्तपो वा संन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः॥ ३ ३॥

वसुमना बोला- हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आप लोग सर्वज्ञ हैं। अतः यह बतलाइए कि इस लोक में यज्ञ, तप या संन्यास में कौन सर्वाधिक श्रेयस्कर है?॥३३॥

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान्विधिवत्सुतांश्चोत्पाद्य धर्मतः[1]। इष्ट्वा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद्वनमथात्मवान्॥ ३ ४॥

वसिष्ठ जी बोले- आत्मसंयमी व्यक्ति यथाविधि वेदों का अध्ययन करने के बाद (गृहस्थ जीवन में) धर्माचरण करते हुए पुत्रों को उत्पन्न करके और यज्ञों के द्वारा यज्ञेश्वर भगवान् का यजन करके अन्ततः वन को प्रस्थान करे॥३४॥

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनं परमेश्वरम्। प्रव्रजेद्विधिवद्यज्ञैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान्॥ ३ ५॥

पुलस्त्य बोले- सर्वप्रथम सर्वोत्तम देवों की यज्ञों द्वारा यजन अर्थात् पूजन करने के पश्चात् योगी को तपस्या के द्वारा देव परमेश्वर की आराधना करके संन्यास ग्रहण करना चाहिए॥३५॥

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणं परमेश्वरम्। तमाराध्य सहस्रांशुं तपसा मोक्षमाप्नुयात्॥ ३ ६॥

पुलह बोले- जिनको एक मात्र पुराण-पुरुष परमेश्वर कहा गया है, उन सहस्र-किरणों वाले भगवान् (सूर्य) की तपस्या के द्वारा आराधना करके मोक्ष को प्राप्त करना चाहिए॥३६॥

जमदग्निरुवाच

अजो विश्वस्य कर्ता यो जगद्बीजं सनातनः। अन्तर्यामी च भूतानां स देवस्तपसेज्यते॥ ३ ७॥

जमदग्नि बोले- जो स्वयं अजन्मा है, सम्पूर्ण विश्व का स्रष्टा (सृष्टि कर्ता) जगत् का बीज रूप और सनातन है और सभी प्राणियों का अन्तर्यामी है, उस परमात्मा देव की तपस्या के द्वारा आराधना की जानी चाहिए॥३७॥

विश्वामित्र उवाच

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः। स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मखैः॥ ३ ८॥

विश्वामित्र बोले- जो देव अग्नि-स्वरूप है, सर्वजगत् ही जिसका आत्मा है, जो अनन्त, स्वयंभू (स्वतः प्रकट) और सर्वतोमुख (सभी दिशाओं में मुख वाला) है, उन भगवान् रुद्र की कठोर तपस्या से आराधना करनी चाहिए न कि अन्य यज्ञ-यागादि से॥३८॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो वासुदेवः सनातनः। स सर्वदैवततनुः पूज्यते परमेश्वरः॥ ३ ९॥

भरद्वाज बोले- जिन सनातन वासुदेव का यज्ञों से पूजन किया जाता है, उन सभी देवों के विग्रह-स्वरूप परमेश्वर की आराधना तपस्या के द्वारा भी की जा सकती है॥३९॥

१. यत्नतः

अत्रिरुवाच

यतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः। तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः॥४०॥

अत्रि बोले- जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है और प्रजापति भी जिनके पुत्र हैं, उन महेश्वर की अति कठोर तपस्या करके पूजा की जाती है॥४०॥

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिमयं जगत्। स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः॥४१॥

गौतम बोले- जिन परमात्मा से प्रकृति और पुरुष प्रकट हुए हैं और यह सम्पूर्ण जगत् जिनसे शक्तिमान् है, वह सनातन देव तपस्या से पूजनीय हैं॥४१॥

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षी शम्भुः प्रजापतिः। प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसा परः॥४२॥

कश्यप बोले- सहस्र नयनों वाले जो देव सर्व-साक्षी, शम्भु और प्रजापति भी हैं, वह महायोगी परम परमेश्वर तपस्या से पूजित होने पर परम प्रसन्न होते हैं॥४२॥

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि। नान्तरेण तपः कश्चिद्धर्मः शास्त्रेषु दृश्यते॥४३॥

क्रतु बोले- जो व्यक्ति विद्याध्ययन और यज्ञानुष्ठान कर चुका हो और जिसने पुत्र प्राप्त कर लिया हो उसके लिए तपस्या के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म दृष्टिगत नहीं होता है। अर्थात् अन्य कोई धर्म शास्त्रों में विहित नहीं है॥४३॥

इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान् प्रणम्यातिहृष्टधीः। विसर्जयित्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत्॥४४॥
आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम्। प्राणं बृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम्॥४५॥

यह सुनकर उस राजर्षि वसुमना ने उन महर्षियों को प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर उनका पूजन करके उन्हें विदा किया और तब अपने पुत्र त्रिधन्वा से कहा कि अब मैं आदित्य-मण्डल के मध्य में स्थित एक (अद्वितीय) अविनाशी विराट् पुरुष की तपश्चर्या के द्वारा आराधना करूँगा॥४४-४५॥

त्वं तु धर्मरतो नित्यं पालयैतदतन्द्रितः। चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम्॥४६॥

तुम सदैव जागरूक रहकर इस चारों वर्णों से युक्त सम्पूर्ण भूमण्डल [के राज्य का] सदैव जागरूक रहकर पालन करो॥४६॥

एवमुक्त्वा स तद् राज्यं निदायात्मभवे नृपः। जगामारण्यमनघस्तपस्तप्तुमनुत्तमम्॥४७॥

ऐसा कह कर वह निष्पाप राजा उस राज्य को अपने पुत्र को देकर तपश्चर्या हेतु वन में चला गया था॥४७॥

हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवनेशुभे। कन्दमूलफलाहारैरुत्पन्नैरयजत्सुरान्॥४८॥

हिमालय के सुरम्य शिखर में देवदारु वृक्षों के शुभ वन में रहते हुए वहाँ उत्पन्न कन्द-मूल और फलों के आहार पर निर्भर रहते हुए वह देवों को भी (उन्हीं कन्दमूल-फलों से) यजन करता था॥४८॥

संवत्सरशतं साग्रं तपोनिर्धूतकिल्विषः[1] जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्॥४९॥

एक सौ वर्षों से भी अधिक समय तक उस राजा के द्वारा की गयी तपश्चर्या से उसके सभी पाप नष्ट हो गये थे। उसने वेदमाता देवी सावित्री के मन्त्र का मानसिक जप किया था॥४९॥

तस्यैवं तपतो देवः स्वयम्भूः परमेश्वरः। हिरण्यगर्भो विश्वात्मा तं देशमगमत्स्वयम्॥५०॥

उसके इस प्रकार जप में निरत रहने पर विश्वात्मा देव स्वयंभू परमेश्वर स्वयं उस स्थान पर गये थे॥५०॥

दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्। ननाम शिरसा तस्य पादयोर्नाम कीर्तयन्॥५१॥

उन विश्वतोमुख (सब दिशाओं में मुख वाले) देव ब्रह्मा को आते हुए देखकर वसुमना ने उनके नामों का गुण-गान करते हुए उनके चरणों में नत-मस्तक होकर प्रणाम किया था॥५१॥

राजोवाच

नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने। हिरण्यमूर्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे॥५२॥

राजा वसुमना बोला- देवाधिदेव हिरण्यगर्भ, सहस्रनयनों वाले वेधा संज्ञक परमात्मा ब्रह्मा को नमस्कार है॥५२॥

नमो धात्रे विधात्रे च नमो देवात्ममूर्तये। सांख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्तये॥५३॥

धाता, विधाता, वेदात्ममूर्ति, सांख्य-योग के द्वारा ज्ञात किये जाने वाले ज्ञानमूर्ति ब्रह्मा को नमस्कार है॥५३॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने। पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः॥५४॥

हे सृष्टिकर्ता, सर्वार्थज्ञाता त्रिमूर्ति आपको नमस्कार। पुराण-पुरुष, योगीजनों के गुरु ब्रह्मा को नमस्कार है॥५४॥

ततः प्रसन्नो भगवान्विरिञ्चिर्विश्वभावनः। वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ः५५॥

तब [वसुमना के द्वारा ऐसा कहे जाने के बाद] विश्वभावन (विश्व के सृष्टिकर्ता) भगवान् ब्रह्मा ने उससे कहा- तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर माँगो। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ॥५५॥

राजोवाच

जपेयं देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम्। भूयो वर्षशतं साग्रं तावदायुर्भवेन्मम॥५६॥

राजा बोला- हे देवदेवेश! मैं पुनः सौ वर्षों से अधिक समय तक वेदमाता गायत्री का जप कर सकूँ उसके लिए उतनी आयु मेरी हो जाय ऐसा वरदान मुझे प्रदान करें॥५६॥

बाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम्। स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत॥५७॥

विश्वात्मा ब्रह्मा उस राजा को देख कर अत्यन्त प्रसन्न होकर हाँ (ऐसा ही होगा) कह कर उस राजा के ऊपर दोनों हाथों का स्पर्श करके वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे॥५७॥

सोऽपि लब्धवरः श्रीमानूजजापातिप्रसन्नधीः। शान्तस्त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः॥५८॥

१. कल्मषः

तब वह श्रीमान् राजा भी वरदान प्राप्त करके दिन में तीन बार स्नान करते हुए और कन्दमूल एवं फलों के आहार पर निर्भर रहते हुए शान्त और प्रसन्नचित्त होकर गायत्री जप करने लगा था॥५८॥

तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः। प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः॥५९॥

जब उस राजा के जप निरत रहते हुए सौ वर्ष पूर्ण हो गये थे तब सूर्यमण्डल के मध्य से तीव्र प्रकाश करने वाली किरणों वाले महायोगी भगवान् प्रकट हुए थे॥५९॥

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं[1] मण्डलस्थं सनातनम्। स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयं गतः॥६०॥

सूर्यमण्डल के मध्य में स्थित अनादि अनन्त सनातन देवदेवेश स्वयंभू ब्रह्मा को देख कर वह राजा वसुमना आश्चर्यान्वित हो गया था॥६०॥

तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः। क्षणादपश्यत्पुरुषं तमेव परमेश्वरम्॥६१॥
चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम्। चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम्॥६२॥

तब उस राजा ने वैदिक मन्त्रों से तथा विशेषतः गायत्री मन्त्र से उन देवेश्वर की स्तुति की थी। तभी क्षणमात्र पश्चात् उन परम पुरुष परमेश्वर को चार मुखों से युक्त, जटाजूट युक्त, आठ हाथों और तीन नेत्रों से युक्त चन्द्रकला से विभूषित अर्धनारीश्वर स्वरूप वाले शिव के स्वरूप में देखा था॥६१-६२॥

भासयन्तं जगत्कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः। रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम्॥६३॥

वह नीलमण्ठ शिव अपनी किरणों से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित कर रहे थे। वह रक्तवर्ण के थे और रक्तवर्ण (लाल रंग) के वस्त्र धारण किये हुए थे और रक्तवर्ण की माला तथा रक्तवर्ण का अनुलेपन लगाये हुए थे॥६३॥

तद्भावभावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि। ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यानेन चैव हि॥६४॥
नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने। त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे॥६५॥

उन भगवान् शिव को देखकर उनके ही भाव में अनुरक्त होकर राजा वसुमना ने नतमस्तक होकर उनको प्रणाम किया और सावित्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए तथा 'नमस्ते नीलकण्ठाय' आदि मन्त्र से उनकी स्तुति में यह कहाकि सूर्य के समान दीप्तिमान परमेष्ठी, वेदत्रयीमय, कालरूप, सर्व-सृष्टि के कारण-भूत, नीलकण्ठ भगवान् रुद्र को नमस्कार है॥६४-६५॥

तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः। इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणु चानघ॥६६॥

तब भगवान् शिव ने प्रसन्न-चित्त होकर उस राजा से कहा हे निष्पाप राजा! मेरे इन गोपनीय नामों को सुनो॥६६॥

सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु। नमस्कुरुष्व नृपते एभिर्मां सततं शुचिः॥६७॥

ये नाम सभी वेदों में गाये गये हैं और सांसारिक बन्धनों का अन्त करने वाले हैं। हे राजन्! तुम पवित्र होकर इन नामों का कीर्तन करते हुए निरन्तर मुझे नमस्कार करते रहो॥६७॥

---

१. वेदवपुषं

अधीष्व शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम्। जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमना नृप॥६८॥

हे राजन्! मन से मेरा ध्यान करते हुए एकाग्रचित होकर यजुर्वेद के सार रूप में उद्धृत शतरुद्रीय संज्ञक अध्याय (यजुर्वेद का सोलहवां अध्याय) का अध्ययन (पाठ) करो॥६८॥

ब्रह्मचारी निराहारो भस्मनिष्ठः समाहितः। जपेदामरणाद् रुद्रं स याति परमं पदम्॥६९॥

जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए निराहार रहकर शरीर में भस्म-लेपन करके एकाग्रचित्त होकर आजीवन रुद्र (शतरुद्रीय) का जप (पारायण) करता है, वह परम पद को प्राप्त करता है॥६९॥

इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया। पुनः संवत्सरशतं राज्ञे ह्यायुरकल्पयत्॥७०॥

ऐसा कह कर भगवान् रुद्र ने भक्त पर अनुग्रह करने की कामना से उस राजा को पुनः एक सौ वर्ष तक आयु प्रदान कर दी थी॥७०॥

दत्त्वास्मै तत्परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः। क्षणादन्तर्दधे रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत्॥७१॥

उस राजा को ऐसा परम ज्ञान और वैराग्य का भाव प्रदान करके वह परमेश्वर शिव तत्क्षण अन्र्धान हो गये थे। वह सब एक अद्भुत सी बात थी॥७१॥

राजापि तपसा रुद्रं जजापानन्यमानसः। भस्मच्छन्नस्त्रिषवणं स्नात्वा शान्तः समाहितः॥७२॥

वह राजा वसुमना भी दिन में तीन बार स्नान करते हुए शरीर में भस्म लेपन करके शान्त और एकाग्रचित होकर अनन्य भाव से रुद्राध्याय का जप करने लगा था॥७२॥

जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णे वर्षशते पुनः। योगप्रवृत्तिरभवत्कालात्कालपरं पदम्॥७३॥

विवेश तद्वेदसारं[1] स्थानं वै परमेष्ठिनः।
भानोः सुमण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्॥७४॥

इस प्रकार जप-परायण रहते हुए राजा ने जब पुनः एक सौ वर्ष तक की साधना पूर्ण कर ली तब कालक्रमानुसार उसके योग की प्रवृत्ति के फलीभूत होने पर वह सूर्यमण्डल के मध्य में स्थित परमेष्ठी महेश्वर के वेदसार नामक परम उज्जवल स्थान को प्राप्त हुआ था॥७३-७४॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥७५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे राजवंशवर्णने विंशोऽध्यायः॥२०॥

जो व्यक्ति राजा वसुमना के उत्तम चरित को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में सम्मानित होगा॥७५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में राजवंश-कीर्तन-सम्बन्धी बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२०॥

❖❖❖

१. विवेशैतद् वेदसारं

अथैकविंशोऽध्यायः

इक्ष्वाकुवंशावर्णनम्

सूत उवाच

त्रिधन्वा राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयत् महीम्। तस्य पुत्रोऽभवद्विद्वांस्त्रय्यारुण इति श्रुतः॥१॥

राजा वसुमना के पुत्र त्रिधन्वा ने धर्मानुसार पृथिवी का पालन किया था। उस त्रिधन्वा का विद्वान् पुत्र त्रय्यारुण नामक था॥१॥

तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः। भार्या सत्यधना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत्॥२॥

उस त्रय्यारुण का सत्यव्रत नामक महाबली पुत्र था। उसकी सत्यधना नामक पत्नी ने हरिश्चन्द्र नामक पुत्र को जन्म दिया था॥२॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान्। रोहितस्य वृकः पुत्रस्तस्माद्बाहुरजायत।
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत्॥३॥

विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः। विजयस्याभवत्पुत्रः कारुको नाम वीर्यवान्॥४॥

हरिश्चन्द्र का रोहित नामक बलशाली पुत्र था। रोहित का पुत्र हरित नामक था और उस हरित का धुन्धु नामक पुत्र हुआ था। धुन्धु के विजय और सुदेव नामक दो पुत्र हुए थे। विजय का कारुक नामक बलशाली पुत्र था तथा कारुक का वृक नामक पुत्र था और उसका पुत्र बाहु था॥३-४॥

कारुकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद बाहुरजायत। सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः॥५॥

द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा। ताभ्यामाराधितो वह्निः प्रददौ वरमुत्तमम्॥६॥

बाहु का पुत्र परम धार्मिक सगर नामक राजा था। राजा सगर की प्रभा और भानुमती नामक दो पत्नियाँ थीं। उन दोनों के द्वारा आराधना किये जाने पर अग्नि देव ने उनको उत्तम वरदान दिया था॥५-६॥

एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्। प्रभा षष्टिसहस्रन्तु पुत्राणां जगृहे शुभा॥७॥

भानुमती ने असमञ्जस नामक एक पुत्र प्राप्त किया था और प्रभा ने साठ हजार पुत्रों को प्राप्त किया था॥७॥

असमञ्जसपुत्रोऽभूदंशुमान्नाम पार्थिवः। तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः॥८॥

येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता। प्रसादाद्देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः॥९॥

असमञ्जस का पुत्र अंशुमान् नामक राजा था। उसका पुत्र राजा दिलीप था और दिलीप का पुत्र भगीरथ था। उस भगीरथ ने तपस्या करके परमज्ञानी देवाधिदेव महादेव की कृपा से भागीरथी गङ्गा को भूलोक में अवतरित करवाया था॥८-९॥

भगीरथस्य तपसा देवः प्रीतमना हरः। बभार शिरसा गङ्गां सोमान्ते सोमभूषणः॥१०॥

भगीरथ के तप से प्रसन्न चित्त होकर चन्द्रमा को आभूषण रूप में धारण करने वाले भगवान् शिव ने अपने शिर में स्थित चन्द्रमा के अन्तिम किनारे में स्वर्ग से अवतरित गङ्गा को धारण किया था॥१०॥

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह। नाभागस्तस्य दायादः सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥११॥

भगीरथ का श्रुत नामक पुत्र हुआ था। उसका (श्रुत का) पुत्र नाभाग था और उस (नाभाग) का पुत्र सिन्धुद्वीप था॥११॥

अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णो महाबलः। ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सुदासो नाम धार्मिकः।
सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः॥१२॥

उसका (सिन्धु द्वीप का) पुत्र अयुतायु था और अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण था। ऋतुपर्ण का पुत्र सुदास नामक धार्मिक राजा था। उस सुदास का पुत्र सौदास था, जो कल्माषपाद नाम से विख्यात हुआ था॥१२॥

वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके। अश्मकं जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम्॥१३॥

महातेजस्वी मुनि वसिष्ठ ने कल्माषपाद की पत्नी में अश्मक नामक क्षेत्रज पुत्र को उत्पन्न किया था, जो इक्ष्वाकु वंश के ध्वज (पताका) के समान था॥१३॥

अश्मकस्योत्कलायान्तु नकुलो नाम पार्थिवः। स हि रामभयाद्राजा वनं प्राप सुदुःखितः॥१४॥
दधत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत्। तस्माद् बिलिबिलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः॥१५॥

अश्मक का उत्कला नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र नकुल नामक राजा था। वह राम (अर्थात् परशुराम) के भय से अत्यन्त दुःखी होकर वन में चला गया था। उसने अपनी रक्षा हेतु नारी-कवच बनाया था अर्थात् वह नारी-समूह के मध्य में गुप्त रूप से निवास करता था। उस नकुल का शतरथ नामक पुत्र हुआ था। उस शतरथ का बिलिबिलि नामक श्री-सम्पन्न पुत्र था और उसका वृद्ध शर्मा नामक पुत्र हुआ था॥१४-१५॥

तस्माद्विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः। दीर्घबाहुः सुतस्तस्माद्रघुस्तस्मादजायत॥१६॥

उस वृद्ध शर्मा का विश्वसह नामक पुत्र हुआ था और उसका खट्वाङ्ग नामक प्रसिद्ध पुत्र था। उस खट्वाङ्ग का दीर्घबाहु नामक पुत्र हुआ था और उस दीर्घबाहु का रघु नामक पुत्र हुआ था॥१६॥

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः। रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।
जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वकृत्॥१७॥

राजा रघु के पुत्र अज हुए थे और उन अज के पुत्र राजा दशरथ थे। दशरथ के वीर पुत्र राम धर्म के ज्ञाता थे और वे सम्पूर्ण लोक में प्रसिद्ध हुए हैं। विश्व के स्रष्टा भगवान् विष्णु ही रावण के वध हेतु अंशतः राम के रूप में अवतरित हुए थे॥१७॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः। सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः॥१८॥

[भगवान् राम के भ्राता] लक्ष्मण, भरत और महाबली शत्रुघ्न ये सभी भगवान् विष्णु की शक्ति से युक्त थे और युद्ध में देवराज इन्द्र के समान [अजेय] थे॥१८॥

रामस्य भार्या सुभगा जनकस्यात्मजा शुभा। सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता॥ १९॥

राजा जनक की सुमङ्गली कन्या सीता भगवान् राम की सौभाग्यवती पत्नी थी। वह सच्चरित्र और उदारता जैसे गुणों वाली सीता तीनों लोकों में विख्यात थी॥१९॥

तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा। प्रायच्छज्जानकीं सीतां राममेवाश्रिता पतिम्॥ २०॥

राजा जनक के द्वारा तपश्चर्या से प्रसन्न की गयी देवी पार्वती ने उनको जानकी सीता वरदान रूप में प्रदान की थी। तब सीता ने राम को ही पति रूप में प्राप्त किया था॥२०॥

प्रीतश्च भगवानीशस्त्रिशूली नीललोहितः। प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायाद्भुतं धनुः॥ २१॥

त्रिशूलधारी नीललोहित भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर राजा जनक को एक अद्भुत धनुष प्रदान किया था॥२१॥

स राजा जनको धीमान् दातुकामाः सुतामिमाम्। अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन्द्विजपुङ्गवाः॥ २२॥

इदं धनुः समादातुं यः शक्नोति जगत्त्रये। देवो वा दानवो वापि स सीतां लब्धुमर्हति॥ २३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उस विद्वान् एवं परम ज्ञानी राजा जनक ने अपनी उस कन्या का दान करने की कामना से इस लोक में यह घोषणा करवायी थी कि तीनों लोकों में चाहे कोई देवता हो या दानव ही क्यों न हो, जो भी इस धनुष को उठा लेने में समर्थ होगा, वह सीता को प्राप्त कर सकता है॥२२-२३॥

विज्ञाय रामो बलावानूजनकस्य गृहं प्रभुः। भञ्जयामास चादाय गत्वासौ लीलयैव हि॥ २४॥

यह जानकर भगवान् राम ने जनक के घर जाकर उस धनुष को हाथ में लेकर खेल खेल में (आसानी से) तोड़ दिया था॥२४॥

उद्ववाहाथ तां कन्यां पार्वतीमिव शङ्करः। रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः॥ २५॥

तब भगवान् राम ने उस कन्या सीता से उसी प्रकार विवाह किया था, जिस प्रकार कि शिव ने पार्वती से और कुमार कार्तिकेय ने सेना (देवसेना) से किया था॥२५॥

ततो बहुतिथे काले राजा दशरथः स्वयम्। रामं ज्येष्ठं सुतं वीरं राजानं कर्तुमारभत्॥ २६॥

तब बहुत दिन का समय बीत जाने पर स्वयं राजा दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र बलशाली राम के राज्याभिषेक का कार्यक्रम आरम्भ करने लगे थे॥२६॥

तस्याथ पत्नी सुभगा कैकेयी चारुहासिनी। निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा॥ २७॥

मत्सुतं भरतं वीरं राजानं कर्तुमर्हसि। पूर्वमेव वरौ यस्माद्दत्तौ मे भवता यतः॥ २८॥

तभी उनकी सौभाग्यवती मधुर भाषिणी कैकेयी विक्षिप्त बुद्धि वाली हो गयी और उसने अपने पति राम का राज्याभिषेक करने से रोक दिया और यह कहा कि आप मेरे वीर पुत्र भरत को राजा बना सकते हैं, क्योंकि आपने मुझे पहले ही वर दे रखा है॥२७-२८॥

स तस्या वचनं श्रुत्वा राजा दुःखितमानसः। बाढमित्यब्रवीद्वाक्यं तदा[1] रामोऽपि धर्मवित्॥ २९॥

प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः। ययौ वनं सपत्नीकः कृत्वा समयमात्मवान्॥ ३०॥

१. तथा

संवत्सराणां चत्वारि दश चैव महाबलः। उवास तत्र भगवान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः॥ ३१॥

उस कैकेयी के वचन सुनकर राजा दशरथ ने दुःखी मन से 'तथास्तु' (हाँ ऐसा ही होगा) ऐसा वाक्य कह दिया था। तब धर्म के ज्ञाता भगवान् राम ने भी पिता दशरथ के चरणों में झुक कर प्रणाम करके अनुज लक्ष्मण तथा पत्नी सीता सहित वन को प्रस्थान किया था। वनवास की प्रतिज्ञा के अनसुार चौदह वर्ष की अवधि तक वह प्रभु भगवान् राम (पत्नी सीता तथा भ्राता) लक्ष्मण के साथ वन में रहे थे॥२९-३१॥

कदाचिद्वसतोऽरण्ये रावणो नाम राक्षसः। परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पुरीम्॥ ३२॥

उनके वनवास काल में एक बार रावण नामक राक्षस संन्यासी के वेश में वहाँ आकर सीता का अपहरण करके लंकापुरी को चला गया था॥३२॥

अदृष्ट्वा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ। दुःखशोकाभिसन्तप्तौ बभूवतुररिन्दमौ॥ ३३॥

[अपने आश्रम में] सीता को न देखकर शत्रुओं का दमन करने वाले राम और लक्ष्मण दुःख और शोक से सन्तप्त हो गये थे, उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल (निष्क्रिय) सी हो गयी थी॥३३॥

ततः कदाचित्कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः। सञ्जातं दैवतः[1] सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ ३४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! तभी अक्लिष्टकर्मा (अथक रूप से सार्थक कर्म करने वाले) भगवान् राम की मित्रता भाग्यवश सुग्रीव से हो गयी थी॥३४॥

सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनूमान्नाम वानरः। वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा॥ ३५॥

सुग्रीव के अनुगामी वायु-पुत्र महातेजस्वी हनुमान नामक वीर वानर भगवान् राम को सदैव प्रिय थे॥३५॥

स कृत्वा परमं धैर्यं रामाय कृतनिश्चयः। आनयिष्यामि तां सीतामित्युक्त्वा विचचार ह॥ ३६॥
महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्परः। जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम्॥ ३७॥

उन हनुमान् जी ने परम धैर्य के साथ यह निश्चय किया कि मैं सीता को [खोज कर] ले आवूँगा। ऐसा कह कर सीता को देखने-खोजने में संलग्न होकर वह समुद्र पर्यन्त धरती तक जाकर उससे आगे समुद्र के मध्य में स्थित रावण की नगरी लंका में पहुँच गये थे॥३६-३७॥

तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम्। अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिः समावृताम्॥ ३८॥
अश्रुपूर्णेक्षणां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम्। राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणं चात्मसंस्थितम्॥ ३९॥

हनुमान् जी ने वहाँ निर्जन स्थान पर एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई सुन्दरी, निर्मल चरित्र की सीता को देखा था, जो कि राक्षसियों से घिरी हुई थी। उस अनिन्ध सुन्दरी सीता की आँखों में आँसू भरे हुए थे। वह नीलकमल के समान वर्ण वाले भगवान् श्री राम तथा आत्मसंयमी लक्ष्मण का स्मरण कर रही थी॥३८-३९॥

निवेदयित्वा चात्मानं सीतायै रहसि प्रभुः। असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम्॥ ४०॥

१. वानराणामभूत् सख्यं

उन वानरेन्द्र हनुमान जी ने एकान्त में सीता को अपना परिचय बतलाकर उनके संशय (संदेह) के निराकरण हेतु उनको भगवान् राम की अँगूठी प्रदान की थी॥४०॥

दृष्ट्वांगुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम्। मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फारितेक्षणा॥४१॥

अपने पति की उस परम सुन्दर अँगूठी को देखकर सीता की आँखें प्रेमवश खुली की खुली रह गयी थी। सीता ने यह समझ लिया था कि मानो राम स्वयं आये हों॥४१॥

समाश्वास्य तदा सीतां दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम्। नयिष्ये त्वां महाबाहुमुक्त्वा रामं ययौ पुनः॥४२॥

तब हनुमान जी ने सीता जी को देखकर मैं आपको श्री राम के पास ले जाऊँगा- ऐसा आश्वासन दिया और तब वह महाबाहु हनुमान् राम के पास चले गये थे॥४२॥

निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान्। तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः॥४३॥

आत्मवेत्ता हनुमान जी सीता को प्रत्यक्ष देखने की बात का निवेदन भगवान् राम से करके उनके समक्ष खड़े हो गये थे। [तब भगवान् राम और] लक्ष्मण ने हनुमान् का यथोचित सत्कार किया था॥४३॥

ततः स रामो बलवान्सार्धं हनुमता स्वयम्। लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिञ्चक्रे हि राक्षसः॥४४॥

तब बलशाली भगवान् राम ने लक्ष्मण और हनुमान को साथ लेकर स्वयं उस राक्षस रावण के साथ युद्ध करने का मन से निश्चय किया था॥४४॥

कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः। सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान्प्रभुः॥४५॥
सपत्नीकं हि ससुतं सभ्रातृकमरिन्दमः। आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान्॥४६॥

लङ्का के मार्ग में सैकड़ों वानरों के सहयोग से समुद्र में सेतु निर्माण करके शत्रुहन्ता भगवान् राम पवन पुत्र हनुमान् के सहयोग से युद्ध में रावण को उसकी पत्नी पुत्र और भ्राता सहित मार कर अपनी पत्नी सीता को ले आये थे॥४५-४६॥

सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम्। स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघवः॥४७॥

भगवान् राम ने समुद्र में बनाये गये सेतु के मध्य में कृत्तिवासा (व्याघ्रचर्मधारी) परमेश्वर महादेव को लिङ्ग रूप में प्रतिष्ठापित करके उनका पूजन किया था॥४७॥

तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शङ्करः। प्रत्यक्षमेव भगवान्दत्तवान्वरमुत्तमम्॥४८॥

यत्त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीदं द्विजातयः।
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं नशिष्यति॥४९॥

अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ। दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः॥५०॥

तब देवाधिदेव महादेव भगवान् शङ्कर ने पार्वती सहित प्रत्यक्ष दर्शन देकर यह वरदान दिया था कि आपके द्वारा इस लिङ्ग का दर्शन जो भी द्विजाति करेंगे वे यदि महापापी भी होंगे तो उनका पाप नष्ट हो जायेगा। यहाँ स्नान करने वाले के अन्य जो भी पाप होंगे वे सब यहाँ महासागर में स्नान करके इस लिङ्ग के दर्शन से निःसन्देह नष्ट हो जावेंगे॥४९-५०॥

यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावदेशा च मेदिनी। यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः॥५१॥

जब तक पर्वत रहेंगे, जब तक यह पृथिवी रहेगी और जव तक यह सेतु रहेगा तव तक मैं गुप्त रूप से यहाँ रहूँगा॥५१॥

स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वं भवतु चाक्षयम्। स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणश्यति॥५२॥

यहाँ किया गया स्नान, दान, तप और श्राद्ध भी अक्षय रहेगा। इस लिङ्ग के स्मरण मात्र से दिन भर का किया गया पाप नष्ट हो जायेगा॥५२॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुः परिष्वज्य तु राघवम्। सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत॥५३॥

ऐसा कह कर भगवान् शिव प्रभु श्रीराम का आलिङ्गन करके अपने वाहन नन्दी तथा अपने गणों सहित वहीं अन्तर्धान हो गये थे॥५३॥

रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायणः। अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबलः॥५४॥

भरत के द्वारा राम का राज्याभिषेक किये जाने पर महातेजस्वी और महाबली राम ने धर्मपरायण रहते हुए राज्य का पालन किया था॥५४॥

विशेषाद् ब्राह्मणान् सर्वान्पूजयामास चेश्वरम्। यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शङ्करम्॥५५॥

भगवान् राम ने विशेष रूप से सभी ब्राह्मणों की पूजा थी। उन्होंने दक्षयज्ञ के विध्वंसकर्ता भगवान् शिव की पूजा अश्वमेध यज्ञ करके की थी॥५५॥

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः। लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित्सुधीः॥५६॥

राम का एक पुत्र कुश नाम से विख्यात हुआ था और दूसरा पुत्र महा भाग्यशाली, सर्वतत्त्वार्थ-ज्ञाता विद्वान् लव था॥५६॥

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत्। नलश्च निषधस्यासीत् नभस्तस्मादजायत॥५७॥

कुश का पुत्र अतिथि नामक हुआ था और उस अतिथि का निषध नामक पुत्र हुआ था। निषध का नल नामक पुत्र था, उसका नभस नामक पुत्र हुआ था॥५७॥

नभसः पुण्डरीकाक्षः क्षेमधन्वा तु तत्सुतः। तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान्॥५८॥

नभस का पुत्र पुण्डरीकाक्ष था और उसका पुत्र क्षेमधन्वा नामक था। उस क्षेमधन्वा का देवानीक नामक परम तेजस्वी वीर पुत्र था॥५८॥

अहीनगुस्तस्य सुतो सहस्वांस्तत्सुतोऽभवत्[1]। तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडश्च[2] तत्सुतः॥५९॥

उस देवानीक का अहीनगु नामक पुत्र था और अहीनगु का पुत्र सहस्वान् (पाठान्तर महस्वान्) था और उसका पुत्र चन्द्रावलोक नाम वाला था। चन्द्रावलोक का पुत्र तारापीड (पाठान्तर-ताराधीश) था॥५९॥

[3]तारापीडाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत्। श्रुतायुरभवत्तस्मादेते चेक्ष्वाकुवंशजाः।
सर्वे प्राधान्यतः प्रोक्ताः समासेन द्विजोत्तमाः॥६०॥

---

१. द्रष्टव्य- अहीनगोस्तु दायादः पारियात्रो महायशाः। वायु पुराण २/२६/२०३
अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः। ब्रह्मपुराण ६/९१

२. ताराधीशश्च, ३. ताराधीशाच्च

तारापीड (ताराधीश) का पुत्र चन्द्रगिरि और उस चन्द्रगिरि का पुत्र भानुवित्त था। भानुवित्त का श्रुतायु नामक पुत्र हुआ था। ये सभी इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न राजा थे। हे श्रेष्ठ द्विजो! ये सब [इक्ष्वाकु वंश के] प्रमुख राजा संक्षेप में मैंने कहे हैं॥६०॥

य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो देवलोके महीयते॥६१॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः॥२१॥

जो व्यक्ति इक्ष्वाकु के इस वंश की कथा को नित्य सुनेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठिा प्राप्त करेगा॥६१॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'इक्ष्वाकुवंश का वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

चन्द्रवंशावर्णनम्

सूत उवाच

ऐलः पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत्। तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजसः॥१॥

सूत जी बोले- इला के पुत्र पुरूरवा ने अपने राज्य का पालन किया था। उसके छः पुत्र थे, जो इन्द्र के समान तेजस्वी थे॥१॥

आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्चैव वीर्यवान्। शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः[1]॥२॥

उर्वशी से उत्पन्न उसके छः दिव्य पुत्र क्रमशः आयु, मायु, अमायु[३] तथा पराक्रमी विश्वायु एवं शतायु और श्रुतायु नामक थे॥२॥

आयुषस्तनया वीराः पञ्चैवासन्महौजसः स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति नः श्रुतम्॥३॥

आयुष के पाँच महातेजस्वी वीर पुत्र थे। यह सुना है कि वे स्वर्भानु (राहु) की पुत्री प्रभा से उत्पन्न हुए थे॥३॥

नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः। नहुषस्य तु दायादाः पञ्चेन्द्रोपमतेजसः॥४॥

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महाबलाः। [2]यातिर्ययातिः संयातिरायातिः पञ्चमोऽश्वकः॥५॥

उनमें से प्रथम पुत्र नहुष नामक था, जो धर्म का ज्ञाता था और लोक में प्रसिद्ध था। नहुष के

---

१. ऐल पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः। दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः॥११॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्माश्रुतायुश्च तथापरः। दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्वशीसुताः॥- ब्रह्मपुराण ८/११-१२

२. यति (पाठान्तर)

पाँच पुत्र थे, जो इन्द्र के समान तेजस्वी और महाबलशाली थे। वे पितरों की कन्या विरजा में उत्पन्न हुए थे। उनका नाम क्रमशः याति (यति), ययाति, संयाति, आयाति और पाँचवा पुत्र अश्वक नाम का था॥४-५॥

तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः। देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः।
शर्मिष्ठामासुरीञ्चैव तनयां वृषपर्वणः॥६॥

उन पाँचों में से महाबली और पराक्रमी पुत्र ययाति ने उशना (शुक्राचार्य) की पुत्री देवयानी तथा असुर वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को पत्नी रूप में प्राप्त किया था॥६॥

यदुञ्च तुर्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत। द्रुह्युञ्चानुञ्च पुरुञ्च शर्मिष्ठा चाप्यजीजनत्॥७॥

देवयानी ने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया था और शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु और पुरु को उत्पन्न किया था॥७॥

सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्य ज्येष्ठं यदुमनिन्दितम्। पुरुमेव कनीयांसं पितुर्वचनपालकम्॥८॥

ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु का अतिक्रमण करके पिता के वचन का पालन करने वाले कनिष्ठ पुत्र पुरु का राज्याभिषेक किया था॥८॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्। दक्षिणापरयो राजा यदुं श्रेष्ठं न्ययोजयत्।
प्रतीच्यामुत्तरायाञ्च द्रुह्युञ्चानुमकल्पयत्॥९॥

ययाति ने दक्षिण-पूर्व दिशा के राज्य में अपने पुत्र तुर्वसु को राजा बनाया था। दक्षिण-पश्चिम दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को राजा बनाया था। पश्चिम दिशा में द्रुह्यु को तथा उत्तर दिशा में अनु को राज्य का अंश दिया था॥९॥

तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता। राजापि दारसहितो वनं प्राप महायशाः॥१०॥

ययाति के उन सभी पुत्रों ने धर्मानुसार इस सम्पूर्ण पृथिवी का पालन किया था। [उन पुत्रों को राज्य देकर वह] महा यशस्वी राजा ययाति अपनी पत्नी सहित वन को चले गये थे॥१०॥

यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः। सहस्रजित्तथा श्रेष्ठः क्रोष्टुर्नीलो[१] जिनो रघुः॥११॥

यदु के पाँच पुत्र थे, जो देवताओं के समान थे। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र सहस्रजित् नामक था तथा अन्य पुत्र क्रमशः क्रोष्टु, नील, अजित और रघु नामक थे॥११॥

सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः। सुताः शतजितोऽप्यासंस्त्रयः परमधार्मिकाः॥१२॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः। हैहस्याभवत्पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुतः॥१३॥

सहस्रजित् का पुत्र उसी के समान राजा था, उसका नाम शतजित् था। शतजित् के तीन पुत्र थे, जो परम धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे क्रमशः हैहय, हय तथा वेणुहय नामक थे। हैहय का धर्मनामक प्रसिद्ध पुत्र था॥१२-१३॥

तस्य पुत्रोऽभवद्विप्रा धर्मनेत्रः प्रतापवान्। धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु सञ्जितस्तत्सुतोऽभवत्॥१४॥

१. नीलोऽजितो

उस धर्म का धर्मनेत्र नामक शक्तिशाली पुत्र था। धर्मनेत्र का पुत्र कीर्ति था और उस कीर्ति का सज्जित नामक पुत्र था॥१४॥

महिष्मान् सज्जितस्याभूद्भद्रश्रेण्यस्तदन्वयः। भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः॥१५॥

सज्जित का पुत्र महिष्मान् था और उसका पुत्र भद्रश्रेण्य नाम वाला था। भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नामक राजा था॥१५॥

दुर्दमस्य सुतो धीमानन्धको नाम वीर्यवान्। अन्धकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसंमताः॥१६॥
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च।[1] कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कार्तवीर्यस्तथार्जुनः॥१७॥

दुर्दम का अन्धक नामक बुद्धिमान् और बलवान् पुत्र था। अन्धक के चार लोकप्रिय पुत्र क्रमशः कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा नामक थे। इनमें से कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन था॥१६-१७॥

सहस्रबाहुर्द्युतिमान्धनुर्वेदविदां वरः। तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्दनः॥१८॥

वह सहस्रभुजाओं वाला, तेजस्वी और धनुर्वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ था। जमदग्नि के पुत्र भगवान् जनार्दन राम (परशुराम) ने उसका वध किया था॥१८॥

तस्य पुत्रशतान्यासन् पञ्च तत्र महारथाः। कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः॥१९॥

उस सहस्रबाहु कार्तवीर्याजुन के एक सौ पुत्र थे। उनमें से पाँच पुत्र महारथी, अस्त्रविद्या में निपुत्र, बलशाली, शूर-वीर, धर्मात्मा और परम बुद्धिमान् थे॥१९॥

शूरश्च शूरसेनश्च कृष्णो धृष्णस्तथैव च। जयध्वजश्च बलवान्नारायणपरो नृपः॥२०॥
शूरसेनादयः सर्वे चत्वारः प्रथितौजसः। रुद्रभक्ता महात्मानः पूयजन्ति स्म शङ्करम्॥२१॥

वे क्रमशः शूर, शूरसेन, कृष्ण, घृण तथा जयध्वज नामक थे। इनमें बलवान् राजा जयध्वज भगवान् विष्णु का भक्त था। (जयध्वज के) शूरसेन आदि विख्यात पराक्रम वाले चारों महात्मा भ्राता भगवान् शिव के भक्त थे और उनकी ही पूजा करते थे॥२०-२१॥

जयध्वजस्तु मतिमान्देवं नारायणं हरिम्। जगाम शरणं विष्णुं दैवतं धर्मतत्परः॥२२॥

धर्मपरायण बुद्धिमान् जयध्वज देवेश्वर नारायण हरि भगवान् विष्णु की शरण में चला गया था॥२२॥

तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ। ईश्वराराधनरतः पितास्माकमिति श्रुतिः॥२३॥

कार्तवीर्यार्जुन के अन्य चार पुत्रों ने उस जयध्वज से कहा कि हे अनघ! यह तुम्हारा धर्म नहीं है। यह हम सबने जाना और सुना है कि हमारे पिता सदैव भगवान् शिव की आराधना में लीन रहते थे॥२३॥

तानब्रवीन्महातेजा ह्येष धर्मः परो मम। विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो ये महीतले॥२४॥

तब महातेजस्वी जयध्वज ने उनसे कहा कि यह [विष्णु-पूजन] मेरा परम धर्म है। इस पृथिवी में जितने भी राजा हैं, वे भगवान् विष्णु के ही अंश से उत्पन्न हुए हैं॥२४॥

---

१. चतत्सुतः

राज्यं पालयतावश्यं[1] भगवान्पुरुषोत्तमः। पूजनीयोऽजितो विष्णुः पालको जगतां हरिः॥ २५॥

राज्य का पालन करने वाले [राजा] को अवश्यमेव अजेय पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए, क्योंकि वह भगवान् विष्णु ही पालन करने वाले हैं॥ २५॥

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयंभुवः[2]। तिस्रस्तु मूर्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः॥ २६॥

सत्त्वात्मा भगवान्विष्णुः संस्थापयति सर्वदा। सृजेद् ब्रह्मा रजोमूर्तिः संहरेत् तामसो हरः॥ २७॥

स्वयंभू (परम ब्रह्म) की सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन मूर्तियाँ सृष्टि, पालन और संहार करने वाली बतलायी गयी हैं। सत्त्वगुण वाले विष्णु सर्वदा जगत् की स्थिति कारक हैं- पालनकर्ता हैं, रजोगुण की मूर्ति ब्रह्मा सृष्टि के कर्ता हैं और तमोगुण वाले रुद्र सृष्टि का संहार करते हैं॥ २६-२७॥

तस्मान्महीपतीनान्तु राज्यं पालयतामयम्[3]। आराध्यो भगवान्विष्णुः केशवः केशिमर्दनः॥ २८॥

अतः राज्य का पालन करने वाले राजाओं को केशि-दानवहन्ता भगवान् केशव-विष्णु की आराधना करनी चाहिए॥ २८॥

निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्ये मनस्विनः। प्रोचुः संहारको रुद्रः पूजनीयो मुमुक्षुभिः॥ २९॥

उन जयध्वज के वचन सुनकर उनके अन्य चार मनस्वी (बुद्धिमान, उच्चविचार वाले) भ्राताओं ने कहा कि मोक्ष की कामना वालों को सृष्टि के संहारकर्ता रुद्र की पूजा करनी चाहिए॥ २९॥

अयं हि भगवान्रुद्रः सर्वं जगदिदं शिवः। तमोगुणं समाश्रित्य कल्पान्ते संहरेत्प्रभुः॥ ३०॥

यह भगवान् रुद्र संज्ञक शिव कल्प के अन्त में तमोगुण का आश्रय लेकर इस सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं॥ ३०॥

या सा घोरतमा मूर्तिरस्य तेजोमयी परा। संहरेद् विद्यया पूर्वं संसारं शूलभृत् तया॥ ३१॥

भगवान् शंकर की जो परम तेजोमय घोर (विकराल) मूर्ति है, वह परा विद्या स्वरूपा है, वह त्रिशूलधारी शिव उसी से सम्पूर्ण संसार का संहार करते हैं॥ ३१॥

ततस्तानब्रवीद्राजा विचिन्त्यासौ जयध्वजः। सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान्हरिः॥ ३२॥

राजा जयध्वज ने मन में कुछ चिन्तन करके उन भ्राताओं से यह कहा कि मनुष्य सत्त्वगुण वाला होने पर ही [भव-बन्धन से] मोक्ष प्राप्त करता है और भगवान् विष्णु सत्वात्मा (सत्त्वगुण स्वरूप) हैं॥ ३२॥

तमूचुर्भ्रातरो रुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः। मोचयेत्सत्त्वसंयुक्तः पूजयेत्सततं हरम्॥ ३३॥

तब राजा जयध्वज के भ्राताओं ने उससे कहा कि सात्त्विक जनों के द्वारा उपासना किये जाने पर भगवान् रुद्र सत्त्वगुण वाले होकर उनको मुक्ति प्रदान करते हैं, अतः उन ईश्वर शिव की सदैव पूजा करनी चाहिए॥ ३३॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रः प्रहसन्वै जयध्वजः। स्वधर्मो मुक्तये युक्तो नान्यो मुनिभिरिष्यते॥ ३४॥

तब राजकुमार जयध्वज ने हँसते हुए यह कहा कि स्वधर्म का पालन ही मुक्ति का मार्ग है, तदतिरिक्त कोई अन्य मार्ग मुनियों को अभीष्ट नहीं है॥ ३४॥

१. पालयिता, २. स्वयं प्रभुः, ३. पालयतामिदम्

तथा च वैष्णवीं शक्तिं नृपाणानूदधतां सदा। आराधनं परो धर्मो मुरारेरमितौजसः॥ ३५॥

और इसके साथ ही भगवान् विष्णु की शक्ति को सदैव धारण करने वाले राजाओं के लिए अमित (अतुलनीय) शक्तिमान् भगवान् विष्णु की आराधना करना ही परम धर्म है॥ ३५॥

तमब्रवीद्राजपुत्रः कृष्णो मतिमतां वरः। यदर्जुनोऽस्मज्जनकः स धर्मं कृतवानिति॥ ३६॥

तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कृष्ण नामक राजपुत्र ने कहा कि हमारे पिता कार्तवीर्य अर्जुन ने भी स्वधर्म का पालन किया था॥ ३६॥

एवं विवादे वितते शूरसेनोऽब्रवीद्वचः। प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्ते यत् तथैव तत्॥ ३७॥

इस प्रकार विवाद के बढ़ते जाने पर शूरसेन (कार्तवीर्यार्जुन का अन्य पुत्र) ने कहा कि इस विषय में ऋषिगण ही प्रमाण हैं। अतः वे जो कहेंगे वही समीचीन होगा॥ ३७॥

ततस्ते राजशार्दूलाः पप्रच्छुर्ब्रह्मवादिनः। गत्वा सर्वे सुसंरब्धाः सप्तर्षीणां तदाश्रमम्॥ ३८॥

तब उन सभी सुसंरब्ध (उत्तेजित) राजकुमारों ने सप्तर्षियों के आश्रम में जाकर उन ब्रह्मवादी ऋषियों से [अपना अभीष्ट] प्रश्न पूछा था॥ ३८॥

तानब्रुवंस्ते मुनयो वसिष्ठाद्या यथार्थतः। या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता॥ ३९॥

किन्तु कार्यविशेषेण पूजिता चेष्टदा नृणाम्। विशेषात्सर्वदा नायं नियमो ह्यन्यथा नृपाः॥ ४०॥

तब वसिष्ठ आदि मुनियों ने यह यथार्थ बतलाया कि जिसको जो देवता अभीष्ट हो वही उसका इष्ट देव होता है, किन्तु कार्य विशेष की सिद्धि के लिए जिस देवता की पूजा की जाती है, वही देवता उस उपासक की इच्छा को पूर्ण करता है। किन्तु हे राजकुमारो! उस कार्य के अर्थात् उस इच्छा के पूर्ण हो जाने के बाद भी (यदि वह इष्टदेव नहीं है तो) उसकी पूजा सर्वदा करने का नियम नहीं है॥ ३९-४०॥

नृपाणां दैवतं विष्णुस्तथैव च[1] पुरन्दरः। विप्राणामग्निरादित्यो ब्रह्मा चैव पिनाकधृक्॥ ४१॥

राजाओं के देवता विष्णु तथा इन्द्र हैं। ब्राह्मणों के देवता अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा और शिव हैं॥ ४१॥

देवानां दैवतं विष्णुर्दानवानां त्रिशूलधृक्। गन्धर्वाणां तथा सोमो यक्षाणामपि कथ्यते॥ ४२॥

देवों के देवता विष्णु हैं और दानवों के देवता त्रिशूलधारी शिव हैं। गन्धर्वों तथा यक्षों के देवता सोम (चन्द्रमा) कहे गये हैं॥ ४२॥

विद्याधराणां वाग्देवी सिद्धानां भगवान् हरिः। रक्षसां शङ्करो रुद्रः किन्नराणाञ्च पार्वती॥ ४३॥

विद्याधरों की देवता सरस्वती हैं और सिद्धों के देवता भगवान् विष्णु हैं। राक्षसों के देवता रुद्र-शङ्कर हैं और किन्नरों की इष्ट पार्वती हैं॥ ४३॥

ऋषीणां भगवान् ब्रह्मा महादेवस्त्रिशूलभृत्। मान्या स्त्रीणामुमा देवी तथा विष्ण्वीशभास्कराः॥ ४४॥

ऋषियों के देवता भगवान् ब्रह्मा और त्रिशूलधारी महादेव हैं। स्त्रियों की आराध्य देवी पार्वती तथा विष्णु, शिव और सूर्य हैं॥ ४४॥

गृहस्थानाञ्च सर्वे स्युर्ब्रह्म वै ब्रह्मचारिणाम्। वैखानसानामर्कः स्याद्यतीनां च महेश्वरः॥ ४५॥

---

१. तथेशश्च पुरन्दरः

गृहस्थों के लिए सभी देवता पूजनीय हैं और ब्रह्मचारियों के लिए ब्रह्मा, वैखानसों (वानप्रस्थ, भिक्षुओं) के देवता सूर्य तथा संन्यासियों के देवता महादेव शिव हैं॥४५॥

भूतानां भगवान्रुद्रः कूष्माण्डानां विनायकः। सर्वेषां भगवान् ब्रह्मा देवदेवः प्रजापतिः॥४६॥

भूतों के देवता भगवान् रुद्र (शिव) हैं और कूष्माण्डों के देवता विनायक हैं और देवदेव प्रजापति भगवान् ब्रह्मा सभी के देवता हैं॥४६॥

इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्वयं देवो ह्यभाषत। तस्माज्जयध्वजो नूनं विष्ण्वाराधनमर्हति॥४७॥

[सप्तर्षियों ने कहा] यह सब स्वयं भगवान् ब्रह्मा ने कहा है। अतः राजा जयध्वज निश्चयमेव भगवान् विष्णु की आराधना कर सकते हैं॥४७॥

किन्तु रुद्रेण तादात्म्यं बुध्वा पूज्यो हरिर्नरैः। अन्यथा नृपतेः शत्रुं न हरिः संहरेद्यतः॥४८॥

किन्तु शिव के साथ विष्णु का तादात्म्य भाव (एकता) मानकर भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए। अन्यथा भगवान् विष्णु राजा के शत्रु का संहार नहीं करते हैं॥४८॥

तान् प्रणम्याथ ते जग्मुः पुरीं परमशोभनाम्। पालयाञ्चक्रिरे पृथ्वीं जित्वा सर्वान् रिपून् रणे॥४९॥

तब [यह सुनने के अनन्तर] वे सभी राजकुमार उन ऋषियों को प्रणाम करके अपनी परम सुन्दर पुरी को चले गये थे और [वहाँ जाकर] उन्होंने युद्ध में सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके पृथिवी का पालन किया था॥४९॥

ततः कदाचिद्विप्रेन्द्रा विदेहो नाम दानवः। भीषणः सर्वसत्त्वानां पुरीं तेषां समाययौ॥५०॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! तभी एक बार सभी प्राणियों के लिए भयावह विदेह नामक दानव उनकी पुरी में आ गया था॥५०॥

दंष्ट्राकरालो दीप्तात्मा युगान्तदहनोपमः। शूलमादाय सूर्याभं नादयन्वै दिशो दश॥५१॥

विकराल दाढ़ों वाला प्रलयकालीन अग्नि के समान जलता हुआ सा वह दानव अपने हाथ में सूर्य के समान दीप्तिमान् शूल (भाला) लिए हुए था और अपनी ललकार से दशों दिशाओं को मुखरित कर रहा था॥५१॥

तन्नादश्रवणान्मर्त्यास्तत्र ये निवसन्ति ते। तत्यजुर्जीवितं त्वन्ये दुद्रुवुर्भयविह्वलाः॥५२॥

वहाँ रहने वाले मनुष्यों ने उसकी गर्जना से त्रस्त होकर प्राण त्याग दिये थे और कुछ अन्य लोग भयाक्रान्त होकर वहाँ से पलायित हो गये थे॥५२॥

ततः सर्वे सुसंयत्ताः कार्तवीर्यात्मजास्तदा। शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः॥५३॥
युयुधुर्दानवं शक्तिगिरिकूटासिमुद्गरैः। तान् सर्वान् स हि विप्रेन्द्राः शूलेन प्रहसन्निव॥५४॥
वारयामास घोरात्मा कल्पान्ते भैरवो यथा। शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः॥५५॥
युद्धाय कृतसंरम्भा विदेहं त्वभिदुद्रुवः। शूरोऽस्त्रं प्राहिणोद्रौद्रं शूरसेनस्तु वारुणम्॥५६॥
प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च। जयध्वजश्च कौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च॥५७॥

तब कार्तवीर्य अर्जुन के शूरसेन आदि पाँचों महाबली राजकुमार शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर वहाँ आये और उन्होंने शक्ति (भाला), गिरिकूट (पर्वत के टुकड़ों-पत्थरों), तलवार और मुद्गरों से उस दानव के साथ युद्ध किया था। हे ब्राह्मणो! जिस प्रकार प्रलय काल में भैरव संहार करते हैं, उसी प्रकार उस भंयकर विदेह नामक राक्षस ने उनकी हंसी उड़ाते हुए एक शूल (भाला) से ही उनको रोक दिया था। तब शूरसेन आदि पाँचों महाबली राजकुमार युद्ध के लिए कटिबद्ध होकर परम उत्साह के साथ उस दानव विदेह पर आक्रमण हेतु दौड़ पड़े थे। शूर ने उस दानव विदेह पर रौद्रास्त्र से प्रहार किया था और शूरसेन ने उस पर वारुणास्त्र तथा कृष्ण ने ब्रह्मास्त्र और धृष्ण ने उस दानव पर वायव्यास्त्र से प्रहार किया था तथा जयध्वज के कौबेरास्त्र, ऐन्द्रास्त्र (वज्र) तथा आग्नेयास्त्र से उस दानव पर प्रहार किया था॥५३-५७॥

भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः। ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम्॥५८॥
स्पृष्ट्वा मन्त्रेण तरसा चिक्षेप च ननाद च। सम्प्राप्य सा गदाऽस्योरो विदेहस्य शिलोपमम्॥५९॥
न दानवं चालयितुं शशाकान्तकसन्निभम्। दुद्रुवुस्ते भयग्रस्ता दृष्ट्वा तस्यातिपौरुषम्॥६०॥

उस दानव ने उन सभी दिव्यास्त्रों को अपने शूल से खण्डित कर दिया था। तब महाबली कृष्ण ने एक भंयकर गदा को उठा कर उसे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके गर्जना करते हुए उस दानव पर प्रक्षेपित किया था। वह गदा उस यमराज के समान दानव विदेह के पत्थर जैसे कठोर वक्षस्थल में लगकर भी उसे विचलित नहीं कर सकी थी। तब उसके महा पराक्रम को देख वे सभी भ्राता भयभीत होकर वहाँ से पलायित हो गये थे॥५८-६०॥

जयध्वजस्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम्। विष्णुं जयिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम्॥६१॥
त्रातारं पुरुषं पूर्वं श्रीपतिं पीतवाससम्। ततः प्रादुरभूच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम्॥६२॥

तब बुद्धिमान् जयध्वज ने जगत् के स्वामी विष्णु का स्मरण किया, जो कि जयिष्णु (विजेता), लोकादि (लोक के आदि) पुरुष, अप्रमेय (असीम), अनामय (स्वस्थ), सबके रक्षक, पुराण-पुरुष, श्रीपति, पीतवस्त्रधारी हैं। तब दस सहस्र सूर्यों के समान दीप्तिमान् चक्र (सुदर्शन चक्र) वहाँ प्रकट हुआ था॥६१-६२॥

आदेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहकारणात्। जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वा नारायणं नृपः॥६३॥

भक्त पर अनुग्रह करने वाले भगवान् विष्णु के आदेश से आये हुए उस चक्र को राजा जयध्वज ने जगत् के सृष्टिकर्ता भगवान् नारायण का ध्यान करके ग्रहण किया था॥६३॥

प्राहिणोद्वै विदेहाय दानवेभ्यो यथा हरिः। सम्प्राप्य तस्य घोरस्य स्कन्धदेशं सुदर्शनम्॥६४॥
पृथिव्यां पातयामास शिरोऽद्रिशिखराकृति। तद्धि चक्रं पुरा विष्णुस्तपसाराध्य शङ्करम्।
यस्मादवाप तत् तस्मादसुराणां विनाशकम्॥६५॥

जिस प्रकार भगवान् विष्णु दानवों पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार उसने उस चक्र से विदेह दानव पर प्रहार किया था। तब सुदर्शन चक्र ने उस भयानक दानव के कन्धे में पहुँचकर उसके पर्वत शिखर के

समान शिर को काट कर पृथवी में गिरा दिया था। भगवान् विष्णु ने शंकर की आराधना करके ही उस असुरों के विनाशक सुदर्शन चक्र को प्राप्त किया था॥६४-६५॥

तस्मिन् हते देवरिपौ शूराद्या भ्रातरो नृपाः। समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरं चाप्यपूजयन्॥६६॥

उस देवों के शत्रु विदेह के मारे जाने पर जयध्वज के शूर आदि सभी भ्राता अपनी सुन्दर नगरी में आये और उन्होंने अपने भ्राता जयध्वज का पूजन (सत्कार) किया था॥६६॥

श्रुत्वाजगाम भगवान्जयध्वजपराक्रमम्। कार्तवीर्यसुतं द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः॥६७॥

कार्तवीर्य के पुत्र जयध्वज के पराक्रम के विषय में सुनकर महामुनि भगवान् विश्वामित्र उसको देखने को आये थे॥६७॥

तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः। समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः॥६८॥

उनको आया हुआ देखकर राजा जयध्वज ने आश्चर्यानिवत होकर उन्हें सुन्दर आसन में बैठाकर भक्तिभाव से उनका पूजन किया था॥६८॥

उवाच भगवान् घोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः। निपातितो मया सोऽथ विदेहो दानवेश्वरः॥६९॥

तब उसने मुनि विश्वामित्र से कहा कि हे भगवान्! आपकी कृपा से ही मैंने भयानक दानवराज विदेह नामक असुर को मारा है॥६९॥

त्वद्वाक्याच्छिन्नसन्देहो विष्णुं सत्यपराक्रमम्। प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः॥७०॥

आपके वचनानुसार मैं सन्देह रहित होकर अमोघ-पराक्रम वाले भगवान् विष्णु की शरण में गया हूँ और उन्होंने मुझ पर शुभदायी कृपा की है॥७०॥

यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्। कथं केन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः॥७१॥
कोऽयं नारायणो देवः किं प्रभावश्च सुव्रत। सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे॥७२॥

मैं कमलदल के समान नेत्रों वाले परमेश्वर भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहता हूँ। उन भगवान् हरि का पूजन किस प्रकार और किस विधान से हो? यह भगवान् नारायण कौन हैं, उनका प्रभाव क्या है? हे शुभव्रत! यह सब मुझे बतलाइए। मुझे इस विषय में परम जिज्ञासा है॥७१-७२॥

जयध्वजस्य वचनं श्रुत्वा शान्तो मुनिस्ततः। दृष्ट्वा हरौ परां भक्तिं विश्वामित्र उवाच ह॥७३॥

राजा जयध्वज के वचन सुनकर और उसकी भगवान् विष्णु में परम भक्ति देख कर शान्ति के साथ मुनिवर विश्वामित्र ने यह कहा॥७३॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन्सर्वं यतो जगत्। स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते॥७४॥

विश्वामित्र बोले- जिन भगवान् विष्णु से सभी प्राणियों का प्रादुर्भाव होता है और जिनमें सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है और जिनसे यह जगत् बना है, वह विष्णु सभी प्राणियों के आत्मा-स्वरूप हैं, उनका आश्रय लेकर (उनकी शरण में जाकर) मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है॥७४॥

यमक्षरात्परतरात्परं प्राहुर्गुहाश्रयम्। आनन्दं परमं व्योम स वै नारायणः स्मृतः॥७५॥

जिनको अक्षर (अविनाशी) परतर से भी परे और गुहा में स्थित, आनन्दस्वरूप परम व्योम कहा जाता है, वही यह भगवान् विष्णु हैं॥७५॥

नित्योदितो निर्विकल्पो नित्यानन्दो निरञ्जनः। चतुर्व्यूहधरो विष्णुरव्यूहः प्रोच्यते स्वयम्॥७६॥

उन भगवान् विष्णु को ब्रह्मवादी विद्वानों ने नित्य उदित, निर्विकल्प, नित्य आनन्द मय, निरञ्जन, चतुर्व्यूह धारक और व्यूह रहित भी कहा है॥७६॥

परमात्मा परं धाम परं व्योम परं पदम्। त्रिपादमक्षरं ब्रह्म तमाहुर्ब्रह्मवादिनः॥७७॥

ब्रह्मवादी विद्वान् उनको परमात्मा, परं धाम, परं व्योम, परं पद और त्रिपाद-अक्षर स्वरूप (ओङ्कार रूप) कहते हैं॥७७॥

स वासुदेवो विश्वात्मा योगात्मा पुरुषोत्तमः। यस्यांशसम्भवो ब्रह्मा रुद्रोऽपि परमेश्वरः॥७८॥

वह वासुदेव ही विश्व की आत्मा, योगात्मा और पुरुषोत्तम कहे गये हैं। उनके अंश से ही ब्रह्मा और परमेश्वर रुद्र (शिव) भी प्रकट हुए हैं॥७८॥

स्ववर्णाश्रमधर्मेण पुंसां यः पुरुषोत्तमः। अकामाद्व्रतभावेन समाराध्यो न चान्यथा॥७९॥

मनुष्यों को अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए निष्काम भाव से किन्तु व्रतभाव (निष्ठा)-पूर्वक पुरुषोत्तम विष्णु का पूजन करना चाहिए, तदन्यथा (कामना पूर्वक) नहीं॥७९॥

एतावदुक्त्वा भगवान्विश्वामित्रो महातपाः। शूराद्यैः पूजितो विप्रो जगामाथ स्वमाश्रमम्॥८०॥

इतना कहकर भगवान् विश्वामित्र शूर आदि (जय ध्वज के भ्राताओं) के द्वारा पूजित होकर अपने आश्रम को चले गये थे॥८०॥

अथ शूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम्। यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमव्ययम्॥८१॥

तदनन्तर शूर आदि भ्राता निष्काम भाव से यज्ञ द्वारा प्राप्य अविनाशी भगवान् रुद्र की आराधना हेतु यज्ञ करने लगे थे॥८१॥

तान्वसिष्ठस्तु भगवान्याजयामास धर्मवित्। गौतमोऽगस्तिरात्रिश्च सर्वे रुद्रपरायणाः॥८२॥

धर्म वेत्ता वसिष्ठ तथा गौतम, अगस्त्य, अत्रि जैसे सभी रुद्रभक्त ऋषिगण उन शूर आदि भ्राताओं का यज्ञ कराने लगे थे॥८२॥

विश्वामित्रस्तु भगवान् जयध्वजमरिन्दमम्। याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम्॥८३॥

भगवान् विश्वामित्र ने शत्रुहन्ता जयध्वज से सभी प्राणियों के आदि जनक आदिदेव भगवान् विष्णु के निमित्त यज्ञ करवाया था॥८३॥

तस्य यज्ञे महायोगी साक्षाद्देवः स्वयं हरिः। आविरासीत्स भगवान् तदद्भुतमिवाभवत्॥८४॥

उस जयध्वज के यज्ञ में स्वयं महायोगी भगवान् विष्णु साक्षात् प्रकट हो गये थे। यह आश्चर्यजनक बात थी॥८४॥

जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रुद्रस्य परमां तनुम्। इत्येवं सर्वदा बुद्ध्वा यत्नेनायजदच्युतम्॥८५॥

राजा जयध्वज भी उन भगवान् विष्णु को शिव का ही परम स्वरूप (अन्य शरीर) मानते हुए उन अच्युत का यजन (यज्ञ और पूजन) यत्न पूर्वक सदैव करता था॥८५॥

य इमं शृणुयात्नित्यं जयध्वजपराक्रमम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥८६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे सोमवंशानुकीर्तनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

जो व्यक्ति राजा जयध्वज के पराक्रम की इस कथा को नित्य सुनेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में जायेगा॥८६॥

॥इस प्रकार श्री कूर्मपुराण में सोमवंश वर्णन नामक अध्याय पूर्ण हुआ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

राजवंशवर्णनम्

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्तालजङ्घ इति स्मृतः[1]। शतपुत्रास्तु तस्यासन् तालजङ्घा इति स्मृताः॥१॥

सूत जी बोले- जयध्वज का पुत्र तालजंघ नाम से प्रख्यात हुआ था। उसके एक सौ पुत्र हुए थे, वे सब भी तालजंघ कहे गये थे॥१॥

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः। वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्मिणः॥२॥

उनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र वीतिहोत्र नामक महाबलशाली राजा था। उसके वृष आदि अन्य भ्राता पुण्यकर्म करने वाले यादव थे॥२॥

वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः। मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्[2]॥३॥

उनमें वृष नामक राजा का वंश प्रसिद्ध हुआ था। उस वृष का मधु नामक पुत्र था। मधु के एक सौ पुत्र थे। उन पुत्रों में वृषण का वंश प्रसिद्ध हुआ था, अतः उसे वंशकर्ता कहा गया है॥३॥

वीतिहोत्रसुतश्चान्यो[3] विश्रुतोऽनन्त नामतः[4]। दुर्जयस्तस्य पुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः॥४॥

वीतिहोत्र का अन्य पुत्र अनन्त नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसका पुत्र दुर्जय था, जो कि सभी शास्त्रों में दक्ष था॥४॥

तस्य भार्या रूपवती गुणैः सर्वैरलंकृता। पतिव्रतासीत्पतिना स्वधर्मपरिपालिका॥५॥

उसकी पत्नी बहुत सुन्दर थी। वह सभी गुणों से युक्त और पतिव्रता थी और पति के साथ मिलकर अपने धर्म का पालन करती थी॥५॥

१. जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजंघो महाबलः। ब्रह्मपुराण १२/२०२, २. वंशभाक्, ३. सुतश्चापि, ४. इत्यतः

स कदाचित् महाराजः कालिन्दीतीरसंस्थिताम्। अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरस्वराम्॥६॥

उस राजा दुर्जय ने एक बार यमुना तट पर उर्वशी नामक अप्सरा को देखा, जो मधुर स्वर में गा रही थी॥६॥

ततः कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै। प्रोवाच सुचिरं कालं देवि रन्तुं मयार्हसि॥७॥

तब वह राजा कामार्त मन वाला होकर उस अप्सरा के पास जाकर यह बोला कि हे देवि! तुम चिरकाल तक मेरे साथ रमण कर सकते हो॥७॥

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम्। रेमे तेन चिरं कालं कामदेवमिवापरम्॥८॥

उस देवी उर्वशी ने दूसरे कामदेव के समान उत्तम स्वरूप वाले सुन्दर राजा को देखकर उसके साथ चिरकाल तक रमण किया था॥८॥

कालात्प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम्। गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्ती साब्रवीद्वचः॥९॥
न ह्येतेनोपभोगेन भवतो राजसुन्दर। प्रीतिः सञ्जायते मह्यं स्थात्वयं वत्सरं पुनः॥१०॥

बहुत समय व्यतीत होने के बाद सजग (सचेत) होने पर राजा ने उस सुन्दरी उर्वशी से कहा कि मैं अब अपनी सुरम्य नगरी को जाऊँगा। यह सुन कर उस अप्सरा ने हँसते हुए यह कहा हे सुन्दर राजा आपके साथ इतने दिनों तक के भोग-विलास से मुझे पूर्ण प्रीति (सन्तुष्टि) नहीं हुई है। आपको पुनः एक वर्ष तक यहाँ रहना चाहिए॥९-१०॥

तामब्रवीत्स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरं पुरीम्। आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि॥११॥

तब उस बुद्धिमान् राजा ने उससे कहा मैं अपनी पुरी में जाकर पुनः शीघ्रातिशीघ्र यहाँ आ जाऊंगा। अतः तुम मुझे अनुमति दे सकती हो॥११॥

तमब्रवीत्सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते। नान्याप्सरसा तावद् रन्तव्यं भवता पुनः॥१२॥

तब उस सुन्दरी ने उस राजा से कहा हे राजन्! तुम वैसा ही करो। तब तक आपको पुनः किसी अन्य अप्सरा के साथ रमण नहीं करना चाहिए॥१२॥

ओमित्युक्त्वा ययौ तूर्णं पुरीं परमशोभनाम्। गत्वा पतिव्रतां पत्नीं दृष्ट्वा भीतोऽभवन्नृपः॥१३॥

तब 'हाँ ऐसा ही होगा' कहकर वह राजा शीघ्रातिशीघ्र अपनी परम सुन्दर पुरी को चला गया था। वहाँ जाकर अपनी पतिव्रता पत्नी को देखकर वह राजा भयभीत हो गया था॥१३॥

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्या तस्य पतिव्रता। भीतं प्रसन्नया प्राह वाचा पीनपयोधरा॥१४॥
स्वामिन् किमत्र भवतो भीतिरद्य प्रवर्तते। तद् ब्रूहि मे यथा तत्त्वं न राज्ञां कीर्तये त्विदम्॥१५॥

उस राजा को भयभीत देखकर उसकी स्थूल स्तनों वाली सद्गुण- सम्पन्न पतिव्रता पत्नी ने प्रसन्न करने वाली वाणी से कहा कि हे स्वामी! आज आप इतने भयभीत क्यों हो रहे हैं? वह सब मुझे यथावत् बतलाइए। ऐसा आचरण राजाओं के लिए यशस्कर नहीं होता॥१४-१५॥

स तस्या वाक्यमाकर्ण्य लज्जावनतमानसः। नोवाच किञ्चित्नृपतिर्ज्ञानदृष्ट्या विवेद सा॥१६॥

उसके वचन सुनकर लज्जा से नतमस्तक वह राजा कुछ भी नहीं बोला, किन्तु उसकी रानी ज्ञान-दृष्टि से सब कुछ जान गयी थी॥१६॥

न भेतव्यं त्वया राजन् कार्यं पापविशोधनम्। भीते त्वयि महाराज राष्ट्रं ते नाशमेष्यति॥१७॥

[तब वह बोली-] हे राजन्! आपको भयभीत नहीं होना चाहिए। आपको पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए। हे महाराज! आपके भयभीत होने पर आपका राष्ट्र नष्ट हो जायेगा॥१७॥

तदा स राजा द्युतिमान्निर्गत्य तु पुरात्ततः। गत्वा कण्वाश्रमं पुण्यं दृष्ट्वा तत्र महामुनिम्॥१८॥
निशम्य कण्ववदनात्प्रायश्चित्तविधिं नृपः। जगाम हिमवत्पृष्ठं समुद्दिश्य महाबलः॥१९॥

तब उस द्युतिमान् राजा दुर्जय[1] ने उस पुरी से बाहर निकल कर कण्व ऋषि के पवित्र आश्रम में जाकर उन महामुनि का दर्शन किया। उन कण्व मुनि से प्रायश्चित्त की विधि पूछकर वह महाबली राजा हिमालय पर्वत पर गया था॥१८-१९॥

सोऽपश्यत्पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम्। भ्राजमानं श्रिया व्योम्नि भूषितं दिव्यमालया॥२०॥

उस राजेन्द्र दुर्जय ने मार्ग में जाते समय आकाश में एक श्रेष्ठ गन्धर्व को देखा था, जो कि आकाश में अपने तेज से दीप्तिमान हो रहा था और दिव्य माला से विभूषित था॥२०॥

वीक्ष्य मालाममित्रघ्नः सस्माराप्सरसां वराम्। उर्वशीं तां मनश्चक्रे तस्या एवेयमर्हति॥२१॥

उस माला को देखकर उस शत्रुनाशक राजा दुर्जय को उर्वशी का स्मरण हो गया था और उसके मन में यह विचार आया कि यह माला उस उर्वशी के ही योग्य है॥२१॥

सोऽतीव कामुको राजा गन्धर्वेणाथ तेन हि। चकार सुमहद्युद्धं मालामादातुमुद्यतः॥२२॥

तब अत्यन्त कामान्ध राजा ने उस माला को प्राप्त करने हेतु उस गन्धर्व के साथ महायुद्ध किया था॥२२॥

विजित्य समरे मालां गृहीत्वा दुर्जयो द्विजाः। जगाम तामप्सरसं कालिन्दीं द्रष्टुमादरात्॥२३॥

हे द्विजो! वह दुर्जय युद्ध में विजय प्राप्त करके माला को लेकर उस अप्सरा को देखने के लिए आदर भाव से कालिनदी (यमुना) के तट पर गया॥२३॥

अदृष्ट्वाप्सरसं तत्र कामबाणाभिपीडितः। बभ्राम सकलां पृथ्वीं सप्तद्वीपसमन्विताम्॥२४॥

वहाँ अप्सरा उर्वशी को न देखने पर वह काम के बाणों से पीडित राजा (उसे खोजने के लिए) सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण पृथिवी पर घूमने लगा था॥२४॥

आक्रम्य हिमवत्पार्श्वमुर्वशी-दर्शनोत्सुकः। जगाम शैलप्रवरं हेमकूटमिति श्रुतम्॥२५॥

उर्वशी को देखने की उत्सुकता वाला वह राजा हिमालय के समीपस्थ [पर्वत पर] चढ़कर हेमकूट नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ पर्वत पर चला गया था॥२५॥

तत्र तत्राप्सरोवर्या दृष्ट्वा तं सिंहविक्रमम्। कामं सन्दधिरे घोरं भूषितं दिव्यमालया॥२६॥

१. दुर्जय की कथा पीछे श्लोक ४ से प्रारम्भ हुई है।

उस पर्वत में यत्र तत्र विद्यमान अप्सराएं दिव्य माला से अलंकृत उस सिंह के समान पराक्रमी को देखकर अत्यधिक कामातुर हो गयी थीं॥२६॥

संस्मरन्नुर्वशीवाक्यं तस्यां संसक्तमानसः। न पश्यति स्म ताः सर्वा गिरेः शृङ्गाणि जग्मिवान्॥२७॥

उर्वशी में आसक्त मन वाले राजा ने उसके वचनों को स्मरण करते हुए वहाँ स्थित उन सभी अप्सराओं की ओर देखा ही नहीं और वह उस हेमकूट पर्वत के शिखरों पर चलता जा रहा था॥२७॥

तत्राप्यप्सरसं दिव्यामदृष्ट्वा कामपीडितः। देवलोकं महामेरुं ययौ देवपराक्रमः॥२८॥

वहाँ उस दिव्य अप्सरा उर्वशी को न देखकर वह देवों के समान पराक्रम वाला कामातुर राजा देवों के लोक महामेरु में चला गया था॥२८॥

स तत्र मानसं नाम सरस्त्रैलोक्यविश्रुतम्। भेजे शृङ्गाण्यतिक्रम्य[१] स्वबाहुबलभावितः॥२९॥

तब वहाँ से वह राजा अपने बाहुबल के प्रभाव से पर्वत शिखरों को पार करके तीनों लोकों में प्रख्यात मानसरोवर में पहुँचा था॥२९॥

स तस्य तीरेषु सुभगामुर्वशीमतिलालसाम्। दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै मालान्ददौ पुनः॥३०॥

वहाँ उसने उस मानसरोवर के तट पर अनिन्द्य सुन्दरी और अत्यन्त उत्कण्ठित (लालसा वाली) उर्वशी को देखा और तब पुनः उसे माला प्रदान की थीं॥३०॥

स मालया तदा देवीं भूषितां प्रेक्ष्य मोहितः। रेमे कृतार्थमात्मानं जानानः सुचिरन्तया॥३१॥

उस माला से अलंकृत देवी उर्वशी को देख कर काम मोहित उस राजा ने अपने को कृतार्थ मानते हुए उसके साथ चिरकाल तक रमण किया था॥३१॥

अथोर्वशी राजवर्यं रतान्ते वाक्यमब्रवीत्। किं कृतं भवता वीर पुरीं गत्वा वृथा[२] नृप॥३२॥

उस राजा के साथ रमण करने के उपरान्त उर्वशी ने यह वचन कहे- हे वीर राजन्! आपने व्यर्थ ही अपनी नगरी में जाकर क्या किया था?॥३२॥

स तस्यै सर्वमाचष्ट पत्न्या यत्समुदीरितम्। कण्वस्य दर्शनञ्चैव मालापहरणं तथा॥३३॥

तब उस राजा ने अपनी पत्नी के द्वारा कही गयी सब बातें तथा कण्व के दर्शन और गन्धर्व को जीत कर उससे दिव्य माला का अपहरण करके लाने की सभी बातें उर्वशी को बता दी थी॥३३॥

श्रुत्वैतद् व्याहृतं तेन गच्छेत्याह हितैषिणी। शापं दास्यति ते कण्वो ममापि भवतः प्रिया॥३४॥

उस राजा के द्वारा कही गयी बातें सुनकर उसके हित की कामना करने वाली उर्वशी ने कहा कि अब आप यहाँ से चले जाइए अन्यथा आपको कण्व मुनि शाप देंगे और मुझको आपकी पत्नी शाप दे देगी॥३४॥

तयासकृन्महाराजः प्रोक्तोऽपि मदमोहितः। न च तत्कृतवान्वाक्यं तत्र संन्यस्तमानसः॥३५॥

उस उर्वशी के द्वारा अनेक बार ऐसा कहे जाने पर भी उसी में आसक्त मन वाले मदमत्त राजा ने उसके वचन को नहीं माना॥३५॥

---

१. शृङ्गमतिक्रम्य, २. तदा

तदोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम्। सुरोमशं पिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा॥३६॥

तब स्वेच्छानुसार नाना रूप धारण करने वाली उर्वशी अपना (सम्पूर्ण शरीर में) बड़े बड़े रोगों वाला और पिङ्गल वर्ण (भूरे रंग) की आँखों वाला भयानक रूप उस राजा को सदैव दिखाने लगी थी॥३६॥

तस्यां विरक्तचेतस्कः स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम्। धिङ्मामिति विनिश्चित्य तपः कर्तुं समारभत्॥३७॥

तब उसके प्रति विरक्त मन वाले राजा ने कण्व ऋषि के कथन का स्मरण करके 'मुझे धिक्कार है' ऐसा निश्चय करके तप करना आरम्भ कर दिया था॥३७॥

संवत्सरद्वादशकं कन्दमूलफलाशनः। भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः॥३८॥

वह राजा बारह वर्षों तक तप करते समय केवल कन्द, मूल और फलों का भोजन करके और फिर बारह वर्षों तक केवल वायु भक्षण करके तप करता था॥३८॥

गत्वा कण्वाश्रमं भीत्या तस्मै सर्वं न्यवेदयत्। वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम्॥३९॥

तदनन्तर कण्व के आश्रम में जाकर उस भयभीत राजा ने उन्हें अप्सरा के साथ अपने सहवास और पुनः उत्तम तपश्चर्या विषयक सभी बातें यथावत् बतला दी थी॥३९॥

वीक्ष्य तं राजशार्दूलं प्रसन्नो भगवानृषिः। कर्तुकामो हि निर्बीजं तस्याघमिदमब्रवीत्॥४०॥

तब उस श्रेष्ठ राजा को देखकर भगवान् कण्व ऋषि ने प्रसन्न होकर उसके पाप को समूल नष्ट करने की कामना से उससे यह कहा॥४०॥

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषितां पुरीम्। आस्ते मोचयितुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः॥४१॥

कण्व बोले- तुम भगवान् शिव की निवास भूमि वाराणसी नामक दिव्यपुरी में जाओ। वहाँ देवाधिदेव महादेव भक्तजनों को पाप-मुक्त करके मोक्ष-प्रदान हेतु निवास करते हैं॥४१॥

स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवद्गङ्गायां देवताः पितॄन्। दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किल्बिषान्मोक्ष्यसे क्षणात्॥४२॥

वहाँ गङ्गा में स्नान करके विधिपूर्वक देवों और पितरों को तृप्त करके और विश्वेश्वर लिङ्ग का दर्शन करके तुम क्षण भर में पाप से मुक्त हो जाओगे॥४२॥

प्रणम्य शिरसा कण्वमनुज्ञाप्य च दुर्जयः। वाराणस्यां हरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत्ततः॥४३॥

तब वह राजा दुर्जय कण्व ऋषि को नत मस्तक होकर प्रणाम करके उनसे आज्ञा लेकर वाराणसी को गया और वहाँ भगवान् शिव (विश्वनाथ) का दर्शन करके वह पाप से मुक्त हो गया था॥४३॥

जगाम स्वपुरीं रम्यां[1] पालयामास मेदिनीम्। याजयामास तं कण्वो याचितो घृणया मुनिः॥४४॥

तदन्तर वह अपनी सुरम्य नगरी में जाकर पृथिवी का पालन करने लगा था। उसके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर कण्व ऋषि ने उस पर कृपा करके उसका यज्ञ करवाया था॥४४॥

तस्य पुत्रोऽथ मतिमान् सुप्रतीक इति स्मृतः। बभूव जातमात्रं तं राजानमुपतस्थिरे॥४५॥

१. शुभ्रां

उस राजा का बुद्धिमान् पुत्र सुप्रतीक नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसको उसके जन्म समय से ही प्रजाओं ने अपना राजा मान लिया था॥४५॥

उर्वश्याञ्च महावीर्याः सप्त देवसुतोपमाः। कन्या जगृहिरे सर्वा गन्धर्व्यो दयिता द्विजाः॥४६॥

[राजा दुर्जय के] उर्वशी से देव पुत्रों के समान सात पुत्र हुए थे। वे महाबलशाली थे। हे द्विजो! उन्होंने गन्धर्वो की कन्याओं को [पत्नी रूप में] प्राप्त किया था॥४६॥

एष वः कथितः सम्यक् सहस्रजित उत्तमः। वंशः पापहरो नृणां क्रोष्टोरपि निबोधत॥४७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे राजवंशानुकीर्तने त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

[सूत जी ने कहा कि] आप लोगों को मैंने सहस्रजित के पापनाशक उत्तम वंश को सम्यक् रूप से बतलाया है। अब आप लोग क्रोष्टु के वंश को भी सुनें॥ ।४७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'राजवंशानुकीर्तन' नामक तेईसवां अध्याय पूरा हुआ॥२३॥

❖❖❖

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

यदुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वज्रवानिति[1] विश्रुतः। तस्य पुत्रोऽभवच्छान्तिः कुशिकस्तत्सुतोऽभवत्॥१॥

क्रोष्टु का एक पुत्र था, जो वज्रवान नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसका शान्ति नामक पुत्र था और उस शान्ति का कुशिक नामक पुत्र था॥१॥

कुशिकादभवत्पुत्रो नाम्ना चित्ररथो बली। अथ चैत्ररथिर्लोके शशबिन्दुरिति स्मृतः॥२॥

कुशिक का चित्ररथ नामक बलवान् पुत्र था और चित्ररथ का शशबिन्दु नामक पुत्र हुआ था॥२॥

तस्य पुत्रः पृथुयशा राजाभूद्धर्मतत्परः। पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात्पृथुजयोऽभवत्॥३॥

उस शशबिन्दु का पुत्र पृथुयशा नामक धर्मपरायण राजा था और उस राजा का पुत्र पृथुकर्मा नामक था तथा उसका पृथुजया नामक पुत्र हुआ था॥३॥

पृथुकीर्तिरभूत्तस्मात्पृथुदानस्ततोऽभवत्। पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत्पृथुसत्तमः॥४॥

उस पृथुजया का पुत्र पृथुकीर्ति एवं उसका पुत्र पृथुदान नामक था। पृथुदान का पुत्र पुथुश्रवा और पुथुश्रवा का पुत्र पृथुसत्तम था॥४॥

---

१. वृजिनीवान्, दृष्टव्य- क्रोष्टोरेकोऽभवत् वृजिनीवान् महायशाः। वायु उ० ३३/१५ क्रोष्टोस्तु यदुपुत्रस्यात्मजो वजिनीवान्। विष्णुपुराण ४/१/१

उशनास्तस्य पुत्रोऽभूच्छतेषुस्तत्सुतोऽभवत्। तस्माद्वै रुक्मकवचः परावृत्तश्च तत्सुतः॥५॥

उस पृथुसत्तम का पुत्र उशना और उसका (उशना का) पुत्र शतेषु था और उसका पुत्र रुक्मकवच एवं उसका (रुक्मकवच का) पुत्र परावृत्त था॥५॥

परावृत्तसुतो जज्ञे ज्यामघो[1] लोकविश्रुतः। तस्माद्विदर्भः सञ्जज्ञे विदर्भात्क्रथकौशिकौ॥६॥
लोमपादस्तृतीयस्तु बभ्रुस्तस्यात्मजो नृपः। धृतिस्तस्याभवत्पुत्रः श्वेतस्तस्याप्यभूत्सुतः॥७॥

परावृत्त का ज्यामघ नामक पुत्र लोक में प्रसिद्ध हुआ था। ज्यामघ का पुत्र विदर्भ और विदर्भ के क्रथ, कौशिक और लोमपाद नामक तीन पुत्र थे। लोमपाद का पुत्र बभ्रु नामक राजा था। उस बभ्रु का पुत्र धृति था। धृति का पुत्र श्वेत नामक था॥६-७॥

श्वेतस्य पुत्रो बलवान्नाम्ना विश्वसहः स्मृतः। तस्य पुत्रो महावीर्यः प्रभावान्कौशिकः स्मृतः।
अभूत्तस्य सुतो धीमान् सुमन्तश्च ततोऽनलः॥८॥

श्वेत का विश्वसह नामक बलवान् पुत्र था और उसका महाबलशाली और प्रभावशाली पुत्र कौशिक नामक था। उस कौशिक का पुत्र धीमान् नामक था और उसका (धीमान् का) पुत्र सुमन्तु एवं सुमन्तु का अनल नामक पुत्र था॥८॥

अनलस्य सुतः श्वेनिः श्वेनेरन्येऽभवन्सुताः। तेषां प्रधानो द्युतिमान्वपुष्मान्तत्सुतोऽभवत्॥९॥

अनल का पुत्र श्वेनि और श्वेनि के बहुत से पुत्र थे, जिनमें प्रमुख था–द्युतिमान। उसका पुत्र वपुष्मान् था॥९॥

वपुष्मतो बृहन्मेधाः श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत्। तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महाबलः॥१०॥

बपुष्मान् का पुत्र बृहत्मेधा और उसका पुत्र श्रीदेव नामक था। हे ब्राह्मणो! उस श्रीदेव का महाबलशाली पुत्र वीतरथ था, जो भगवान् शिव का भक्त था॥१०॥

क्रथस्याप्यभवत् कुन्तिर्वृष्णिस्तस्याभवत् सुतः। वृष्णेर्निवृतिरुत्पन्नो दशार्हस्तत्सुतोऽभवत्॥११॥
दशार्हपुत्रोऽप्यारोहो जीमूतस्तत्सुतोऽभवत्। जीमूतेरभवद् वीरो विकृतिः परवीरहा॥१२॥

[उपर कथित विदर्भ के पुत्र] क्रथ का पुत्र कुन्ति नामक था और उसका (कुन्ति का) पुत्र वृष्णि था। वृष्णि का निवृत्ति नामक पुत्र हुआ था और उस निवृत्ति का दशार्ह नामक पुत्र हुआ था। दशार्ह का आरोह नामक पुत्र था और उसका (आरोह का) पुत्र जीमूत था। जीमूत का विकृति नामक वीर पुत्र शत्रु सेना का नाशक था॥११-१२॥

तस्य भीमरथः पुत्रः तस्मान्नवरथोऽभवत्। दानधर्मरतो नित्यं सम्यक् शीलपरायणः॥१३॥

उस विकृति का पुत्र भीमरथ था, जिसका नवरथ नामक पुत्र हुआ था। वह सदाचार परायण राजा नित्यमेव सम्यक् रूप से दानधर्म निरत रहता था॥१३॥

कदाचिन्मृगयां यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्ज्जितम्। दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुङ्गवाः।
अन्वधावत संक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबलः॥१४॥

१. यामघो

हे श्रेष्ठ मुनियो! वह राजा एक बार आखेट हेतु वन में गया था। वहाँ एक शक्तिशाली राक्षस को देखकर अत्यन्त भयग्रस्त होकर वह वहाँ से भागने लगा था। वह महाबलशाली राक्षस भी क्रोधित होकर उसके पीछे दौड़ पड़ा था॥१४॥

दुर्योधनोऽग्निसङ्काशः शूलासक्तमहाकरः। राजा नवरथो भीतो नातिदूरादवस्थितम्।
अपश्यत्परमं स्थानं सरस्वत्याः सुगोपितम्॥१५॥

दुर्योधन नामक वह राक्षस जलती हुई अग्नि के समान लग रहा था और उसने अपने विशाल हाथ में शूल (भाला) पकड़ा हुआ था। तभी भयभीत राजा नवनरथ ने अपने समीप ही स्थित सरस्वती देवी के परमपवित्र सुरक्षित स्थान को देखा॥१५॥

स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान् नृपः। ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षात् देवीं सरस्वतीम्॥१६॥

उस बुद्धिमान् राजा ने अत्यन्त तीव्रगति से वहाँ पहुँचकर साक्षात् देवी सरस्वती को देखकर शिर को झुका कर प्रणाम किया था॥१६॥

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्रजित्। पपात दण्डवद्भूमौ त्वामहं शरणङ्गतः॥१७॥

शत्रु विजेता उस राजा नवरथ ने अञ्जलि बाँध कर अपने अभीष्ट वचनों से उस देवी की स्तुति की और भूमि में लेट कर दण्डवत् प्रणाम किया और देवी से कहा कि मैं आपकी शरण में आया हूँ॥१७॥

नमस्यामि महादेवीं साक्षाद् देवीं सरस्वतीम्। वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम्॥१८॥

मैं साक्षात् देवी महादेवी सरस्वती को नमस्कार करता हूँ, जो कि वाणी की अधीष्ठात्री देवी है, जो अनादि, अनन्त ईश्वरी ब्रह्मचारिणी है॥१८॥

नमस्ते जगतां योनिं योगिनीं परमां कलाम्। हिरण्यगर्भसम्भूतां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्॥१९॥

जो जगत् की योनि (जननी), योगिनी, परमा कला, हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) से आविर्भूत, त्रिनेत्रा (तीन नेत्रों वाली), और मस्तक में चन्द्रमा को धारण करने वाली है॥१९॥

नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम्। पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम्॥२०॥

उस परम आनन्दस्वरूपा, चित्कला स्वरूपा, ब्रह्मस्वरूपिणी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ। हे परमेश्वरी! मैं भयभीत हूँ, आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें॥२०॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः। हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती॥२१॥

इसी बीच वह क्रुद्ध राक्षसराज उस राजा को मारने के लिए वहाँ आ गया जहाँ देवी सरस्वती थी॥२१॥

समुद्यम्य तदा शूलं प्रविष्टो बलगर्वितः। त्रिलोकमातुस्तत्स्थानं शशाङ्कादित्यसन्निभम्॥२२॥

अपने बल के अभिमान वाला वह राक्षस हाथ में शूल उठा कर तीनों लोकों की जननी सरस्वती के उस स्थान पर प्रविष्ट हो गया जो सूर्य और चन्द्रमा के समान [प्रकाशमान] था॥२२॥

तदन्तरे महद्भूतो युगान्तादित्यसन्निभम्। शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि॥२३॥

उसी समय प्रलयकालीन सूर्य के समान एक महा (विराट्) जीव ने उस राक्षस के वक्षस्थल का भेदन करके उसे भूमि में गिरा दिया था॥२३॥

गच्छेत्याह महाराज न स्थातव्यं त्वया पुनः। इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन् राक्षसो हतः॥२४॥

तब वह बोला हे महाराज! अब आप निर्भय होकर शीघ्र यहाँ से चले जाइए। आपको इस स्थान में नहीं रुकना चाहिए। अब राक्षस मारा जा चुका है॥२४॥

ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथश्च तम्। पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरन्दरपुरोपमाम्॥२५॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! तब प्रसन्न चित्त वाला राजा उसको प्रणाम करके इन्द्र की पुरी जैसी अपनी पुरी को चला गया था॥२५॥

स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः। ईजे च विविधैर्यज्ञैर्होमैर्देवीं सरस्वतीम्॥२६॥

उसने वहाँ भक्तिपूर्वक देवी सरस्वती की स्थापना की थी और विविध यज्ञों एवं होमों से उनका यजन-पूजन किया था॥२६॥

तस्य चासीद्दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः। देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः॥२७॥

उस राजा नवरथ का दशरथ नामक परम धर्मिक पुत्र था। वह महातेजस्वी राजा देवी का भक्त था। उसका पुत्र शकुनि था॥२७॥

तस्मात्करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत्ततः। ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः॥२८॥

उस शकुनि का पुत्र करम्भ था और उस करम्भ का देवरात नामक पुत्र था। उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसका पुत्र देवक्षत्र था॥२८॥

मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात्कुरुरजायत। पुत्रद्वयमभूत्तस्य सुत्रामा चानुरेव च॥२९॥

उस देवक्षत्र का पुत्र मधु था और उसका कुरु नामक पुत्र हुआ था। कुरु के दो पुत्र हुए थे जो सुत्रामा और अनु नामक थे॥२९॥

अनोस्तु प्रियगोत्रोऽभूदंशुस्तस्य च रिक्थभाक्। अथांशोः सत्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः॥३०॥

स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चनान्वितम्[1]। शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम्॥३१॥
तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतं नाम[2] शोभनम्। प्रवर्तते महच्छास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम्॥३२॥

अनु का पुत्र प्रियगोत्र था और उसका दायाधिकारी पुत्र अंशु था। अंशु का पुत्र सत्वत था। वह विष्णु-भक्त, परम प्रतापी, महात्मा, दान-धर्म में निरत और धनुर्वेद में पारंगत था। उसने नारद के उपदेशानुसार भगवान् वासुदेव (विष्णु) के पूजन विषयक शास्त्र (संहिता) का प्रवर्तन किया था, जिसे कुण्ड और गोल[3] आदि ने भी सुना था। वह शास्त्र उसी सत्वत के नाम से (सात्वत-संहिता नाम से) प्रसिद्ध और प्रवर्तित हुआ था। वह महान् शास्त्र कुण्डादि के हितार्थ प्रचलित है॥३०-३२॥

---

१. वासुदेवार्चने रतः, २. सात्वतानां च शोभनम्

३. परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ। पत्यौ जीवति कुण्डः स्यात् मृते भर्तरि गोलकः॥मनु ३/१७४

सात्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः। पुण्यश्लोको महाराजस्तेन वै तत्प्रवर्तितम्॥ ३३॥

उस सत्वत का पुत्र सात्वत था। वह पुण्यश्लोक (परम पावन कीर्तिमान्) राजा सभी शास्त्रों में पारंगत था। उसने अपने पिता सत्वत के द्वारा रचित शास्त्र सात्वतसंहिता का प्रचार प्रसार किया था॥३३॥

सात्वतात् सत्त्वसम्पन्नात्कौशल्या सुषुवे सुतान्। अन्धकं व महाभोजं वृष्णिं देवावृधं नृपम्।
ज्येष्ठञ्च भजमानाख्यं धनुर्वेदविदां वरम्॥ ३४॥

सात्वत से उसकी पत्नी कौशल्या ने जिन पुत्रों को जन्म दिया था, वे क्रमशः अन्धक, महाभोज, वृष्णि एवं राजा देवावृध नामक थे, उनमें ज्येष्ठ भजमान नामक था, जो धनुर्वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ था॥३४॥

तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः। पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभुः॥ ३५॥

[सात्वत के पुत्र] देवावृध ने 'मेरा सर्वगुण-सम्पन्न पुत्र हो'- ऐसा संकल्प करके परम कठिन तपस्या की थी॥३५॥

तस्य बभ्रुरिति ख्यातः पुण्यश्लोकोऽभवन्नृपः। धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्त्वज्ञानरतः सदा॥ ३६॥

उसका बभ्रु नामक परम पावन चरित्र वाला पुत्र हुआ था, जो राजा बना था। वह धार्मिक, रूप-सम्पन्न और सदैव तत्त्वज्ञान के चिन्तन में निरत रहता था॥३६॥[1]

भजमानस्य सृञ्जय्यां भजमाना विजज्ञिरे। तेषां प्रधानौ विख्यातौ निमिः कृकण एव च॥ ३७॥

सात्त्वत पुत्र भजमान की पत्नी सृञ्जय्या से भजमान(?) संज्ञक अनेक पुत्र हुए थे, उनमें से प्रमुख थे निमि और कृकण॥३७॥

महाभोजकुले जाता भोजा वैमातृकास्तथा। वृष्णेः सुमित्रो बलवाननमित्रस्तिमिस्तथा॥ ३८॥

(सात्त्वत के अन्य पुत्र) महाभोज के भोज और वैमातृक नामक पुत्र हुए थे। (सात्त्वत के अन्य पुत्र) वृष्णि के सुमित्र, अनमित्र तथा तिमि नामक बलवान् पुत्र हुए थे॥३८॥

अनमित्रादभून्निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः। प्रसेनस्तु महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः॥ ३९॥

अनमित्र का पुत्र निघ्न था। निघ्न के दो पुत्र हुए थे, जिनमें एक था महाभाग्यशाली प्रसेन और दूसरा उत्तम पुत्र सत्राजित् था॥३९॥

अनमित्रात्शिनिर्जज्ञे कनिष्ठात् वृष्णिनन्दनात्। सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४०॥

वृष्णि के कनिष्ठ पुत्र अनमित्र का सिनि नामक पुत्र हुआ था और उसका पुत्र सत्यवाक् था, जो सत्य-सम्पन्न और सत्य बोलने वाला था, उसका पुत्र सत्यक था॥४०॥

सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत्सुतः। कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगन्धरः॥ ४१॥

माद्र्यां वृष्णेः सुतो जज्ञे पृश्निर्वै यदुनन्दनः। जज्ञाते तनयौ पृश्नेः[2] श्वफल्कश्चित्रकस्तथा॥ ४२॥

---

१. श्लोक ३५-३६ के समर्थन हेतु द्रष्टव्य-विष्णुपुराण ४/१३/५-६

२. वृष्णेः

उस सत्यक का पुत्र युयुधान था। उस युयुधान का पुत्र असङ्ग नामक था एवं उसका पुत्र कुणि और कुणि का बुद्धिमान् पुत्र युगन्धर था। (सात्वत के पुत्र) वृष्णि का उसकी पत्नी माद्री में यदुवंशी पृश्नि नामक पुत्र का जन्म हुआ था। पृश्नि के श्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र हुए थे॥४१-४२॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत। तस्यामजनयत्पुत्रमक्रूरं नाम धार्मिकम्।
उपमङ्गुस्तथा मङ्गुरन्ये च बहवः सुताः॥४३॥

श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री को पत्नी रूप में प्राप्त किया था। उसमें उसके अक्रूर नामक धार्मिक पुत्र का जन्म हुआ था। उसके अतिरिक्त श्वफल्क के उपमङ्गु और मङ्गु आदि बहुत से पुत्र थे॥४३॥

अक्रूरस्य स्मृतः पुत्रो देववानिति विश्रुतः। उपदेवश्च देवात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ॥४४॥

अक्रूर का देववान् नामक प्रसिद्ध पुत्र था। उसका अन्य पुण्यात्मा पुत्र उपदेव नामक था। उन दोनों के क्रमशः विश्व और प्रमाथी नामक पुत्र हुए थे॥४४॥

चित्रकस्याभवत्पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च। अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधाश्वकगवेक्षकौ[१]॥४५॥

(पीछे श्लोक ४२ में कथित) राजा चित्रक के पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, सुबाहु, सुधाश्व और गवेक्षक नामक पुत्र हुए थे॥४५॥

अन्धकात् काश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान्। कुकुरं भजमानञ्च शुचिं कम्बलवर्हिषम्[२]॥४६॥

सात्वत के पुत्र अन्धक (जो पीछे श्लोक ३४ में उल्लिखित है) से [उनकी पत्नी] काश्यकी पुत्री ने चार पुत्र उत्पन्न किये थे जो कि कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष नामक थे॥४६॥

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत्। कपोतरोमा विख्यातस्तस्य पुत्रो विलोमकः॥४७॥

कुकुर का पुत्र वृष्णि था और वृष्णि का पुत्र कपोतरोमा नाम से विख्यात हुआ था और उसका पुत्र विलोमक था॥४७॥

तस्यासीत्तुम्बुरुसखा विद्वान् पुत्रोऽनुसंज्ञकः। अनोरप्यभवत्पुत्रस्तथैवानकदुन्दुभिः॥४८॥

उसका अनुसंज्ञक विद्वान् पुत्र था, जो तुम्बुरु गन्धर्व का मित्र था। अनु का आनकदुन्दुभि नामक पुत्र था॥४८॥

स गोवर्धनमासाद्य तताप विपुलं तपः। वरं तस्मै ददौ देवो ब्रह्मा लोकमहेश्वरः॥४९॥
वंशस्य चाक्षयां कीर्तिं गानयोगमनुत्तमम्। गुरोरप्यधिकं विप्राः कामरूपित्वमेव च॥५०॥

उसने गोवर्धन पर्वत पर जाकर बहुत कठिन तपस्या की थी। हे ब्राह्मणो! तब लोक-पितामह ब्रह्मा ने उसे यह वरदान दिया था कि उसके वंश की कीर्ति सदैव बनी रहेगी और उसे अपने गुरु से भी अधिक उत्तम गायन (गाना गाने) का गुण तथा इच्छानुसार रूप धारण करने की सिद्धि प्राप्त होगी॥४९-५०॥

स लब्ध्वा वरमव्यग्रो वरेण्यं वृषवाहनम्। पूजयामास गानेन स्थाणुं त्रिदशपूजितम्॥५१॥

१. सुपार्श्वकगवेषणौ,

२. कुकुरभजमान शुचिकम्बलबर्हिषाख्यास्तथान्धकस्य चत्वारः पुत्राः॥ विष्णुपुराण ४/१४/१२-१५

ऐसा वर प्राप्त करके उसने निश्चिन्त और एकाग्रचित्त होकर अपने गायन से देवों के द्वारा पूजित वरेण्य (परम आराध्य, वरणीय) भगवान् शिव की आराधना की थी॥५१॥

तस्य गानरतस्याथ भगवानम्बिकापतिः। कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि॥५२॥

गायन में संलग्न रहने वाले उस आनकदुन्दुभि को पार्वती-पति भगवान् शिव ने पत्नी रूप में देवों के लिए भी दुर्लभ एक कन्या प्रदान की थी॥५२॥

तया स सङ्गतो राजा गानयोगमनुत्तमम्। अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियां तां भ्रान्तलोचनाम्॥५३॥

उस चञ्चल नेत्रों वाली से विवाह करके उस शत्रुहन्ता राजा आनकदुन्दुभि ने उसको भी गाना गाने की उत्तम शिक्षा दी थी॥५३॥

तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नाम शोभनम्। रूपलावण्यसम्पन्नां ह्रीमतीमपि कन्यकाम्॥५४॥

उस आनकदुन्दुभि की पत्नी से सुन्दर भुजाओं वाले शोभन नामक सुन्दर पुत्र तथा ह्रीमती नामक सुन्दर रूपवाली कन्या का जन्म हुआ था॥५४॥

ततस्तं जननी पुत्रं बाल्ये वयसि शोभनम्। शिक्षयामास विधिवद्गानविद्याञ्च कन्यकाम्॥५५॥

तब उनकी माता ने उस शोभन नामक बालक तथा ह्रीमती नामक कन्या को बाल्यावस्था में ही विधि-पूर्वक गान-विद्या की शिक्षा प्रदान की थी॥५५॥

कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद्गुरोः। उदुवाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणां तु मानसीम्॥५६॥

शोभन नामक बालक ने उपनयन के बाद गुरु से विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके गन्धर्वों की मानसी कन्या के साथ विवाह किया था॥५६॥

तस्यामुत्पादयामास पञ्च पुत्राननुत्तमान्। वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान्॥५७॥

शोभन ने अपनी उस पत्नी से पाँच पुत्र उत्पन्न किये थे, जो वीणा-वादन में दक्ष और गान-विद्या में विशारद अर्थात् पारंगत थे॥५७॥

पुत्रैः पौत्रैः सपत्नीको राजा गानविशारदः। पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम्॥५८॥

तब उस गान-विशारद (संगीत में दक्ष) राजा आनकदुन्दुभि ने अपने पुत्र-पौत्रों एवं पत्नी के साथ मिलकर अपने गायन से त्रिपुर को ध्वस्त करने वाले भगवान् शिव की उपासना की थी॥५८॥

ह्रीमतीञ्चारुसर्वाङ्गी श्रीमिवायतलोचनाम्। सुबाहुनामा गन्धर्वस्तामादाय ययौ पुरीम्॥५९॥

राजा आनकदुन्दुभि की सर्वाङ्ग सुन्दरी लक्ष्मी के समान विशाल नेत्रों वाली पुत्री ह्रीमती को सुबाहु नामक गन्धर्व विवाह करके अपनी पुरी को ले गया था॥५९॥

तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः। सुषेणधीरसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः॥६०॥

उस गन्धर्व के उस ह्रीमती नामक पत्नी से सुषेण, धीर, सुग्रीव सुभोज और नरवाहन नामक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए थे॥६०॥

अथासीदभिजित्पुत्रो वीरश्चानकदुन्दुभेः। पुनर्वसुश्चाभिजितः सम्बभूवाहुकस्ततः॥६१॥

आनकदुन्दुभि का (एक अन्य) वीर पुत्र अभिजित् नामक था। उस अभिजित् का पुत्र पुनर्वसु था और उसका (पुनर्वसु का) पुत्र आहुक था॥६१॥

आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः। देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः॥ ६२॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः। तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय तां ददौ॥६३॥

हे द्विजो! आहुक के उग्रसेन और देवक नामक पुत्र हुए थे। देवक के देवताओं के समान देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित नामक वीर पुत्र हुए थे। उनकी सात बहनें थी, जिनको कन्यादान रूप में देवक ने वसुदेव को दिया था॥६२-६३॥

वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता। श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता[1]।
देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत्सुमध्यमा॥६४॥

उन बहनों का नाम क्रमशः वृकदेवा (या घृतदेवा), उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा तथा देवकी था। वह शुभ व्रतवाली देवकी उन सब बहनों में वरिष्ठा (बड़ी) थी॥६४॥

उग्रसेनस्य पुत्रोऽभून्न्यग्रोधः कंस एव च। सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च॥६५॥

उग्रसेन के पुत्र क्रमशः न्यग्रोध, कंस, सुभूमि, राष्ट्रपाल, तुष्टिमान् और शङ्क नामक थे॥६५॥

भजमानादभूत्पुत्रः प्रख्यातोऽसौ विदूरथः। तस्य शूरः शमी तस्मात्प्रतिक्षत्रश्च तत्सुतः॥६६॥

भजमान (पीछे श्लोक ४६ में कथित) का विदूरथ नामक प्रख्यात पुत्र हुआ था। उसका पुत्र शूर था तथा शूर का पुत्र शमी और शमी का पुत्र प्रतिक्षत्र था॥६६॥

स्वयंभोजस्ततस्तस्माद् हार्दिकः शत्रुतापनः। कृतवर्माथ तत्पुत्रः शूरसेनः सुतोऽभवत्॥६७॥

उस प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयंभोज था और उसका शत्रुनाशक पुत्र हार्दिक नामक था। उसका पुत्र कृतवर्मा था।[2] कृतवर्मा का पुत्र शूरसेन था॥६७॥

वसुदेवोऽथ तत्पुत्रो नित्यं धर्मपरायणः। वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः॥६८॥

शूरसेन के पुत्र का नाम वसुदेव था, जो कि नित्य धर्मपरायण रहते थे। वसुदेव के पुत्र जगद्गुरु महाबाहु भगवान् वासुदेव-श्रीकृष्ण थे। उन भगवान् हरि ने देवों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर देवकी के पुत्र रूप में जन्म लिया था॥६८॥

रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना। असूत पत्नी सङ्कर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुधम्॥६९॥

वसुदेव की दूसरी महाभाग्यशालिनी सुन्दर पत्नी रोहिणी ने संकर्षण राम (बलराम) को जन्म दिया था, जिनका आयुध हल था॥६९॥

स एव परमात्मासौ वासुदेवो जगन्मयः। हलायुधः स्वयं साक्षाच्छेषः सङ्कर्षणः प्रभुः॥७०॥

१. द्रष्टव्य- विष्णुपुराण ४/१४/१८
२. भजमान से लेकर कृतवर्मा तक की वंशावली का समर्थन विष्णुपुराण- ४/१४/२२-२४ में भी है।

एक जगद्व्यापी परम ब्रह्म परमात्मा ने ही वासुदेव कृष्ण के रूप में तथा शेष नाग ने हल को आयुध रूप में धारण करने वाले संकर्षण बलराम के रूप में अवतार लिया था॥७०॥

भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषीं तनुम्। बभूव तस्यां देवक्यां रोहिण्यामपि माधवः॥७१॥

भृगु ऋषि के शाप के कारण भगवान् माधव (विष्णु) ने मनुष्य रूप में देवकी तथा रोहिणी के गर्भ से जन्म लिया था॥७१॥

उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी। नियोगाद्वासुदेवस्य यशोदातनया त्वभूत्॥७२॥

पार्वती के देह से आविर्भूत योगनिद्रा-कौशिकी ने वासुदेव-विष्णु के आदेशानुसार यशोदा की पुत्री के रूप में जन्म लिया था॥७२॥

ये चान्ये वसुदेवस्य वासुदेवाग्रजाः सुताः। प्रागेव कंसस्तान्सर्वान् जघान मुनिसत्तमाः॥७३॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! वसुदेव के जो अन्य पुत्र वासुदेव कृष्ण के जन्म के पहले उत्पन्न हुए थे, उन सबकी कंस ने हत्या कर दी थी॥७३॥

सुषेणश्च तथोदायी[१] भद्रसेनो महाबलः। वज्रदम्भो[२] भद्रसेनः कीर्तिमानपि पूर्वजः[३]॥७४॥

वे क्रमशः सुषेण, उदायी, भद्रसेन, महाबलशाली वज्रदम्भ, भद्रसेन और कीर्तिमान् नामक थे। वे सभी कृष्ण के पूर्व पैदा हुए थे[४]॥७४॥

हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणी वसुदेवतः। असूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम्॥७५॥

इन सबकी कंस के द्वारा हत्या किये जाने के पश्चात् रोहिणी ने वसुदेव से हल को आयुध रूप में धारण करने वाले लोकेश्वर बलभ्रद को जन्म दिया था॥७५॥

जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्युतम्। असूत देवकी कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥७६॥

उन बलराम के जन्म के पश्चात् देवकी ने देवों के आदि जनक, अच्युत परमात्मा श्रीवत्स से अंकित (चिह्नित) वक्षःस्थल वाले अच्युत (विष्णु) को कृष्ण के रूप में जन्म दिया था॥७६॥

रेवती नाम रामस्य भार्यासीत्सुगुणान्विता। तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ[५] निशितोल्मुकौ॥७७॥

बलराम की रेवती नामक सद्गुणयुक्त पत्नी थी। उससे निशित (या निशठ) और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे॥७७॥

षोडशस्त्रीसहस्राणि कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः। बभूवुश्चात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रशः॥७८॥

अक्लिष्टकर्म वाले (बिना थके अविरत कर्म में संलग्न रहने वाले) भगवान् कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियाँ थी। उनसे कृष्ण के सैकड़ों, हजारों पुत्र उत्पन्न हुए थे॥७८॥

चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः। चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः साम्ब एव च॥७९॥

---

१. ततो दायी, २. ऋजुदासो भद्रदासः ३. पूजितः,

४. द्रष्टव्य- आनकदुन्दुभेर्देवक्यामपि कीर्तिमत् सुषेणोदायु-भद्रसेन ऋतुदासभद्रदेवाख्याः षट्पुत्रा जज्ञिरे॥२६॥
- तांश्च सर्वानेवकंसो घातितवान्॥२७॥ विष्णुपुराण ४/१५/२६-२७

५. निष्ठोल्मुकौ

रुक्मिण्यां वासुदेवस्य महाबलपराक्रमाः। विशिष्टाः सर्वपुत्राणां सम्बभूवरिमे सुताः॥८०॥

कृष्ण के प्रमुख पुत्रों में चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और साम्ब आदि थे। वासुदेव कृष्ण से रुक्मिणी में उत्पन्न ये महाबली और पराक्रमी पुत्र अन्य सभी पुत्रों से विशिष्ट गुणों वाले थे॥७९-८०॥

तान्दृष्ट्वा तनयान्वीरान्रौक्मिणेयाञ्जनार्दनात्।
जाम्बवत्यब्रवीत्कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता॥८१॥

मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टगुणवत्तरम्। सुरेशसदृशं पुत्रं देहि दानवसूदन॥८२॥

रुक्मिणी में उत्पन्न उन वीर पुत्रों को देखकर कृष्ण से उनकी शुद्ध मुस्कान वाली पत्नी जाम्बवती ने कहा हे दानवहन्ता पुण्डरीकाक्ष कृष्ण! मुझको भी आप एक इन्द्र के समान विशिष्ट गुणों से सम्पन्न पुत्र दें॥८१-८२॥

जाम्बवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथः स्वयं हरिः। समारेभे तपः कर्तुं तपोनिधिररिन्दमः॥८३॥

जाम्बवती के वचन सुन कर शत्रुओं का दमन करने वाले जगत् के स्वामी तपोनिधि भगवान् कृष्ण ने तपस्या आरम्भ कर दी थी॥८३॥

तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथासौ देवकीसुतः। दृष्ट्वा लेभे सुतं रुद्रं तप्त्वा तीव्रं महत्तपः॥८४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे यदुवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! उन देवकी नन्दन भगवान् कृष्ण ने जिस प्रकार अत्यन्त कठिन महान् तप से भगवान् शिव को प्रसन्न करके पुत्र को प्राप्त किया था, वह वृत्तान्त सुनें॥८४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'यदुवंशानुकीर्तन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

कृष्णतपश्चरणवर्णनम्

सूत उवाच

अथ देवो हृषीकेशो भगवान्पुरुषोत्तमः। ततापं घोरं पुत्रार्थं निधानं तपसस्तपः॥१॥
स्वेच्छयाप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वसृक्। चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन्परमेश्वरम्॥२॥
जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम्। आश्रमं तूपमन्योर्वै मुनीन्द्रस्य महात्मनः॥३॥

तपोनिधि हृषीकेश पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने पुत्र प्राप्ति हेतु कठिन तप किया था। वह विश्व-स्रष्टा भगवान् कृतकृत्य होने पर भी स्वेच्छया अवतार लेकर अपने मूल ईश्वरीय रूप का बोध कराते

हुए योगी जनों के निवास वाले और नाना पक्षियों से युक्त मुनीश्वर महात्मा उपमन्यु के आश्रम में [तपश्चर्या हेतु] गये थे॥१-३॥

पतत्रिराजमारूढः सुपर्णमतितेजसम्। शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्साङ्कितलक्षणः॥४॥

श्रीवत्स[1]-नामक चिह्न से युक्त वक्षःस्थल वाले और अपने हाथों में शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले वह [भगवान् विष्णु के अवतार] श्रीकृष्ण अत्यन्त तेज गति वाले वाहन गरुड पर आरूढ होकर वहाँ गये थे॥४॥

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्। ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम्॥५॥

वहाँ की भूमि विविध प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप्त, नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित, ऋषियों के आश्रमों से युक्त और वेद-पाठ की ध्वनियों से निनादित थी॥५॥

सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम्। विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम्॥६॥

वहाँ के वन सिंहों, ऋक्षों (भालुओं) शरभों (एक हिंसक पशु), शार्दूलों (व्याघ्रों, चीतों) से व्याप्त थे। वहाँ की भूमि निर्मल और स्वादिष्ट जलों वाले सरोवरों से सुशोभित थी॥६॥

आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः। ऋषिभिर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा॥७॥
वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितं चाग्निहोत्रिभिः। योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः॥८॥
उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। नदीभिरभितो जुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः॥९॥

वह भूमि विविध प्रकार के उद्यानों, दिव्य देवालयों, ऋषियों, ऋषिपुत्रों, महामुनिगणों, वेदाध्ययन में निष्णात अग्निहोत्र-परायण मुनियों तथा नासिका (नाक) के अग्रभाग में दृष्टि केन्द्रित करके ध्यान परायण रहने वाले योगियों एवं सभी ओर से बहने वाली नदियों के तटों पर तत्त्वदर्शी ज्ञानियों, मन्त्र-जप में संलग्न महात्माओं तथा ब्रह्मवादी (वेदान्ती विद्वानों) से व्याप्त थी॥७-९॥

सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः। प्रशान्तैः सत्य-सङ्कल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः॥१०॥
भस्मावदातसर्वाङ्गैः रुद्रजाप्यपरायणैः। मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखाजटैः॥११॥

शान्त स्वभाव वाले, सत्य-संकल्प वाले, शोक रहित और उपद्रव रहित (सरल स्वभाव वाले) तपस्वियों तथा ईश्वर शिव की आराधना में तत्पर पुण्यात्माओं के द्वारा वह भूमि निवास हेतु अपनायी गयी थी। वहाँ भगवान् शिव के मन्त्र जप में संलग्न भक्तों ने सम्पूर्ण शरीर में भस्म-लेपन किया हुआ था। उनमें से कुछ ने मुण्डन किया हुआ था तो कुछ जटाधारी थे तथा कुछ जटा के समान लम्बी शिखा वाले थे॥१०-११॥

सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः। तत्राश्रमवरे रम्ये सिद्धाश्रमविभूषिते॥१२॥
गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाघनाशिनी। स तत्र वीक्ष्य विश्वात्मा तापसान्वीतकल्मषान्॥१३॥
प्रणामेनाथ वचसा पूजयामास माधवः। तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१४॥

१. भगवान् विष्णु के वक्षस्थल में बालों के घूंघर (चक्राकार आकृति) को श्रीवत्स कहा गया है।

प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम्। अस्तुवन्[1] वैदिकैर्मन्त्रैः कृत्वा हृदि सनातनम्॥१५॥

उस भूमि में नित्यमेव तपस्वी, ज्ञानी और ब्रह्मवादी (वेदान्ती) विद्वान् निवास करते थे। वहाँ सिद्धों के आश्रमों के मध्य एक रमणीय श्रेष्ठ आश्रम के समीप नित्यमवे पापनाशिनी गङ्गा प्रवाहित होती थी। वहाँ पर विश्वात्मा भगवान् कृष्ण ने निष्पाप तपस्वियों को देखकर उनको प्रणाम किया तथा सद्वचनों से उनकी पूजा-प्रशंसा की थी। उन तपस्वियों ने भी जगत् स्रष्टा शंख-चक्र-गदाधारी योगियों के परम् गुरु उन भगवान् कृष्ण को देखकर उनको प्रणाम किया और उन सनातन प्रभु का हृदय में ध्यान करते हए वैदिक मन्त्रों से उनकी स्तुति की थी॥१२-१५॥

प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम्। अयं स भगवानेकः साक्षी नारायणः परः॥१६॥
आगच्छत्यधुना देवः पुराणपुरुषः[2] स्वयम्। अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्ता चैव रक्षकः॥१७॥

वे सब अव्यक्त आदि देव महामुनि कृष्ण के विषय में यह बोले कि यह भगवान् एकमात्र साक्षी परम गुरु पुराण पुरुष नारायण अभी स्वयं यहाँ आये हैं। यह अविनाशी भगवान् सृष्टि के कर्त्ता तथा उसके रक्षक और संहारकर्ता भी है॥१६-१७॥

अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन्द्रष्टुमिहागतः। एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः।
अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः॥१८॥

श्रुत्वा बुद्ध्वा हरिस्तेषां वचांसि वचनातिगः। ययौ स तूर्णं गोविन्दः स्थानं तस्य महात्मनः॥१९॥

यह भगवान् निराकार होते हुए भी मूर्तिमान होकर मुनियों के दर्शन हेतु यहाँ आये हैं। यह सर्वत्रगामी (सर्व व्यापी) धाता, विधाता, अनादि, अनश्वर, महाभूत और महेश्वर स्वयं यहाँ आये हैं। वह अनिर्वचनीय भगवान् कृष्ण उन मुनियों के वचन को सुनकर और समझ कर अति शीघ्र महात्मा मुनि उपमन्यु के स्थान (आश्रम) को चले गये थे॥१८-१९॥

उपस्पृश्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादवः। चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्पणम्॥२०॥

उन यदुवंशी देवकीनन्दन कृष्ण ने प्रत्येक तीर्थ में भक्तिभाव से आचमन करके [शुद्ध होकर] देवों, ऋषियों और पितरों का तर्पण किया था॥२०॥

नदीनां तीरसंस्थाने स्थापितानि मुनीश्वरैः। लिङ्गानि पूजयामास शम्भोरमिततेजसः॥२१॥

उन भगवान् कृष्ण ने मुनीश्वरों के द्वारा नदियों के तटों पर स्थापित परम तेजस्वी भगवान् शिव के लिङ्गों का पूजन किया था॥२१॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा समायान्तं यत्र यत्र जनार्दनम्। पूजयाञ्चक्रिरे पुष्पैरक्षतैस्तन्निवासिनः॥२२॥

जहाँ-जहाँ भगवान् कृष्ण जा रहे थे, वहाँ के निवासी उनको देखकर पुष्पों और अक्षतों से उनकी पूजा कर रहे थे॥२२॥

समीक्ष्य वासुदेवं तं शार्ङ्गशङ्खासिधारिणम्। तस्थिरे निश्चलाः सर्वे शुभाङ्गा यतमानसाः॥२३॥

१. स्तुवन्ति, २. प्रधान पुरुषः

शार्ङ्ग-धनुष, शङ्ख और तलवार को धारण करने वाले भगवान् कृष्ण को देखकर शुभ अङ्गों और स्थिर चित्त वाले सभी मुनिगण वहाँ निश्चल होकर स्थित थे॥२३॥

यानि तत्रारुरुक्षूणां मानसानि जनार्दनम्। द्रष्टुं[1] समाहितान्यासन्निष्क्रामन्ति पुरा हरिम्॥२४॥

जिन योगियों ने योगारुढ होने के लिए पहले से ही अपने चित्त को समाधि में लगाया हुआ था, वे भी जनार्दन कृष्ण के दर्शन हेतु समाधि त्याग कर बाहर आ गये थे॥२४॥

अथावगाह्य गङ्गायां कृत्वा देवर्षितर्पणम्। आदाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद् गृहम्॥२५॥

तब कृष्ण ने गङ्गा में स्नान करके देवों और ऋषियों का तर्पण करके उत्तम पुष्पों को लेकर मुनिवर उपमन्यु के घर में प्रवेश किया था॥२५॥

दृष्ट्वा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्धूलितविग्रहम्। जटाचीरधरं शान्तं ननाम शिरसा मुनिम्॥२६॥

भस्म से लिप्त शरीर वाले जटा और वल्कल वस्त्रधारी योगियों में श्रेष्ठ उन शान्त-स्वभाव मुनिवर को देखकर भगवान् कृष्ण ने उनको नतमस्तक होकर प्रणाम किया था॥२६॥

आलोक्य कृष्णमायान्तं पूजयामास तत्त्ववित्।
आसने वासयामास योगिनां प्रथमातिथिम्॥२७॥

योगियों में श्रेष्ठ भगवान् कृष्ण को अतिथि रूप में आते हुए देख कर तत्ववेत्ता मुनि उपमन्यु ने उनका पूजन (सत्कार) किया और उन्हें आसन में बैठाया॥२७॥

उवाच वचसां योनिं जानीमः परमम्पदम्। विष्णुमव्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेन संस्थितम्॥२८॥

उपमन्यु बोले हम यह जानते हैं कि वाणी के उद्गम परमपद रूप अव्यक्त भगवान् विष्णु ही शिष्य भाव से यहाँ आये हैं॥२८॥

स्वागतं ते हृषीकेश सफलानि तपांसि नः। यत्साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेहं विष्णुरागतः॥२९॥

हे हृषीकेश कृष्ण! आपका स्वागत है। हमारी तपस्या सफल हो गयी है, क्योंकि साक्षात् विश्वात्मा विष्णु आज हमारे घर आये हैं॥२९॥

त्वां न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपीह योगिनः। तादृशस्यात्र भवतः किमागमनकारणम्॥३०॥

मुनिगण तथा योगी जन प्रयत्नशील होने पर भी आपका दर्शन नहीं कर पाते हैं। ऐसे [दुर्लभ दर्शन वाले] आपका यहाँ आने का क्या कारण है॥३०॥

श्रुत्वोपमन्योस्तद्वाक्यं भगवान्देवकीसुतः। व्याजहार महायोगी वचनं[2] प्रणिपत्य तम्॥३१॥

उपमन्यु के ऐसे वचन सुन कर महायोगी देवकीनन्दन भगवान् कृष्ण ने उनको प्रणाम करके यह वचन कहे थे॥३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम्। सम्प्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्दर्शनोत्सुकः॥३२॥

श्रीकृष्ण बोले- हे भगवान्! मैं कृत्तिवासा (मृगाधीश-सिंह या व्याघ्र के चर्म को वस्त्र रूप में धारण

---

१. दृष्ट्वा, २. प्रसन्नं

करने वाले) भगवान् शिव का दर्शन करना चाहता हूँ। उन भगवान् शिव के दर्शन की उत्सुकता से ही मैं आपके स्थान तक आया हूँ॥३२॥

कथं स भगवानीशो दृश्यो योगविदां वरः। मयाचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापतिम्॥३३॥

योगविद्या के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ उन भगवान् शिव का दर्शन मुझे शीघ्रमेव कैसे प्राप्त होगा? मैं उन पर्वतीपति का दर्शन कहाँ करूँगा?॥३३॥

तच्छ्रुत्वा तु मुनिः प्राह[1] दृश्यते परमेश्वरः। भक्त्यैवोग्रेण तपसा तत्कुरुष्वेह यत्नतः॥३४॥

यह बात सुन कर मुनि बोले- उन भगवान् परमेश्वर शिव की भक्ति और कठोर तपस्या से उनका दर्शन प्राप्त होता है। अतः आप प्रयत्न पूर्वक वही करो॥३४॥

इहेश्वरं देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः। ध्यायन्त्याराधयन्त्येनं योगिनस्तापसाश्च ये॥३५॥

यहाँ अनेक ब्रह्मवादी मुनीश्वर अनेक योगी और तपस्वी जन परमेश्वर देवाधिदेव शिव का ध्यान और आराधना करते हैं॥३५॥

इह देवः सपत्नीको भगवान् वृषभध्वजः। क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः परिवारितः॥३६॥

यहाँ वृषभध्वज भगवान् शिव अपनी पत्नी पार्वती तथा अनेक विध भूतों और योगियों से घिरे हुए नाना क्रीड़ा करते रहते हैं॥३६॥

इहाश्रमे पुरा रुद्रं तपसतप्त्वा सुदारुणम्। लेभे महेश्वराद्योगं वसिष्ठो भगवानृषिः॥३७॥

प्राचीन काल में यहाँ के आश्रम में भगवान् ऋषि वसिष्ठ ने अत्यन्त कठिन तप करके महादेव शिव से योग-विद्या प्राप्त की थी॥३७॥

इहैव भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्। दृष्ट्वा तं परमेशानं लब्धवान् ज्ञानमैश्वरम्॥३८॥

इस आश्रम में स्वयं भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास जी ने उन परमेश्वर का दर्शन करके उनसे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया था॥३८॥

इहाश्रमवरे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्दिनः। अविन्दन् पुत्रकानुरुद्रात्सूरयो भक्तिसंयुताः॥३९॥

इसी श्रेष्ठ आश्रम में तपस्या करके भक्तिभाव वाले विद्वानों ने भगवान् शिव से अनेक पुत्रों को प्राप्त किया था॥३९॥

इह देवा महादेवीं भवानीञ्च महेश्वरीम्। संस्तुवन्तो महादेवं निर्भया निर्वृतिं ययुः॥४०॥

यहाँ आकर देवताओं ने महादेवी महेश्वरी भवानी (पार्वती) तथा महादेव भगवान् शिव की स्तुति की थी। अतः वे भय रहित और परम सुखी हुए थे॥४०॥

इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपतां वरः। लब्धवान् परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम्॥४१॥

यहाँ पर तपस्वियों में श्रेष्ठ सावर्णि ने महादेव की आराधना करके परमोत्तम योग को और उत्तम ग्रन्थ की रचना की योग्यता को प्राप्त किया था॥४१॥

प्रवर्तयामास शुभां[2] कृत्वा वै संहितां शुभाम्। पौराणिकीं सुपुण्यार्थं सच्छिष्येषु द्विजातिषु॥४२॥

---

१. प्रत्याह भगवानुक्तो, २. सतां

साथ ही उन्होंने शुभकारी पुराण संहिता की रचना करके अच्छे शिष्यों और द्विजातियों में (उसके अध्ययन, कथाश्रवण को) प्रचलित किया था॥४२॥

इहैव संहितां दृष्ट्वा कापेयः शांशपायनः। महादेवं चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः।
द्वादशैव सहस्राणि श्लोकानां पुरुषोत्तम॥४३॥

हे पुरुषोत्तम कृष्ण! यहीं पर कापेय शांसपायन ने भगवान् शिव का दर्शन करके उनके आदेश से पुराण-संहिता (?) की रचना की थी, जिसमें बारह हजार श्लोक हैं॥४३॥

इह प्रवर्तिता पुण्या द्व्यष्टसाहस्रिकोत्तरा। वायवीयोत्तरं नाम पुराणं वेदसंमतम्।
इहैव ख्यापितं शिष्यैर्वैशम्पायनभाषितम्॥४४॥

यहीं पर सोलह हजार श्लोकों वाले वेदों के अनुकूल वायु पुराण (वायवीयोत्तर पुराण) की रचना करके वैशम्पायन ने उसका उपदेश अपने शिष्यों को दिया था॥४४॥

याज्ञवल्क्यो महायोगी दृष्ट्वाऽत्र तपसा हरम्। चकार तन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम्॥४५॥

महायोगी याज्ञवल्क्य ने यहाँ तपस्या करके भगवान् शिव का दर्शन पाकर उनके आदेशानुसार उत्तम योगशास्त्र की रचना की थी॥४५॥

इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा वै परमं तपः। शुक्रो महेश्वरात्पुत्रो लब्धो योगविदां वरः॥४६॥

पूर्वकाल में यहीं पर भृगु ने परम तप करके भगवान् शिव से [वरदान प्राप्त करके] योग के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ पुत्र शुक्र को प्राप्त किया था॥४६॥

तस्मादिहैव देवेश तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्। द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम्॥४७॥

अतः हे देवेश! आप यहीं पर दुस्कर तपस्या करके उग्र, भीम, कपर्दी (आदि नामों वाले) विश्वेश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं॥४७॥

एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः। व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे॥४८॥

ऐसा कहकर महामुनि उपमन्यु ने अक्लिष्ट (सरल और समुचित) कर्मकर्ता श्रीकृष्ण को ज्ञानयोग और पाशुपत व्रत का उपदेश दिया था॥४८॥

स तेन मुनिवर्येण व्याहृतो मधुसूदनः। तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत्प्रभुः॥४९॥

उन मुनीश्वर के उपदेशानुसार मधुसूदन भगवान् कृष्ण ने वहीं पर तपस्या करके महादेव शिव की आराधना की थी॥४९॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो मुण्डो वल्कलसंयुतः। जजाप रुद्रमनिशं शिवैकाहितमानसः॥५०॥

भगवान् कृष्ण ने सम्पूर्ण शरीर में भस्म-लेपन करके तथा मुण्डन करके एवं वल्कल वस्त्र धारण करके शिव के ध्यान में मन को एकाग्र करते हुए रुद्रसम्बन्धी मन्त्रों का निरन्तर जप किया था॥५०॥

ततो बहुतिथे काले सोमः सोमार्द्धभूषणः। अदृश्यत महादेवो व्योम्नि देव्या महेश्वरः॥५१॥

तब बहुत समय पश्चात् अर्धचन्द्रमा से विभूषित मस्तक वाले वह देवाधिदेव शिव पार्वती के साथ आकाश में दिखायी दिये थे॥५१॥

किरीटिनं गदिनं चित्रमालं पिनाकिनं शूलिनं देवदेवम्।
शार्दूलचर्माम्बरसंवृताङ्गं देव्या महादेवमसौ ददर्श॥५२॥

भगवान् कृष्ण ने मुकुट, गदा, चित्रमाला (विविध रंगों वाली माला), पिनाक नामक धनुष और त्रिशूल धारण किये हुए, व्याघ्रचर्म से आच्छादित शरीर वाले उन महादेव को पार्वती के साथ देखा था॥५२॥

प्रभुं पुराणं पुरुषं पुरस्तात्सनातनं योगिनमीशितारम्।
अणोरणीयांसमनन्तशक्तिं प्राणेश्वरं शम्भुमसौ ददर्श॥५३॥

भगवान् कृष्ण ने अपने समक्ष सनातन प्रभु, पुराण-पुरुष, योगी, अणु, ईशिता (ईश्वर), अणु से भी अणुतर, अनन्त शक्ति वाले, प्राणेश्वर शिव को देखा था॥५३॥

परश्वधासक्तकरं त्रिनेत्रं नृसिंहचर्मावृतभस्मगात्रम्।
समुद्गिरन्तं प्रणवं बृहंतं सहस्रसूर्यप्रतिमं ददर्श॥५४॥

श्रीकृष्ण ने देखा कि वह तीन नेत्रों वाले शिव अपने हाथ में परशु धारण किये हुए हैं, अपने शरीर में व्याघ्रचर्म और भस्म लपेटे हुए हैं, महान् प्रणव (ओङ्कार) का उच्चारण कर रहे हैं और सहस्र सूर्यों के समान दीप्तिमान हो रहे हैं॥५४॥

न यस्य देवा न पितामहोऽपि नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न मृत्युः।
प्रभावमद्यापि वदन्ति रुद्रं तमादिदेवं पुरतो ददर्श॥ ५५॥

जिन भगवान् रुद्र के प्रभाव का वर्णन देवता, पितामह (ब्रह्मा), इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम आज तक भी नहीं कर पाये हैं, उन भगवान् रुद्र को श्रीकृष्ण ने अपने आगे देखा था॥५५॥

तदान्वपश्यद्गिरिशस्य वामे स्वात्मानमव्यक्तमनन्तरूपम्।
स्तुवन्तमीशं बहुभिर्वचोभिः शङ्खासिचक्रान्वितहस्तमाद्यम्॥५६॥

तभी उसी समय श्रीकृष्ण ने भगवान् शिव के वाम भाग में अपने अव्यक्त, अनन्त, आदि रूप (विष्णु) को देखा, जिनके हाथों में शङ्ख, तलवार तथा चक्र था और जो बहुत से वाक्यों से भगवान् शिव की स्तुति कर रहे थे॥५६॥

कृताञ्जलिं दक्षिणतः सुरेशं हंसाधिरूढं पुरुषं ददर्श।
स्तुवानमीशस्य परं प्रभावं पितामहं लोकगुरुं दिविस्थम्॥५७॥

भगवान् कृष्ण ने उन भगवान् शिव के दाहिनी ओर आकाश में हंस में आरूढ देवेश्वर पुरुष लोकगुरु, पितामह ब्रह्मा को देखा, जो हाथ जोड़कर भगवान् शिव के परम प्रभाव की स्तुति कर रहे थे॥५७॥

गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पान्नन्दीश्वरादीनमितप्रभावान्।
त्रिलोकभर्तुः पुरतोऽन्वपश्यत्कुमारमग्निप्रतिमं गणेशम्॥५८॥

मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यं प्रचेतसं दक्षमथापि कण्वम्।
पराशरं तत्परतो वसिष्ठं स्वायम्भुवञ्चापि मनुं ददर्श॥५९॥

भगवान् कृष्ण ने त्रिलोकीनाथ शिव के आगे सहस्र सूर्यों के समान दीप्तिमान गणेश्वरों, असीमित प्रभाव वाले नन्दीश्वर आदि को तथा अग्नि के समान तेज वाले कुमार कार्तिकेय और गणेशजी को एवं उनके पीछे मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, प्रचेतस (प्रचेता), दक्ष, कण्व, पराशर, वसिष्ठ तथा स्वायम्भुव मनु को भी देखा था॥५८-५९॥

तुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधानं बद्धाञ्जलिर्विष्णुरुदारबुद्धिः।
प्रणम्य देव्या गिरिशं स्वभक्त्या स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य॥६०॥

तब उदारबुद्धि वाले श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़कर देवी पार्वती सहित देवों में प्रधान देव महादेव शिव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने हृदय में उन आत्मस्वरूप शिव का ध्यान करके उनकी स्तुति की थी॥६०॥

श्रीकृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने ब्रह्मादयस्त्वामृषयो वदन्ति।
त्वमेव सत्त्वं च रजस्तमश्च[१] त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः॥६१॥

श्रीकृष्ण बोले- हे शाश्वत समस्त सृष्टि के जनक! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवता और ऋषिगण आपको ही सत्त्व, रज और तमोगुण स्वरूप कहते हैं। सन्त जन आपको ही सर्व सृष्टि स्वरूप बतलाते हैं॥६१॥

त्वं ब्रह्मा हरिरथ रुद्रविश्वकर्ता संहर्ता दिनकरमण्डलाधिवासः।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेदस्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥६२॥

आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव-स्वरूप हैं। आप विश्व के कर्ता (रचियता) और संहार करने वाले हैं। सूर्य-मण्डल में भी आपका निवास है। आप प्राण रूप हैं। आप अग्निरूप हैं। आप इन्द्र आदि नाना देवों के रूप में स्थित हैं। आप एकमात्र देव ईश्वर रूप हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ॥६२॥

सांख्यास्त्वामगुणमथाहुरेकरूपं योगस्थं सततमुपासते हृदिस्थम्।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमीड्यं त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥६३॥

सांख्य-दर्शन के विद्वान् आपको निर्गुण और एकमात्र स्वरूप वाला बतलाते हैं। योगी जन आपको अपने हृदय में स्थित मान कर ही नित्य आपकी उपासना करते हैं। वेदों में आपको स्तुतियों से उपास्य एकमात्र रुद्र देव कहा गया है। मैं आप पमरेश्वर शिव की शरण में आता हूँ॥६३॥

त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेकं दत्त्वासौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः।
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्टं स्मृत्वा ते पादयुगलं भवत्प्रसादात्॥६४॥

आपके चरणों में एक पुष्प या एक विल्व पत्र अर्पित करने मात्र से भी मनुष्य भव-बन्धन से मुक्त

१. तमश्चय सत्त्वं च रजस्त्रयं च

हो जाता है। सिद्धों और योगियों के द्वारा सेवित आपके चरण युगल का स्मरण करके मनुष्य के सभी पाप आपकी कृपा से नष्ट हो जाते हैं॥६४॥

यं चाशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं
तं त्वां योनिमनन्तमेकमचलं सत्यं परं सर्वगम्।
स्थाणुं प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदं जायते
नित्यं त्वाहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरं त्वां शिवम्॥६५॥

जिनको सभी प्रकार के विभाजनों (भेदापभेदों) से रहित, निर्मल, भक्तों के हृदय के अन्दर स्थित तत्त्व, ज्योति रूप, अनन्त, अद्वितीय, अचल परं सत्य, सर्वव्यापी, स्थाणु एवं आदि-मध्य और अन्त से रहित कहा गया है, जिनसे यह जगत् उत्पन्न होता है, ऐसे सत्य-विभव वाले विश्वेश्वर शिव की शरण में मैं आया हूँ॥६५॥

ॐ नमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे। महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः॥६६॥
नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने। नमस्ते वज्रहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने॥६७॥

ॐ नीलकण्ठ, त्रिनेत्र रंहस् (=उग्र[1]), महादेव, ईशान आपको नित्यमेव (बारंबार) नमस्कार है। पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले, मुण्ड (? कपाल) और दण्ड धारण करने वाले, हाथ में वज्र धारण करने वाले, दिशारूपी वस्त्र धारण करने वाले (नग्न), कपर्दी भगवान् शिव को नमस्कार है॥६६-६७॥

नमो भैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे। नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरेतसे॥६८॥

भयंकर गर्जना करने वाले, कालरूप, दाढों वाले आपको नमस्कार है। नागों को यज्ञपवीत रूप में धारण करने वाले, अग्निरूपी वीर्य वाले आपको नमस्कार है॥६८॥

नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः। नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमो नमः॥६९॥

हे गिरीश! आपको नमस्कार है। हे स्वाहाकार! आपको नमस्कार है। उन्मुक्त रूप से अट्टहास करने वाले आपको नमस्कार है। हे भीम! आपको नमस्कार है॥६९॥

नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने। नमो भैरववेषाय हराय च निषंगिणे॥७०॥

कामदेव को भस्म करने वाले आपको नमस्कार है। काल का भी दमन करने वाले आपको नमस्कार है। भयानक वेष धारण करने वाले, तरकस धारण करने वाले 'हर' (=शिव) को नमस्कार है॥७०॥

नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे। नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः॥७१॥

त्र्यम्बक शिव को नमस्कार है। कृत्तिवासा (मृगचर्मधारणकर्ता) शिव को नमस्कार है। अम्बिका के अधिपति को नमस्कार है। भगवान् पशुपति को नमस्कार है॥७१॥

नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः। नरनारीशरीराय साङ्ख्ययोगप्रवर्तिने॥७२॥

१. रंहस् शब्द का एक अर्थ 'उग्र' है। उग्र भी शिव का एक नाम है।

व्योम रूप (आकाशरूप) को नमस्कार है और व्योम के अधिपति को नमस्कार है। नर-नारी शरीर (अर्धनारीश्वर) को नमस्कार है। सांख्य और योग दर्शन के प्रवर्तक (भगवान् शिव) को नमस्कार है॥७२॥

नमो भैरवनाथाय देवानुगतलिङ्गिने। कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः॥७३॥

देवों द्वारा अनुगत (पूजित) लिङ्ग वाले भैरवनाथ को नमस्कार है। कुमार कार्तिकेय के पिता देवाधिदेव आपको नमस्कार है॥७३॥

नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे। मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः॥७४॥

यज्ञ के अधिपति को नमस्कार है। ब्रह्मचारी को नमस्कार है। मृगव्याध संज्ञक महान् ब्रह्माधिपति को नमस्कार है॥७४॥

नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमो नमः। योगिने योगगम्याय योगमायाय ते नमः॥७५॥

हंस स्वरूप, विश्व संज्ञा वाले, मोहित करने वाले शिव को नमस्कार है। योगी, योग से प्राप्य और योग रूप माया वाले शिव को नमस्कार है॥७५॥

नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च। कपालिने नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः॥७६॥

प्राणों का पालन अर्थात् रक्षा करने वाले, घण्टा-ध्वनि से प्रसन्न होने वाले आपको नमस्कार है। कपाल (खोपड़ी) को धारण करने वाले शिव को नमस्कार है। ग्रह-नक्षत्रों के अधिपति को नमस्कार है॥७६॥

नमो नमो नमस्तुभ्यं भूय एव नमो नमः। मह्यं सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वरः॥७७॥

आपको नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार है। आपको बारंबार नमस्कार है। हे परमेश्वर! आप सर्वात्मना (पूर्णरूप से) मेरी इच्छाओं को पूर्ण करें॥७७॥

सूत उवाच

एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधवः। पपात पादयोर्विप्रा देवदेव्योः स दण्डवत्॥७८॥

सूत जी बोले- हे ब्राह्मणो! वह कृष्ण इस प्रकार देवेश्वर शिव की स्तुति करके उन भगवान् शिव और देवी पार्वती के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुए लेट गये थे॥७८॥

उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णं केशिनिषूदनम्। बभाषे मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥७९॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष तप्यते भवता तपः। त्वमेव दाता सर्वेषां कामानां कर्मणामिह॥८०॥

तब भगवान् शिव ने केशि दानव का वध करने वाले कृष्ण को उठाकर मेघ के समान गम्भीर-मधुर स्वर में यह कहा कि हे पुण्डरीकाक्ष (कमल नयन)! आप किस उद्देश्य से तप कर रहे हैं? आप तो सभी की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, कर्मों (सत्कर्मों) का फल देने वाले हैं॥७९-८०॥

त्वं हि सा परमा मूर्तिर्मम नारायणाह्वया। न विना त्वां जगत्सर्वं विद्यते पुरुषोत्तम॥८१॥

आप तो नारायण नामक मेरी ही दूसरी मूर्ति (दूसरे स्वरूप) हैं। हे पुरुषोत्तम! आपके बिना सम्पूर्ण जगत् में अन्य कुछ भी नहीं है॥८१॥

वेत्सि[1] नारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम्। महादेवं महायोगं स्वेन योगेन केशव॥८२॥

हे नारायण! हे केशव! आप अपने योगवल से स्वयं यह जानते हैं कि आप परमेश्वर, महादेव और महायोगी हैं॥८२॥

श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन्वै वृषध्वजम्। उवाचान्वीक्ष्य विश्वेशं देवीञ्च हिमशैलजाम्॥८३॥
ज्ञातं हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शङ्कर। इच्छाम्यात्मसमं पुत्रं त्वद्भक्तं देहि शङ्कर॥८४॥

शिव के उन वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण ने हँसते हुए उन वृषध्वज (शिव) तथा देवी हिमवान की पुत्री पार्वती को देखकर यह कहा कि हे शङ्कर! आपने योग के वल से मेरा सभी अभीष्ट ज्ञात कर लिया है। हे शिव! मैं अपने समान पुत्र की कामना करता हूँ, जो कि आपका भक्त हो। मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें॥८३-८४॥

तथास्त्वित्याह विश्वात्मा प्रहृष्टमनसा हरः। देवीमालोक्य गिरिजां केशवं परिषस्वजे॥८५॥

विश्व की आत्मा भगवान् शिव ने प्रसन्न मन से तथाऽस्तु (वैसा ही हो) ऐसा कह कर देवी पार्वती को देखकर श्रीकृष्ण का आलिङ्गन किया था॥८५॥

ततः सा जगतां माता शङ्करार्द्धशरीरिणी। व्याजहार हृषीकेशं देवी हिमगिरीन्द्रजा॥८६॥
अहं जाने तवानन्त निश्चलां सर्वदाच्युत। अनन्यामीश्वरे भक्तिमात्मन्यपि च केशव॥८७॥

तब भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी हिमवत् पुत्री जगज्जननी पार्वती ने कहा- हे कृष्ण! हे अनन्त! हे अच्युत! मैं जानती हूँ कि आपकी भगवान् शिव पर और मुझ पर निश्चल और अनन्य भक्ति है॥८६-८७॥

त्वं हि नारायणः साक्षात्सर्वात्मा पुरुषोत्तमः। प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं सञ्जातो देवकीसुतः॥८८॥

आप साक्षात् नारायण, सर्वात्मा पुरुषोत्तम हैं। पूर्वकाल में देवों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर आप देवकी के पुत्र रूप में अवतरित हुए हैं॥८८॥

पश्य त्वमात्मनात्मानमात्मानं मम सम्प्रति। नावयोर्विद्यते भेद एकं पश्यन्ति सूरयः॥८९॥

आप अभी स्वयं अपने आत्मा को (परमात्मा रूप में) देखें तथा मेरे आत्म रूप को भी देखें। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। विद्वान् लोग हमें एक रूप में ही देखते हैं॥८९॥

इमानिह वरानिष्टान्मत्तो गृह्णीष्व केशव। सर्वज्ञत्वं तथैश्वर्यं ज्ञानं तत्परमेश्वरम्॥९०॥

हे केशव! आप मेरे द्वारा दिये जाने वाले इन अभीष्ट वरों को ग्रहण करो। आपको सर्वज्ञता, ऐश्वर्य, परमेश्वर विषयक ज्ञान, शिव में निश्चल भक्ति तथा अपने शरीर में परम उत्कृष्ट बल प्राप्त होगा॥९०॥

ईश्वरे निश्चलां भक्तिमात्मन्यपि परं बलम्। एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेव्या जनार्दनः।
आशिष[2] शिरसागृह्यात् देवोऽप्याह तथेश्वरः॥९१॥

तब भगवान् कृष्ण ने देवी पार्वती के आशीर्वाद को शिरोधार्य किया और परमेश्वर शिव ने तथास्तु कह कर उस वरदान का समर्थन किया था॥९१॥

१. वेत्थ, २. आदेशं

प्रगृह्य कृष्णं भगवानथेशः करेण देव्या सह देवदेवः।
सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुरेशैर्जगाम कैलासगिरिं गिरीशः॥९२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे यदुवंशानुकीर्तने कृष्णतपश्चरणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

तब देवाधिदेव भगवान् शिव स्वयं श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ कर उनको भी साथ लेकर पार्वती सहित कैलास पर्वत को चले गये थे। उनके प्रस्थान के समय मुनिगण और देवता उनका स्तवन पूजन कर रहे थे॥९२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में यदुवंश के वर्णन-प्रसंग में 'कृष्णतपश्चरण' नामक पचीसवाँ अध्याय पुरा हुआ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

शङ्करकीर्तिवर्णनं लिङ्गोत्पत्तिवर्णनं च

सूत उवाच

प्रविश्य मेरुशिखरात् कैलासं कनकप्रभम्।
रेमे[1] स भगवान्सोमः केशवेन महेश्वरः॥१॥

मेरु पर्वत से होते हुए स्वर्णिम कैलास पर्वत में पहुँचने पर उमा सहित भगवान् शिव वहाँ श्रीकृष्ण के साथ आनन्द के साथ रहते हुए विहार करने लगे थे॥१॥

अपश्यंस्तं महात्मानं कैलासगिरिवासिनः पूजयाञ्चक्रिरे कृष्णं देवदेवमथाच्युतम्॥२॥

कैलास पर्वत पर निवास करने वालों ने उन देवाधिदेव अच्युत भगवान् कृष्ण की पूजा की थी॥२॥

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कालमेघसमप्रभम्। किरीटिनं शार्ङ्गपाणिं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥३॥
दीर्घबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमच्युतम्। दधानमुरसा मालां वैजयन्तीमनुत्तमाम्॥४॥
भ्राजमानं श्रिया देव्या युवानमतिकोमलम्। पद्मांघ्रिं पद्मनयनं सस्मितं सद्गतिप्रदम्॥५॥

[पूजित होने वाले भगवान् कृष्ण के विषय में यह कहा गया है कि वह] चार भुजाओं वाले, सुन्दर सुडौल अङ्गों वाले, नीले/सांवले वर्ण के मेघ के समान कान्ति वाले, मुकुट धारण किये हुए, हाथ में शार्ङ्ग-धनुष धारण किये हुए श्रीवत्स से चिह्नित वक्ष-स्थल वाले, आजानु बाहु, विशाल नयनों वाले पीतवस्त्र धारी अच्युत (निर्विकार) कृष्ण अपने वक्षस्थल मैं वैजयन्ती नामक माला को धारण किये हुए थे। वह श्री

---

१. रराम

(सौन्दर्य) से दीप्तिमान, अति कोमल युवक जैसे लग रहे थे। सद्गति दाता कृष्ण के चरण कमल के समान थे और उनके नेत्र भी कमल के समान थे॥३-५॥

कदाचित्तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्धनः। भ्राजमानः श्रिया कृष्णश्चचार गिरिकन्दरम्॥६॥

माता देवकी का आनन्द बढ़ाने वाले परम शोभा से सम्पन्न वह श्री कृष्ण एक बार कोई लीला करने के लिए पर्वत-कन्दरा (गुफा) की ओर विचरण कर रहे थे॥६॥

गन्धर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नशः। सिद्धा यक्षाश्च देवाश्च तत्र तं[1] च जगन्मयम्॥७॥
दृष्ट्वाश्चर्यं परं गत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः। मुमुचुः पुष्पवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि महात्मनः॥८॥

वहाँ सभी प्रमुख गन्धर्वों, अप्सराओं, नाग-कन्याओं, सिद्धों, यक्षों और देवों ने उन जगत् स्वामी श्रीकृष्ण को देखा तो उनकी आँखें हर्ष से विकसित (खुली सी) हो गयी थी। उन सभी ने महात्मा कृष्ण पर पुष्पों की वर्षा की थी॥७-८॥

गन्धर्वकन्यका दिव्यास्तद्वदप्सरसो वराः। दृष्ट्वा चकमिरे कृष्णं स्रस्तवस्त्रविभूषणाः॥९॥

गन्धर्वों की दिव्य कन्याएँ तथा सुन्दर अप्सराएँ कृष्ण को देख कर उनकी [कामार्त भाव से] कामना करने लगी थी। उनके वस्त्र और आभूषण स्रस्त (अस्तव्यस्त, ढीले) हो गये थे॥९॥

काश्चिद्गायन्ति विविधं गानं गीतविशारदाः। सम्प्रेक्ष्य देवकीसूनुं सुन्दरं काममोहिताः॥१०॥

कुछ गीत-संगीत में निपुण सुन्दरियाँ उन सुन्दर देवकीनन्द कृष्ण को देखकर कामार्त होकर विविध गीतों को गाने लगी थी॥१०॥

काश्चिद् विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रतः। सम्प्रेक्ष्य सस्मितं काश्चित्पपुस्तद्वदनामृतम्॥११॥

कुछ अत्यन्त विलास-प्रिय सुन्दरियाँ श्रीकृष्ण के सम्मुख जाकर नृत्य करने लगी थी तो कुछ श्रीकृष्ण की मुस्कान को देखकर उनके वदनामृत का पान कर रही थी॥११॥

काश्चिद्भूषणवर्याणि स्वाङ्गादादाय सादरम्। भूषयाञ्चक्रिरे कृष्णं कन्या लोकविभूषणम्॥१२॥
काश्चिद्भूषणवर्याणि समादाय तदङ्गतः। स्वात्मानं भूषयामासुः स्वात्मकैरपि माधवम्॥१३॥

कुछ कन्याओं ने अपने शरीर के आभूषणों को निकाल कर उनसे लोक-भूषण (लोक के अलंकार) श्रीकृष्ण को आदरपूर्वक अलंकृत किया था। कुछ कन्याओं ने उन श्रीकृष्ण के शरीर से आभूषणों को निकाल कर उनसे अपने शरीर को अलंकृत किया था तथा अपने आभूषणों से उन भगवान् श्रीकृष्ण को अलंकृत किया था॥१२-१३॥

काचिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिता। चुचुम्ब वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगेक्षणा॥१४॥

किसी कामातुर मृगनयनी ने भगवान् श्रीकृष्ण पर मोहित होकर उनके मुख कमल का चुम्बन किया था॥१४॥

प्रगृह्य काचिद्गोविन्दं करेण भवनं स्वकम्। प्रापयामास लोकादिं मायया तस्य मोहिता॥१५॥

१. गन्धर्वा देवास्तं च

कोई नायिका भगवान् कृष्ण की माया से मोहित होकर उनका हाथ पकड़ कर उन्हें अपने घर ले गयी थी॥१५॥

तासां स भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः। बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया॥१६॥

भगवान् कृष्ण ने अपनी लीला से अनेक रूप धारण कर उन सभी की कामना पूर्ण की थी॥१६॥

एवं वै सुचिरं कालं देवदेवपुरे हरिः। रेमे नारायणः श्रीमान्मायया मोहयन् जगत्॥१७॥

इस प्रकार वह कमलनयन श्रीमान् भगवान् कृष्ण अपनी माया से जगत् को मोहित करते हुए देवाधिदेव महादेव के नगर में बहुत समय तक रहे थे॥१७॥

गते बहुतिथे काले द्वारवत्या निवासिनः। बभूवुर्विकला भीता गोविन्दविरहे जनाः॥१८॥

बहुत दिन का समय व्यतीत हो जाने पर द्वारका के निवासी श्रीकृष्ण के विरह में विकल (व्याकुल) और भयभीत हो गये थे॥१८॥

ततः सुपर्णो बलवान्पूर्वमेव विसर्जितः। स कृष्णं मार्गमाणस्तु हिमवन्तं ययौ गिरिम्॥१९॥

तब पक्षिराज बलवान् गरुड, जिसे हिमालय में पहुँचने पर श्रीकृष्ण ने वापस भेज दिया था, वह उनको खोजता हुआ हिमालय पर्वत में गया था॥१९॥

अदृष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम्। आजगामोपमन्युं तं पुरीं द्वारवतीं पुनः॥२०॥

वहाँ श्रीकृष्ण को न देखकर गरुड शिर झुका कर उपमन्यु को प्रणाम करके पुनः द्वारका पुरी में लौट आया था॥२०॥

तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणाः। आजग्मुर्द्वारकां शुभ्रां भीषयन्तः सहस्रशः॥२१॥

उसी बीच हजारों अत्यन्त भंयकर महादैत्य और राक्षस उज्जवल द्वारकापुरी में आकर वहाँ के निवासियों को भयभीत करने लगे थे॥२१॥

स तान् सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रमः। हत्वा युद्धेन महतः रक्षति स्म पुरीं शुभाम्॥२२॥

भगवान् कृष्ण के समान पराक्रमी उस बलवान् गरुड ने उन महादैत्यों और राक्षसों को महायुद्ध में मार कर सुन्दर द्वारकापुरी की रक्षा की थी॥२२॥

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः। दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गतः॥२३॥

उसी समय भगवान् नारद ऋषि कैलास के शिखर में श्रीकृष्ण को देखकर द्वारकापुरी में गये थे॥२३॥

ते दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्वे तत्र निवासिनः। प्रोचुर्नारायणो नाथः कुत्रास्ते भगवान् हरिः॥२४॥

वहाँ के सभी निवासियों ने नारद मुनि को देखकर उनसे पूछा कि भगवान् नारायण हरि-कृष्ण कहाँ हैं॥२४॥

स तानुवाच भगवान्कैलासशिखरे हरिः। रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाऽहमिहागतः॥२५॥

तब नारद ने उनसे कहा कि महायोगी भगवान् कृष्ण आज भी कैलास के शिखर में रमण कर रहे हैं। आज मैं उनको वहाँ पर देख कर ही यहाँ आया हूँ॥२५॥

तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततां वरः। जगामाकाशगो विप्राः कैलासं गिरिमुत्तमम्॥ २६॥

हे द्विजो! उनके वचन को सुनकर आकाश में उड़ने वाला पक्षिराज गरुड उड़कर शीघ्र उत्तम कैलास पर्वत पर गये थे॥ २६॥

ददर्श देवकीसूनुं भवने रत्नमण्डिते। तत्रासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम्॥ २७॥

वहाँ गरुड ने रत्न-मण्डित भवन में देवाधिदेव शिव के समीप आसन पर बैठे हुए गोविन्द कृष्ण को देखा था॥ २७॥

उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः। महादेवगणैः सिद्धैर्योगिभिः परिवारितम्॥ २८॥

वहाँ पर चारों ओर से देवता एवं दिव्य स्त्रियाँ (देवाङ्गनाएँ) उनकी उपासना कर रही थी। वह कृष्ण वहाँ भगवान् शिव के गणों, सिद्धों और योगियों से घिरे हुए थे॥ २८॥

प्रणम्य दण्डवद्भौमौ सुपर्णः शङ्करं शिवम्। निवेदयामास हरिं प्रवृत्तं द्वारकापुरे॥ २९॥

वहाँ गरुड ने भगवान् शिव शङ्कर को भूमि में लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया और तब श्रीकृष्ण को द्वारकापुरी में घटित घटना के विषय में निवेदन किया॥ २९॥

ततः प्रणम्य शिरसा शङ्करं नीललोहितम्। आजगाम पुरीं कृष्णः सोऽनुज्ञातो हरेण तु॥ ३०॥
आरुह्य कश्यपसुतं स्त्रीगणैरभिपूजितः। वचोभिरमृतास्वादैर्मानितो मधुसूदनः॥ ३१॥

तब श्रीकृष्ण ने नीललोहित शिव को प्रणाम किया और उनसे अनुमति पाकर वह गरुड में आरूढ होकर द्वारका पुरी को लौटे थे। उनके चलते समय वहाँ की स्त्रियों ने उन मधुसूदन कृष्ण का पूजन और अमृत तुल्य वचनों से सम्मान किया था॥ ३०-३१॥

वीक्ष्य यान्तममित्रघ्नं गन्धर्वाप्सरसां वराः। अन्वगच्छन्महायोगं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ३२॥
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्वा एवाङ्गना हरिः। ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम्॥ ३३॥

उन शंख-चक्र-गदाधारी शत्रुहन्ता महायोगी को जाते देखकर गन्धर्व और श्रेष्ठ अप्सराएँ उनके पीछे चलने लगी थी। तब विश्वात्मा गोविन्द कृष्ण ने उन अप्सराओं और देवाङगनाओं को वापस लौटाकर शीघ्र ही दिव्यपुरी द्वारका को प्रस्थान किया था॥ ३२-३३॥

गते देवेऽसुररिपौ न कामिन्यो मुनीश्वराः। निशेव चन्द्ररहिता विना तेन चकाशिरे॥ ३४॥

हे श्रेष्ठ मुनीश्वरो! असुरों के शत्रु भगवान् कृष्ण के चले जाने पर उनके विना वहाँ की कामिनियाँ चन्द्रमा से रहित रात्रियों के समान शोभाहीन हो गयी थी॥ ३४॥

श्रुत्वा पौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम्। मण्डयाञ्चक्रिरे दिव्यां पुरीं द्वारवतीं शुभाम्॥ ३५॥

श्रीकृष्ण के आगमन का उत्तम समाचार सुनकर शुभ और दिव्यपुरी द्वारका को उस पुरी के निवासियों ने सुसज्जित-सुशोभित बना दिया था॥ ३५॥

पताकाभिर्विशालाभिर्ध्वजैरन्तर्बहिः कृतैः। मालादिभिः पुरीं रम्यां भूषयाञ्चक्रिरे जनाः॥ ३६॥

उन्होंने उस सुरम्य पुरी को अन्दर से तथा बाहर से भी विशाल पताकाओं तथा ध्वजों एवं पुष्प-मालाओं से सुशोभित (अलंकृत) कर दिया था॥ ३६॥

अवादयन्त विविधान्वादित्रान् मधुरस्वनान्। शङ्खान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान् वितेनिरे॥३७॥

उन लोगों ने मधुर स्वर वाले विविध प्रकार के वाद्यों को तथा हजारों शङ्खों और वीणाओं को बजाया था॥३७॥

प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरीं द्वारवतीं शुभाम्। अगायन्मधुरं गानं स्त्रियो यौवनशोभिताः॥३८॥

भगवान् कृष्ण के उस सुन्दर द्वारका पुरी में प्रवेश करते ही यौवन से सुशोभित स्त्रियाँ मधुर स्वर में गीत गाने लगी थी॥३८॥

दृष्ट्वा ननृतुरीशानं स्थिताः प्रासादमूर्द्धसु। मुमुचुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि॥३९॥

भवनों के ऊपर (छत पर) स्थित स्त्रियाँ वसुदेव पुत्र परमेश्वर श्रीकृष्ण को देखकर नाचने लगी थी तथा उन श्रीकृष्ण के ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगी थी॥३९॥

प्रविश्य भवनं कृष्णस्त्वाशीर्वादाभिवर्धितः। वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः॥४०॥

भगवान् कृष्ण के अपने भवन में प्रविष्ट होते ही उनको श्रेष्ठजनों ने आशीर्वाद देकर सम्मानित किया था। तब वह महायोगी वहाँ सुन्दर आसन में अपनी पत्नियों सहित बैठे थे॥४०॥

सुरम्ये मण्डपे शुभ्रे शङ्खाद्यैः परिवारितः। आत्मजैरभितो मुख्यैः स्त्रीसहस्रैश्च संवृतः॥४१॥

तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्युतः। भ्राजते चोमया देवो यथा देव्या समन्वितः॥४२॥

वहाँ सुरम्य एवं उज्ज्वल और शङ्ख आदि से विभूषित मण्डप में स्थित अति सुन्दर और श्रेष्ठ आसन में जाम्बवती के साथ बैठे हुए और चारों ओर से प्रमुख पुत्रों तथा हजारों स्त्रियों से घिरे हुए श्रीकृष्ण उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे कि देवी पार्वती के साथ भगवान् शिव सुशोभित होते हैं॥४१-४२॥

आजग्मुर्देवगन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमव्ययम्। महर्षयः पूर्वजाता मार्कण्डेयादयो द्विजाः॥४३॥

हे द्विजो! [उसी समय] लोकों के आदिकारण अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हेतु देवता, गन्धर्व तथा पूर्वकाल में उत्पन्न मार्कण्डेय आदि महर्षि भी वहाँ आये थे॥४३॥

ततः स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेयं समागतम्। ननामोत्थाय शिरसा स्वासनञ्च ददौ हरिः॥४४॥

तब श्रीकृष्ण ने उठकर वहाँ आये हुए मार्कण्डेय आदि मुनियों को शिर झुकाकर प्रणाम किया तथा बैठने के लिए सुन्दर आसन दिया था॥४४॥

सम्पूज्य तानृषिगणान् प्रणामेन सहानुगः। विसर्जयामास हरिर्दत्त्वा तदभिवाञ्छितान्॥४५॥

उन ऋषियों का सम्यक् रूप से पूजन कर उन्हें अभीष्ट वस्तुएँ देकर श्रीकृष्ण ने उन्हें विदा किया था॥४५॥

तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयं हरिः। स्नातः शुक्लाम्बरो भानुमुपतिष्ठत् कृताञ्जलिः॥४६॥

तदनन्तर मध्याह्नकाल में देवाधिदेव भगवान् कृष्ण ने स्नान कर शुक्ल वर्ण के स्वच्छ वस्त्र धारण कर हाथ जोड़ कर सूर्य की अराधना की थी॥४६॥

जजाप जाप्यं विधिवत्प्रेक्षमाणो दिवाकरम्। तर्पयामास देवेशो देवान् पितृगणानृमुनीन्॥४७॥

उन्होंने सूर्य की ओर देखते हुए यथाविधि उनके जपनीय मन्त्रों का जप किया और तब देवेश्वर श्रीकृष्ण ने देवों, ऋषियों और पितरों का तर्पण किया था॥४७॥

प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि। पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशं भूतिभूषणम्॥४८॥

तब मार्कण्डेय मुनि के साथ देवालय में प्रवेश करके लिङ्ग में प्रतिष्ठापित भूतिभूषण (भस्म को आभूषण के समान शरीर में लगाने वाले) भूतनाथ शिव का पूजन किया था॥४८॥

समाप्य नियमं सर्वं नियन्ता स स्वयं नृणाम्। भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च॥४९॥

तब सभी मनुष्यों के नियंन्ता (शासक) श्रीकृष्ण ने स्वयं सभी नियमों को सम्पन्न करके मुनिवर मार्कण्डेय को भोजन कराया था तथा वहाँ आये हुए सभी ब्राह्मणों की (भोजन, वस्त्र आदि से) पूजा करके उनको सन्तुष्ट किया था॥४९॥

कृत्वात्मयोगं विप्रेन्द्रा मार्कण्डेयेन चाच्युतः। कथां पौराणिकीं पुण्यां चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः॥५०॥

हे विपेन्द्रो! तब पुत्र आदि पारिवारिक जनों से घिरे हुए उन अच्युत कृष्ण ने आत्मनिष्ठ होकर मार्कण्डेय मुनि के साथ पुराणों की पुण्यप्रद कथाओं की चर्चा की थी॥५०॥

अथैतत्सर्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म महामुनिः। मार्कण्डेयो हसन्कृष्णं बभाषे मधुरं वचः॥५१॥

तब श्रीकृष्ण के इन सब कार्यों को देखकर महामुनि मार्कण्डेय ने हँसते हुए यह मधुर वचन कहे॥५१॥

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः। ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च॥५२॥

मार्कण्डेय जी बोले- [जप-तप, पूजा-पाठ, यज्ञ आदि] शुभ कर्मों से आप ही पूजे जाते हैं, योगीजनों के द्वारा आपका ही ध्यान किया जाता है तो आप अपने उपासनादि कर्मों से किस देव की आराधना करते हैं? यह बतलाइए॥५२॥

त्वं हि तत्परमं ब्रह्म निर्वाणममलं पदम्। भारावतरणार्थाय जातो वृष्णिकुले प्रभुः॥५३॥

आप तो निर्वाण (जीवन-मुक्त) परम पद रूप परमब्रह्म हैं और पृथिवी के भार को उतारने (दुष्टों के दमन) हेतु वृष्णिकुल में अवतार लिए हुए हैं॥५३॥

तमब्रवीन्महाबाहुः कृष्णो ब्रह्मविदां वरः। शृण्वतामेव पुत्राणां सर्वेषां प्रहसन्निव॥५४॥

तब ब्रह्मज्ञाताओं में श्रेष्ठ महाबाहु श्रीकृष्ण ने अपने सभी पुत्रों को भी सुनाते हुए मार्कण्डेय जी से यह कहा॥५४॥

श्रीभगवानुवाच

भवता कथितं सर्वं तथ्यमेव न संशयः। तथापि देवमीशानं पूजयामि सनातनम्॥५५॥

श्री भगवान् बोले- आपने जो कहा वह सब सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तथापि मैं सनातन देव ईशान (शिव) की पूजा करता हूँ॥५५॥

न मे विप्रास्ति कर्तव्यं नानवाप्तं कथञ्चन। पूजयामि तथापीशं जानन्वै परमं शिवम्॥५६॥

हे विप्र! अब ऐसा अन्य कोई कार्य शेष नहीं है जो कि मुझे करना चाहिए और कोई ऐसी वस्तु नहीं जो मुझे प्राप्त न हुई हो। यह सब जानते हुए भी में परमेश्वर शिव की पूजा करता हूँ॥५६॥

न वै पश्यन्ति तं देवं मायया मोहिता जनाः। ततोऽहं स्वात्मनो[1] मूलं ज्ञापयन् पूजयामि तम्॥५७॥

माया से मोहित मनुष्य उन महादेव को नहीं देख पाते हैं। अतः [उनको शिक्षा देने हेतु] मैं अपने मूल (आविर्भाव का स्रोत) का बोध कराते हुए उनकी पूजा करता हूँ॥५७॥

न च लिङ्गार्चनात्पुण्यं लोके दुर्गतिनाशनम्। तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम्॥५८॥

लिङ्ग की पूजा के समान पुण्य प्रद और दुर्गति नाशक अन्य कोई कृत्य नहीं है। अतः लोक-हित के लिए लिङ्ग में शिव का पूजन करना चाहिए॥५८॥

योऽहं तल्लिङ्गमित्याहुर्वेदवादविदो जनाः। ततोऽहमात्ममीशानं पूजयाम्यात्मनैव तत्॥५९॥

वेद के ज्ञाता विद्वानों ने कहा है कि मैं जो हूँ वही लिङ्ग भी है। अतः मैं आत्म-स्वरूप ईशान (शिव) का स्वयं ही पूजन करता हूँ॥५९॥

तस्यैव परमा मूर्तिस्तन्मयोऽहं न संशयः। नावयोर्विद्यते भेदो वेदेष्वेवं विनिश्चयः[2]॥६०॥

मैं उन शिव का ही अन्य स्वरूप हूँ। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं शिव-स्वरूप ही हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। यह वेदों का निर्णय है॥६०॥

एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः। ध्येयः[3] पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः॥६१॥

सांसारिक कष्टों से भयभीत मनुष्यों को सदैव इन महादेव शिव का ध्यान, पूजन और वन्दन करना चाहिए तथा यह जान लेना चाहिए कि वह महेश्वर सदैव लिङ्ग में विराजमान रहते हैं॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

किं तल्लिङ्गं सुरश्रेष्ठ लिङ्गे सम्पूज्यते च कः। ब्रूहि कृष्ण विशालाक्ष गहनं ह्येतदुत्तमम्॥६२॥

मार्कण्डेय बोले- हे विशाल नेत्रों वाले देवों में श्रेष्ठ देव! हे श्रीकृष्ण! वह लिङ्ग क्या है तथा उस लिङ्ग में किसकी पूजा की जाती है? आप इस गहन (गम्भीर) और उत्तम विषय को बतलाइए॥६२॥

श्रीभगवानुवाच

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षयम्। वेदा महेश्वरं देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम्॥६३॥

श्री भगवान् बोले- परम आनन्द रूप, ज्योति-स्वरूप, अक्षर (अविनाशी) ईश्वर को लिङ्ग कहते हैं और वेदों में अनवश्वर देव महेश्वर को लिङ्ग का अधिष्ठातृ देव कहा गया है॥६३॥

पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे। प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतो महाशिवः॥६४॥

अति प्राचीन काल में जब घोर एकार्णव (सर्वत्र एकमात्र समुद्र) की स्थिति थी और सम्पूर्ण स्थावर-जंगम (चराचर जगत्) नष्ट हो गया था, तब मुझे और ब्रह्मा को जगाने हेतु महाशिव प्रकट हुए थे॥६४॥

तस्मात्कालात्समारभ्य ब्रह्मा चाहं सदैव हि। पूजयावो महादेवं लोकानां हितकाम्यया॥६५॥

१. ततश्चैवात्मनो, २. वेदेष्वेतन्न संशयः, ३. याज्यः

उसी काल से लेकर अब तक मैं और ब्रह्मा दोनों ही लोकों के हित की कामना से महादेव शिव की पूजा करते आ रहे हैं॥६५॥

मार्कण्डेय उवाच

कथं लिङ्गमभूत्पूर्वमैश्वरं परमं पदम्। प्रबोधार्थं स्वयं कृष्ण वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥६६॥

मार्कण्डेय जी बोले- हे कृष्ण! अभी आप यह बतलाइए कि पूर्वकाल में आप दोनों को जागृत करने के लिए वह ईश्वर शिव का परम पद रूपी लिङ्ग किस प्रकार प्रकट हुआ था?॥६६॥

श्रीभगवानुवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्। मध्ये चौकार्णवे तस्मिञ्छङ्खचक्रगदाधरः॥६७॥
सहस्रशीर्षा भूत्वाहं सहस्राक्षः सहस्रपात्। सहस्रबाहुः पुरुषःशयितोऽहं सनातनः॥६८॥

श्री भगवान् बोले- जब एकार्णव में सर्वत्र घोर और घना अन्धकार था, उससे पृथक् अन्य विभक्त कुछ भी नहीं था, तब मैं शङ्ख-चक्र-गदाधारण करके सहस्र (हजार) शिर, सहस्र आँख, सहस्र चरण तथा सहस्रबाहु वाला सनातन पुरुष बनकर एकार्णव के मध्य में शयन कर रहा था॥६७-६८॥

एतस्मिन्नन्तरे दूरे पश्यामि स्मामितप्रभम्। कोटिसूर्यप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम्॥६९॥
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं कारणं प्रभुम्। कृष्णाजिनधरं देवमृग्यजुः सामभिः स्तुतम्॥७०॥

इसी बीच मैंने कुछ दूरी पर अतिशय प्रभा (तेज) युक्त, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, शोभा-सम्पन्न, कृष्णमृग के चर्म को लपेटे हुए, चार मुखों वाले, महायोगी, जगत् के कारण (सृष्टिकर्ता), परम पुरुष (ब्रह्मा) को देखा, जिनकी स्तुति ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के द्वारा की जा रही थी॥६९-७०॥

निमेषमात्रेण स मां प्राप्तो योगविदां वरः। व्याजहार स्वयं ब्रह्मा स्मयमानो महाद्युतिः॥७१॥
कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे प्रभो। अहं कर्ता हि लोकानां स्वयम्भूः प्रपितामहः॥७२॥

निमेष मात्र में (पलक झपकते ही) वह योगविदों में श्रेष्ठ महातेजस्वी ब्रह्मा स्वयं मेरे पास आकर मुस्कराते हुए बोले कि हे प्रभो! आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं और यहाँ किसलिए खड़े हैं? यह सब मुझे बतलाइए। ब्रह्मा ने यह भी कहा कि मैं लोकों की सृष्टि करने वाला स्वयंभू प्रतितामह ब्रह्मा हूँ॥७१-७२॥

एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाच ह। अहं कर्तास्मि लोकानां संहर्ता च पुनः पुनः॥७३॥

उन ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैंने (अर्थात् विष्णु ने) उन ब्रह्मा से कहा कि मैं ही लोकों की बार-बार सृष्टि और संहार करता हूँ॥७३॥

एवं विवादे वितते मायया परमेष्ठिनः। प्रबोधार्थं परं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्॥७४॥

परमेष्ठी की माया के कारण इस प्रकार विवाद के बढ़ते जाने पर [हम दोनों को] यथार्थ का बोध कराने हेतु वहाँ शिव स्वरूप लिङ्ग प्रकट हुआ था॥७४॥

कालानलसमप्रख्यं ज्वालामालासमाकुलम्। क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम्॥७५॥

वह लिङ्ग प्रलयकालीन अग्नि के समान ज्वालाओं की माला से व्याप्त, क्षय और वृद्धि से रहित तथा आदि, मध्य एवं अन्त से रहित था॥७५॥

ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वै। अन्तमस्य विजानीष्व ऊर्ध्वं गच्छेऽहमित्यजः॥७६॥

तब भगवान् ब्रह्मा ने मुझसे कहा- आप इस लिङ्ग के नीचे जाकर शीघ्र इसके अन्त का ज्ञान करो और मैं ऊपर की ओर जाकर इसका पता करता हूँ॥७६॥

तदाशु समयं कृत्वा गतामूर्ध्वमधश्च द्वौ। पितामहोऽप्यहं नान्तं ज्ञातवन्तौ समाः शतम्॥७७॥

तब उस वचनानुसार दोनों ही ऊपर और नीचे (उस लिङ्ग को) देखने गये। सौ वर्षों तक भी पितामह ब्रह्मा और मैं (विष्णु) उस लिङ्ग के अन्त को ज्ञात नहीं कर सके थे॥७७॥

ततो विस्मयमापन्नौ भीतौ देवस्य शूलिनः। मायया मोहितौ तस्य ध्यायन्तौ विश्वमीश्वरम्॥७८॥

प्रोच्चरन्तौ महानादमोङ्कारं परमं पदम्। तं प्राञ्जलिपुटौ भूत्वा शम्भुं तुष्टुवतुः परम्॥७९॥

तब उन त्रिशूलधारी देव शिव की माया से मोहित, आश्चर्यचकित और भयभीत होकर हम दोनों ने उन परम पद रूप विश्वेश्वर शिव का ध्यान करते हुए तथा ओङ्कार नामक महानाद का उच्चारण करते हुए हाथ जोड़कर उन परमेश्वर शिव की स्तुति की थी॥७८-७९॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

अनादिमूलसंसाररोगवैद्याय शम्भवे। नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८०॥

ब्रह्मा और विष्णु बोले- अनादि, सृष्टि के मूल, संसार रूपी रोग के वैद्य, शान्त, ब्रह्म रूप और लिङ्ग-मूर्ति शम्भु शिव को नमस्कार है॥८०॥

प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयोद्भूतिहेतवे। नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८१॥

प्रलयकालीन समुद्र में विद्यमान रहने वाले, प्रलय और सृष्टि के कारण रूप, लिङ्ग रूपी मूर्ति वाले, शान्त शिव संज्ञक ब्रह्म को नमस्कार है॥८१॥

ज्वालामालाप्रतीकाय ज्वलनस्तम्भरूपिणे। नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८२॥

ज्वाला-माला के प्रतीक, ज्वलनशील स्तम्भ के समान, किन्तु शान्त रहने वाले लिङ्ग रूपधारी शिवसंज्ञक ब्रह्म को नमस्कार है॥८२॥

आदिमध्यान्तहीनाय स्वभावामलदीप्तये। नमः शिवायानन्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८३॥

आदि मध्य और अन्त से रहित, स्वभाव से ही निर्मल और दीप्तिमान् शान्त शिव लिङ्ग रूप ब्रह्म को नमस्कार है॥८३॥

प्रधानपुरुषेशाय व्योमरूपाय वेधसे। नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८४॥

प्रधान पुरुष के स्वामी, व्योम रूप (आकाश रूप), वेधा (ब्रह्मा) स्वरूप, लिङ्ग मूर्तिधारी शान्त शिव संज्ञक ब्रह्म को नमस्कार है॥८४॥

निर्विकाराय सत्याय नित्यायातुलतेजसे। वेदान्तसाररूपाय कालरूपाय ते नमः॥८५॥

नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये। एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महेश्वरः॥८६॥

निर्विकार, सत्य, नित्य विद्यमान, अतुल तेजस्वी, वेदान्त के साररूप और कालरूप आप शिवजी

को नमस्कार है। लिङ्ग मूर्ति वाले शान्त शिव ब्रह्म को नमस्कार है। [ब्रह्मा तथा विष्णु के द्वारा] इस प्रकार स्तुति किये जाने पर वह महेश्वर शिव प्रकट हो गये थे॥८५-८६॥

भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः। वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवाम्बरम्॥८७॥

करोड़ों सूर्यों के समान तजोमय वह महायोगी महादेव शिव मानो हजारों करोड़ मुखों से आकाश को निगलने जा रहे हों॥८७॥

सहस्रहस्तचरणः सूर्यसोमाग्निलोचनः। पिनाकपाणिर्भगवान् कृत्तिवासास्त्रिशूलधृक्॥८८॥
व्यालयज्ञोपवीतश्च मेघदुन्दुभिनिःस्वनः। अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ॥८९॥

वह महादेव हजारों हाथ-पैरों वाले, चन्द्र-सूर्य और अग्नि रूपी नेत्रों वाले, हाथ में पिनाक नामक धनुष को धारण किये हुए और त्रिशूल को पकड़े हुए थे तथा कृत्तिवासा (मृगचर्य धारी) थे। उन्होंने नाग को यज्ञोपवीत के रूप में धारण किया हुआ था। उनके स्वर मेघ की गर्जना के समान तथा दुन्दुभि (बड़े ढोल) के शब्द के समान थे। तब वह महादेव यह बोले थे कि हे दोनों श्रेष्ठ देवो! मैं दोनों से प्रसन्न हूँ॥८८-८९॥

पश्येतं मां महादेवं भयं सर्वं प्रमुच्यताम्। युवां प्रसूतौ गात्रेभ्यो मम पूर्वं सनातनौ॥९०॥

आप दोनों भय से मुक्त होकर मुझ महोदव को देखें। आप दोनों सनातन देव पूर्वकाल में मेरे ही अङ्गों से प्रकट हुए थे॥९०॥

अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः। वामपार्श्वे च मे विष्णुः पालको हृदये हरः॥९१॥

यह लोक के पितामह ब्रह्मा मेरे दक्षिण पार्श्व (दाहिने भाग) में और वाम पार्श्व में (बाँयी ओर) विष्णु तथा हृदय में शिव विराजमान हैं॥९१॥

प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम्। एवमुक्त्वाथ मां देवो महादेवः स्वयं शिवः॥९२॥
आलिंग्य देवं ब्रह्माणं प्रसादाभिमुखोऽभवत्। ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणिपत्य महेश्वरम्॥९३॥
ऊचतुः प्रेक्ष्य तद्वक्त्रं नारायणपितामहौ। यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरो हि नः॥९४॥
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव महेश्वरे। ततः स भगवानीशः प्रहसन् परमेश्वरः।
उवाच मां महादेवः प्रीतं प्रीतेन चेतसा॥९५॥

मैं तुम दोनों से अच्छी तरह प्रसन्न हूँ और जो इच्छा हो वह वर देना चाहता हूँ। ऐसा कह कर देव महेश्वर शिव स्वयं मुझ [विष्णु] को तथा ब्रह्मा को आलिङ्गन करके हम दोनों पर कृपा करने को उद्यत हुए थे। तब हम दोनों [ब्रह्मा और विष्णु] ने प्रसन्न चित्त होकर उन महेश्वर शिव को प्रणाम करके उनके मुखारविन्द को देखते हुए यह कहा कि यदि आपके मन में हमारे प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ है और यदि हम दोनों को वरदान देना चाहते हैं तो [यह वर दें कि] हम दोनों की आप देव महेश्वर में नित्य रहने वाली भक्ति मन में बनी रहे। तब वह भगवान् परमेश्वर शिव हँसते हुए और प्रसन्न होकर प्रसन्न मन से मुझसे यह बोले॥९३-९५॥

देवदेव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ता त्वं धरणीपते। वत्स वत्स हरे विश्वं पालयैतच्चराचरम्॥९६॥

देवाधिदेव शिव बोले- हे वत्स! हे धराऽधीश्वर! विष्णु! आप जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करने वाले हैं। आप इस चराचर जगत् का पालन करें॥९६॥

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया। सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः॥९७॥

हे विष्णु! मैं निर्गुण और निरञ्जन (निष्कलंक, निर्लेप) होने पर भी जगत् की सृष्टि, पालन और प्रलयकारक तीन गुणों वाला होने के कारण ब्रह्मा, विष्णु और हर (रुद्र) संज्ञक तीन देवों के रूप में विभक्त होकर प्रकट हुआ हूँ॥९७॥

सम्मोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम्। भविष्यत्येव भगवांस्तव पुत्रः सनातनः॥९८॥

हे विष्णु! आप मोह त्याग कर इन पितामह ब्रह्मा का पालन करो। ये सनातन भगवान् ब्रह्मा आपके पुत्र होंगे॥९८॥

अहं च भवतो वक्त्रात्कल्पादौ सुररूपधृक्। शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः॥९९॥

मैं भी कल्प के आरम्भ में आपके मुख से उत्पन्न आपका क्रोधज पुत्र बनूँगा। देवता- रूपधारी मैं अपने हाथ में त्रिशूल धारण किये रहूँगा॥९९॥

एवमुक्त्वा महादेवो ब्रह्माणं मुनिसत्तम। अनुगृह्य च मां देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१००॥

हे मुनिवर मार्कण्डेय! ऐसा कहकर ब्रह्मा को और मुझको अनुगृहीत करके वह महादेव शिव वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे॥१००॥

ततः प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता। लिङ्गं तत्तु यतो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमं वपुः॥१०१॥

हे ब्रह्मन्! (मार्कण्डेय)! उसी कालावधि से इस लोक में लिङ्ग पूजा का आरम्भ हो गया था। हे ब्रह्मन्! क्योंकि वह लिङ्ग तो परम ब्रह्म का श्रेष्ठ विग्रह (शरीर) है॥१०१॥

एतल्लिङ्गस्य माहात्म्यं भाषितं ते मयानघ। एतद् बुध्यन्ति योगज्ञा न देवा न च दानवाः॥१०२॥

हे अनघ (मार्कण्डेय)! मैंने आपको लिङ्ग का यह महात्म्य बतलाया है। इसे केवल योग के ज्ञाता ही जानते हैं। किन्तु देवता और दानव भी इसको नहीं जान सकते॥१०२॥

एतद्धि परमं ज्ञानमव्यक्तं शिवसंज्ञितम्। येन सूक्ष्ममचिन्त्यं तत्पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥१०३॥

यह शिव संज्ञक (शिव विषयक) परम ज्ञान अव्यक्त (गूढ) है। इस ज्ञान से ज्ञान-नेत्र वाले धर्मज्ञ उस सूक्ष्म एवं अचिन्त्य (अकल्पनीय) परम तत्त्व (परमात्मा) का दर्शन कर सकते हैं॥१०३॥

तस्मै भगवते नित्यं नमस्कारं प्रकुर्महे। महादेवाय रुद्राय[१] देवदेवाय लिङ्गिने[२]॥१०४॥

हम नित्यमेव महादेव देवाधिदेव लिङ्गरूपी भगवान् रुद्र को नमस्कार करते हैं॥१०४॥

नमो वेदरहस्याय नीलकण्ठाय ते नमः। विभीषणाय शान्ताय स्थाणवे हेतवे नमः॥१०५॥

---

१. देवाय, २. भृङ्गिने

वेदों में जिनका रहस्य निहित है, ऐसे नीलकण्ठ, भयानक, शान्त, स्थाणु संज्ञक शिव, जो कि सबके कारण है, उनको नमस्कार है॥१०५॥

ब्रह्मणे वामदेवाय त्रिनेत्राय महीयसे। शङ्कराय महेशाय गिरीशाय शिवाय च॥१०६॥

पर ब्रह्म रूप, वामदेव, त्रिनेत्र, महिमामय, शङ्कर, महेश गिरीश और शिव संज्ञक देव को नमस्कार है॥१०६॥

नमः कुरुष्व सततं ध्यायस्व च महेश्वरम्। संसारसागरादस्मादचिरादुधरिष्यसि॥१०७॥

[हे मुनि मार्कण्डेय!] आप महेश्वर शिव को सदा नमस्कार करें, और उनका ध्यान करें। ऐसा करने पर शीघ्र ही संसार रूपी सागर से आप का उद्धार हो जायेगा॥१०७॥

एवं स वासुदेवेन व्याहृतो मुनिपुङ्गवः। जगाम मनसा देवमीशानं विश्वतोमुखम्॥१०८॥

प्रणम्य शिरसा कृष्णमनुज्ञातो महामुनिः। जगाम चेप्सितं देशं देवदेवस्य शूलिनः[1]॥१०९॥

इस प्रकार वासुदेव कृष्ण के द्वारा कहे जाने पर वह मुनिवर मार्कण्डेय मन से विश्वतोमुख (सर्वदर्शी) देव ईशान शिव की शरण में गये थे। तब वह महामुनि मार्कण्डेय नतमस्तक होकर भगवान् कृष्ण को प्रणाम करके उनसे अनुमति पाकर देवाधिदेव शिव के देश को गये थे॥१०८-१०९॥

य इमं श्रावयेन्नित्यं लिङ्गाध्यायमनुत्तमम्। शृणुयाद्वा पठेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥११०॥

जो मनुष्य इस लिङ्ग वर्णन सम्बन्धी उत्तम अध्याय को पढेगा, सुनेगा या सुनायेगा, वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा॥११०॥

श्रुत्वा सकृदपि ह्येतत्तपश्चरणमुत्तमम्। वासुदेवस्य विप्रेन्द्राः पापं मुञ्चति मानवः॥१११॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! वासुदेव कृष्ण की तपश्चर्या विषयक अध्याय को एक बार भी सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१११॥

जपेद् वाहरहर्नित्यं ब्रह्मलोके महीयते। एवमाह महायोगी कृष्णद्वैपायनः प्रभुः॥११२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे यदुवंशानुकीर्तने लिंगोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

अथवा जो मनुष्य इस अध्याय की कथा का प्रतिदिन जप (पारायण) करता है, वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। ऐसा महायोगी प्रभु कृष्ण द्वैपायन ने कहा है॥११२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में यदुवंश के अनुकीर्तन में 'लिंगोत्पत्ति' विषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥२६॥

❖❖❖

१. शम्भुं देवदेवं त्रिशूलिनम्

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

अथ राजवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

ततो लब्धवरः कृष्णो जाम्बवत्यां महेश्वरात्। अजीजनत् महातमानं साम्बमात्मजमुत्तमम्॥१॥

तब भगवान् शिव से प्राप्त वर के फल-स्वरूप कृष्ण ने जाम्बवती से महात्मा जाम्बवान् नामक उत्तम पुत्र को उत्पन्न किया था॥१॥

प्रद्युम्नस्य ह्यभूत्पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबलः। तावुभौ गुणसम्पन्नौ कृष्णस्यैवापरे तनू॥२॥

प्रद्युम्न का अनिरुद्ध नामक बलवान् पुत्र हुआ था। वे दोनों ही सर्व-गुण सम्पन्न पुत्र कृष्ण के ही दूसरे स्वरूप जैसे लगते थे॥२॥

हत्वा च कंसं नरकमन्यांश्च शतशोऽसुरान्। विजित्य लीलया शक्रञ्जित्वा बाणं महासुरम्॥३॥

स्थापयित्वा जगत्कृत्स्नं लोके धर्मांश्च शाश्वतान्। चक्रे नारायणो गन्तुं स्वस्थानं बुद्धिमुत्तमाम्॥४॥

कंस का वध करके एवं नरकासुर तथा अन्य सैकड़ों असुरों का भी वध करके अपनी लीला से आसानी से इन्द्र तथा बाणासुर नामक महादैत्य पर विजय प्राप्त करके और इस सम्पूर्ण लोक में सनातन धर्मों को प्रतिष्ठापित करके नारायण श्रीकृष्ण ने अपने लोक में जाने के लिए उत्तम बुद्धि (अर्थात् विचार) बनाया था॥३-४॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्रा भृग्वाद्याः कृष्णमीश्वरम्। आजग्मुर्द्वारकां द्रष्टुं कृतकार्यं सनातनम्॥५॥

इसी अवधि के मध्य में भृगु आदि महर्षि अपने सभी कर्तव्यों को पूर्ण कर चुके सनातन भगवान् कृष्ण के दर्शन हेतु द्वारका में आये थे॥५॥

स तानुवाच विश्वात्मा प्रणिपत्याभिपूज्य च। आसनेषूपविष्टान्वै सह रामेण धीमता॥६॥

गमिष्यामि परं स्थानं स्वकीयं विष्णुसंज्ञितम्। कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्वं मुनीश्वराः॥७॥

विश्व की आत्मा उन भगवान् कृष्ण ने बुद्धिमान् बलराम के साथ उन आसन में बैठे हुए महर्षियों को प्रणाम करके और उनका पूजन करके उनसे यह कहा कि हे मुनीश्वरो! मैंने अपने सभी कार्य पूर्ण कर लिए हैं। अब मैं विष्णु-लोक संज्ञक अपने परम स्थान को जाऊँगा। आप लोग प्रसन्न रहें॥६-७॥

इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तमधुनाशुभम्। भविष्यन्ति जनाः सर्वे ह्यस्मिन्पापानुवर्तिनः॥८॥

अब यह घोर कलियुग आ गया है जो बहुत अशुभ है। इस युग में सभी लोग पापाचरण निरत हो जावेंगे॥८॥

प्रवर्तयध्वं विज्ञानमज्ञानाञ्च हितावहम्। येनेमे कलिजैः पापैर्मुच्यन्ते हि द्विजोत्तमाः॥९॥

हे मुनीश्वरो! आप लोग उन अज्ञानियों के लिए हितकर विशेष ज्ञान का प्रवर्तन करें, जिससे कि वे सभी कलियुग के प्रभाव से किये जाने वाले अपने पापों से मुक्त हो सकें॥९॥

ये मां जनाः संस्मरन्ति कलौ सकृदपि प्रभुम्। तेषां नश्यति तत्पापं भक्तानां पुरुषोत्तमे॥ १०॥

कलियुग में जो लोग एक बार भी मुझ प्रभु का स्मरण करेंगे, उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु (कृष्ण) के भक्तों का समस्त पाप नष्ट हो जायेगा॥ १०॥

येऽर्चयिष्यन्ति मां भक्त्या नित्यं कलियुगे द्विजाः। विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत्पदम्॥ ११॥

हे द्विजो! कलियुग में जो मनुष्य वेद में विहित विधि के अनुसार भक्तिभाव से मेरी पूजा करेंगे वे मेरे परम पद को प्राप्त करेंगें॥ ११॥

ये ब्राह्मणा वंशजाता युष्माकं वै सहस्रशः। तेषां नारायणे भक्तिर्भविष्यति कलौ युगे॥ १२॥

हे द्विजो! आप लोगों के वंश में जो हजारों ब्राह्मण जन्म लेंगे वे सभी इस कलियुग में नारायण के भक्त होंगे॥ १२॥

परात्परतरं यान्ति नारायणपरा जनाः। न ते तत्र गमिष्यन्ति ते द्विषन्ति महेश्वरम्॥ १३॥

नारायण की भक्ति में संलग्न मनुष्य परम स्थान से भी परमतर (उत्तम से अधिक उत्तम) स्थान को प्राप्त करते हैं, किन्तु जो मनुष्य महेश्वर शिव के प्रति द्वेष करते हैं, वे उस उत्तम स्थान में नहीं जा सकते हैं॥ १३॥

ध्यानं योगस्तपस्तप्तं ज्ञानं यज्ञादिको विधिः। तेषां विनश्यति क्षिप्रं ये निन्दन्ति महेश्वरम्॥ १४॥

जो मनुष्य महेश्वर शिव की निन्दा करते हैं, उनके द्वारा किया गया ध्यान, योग, तप तथा अर्जित ज्ञान और यज्ञादि के सभी विधि-विधानों से जनित पुण्य शीघ्र नष्ट हो जाता है॥ १४॥

यो मां समर्चयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः। विनिन्दन्देवमीशानं स याति नरकायुतम्॥ १५॥

जो मनुष्य एक-निष्ठ भाव से मेरा पूजन करता है, यदि वह महादेव शिव की निन्दा करता है तो वह दश हजार वर्षों तक नरक में जाता है॥ १५॥

तस्मात्संपरिहर्तव्या निन्दा पशुपतेर्द्विजाः कर्मणा मनसा वाचा तद्भक्तेष्वपि यत्नतः॥ १६॥

अतः हे द्विजो! मन, कर्म और वचन से भी भगवान् पशुपति की तथा उनके भक्तों की भी निन्दा को प्रयत्नपूर्वक वर्जित करना चाहिए॥ १६॥

ये च दक्षाध्वरे शप्ता दधीचेन द्विजोत्तमाः। भविष्यन्ति कलौ भक्तैः परिहार्याः प्रयत्नतः॥ १७॥

हे द्विजोत्तमो! दक्ष के यज्ञ में जिन ब्राह्मणों को दधीचि ने शाप दिया था, वे जब कलियुग में उत्पन्न होंगे तब मेरे भक्त उनको प्रयत्नपूर्वक त्याग दें॥ १७॥

द्विषन्तो देवमीशानं युष्माकं वंशसम्भवाः। शप्ताश्च गौतमेनोर्व्यां न सम्भाष्या द्विजोत्तमैः॥ १८॥

गौतम ने यह शाप दिया था कि ऐसे ब्राह्मणों के वंशज शिव के प्रति द्वेष करते हैं तो उनके साथ अन्य ब्राह्मणों को बात भी नहीं करनी चाहिए॥ १८॥

एवमुक्ताश्च कृष्णेन सर्वे ते वै महर्षयः। ओमित्युक्त्वा ययुस्तूर्णं स्वानि स्थानानि सत्तमाः॥ १९॥

भगवान् कृष्ण के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वे सभी महर्षि हाँ ठीक है, ऐसा ही करेंगे-कहकर शीघ्र ही अपने स्थानों को चले गये थे॥ १९॥

सूत उवाच-

ततो नारायणः कृष्णो लीलयैव जगन्मयः। संहृत्य स्वकुलं सर्वं ययौ तत्परमं पदम्॥२०॥

सूत जी बोले- तदनन्तर जगन्मय भगवान् कृष्ण लीला करते हुए अपने सम्पूर्ण कुल का संहार करके परम पद को चले गये थे॥२०॥

इत्येष वः समासेन राज्ञां वंशः सुकीर्तितः। न शक्यो विस्तराद्वक्तुं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥२१॥

मैंने राजाओं के वंश का यह वर्णन संक्षेप में किया है। इसका विस्तार से वर्णन करना संभव नहीं है। आप लोग पुनः क्या सुनना चाहते हैं॥२१॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि वंशानां कथनं शुभम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥२२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे राजवंशानुकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

जो मनुष्य इन वंशों का शुभ वर्णन पढ़ता है या सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में समादर प्राप्त करता है॥२२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'राजवंशानुकीर्तन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

पार्थाय व्यासदर्शनम्

ऋषय ऊचुः

कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम्। एषां प्रभावं सूताद्य कथयस्व समासतः॥१॥

ऋषि बोले- हे सूत जी! सत्य युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग- ये चार युग हैं। आप इनके प्रभाव को संक्षेप में बतलाइए॥१॥

सूत उवाच

गते नारायणे कृष्णे स्वमेव परमं पदम्। पार्थः परमधर्मात्मा पाण्डवः शत्रुतापनः॥२॥
कृत्वा चैवोत्तरविधिं शोकेन महता वृतः। अपश्यत्पथि गच्छन्तं कृष्णद्वैपायनं मुनिम्॥३॥
शिष्यैः प्रशिष्यैरभितः संवृतं ब्रह्मवादिनम्। पपात दण्डवद्भूमौ त्यक्त्वा शोकं तदार्जुनः॥४॥
उवाच परमप्रीत्या कस्मादेशान्महामुने। इदानीं गच्छसि क्षिप्रं कं वा देशं प्रति प्रभो॥५॥

सूत जी बोले- नारायण कृष्ण जब अपने परम धाम को चले गये तो परम धर्मात्मा शत्रुहन्ता पाण्डव अर्जुन ने अत्यन्त शोकाकुल होकर उनकी और्ध्व-दैहिक क्रिया सम्पन्न की थी। तभी अर्जुन ने मार्ग में जाते हुए ब्रह्मज्ञानी कृष्ण द्वैपायन व्यास मुनि को देखा, जो कि शिष्यों और प्रशिष्यों से घिरे हुए थे। तब

अर्जुन ने शोक त्याग कर भूमि में दण्डवत लेट कर उनको प्रणाम किया और परम प्रसन्न होकर उनसे यह कहा कि हे महामुनि! इस समय आप किस देश से आ रहे हैं और हे प्रभु! अब किस देश को जा रहे हैं॥२-५॥

सन्दर्शनाद्वै भवतः शोको मे विपुलो गतः। इदानीं मम यत्कार्यं ब्रूहि पद्मदलेक्षण॥६॥

आपके दर्शन से मेरा महाशोक दूर हो गया है। हे कमल-पत्र के समान नेत्र वाले मुनि! इस समय मुझे क्या करना चाहिए यह बतलाइए॥६॥

तमुवाच महायोगी कृष्णद्वैपायनः स्वयम्। उपविश्य नदीतीरे शिष्यैः परिवृतो मुनिः॥७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे पार्थाय व्यासदर्शनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

तब शिष्यों सहित महायोगी कृष्ण द्वैपायन व्यास मुनि नदी के तट पर बैठकर उन अर्जुन से यह (युग-धर्म विषयक नाना विषयों को[1]) कहा था॥७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'व्यास-दर्शन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

युगधर्मानुकीर्तनम्

व्यास उवाच

इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तं पाण्डुनन्दन। ततो गच्छामि देवस्य पुरीं वाराणसीं शुभाम्॥१॥

व्यास जी बोले- हे पाण्डु-पुत्र अर्जुन! अब यह घोर कलियुग आ गया है। अतः मैं महादेव की नगरी वाराणसी पुरी को जा रहा हूँ॥१॥

अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्तिनः। भविष्यन्ति महाबाहो वर्णाश्रमविवर्जिताः॥२॥

हे महाबाहु! इस घोर कलियुग में सभी लोग वर्णाश्रम धर्म से पराङ्मुख और पापकर्मपरायण हो जावेंगे॥२॥

नान्यत्पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम्। सर्वपापोपशमनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे॥३॥

इस कलियुग में मनुष्यों के सभी पापों को नष्ट करने वाले प्रायश्चित्त हेतु वाराणसी पुरी के अतिरिक्त अन्य कोई तीर्थ मैं नहीं देख रहा हूँ॥३॥

कृतं त्रेता द्वापरञ्च सर्वेष्वेतेषु वै नराः। भविष्यन्ति महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः॥४॥

---

१. व्यास जी के कथन को अगले अध्याय में देखें।

कृत (सत्ययुग), त्रेता और द्वापर इन तीनों युगों में सभी लोग महात्मा, धार्मिक और सत्यवादी होते हैं॥४॥

त्वं हि लोकेषु विख्यातो धृतिमान् जनवत्सलः। पालयाद्य परं धर्मं स्वकीयं मुच्यसे भयात्॥५॥

तुम सम्पूर्ण लोक में धैर्यशाली और प्रजावत्सल राजा के रूप में विख्यात हो। तुम अपने प्रजा-पालन रूप स्वधर्म का पालन करो। ऐसा करने से तुम भय-मुक्त हो जावोगे॥५॥

एवमुक्तो भगवता पार्थः परपुरञ्जयः। पृष्टवान्प्रणिपत्यासौ युगधर्मान् द्विजोत्तमाः॥६॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! भगवान् व्यास जी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर शत्रुओं के नगर को जीतने वाले अर्जुन ने व्यास जी को प्रणाम करके उनसे चारों युगों के धर्मों के विषय में पूछा था॥६॥

तस्मै प्रोवाच सकलान् मुनिः सत्यवतीसुतः। प्रणम्य देवमीशानं युगधर्मान्सनातनान्॥७॥

तब सत्यवती के पुत्र मुनिवर व्यास ने भगवान् शिव को प्रणाम करके अर्जुन को सभी सनातन युगधर्म बतलाये थे॥७॥

व्यास उवाच

वक्ष्यामि ते समासेन युगधर्मान्नरेश्वर। न शक्यते मया राजन् विस्तरेणाभिभाषितुम्॥८॥

व्यास जी बोले- हे राजन्! मैं सभी युगधर्मों को तुम्हें संक्षेप में बतलाऊंगा। हे राजन्! मैं तुम्हें विस्तार से वह सब बतलाने में समर्थ नहीं हूँ॥८॥

आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं ततस्त्रेतायुगं बुधैः। तृतीयं द्वापरं पार्थ चतुर्थं कलिरुच्यते॥९॥

हे पार्थ! विद्वानों ने चारों युगों में सर्वप्रथम आदि युग को कृतयुग (सत्ययुग) कहा है। तदनन्तर दूसरा त्रेता युग और तीसरा द्वापर तथा चौथा कलियुग कहा जाता है॥९॥

ध्यानं तपः कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥१०॥

कृतयुग में ध्यान और तप ही धर्म था, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान को ही एकमात्र धर्म कहा गया है॥१०॥

ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान्रविः। द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः॥११॥

कृतयुग के देवता ब्रह्मा, त्रेता के भगवान् सूर्य, द्वापर के देवता विष्णु और कलियुग के देवता महेश्वर शिव हैं॥११॥

ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्व एव कलावपि। पूज्यते भगवान्रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक्॥१२॥

कलियुग में ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य- इन सभी की पूजा भी होती है और पिनाक धनुष को धारण करने वाले भगवान् शिव की पूजा चारों युगों में भी की जाती है॥१२॥

आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः। त्रेतायुगे त्रिपादः स्याद् द्विपादो द्वापरे स्थितः॥१३॥

त्रिपादहीनस्तिष्ये तत् सत्तामात्रेण तिष्ठति। कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षादलोलुपा॥१४॥

आदि युग अर्थात् कृतयुग में धर्म के चार चरण थे, त्रेतायुग में तीन चरण, द्वापर में धर्म के दो चरण और कलियुग में धर्म तीन चरणों से रहित (मात्र एक चरण वाला) हो जाता है। कृतयुग में

स्त्री-पुरुष युगल की एक साथ उत्पत्ति होती थी और आजीविका के लिए प्रजाओं में लोभ-लालच नहीं था॥१३-१४॥

प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः। अधमोत्तमत्वं नास्त्यासां निर्विशेषाः पुरञ्जय॥१५॥

तब समस्त प्रजाजन सदैव तृप्त और सदा आनन्दित और भोग में निरत रहते थे। हे अर्जुन! तब प्रजाओं में उत्तम और अधम (बड़े-छोटे या ऊँच-नीच) की भावना नहीं थी और सभी लोग निर्विशेष अर्थात् एक समान थे॥१५॥

तुल्यमायुः सुखं रूपं तासु तस्मिन् कृते युगे। विशोकाःसत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा॥१६॥
ध्याननिष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणाः। ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः॥१७॥

उस कृतयुग में सभी की आयु, सुख और रूप एक समान थे। सभी जन शोक-रहित, सत्त्वगुण की अधिकतायुक्त, प्रायः सभी जन एकान्त-प्रिय, ध्यान-निरत, तपस्या में संलग्न और महादेव शिव की भक्ति में लीन, निष्काम भाव से कर्म करने वाले तथा सदैव प्रसन्नचित्त रहने वाले थे॥१६-१७॥

पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताः परन्तप। रसोल्लासः कालयोगात्त्रेताख्ये नश्यति द्विजाः॥१८॥

हे अर्जुन! वे पर्वतों में या समुद्र के तटों में निवास करते थे। वे गृहविहीन थे। किन्तु हे द्विजो! कालवशात् कृतयुग के उपरान्त त्रेतायुग आने पर उनके जीवन का रस (आनन्द) और उल्लास (प्रसन्नता) समाप्त हो गया था॥१८॥

तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिरवर्तत। अपां सौख्ये प्रतिहते तदा मेघात्मना तु वै॥१९॥

कृतयुग की स्वाभाविक सिद्धियों (अर्थात् अन्यास उपलब्धियों) के नष्ट (विलुप्त) हो जाने पर अन्य प्रकार की सिद्धियाँ प्रारम्भ हुई थी। तब कृतयुग में सुलभ जल से प्राप्त सुख-सुविधाओं का त्रेतायुग में लुप्त हो जाने पर मेघों से प्राप्त जल प्राप्त होने लगा था॥१९॥

मेघेभ्यस्तनयित्लुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम्। सकृदेव तथा वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले॥२०॥
प्रादुरासन् तथा तासां वृक्षा वै गृहसंज्ञिताः। सर्वःप्रत्युपयोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते॥२१॥

तब 'स्तनयित्लु' (अर्थात् गर्जन करने वाले) मेघों से वर्षा होने लगी थी। मात्र एक बार की ही वर्षा से भूतल में वृक्ष उत्पन्न हो गये थे, जो उस समय की प्रजाओं के लिए घर बन गये थे तथा प्रजाओं के लिए उपयोगी सभी आवश्यक वस्तुएँ भी उन वृक्षों से प्राप्त हो जाती थी॥२०-२१॥

वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः। ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात्॥२२॥
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्। विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविता॥२३॥
प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः। ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः॥२४॥
अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यानतस्तदा प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥२५॥

त्रेतायुग के आरम्भ के प्रजा-जन उन वृक्षों पर ही जीविका हेतु निर्भर रहते थे। तब बहुत कालावधि के पश्चात् उन प्रजा-जनों के सद्व्यवहार में विकार आ जाने पर अकस्मात् उनमें राग (आसक्ति) और लोभ का भाव उत्पन्न हो गया था। उनके विपरीत व्यवहार के कारण उस समय अस्तित्व

में आये हुए उनके गृह संज्ञक सभी वृक्ष नष्ट हो गये थे। तब उन वृक्षों के नष्ट हो जाने पर मिथुन धर्म से उत्पन्न वे युगल प्रजा-जन अपने सत्य-संकल्प का ध्यान (स्मरण) करते हुए अपनी उसी पूर्वकालिक सिद्धि का ध्यान करने लगे थे। तब उनके [सत्य-संकल्प के प्रभाव से] वे गृह संज्ञक वृक्ष पुनः उत्पन्न हो गये थे॥२२-२५॥

वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च। तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम्॥२६॥
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु। तेन ता वर्तयन्ति स्म त्रेतायुगमुखे प्रजाः॥२७॥

वे वृक्ष उन प्रजाओं के लिए वस्त्र, फल और आभूषण भी उत्पन्न करते थे। उन वृक्षों में ही उस समय की प्रजाओं के लिए अच्छे वर्ण (रंग) का सुगन्धित सुस्वादु एवं मधुमक्खियों से रहित अत्यन्त शक्तिवर्द्धक मधु प्रत्येक पत्र-पुटक (प्याले नुमा पत्तों में) में उत्पन्न होता था। त्रेतायुग के आरम्भ की प्रजा-जन उसी (मधु) से जीवन निर्वाह करते थे॥२६-२७॥

हृष्टास्तुष्टास्तया सिद्ध्या सर्वा वै विगतज्वराः। पुनः कालान्तरेणैव ततो लोभावृतास्तदा॥२८॥
वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिकं बलात्। तासां तेनापचारेण पुनर्लोभकृतेन वै॥२९॥
प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित् क्वचित्। शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्तास्ततो दुःखिता भृशम्॥३०॥

उसी सिद्धि के बल पर उस समय के सभी प्रजा-जन [उस मधु के सेवन से] हृष्ट-पुष्ट, नीरोग और निश्चिन्त हो गये थे। किन्तु कालान्तर में वे प्रजा-जन पुनः लोभ-ग्रस्त होकर बलपूर्वक उन वृक्षों को अधिकृत करने लगे थे अथवा उनसे प्राप्त मधु को बलात् ग्रहण करने लगे थे। उनके उसी अपराध और लोभ की प्रवृत्ति के कारण उस समय के वे कल्पवृक्ष कहीं कहीं मधु सहित नष्ट हो गये थे। तब वे प्रजा जन शीत, वर्षा और तेज धूप से अत्यन्त दुःखी होने लगे थे॥२८-३०॥

द्वन्द्वैः संपीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च। कृत्वा द्वन्द्वविनिर्घातान् वार्त्तोपायमचिन्तयन्॥३१॥

तब उन्होंने शीत (ठण्ड), आतप (धूप) [और वर्षा] आदि द्वन्द्वों से अत्यन्त पीडित होने पर अपनी रक्षा हेतु आवरणों (अपने को ढकने वाले साधनों-यथा वस्त्रों और कुटी आदि) का निर्माण किया था। इन द्वन्द्वों का प्रतिकार करने के बाद उस युग के लोग वार्ता (कृषि एवं व्यापार) जैसे उपायों के विषय में चिन्तन [करके कार्य करने] में लग गये थे॥३१॥

नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा। ततः प्रादुरभूत् तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः॥३२॥
वार्त्तायाः साधिका ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः। तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु॥३३॥
अभवन् वृष्टिसन्तत्या स्रोतः स्थानानि निम्नगाः। यदा आपो बहुतरा आपन्नाः पृथिवीतले॥३४॥
अपां भूमेश्च संयोगादौषध्यस्तास्तदाभवन्। अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥३५॥

जब मधु से युक्त कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे तब उसी त्रेतायुग में पुनः (फिर से) एक और सिद्धि (सफलता) उनको प्राप्त हुई थी। उनकी वार्ता (कृषि-वाणिज्य) को सफल बनाने के लिए इच्छानुसार वर्षा हो गयी थी। निरन्तर वर्षा होने से जल नीचे की ओर बहते हुए नाना स्रोतों और नदियों में प्रवाहित होने लगा था। जब बहुत सा जल पृथिवी के अन्दर समाहित हो गया तो जल और भूमि के संयोग से बिना जोते

बोये चौदह प्रकार की ग्राम्य (गांवों में होने वाली) तथा आरण्य (वन में होने वाली) औषधियाँ (अर्थात् अन्न) उत्पन्न होने लगी थी॥३२-३५॥

ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे। ततः प्रादुरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः॥३६॥

साथ ही विभिन्न ऋतुओं में नाना पुष्पों और फलों को उत्पन्न करने वाले वृक्ष और गुल्म (छोटी झाड़ियों वाले पौधे) भी उग गये थे। तभी उस युग की सभी प्रजाओं में राग (आसक्ति) और लोभ की भावना बढ़ गयी थी॥३६॥

अवश्यम्भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन वै। ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्॥३७॥
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्। विपर्ययेण तासां ता ओषध्यो विविशुर्महीम्॥३८॥

अवश्यं भावी (भवितव्या) और त्रेतायुग के प्रभाव से ही ऐसा हुआ था। तभी उन प्रजाओं ने नदी-तटवर्ती क्षेत्रों और पर्वतों पर अपना अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया था। वे अपनी शक्ति के अनुसार वृक्षों, छोटे झाड़ीनुमा पौधों और ओषधियों[1] पर अधिकार करने लगे थे। तब उन मनुष्यों के कुत्सित आचरण के कारण वे औषधियाँ भूमि में लीन हो गयी थी॥३७-३८॥

पितामहनियोगेन दुदोह पृथिवीं पृथुः। ततःकालबलेनैब लोका विभ्रष्टबुद्धयः।
परेषां धनदाराद्यान् जगृहुः क्रोधमूर्च्छिताः॥३९॥

तब पितामह ब्रह्मा के आदेशानुसार राजा पृथु ने पृथिवी का दोहन किया था। तदनन्तर कालवशात् भ्रष्ट-बुद्धि वाले मनुष्य काम-क्रोध के वशीभूत होकर दूसरों के धन, स्त्री आदि को बलपूर्वक छीनने लगे थे॥३९॥

सदाचारे विनष्टे तु लोकानां हितकाम्यया। मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद्भगवानजः॥४०॥
ससर्ज क्षत्रियान्ब्रह्मा ब्राह्मणानां हिताय वै। वर्णाश्रमव्यवस्थाञ्च त्रेतायां कृतवान्प्रभुः।
यज्ञप्रवर्तनञ्चैव पशुहिंसाविवर्जितम्॥४१॥

तब लोक में सदाचार के नष्ट हो जाने के विषय में जानकर भगवान् ब्रह्मा ने लोकहित में मर्यादा स्थापित करने के लिए त्रेतायुग में वर्णाश्रम-व्यवस्था बनायी और ब्राह्मणों [के हित सहित सम्पूर्ण प्रजा] की रक्षा हेतु क्षत्रियों की सृष्टि की थी। तब ब्रह्मा ने पशु-हिंसा रहित यज्ञों का भी प्रवर्तन (प्रारम्भ) किया था॥४०-४१॥

द्वापरेऽप्यथ विद्यन्ते मतिभेदात् तथा नृणाम्। रागो लोभस्तथा युद्धं मत्वा बुद्धिविनिश्चयम्॥४२॥

तदनन्तर द्वापर युग में मनुष्यों में मतभेद होने लगे थे। उनमें राग, लोभ, युद्ध की प्रवृत्ति और तत्व निर्णय में अनिश्चितता की स्थित होने लगी थी॥४२॥

एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते[2]। वेदव्यासैश्चतुर्द्धा च न्यस्यते द्वापरादिषु॥४३॥

त्रेतायुग में एक ही वेद चार पादों में विभक्त था, किन्तु उसी एक वेद को द्वापर युग में वेदव्यास के द्वारा चार संहिताओं के रूप में विभक्त किया गया था॥४३॥

१. ओषध्यः फलपाकान्ताः। ऐसे पौधे जो फल पकने पर स्वयं सूख जाते हैं। २. विभाव्यते

ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः। मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः॥४४॥

दृष्टिकोण में भेद के कारण ऋषि पुत्रों ने पुनः वेदों को विभिन्न शाखाओं (यथा-यजुर्वेद को शुक्ल, कृष्ण, काण्व, तैत्तिरीय इत्यादि) में विभक्त किया था। ये भेद मन्त्र, ब्राह्मण, [आरण्यक, उपनिषद] आदि के अनुसार तथा स्वर वर्ण आदि के उच्चारण भेद के अनुसार किये गये थे॥४४॥

संहिता ऋग्यजुः साम्नां प्रोच्यन्ते परमर्षिभिः। सामान्योद्भावना चैव दृष्टिभेदैः क्वचित्क्वचित्॥४५॥

महर्षियों ने वेद की संहिताओं को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद [और अथर्वेद] संहिताओं के नाम से मन्त्रों में कहीं समानता और कहीं पर दृष्टिभेद के कारण कहे हैं॥४५॥

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि ब्रह्मप्रवचनानि च। इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत॥४६॥

हे सद्व्रती! ब्राह्मण ग्रन्थ, कल्पसूत्र (श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र) और आरण्यक एवं उपनिषद्) और इतिहास-पुराण एवं धर्मशास्त्र [के ग्रन्थों की रचना भी ऋषियों ने की थी]॥४६॥

अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैवान्ये ह्युपद्रवाः। वाङ्मनः कायजैर्दोषैर्निर्वेदो जायते नृणाम्॥४७॥

[उस द्वापर युग में] मनुष्यों के वाणी, मन और शरीर द्वारा किये गये दोषों के कारण अनावृष्टि (दुर्भिक्ष), अकालमृत्यु तथा अन्य अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे थे। तब मनुष्यों को संसार से निर्वेद (विषाद) होने लगा था॥४७॥

निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा। विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद् दोषदर्शनम्॥४८॥

उस निर्वेद से वे दुःखों से मुक्ति के उपाय के विषय में विचार करने लगे थे। विचार में संलग्न रहने से उनके मन में वैराग्य भाव का उदय हुआ था। वैराग्य भाव आने पर उनको स्वयं अपने में तथा अन्य जनों में भी दोष दृष्टिगत होने लगे थे॥४८॥

दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः। एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे द्विजाः॥४९॥

दोषों को देखने की प्रवृत्ति के कारण द्वापर युग के मनीषियों में सदसत् विषयक ज्ञान उत्पन्न हुआ था। यही द्वापर युग के मनुष्यों की रजोगुण और तमोगुण की प्रवृत्ति कही गयी है॥४९॥

आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते। द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रनश्यति कलौ युगे॥५०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे युगधर्मानुकीर्तनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

आदि कृत युग में मनुष्यों में जो धर्म का भाव था, वही त्रेतायुग में भी था। किन्तु द्वापर में वह धर्म की प्रवृत्ति विचलित होने लगी थी और कलियुग में तो वह धर्म व्याकुल होकर नष्टप्राय हो जाता है॥५०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'युगधर्मानुकीर्तन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

व्यासार्जुनसंवादे युगधर्मनिरूपणम्

व्यास उवाच

तिष्ये मायामसूयांच वधञ्चैव तपस्विनाम्। साधयन्ति नरा नित्यं तमसा व्याकुलीकृताः॥१॥

कलियुग में तमोगुण [के दुष्प्रभाव से] विकृत मनःस्थिति वाले मनुष्य माया (छल-कपट) और ईर्ष्या-द्वेष से ग्रस्त हो जावेंगे एवं तपस्वियों (सरल स्वभाव वाले साधकों) एवं निर्बलों का वध करेंगे।॥१॥

कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयं तथा। अनावृष्टिभयं घोरं देशानाञ्च विपर्ययः॥२॥

कलियुग में महामारी जैसे असाध्य रोग, निरन्तर भुखमरी का भय, अनावृष्टि का अत्यन्त भय और सभी देशों में (भूकम्प जनित या राजसत्ताओं के द्वारा) उलटफेर की स्थिति आयेगी॥२॥

अधार्मिका अनाचारा महाकोपाऽल्पतेजसः। अनृतं ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाताः सुदुष्प्रजाः॥३॥

कलियुग में जन्म लेने वाले अनेक दुष्ट जन अधर्मी, दुराचारी, अत्यन्त क्रोधी, अल्प तेज वाले, मिथ्यावादी और लोभी होंगे॥३॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः। विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम्॥४॥

विधि-विधान रहित तथा अभिचार आदि कुत्सित उद्देश्य से किये गये यज्ञों से, गर्हित विद्याओं के अध्ययन से, दुराचार से तथा अनुचित माध्यम से द्रव्यार्जन और ब्राह्मणों के कर्मों के दोष से कलयुग की प्रजाओं में भय व्याप्त हो जाता है॥४॥

नाधीयन्ते तदा वेदान् न यजन्ति द्विजातयः। यजन्ति यज्ञान्वेदांश्च पठन्ते चाल्पबुद्धयः॥५॥

कलियुग में ब्राह्मण वेदों का अध्ययन नहीं करते हैं और न यज्ञ करते हैं। अल्पबुद्धि वाले लोग ही उस युग में वेदों का अध्ययन और यज्ञ करते हैं॥५॥

शूद्राणां मन्त्रयोगैश्च सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह। भविष्यति कलौ तस्मिन्शयनासनभोजनैः॥६॥

कलियुग में ब्राह्मणों का शूद्रों को मन्त्र-दीक्षा देने, तथा उनके साथ शयन, एक आसन में बैठने और एक साथ भोजन का सम्बन्ध बन जायेगा॥६॥

राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान्बाधयन्ति च। भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेते नरेश्वरे॥७॥

हे राजन्! कलियुग में अधिकांश राजा शूद्र ही होंगे और वे ब्राह्मणों को पीडित करेंगे। भ्रूणहत्या और वीरहत्या की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जायेगी॥७॥

स्नानं होमं जपं दानं देवतानां तथार्चनम्। तथान्यानि च कर्माणि न कुर्वन्ति द्विजातयः॥८॥

द्विजाति वर्ण के लोग स्नान, दान, होम, जप, देवों की पूजा तथा अन्य शुभकर्मो (तीर्थ, व्रत आदि) को नहीं करेंगे॥८॥

विनिन्दन्ति महादेवं ब्राह्मणान् पुरुषोत्तमम्। आम्नायधर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे॥९॥

वे भगवान् शिव और विष्णु आदि देवों, ब्राह्मणों तथा आम्नाय[१] (सम्पूर्ण वैदिक साहित्य) और धर्मशास्त्रों तथ पुराणों की निन्दा करेंगे॥९॥

कुर्वन्त्यवेददृष्टानि कर्माणि विविधानि तु। स्वधर्मे तु रुचिर्नैव ब्राह्मणानां प्रजायते॥१०॥

वे ऐसे (निषिद्ध) कर्म करेंगे जिनका विधान वेदों में नहीं किया गया है। कलियुग में ब्राह्मणों को अपने धर्म के पालन में रुचि नहीं रहेगी॥१०॥

कुशीलचर्याः पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृताः। बहुयाचनका लोका भविष्यन्ति परस्परम्॥११॥

वे दुराचारी, पाखण्डी, वृथा विविध रूप धारण करने वाले एवं एक-दूसरे से बहुत याचना करने वाले हो जावेंगे॥११॥

अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः। प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे॥१२॥

कलियुग में विभिन्न जनपदों के निवासी अन्न विक्रेता बनेंगे, (यत्र तत्र) चौराहों में शिवलिङ्ग का विक्रय हुआ करेगा तथा स्त्रियाँ भगविक्रय करने वाली हो जावेंगी॥१२॥

शुक्लदन्ता जिनाख्याश्च मुण्डाः काषायवाससः। शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥१३॥

युग का अन्त होते समय उज्ज्वल दाँतों वाले, जिन नाम वाले, मुण्डित शिर वाले और गेरुआ वस्त्र-धारण करने वाले शूद्र धर्म का आचरण करने लगेंगे॥१३॥

सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्षिणः। चौराश्चौरस्य हर्तारो हर्तुर्हन्र्ता तथापरः॥१४।

कलियुगी मनुष्य अन्न की और वस्त्रों की चोरी करेंगे। चोर के घर से अन्य चोर चोरी किया करेंगे। अपहरण करने वाले की अपहृत वस्तु को अन्य अपहर्ता अपहरण करेंगे॥१४॥

दुःखप्रचुरमल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता। अधर्माभिनिवेशित्वात्तमो वृत्तं कलौ स्मृतम्॥१५॥

प्रजाओं को दुःख अधिक होगा। मनुष्य अल्पायु होंगे और उनका शरीर दुर्बल तथा रोगी होने लगेगा। अधर्म में प्रवृत्ति बढ़ जाने पर लोक में तमोगुणी मनोवृत्ति बढ़ जायेगी॥१५॥

काषायिणोऽथ निर्ग्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये। वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे॥१६॥

कुछ लोग काषाय (=गेरुआ) वस्त्रधारी, कुछ निर्ग्रन्थ (शिखा-सूत्र रहित एवं वेदाध्ययन रहित) और कुछ कापालिक (कपाल धारी शैव) बनेंगे और कुछ अन्य लोग वेद विक्रयी (द्रव्य लेकर वेद पढ़ाने वाले?) और अन्य कुछ लोग तीर्थ [में अपने पुण्य के] विक्रेता बनेंगे॥१६॥

आसनस्थान्द्विजान्दृष्ट्वा चालयन्त्यल्पबुद्धयः। ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा राजोपजीविनः॥१७॥

कुछ क्षुद्रबुद्धि वाले और राजा से आजीविका प्राप्त शूद्र आसन पर बैठे द्विजातियों को हटायेंगे और उन्हें प्रताडित भी करेंगे॥१७॥

उच्चासनस्थाः शूद्राश्च द्विजमध्ये परन्तप। द्विजामानकरो राजा कलौ कालबलेन तु॥१८॥

---

१. आम्नाय शब्द सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का बोधक है, जिसमें चारों वेद-संहिताएँ ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य-षडविंश आदि तथा गोपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ, ऐतरेय-आरण्यक, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, तवल्कार आरण्यक आदि तथा कठ, केन आदि सभी उपनिषद् समहित हैं।

हे अर्जुन! कलियुग में समय के दुष्प्रभाव से द्विजातियों के मध्य में शूद्र उच्च आसन पर विराजमान होंगे और राजा द्विजों का अपमान करेगा॥१८॥

पुष्पैश्च भूषणैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैर्द्विजाः। शूद्रान्परिचरन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः॥१९॥

[कलियुग में] अल्पज्ञान वाले, भाग्यहीन (अभागे) और दीन हीन एवं निर्वल द्विजाति लोग पुष्प, आभूषण और अन्य मांगलिक वस्तुएँ उपहार रूप में प्रदान करके शूद्रों की सेवा करेंगे॥१९॥

न प्रेक्षन्तेऽर्चितांश्चापि शूद्रा द्विजवरान्नृप। सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठन्ति च द्विजाः॥२०॥

हे राजन्! शूद्र लोग उन पूजित श्रेष्ठ द्विजों की ओर देखते तक नहीं और द्विजाति लोग उनकी सेवा का अवसर आने पर उनके द्वार पर जाकर खड़े हो जाते हैं॥२०॥

वाहनस्थान्समावृत्य शूद्रान्शूद्रोपजीविनः। सेवन्ते ब्राह्मणास्तांस्तु स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ॥२१॥

कलियुग में शूद्रों से जीविका पाने वाले ब्राह्मण ही वाहन में आरूढ शूद्रों को घेरकर उनकी स्तुतियाँ और प्रशंसा करते हैं॥२१॥

अध्यापयन्ति वै वेदान् शूद्रान् शूद्रोपजीविनः। पठन्ति वैदिकान मन्त्रान् नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः॥२२॥

शूद्रों से आजीविका पाने वाले द्विज उनको वेदों की शिक्षा देते हैं और वे शूद्र घोर नास्तिक होने पर भी वैदिक मन्त्रों को पढते हैं॥२२॥

तपोयज्ञफलानान्तु विक्रेतारो द्विजोत्तमाः। यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः॥२३॥

उत्तम कोटि के ब्राह्मण भी [दक्षिणा लेकर] अपनी तपस्या तथा यज्ञ-यागादि जनित पुण्य के फलों का विक्रय (द्रव्य लेकर प्रदान) करेंगें। [जीवन के संघर्षों से पृथक् अनेक लोग] सैकड़ों किं वा हजारों की संख्या में संन्यासी बन जायेंगे॥२३॥

नाशयन्तः स्वकान्धर्मानधिगच्छन्ति तत्पदम्। गायन्ति लौकिकैर्गीतैर्दैवतानि नराधिप॥२४॥

स्वकीय धर्म का नाश (त्याग) करने वाले वे द्विजाति [परलोक में मोक्ष आदि] अपने उचित पद को नहीं प्राप्त करते। हे राजन्! कलियुग के द्विजाति लौकिक भाषा में लिखे गये गीतों (स्तोत्रों) से देवताओं की स्तुति करते हैं॥२४॥

वामपाशुपताचारास्तथा वै पाञ्चरात्रिकाः। भविष्यन्ति कलौ तस्मिन्ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा॥२५॥

कलियुग के ब्राह्मण और क्षत्रिय वाममार्गी उपासना वाले, पाशुपत (शैव) या पाञ्चरात्र सम्प्रदाय के उपासक बन जावेंगे॥२५॥

ज्ञाने-कर्मण्यपुरते लोके निष्क्रियतां गते। कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानुषान्॥२६॥

तब लोग ज्ञानार्जन एवं कर्म करने से विरत हो जायेंगे और कीट, मूषक (चूहे) तथा सर्प मनुष्यों को पीडित करेंगे॥२६॥

कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वै। दधीचशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः॥२७॥

निन्दन्ति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः। वृथा धर्मञ्चरिष्यन्ति कलौ तस्मिन्युगान्तिके॥२८॥

पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति के यज्ञ में दधीच के शाप से दग्ध हुए पुरोहित आदि द्विज कलियुग के

अन्त में ब्राह्मणों के कुल में जन्म लेंगे और तमोगुण से ग्रस्त मन वाले वे ब्राह्मण महादेव शिव की निन्दा करेंगे और वृथा अनावश्यक धर्मों का पालन करेंगे॥ २७-२८॥

ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः। सर्वे तेऽवतरिष्यन्ति ब्राह्मणाद्या स्वजातिषु॥ २९॥
विनिन्दन्ति हृषीकेशं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः। वेदबाह्यव्रताचारा दुराचारा वृथाश्रमाः॥ ३०॥

महामुनि गौतम के शाप से दग्ध हुए सभी ब्राह्मण भी अपनी ही जातियों में जन्म लेंगे और वेदविहित धर्म से भिन्न व्रत और आचरण का पालन करने वाले, दुराचारी और व्यर्थ का परिश्रम करने वाले वे ब्राह्मण भगवान् विष्णु की और ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं॥ २९-३०॥

मोहयन्ति जनान् सर्वान् दर्शयित्वा फलानि च। तमसाविष्टमनसो बैडालव्रतिकाधमाः॥ ३१॥

तमोगुण से ग्रस्त मन वाले और बिडाल (बिल्ली) के समान आचरण करने वाले कपटी और अधम मनुष्य सभी जनों को [अनुष्ठान का उत्तम] फल बतलाकर मोहित करते हैं॥ ३१॥

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः। तदेव साधयेन्नृणां देवतानां च दैवतम्॥ ३२॥

कलियुग में लोकों के परम ईश्वर देवताओं के देव महादेव भगवान् शिव मनुष्यों के मनोरथों (कामनाओं) को सिद्ध करेंगे॥ ३२॥

करिष्यत्यवताराणि शङ्करो नीललोहितः। श्रौतस्मार्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया॥ ३३॥

वह नीललोहित भगवान् शंकर अपने भक्तों के हित की कामना से और श्रौतस्मार्त धर्म की प्रतिष्ठा हेतु नाना अवतार ग्रहण करेंगे॥ ३३॥

उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम्। सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान्वेदनिदर्शितान्॥ ३४॥

वह भगवान् शिव अपने शिष्यों को सभी वेदान्तों के सारभूत ब्रह्म ज्ञान का तथा वेदविहित धर्मों का उपदेश देंगे॥ ३४॥

सर्ववर्णान् समुद्दिश्य स्वधर्मा ये निदर्शिताः। ये तं प्रीता निषेवन्ते येन केनोपचारतः।
विजित्य कलिजान्दोषान् यान्ति ते परमं पदम्॥ ३५॥

सभी वर्णों के लिए जो स्वधर्म [भगवान् शिव ने] निर्देशित किये हैं, उनका यथासंभव येन केन प्रकारेण पालन जो लोग करते हैं, वे कलियुग से जनित दोषों पर विजय प्राप्त करके परम पद को प्राप्त करते हैं॥ ३५॥

अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेको महान् गुणः। अनायासेन सुमहत् पुण्यमाप्नोति मानवः॥ ३६॥

अनेक दोषों से दूषित कलियुग का यह एक महान् गुण है कि इस युग में मनुष्य अनायास महापुण्य को प्राप्त कर सकता है॥ ३६॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्राप्य माहेश्वरं युगम्। विशेषाद् ब्राह्मणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत्॥ ३७॥

अतः इस महेश्वर शिव के युग में (कलियुग में) विशेषतः ब्राह्मण को यथासंभव समग्र प्रयत्न करके ईशान रुद्र (शिव) की शरण में जाना चाहिए॥ ।३७॥

ये नमन्ति विरूपाक्षमीशानं कृत्तिवाससम्। प्रसन्नचेतसो रुद्रं ते यान्ति परमं पदम्॥ ३८॥

जो मनुष्य प्रसन्न चित्त से कृत्तिवासा विरूपाक्ष ईशान शिव को [भक्तिपूर्वक] नमस्कार करते हैं, वे परम पद को प्राप्त करते हैं॥३८॥

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकामफलो ध्रुवम्। अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्॥३९॥

जिस प्रकार भगवान् शिव को [भक्तिपूर्वक] नमस्कार करने के फल-स्वरूप सभी मनोकामनाएँ निश्चित रूप से पूर्ण हाती हैं, वैसा फल अन्य देवों को नमस्कार करने पर नहीं मिलता॥३९॥

एवंविधे कलियुगे दोषाणामेव शोधनम्। महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुतिः॥४०॥

इस प्रकार के इस कलियुग में सभी दोषों के प्रशमन का एकमात्र उपाय भगवान् शिव को नमस्कार करना, उनका ध्यान तथा [उनकी सन्तुष्टि हेतु] दान करना ही है- ऐसी वेद की मान्यता है॥४०॥

तस्मादनीश्वरानन्यान् त्यक्त्वा देवं महेश्वरम्। समाश्रयेद् विरूपाक्षं यदीच्छेत्परमं पदम्॥४१॥

अतः जो मनुष्य परम पद की कामना करता है, उसको अन्य अनीश्वर (ईश्वरीय शक्ति से रहित) देवों [की उपासना] को त्यागकर विरूपाक्ष देव महेश्वर की शरण में जाना चाहिए॥४१॥

नार्चयन्तीह ये रुद्रं शिवं त्रिदशवन्दितम्। तेषां दानं तपो यज्ञो वृथा जीवितमेव च॥४२॥

देवों के द्वारा पूजित भगवान् रुद्र-शिव का अर्चन जो मनुष्य नहीं करते उनके द्वारा किया जाने वाला दान, तप, यज्ञ और उनका सम्पूर्ण जीवन भी व्यर्थ हो जाता है॥४२॥

नमो रुद्राय महते देवदेवाय शूलिने। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिनां गुरवे नमः॥४३॥

त्रिशूलधारी, देवाधिदेव, महादेव रुद्र को नमस्कार है। त्र्यम्बक, त्रिनेत्र और योगी जनों के गुरु को नमस्कार है॥४३॥

नमोऽस्तु देवदेवाय महादेवाय वेधसे। शम्भवे स्थाणवे नित्यं शिवाय परमेष्ठिने॥४४॥

देवाधिदेव महादेव, वेधा, शम्भु, स्थाणु, परमेष्ठी शिव को नित्य नमस्कार है॥४४॥

नमः सोमाय रुद्राय महाग्रासाय हेतवे। प्रपद्येऽहं विरूपाक्षं शरण्यं ब्रह्मचारिणम्॥४५॥

सोम संज्ञा वाले, महाग्रास (महाप्रलय में सृष्टि को स्वयं में लीन करने वाले) तथा सृष्टि के कारण-स्वरूप रुद्र को नमस्कार है। मैं विरूपाक्ष, एवं शरण प्रदान करने वाले भगवान् शिव की शरण में आया हूँ॥४५॥

महादेवं महायोगमीशानं चाम्बिकापतिम्। योगिनां योगदातारं योगमायासमावृतम्॥४६॥
योगिनां गुरुमाचार्यं योगिगम्यं पिनाकिनम्। संसारतारणं रुद्रं ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽधिपम्॥४७॥
शाश्वतं सर्वगं शान्तं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्। कपर्दिनं कालमूर्तिममूर्तिं परमेश्वरम्॥४८॥
एकमूर्तिं महामूर्तिं वेदवेद्यं दिवस्पतिम्। नीलकण्ठं विश्वमूर्तिं व्यापिनं विश्वरेतसम्॥४९॥
कालाग्निं कालदहनं कामदं कामनाशनम्। विलोहितं लेलिहानमादित्यं परमेष्ठिनम्॥५०॥
उग्रं पशुपतिं भीमं भास्करं तमसः परम्। नमस्ये गिरिशं देवं चन्द्रावयवभूषणम्॥५१॥

महादेव, महायोगी, ईशान, अम्बिकापति, योगी जनों को योग विद्या प्रदान करने वाले, योगमाया से समावृत (सम्यक् रूप से घिरे हुए), योगीजनों के गुरु, आचार्य, योगियों के द्वारा योग विद्या से द्रष्टव्य, पिनाकी, संसार से पार लगाने वाले, रुद्र, ब्रह्मा, ब्रह्मा के अधिपति, शाश्वत (सनातन), सर्वत्र व्याप्त, शान्त,

ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों के रक्षक), ब्राह्मणप्रिय (ब्राह्मणों को प्रिय मानने वाले), कपर्दी, कालमूर्ति, अमूर्ति (निराकार), परमेश्वर, एकमूर्ति, महामूर्ति, वेदवेद्य (वेद के द्वारा ज्ञेय), दिवस्पति, नीलकण्ठ, विश्वमूर्ति, सर्वत्र व्यापी, विश्वरेता (विश्व के जनक), कालाग्नि, काल को दग्ध करने वाले, कामना पूर्ण करने वाले, काम को भस्म करने वाले, विलोहित (रक्तवर्ण वाले), लेलिहान (महाप्रलय में जगत् को निगलने वाले), आदित्य रूप, परमेष्ठी, उग्र, पशुपति, भीम, भास्कर, तमोगुण से परे स्थित, चन्द्रमा की कला से विभूषित, देव गिरीश को मैं नमस्कार करता हूँ॥४६-५१॥

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः। अतीतानागतानां वै यावन्मन्वन्तरक्षयः॥ ५२॥

यह सब वर्णन एक मन्वन्तर (वैवस्वत मन्वन्तर) की समाप्ति पर्यन्त अतीत और आगामी युगों का लक्षण संक्षेप में कहा है॥५२॥

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै। व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पः कल्पेन चैव हि॥५३॥

एक मन्वन्तर [के वर्णन] से निःसन्देह सभी मन्वन्तरों का तथा एक कल्प से सभी कल्पों का विवरण ख्यापित हो जाता है॥५३॥

मन्वन्तरेषु चैतेषु अतीतानागतेषु वै। तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत॥५४॥

व्यतीत मन्वन्तरों तथा आगामी मन्वन्तरों में एक समान नाम-रूप वाले [देवता, मनुष्य सप्तर्षि आदि] अभिमानी अर्थात् अधिकारी होते हैं॥५४॥

एवमुक्तो भगवता किरीटी श्वेतवाहनः। बभार परमां भक्तिमीशानेऽव्यभिचारिणीम्॥५५॥

व्यास जी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर श्वेत वाहन वाला और [भगवान् शिव द्वारा प्रदत्त] मुकुट को धारण करने वाला अर्जुन तब भगवान् शिव का एकनिष्ठ भक्त बन गया था॥५५॥

नमश्चकार तमृषिं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्। सर्वज्ञं सर्वकर्तारं साक्षाद्विष्णुं व्यवस्थितम्॥५६॥

तब अर्जुन ने उन कृष्णद्वैपाय नामक सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, साक्षात् प्रभु विष्णु के समान ऋषि को प्रणाम किया था॥५६॥

तमुवाच पुनर्व्यासः पार्थं परपुरञ्जयम्। कराभ्यां सुशुभाभ्याञ्च संस्पृश्य प्रणतं मुनिः॥५७॥

धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि त्वादृशोऽन्यो न विद्यते। त्रैलोक्ये शङ्करे नूनं भक्तः परपुरञ्जय॥५८॥

तब व्यास जी ने अपने चरणों में नतमस्तक शत्रुओं के नगरों को जीतने वाले अर्जुन को अपने अत्यन्त शुभ हाथों से स्पर्श करते हुए यह कहा कि हे शत्रुओं के नगर को जीतने वाले अर्जुन! तुम धन्य हो, तुम्हारे ऊपर भगवान् शिव ने अनुग्रह किया है। तुम्हारे समान शिव-भक्त तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं है॥५७-५८॥

दृष्टवानसि तं देवं विश्वाक्षं विश्वतोमुखम्। प्रत्यक्षमेव सर्वेशं रुद्रं सर्वजगद्गुरुम्॥५९॥

तुमने सभी ओर नेत्र वाले, सभी ओर मुख वाले, सबके स्वामी और सम्पूर्ण जगत् के गुरु भगवान् शिव का प्रत्यक्ष दर्शन किया है॥५९॥

ज्ञानं तदैश्वरं दिव्यं यथावद्विदितं त्वया। स्वयमेव हृषीकेशः प्रीत्योवाच सनातनः॥६०॥

तुमने ईश्वर शिव विषयक दिव्य ज्ञान को यथावत् (पूर्णतः) ज्ञात कर लिया है। उस ज्ञान को स्वयं सनातन भगवान् कृष्ण ने तुमको प्रेम-पूर्वक बतलाया था॥६०॥

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं न शोकं कर्तुमर्हसि। व्रजस्व परया भक्त्या शरण्यं शरणं शिवम्॥६१॥

अब तुम शीघ्र अपने गन्तव्य स्थान की ओर जाओ। अब शोक मत करो और परम भक्तिभाव से शरणागत वत्सल भगवान् शिव की शरण में जाओ॥६१॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा स भगवाननुगृह्यार्जुनं प्रभुः। जगाम शङ्करपुरीं समाराधयितुं भवम्॥६२॥

सूत जी बोले- ऐसा कहकर वह भगवान् प्रभु कृष्णद्वैपायन व्यास जी अर्जुन पर कृपा करके शिव की नगरी काशीपुरी में भगवान् शिव की आराधना के लिए लिए चले गये थे॥६२॥

पाण्डवेयोऽपि तद्वाक्यात् सम्प्राप्य शरणं शिवम्। सन्त्यज्य सर्वकर्माणि तद्भक्तिपरमोऽभवत्॥६३॥

सूत जी बोले- उन व्यास जी के वचनों का पालन करते हुए पाण्डु पुत्र अर्जुन भी अन्य सभी कार्यों को त्याग कर भगवान् शिव की शरण में जाकर उनकी भक्ति में लीन हो गये थे॥६३॥

नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्त्या भूतो भविष्यति। मुक्त्वा सत्यवती सूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम्॥६४॥

सत्यवती के पुत्र व्यास जी और देवकीनन्दन श्री कृष्ण सहित तीसरे व्यक्ति अर्जुन के अतिरिक्त शिव का अनन्य भक्त अन्य कोई भी न तो कभी हुआ है और न भविष्य में कभी कोई होगा॥६४॥

तस्मै भगवते नित्यं नमः शान्ताय धीमते। पाराशर्याय मुनये व्यासायामिततेजसे॥६५॥

पराशर मुनि के पुत्र शान्त स्वभाव वाले, अमित तेजस्वी और परम बुद्धिमान् भगवान् व्यास मुनि को नमस्कार है॥६५॥

कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्विष्णुरेव सनातनः। को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम्॥६६॥

कृष्ण द्वैपायन व्यास जी साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् के ही स्वरूप हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कौन है जो परमात्मा शिव को यथार्थ रूप में जानता हो॥६६॥

नमः कुरुध्वं तमृषिं कृष्णं सत्यवतीसुतम्। पाराशर्यं महात्मानं योगिनं विष्णुमव्ययम्॥६७॥

पराशर मुनि तथा सत्यवती के पुत्र और अविनाशी विष्णु स्वरूप महात्मा मुनिवर कृष्ण द्वैपायन व्यास जी को आप सभी लोग नमस्कार करें॥६७॥

एवमुक्तास्तु मुनयः सर्व एव समाहिताः। प्रणेमुस्तं महात्मानं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥६८॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे व्यासार्जुनसंवादे युगधर्मनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

ऐसा कहे जाने पर सभी मुनियों ने एकाग्र मन से उन देवी सत्यवती के पुत्र महात्मा व्यास जी को प्रणाम किया॥६८॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में व्यास और अर्जुन के संवाद में 'युगधर्म-निरूपण' नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्

ऋषय ऊचुः

प्राप्य वाराणसीं दिव्यां कृष्णद्वैपायनो मुनिः। किमकार्षीन्महाबुद्धिः श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥१॥

ऋषि बोले- दिव्य वाराणसी पुरी में जाकर महाबुद्धिमान् मुनि कृष्णद्वैपायन व्यास जी ने क्या किया था? इसे सुनने के लिए हमारे मन में परम कौतूहल (अत्यन्त उत्सुकता) है॥१॥

सूत उवाच

प्राप्य वाराणसीं दिव्यामुपस्पृश्य महामुनिः। पूजयामास जाह्नव्यां देवं विश्वेश्वरं शिवम्॥२॥

सूत जी बोले- दिव्य नगरी काशी में जाकर महामुनि व्यास जी ने गङ्गा में [स्नान एवं] आचमन करके विश्वेश्वर शिव का पूजन किया था॥२॥

तमागतं मुनिं दृष्ट्वा तत्र ये निवसन्ति वै। पूजयाञ्चक्रिरे व्यासं मुनयो मुनिपुङ्गवम्॥३॥

उन व्यास मुनि को आया हुआ देखकर वहाँ जो मुनि रहते थे उन्होंने मुनिश्रेष्ठ व्यास जी का पूजन किया था॥३॥

पप्रच्छुः प्रणताः सर्वे कथां पापविनाशिनीम्। महादेवाश्रयाः पुण्यां मोक्षधर्मान्सनातनान्॥४॥

उन सभी विनम्र [मुनियों] ने व्यास जी को प्रणाम करके महादेव शिव से सम्बन्धित पापनाशक कथाओं और सनातन मोक्ष धर्मों के विषय में पूछा था॥४॥

स चापि कथयामास सर्वज्ञो भगवानृषिः। माहात्म्यं देवदेवस्य धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥५॥

उन सर्वज्ञ भगवान् ऋषि व्यास जी ने भी देवाधिदेव शिव की महिमा तथा वेद-विहित धर्मों का वर्णन किया था॥५॥

तेषां मध्ये मुनीन्द्राणां व्यासशिष्यो महामुनिः। पृष्टवान्जैमिनिर्व्यासं गूढमर्थं सनातनम्॥६॥

काशी में उन मुनीश्वरों के मध्य में अन्यतम महामुनि जैमिनि थे, जो व्यास जी के शिष्य थे, उन्होंने व्यास जी से सनातन धर्म के गूढ तात्पर्य के विषय में पूछा था॥६॥

जैमिनिरुवाच

भगवन् संशयञ्चैकं छेत्तुमर्हसि सर्ववित्। न विद्यते ह्यविदितं भवतः परमर्षिणः॥७॥

जैमिनि बोले- हे भगवान् व्यास जी! आप सर्वज्ञ हैं- ऐसा कोई विषय नहीं है जो आप परम श्रेष्ठ ऋषि को ज्ञात न हो। अतः आप मेरे एक संशय का निराकरण कीजिए॥७॥

केचिद्ध्यानं प्रशंसन्ति धर्ममेवापरे जनाः। अन्ये सांख्यं तथा योगं तपश्चान्ये महर्षयः॥८॥

कुछ विद्वान् ध्यान की सर्वाधिक प्रशंसा करते हैं तथा अन्य विद्वान् धर्म को प्रशस्त बतलाते हैं। कुछ महर्षि सांख्य तथा योग को तो कुछ अन्य तप को प्रशस्त बतलाते हैं॥८॥

ब्रह्मचर्यमथो मौनमन्ये प्राहुर्महर्षयः। अहिंसां सत्यमप्यन्ये संन्यासमपरे विदुः॥९॥

अन्य महर्षि ब्रह्मचर्य को एवं कुछ अन्य मौन को तथा कोई अहिंसा को, कोई सत्य को तो कोई अन्य संन्यास को प्रशस्त बतलाते हैं॥९॥

केचिद्दयां प्रशंसन्ति दानमध्ययनं तथा। तीर्थयात्रां तथा केचिदन्ये चेन्द्रियनिग्रहम्॥१०॥

कुछ विद्वान् दया की, तो कुछ दान की, तथा कोई [धार्मिक ग्रन्थों के] अध्ययन की तो कोई तीर्थयात्रा की और कुछ अन्य इन्द्रिय निग्रह की [प्रमुख धर्म के रूप में] संस्तुति करते हैं॥१०॥

किमेषाञ्च भवेच्छ्रेयः प्रब्रूहि मुनिपुङ्गव। यदि वा विद्यतेऽप्यन्यगुह्यं तद्वक्तुमर्हसि॥११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इनमें से कौन श्रेयस्कर है, उसे आप बतलाइए। यदि अन्य कोई पुण्यप्रद गुप्त साधन हो तो उसे भी आप बतलाइए॥११॥

श्रुत्वा स जैमिनेर्वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः। प्राह गम्भीरया वाचा प्रणम्य वृषकेतनम्॥१२॥

जैमिनि के वचनों को सुनकर कृष्णद्वैपायन मुनि व्यास ने वृषध्वज भगवान् शिव को प्रणाम करके गम्भीर होकर यह वचन कहे॥१२॥

व्यास उवाच

साधु साधु महाभाग यत्पृष्टं भवता मुने। वक्ष्ये गुह्यतमाद्गुह्यं शृण्वन्त्वन्ये महर्षयः॥१३॥

व्यास जी बोले- हे महाभाग मुनिवर! आप धन्य हैं। आपने जो पूछा है, मैं उस गोपनीय से भी अधिक गोपनीय तथ्य को कहता हूँ। अन्य महर्षि भी उसे सुनें॥१३॥

ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं ज्ञानमेतत्सनातनम्। गूढमप्राज्ञविद्विष्टं सेवितं सूक्ष्मदर्शिभिः॥१४॥

यह सनातन ज्ञान पूर्वकाल में भगवान् शिव ने कहा था। सूक्ष्मदर्शी विद्वान् ही इस ज्ञान के अनुसार आचरण करते हैं, किन्तु मूर्ख व्यक्ति उस ज्ञान के प्रति द्वेषभाव वाले होते हैं॥१४॥

नाश्रद्दधाने दातव्यं नाभक्ते परमेष्ठिनः। न वेदविदुषे देयं ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्॥१५॥

सभी ज्ञानों से उत्तम यह शुभ ज्ञान उस व्यक्ति को नहीं देना चाहिए जो श्रद्धा रहित हो, जो परमेष्ठी (भगवान् शिव) का भक्त नहीं हो और जो वेदों के प्रति द्वेषभाव वाला हो॥१५॥

मेरुशृङ्गे महादेवमीशानं त्रिपुरद्विषम्। देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत॥१६॥

प्राचीन काल में मेरु पर्वत के शिखर में भगवान् शिव के साथ एक आसन में विराजमान देवी पार्वती ने उन त्रिपुरारि महादेव शिव से यह पूछा था॥१६॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानामार्तिनाशन। कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति॥१७॥

देवी पार्वती ने कहा- हे भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले देवाधिदेव! महोदव! कोई व्यक्ति किस प्रकार से (किस उपाय से) शीघ्र ही आप का दर्शन पा सकता है?॥१७॥

साङ्ख्ययोगस्तपो ध्यानं कर्मयोगश्च वैदिकः। आयासबहुलान्याहुर्यानि चान्यानि शङ्कर॥१८॥

हे शङ्कर! सांख्य, योग, तप, ध्यान तथा वेद-विहित [यज्ञादि] कर्मयोग और अन्य जो भी कृत्य (धार्मिक कर्मकाण्ड, व्रत आदि) हैं, वे बहुत परिश्रम से किये जाने वाले हैं॥१८॥

येन विभ्रान्तचित्तानां विज्ञानां योगिनामपि।
दृश्यो हि भगवान्सूक्ष्मः सर्वेषामपि देहिनाम्॥ १९॥

एतद्गुह्यतमं ज्ञानं गूढं ब्रह्मादिसेवितम्। हिताय सर्वभक्तानां ब्रूहि कामाङ्गनाशन॥ २०॥

जिस उपाय से चञ्चल चित्त वाले एवं ज्ञानियों और योगियों आदि सभी मनुष्यों को उन सूक्ष्म (अदृश्य) भगवान् का दर्शन सम्भव हो, जो ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा उपयोग में लाया गया गूढ और अत्यन्त गोपनीय ज्ञान हो, हे कामदेव को भस्म करने वाले शिव! उस ज्ञान को ही सभी भक्तों के हित में आप बतलाइए॥ १९-२०॥

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद् गूढार्थं ज्ञानमज्ञैर्बहिष्कृतम्। वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभिः॥ २१॥

शिव जी बोले- जो विशेष ज्ञान अवर्णनीय है और जो अज्ञानी जनों के द्वारा बहिष्कृत है, जिस ज्ञान को महर्षियों ने कहा है, उसे मैं तुमको सार रूप में यथावत् बतलाता हूँ॥ २१॥

परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी। सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी॥ २२॥

यह वाराणसी पुरी मेरा परम गोपनीय क्षेत्र है। यह सभी प्राणियों को संसार-सागर से पार उतारने वाली पुरी है॥ २२॥

तत्र भक्ता महादेवि मदीयं व्रतमास्थिताः। निवसन्ति महात्मानः परं नियममास्थिताः॥ २३॥

हे महादेवी! यहाँ मेरी उपासना रूपी व्रत के पालन में तत्पर भक्तगण और नियमों (धार्मिक विधानों) का पूर्णतः पालन करने वाले महात्मा निवास करते हैं॥ २३॥

उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमञ्च यत्। ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम॥ २४॥

यह मेरा अविमुक्त क्षेत्र सभी तीर्थों तथा सभी देव-स्थानों से उत्तम है। सभी ज्ञानों में उत्तम ज्ञान [-प्रद] यह मेरा परं [-प्रिय] अविमुक्त क्षेत्र है॥ २४॥

स्थानान्तरे पवित्राणि तीर्थान्यायतनानि च। श्मशाने संस्थितान्येव दिवि भूमिगतानि च॥ २५॥

स्वर्ग और भूमि में स्थान स्थान पर जो पवित्र तीर्थ और देवायतन हैं, वह सब यहाँ इस महाश्मशान संज्ञक काशी में विद्यमान हैं॥ २५॥

भूर्लोके नैव संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम्। अविमुक्ता न पश्यन्ति मुक्ताः पश्यन्ति चेतसा॥ २६॥

मेरा निवास-गृह यह सम्पूर्ण काशी क्षेत्र भूलोक से संलग्न नहीं है, अपितु यह अन्तरिक्ष में स्थित है। अविमुक्त (अर्थात् सांसारिक विषय-वासनाओं में लिप्त) मनुष्य इस काशी क्षेत्र को यथार्थ रूप में नहीं देख सकते हैं, केवल मुक्त (अनासक्त) मनुष्य ही ध्यानस्थ चित्त से इसे देख सकते हैं॥ २६॥

श्मशानमेतद्विख्यातमविमुक्तमिति स्मृतम्। कालो भूत्वा जगदिदं संहराम्यत्र सुन्दरि॥ २७॥

यह महाश्मशान-भूमि अविमुक्त क्षेत्र के रूम पें विख्यात है। हे सुन्दरी! मैं यहाँ काल बनकर इस जगत् का संहार करता हूँ॥ २७॥

देवीदं सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतमं मम। मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति ते॥ २८॥

हे देवि! अन्य सभी गुह्य स्थानों की अपेक्षा यह स्थान मुझे सर्वाधिक प्रिय है। मेरे जो भक्त उस गुह्यतम अविमुक्त क्षेत्र में जाते हैं, वे मुझमें ही समाहित (प्रविष्ट) हो जाते हैं॥२८॥

दत्तं जप्तं हुतञ्चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्। ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राक्षयं भवेत्॥२९॥

वहाँ (अविमुक्त क्षेत्र में) प्रदत्त दान, वहाँ किया गया जप, होम, यज्ञ, तप, ध्यान, अध्ययन और अर्जित ज्ञान आदि सब अक्षय हो जाता है॥२९॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम्। अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥३०॥

अविमुक्त क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले के सहस्रों जन्मों के पूर्व-सञ्चित समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥३०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये वर्णसङ्कराः। स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥३१॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते वरानने॥३२॥
चन्द्रार्द्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहनाः। शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः॥३३॥

जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसङ्कर, स्त्रियाँ, म्लेच्छ एवं अन्य संकीर्ण (वर्णबाह्य) जातियों के पापयोनि मनुष्य तथा कीड़े, चीटियाँ, अन्य पशु, मृग, पक्षी आदि यदि इस अविमुक्त क्षेत्र में कालानुसार मृत्यु को प्राप्त करते हैं तो हे वरानने! वे सभी शिर पर अर्ध चन्द्र धारण करने वाले, त्रिनेत्र (तीन नेत्रों वाले), नन्दी जैसे महावृषभ पर आरुढ़ होने वाले होकर मेरे शिव लोक में मनुष्य रूप में जाते हैं॥३१-३३॥

नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्विषी। ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम्॥३४॥

अविमुक्त क्षेत्र में देह त्याग करने वाला कोई पापी भी नरक में नहीं जाता। ईश्वर-शिव का अनुग्रह प्राप्त कर [यहाँ देहत्याग करने वाले] सभी जन परम गति को प्राप्त करते हैं॥३४॥

मोक्षं सुदुर्लभं ज्ञात्वा संसारं चातिभीषणम्। अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः॥३५॥

मोक्ष की प्राप्ति [अन्यत्र] अत्यन्त दुर्लभ मान कर और संसार को अत्यन्त भयानक जान कर मनुष्य अपने पैरों को पत्थर से तोड़कर केवल वाराणसी में निवास करे॥३५॥

दुर्लभा तपसा चापि पूतस्य परमेश्वरि। यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षिणी॥३६॥
प्रसादाद्दह्यते ह्येनो मम शैलेन्द्रनन्दिनि। अत्राबुधा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः॥३७॥

हे परमेश्वरी! तपस्या से पवित्र मनुष्य के लिए जहाँ कहीं मृत्यु होने पर संसार से मुक्ति प्रदान करने वाली गति दुर्लभ होती है। हे पार्वती! वह सद्गति [काशी में] मेरी कृपा से हो जाती है। किन्तु मेरी माया से विमोहित बुद्धि वाले अज्ञानी मनुष्य इस तथ्य को नहीं जान पाते हैं॥३६-३७॥

अविमुक्तं न सेवन्ते मूढा ये तमसावृताः। विण्मूत्ररेतसां मध्ये संविशन्ति पुनः पुनः॥३८॥

तमोगुण से विकृत बुद्धि वाले जो मूर्ख जन अविमुक्त क्षेत्र में निवास नहीं करते उनको मल-मूत्र और वीर्य के मध्य में बार-बार जाना पड़ता है॥३८॥

हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेद्विघ्नशतैरपि। स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥३९॥

जो विद्वान् व्यक्ति सैकड़ों विघ्नों के द्वारा बार-बार बाधित किये जाने पर भी काशी में ही वास करता है, वह उस परम स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ जाकर कोई भी व्यक्ति शोकाकुल नहीं होता॥३९॥

जन्ममृत्युजरामुक्तं परं याति शिवालयम्। अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकांक्षिणाम्॥४०॥

वह जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था से मुक्त होकर शिवलोक में जाता है। जो मनुष्य पुनः मृत्यु नहीं चाहते, किन्तु मोक्ष की कामना करते हैं, उनके लिए काशी ही परम गति प्रदान करने वाली है॥४०॥

यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्यन्ति पण्डिताः। न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया॥४१॥
प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा याऽविमुक्ते तु लभ्यते। नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डालाद्या जुगुप्सिताः॥४२॥
किल्विषैः पूर्णदेहास्तु महापापोपपातकैः। भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः॥४३॥

उस सद्गति को प्राप्त कर मनुष्य कृतकृत्य होता है। ऐसा पण्डित जन मानते हैं। न दान से, न तप से, न यज्ञों से और न विद्या से वह उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है जो गति अविमुक्त क्षेत्र में [देह-त्याग से] प्राप्त होती है। चारों वर्णो के मुनष्य तथा इन वर्णों के बाहर के चाण्डाल आदि जो भी घृणित मनुष्य हैं और जो महापापों और उपपापों सहित नाना पापों से संलिप्त हैं, उनके लिए एकमात्र औषध अविमुक्त [क्षेत्र में निवास] ही विद्वानों ने बतलाया है॥४१-४३॥

अविमुक्तं परं ज्ञानमविमुक्तं परं पदम्। अविमुक्तं परं तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम्॥४४॥

अविमुक्त क्षेत्र परम ज्ञानमय है। अविमुक्त ही परम पद है। अविमुक्त ही परम तत्त्व है और अविमुक्त परम शिव स्वरूप है॥४४॥

कृत्वा वै नैष्ठिकीं दीक्षामविमुक्ते वसन्ति ये। तेषां तत्परमं ज्ञानं ददाम्यन्ते परं पदम्॥४५॥

जो मनुष्य नैष्ठिकी दीक्षा ग्रहण करके अविमुक्त क्षेत्र में निवास करते हैं, उनको मैं वह (अविमुक्त विषयक) परम ज्ञान प्रदान करता हूँ तथा अन्त में उनको परम पद प्रदान करता हूँ॥४५॥

प्रयागं नैमिषं पुण्यं श्रीशैलोऽथ हिमालयः। केदारं भद्रकर्णञ्च गया पुष्करमेव च॥४६॥
कुरुक्षेत्रं रुद्रकोटिर्नर्मदा हाटकेश्वरम्। शालिग्रामञ्च कुब्जाम्रं तीर्थं कोकामुखं तथा॥४७॥
प्रभासं विजयेशानं गोकर्णं भद्रकर्णकम्[1]। एतानि पुण्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि च॥४८॥
यास्यन्ति परं मोक्षं वाराणस्यां यथा मृताः। वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी।
प्रविष्टा नाशयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृतम्॥४९॥

पवित्र तीर्थ प्रयाग, नैमिष, श्रीशैल, हिमाचल, केदारनाथ, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्रकोटि, नर्मदा, हाटकेश्वर, शालिग्राम, कुब्जाम्र, तथा कोकामुख संज्ञक तीर्थ, प्रभास, विजयेशान (?), गोकर्ण, भद्रकर्ण आदि पवित्र स्थान तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं, परन्तु उन तीर्थों में मृत व्यक्ति उस प्रकार मोक्ष नहीं पाते जिस प्रकार कि वाराणसी में मृत मनुष्य पाते हैं। त्रिपथगामिनी (स्वर्ग, भूमि एवं पाताल में प्रवाहित होने वाली) गङ्गा वाराणसी में प्रवेश करने पर मनुष्यों के सैकड़ों जन्मों के पाप नष्ट कर देती है॥४६-४९॥

---

१. शङ्कुकर्णकम्

अन्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्धं दानं तपो जपः। व्रतानि सर्वमेवैतद्वाराणस्यां सुदुर्लभम्॥५०॥

अन्य स्थानों में गङ्गा, श्राद्ध, दान, तप, जप, व्रत आदि सब सुलभ [एवं सुकर] हैं, किन्तु वाराणसी में दुर्लभ हैं॥५०॥

यजेतु जुहुयान्नित्यं ददात्यर्च्चयतेऽपरान्। वायुभक्षश्च सततं वाराणस्यां स्थितो नरः।५१॥

वाराणसी में निवास करने वाला मनुष्य नित्य हवन करे, यज्ञानुष्ठान करे, दान और देवपूजन करे। जो केवल वायु भक्षण करके (निराहार) रहता हो- [ऐसा संन्यासी भी] वाराणसी में निवास करे॥५१॥

यदि पापो यदि शठो यदि वाधार्मिको नरः। वाराणसीं समासाद्य पुनाति स कुलत्रयम्॥५२॥

यदि कोई पापी, शठ (धूर्त) अथवा अधर्मी मनुष्य भी काशी में आ जाता है तो वह अपने से सम्बन्धित तीनों कुलों (पिता, माता आदि के कुलों) को पवित्र कर देता है॥५२॥

वाराणस्यां महादेवं ये स्तुवन्त्यर्चयन्ति च। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते विज्ञेया गणेश्वराः॥५३॥

जो मनुष्य वाराणसी में भगवान् शिव की स्तुति और पूजा करते हैं, उनको सभी पापों से मुक्त गणेश्वर समझना चाहिए॥५३॥

अन्यत्र यागात् ज्ञानात् वा संन्यासादथवान्यतः। प्राप्यते तत्परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मना॥५४॥

ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै। ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना॥५५॥

अन्य स्थानों में एक हजार जन्मों तक यज्ञानुष्ठान, ज्ञान-प्राप्ति या संन्यास आदि धर्म-कृत्यों के अनुष्ठान से मोक्ष रूप परम स्थान प्राप्त होता है, किन्तु काशी में निवास करने वाले देवेश्वर भगवान् शिव के जो भी भक्त होते हैं, वे एक ही जन्म में परम मोक्ष को प्राप्त करते हैं॥५४-५५॥

यत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना। अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम्॥५६॥

जहाँ एक ही जन्म में योग, ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, ऐसे अविमुक्त क्षेत्र में पहुँच कर किसी अन्य तपोवन में नहीं जाना चाहिए॥५६॥

यतो मया न मुक्तं तदविमुक्तं ततः स्मृतम्। तदेव गुह्यं गुह्यानामेतद्विज्ञाय मुच्यते॥५७॥

इस वाराणसी क्षेत्र को मैं कभी नहीं छोड़ता। अतः इसे अविमुक्त कहा गया है। यही क्षेत्र अन्यत्र विद्यमान गुह्य क्षेत्रों से अधिक गुह्य (गोपनीय) है। इस तथ्य का ज्ञान होने पर यहाँ का निवासी मुक्त हो जाता है॥५७॥

ज्ञानध्यानाभिनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्। या गतिर्विहिता सुभ्रु साविमुक्ते मृतस्य तु॥५८॥

हे सुन्दर भौंहों वाली पार्वती! ब्रह्मज्ञान और ध्यान में निरत और परम आनन्द-प्राप्ति के इच्छुक साधकों की जो गति बतलायी गयी है, वही गति अविमुक्त क्षेत्र में मरने वालों की भी होती है॥५८॥

यानि कान्यविमुक्तानि देवैरुक्तानि कृत्स्नशः। पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्योऽप्यधिका शुभा॥५९॥

देवों ने जितने भी अविमुक्त क्षेत्र बतलाये हैं। उन सभी क्षेत्रों से वाराणसी पुरी अधिक शुभ है॥५९॥

यत्र साक्षात् महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः। व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तकम्॥६०॥

यहाँ अविमुक्त क्षेत्र के निवासियों की मृत्यु के समय उनको साक्षात् महादेव शिव स्वयं तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं॥६०॥

यत्तत्परतरं तत्त्वमविमुक्तमिति स्मृतम्। एकेन जन्मना देवि वाराणस्यां तदाप्यते॥६१॥

हे देवि! जिस परात्पर तत्व को अविमुक्त कहा गया है, वह तत्त्व वाराणसी में एक ही जन्म में प्राप्त हो जाता है॥६१॥

भ्रूमध्ये नाभिमध्ये च हृदयेऽपि च मूर्द्धनि। यथाविमुक्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम्॥६२॥

जिस प्रकार [विराट पुरुष के] भ्रूमध्य (भौंहों के मध्य) में, नाभि के मध्य में तथा हृदय में एवं मूर्धा (मस्तक) में और आदित्य (सूर्य मण्डल) में अविमुक्त विराजमान है, उसी प्रकार वाराणसी में भी अविमुक्त क्षेत्र विद्यमान है॥६२॥

वरुणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी।
तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवाविमुक्तिकम्॥६३॥

वरुणा नदी और असी नदी के मध्य क्षेत्र में (गङ्गा के तट पर) वाराणसी पुरी स्थित है, वहीं पर नित्य अविमुक्त तत्त्व विद्यमान है॥६३॥

वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति। यत्र नारायणो देवो महादेवो निरञ्जनः॥६४॥

वाराणसी से श्रेष्ठ अन्य कोई स्थान न तो है और न कभी होगा। वहाँ नारायण देव विष्णु और निरञ्जन देव महादेव विराजमान हैं॥६४॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। उपासते मां सततं देवदेवः पितामहः॥६५॥

वहाँ वाराणसी में गन्धर्वों सहित सभी देवता, यक्ष, नाग, और राक्षसगण तथा देवाधिदेव पितामह ब्रह्मा भी मेरी (शिव की) उपासना करते हैं॥६५॥

महापातकिनो ये च ये तेभ्यः पापकृत्तमाः। वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम्॥६६॥

जो भी महापापी हैं और जो उनसे भी अधिक पापी हैं, वे भी वाराणसी में आकर परम गति पाते हैं॥६६॥

तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेच्चामरणान्तिकम्। वाराणस्यां महादेवि ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते॥६७॥

अतः मोक्ष की कामना करने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से मृत्यु पर्यन्त वाराणसी में निवास करे। हे महादेवी! वाराणसी में मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करता है॥६७॥

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम्। ततो नैव चरेत्पापं कायेन मनसा गिरा॥६८॥

किन्तु पाप से दूषित चित्त वाले मनुष्यों के लिए काशी वास करने में विघ्न आते हैं। अतः काशी में निवास करने वाला मनुष्य शरीर, मन और वाणी से भी कोई पाप न करे॥६८॥

व्यास उवाच

एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां द्विजोत्तमाः। अविमुक्ताश्रयं ज्ञानं न कश्चिद् वेत्ति तत्त्वतः॥६९॥

[भगवान् शिव के इन वचनों के उपरान्त] व्यास जी ने कहा- हे श्रेष्ठ द्विजो! यह वेदों और पुराणों

का रहस्य कहा गया है। वस्तुतः अविमुक्त क्षेत्र से सम्बन्धित ज्ञान को यथार्थ रूप में पूर्णतः कोई नहीं जानता है॥६९॥

देवतानामृषीणाञ्च शृण्वतां परमेष्ठिनाः। देव्यै देवेन कथितं सर्वपापविनाशनम्॥७०॥

इस सर्व पापनाशक ज्ञान को परमेष्ठी भगवान् शिव ने देवी पार्वती के समक्ष कहा था और उस समय देवता एवं ऋषि भी इसे सुन रहे थे॥७०॥

यथा नारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः। यथेश्वराणां गिरिशः स्थानानाञ्चैतदुत्तमम्॥७१॥

जिस प्रकार देवों में पुरुषोत्तम नारायण विष्णु श्रेष्ठ हैं और ईश्वरों में गिरीश शिव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी तीर्थस्थानों में यह काशी सर्वोत्तम है॥७१॥

यैः समाराधितो रुद्रः पूर्वस्मिन्नेव जन्मनि। ते विन्दन्ति परं क्षेत्रमविमुक्तं शिवालयम्॥७२॥

जिन्होंने पूर्वजन्म में भगवान् शिव की उपासना की हो वे ही इस शिव की निवास भूमि अविमुक्त क्षेत्र में निवास कर पाते हैं॥७२॥

कलिकल्मषसम्भूता येषामुपहता मतिः। न तेषां वीक्षितुं शक्यं स्थानं तत्परमेष्ठिनः॥७३॥

कलि के प्रभाव से जिनकी बुद्धि विकृत हो गयी हो वे परमेष्ठी शिव के स्थान अविमुक्त क्षेत्र को नहीं देख पाते हैं॥७३।

ये स्मरन्ति सदा कालं विन्दन्ति च पुरीमिमाम्। तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्॥७४॥

जो मनुष्य सर्वदा काल- (महाकाल) स्वरूप शिव का स्मरण करते हैं, वे ही इस काशीपुरी में निवास हेतु आ पाते हैं। उनका इहलोक और पूर्वजन्म में किया गया पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है॥७४॥

यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः। नाशयेत् तानि सर्वाणि देवः कालतनुः शिवः॥७५॥

यहाँ काशी में निवास करने वाले जो कुछ भी पाप करते हैं, उनके उन पापों को कालरूप भगवान् शिव नष्ट कर देते हैं॥७५॥

आगच्छतामिदं स्थानं सेवितुं मोक्षकांक्षिणाम्। मृतानां वै पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे॥७६॥

मोक्ष की कामना से यहाँ आकर काशीवास करने वालों की मृत्यु होने पर उन्हें पुनः भवसागर में जन्म नहीं लेना पड़ता है॥७६॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः। योगी वाप्यथवाऽयोगी पापी वा पुण्यकृत्तमः॥७७॥

अतः बुद्धिमान् मनुष्य यथासंभव पूर्ण प्रयास करके वाराणसी में निवास करे। कोई मनुष्य योगी हो अथवा योगी नहीं भी हो, पापी हो या अतिशय पुण्यकर्ता हो वह यहाँ आकर निवास कर सकता है॥७७॥

न लोकवचनात् पित्रोर्न चैव गुरुवादतः। मतिरुत्क्रमणीया स्यादविमुक्तागतिं प्रति॥७८॥

लोगों के कहने पर या माता-पिता या गुरु के द्वारा रोके जाने पर भी अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी में जाने का विचार स्थगित नहीं करना चाहिए॥७८॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वाथ भगवान् व्यासो वेदविदां वरः। सहैव शिष्यप्रवरैर्वाराणस्यां चचार ह॥ ।७९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वाराणसीमाहात्म्यं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

सूत जी बोले- वेद के विद्वानों में श्रेष्ठ भगवान् व्यास जी ऐसा कहकर अपने श्रेष्ठ शिष्यों सहित वाराणसी में विचरण करने लगे थे॥७९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'वाराणसी-माहात्म्यवर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

❖❖❖

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्

सूत उवाच

सः शिष्यैः संवृतो धीमान् गुरुर्द्वैपायनो मुनिः। जगाम विपुलं लिङ्गमोङ्कारं मुक्तिदायकम्॥ १॥

सूत जी बोले- वह विद्वान् कृष्णद्वैपायन व्यास मुनि अपने शिष्यों सहित काशी में मुक्तप्रद विशाल ओङ्कार लिङ्ग के दर्शन हेतु गये थे॥१॥

तत्राभ्यर्च्य महादेवं शिष्यैः सह महामुनिः। प्रोवाच तस्य माहात्म्यं मुनीनां भावितात्मनाम्॥ २॥

वहाँ उन महामुनि ने शिष्यों के साथ भगवान् महादेव शिव की पूजा करने के बाद वहाँ पर स्थित पवित्र आत्मा वाले मुनियों को उस लिङ्ग का माहात्म्य बतलाया था॥ २॥

इदं तद्विमलं लिङ्गमोङ्कारं नाम शोभनम्। अस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः॥ ३॥

उन्होंने कहा था कि यह ओङ्कार नामक पवित्र और सुन्दर लिङ्ग है। मनुष्य इसके स्मरण मात्र से सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥ ३॥

अत्र तत्परमं धाम[1] पञ्चायतनमुत्तमम्। अर्चितं मुनिभिर्नित्यं वाराणस्यां विमोक्षदम्॥ ४॥

वाराणसी में यह पञ्चायतन नामक मोक्षप्रद परम धाम है। मुनिजन इसकी नित्य पूजा करते हैं॥ ४॥

अत्र साक्षान्महादेवः पञ्चायतनविग्रहः। रमते भगवानूरुद्रो जन्तूनामपवर्गदः॥ ५॥

यहाँ पर प्राणियों को मोक्ष प्रदान करने वाले साक्षात् महादेव भगवान् शिव पञ्चायतन देह वाले बनकर रमण करते हैं॥ ५॥

यत्तत्पाशुपतं ज्ञानं पञ्चार्थमिति कथ्यते। तदेव विमलं लिङ्गमोङ्कारे समवस्थितम्॥ ६॥

१. ज्ञानं

जो पाशुपत ज्ञान पञ्चार्थ शब्द से कहा जाता है, वही इस विशुद्ध ओङ्कार लिङ्ग रूप में स्थित है॥६॥

शान्त्यतीता परा शान्तिर्विद्या चैव पराकला[१]। प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चार्थं लिङ्गमैश्वरम्॥७॥

शान्त्यतीता[२]? सामान्य जगत् की शान्ति से भिन्न परम शान्ति, परम कलायुक्त विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति इन पाँच अर्थो का बोधक यह ओङ्कार लिङ्ग है॥७॥

पञ्चानामपि देवानां ब्रह्मादीनां यदाश्रयम्। ओङ्कारबोधितं लिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते॥८॥

ओङ्कार का बोधक यह लिङ्ग पाँचों देवों (शिव, गणेश, दुर्गा विष्णु और सूर्य) तथा ब्रह्मा आदि का आश्रय-स्वरूप होने के कारण ही पञ्चायतन कहा जाता है॥८॥

यः स्मरेदैश्वरं लिङ्गं पञ्चायतनमव्ययम्। देहान्ते तत्परं ज्योतिरानन्दं विशते बुधः॥९॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य शिव के इस अविनाशी पञ्चायतन संज्ञक लिङ्ग का स्मरण करता है, वह देहावसान के उपरान्त आनन्दमय परं ज्योति में प्रवेश करता है॥९॥

अत्र देवर्षयः पूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा। उपास्य देवमीशानं प्राप्तवन्तः परं पदम्॥१०॥

पूर्वकाल में इस ओङ्कारेश्वर धाम में ओङ्कारेश्वर शिव की उपासना करके देवर्षियों, सिद्धों, तथा ब्रह्मर्षियों ने परम पद को प्राप्त किया था॥१०॥

मत्स्योदर्यास्तटे पुण्यं स्थानं गुह्यतमं शुभम्। गोचर्ममात्रं विप्रेन्द्रा ओङ्कारेश्वरमुत्तमम्॥११॥

हे द्विजेन्द्रो! मत्स्योदरी नदी के तट में गोचर्म के बराबर अत्यन्त गोपनीय शुभ और पवित्र स्थान में ओङ्कारेश्वर शिव स्थित हैं॥११॥

कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं मध्यमेश्वरमुत्तमम्। विश्वेश्वरं तथोङ्कारं कपर्दीश्वरमुत्तमम्॥१२॥
एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः। न कश्चिदिह जानाति विना शम्भोरनुग्रहात्॥१३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! काशी में कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग, मध्यमेश्वर, उत्तमोत्तम विश्वेश्वर, ओङ्कारेश्वर और कपर्दीश्वर नामक गोपनीय (गुप्त) लिङ्ग हैं। बिना शिव की कृपा के उनको कोई भी नहीं जान सकता है॥१२-१३॥

एवमुक्त्वा ययौ कृष्णः पाराशर्यो महामुनिः। कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं द्रष्टुं देवस्य शूलिनः॥१४॥

ऐसा कहकर पराशर मुनि के पुत्र महामुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास जी त्रिशूलधारी भगवान् शिव के कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग के दर्शन हेतु गये थे॥१४॥

समभ्यर्च्य तदा शिष्यैर्माहात्म्यं कृत्तिवाससः। कथयामास विप्रेभ्यो भगवान् ब्रह्मवित्तमः॥१५॥
अस्मिन् स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम्। ब्राह्मणान् हन्तुमायातो येऽत्र नित्यमुपासते॥१६॥
तेषां लिङ्गान्महादेवः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः। रक्षणार्थं द्विजश्रेष्ठा भक्तानां भक्तवत्सलः॥१७॥

वहाँ पर ब्रह्मज्ञ विद्वानों में श्रेष्ठ भगवान् व्यास जी ने अपने शिष्यों सहित उस शिवलिङ्ग की पूजा

१. यथाक्रमं
२. 'शान्त्यतीता' पाठ संदिग्ध है। अर्थसंगति की दृष्टि से उचित नहीं है।

करके वहाँ उपस्थित ब्राह्मणों से कहा कि प्राचीन काल में यहाँ पर नित्य उपासना करने वाले ब्राह्मणों के वध हेतु एक बार एक दैत्य हाथी का रूप धारण करके उस शिव लिङ्ग के पास आया था। हे श्रेष्ठ द्विजो! तब उन ब्राह्मणों की रक्षा हेतु भक्तवत्सल भगवान् महादेव शिव उस लिङ्ग से प्रकट हुए थे॥ १५-१७॥

हत्वा गजाकृतिं दैत्यं शूलेनावज्ञया हरः। वासस्तस्याकरोत्कृत्तिं कृत्तिवासेश्वरस्ततः॥ १८॥

तब भगवान् शिव ने अवज्ञा (अवहेलना) के साथ उस हाथी के रूप वाले दैत्य का अपने त्रिशूल से वध करके उसके चर्म को वस्त्र रूप में धारण किया था और तभी से उनको कृत्तिवासेश्वर कहा जाने लगा था॥ १८॥

अत्र सिद्धिं परां प्राप्ता मुनयो मुनिपुङ्गवाः। तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत्परमं पदम्॥ १९॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यहाँ पर मुनियों ने परम सिद्धि प्राप्त की थी और उसी शरीर से परम पद (मोक्ष) को प्राप्त किया था॥ १९॥

विद्या विद्येश्वरा रुद्राः शिवा ये च प्रकीर्तिताः। कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं नित्यमावृत्य संस्थिताः॥ २०॥

जो विद्या, विद्येश्वर, रुद्र और शिव कहे गये हैं, वे सभी कृत्तिवासेश्वर शिव को सभी ओर से घेर कर नित्य विराजमान रहते हैं॥ २०॥

ज्ञात्वा कलियुगं घोरमधर्मबहुलं जनाः। कृत्तिवासं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते न संशयः॥ २१॥

अधर्म की बहुलता वाले कलियुग को ज्ञात करके जो मनुष्य कृतिवासेश्वर शिव के सान्निध्य का परित्याग नहीं करते वे निश्चयमेव कृतार्थ हो जाते हैं॥ २१॥

जन्मान्तरसहस्त्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा। एकेन जन्मना मोक्षः कृत्तिवासे तु लभ्यते॥ २२॥

अन्यत्र हजारों जन्मों में भी मोक्ष प्राप्त होगा या नहीं इस विषय में सन्देह है, किन्तु कृत्तिवासेश्वर क्षेत्र में तो मनुष्य एक ही जन्म में मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २२॥

आलयः सर्वसिद्धानामेतत्स्थानं वदन्ति हि। गोपितं देवदेवेन महादेवेन शम्भुना॥ २३॥

इस स्थान को सभी सिद्धों का आश्रय स्थान (घर) कहा जाता है। यह स्थान देवाधिदेव महादेव शिव के द्वारा सुरक्षित किया गया है॥ २३॥

युगे युगे ह्यत्र दान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः। उपासते महादेवं जपन्ति शतरुद्रियम्॥ २४॥

यहाँ पर युगों युगों से इन्द्रिसंयमी वेद-पारंगत ब्राह्मण भगवान् शिव की उपासना और शतरुद्रिय का पाठ करते आ रहे हैं॥ २४॥

स्तुवन्ति सततं देवं महादेवं त्रियम्बकम्। ध्यायन्तो हृदये नित्यं स्थाणुं सर्वान्तरं शिवम्॥ २५॥

वे कृत्तिवासा त्र्यम्बक भगवान् शिव की नित्य स्तुति करते हैं और सभी के हृदय में विराजमान स्थाणु देव शिव का अपने हृदय में ध्यान करते हैं॥ २५॥

गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि ये वाराणस्यां निवसन्ति विप्राः।
तेषामथैकेन भवेद्विमुक्तिर्ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः॥ २६॥

हे ब्राह्मणो! सिद्ध जन यह गीत गाते हैं कि जो ब्राह्मण वाराणसी में निवास करते हैं और यहाँ

(निवास करते हुए) जो कृत्तिवासेश्वर शिव की शरण में जाते हैं, उनको एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाती है॥२६॥

सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्टं सुदुर्लभं विप्रकुलेषु जन्म।
ध्याने समादायं जपन्ति रुद्रं ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम्॥२७॥

इस लोक में संसार के सभी जनों के अभीष्ट अति दुर्लभ ब्राह्मण कुल में जन्म प्राप्त करके संयमी लोग अपने हृदय में भगवान् शिव का ध्यान करते हैं और ध्यान लगाकर ही रुद्र-मन्त्र का जप करते हैं॥२७॥

आराधयन्ति प्रभुमीशितारं वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्राः।
यजन्ति यज्ञैरभिसन्धिहीनाः स्तुवन्ति रुद्रं प्रणमन्ति शम्भुम्॥२८॥

वाराणसी पुरी के मध्य में निवास करने वाले मुनीश्वर निष्काम भाव से जगत्स्वामी भगवान् शिव की आराधना करते हैं, नाना यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं और भगवान् रुद्र की स्तुति करते हैं तथा उन शम्भु को नित्य प्रणाम करते हैं॥२८॥

नमो भवायामलभावधाम्ने स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्।
स्मरामि रुद्रं हृदये निविष्टं जाने महादेवमनेकरूपम्॥२९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वाराणसीमाहात्म्यं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

जिनका धाम पवित्र भाव वाला है, ऐसे भव संज्ञक देव शिव को नमस्कार है। मैं स्थाणु संज्ञक पुराण पुरुष गिरीश की शरण में आया हूँ। हृदय में विद्यमान रुद्र का ध्यान करता हूँ। मैं जानता हूँ कि महादेव शिव अनेक रूपों में विद्यमान हैं॥२९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'वाराणसी-माहात्म्य' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्

सूत उवाच

समाभाष्य मुनीन्धीमान्देवदेवस्य शूलिनः। जगाम लिङ्गं तद् द्रष्टुं कपर्दीश्वरमव्ययम्॥१॥

सूत जी बोले- परम बुद्धिमान् व्यास जी मुनियों से ऐसा कह कर त्रिशूलधारी देवाधिदेव भगवान् शिव के कपर्दीश्वर नामक अविनाशी लिङ्ग के दर्शनार्थ गये थे॥१॥

स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितॄन्द्विजाः। पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम्॥२॥

हे द्विजो! व्यास जी ने वहाँ पिशाचमोचन तीर्थ में स्नान करके विधिपूर्वक पितरों का तर्पण करके त्रिशूल-धारी भगवान् शिव की पूजा की थी॥२॥

तत्राश्चर्यमपश्यंस्ते मुनयो गुरुणा सह। मेनिरे क्षेत्रमाहात्म्यं प्रणेमुर्गिरिशं हरम्॥३॥

वहाँ पर मुनियों ने अपने गुरु व्यास जी के साथ ही एक आश्चर्य देखा, जिसे उन्होंने उस क्षेत्र का माहात्म्य माना और गिरीश शिव को प्रणाम किया॥३॥

कश्चिदभ्याजगामेदं शार्दूलो घोररूपधृक्। मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरमुत्तमम्॥४॥

उस समय एक मृगी को खाने के लिए एक भयंकर शार्दूल (=व्याघ्र, चीता) वहाँ कपर्दीश्वर क्षेत्र में आया था॥४॥

तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम्। धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता॥५॥

तब वह भयभीत मन वाली मृगी (आत्मरक्षा हेतु) दौड़ते हुए कपर्दीश्वर शिवलिङ्ग की परिक्रमा करते हुए अत्यन्त व्याकुल (और श्रान्त होने पर) उस व्याघ्र के वश में आ गयी थी॥५॥

तां विदार्य नखैस्तीक्ष्णैः शार्दूलः सुमहाबलः। जगाम देशं विजनं स दृष्ट्वा तान्मुनीश्वरान्॥६॥

तब वह व्याघ्र अपने तीखे नखों (और दाँतों) से उस मृगी को फाड़कर [उसके मांस को खाकर] उन मुनियों को देखकर अन्य निर्जन स्थान को चला गया था॥६॥

मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी। अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा॥७॥

कपर्दीश्वर शिवलिङ्ग के आगे प्राण त्यागते ही वह मृग की बच्ची सूर्य की दीप्ति के समान महाज्वाला जैसी आकाश में दिखायी दी थी॥७॥

त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितशेखरा। वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव संवृता॥८॥

वह तीनों नेत्रों वाली, नीले कण्ठवाली, चन्द्रमा से शोभित शिर वाली बन कर वृषभ में आरूढ़ हुई थी और उसी के समान पुरुषों से घिरी हुई थी॥८॥

पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति खेचरास्तस्य मूर्द्धनि। गणेश्वरः स्वयं भूत्वा न दृष्टस्तत्क्षणात्ततः॥९॥

आकाशगामी [गन्धर्व आदि] उसके मस्तक पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। तभी वह स्वयं गणेश्वर स्वरूप बन कर तत्क्षण अदृश्य हो गयी थी॥९॥

दृष्ट्वा चैव तदाश्चर्यं जैमिनिप्रमुखास्तदा। कपर्दीश्वरमाहात्म्यं पप्रच्छुर्गुरुमच्युतम्॥१०॥

उस आश्चर्य को देखकर व्यास जी के जैमिनी आदि प्रमुख शिष्यों ने उन अच्युत गुरुवर व्यास जी से कपर्दीश्वर के माहात्म्य को पूछा था॥१०॥

तेषां प्रोवाच भगवान्देवाग्रे चोपविश्य सः। कपर्दीशस्य माहात्म्यं प्रणम्य वृषभध्वजम्॥११॥

तब भगवान् व्यास जी ने वृषभध्वज कपर्दीश्वर महादेव को प्रणाम करके उनके समक्ष बैठकर उनका माहात्म्य उन जैमिनि आदि को बतलाया था॥११॥

व्यास उवाच

इदं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम्। पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैः स्तवैः॥१२॥

व्यास जी ने कहा- यह भगवान् शिव का कपर्दीश्वर नामक उत्तम शिवलिङ्ग है। इसका प्रत्यनपूर्वक पूजन करना चाहिए और वैदिक स्तोत्रों से इसकी स्तुति करनी चाहिए॥१२॥

ध्यायतामत्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम्। जायते योगसिद्धिश्च षण्मासेन न संशयः॥१३॥

यहाँ पर शान्तचित्त होकर नियमित रूप से ध्यान करने वाले योगियों के योग की सिद्धि निश्चित रूप से छः मास में हो जाती है॥१३॥

ब्रह्महत्यादिपापानि विनश्यन्त्यस्य पूजनात्। पिशाचमोचने कुण्डे स्नातस्यात्र समीपतः॥१४॥

यहाँ समीप में ही स्थित पिशाचमोचन कुण्ड में स्नान करके इस कपर्दीश्वर शिवलिङ्ग का पूजन करने से ब्रह्महत्यादि पाप विनष्ट हो जाते हैं॥१४॥

अस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्रास्तपस्वी शंसितव्रतः। शङ्कुकर्ण इति ख्यातः पूजयामास शूलिनम्॥१५॥
पुष्पधूपादिभिः स्तोत्रैर्नमस्कारैः प्रदक्षिणैः। जजाप रुद्रमनिशं प्रणवं ब्रह्मरूपिणम्॥१६॥

हे ब्राह्मणो! प्राचीन काल में इस क्षेत्र में शङ्कुकर्ण नामक उत्तम व्रतचर्या वाला तपस्वी ब्राह्मण भगवान् कपर्दीश्वर शिव का नित्य पुष्प, धूप-दीप आदि से पूजन करके स्तोत्र-पाठ, नमस्कार और प्रदक्षिणा किया करता था। वह रात दिन ब्रह्मस्वरूप ओङ्कार का तथा रुद्रमन्त्र (रुद्राष्टाध्यायी) का जप किया करता था॥१५-१६॥

उवास तत्र योगात्मा कृत्वा दीक्षां तु नैष्ठिकीम्। कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुधान्वितम्॥१७॥

वह योगात्मा ब्राह्मण नैष्ठिकी दीक्षा ग्रहण करके वहाँ रहता था। उसने एक बार वहाँ आये हुए एक प्रेत को देखा था, जो कि भूख से व्याकुल था॥१७॥

अस्थिचर्मपिनद्धाङ्गं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः। तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः कृपया परया युतः॥१८॥
प्रोवाच को भवान् कस्माद्देशाद्देशमिमं गतः। तस्मै पिशाचः क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद्वचः॥१९॥
पूर्वजन्मन्यहं विप्रो धनधान्यसमन्वितः। पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः कुटुम्बभरणोत्सुकः॥२०॥

उस प्रेत का शरीर केवल अस्थि (हड्डी) और चर्म (चमड़ा) मात्र से ढका था और वह बार-बार सांस ले रहा था। उसको देखकर वह श्रेष्ठ मुनि शङ्कुकर्ण उस पर परम दयालु होकर यह बोले कि आप कौन हैं और किस देश से यहाँ इस देश में आये हैं? तब भूख से व्याकुल प्रेत ने उस मुनि से यह कहा कि मैं पूर्वजन्म में धन-धान्य सम्पन्न, पुत्रपौत्रादि वाला ब्राह्मण था और सदैव अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण में उत्सुक रहता था॥१८-२०॥

न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा। न कदाचित्कृतं पुण्यमल्पं वा स्वल्पमेव वा॥२१॥

तब मैंने कभी भी देवों, अतिथियों और गायों की पूजा नहीं की थी और कभी भी अल्प (थोड़ा) या अल्पतर पुण्य तक नहीं किया था॥२१॥

एकदा भगवान्रुद्रो गोवृषेश्वरवाहनः। विश्वेश्वरो वाराणस्यां दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः॥२२॥

किन्तु एक बार मैंने वाराणसी में वृषभ वाहन वाले भगवान् विश्वनाथ का दर्शन और उनका स्पर्श करके उनको नमस्कार किया था॥२२॥

तदाचिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागतः। न दृष्टं तन्महाघोरं यमस्य वदनं मुने॥ २३॥

हे मुनि! तदनन्तर अल्प समय पश्चात् ही मेरी मृत्यु हो गयी थी। तब मुझे यमराज का भयानक मुख नहीं देखना पड़ा था॥ २३॥

ईदृशीं योनिमापन्नः पैशाचीं क्षुधयार्दितः। पिपासया तथाऽऽक्रान्तो न जानामि हिताहितम्॥ २४॥

किन्तु अब में इस प्रकार की पिशाच योनि को प्राप्त कर क्षुधा-पिपासा से पीडित हूँ और अपने हित अहित को भी नहीं जान पा रहा हूँ॥ २४॥

यदि कश्चित् समुद्धर्तुमुपायं पश्यसि प्रभो। कुरुष्व तं नमस्तुभ्यं त्वामहं शरणं गतः॥ २५॥

हे प्रभो! आप यदि मेरे उद्धार का कोई उपाय देखते हो तो उसे कर दें। आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ॥ २५॥

इत्युक्तः शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत्। त्वादृशो न हि लोकेऽस्मिन्विद्यते पुण्यकृत्तमः॥ २६॥

यत्त्वया भगवान् पूर्वं दृष्टो विश्वेश्वरः शिवः। संस्पृष्टो वन्दितो भूयः कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि॥ २७॥

ऐसा कहे जाने पर शङ्कुकर्ण ने उस पिशाच से यह कहा कि इस लोक में तुम्हारे समान पुण्य कर्म करने वाला अन्य कोई नहीं है, क्योंकि तुमने पूर्वकाल में भगवान् विश्वनाथ शिव का दर्शन किया है, उनका स्पर्श किया है और उनको प्रणाम किया है। इस भूलोक में तुम्हारे समान पुण्यात्मा अन्य कौन हो सकता है॥ २६-२७॥

तेन कर्मविपाकेन देशमेतं समागतः। स्नानं कुरुष्व शीघ्रं त्वमस्मिन् कुण्डे समाहितः।
येनेमां कुत्सितां योनिं क्षिप्रमेव प्रहास्यसि॥ २८॥

उसी सत्कर्म के फलस्वरूप तुम इस स्थान में आये हो। अब तुम एकाग्रचित्त से इस कुण्ड में स्नान करो, जिससे तुम इस कुत्सित (पिशाच) योनि से शीघ्र मुक्त हो जाओगे॥ २८॥

स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो दयावता देववरं त्रिनेत्रम्।
स्मृत्वा कपर्दीश्वरमीशितारं चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम्॥ २९॥

दयालु मुनि शङ्कुकर्ण के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उस पिशाच ने त्रिलोचन देवाधिदेव परमेश्वर कपर्दीश्वर का स्मरण करके अपने मन को एकाग्र कर उस कुण्ड में स्नान किया था॥ २९॥

तदावगाहान्मुनिसन्निधाने ममार दिव्याभरणोपपन्नः।
अदृश्यतार्कप्रतिमे विमाने शशाङ्कचिह्नाङ्कितचारुमौलिः॥ ३०॥

तब वहाँ स्नान करते ही उस मुनि शङ्कुकर्ण के समीप ही वह पिशाच मृत्यु को प्राप्त होने पर दिव्य आभूषणों को धारण किया हुआ और चन्द्रकला से युक्त मस्तक वाला बनकर सूर्य के समान दीप्तिमान विमान में आरुढ दिखलायी पड़ा था॥ ३०॥

विभाति रुद्रैरभितो दिविस्थैः समावृतो योगिभिरप्रमेयैः।
सबालखिल्यादिभिरेष देवो यथोदये भानुरशेषदेवः॥ ३१॥

आकाश में स्थित रुद्रों तथा अप्रमेय (असीमित, असंख्य) योगियों से चारों ओर से घिरा हुआ, वह

उदय काल में बालखिल्य आदि से घिरे हुए सभी देवों के देव भगवान् सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था॥३१॥

स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसङ्घा नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमालिमिश्रां गन्धर्वविद्याधरकिन्नराद्याः॥३२॥

आकाश में सिद्धों और देवों के समूह उसकी स्तुति कर रहे थे, दिव्य और सुन्दर अप्सराएँ नृत्य कर रही थी तथा गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर आदि उस पर स्निग्ध पुष्पों की वर्षा कर रहे थे॥३२॥

संस्तूयमानोऽथ मुनीन्द्रसङ्घैरवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात्।
समाविशन्मण्डलमेवमग्र्यं त्रयीमयं यत्र विभाति रुद्रः॥३३॥

जब मुनिवृन्द्र उसकी स्तुति कर रहे थे उस समय भगवत् कृपा से उसको अध्यात्म ज्ञान प्राप्त हुआ था। तब वह वेदत्रयी मय (सूर्य) मण्डल में प्रविष्ट हो गया था, जहाँ भगवान् रुद्र प्रकाशित होते हैं॥३३॥

दृष्ट्वा विमुक्तं स पिशाचभूतं मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम्।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेकमग्र्यं प्रणम्य तुष्टाव कपर्दिनं तम्॥३४॥

उस पिशाच की प्रेतयोनि से मोक्ष-प्राप्ति को देखकर वह मुनि शङ्कुकर्ण मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने अद्वितीय कवि रुद्र का ध्यान करके तथा उनको प्रणाम करके उन जटाधारी शिव की स्तुति की थी॥३४॥

शङ्कुकर्ण उवाच

नमामि नित्यं परतः परस्ताद् गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम्।
व्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम्॥३५॥

शङ्कुकर्ण बोले- जो भगवान् शिव नित्य, परात्पर, सबके एकमात्र रक्षक, पुराण पुरुष, योगेश्वर, सबके स्वामी, आदित्य-स्वरूप एवं अग्नि-रूप और वृषभारूढ हैं मैं उनको नित्य प्रणाम करता हूँ और उनकी शरण में जाता हूँ॥३५॥

त्वां ब्रह्मपारं हृदि सन्निविष्टं हिरण्मयं योगिनमादिहीनम्।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविस्थं महामुनिं ब्रह्मपरं पवित्रम्॥३६॥

आप ब्रह्मपार (ब्रह्म से परे) हैं, तथापि भक्तों के हृदय में स्थित हैं, आप हिरण्यमय, योगी, अनादि और द्युलोक में स्थित महामुनि स्वरूप, ब्रह्ममय और पवित्र हैं। मैं आप भगवान् रुद्र की शरण में आता हूँ॥३६॥

सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्रबाहुं तमसः परस्तात्।
त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम्॥३७॥

सहस्रचरणों, नेत्रों, शिरों और सहस्र बाहुओं वाले, अन्धकार से दूर, ब्रह्मपार (ब्रह्म से परे), हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के अधिपति, त्रिनेत्र शिव को मैं प्रणाम करता हूँ॥३७॥

यतः प्रसूतिर्जगतो विनाशो येनावृतं सर्वमिदं शिवेन।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये॥३८॥

जिन शिव के द्वारा जगत् की सृष्टि और विनाश होता है, जिन्होंने इस समस्त सृष्टि को आवृत्त किया है, उन ब्रह्मपार भगवान् ईश्वर को प्रणाम करके मैं उनकी शरण में जाता हूँ॥३८॥

अलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयंप्रभुं चित्प्रतिमैकरुद्रम्।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति॥३९॥

जो अलिङ्ग (निराकार), आलोक (बाह्य प्रकाश) रहित(?), निराकार, स्वयं प्रभावान्, चित्स्वरूप तथा एकमात्र रुद्र-स्वरूप हैं, जिनसे भिन्न अन्य कुछ नहीं हैं, ऐसे ब्रह्मपार परमेश्वर आपको नमस्कार है॥३९॥

यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगाल्लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तद्ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम्॥४०॥

सबीज योग (अर्थात् सविकल्पक समाधि) को त्याग कर (निर्विकल्पक) समाधि में लीन एवं परमार्थ को प्राप्त अर्थात् जीवनमुक्त योगी जन ही जिनका दर्शन कर पाते हैं, ऐसे ब्रह्मपार (ब्रह्म से भी श्रेष्ठ) आपके स्वरूप को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ॥४०॥

न यत्र नामादि विशेषक्लिप्तिर्न संदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम्।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयंभुवं त्वां शरणं प्रपद्ये॥४१॥

जिनका न तो कोई विशेष नाम रूप आदि है, न कोई तृप्ति का विशेष विषय है और न कोई (निश्चित) स्वरूप सबको दृष्टिगत होता है, ऐसे ब्रह्मपार आपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ और आप स्वयंभू की शरण में आता हूँ॥४१॥

यद् वेदवेदाभिरता विदेहं स ब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तद्ब्रह्मपारं प्रणमामि नित्यम्॥४२॥

जिनको वेद के ज्ञाता विद्वान् अनेक रूप में देखते हैं, ऐसे विज्ञानमय और भेदरहित एवं विदेह (निराकार) ब्रह्म नामक अद्वितीय ब्रह्मपार स्वरूप को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ॥४२॥

यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो विवर्तते यं प्रणमन्ति देवाः।
नमामि तं ज्योतिषि संनिविष्टं कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम्॥४३॥

जिनसे प्रधान (=प्रकृति) तथा पुराण पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ है तथा जिनको देवगण (नित्य) प्रणाम करते हैं, आपके उस परम ज्योति में विद्यमान बृहत् कालमय स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ॥४३॥

व्रजामि नित्यं शरणं महेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि॥४४॥

मैं नित्यमेव महेश (महादेव), स्थाणु, गिरीश, पुराण-पुरुष, शिव, हर, चन्द्रमौलि, पिनाकी आदि नामों वाले आपकी शरण में आता हूँ॥४४॥

स्तुत्वैवं शङ्कुकर्णोऽसौ भगवन्तं कपर्दिनम्। पपात दण्डवद्भूमौ प्रोच्चरन्प्रणवं परम्॥४५॥

कपर्दी (जटाजूट धारी) भगवान् शिव की इस प्रकार स्तुति करके शङ्कुकर्ण ने ओङ्कार का उच्चारण करते हुए भूमि में दण्डवत् लेटकर प्रणाम किया॥४५॥

तत्क्षणात्परमं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्। ज्ञानमानन्दमद्वैतं कोटिकालाग्निसन्निभम्॥४६॥

तब वहाँ पर तत्काल प्रलयकालीन अग्नि के समान दीप्तिमान, ज्ञानमय, आनन्दमय, अद्वितीय शिव-लिङ्ग प्रकट हुआ था॥४६॥

शङ्कुकर्णोऽथ स तदा मुनिः सर्वात्मकोऽमलः। निलिल्ये विमले लिङ्गे तदद्भुतमिवाभवत्॥४७॥

तब वह सर्वात्मा स्वरूप निर्मल चित्तवाला (निष्पाप) शङ्कुकर्ण उस निर्मल लिङ्ग में विलीन हो गया था। वह एक अद्भुत घटना थी॥४७॥

एतद्रहस्यमाख्यातं माहात्म्यं च कपर्दिनः। न कश्चिद्वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति॥४८॥

[व्यास जी ने कहा कि] मैंने यह कपर्दीश्वर का रहस्य और माहात्म्य बतलाया है। इस शिवलिङ्ग के माहात्म्य को कोई नहीं जानता। विद्वान् पुरुष भी यदि तमोगुणी हो तो वह यहाँ आकर मूढ बन जाता है॥४८॥

य इमां शृणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम्। भक्तः पापविमुक्तात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥४९॥

जो मनुष्य कपर्दीश्वर शिवलिङ्ग विषयक इस पापनाशक कथा को सुनेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर शिव का सान्निध्य प्राप्त करेगा॥४९॥

यः पठेत् सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम्। प्रातर्मध्याह्नसमये स योगं प्राप्नुयान्नरः॥५०॥

जो मनुष्य नित्य शुद्ध तन मन वाला होकर प्रातःकाल और मध्याह्नकाल में इस महान् ब्रह्मपार स्तोत्र का पाठ करेगा, वह परम योग (शिव-सान्निध्य) को प्राप्त करेगा॥५०॥

इहैव नित्यं वत्स्यामो देवदेवं कपर्दिनम्। द्रक्ष्यामः सततं देवं पूजयामस्त्रिलोचनम्॥५१॥

अब हम लोग नित्य यहीं पर निवास करेंगे और निरन्तर देवाधिदेव कपर्दीश्वर नामक त्रिलोचन शिव का नित्य दर्शन और पूजन करेंगे॥५१॥

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासः शिष्यैः सह महाद्युतिः। उवास तत्र युक्तात्मा पूजयन्वै कपर्दिनम्॥५२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वाराणसीमाहात्म्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

ऐसा कह कर योग-साधक महा तेजस्वी भगवान् व्यास वहीं पर शिष्यों सहित निवास करते हुए कपर्दीश्वर शिव के पूजन में संलग्न रहते थे॥५२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'वाराणसी-माहात्म्य' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्

सूत उवाच

उषित्वा तत्र भगवान् कपर्दीशान्तिके पुनः। ययौ द्रष्टुं मध्यमेशं बहुवर्षगणान् प्रभुः॥१॥

कपर्दीश्वर के निकट बहुत वर्षों तक निवास के अनन्तर वह प्रभु भगवान् व्यास जी मध्यमेश्वर के दर्शन हेतु गये थे॥१॥

तत्र मन्दाकिनीं पुण्यामृषिसङ्घनिषेविताम्। नदीं विमलपानीयां दृष्ट्वा हृष्टोऽभवन्मुनिः॥२॥

वहाँ ऋषियों के समूह द्वारा सेवित एवं निर्मल और पवित्र जल वाली मन्दाकिनी नदी को देखकर वह मुनि व्यास जी परम प्रसन्न हुए थे॥२॥

स तामन्वीक्ष्य मुनिभिः सह द्वैपायनः प्रभुः। चकार भावपूतात्मा स्नानं स्नानविधानवित्॥३॥

स्वभावतः पवित्र आत्मा वाले एवं स्नान-विधान के ज्ञाता कृष्णद्वैपायन प्रभु व्यास जी ने उस नदी को सम्यक् रूप से देखकर अपने साथ आये मुनियों सहित उस नदी में यथाविधि स्नान किया था॥३॥

सन्तर्प्य विधिवद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा। मध्यमेश्वरमीशानमर्चयामास शूलिनम्॥४॥

तब विधि-विधानानुसार देवों, ऋषियों और पितरों का तर्पण करके त्रिशूलधारी मध्यमेश्वर शिव का पूजन किया था॥४॥

ततः पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः। द्रष्टुं समागता रुद्रं मध्यमेश्वरमीश्वरम्॥५॥

तभी सम्पूर्ण शरीर में भस्म लेपन किये हुए शान्त चित्त वाले पाशुपत (शिव-भक्त) मध्यमेश्वर भगवान् शिव के दर्शनार्थ वहाँ पर आये थे॥५॥

ओङ्कारासक्तमनसो वेदाध्ययनतत्पराः। जटिला मुण्डिताश्चापि शुद्धयज्ञोपवीतिनः॥६॥

कौपीनवसनाः केचिदपरे चाप्यवाससः। ब्रह्मचर्यरताः शान्ता दान्ता वै ज्ञानतत्पराः॥७॥

उनका मन ओङ्कार के जप में आसक्त था। वे वेदाध्ययन में तत्पर थे। उनमें से कोई जटाधारी थे तो किसी ने मुण्डन किया हुआ था। वे सभी शुद्ध यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। उनमें से कुछ कौपीन (लंगोट) धारी थे तो कुछ अन्य निर्वस्त्र थे। वे ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, शान्त-स्वभाव, इन्द्रिय-संयमी थे तथा ज्ञानार्जन में संलग्न थे॥६-७॥

दृष्ट्वा द्वैपायनं विप्राः शिष्यैः परिवृतं मुनिम्। पूजयित्वा यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्॥८॥

को भवान् कुत आयातः सह शिष्यैर्महामुने। प्रोचुः पैलादयः शिष्यास्तानृषीनूधर्मभावितान्॥९॥

हे ब्राह्मणो! उन सभी ने शिष्यों से घिरे हुए मुनि कृष्णद्वैपायन व्यास जी को देखकर उनका यथाविधि पूजन करके उनसे यह वचन कहे थे- हे महामुनि! आप कौन हैं और इन शिष्यों सहित कहाँ से आये हैं? तब उन धर्म-भावना से ओत-प्रोत ऋषियों (पाशुपतों) से पैल आदि शिष्यों ने यह कहा॥८-९॥

अयं सत्यवतीसूनुः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः। व्यासः स्वयं हृषीकेशो येन वेदाः पृथक्कृताः॥१०॥

यह सत्यवती के पुत्र कृष्ण द्वैपायन प्रभु व्यास जी हैं, जो साक्षात् हृषीकेश (विष्णु) हैं और जिन्होंने वेदों का विभाजन (ऋक्, यजुष्, साम और अथर्व रूप में) किया है॥१०॥

यस्य देवो महादेवः साक्षाद् देवः पिनाकधृक्। अंशांशेनाभवत्पुत्रो नाम्ना शुक इति प्रभुः॥११॥

पिनाक धनुष को धारण करने वाले देव प्रभु साक्षात् महादेव अपने अंशांश से इनके पुत्र शुक (शुकदेव) रूप में उत्पन्न हुए थे॥११॥

यो वै साक्षान्महादेवं सर्वभावेन शङ्करम्। प्रपन्नः परया भक्त्या यस्य तज्ज्ञानमैश्वरम्॥१२॥

वह (शुकदेव) सर्वथा समर्पण भाव से और परम भक्तिभावपूर्वक भगवान् शिव की शरण में गये हैं और उनको ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ है॥१२॥

ततः पाशुपताः सर्वे ते च हृष्टतनूरुहाः। ऊचुरव्यग्रमनसो व्यासं सत्यवतीसुतम्॥१३॥

तब वे सभी पाशुपत (शिवभक्त) आश्चर्य से रोमाञ्चित और एकाग्रचित्त होकर सत्यवती के पुत्र व्यास जी से यह बोले॥१३॥

भगवन् भवता ज्ञातं विज्ञानं परमेष्ठिनः। प्रसादाद्देवदेवस्य यत्तन्माहेश्वरं परम्॥१४॥

तद्वदास्माकमव्यक्तं रहस्यं गुह्यमुत्तमम्। क्षिप्रं पश्येम तं देवं श्रुत्वा भगवतो मुखात्॥१५॥

हे भगवान् देवाधिदेव शिव की कृपा से परमेष्ठी परम माहेश्वर विषयक जो विज्ञान है, उसे आपने ज्ञात कर लिया है। कृपया आप वह गोपनीय और अव्यक्त उत्तम रहस्यमय ज्ञान हमें भी बतलाइए॥ आपके मुख से सुन कर हम भी शीघ्र उन महादेव का दर्शन कर सकेंगे॥१४-१५॥

विसर्जयित्वा ताञ्छिष्यान् सुमन्तुप्रमुखांस्तदा। प्रोवाच तत्परं ज्ञानं योगिभ्यो योगवित्तमः॥१६॥

तब योग-विद्या के ज्ञाताओं में श्रेष्ठतम व्यास जी ने अपने सुमन्तु आदि शिष्यों को विदा करके वहाँ आये हुए उन योगियों को परम ज्ञान का उपदेश दिया था॥१६॥

तत्क्षणादेव विमलं सम्भूतं ज्योतिरुत्तमम्। लीनास्तत्रैव ते विप्राः क्षणादन्तरधीयत॥१७॥

तब वहाँ तत्क्षण एक उत्तम कोटि की उज्ज्वल ज्योति प्रकट हुई थी और उसमें वे सभी [पाशुपत] विप्र क्षण भर में विलीन हो गये थे॥१७॥

ततः शिष्यान् समाहृत्य भगवान् ब्रह्मवित्तमः। प्रोवाच मध्यमेशस्य माहात्म्यं पैलपूर्वकान्॥१८॥

तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् व्यास जी ने अपने पैल, सुमन्तु आदि शिष्यों को बुलाकर उनको मध्यमेश्वर का माहात्म्य बतलाया था॥१८॥

अस्मिन् स्थाने स्वयं देवो देव्या सह महेश्वरः। रमते भगवान्नित्यं रुद्रैश्च परिवारितः॥१९॥

व्यास जी ने कहा कि इस स्थान में स्वयं भगवान् शिव देवी पार्वती और रुद्रगणों सहित नित्य रमण (विहार) करते हैं॥१९॥

अत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः। उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुपतैर्वृतः॥२०॥

पूर्वकाल में यहाँ पर देवकी के पुत्र विश्वात्मा हृषीकेश भगवान् कृष्ण ने एक वर्ष तक निरन्तर पाशुपतों के साथ निवास किया था॥२०॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राराधनतत्परः। आराधयन् हरिः शम्भुं कृत्वा पाशुपतं व्रतम्॥२१॥

वह भगवान् कृष्ण सम्पूर्ण शरीर में भस्मलेपन कर पाशुपत व्रत का पालन करते हुए भगवान् शिव की आराधना करते रहे थे॥२१॥

तस्य वै बहवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः। लब्ध्वा तद्वचनाज्ज्ञानं दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥२२॥

उन भगवान् कृष्ण के बहुत से शिष्य ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वहाँ रह रहे थे। उन्होंने भी भगवान् कृष्ण के उपदेश से ज्ञान प्राप्त करके भगवान् महेश्वर शिव का दर्शन किया था॥२२॥

तस्य देवो महादेवः प्रत्यक्षं नीललोहितः। ददौ कृष्णस्य भगवान्वरदो वरमुत्तमम्॥२३॥

येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं मद्भक्ता विधिपूर्वकम्। तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मय॥२४॥

देवाधिदेव नीललोहित महादेव शिव ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर देते हुए यह कहा था कि हे जगन्मय! मेरे जो भक्त विधिपूर्वक भगवान् कृष्ण की पूजा करेंगे, उनको ईश्वर विषयक परम ज्ञान प्राप्त होगा॥२३-२४॥

त्वमीशोऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनैः। भविष्यसि न सन्देहो मत्प्रसादात् द्विजातिभिः॥२५॥

मेरी कृपा से मेरे भक्त द्विजातियों के द्वारा आप भगवान् कृष्ण का निःसन्देह पूजन और ध्यान किया जायेगा॥२५॥

ये च द्रक्ष्यन्ति देवेशं ध्यात्वा देवं पिनाकिनम्। ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषामाशु विनश्यति॥२६॥

पिनाक धनुष को धारण करने वाले देव शिव का ध्यान करके जो भक्त देवेश्वर कृष्ण का दर्शन करेंगे। उनके ब्रह्महत्या आदि पाप शीघ्र नष्ट हो जायेंगे॥२६॥

प्राणांस्त्यजन्ति ये विप्राः पापकर्मरता अपि। ते यान्ति परमं स्थानं नात्र कार्या विचारणा॥२७॥

पाप-कर्मों को करने में लगे हुए जो भी विप्र यहाँ प्राण-त्याग करेंगे वे भी परम पद को प्राप्त करेंगे। इसमें कोई संदेह का विचार नहीं करना चाहिए॥२७॥

धन्याः सन्ति तु ते विप्रा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः। अर्चयन्ति महादेवं मध्यमेश्वरमुत्तमम्॥२८॥

वे विप्र धन्य हैं जो मन्दाकिनी में उदक-स्पर्श या स्नान करके परमोत्तम मध्यमेश्वर महादेव का पूजन करते हैं॥२८॥

स्नानं दानं तपः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणं त्विह। एकैकशः कृतं विप्राः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥२९॥

हे विप्रो! यहाँ पर किया गया स्नान, दान, तप श्राद्ध और पिण्डदान आदि प्रत्येक कृत्य सात पीढ़ी तक के कुल को पवित्र (पाप मुक्त) कर देता है॥२९॥

सन्निहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे। यत्फलं लभते मर्त्यस्तस्माद्दशगुणं त्विह॥३०॥

सूर्य के राहु-ग्रस्त होने पर (ग्रहण काल में) कुरुक्षेत्रस्थ संनिहती तीर्थ में स्नान का जो फल मिलता है, उसका दशगुना पुण्यफल मनुष्य को यहाँ स्नान करने पर प्राप्त होता है॥३०॥

एवमुक्त्वा महायोगी मध्यमेशान्तिके प्रभुः। उवास सुचिरङ्कालं पूजयन् वै महेश्वरम्॥३१॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वाराणसीमाहात्म्यं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

ऐसा कहकर महायोगी भगवान् व्यास जी मध्यमेश्वर के समीप बहुत समय तक निवास करते हुए भगवान् शिव की पूजा करते रहे थे॥३१॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'वाराणसी-माहात्म्य' नामक चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्

सूत उवाच

ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च। जगाम भगवान्व्यासो जैमिनिप्रमुखैर्वृतः॥१॥
प्रयागं परमं तीर्थं प्रयागादधिकं शुभम्। विश्वरूपं तथा तीर्थं कालतीर्थमुत्तमम्॥२॥
आकाशाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैवार्षभं परम्। स्वर्ल्लीनञ्च महातीर्थं गौरीतीर्थमुत्तमम्॥३॥
प्राजापत्यं परं तीर्थं स्वर्गद्वारं तथैव च। जम्बुकेश्वरमित्युक्तं धर्माख्यं तीर्थमुत्तमम्॥४॥
गयातीर्थं महातीर्थं तीर्थं चैव महानदी। नारायणं परं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम्॥५॥
ज्ञानतीर्थं परं गुह्यं वाराहं तीर्थमुत्तमम्। यमतीर्थं महापुण्यं तीर्थं संवर्तकं परम्॥६॥
अग्नितीर्थं द्विजश्रेष्ठाः कालकेश्वरमुत्तमम्[1]। नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च॥७॥
पर्वताख्यं महापुण्यं मणिकर्णमनुत्तमम्। घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थञ्च पितामहम्॥८॥
गङ्गातीर्थन्तु देवेशं तथा तत्तीर्थमुत्तमम्। कापिलञ्चैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्॥९॥

तदनन्तर भगवान् व्यास जी अपने जैमिनि आदि सभी प्रमुख शिष्यों सहित वाराणसी में सभी गुह्य क्षेत्रों, तीर्थों और देवालयों (धामों) में गये थे। प्रयाग सर्वोत्तम तीर्थ है और उससे भी अधिक शुभ विश्वरूप नामक तीर्थ, अति उत्तम कालतीर्थ तथा आकाश नामक महातीर्थ और आर्षभ नामक परम तीर्थ, स्वर्लीन नामक महातीर्थ, अति उत्तम गौरीतीर्थ, प्राजापत्य तीर्थ, स्वर्गद्वार नामक तीर्थ, जम्बुकेश्वर तीर्थ, धर्म नामक (संभवतः धर्मारण) तीर्थ, गया तीर्थ, महातीर्थ, महानदी नामक तीर्थ, नारायण नामक परम तीर्थ, वायुतीर्थ, परम गोपनीय ज्ञानतीर्थ, वाराह नामक उत्तम तीर्थ, महापुण्यप्रद यमतीर्थ, संवर्तक तीर्थ, अग्नितीर्थ, उत्तम कालकेश्वर (या कलशेश्वर) तीर्थ, नागतीर्थ, सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ, पर्वत नामक महापवित्र तीर्थ, अति उत्तम

१. कलशेश्वर

मणिकर्णिका तीर्थ, घटोत्कच नामक श्रेष्ठ तीर्थ, श्रीतीर्थ, पितामह तीर्थ, गङ्गा-तीर्थ, देवेश नामक उत्तम तीर्थ, कापिल तीर्थ, सोमेश तीर्थ और उत्तम ब्रह्मतीर्थ में भी वे गये थे॥१-९॥

यत्र लिङ्गं पूरानीय स्नातुं ब्रह्मा यदागतः। तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तल्लिङ्गमैश्वरम्॥१०॥

प्राचीन काल में ब्रह्मा जब एक लिङ्ग यहाँ पर लाकर गङ्गा में स्नान करने गये थे तभी भगवान् विष्णु ने उस शिवलिङ्ग को यहाँ (ब्रह्मतीर्थ में) प्रतिष्ठापित कर दिया था॥१०॥

ततः स्नात्वा समागत्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम्। मयानीतमिदं लिङ्गं कस्मात्स्थापितवानसि॥११॥

तब स्नान करके वहाँ आकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा कि मेरे द्वारा लाये गये लिङ्ग को आपने क्यों स्थापित किया है॥११॥

तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा यतः। तस्मात्प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तव भविष्यति॥१२॥

तब विष्णु ने उन ब्रह्मा से कहा कि भगवान् शिव में मेरी आपसे भी अधिक दृढ़ भक्ति है। अतः इस लिङ्ग को मैंने प्रतिष्ठापित किया है। यह शिवलिङ्ग आपके ही नाम से विख्यात होगा॥१२॥

भूतेश्वरं तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम्। गन्धर्वतीर्थं सुशुभं वाह्नेयं तीर्थमुत्तमम्॥१३॥
दौर्वासिकं व्योमतीर्थं चन्द्रतीर्थं द्विजोत्तमाः चित्राङ्गदेश्वरं पुण्यं पुण्यं विद्याधरेश्वरम्॥१४॥
केदारं तीर्थमुग्राख्यं कालञ्जरमनुत्तमम्। सारस्वतं प्रभासञ्च खेटकर्णं हरं शुभम्॥१५॥
लौकिकाख्यं महातीर्थं तीर्थञ्चैव हिमालयम्। हिरण्यगर्भं गोप्रख्यं तीर्थञ्चैव वृषध्वजम्॥१६॥
उपशान्तं शिवं चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम्। त्रिलोचनं महातीर्थं लोलार्कञ्चोत्तराह्वयम्॥१७॥
कपालमोचनं तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशनम्। शुक्रेश्वरं महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम्॥१८॥
एवमादीनि तीर्थानि प्राधान्यात्कथितानि तु। न शक्या विस्तराद्वक्तुं तीर्थसंख्या द्विजोत्तमाः॥१९॥

[उसके आगे] भूतेश्वरतीर्थ, धर्मतीर्थ, गन्धर्वतीर्थ, अग्नितीर्थ, दौर्वासिक (दुर्वासा) तीर्थ, व्योमतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, पवित्र चित्राङ्गदेश्वर तीर्थ, विद्याधरेश्वर तीर्थ, केदारतीर्थ, उग्र तीर्थ, उत्तम कालञ्जर तीर्थ, सारस्वत तीर्थ, प्रभास, खेटकर्ण या भद्रकर्ण, हरतीर्थ, लौकिक महातीर्थ, हिमालय तीर्थ, हिरण्यगर्भ तीर्थ, गोप्रख्य तीर्थ, वृषध्वजतीर्थ, उपशान्त तीर्थ, शिवतीर्थ, उत्तम व्याघ्रेश्वर तीर्थ, त्रिलोचन महातीर्थ, लोलार्क तीर्थ, उत्तर नामक तीर्थ, ब्रह्महत्या विनाशक कपालमोचन तीर्थ; शुक्रेश्वर नामक महापवित्र तीर्थ और आनन्दपुर नामक उत्तम तीर्थ आदि प्रधानता से कहे गये है। हे श्रेष्ठ द्विजो! तीर्थों की संख्या का विस्तार से वर्णन नहीं किया जा सकता॥१३-१९॥

तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य पिनाकिनम्। उपोष्य तत्र तत्रासौ पाराशर्यो महामुनिः॥२०॥
तर्पयित्वा पितॄन्देवान् कृत्वा पिण्डप्रदानकम्। जगाम पुनरेवापि यत्र विश्वेश्वरः शिवः॥२१॥

पराशर के पुत्र महामुनि व्यास जी ने उन सभी तीर्थों में स्नान करके भगवान् शिव की पूजा कर उपवास करके पितरों और देवों का तर्पण कर पिण्डदान किया और तब पुनः वह विश्वेश्वर शिव के धाम को गये थे॥२०-२१॥

स्नात्वाभ्यर्च्य महालिङ्गं शिष्यैः सह महामुनिः। उवाच शिष्यान्धर्मात्मा यथेष्टं गन्तुमर्हथ॥२२॥

तब महामुनि धर्मात्मा व्यास जी ने शिष्यों के साथ स्नान करके महान् विश्वेश्वर लिङ्ग का पूजन किया और तब उन शिष्यों से कहा अब तुम लोग अपनी इच्छानुसार जहां कहीं भी जा सकते हों॥२२॥

ते प्रणम्य महात्मानं जग्मुः पैलादयो द्विजाः। वासञ्च तत्र नियतो वाराणस्यां चकार सः॥२३॥

तब वे पैल आदि ब्राह्मण महात्मा व्यास जी को प्रणाम करके वहाँ से चले गये थे और वह व्यास जी नियमित रूप से वाराणसी में निवास करने लगे थे॥२३॥

शान्तो दान्तस्त्रिषवणं स्नात्वाऽभ्यर्च्य पिनाकिनम्। भैक्षाहारो विशुद्धात्मा ब्रह्मचर्यपरायणः॥२४॥

वह व्यास जी शान्त, जितेन्द्रिय, विशुद्ध आत्मा वाले और ब्रह्मचर्य पालन करते हुए तथा त्रिकाल स्नान एवं भगवान् शिव की पूजा करके भिक्षाटन करके भोजन करते थे॥२४॥

कदाचित्तत्र वसता व्यासेनामिततेजसा। भ्रममाणेन भिक्षा वै नैव लब्धा द्विजोत्तमाः॥२५॥

हे द्विजोत्तमो! एक बार वहाँ निवास करते हुए अमित तेजस्वी व्यास जी को भिक्षाटन हेतु भ्रमण करने पर भी भिक्षा नहीं मिली॥२५॥

ततः क्रोधात् मतिश्चक्रे नराणामिह वासिनाम्। विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्विहीयते॥२६॥

तब क्रोधित होकर उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं यहाँ के निवासी सभी मनुष्यों के लिए ऐसा विघ्न उपस्थित करूँगा जिससे कि उन सभी की सिद्धि नष्ट हो जायेगी॥२६॥

तत्क्षणात्सा महादेवी शङ्कराधर्शरीरिणी। प्रादुरासीत्स्वयं प्रीत्या वेषं कृत्वा तु मानुषम्॥२७॥
भो भो व्यास महाबुद्धे शप्तव्या न त्वया पुरी। गृहाण भिक्षां मत्तस्त्वमुक्त्वैवं प्रददौ शिवा॥२८॥

तभी वहाँ पर उसी क्षण भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी पार्वती स्वयं मनुष्य वेष धारण करके प्रकट हो गयी थी। उन शिवा पार्वती ने कहा- हे महाबुद्धिमान् व्यास! आप इस पुरी [के निवासियों] को शाप मत दीजिए। आप मुझसे भिक्षा ग्रहण करें। ऐसा कहकर पार्वती ने उनको भिक्षा प्रदान की थी॥२७-२८॥

उवाच च महादेवी क्रोधनस्त्वं यतो मुने। इह क्षेत्रे न वस्तव्यं कृतघ्नोऽसि यतः सदा॥२९॥

और तब महादेवी पार्वती ने व्यास जी से कहा हे मुनि! आप क्रोधी और कृतघ्न भी हैं। अतः आपको सदैव इस वाराणसी क्षेत्र में नहीं रहना चाहिए॥२९॥

एवमुक्तः स भगवानुध्यानादुज्ञात्वा परां शिवाम्। उवाच प्रणतो भूत्वा स्तुत्वा च प्रवरैः स्तवैः॥३०॥
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं देहि शाङ्करि। एवमस्त्वित्यनुज्ञाय देवी चान्तरधीयत॥३१॥

ऐसा कहे जाने पर उन भगवान् व्यास जी ने ध्यान लगाकर उन परादेवी शिवा-पार्वती को पहचान लिया और उनको प्रणाम करके श्रेष्ठ स्तोत्रों से उनकी स्तुति करके यह कहा कि हे शङ्कर प्रिये! मुझे चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि को वाराणसी क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति प्रदान करें। तब 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कह कर वह देवी अन्तर्धान हो गयी थी॥३०-३१॥

एवं स भगवानुव्यासो महायोगी पुरातनः। ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्याथ पार्श्वतः॥३२॥

इस प्रकार वह पुरातन पुरुष महायोगी भगवान् व्यास जी वाराणसी क्षेत्र के सभी गुणों को ज्ञात करके उस पुरी के पास में (नगर के पूर्व की ओर गंगा नदी के पार जाकर) निवास करने लगे थे॥३२॥

एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं सेवन्ति पण्डिताः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेत्नरः॥ ३३॥

इस प्रकार वहाँ व्यास जी को [वाराणसी के निकट] विद्यमान जानकर पण्डित-जन काशी क्षेत्र का सेवन करते हैं। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को समग्र प्रयास करके वाराणसी में निवास करना चाहिए॥ ३३॥

सूत उवाच

यः पठेदविमुक्तस्य माहात्म्यं शृणुयादथ। श्रावयेद्वा द्विजान्शान्तान् स याति परमां गतिम्॥ ३४॥

सूत जी बोले- जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को पढ़ेगा या सुनेगा अथवा शान्त स्वभाव वाले द्विजातियों को सुनायेगा, वह परम गति को प्राप्त करेगा॥ ३४॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये रात्रावहनि वा द्विजाः। नदीनां चैव तीरेषु देवतायतनेषु॥ ३५॥
ज्ञात्वा समाहितमनाः कामक्रोधविवर्जितः। जपेदीशं नमस्कृत्य स याति परमां गतिम्॥ ३६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वाराणसीमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥वाराणसीमाहात्म्यं समातम्॥

हे द्विजो! जो व्यक्ति श्राद्ध में या देवकार्य में, रात में या दिन में, नदियों के तट में या देवालयों में एकाग्र मन वाला होकर और कामक्रोध आदि से रहित होकर भगवान् शिव को प्रणाम करके इस काशी-माहात्म्य का पाठ करेगा, वह परम गति को प्राप्त करेगा॥ ३५-३६॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में वाराणसी-माहात्म्य-वर्णन में पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम्

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत्समुदीरितम्। इदानीञ्च प्रयागस्य माहात्म्यं ब्रूहि सुव्रत॥ १॥

ऋषियों ने कहा- हे सुव्रत सूत जी! आपने अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को सम्यक् रूप से बतलाया है। अब आप प्रयाग का माहात्म्य बतलायें॥ १॥

यानि तीर्थानि तत्रैव विश्रुतानि महान्ति वै। इदानीं कथयास्माकं सूत सर्वार्थविद्भवान्॥ २॥

हे सूत! आप सब विषयों को जानते हैं। अतः वहाँ (प्रयाग में) जितने भी महान् और प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उनको हमें बतलाइए॥ २॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे विस्तरेण ब्रवीमि वः। प्रयागस्य च माहात्म्यं यत्र देवः पितामहः॥ ३॥

सूत जी बोले- आप सभी ऋषि सुनें। मैं आप लोगों को प्रयाग का माहात्म्य विस्तार से बतलाता हूँ, जहाँ पितामह देव ब्रह्मा भी [निवास करते] हैं॥३॥

मार्कण्डेयेन कथितं कौन्तेयाय महात्मने। यथा युधिष्ठिरायैतत् तद्वक्ष्ये भवतामहम्॥४॥

मार्कण्डेय मुनि ने कुन्ती के पुत्र महात्मा युधिष्ठिर को जो कहा था, वही मैं आप लोगों को बतलाता हूँ॥४॥

निहत्य कौरवान् सर्वान्भ्रातृभिः सह पार्थिवः। शोकेन महताविष्टो मुमोह स युधिष्ठिरः॥५॥

अपने भाइयों के साथ मिल कर युद्ध में सभी कौरवों को मारने के बाद युधिष्ठिर अत्यन्त शोकाकुल होकर मोहग्रस्त हो गये थे॥५॥

अचिरेणाथ कालेन मार्कण्डेयो महातपाः। सम्प्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे स तिष्ठति॥६॥

तब अल्पकाल पश्चात् महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि हस्तिनापुर में आकर राजमहल के द्वार पर पहुँचे थे॥६॥

द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञे कथितवान् द्रुतम्। मार्कण्डेयो द्रष्टुमिच्छंस्त्वामास्ते द्वार्यसौ मुनिः॥७॥

उनको देखकर द्वारपाल ने भी शीघ्र जाकर राजा युधिष्ठिर से कहा कि मुनिवर मार्कण्डेय आपके दर्शन हेतु द्वार पर आये हैं॥७॥

त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमेत्याह सत्वरम्। द्वारमभ्यागतस्येह स्वागतं ते महामुने॥8॥

तब युधिष्ठिर ने भी द्रुतगति से शीघ्र द्वार तक जाकर कहा- हे महामुनि! मेरे द्वार में आप अभ्यागत (अतिथि) का स्वागत है॥८॥

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्। अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि तुष्टे सदा मुने॥९॥

आज मेरा जन्म सफल हो गया है, आज मेरे कुल का उद्धार हो गया है। हे मुनि! आपके सन्तुष्ट होने से मेरे पितर भी सन्तुष्ट हो गये हैं॥९॥

सिंहासनमुपस्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः। युधिष्ठिरो महात्मानं पूजयामास तं मुनिम्॥१०॥

तब युधिष्ठिर ने उन महात्मा मुनि को सिंहासन पर बैठाकर उनका चरण-प्रक्षालन और पूजन आदि करके उनको सम्मानित किया था॥१०॥

मार्कण्डेयस्ततस्तुष्टः[१] प्रोवाच स युधिष्ठिरम्। किमर्थं मुह्यसे विद्वन् सर्वं ज्ञात्वा समागतः॥११॥

तब प्रसन्न होकर मार्कण्डेय जी ने युधिष्ठिर से कहा- हे विद्वान् राजा! आप क्यों मोहग्रस्त हो रहे हो? मैं सब कुछ जानकर ही यहाँ आया हूँ॥११॥

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसाब्रवीत्। कथयस्व समासेन येन मुञ्चामि किल्बिषम्॥१२॥

तब युधिष्ठिर ने उनको नत मस्तक होकर प्रणाम करके कहा कि आप संक्षेप में वह उपाय बतलायें जिससे कि मैं पाप-मुक्त हो सकूं॥१२॥

निहता बहवो युद्धे पुमांसोऽनपराधिनः। अस्माभिः कौरवैः सार्द्धं प्रसङ्गान्मुनिसत्तम॥१३॥

१. मार्कण्डेयस्तु संपृष्टः

हे मुनिवर! हमने कौरवों के साथ युद्ध में संयोगवश बहुत से निरपराध मनुष्यों का वध किया है॥१३॥

येन हिंसासमुद्भूताज्जन्मान्तरकृतादपि। मुच्यते पातकादद्य तद्भवानूवक्तुमर्हति॥१४॥

आप वह [उपाय] बतलाइए जिससे कि हिंसा जनित पाप से तथा पूर्वजन्म में किये गये पाप से मुक्ति मिल सके॥१४॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाभाग यन्मां पृच्छसि भारत। प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पापनाशनम्॥१५॥
तत्र देवो महादेवो रुद्रोऽवात्सीन्नरेश्वर। समास्ते भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भूः सह दैवतैः॥१६॥

मार्कण्डेय जी बोले- हे भरत के वंशज! हे राजन्! जो आपने पूछा है, उसे सुनो। मनुष्यों के लिए पापनाशक तीर्थ प्रयाग में जाना ही श्रेयस्कर है। हे राजन्! वहाँ भगवान् महादेव रुद्र ने निवास किया था। सभी देवों सहित स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा भी वहाँ निवास करते हैं॥१५-१६॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रयागगमने फलम्। मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानाञ्चैव किं फलम्॥१७॥

युधिष्ठिर बोले- हे भगवान्! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि प्रयाग की तीर्थ यात्रा का क्या फल होता है? वहाँ पर मृत्यु होने पर क्या गति होती है और वहाँ स्नान करने वालों को क्या फल मिलता है?॥१७॥

ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां तु किं फलम्। भवतो विदितं ह्येतत्तन्मे ब्रूहि नमोऽस्तु ते॥१८॥

जो मुनष्य प्रयाग में निवास करते हैं, उनको क्या फल मिलता है? यह भी बतलाइए। आपको यह सब विदित है। आप यह सब बतलाइए। आपको नमस्कार है॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स प्रयागस्नानजं फलम्। पुरा महर्षिभिः सम्यक् कथ्यमानं मया श्रुतम्॥१९॥

मार्कण्डेय जी बोले- हे वत्स! प्रयाग में स्नान का जो फल मिलता है, वह मैं तुमसे कहूँगा। प्राचीन काल में महर्षियों के द्वारा जो कहा गया था, उसे मैंने अच्छी तरह सुना था॥१९॥

एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥२०॥

यह प्रयाग प्रजापति का क्षेत्र है और तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। यहाँ स्नान करके लोग स्वर्ग में जाते हैं और जिनकी मृत्यु यहाँ होती है, उनका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् उनको मोक्ष प्राप्त होता है॥२०॥

तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः। बहूनि तत्र तीर्थानि सर्वपापापहानि तु॥२१॥

वहाँ (प्रयाग में) ब्रह्मा आदि देवता एक संग में रह कर [वहाँ के निवासियों की] रक्षा करते हैं। वहाँ बहुत से तीर्थ हैं, जो सभी पापों के नाशक हैं॥२१॥

कथितुं नेह शक्नोमि बहुवर्षशतैरपि। संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्येह कीर्तनम्॥२२॥

उन तीर्थों का पूरा वर्णन मैं सौ वर्षों तक भी नहीं कर सकता हूँ। मैं यहाँ संक्षेप में ही प्रयाग की महिमा का वर्णन करूंगा॥२२॥

षष्टिर्धनुः सहस्राणि तानि रक्षन्ति जाह्नवीम्। यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः॥ २३॥

वहाँ साठ हजार धनुष गंगा की रक्षा करते हैं और सात अश्वों के वाहन वाले भगवान् सूर्य सदैव यमुना की रक्षा करते हैं॥ २३॥

प्रयागे तु विशेषेण स्वयं वसति वासवः। मण्डलं रक्षति हरिः सर्वदेवैश्च संयुतः[1]॥ २४॥

प्रयाग में विशेष रूप से देवराज इन्द्र स्वयं निवास करते हैं। सभी देवों सहित भगवान् विष्णु समस्त प्रयाग मण्डल की रक्षा करते हैं॥ २४॥

न्यग्रोधं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः। स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्।
स्वकर्मणावृता लोका नैव गच्छन्ति तत्पदम्॥ २५॥

अपने हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले भगवान् महेश्वर शिव वहाँ वट वृक्ष की रक्षा करते हैं। सभी पापों का हरण (नाश) करने वाले उस स्थान की रक्षा सभी देवता करते हैं। अपने पापकर्मों से आवृत्त (तात्पर्य यह कि विकृत बुद्धि वाले) मनुष्य उस स्थान पर नहीं जा पाते हैं॥ २५॥

स्वल्पमल्पतरं पापं यस्य चास्ति नराधिप। प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम्॥ २६॥

हे राजन्! प्रयाग का स्मरण करने वाले मनुष्य का अल्प या अल्पतर पाप जो भी हो वह सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है॥ २६॥

दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि। मृत्तिकालेपनाद्वापि[2] नरः पापात्प्रमुच्यते॥ २७॥

उस प्रयाग तीर्थ के दर्शन से, नामकीर्तन से अथवा वहाँ की मिट्टी का तिलक लगाने या शरीर में उसका लेपन करने से भी मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है॥ २७॥

पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी। प्रयागं विशतः पुंसः पापं नश्यति तत्क्षणात्॥ २८॥

हे राजन्! प्रयाग में पाँच कुण्ड हैं, जिनके मध्य से गंगा प्रवाहित होती है। प्रयाग में प्रवेश करते ही मनुष्य का पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है॥ २८॥

योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः। अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम्॥ २९॥

हजारों योजन दूर से भी जो मनुष्य गंगा का स्मरण करता है, वह दुष्कृतकर्मा (पापी) होने पर भी परम गति को प्राप्त करता है॥ २९॥

कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति। तथोपस्पृश्य राजेन्द्र सुरलोके महीयते॥ ३०॥

गंगा का नाम कीर्तन करने पर मनुष्य पाप-मुक्त हो जाता है, उसका दर्शन करने से जीवन में कल्याण होता है और उसमें आचमन [और स्नान] करने से स्वर्गलोक में जाकर सम्मानित होता है॥ ३०॥

पितृणां तारकञ्चैव सर्वपापप्रणाशनम्। यैः प्रयागे कृतो वास उत्तीर्णो भवसागरः॥ ३१॥

प्रयाग में स्नान एवं तर्पण आदि धर्मकृत्यों से पितरों का तारण (उद्धार) होता है और सभी पापों का प्रशमन (नाश) होता है। जो मनुष्य प्रयाग में निवास करते हैं, वे भवसागर को पार कर जाते हैं॥ ३१॥

व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः। गङ्गायमुनमासाद्य त्यजेत्प्राणान्प्रयत्नतः।

१. सम्मितमुं, २. लम्भनाद्वापि

ईप्सिताँल्लभते कामानूवदन्ति मुनिपुङ्गवाः॥ ३ २॥

जो मनुष्य व्याधि-ग्रस्त, दीन-हीन या क्रुद्ध हो वह प्रत्यन पूर्वक गङ्गा-यमुना के संगम में जाकर प्राण त्याग करता है तो उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है॥ ३ २॥

दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैर्भानुवर्णिभः सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः॥ ३ ३॥
वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणः। गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते॥ ३ ४॥

वह अग्नि में प्रतप्त स्वर्ण के समान वर्ण वाले एवं सूर्य के समान दीप्तिमान और सभी रत्नों से जटित तथा नाना प्रकार के ध्वजों-पताकाओं से सुसज्जित विमानों में सुन्दर महिलाओं (अप्सराओं) के साथ शुभलक्षणों से युक्त होकर आनन्दित होता है। उसे निद्रा से गीतों और वाद्यों की ध्वनि से जगाया जाता है॥ ३ ३-३ ४॥

यावन्न स्मरते जन्म तावत्स्वर्गे महीयते। तस्मात्स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा नरोत्तम॥ ३ ५॥
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले। तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात्तत्र गच्छति॥ ३ ६॥

जब तक वह मनुष्य योनि में पुनर्जन्म लेने के विषय में स्मरण (अर्थात् विचार) नहीं करता तब तक वह स्वर्ग में ही सम्मान सहित रहता है। हे नरोत्तम युधिष्ठिर! पूर्वजन्म के पुण्यक्षीण होने (पुण्यकर्मों की अवधि समाप्त हो जाने) के बाद स्वर्ग से पतन होने पर वह स्वर्ण एवं रत्नों से युक्त समृद्ध कुल में जन्म प्राप्त करता है और उसी तीर्थराज प्रयाग का स्मरण करता है और उसका स्मरण होने पर पुनः वहाँ जाता है॥ ३ ५-३ ६॥

देशे वा यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृहे। प्रयागं स्मरमाणस्तु यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ ३ ७॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुङ्गवाः। सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी॥ ३ ८॥
ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति। स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे॥ ३ ९॥
मोदते मुनिभिः सार्धं स्वकृतेनेह कर्मणा। सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते देवदानवैः॥ ४ ०॥

मनुष्य अपने देश में हो या विदेश में, घर में हो या वन में यदि प्रयागराज का स्मरण करके प्राण त्याग करता है तो वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, ऐसा मुनिवरों का कथन है। जहाँ के वृक्ष मनुष्यों को इच्छानुकूल फल देते हैं और जहाँ की भूमि स्वर्णमयी है और जहाँ ऋषि, मुनि और सिद्धजन रहते हैं, वहाँ वह जाता है। वह अपने शुभ/पुण्य कर्मों के फलस्वरूप सहस्रों स्त्रियों से युक्त मन्दाकिनी नदी के तट पर मुनियों के साथ आनन्द का अनुभव करता है। वहाँ वह सिद्ध चारण और गन्धर्वों एवं देवों तथा दानवों के द्वारा भी पूजित होता है॥ ३ ७-४ ०॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्। ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः॥ ४ १॥
गुणवानूवृत्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः[१]। कर्मणा मनसा वाचा सत्ये धर्मे प्रतिष्ठितः॥ ४ २॥

तदनन्तर स्वर्ग से धरती में आकर पुनर्जन्म में जम्बूद्वीप का अधिपति (सम्राट्) बनता है और शुभ कर्मों के चिन्तन और उन शुभ कर्मों को करने से पुनः पुनः जन्म लेकर सद्गुण सम्पन्न और सदाचारी होता

१. भवतीत्यनुशुश्रुमं

है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह मन, वचन और कर्म से सत्य और धर्म के पालन में तत्पर रहता है॥४१-४२॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु ग्रामं[1] प्रयच्छति। सुवर्णमथ मुक्तां वा तथैवान्यत्परिग्रहम्॥४३॥
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताऽभ्यर्चनेऽपिवा[2]। निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तत्फलमश्नुते॥४४॥

गङ्गा-यमुना के मध्य (प्रयाग) क्षेत्र में जो मनुष्य अपने निजी कार्य हेतु या पितृकार्य में या देवपूजा में ग्रामदान या स्वर्ण या मोती या अन्य किसी वस्तु का दान ग्रहण करता है, वह जब तक उस दान में प्राप्त वस्तु का भोग करता है, तब तक उसे वहाँ तीर्थ का कोई फल नहीं मिलता है॥४३-४४॥

अतस्तीर्थे न गृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च। निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमत्तो द्विजो भवेत्॥४५॥

अतः तीर्थों और देवालय आदि पवित्र धामों में और ग्रहण आदि के सभी निमित्तों के लिए भी दिया जाने वाला दान नहीं लेना चाहिए। इस विषय में ब्राह्मण को सदैव जागरूक रहना चाहिए॥४५॥

कपिलां पाटलां धेनुं यस्तु कृष्णां प्रयच्छति। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलकण्ठां पयस्विनीम्॥४६॥
तस्य यावन्ति लोमानि सन्ति गात्रेषु सत्तम। तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥४७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे प्रयागमाहात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

हे सज्जन (युधिष्ठिर)! जो धर्मात्मा मनुष्य [प्रयाग तीर्थ में] कपिला (कैली) या पाटला (लाल रंग की) अथवा कृष्णवर्ण की स्वर्ण जटित सीगों वाली, रजत (चाँदी) से मढे खुरों वाली और वस्त्र से सुसज्जित कण्ठ वाली दुधारू गाय ब्राह्मण को दान देता है, वह उस गौके शरीर में विद्यमान रोमों के बराबर वर्षों तक रुद्रलोक में सम्मानित होकर रहता है॥४६-४७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन-प्रसंग में छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम्

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स तीर्थयात्राविधिक्रमम्। आर्षेण तु विधानेन यथा दृष्टं यथा श्रुतम्॥१॥

मार्कण्डेय बोले- हे वत्स! ऋषियों के द्वारा प्रयाग की तीर्थयात्रा की जो विधि और जो क्रम विहित किया गया है और जैसा मैंने देखा और सुना है, वह सब मैं तुमसे कहूँगा॥१॥

प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित्। बलीवर्दं समारूढः शृणु तस्यापि यत्फलम्॥२॥

१. ग्रासं, २. देवताऽभ्यर्चयेन्नरः

प्रयाग तीर्थ यात्रा करने की इच्छा करने वाला व्यक्ति यदि कहीं बैल में आरुढ होकर जाता है तो उसका भी जो फल होता है, उसे सुनो॥२॥

नरके वसते घोरे समाः कल्पशतायुतम्। ततो निवर्तते घोरो गवां क्रोधः सुदारुणः॥३॥

वह दस हजार कल्पों तक घोर नरक में वास करता है। तभी उसके प्रति गायों का प्रचण्ड कोप दूर होता है॥३॥

ऐश्वर्याल्लोभमोहाद्वा गच्छेद् यानेन यो नरः। सलिलञ्च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः।
निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत्॥४॥

जो मनुष्य ऐश्वर्यशाली (धनमद से युक्त) होने पर या लोभ (तीर्थ में धन प्राप्ति की कामना) या मोहवश किसी वाहन से [प्रयाग तीर्थ में] जाता है तो उसकी वह तीर्थ-यात्रा विफल हो जाती है॥४॥

यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा[1]। यथात्मना तथा तैश्च दानं विप्रेषु दापयेत्॥५॥

जो मनुष्य अपने पुत्रों और छोटे बालकों को तीर्थ स्नान कराता है और तीर्थ का जल पिलाता है, वह अपने समान ही उनके हाथों से भी ब्राह्मणों को दान दिलवाये॥५॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति। आर्षेण तु विधानेन यथाविभवविस्तरम्॥६॥
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा। उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमव्ययम्॥७॥

गङ्गा-यमुना के मध्य स्थित प्रयाग में जो व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार यथा सम्भव धन व्यय करके आर्ष-विवाह की विधि से [सुयोग्य वर को] कन्या-दान करता है, वह अपने उस शुभ कर्म के कारण [कभी भी] घोर नरक को नहीं देखता और उत्तरकुरु क्षेत्र में जाकर अनन्त काल तक आनन्द से रहता है॥६-७॥

वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। स्वर्गलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥८॥
तत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः। लोकपालाश्च पितरः सर्वे ते लोकसंस्थिताः॥९॥
सनत्कुमारप्रमुखास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे। नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च तथा नित्यं समासते।
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः॥१०॥

जो मनुष्य अक्षय वट के नीचे आश्रय लेकर रहते हुए वहीं पर प्राण-त्याग करता है, वह स्वर्ग लोक को भी पार कर रुद्रलोक में जाता है। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता और अष्ट दिक्पालों सहित सभी दिशाएँ, सभी लोकपाल, सिद्धगण, लोक में स्थित सभी पितर, सनत्कुमार आदि और ब्रह्मर्षिगण, नाग, सुपर्ण (गरुड) तथा सिद्धगण नित्य विद्यमान रहते हैं। वहाँ प्रजापति (ब्रह्मा) के सहित भगवान् विष्णु भी निवास करते हैं॥८-१०॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥११॥

हे राजन! गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती भूभाग को पृथिवी का जघन कहा गया है। वह क्षेत्र तीनों लोकों में प्रयाग नाम से विख्यात है॥११॥

१. द्रष्टव्य-मत्स्यपुराण १०६/६

तत्राभिषेकं यः कुर्यात्सङ्गमे शंसितव्रतः। तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥ १ २॥

जो मनुष्य वहाँ (संगम में) नियमपूर्वक स्नान करता है, उसको राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के समान पुण्यफल मिलता है॥ १ २॥

न मातृवचनात् तात न लोकवचनादपि। मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति॥ १ ३॥

हे तात युधिष्ठिर! माता के कहने पर या अन्य लोगों के कहने पर भी प्रयाग तीर्थ में [निवास हेतु] जाने का विचार कभी नहीं त्यागना चाहिए॥ १ ३॥

दश[1] तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽऽपगाः। तेषां सान्निध्यमत्रैव तीर्थानां कुरुनन्दन॥ १ ४॥

हे कुरुवंशज युधिष्ठिर! दश हजार तीर्थों तथा साठ करोड़ पवित्र नदियों [के तीर्थों] का एकत्र सान्निध्य यहीं प्रयाग में होता है॥ १ ४॥

या गतिर्योगयुक्तस्य संन्यस्तस्य मनीषिणः। सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे॥ १ ५॥

योग साधक संन्यासी विद्वान् की जो गति होती है, वही गति गङ्गा-यमुना के संगम में प्राण-त्याग करने वाले मनुष्य की भी होती है॥ १ ५॥

न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन्यत्र तत्र युधिष्ठिर। ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्[2]॥ १ ६॥

हे युधिष्ठिर! तीनों लोकों में विख्यात प्रयाग में जो मनुष्य नहीं पहुँचे हों वे जहाँ कहीं भी रहते हों जीवित नहीं [अपितु मृतक के समान] हैं॥ १ ६॥

एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागं परमं पदम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा॥ १ ७॥

परम पद रूप उस प्रयाग तीर्थ का इस प्रकार यथा-विधि दर्शन करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर [ग्रहण के पश्चात्] राहु से मुक्त चन्द्रमा के समान [निर्मल] हो जाता है॥ १ ७॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः॥ १ ८॥

यमुना के दक्षिणवर्ती तट पर कम्बल और अश्वतर नामक नाग स्थित हैं। वहाँ स्नान और जल का पान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥ १ ८॥

तत्र गत्वा नरः स्थानं महादेवस्य विश्रुतम्[3]। समस्तांस्तारयेत् पूर्वान्दशातीतान् दशावरान्॥ १ ९॥

वहाँ महादेव के प्रसिद्ध स्थान (शिवालय) में जाकर (स्नान, दान आदि करके) मनुष्य अपने साथ ही दश पूर्ववर्ती और दश भावी पीढ़ी के वंशजों का उद्धार कर देता है॥ १ ९॥

कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्। स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्॥ २ ०॥

वहाँ अभिषेक (स्नान) करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और महाप्रलय पर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है॥ २ ०॥

पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रैलोक्ये ख्यातिमान्नृप[4]। अवटस्तु समुद्राख्यः[5] प्रतिष्ठानञ्च विश्रुतम्॥ २ १॥

गङ्गा के पूर्वी तट पर तीनों लोकों में प्रख्यात समुद्रकूप और प्रसिद्ध प्रतिष्ठानपुर है॥ २ १॥

---

१. षष्टि, २. वञ्चिताः, ३. धीमतः, ४. याति मानवः, ५. अवटः सर्वसामुद्रः,

ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति। सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥२२॥

जो मनुष्य ब्रह्मचारी रहकर और क्रोध को त्यागकर तीन रात्रियों तक वहाँ निवास करता है, वह सभी पापों से मुक्त और शुद्ध होकर अश्वमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त करता है॥२२॥

उत्तरेण प्रतिष्ठानात् भागीरथ्यास्तु सव्यतः[1]। हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥२३॥

प्रतिष्ठानपुर से उत्तर तथा भागीरथी गङ्गा से बाँयी (पूर्व की ओर) हंस प्रपतन नामक तीर्थ है, जो कि तीनों लोकों में प्रसिद्ध है॥२३॥

अश्वमेधफलं तत्र स्मृतमात्रे तु जायते। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते[2]॥२४॥

उस तीर्थ के स्मरण मात्र से अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान के तुल्य फल मिलता है और वहाँ स्नान दान करने वाला व्यक्ति सूर्य एवं चन्द्रमा के रहने तक स्वर्गलोक में समादर के साथ रहता है॥२४॥

उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे। परित्यजति यः प्राणाञ्छृणु तस्यापि यत्फलम्॥२५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। आस्ते स पितृभिः सार्धं स्वर्गलोके नराधिप॥२६॥

प्रयाग क्षेत्र में भागीरथी नदी के हंस के समान धवल (श्वेत) जल वाले विशाल उर्वशी नामक सुरम्य तट पर जो मनुष्य प्राण-त्याग करता है, उसका भी जो फल होता है, उसे तुम सुनो। हे राजन्! वह साठ हजार साठ सौ (अर्थात् छियासठ हजार) वर्षों तक अपने पितरों के साथ स्वर्ग में रहता है॥२५-२६॥

अथ सन्ध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी समाहितः। नरः शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥२७॥

जो पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए एकाग्रचित्त और शुद्ध होकर सन्ध्या-वट के नीचे उपासना (सन्ध्यावन्दन, मन्त्रजप आदि धर्म-कृत्य) करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है॥२७॥

कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥२८॥

जो मनुष्य कोटि तीर्थ में जाकर प्राण-त्याग करता है, वह हजारों करोड़ वर्षों तक स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है॥२८॥

यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोवना। सिद्धं क्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा॥२९॥

जहाँ बहुत से तीर्थों और तपोवनों वाली अत्यन्त पवित्र गङ्गा नदी प्रवाहित होती है, उसे सिद्धक्षेत्र के रूप में जानना चाहिए। इसमें किसी प्रकार का [संशयात्मक] विचार नहीं करना चाहिए॥२९॥

क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः। दिवि तारयते देवांस्तेन सा त्रिपथा स्मृता॥३०॥

भागीरथी गङ्गा इस पृथिवी पर मनुष्यों का, अधोलोक (पाताल) में नागों का तथा स्वर्ग लोक में देवों का उद्धार करती है। अतः इसे त्रिपथगा कहा गया है॥३०॥

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य तु। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥३१॥

---

१. उत्तरेण प्रतिश्ठानाद् भागीरथ्यास्तु पूर्वतः। पद्मपुराण सवर्गखण्ड ४३/३३; मत्स्यपुराण १०६/३२

२. इस अध्याय के श्लोक १ से २६ श्लोक तक का अंश मत्स्य पुराण १०६/३-३५ के समान है।

जब तक मृतक मनुष्य की अस्थियाँ गङ्गा में रहती हैं, तव तक वह स्वर्ग लोक में सम्मानित रहता है॥३१॥

तीर्थानां परमं तीर्थं नदीनां परमा नदी। मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥३२॥

गङ्गा नदी सभी तीर्थों में श्रेष्ठतम तीर्थ है और सभी नदियों में श्रेष्ठतम नदी है। यह सभी प्राणियों की तथा महापातकियों की भी मोक्षदायिनी है॥३२॥

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥३३॥

गङ्गा नदी [स्नानादि धार्मिक कृत्यों के लिए] सभी [तीर्थों] में सर्व-सुलभ है, किन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-सङ्गम नामक इन तीन स्थानों में दुर्लभ है॥३३॥

सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः॥३४॥

पापकर्मों से भ्रष्टबुद्धि वाले जो मनुष्य अपनी सद्गति चाहते हैं, उन सभी के लिए गङ्गा के समान सद्गति देने वाली अन्य कोई नदी नहीं है॥३४॥

पवित्राणां पवित्रं यन्मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्। माहेश्वरात्परिभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥३५॥

गङ्गा अन्य सभी पवित्रों [नदी आदि से] अधिक पवित्र तथा सभी मङ्गलकारक वस्तुओं से अधिक मङ्गलकारक (कल्याणकारिणी) है। भगवान् शिव की जटाओं से निकली हुई यह नदी सभी पापों का हरण (नाश) करने वाली और शुभकारिणी है॥३५॥

कृते तु नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करं वरम्। द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥३६॥

कृतयुग में नैमिष (नैमिषारण्य) ही परमतीर्थ था, त्रेतायुग में पुष्कर को श्रेष्ठतीर्थ माना जाता था, द्वापर युग में कुरुक्षेत्र को महान तीर्थ माना जाता था और कलियुग में गङ्गा ही विशिष्ट तीर्थ है॥३६॥

गङ्गामेव निषेवन्ते प्रयागे तु विशेषतः। नान्यत्कलियुगे रौद्रे भेषजं नृप विद्यते॥३७॥

अतः मनुष्य को विशेषतः प्रयाग में तो गङ्गा का ही सेवन (स्नान आदि) करना चाहिए। हे राजन् इस रौद्र (भयंकर) कलियुग में गङ्गा के समान अन्य कोई औषधि नहीं है॥३७॥

अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते। स मृतो जायते स्वर्गे नरकं च न पश्यति॥३८॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे प्रयागमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

जो कोई भी मनुष्य स्वेच्छया या अनिच्छा से भी गङ्गा में [या उसके तट पर] मृत्यु को प्राप्त होता है, वह स्वर्ग में जाता है। उसे नरक नहीं देखना पड़ता है॥३८॥

॥इस प्रकार श्री कूर्मपुराण में प्रयाग-महात्म्य-वर्णन के प्रसंग में सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम्

मार्कण्डेय उवाच

षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च। माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसङ्गमे॥१॥

मार्कण्डेय जी बोले- माघ मास में प्रयाग में साठ हजार साठ सौ (अर्थात् छियासठ हजार) तीर्थों का आगमन हो जाता है॥१॥

गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्। प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम्॥२॥

सौ हजार गायों का विधि-विधान पूर्वक दान करने का जो फल होता है, वही फल माघ मास में तीन दिन तक स्नान करने पर प्राप्त होता है॥२॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये करीषाग्निञ्च साधयेत्। अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः॥३॥
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु भूमिप। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥४॥

जो व्यक्ति गङ्गा यमुना के मध्य में करीषाग्नि (सूखे गोबर के उपलों, कण्डों की अग्नि) के मध्य में बैठकर साधना करता है, वह सम्पूर्ण अंगों से स्वस्थ, रोग-रहित, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से युक्त होता है और हे राजन्! उसके शरीर में जितने रोमकूप होते हैं, उतने वर्षों तक वह स्वर्गलोक में महिमास्पद होकर रहता है॥३-४॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्। भुक्त्वा स विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं लभते पुनः॥५॥

तदनन्तर स्वर्ग से पृथिवी में आने पर जम्बूद्वीप का अधिपति (सम्राट्) बनता है और विविध प्रकार के प्रचुर भोगों का उपभोग करके पुनः (प्रयाग के संगम में स्थित) उसी तीर्थ को प्राप्त करता है॥५॥

जलप्रवेशं यः कुर्यात् सङ्गमे लोकविश्रुते। राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तः सर्वपातकैः॥६॥

जगत् में प्रसिद्ध गङ्गा-यमुना के संगम में जो मनुष्य जल में समाधि लेता है, वह सभी पापों से उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार ग्रहण के अन्त में चन्द्रमा राहु से मुक्त होता है॥६॥

सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते। षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च॥७॥

वह साठ हजार साठ सौ (अर्थात् छियासठ हजार) वर्षों तक चन्द्रलोक में जाकर चन्द्रमा के साथ आनन्दित होकर रहता है॥७॥

स्वर्गतः शक्रलोकेऽसौ मुनिगन्धर्वसेविते। ततो भ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले[1]॥८॥

तब वह स्वर्गलोक से होकर मुनियों और गन्धर्वों से सेवित इन्द्रलोक में जाता है। हे राजेन्द्र! तब वहाँ से वह भूलोक में आने पर धन-सम्पन्न कुल में जन्म पाता है॥८॥

अधःशिरास्तु यो धारामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः। सप्तवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥९॥

---

१. पाठसाम्य हेतु द्रष्टव्य- मत्स्यपुराण १०७/१४

जो मनुष्य शिर को नीचे करके तथा पैरों को ऊपर करके गङ्गा की धारा में से जल को पीता है, वह सौ हजार वर्षों तक स्वर्ग लोक में सम्मानित होकर रहता है॥९॥

तस्माद् भ्रष्टस्तु राजेन्द्र अग्निहोत्री भवेन्नरः। भुक्त्वाथ विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥१०॥

तदनन्तर स्वर्गलोक से आकर पुनः भूलोक में जन्म पाने पर अग्निहोत्री ब्राह्मण बनता है और प्रचुर भोग-विलास के साधनों का आनन्द लेकर पुनः उसी प्रयाग तीर्थ में जन्म पाता है॥१०॥

यः शरीरं विकर्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति। विहङ्गैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम्॥११॥
शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते। ततस्तस्मात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः॥१२॥

जो मनुष्य अपने शरीर के विभिन्न अंगों को काट काटकर पक्षियों को देता है, उसे पक्षियों के द्वारा खाये जाने पर जो फल मिलता है, उसे सुनो। वह सौ हजार वर्षों तक सोमलोक (चन्द्रलोक) में आनन्द से विराजमान रहता है और तदनन्तर वहाँ से भूलोक में जन्म लेकर धर्म-परायण राजा बनता है॥११-१२॥

गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वांस्तु प्रियवाक्यवान्। भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान्[1] तत्तीर्थं भजते पुनः॥१३॥

वह सद्गुण-सम्पन्न, सुन्दर रूप वाला, विद्वान् और प्रियवचन बोलने वाला होता है तथा सभी सुखों का भोग करके और दान-पुण्य करके उसी प्रयागस्थ तीर्थ का सेवन करता है॥१३॥

उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य च दक्षिणे। ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थन्तु परमं स्मृतम्॥१४॥
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणात् तत्र प्रमुच्यते। स्वर्गलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत्॥१५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे प्रयागमाहात्म्यं नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

प्रयाग के दक्षिण में यमुना के उत्तरी तट पर ऋणमोचन नामक परम उत्तम तीर्थ कहा गया है। वहाँ पर एक रात्रि तक उपवास करके स्नान करने से मनुष्य (देवों, ऋषियों और पितरों के) ऋण से मुक्त हो जाता है तथा सदैव ऋण-मुक्त रहते हुए स्वर्ग लोक में जाता है॥१४-१५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में प्रयागमाहात्म्य नामक अठतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम्

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा॥१॥

१. भोगान् भुक्त्वाथ दत्त्वा च

मार्कण्डेय जी बोले- भगवान् सूर्य की तीनों लोकों में विख्यात महाभाग्यवती पुत्री देवी यमुना नदी यहाँ आकर संगम क्षेत्र में गङ्गा से मिली है॥१॥

येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुना गता। योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात्पापनाशिनी॥२॥

जिस मार्ग से गङ्गा निकल कर आयी है, वहीं से यमुना भी प्रवाहित हुई है॥ यह यमुना नदी हजारों योजन दूर से भी अपना नाम कीर्तन करने वाले का पापनाश कर देती है॥२॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुना यत्र निम्नगा। सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम्।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्॥३॥

जहाँ कहीं से भी यमुना नदी प्रवाहित होती है, वहाँ इसमें स्नान करने और इसका जल पीने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर अपनी सात पीढियों को भी पवित्र कर देता है। जो मनुष्य वहाँ प्राण-त्याग करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है॥३॥

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे। पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं त्वनरकं स्मृतम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥४॥

यमुना के दक्षिणवर्ती तट में प्रख्यात अग्नितीर्थ है और उसके पश्चिम में 'अनरक' नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं और जो वहाँ मृत्यु को प्राप्त करते हैं, वे पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करते अर्थात् वे मुक्ति प्राप्त करते हैं॥४॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नात्वा सन्तर्प्य वै शुचिः। धर्मराजं महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥५॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को स्नान करके शुद्ध होकर धर्मराज का तर्पण करके मनुष्य महापापों से भी मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है॥५॥

दशतीर्थसहस्राणि दशकोट्यस्तथापराः। प्रयागसंस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिणः॥६॥

प्रयाग में दश हजार [प्रमुख तीर्थ] तथा दश करोड़ अन्य तीर्थ स्थित हैं, ऐसा मनीषियों का कथन है॥६॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता॥७॥

स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ वायु देव ने बतलाये हैं और वे सभी तीर्थ गङ्गा में स्थित हैं॥७॥

यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत् तपोवनम्। सिद्धक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरं समाश्रितम्॥८॥

जहाँ महाभाग्यवती गङ्गा है, वही उत्तम देश है, वही तपोवन है। गङ्गातट पर स्थित उस क्षेत्र को सिद्ध क्षेत्र समझना चाहिए॥८॥

यत्र देवो महादेवो माधवेन महेश्वरः। आस्ते देवेश्वरो नित्यं तत् तीर्थं तत्तपोवनम्॥९॥

देवाधिदेव महेश्वर महादेव शिव जहाँ पर भगवान् माधव (विष्णु) के साथ नित्य विराजमान रहते हैं, वही क्षेत्र उत्तम तीर्थ है और वही उत्तम तपोवन है [ऐसा मानना चाहिए]॥९॥

इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च। सुहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च॥१०॥
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं मेध्यमिदं शुभम्। इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम्॥११॥

इस सत्य को सभी द्विजातियों, साधु-संन्यासियों, अपने पुत्रों, मित्रों तथा अपने अनुयायी शिष्यों के कान में (अवश्य) बतलाना चाहिए। यह तीर्थ-स्थल धन्य है, क्योंकि यह स्वर्ग प्रदान करने वाला, अत्यन्त पवित्र, शुभ, पुण्यप्रद, रमणीय, धर्मानुकूल और अति उत्तम है॥१०-११॥

महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम्। अत्राधीत्य द्विजोऽध्यायं निर्मलत्वमवाप्नुयात्॥१२॥

यह महर्षियों के लिए भी परम गोपनीय है और सभी पापों का नाश करने वाला है। इस अध्याय को यहाँ पढ़ने वाला द्विज पवित्र हो जाता है॥१२॥

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः। जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते॥१३॥

जो मनुष्य सदैव शुद्ध तन-मन से इस अध्याय का श्रवण करता है, उसको पूर्वजन्म का स्मरण हो जाता है और वह स्वर्ग लोक में आनन्द से रहता है॥१३॥

प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुगामिभिः। स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य मा च वक्रमतिर्भव॥१४॥

शिष्टजनों का अनुसरण करने वाले सत्पुरुष ही प्रयाग के इन तीर्थों की यात्रा का सौभाग्य पाते हैं॥ हे कुरुवंशज युधिष्ठिर! तुम विपरीत बुद्धि वाले मत बनो और प्रयाग के इन तीर्थों में स्नान करो॥१४॥

एवमुक्त्वा स भगवान्मार्कण्डेयो महामुनिः। तीर्थानि कथयामास पृथिव्यां यानि कानिचित्॥१५॥

ऐसा कह कर महामुनि भगवान् मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को पृथवी में स्थित जितने भी तीर्थ थे, उन सभी के विषय में बतलाया था॥१५॥

भूसमुद्रादिसंस्थानं ग्रहाणां ज्योतिषां स्थितिम्। पृष्टः प्रोवाच सकलमुक्त्वाथ प्रययौ मुनिः॥१६॥

[उन्होंने युधिष्ठिर के द्वारा] पूछे जाने पर पृथिवी और समुद्र आदि की स्थिति तथा ग्रहों और नक्षत्रों आदि की भी सम्पूर्ण स्थिति का वर्णन भी किया था। और तब वह मुनिवर व्यास जी वहाँ से चले गये थे॥१६॥

सूत उवाच

य इदं कल्यमुत्थाय शृणोति पठतेऽथवा। मुच्यते सर्वपापैस्तु रुद्रलोकं स गच्छति॥१७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे प्रयागमाहात्म्य नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

सूत जी बोले- जो मनुष्य प्रातःकाल [सूर्योदय के पूर्व] उठकर इस प्रयाग के माहात्म्य को पढ़ता है या सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में रुद्रलोक को जाता है॥१७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'प्रयाग-माहात्म्य' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥३९॥

❖❖❖

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासप्रकरणे स्वायंभुवमनुवंशावर्णनम्

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तास्तु मुनयो नैमिषीया महामुनिम्। पप्रच्छुरुत्तरं सूतं पृथिव्यादिविनिर्णयम्॥१॥

श्रीकूर्म गोले- ऐसा कहे जाने पर नैमिषारण्य निवासी मुनियों ने महाबुद्धिमान् सूत जी से पृथिवी आदि विषयक निर्णय को पूछा था॥१॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सर्गः मनुः स्वायम्भुवः शुभः। इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्रिलोकस्यास्य मण्डलम्॥२॥

ऋषियों ने कहा- आपने स्वायम्भुव मनु (स्वायम्भुव मन्वन्तर) का शुभ वर्णन कर दिया है। इस समय हम त्रैलोक्यमण्डल विषयक वर्णन सुनना चाहते हैं॥२॥

यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः। वनानि सरितः सूर्यो ग्रहाणां स्थितिरेव च॥३॥
यदाधारमिदं सर्वं येषां पृथ्वी पुरा त्वियम्। नृपाणां तत्समासेन तत्तद्वक्तुमिहार्हसि॥४॥

जितने भी सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ, सूर्य तथा जो ग्रहों की स्थिति है और जिस पर यह सब आधारित (स्थित) हैं तथा जिन राजाओं का इस पृथिवी में आधिपत्य रहा है, वह सब हमें संक्षेप में बतला सकते हैं॥३-४॥

सूत उवाच

वक्ष्ये देवाधिदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे। नमस्कृत्याप्रमेयाय यदुक्तं तेन धीमता॥५॥

सूत जी बोले- देवों के भी आदिदेव अप्रमेय, सर्वशक्तिमान् और अनुपमेय भगवान् विष्णु को प्रणाम करके उन परम बुद्धिमान् कूर्मावतार के द्वारा जो कहा गया था, उसे मैं बतलाता हूँ॥५॥

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः प्रागुक्तो यः प्रियव्रतः। पुत्रस्तस्याभवन्पुत्राः प्रजापतिसमा दश॥६॥
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा। मेधा मेधातिथिर्हव्यः सवनः पुत्र एव च॥७॥
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां महाबलपराक्रमः। धार्मिको दाननिरतः सर्वभूतानुकम्पकः॥८॥

पूर्वोक्त स्वायम्भुव मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत के प्रजापति के समान दश पुत्र थे। वे क्रमशः आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, हव्य, सवन और पुत्र एवं उनमें दशवाँ था—ज्योतिष्मान्। वह (ज्योतिष्मान्) महाबली, पराक्रमी, धार्मिक, दान-परायण तथा सभी प्राणियों पर दया करने वाला था॥६-८॥

मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः। जातिस्मरा महाभागा न राज्ये दधिरे मतिम्॥९॥

मेधा, अग्निबाहु और पुत्र संज्ञक प्रियव्रत के तीनों आत्मज महाभाग्यशाली, योग-साधना में लीन और पूर्वजन्म का स्मरण करने वाले थे। उनका मन राज्य के शासन कार्य में नहीं लगा था॥९॥

प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद्वै सप्तद्वीपेषु सप्त तान्। जम्बूद्वीपेश्वरं पुत्रमाग्नीध्रमकरोन्नृपः॥१०॥

राजा प्रियव्रत ने (भूमण्डल के) सातों द्वीपों में उन (शेष) सातों पुत्रों का राज्याभिषेक किया था। उस राजा ने अग्नीन्ध्र को जम्बूद्वीप का अधिपति बनाया था॥१०॥

प्लक्षद्वीपेश्वरश्चैव तेन मेधातिथिः कृतः। शाल्मलीशं वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान्॥११॥

प्लक्षद्वीप का स्वामी उसने मेघातिथि को बनाया था। शाल्मली द्वीप में पुष्मान् को राजा के रूप में अभिषिक्त किया था॥११॥

ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः। द्युतिमन्तश्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्॥१२॥

उस राजा प्रियव्रत ने ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप का राजा बनाया था। द्युतिमान् को क्रौञ्चद्वीप का राजा घोषित किया था॥१२॥

शाकद्वीपेश्वरञ्चापि हव्यञ्चक्रे प्रियव्रतः। पुष्कराधिपतिञ्चक्रे सवनञ्च प्रजापतिः॥१३॥

राजा प्रियव्रत ने हव्य को शाकद्वीप का स्वामी बनाया था और सवन को पुष्कर द्वीप का अधिपति बनाया था॥१३॥

पुष्करेश्वरतश्चापि महीवीतः सुतोऽभवत्। धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ॥१४॥

पुष्कर द्वीपाधिपति सवन के महावीत और धातकि नामक दो श्रेष्ठ पुत्र हुए थे॥१४॥

महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य स्यात्तु महात्मनः। नाम्ना वै धातकेश्चापि धातकीखण्डमुच्यते॥१५॥

उनमें से महात्मा महावीत अपने नाम से प्रसिद्ध वर्ष (देश) का राजा बना था और धातकि के नाम से (उसके द्वारा शासित देश) धातकीखण्ड कहा गया था॥१५॥

शाकद्वीपेश्वरस्यापि हव्यस्याप्यभवन् सुताः। जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः।
कुशोत्तरोऽथ मोदाकिः सप्तमः स्यान्महाद्रुमः॥१६॥

जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते। कुमारस्य तु कौमारं तृतीयं सुकुमारकम्॥१७॥

मणीचकञ्चतुर्थञ्च पञ्चमञ्च कुशोत्तरम्। मोदाकं षष्ठमित्युक्तं सप्तमन्तु महाद्रुमम्॥१८॥

शाकद्वीप के राजा हव्य के भी (सात) पुत्र हुए थे, जो जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुशोत्तर, मोदाकि नामक और सातवां महाद्रुम नामक था। जलद के द्वारा शासित राज्य का नाम जलद वर्ष कहा गया है। कुमार के द्वारा शासित राज्य कौमार वर्ष था। इसी प्रकार तीसरे पुत्र के राज्य का नाम सुकुमारक वर्ष, चौथे पुत्र के राज्य का मणीचक वर्ष, पाँचवें के राज्य का नाम कुशोत्तर वर्ष, छठे पुत्र के राज्य का नाम मोदाक वर्ष तथा सतावें पुत्र के राज्य को महाद्रूम वर्ष कहा गया था॥१६-१८॥

क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि सुता द्युतिमतोऽभवन्। कुशलः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु मनोहरः॥१९॥

उष्णस्तृतीयः सम्प्रोक्तश्चतुर्थः पीवरः स्मृतः। अन्धकारो मुनिश्चैव दुन्दुभिश्चैव सप्त वै।
तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः॥२०॥

क्रौञ्चद्वीप के राजा द्युतिमान् (पीछे श्लोक १२ में कथित) के भी सात पुत्र थे। उनमें प्रथम का नाम था- कुशल, दूसरा था- मनोहर, तीसरा उष्ण और चतुर्थ पीवर नामक था। अन्धकार और मुनि पाँचवें

और छठें थे और दुन्दुभिनामक पुत्र सातवाँ था। उनके अपने अपने नाम से प्रख्यात देश भी क्रौञ्च द्वीप के अन्तर्गत थे॥१९-२०॥

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैवासन्महौजसः। उद्भेदो वेणुमांश्चैवाश्वरथो लम्बनो धृतिः॥२१॥
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः। स्वनामचिह्नितास्तेषां तथा वर्षाणि सुव्रताः॥२२॥

कुशद्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के भी महातेजस्वी सात पुत्र थे, जो क्रमशः उद्भेद, वेणुमान, अश्वरथ, लम्बन, धृति और छठाँ प्रभाकर तथा सातवें को कपिल कहा गया है। हे सद्व्रती द्विजो! उन सभी के द्वारा शासित वर्षों (देशों) को भी उन्हीं के नामानुसार जानना चाहिए॥२१-२२॥

ज्ञेयानि च तथान्येषु द्वीपेष्वेवं नयो मतः। शाल्मलिद्वीपनाथस्य सुताश्चसन्वपुष्मतः॥२३॥
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चैव सप्तमः सुप्रभो मतः॥२४॥

अन्य द्वीपों के वर्षों के नाम भी उन द्वीपों के राजाओं के पुत्रों के नाम से रखे गये हैं, ऐसा नियम माना गया है। शाल्मलि द्वीप के राजा वपुष्मान् के भी सात पुत्र क्रमशः श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवाँ सुप्रभ नामक था॥२३-२४॥

प्लक्षद्वीपेश्वरस्यापि सप्त मेधातिथेः सुताः। ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां शिशिरश्च सुखोदयः।
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा॥२५॥

प्लक्षद्वीप के राजा मेधातिथि के भी सात पुत्र थे। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र का नाम शान्तभय था तथा अन्य पुत्रों का नाम क्रमशः शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव था॥२५॥

प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः शाकद्वीपान्तिकेषु च। वर्णाश्रमविभागेन स्वधर्मो मुक्तये द्विजाः॥२६॥

हे द्विजो! प्लक्षद्वीप से लेकर शाकद्वीप पर्यन्त सभी द्वीपों में अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन ही मोक्षप्रद होता है॥२६॥

जम्बूद्वीपेश्वरस्यापि पुत्राश्चासन्महाबलाः। आग्नीध्रस्य द्विजश्रेष्ठास्तन्नामानि निबोधत॥२७॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! जम्बूद्वीप के राजा आग्नीध्र के पुत्र महाबली थे। आप लोग उनके नामों को सुनें॥२७॥

नाभिः किम्पुरुषश्चैव तथा हरिरिलावृतः। रम्यो हिरण्वांश्च कुरुर्भद्राश्वः केतुमालकः॥२८॥

नाभि, किम्पुरुष, हरि, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल॥२८॥

जम्बूद्वीपेश्वरो राजा स चाग्नीध्रो महामतिः। विभज्य नवधा तेभ्यो यथान्यायं ददौ पुनः॥२९॥

जम्बूद्वीप के राजा महाबुद्धिमान् आग्नीध्र ने उस महाद्वीप (जम्बूद्वीप को) न्यायानुसार विभाजित करके उन नौ पुत्रों को दिया था॥२९॥

नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं प्रददौ पिता। हेमकूटं ततो वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः॥३०॥

उसने दक्षिण दिशा में स्थित हिमवत वर्ष नाभि को दिया था। तभी हेमकूटवर्ष किम्पुरुष को दिया था॥३०॥

तृतीयं नैषधं वर्षं हरये दत्तवान् पिता। इलावृताय प्रददौ मेरुमध्यमिलावृतम्॥३१॥

नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता। श्वेतं यदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते॥३२॥

पिता आग्नीध्र ने तीसरा नैषध नामक वर्ष हरि को प्रदान किया था। इलावृत को मेरु के मध्य में स्थित इलावृत नामक वर्ष दिया था। उस पिता आग्नीध्र ने रम्य नामक पुत्र को नीलाचल पर्वत से युक्त वर्ष प्रदान किया था तथा उत्तर में स्थित श्वेत वर्ष हिरण्वान् को दिया था॥३१-३२॥

यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत्कुरुवे ददौ। मेरोः पूर्वेणयद्वर्षं भद्राश्वाय न्यवेदयत्।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान्॥३३॥

शृंगवान् पर्वत के उत्तर में स्थित वर्ष कुरु को दिया था। मेरु के पूर्व में स्थित वर्ष भद्राश्व को दिया था और गन्धमादन वर्ष केतुमाल को दिया था॥३३॥

वर्षेष्वेतेषु तान्पुत्रानभ्यषिञ्च नराधिपः। संसारासारतां ज्ञात्वा तपस्तप्तुं वनं गतः॥३४॥

इन नौ वर्षों में उन नौ पुत्रों का राज्याभिषेक करके राजा अग्नीघ्र संसार की असारता को जानकर तपस्या करने के लिए वन में चले गये थे॥३४॥

हिमाह्वयं तु यद्वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः। तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः॥३५॥

हिमवद् वर्ष के प्रथम राजा नाभि का उनकी पत्नी मेरु देवी में महातेजस्वी ऋषभ नामक पुत्र हुआ था॥३५॥

ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः॥३६॥
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा तपस्तेपे यथाविधि। तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसंततः[1]॥३७॥
ज्ञानयोगरतो भूत्वा महापाशुपतोऽभवत्। सुमतिर्भरतस्यापि पुत्रः परमधार्मिकः॥३८॥

ऋषभ के एक सौ पुत्र हुए थे। उन सबमें अग्रज भरत नामक वीर थे। राजा ऋषभ ने भरत का राज्याभिषेक करके वानप्रस्थाश्रम में जाकर यथाविधि तपस्या की थी। तपश्चर्या से वह अत्यन्त कृश हो गये थे और उनके शरीर की नाड़ियाँ दिखने लगी थी। तब वह ज्ञानयोग में निरत होकर महापाशुपत हो गये थे। भरत का सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र था॥३६-३८॥

सुमतेस्तैजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो महाद्युतिः। परमेष्ठी सुतस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः॥३९॥

सुमति का पुत्र तैजस था और उस तैजस का अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ था। उस इन्द्रद्युम्न का परमेष्ठी नामक पुत्र था और उसका पुत्र प्रतिहार नामक था॥३९॥

प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः। भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्ताविस्तत्सुतोऽभवत्॥४०॥

उस प्रतिहार का प्रतिहर्ता नामक प्रख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ था। उस प्रतिहर्ता का पुत्र भव नामक था। भव से उद्गीथ नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र प्रस्तावि नामक था॥४०॥

पृथुस्ततस्ततो नक्तो[2] नक्तस्यापि[3] गयः स्मृतः। नरो गयस्य तनयस्तस्य पुत्रो विराट् भूत्॥४१॥

उस प्रस्तावि का पुत्र नक्त था और नक्त का गय नामक पुत्र था। गय का पुत्र नर नाम वाला था और उस नर का विराट् नामक पुत्र हुआ था॥४१॥

१. कृशोऽयमनिशं ततः, २. रक्तो, ३. रक्तस्यापि

तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत। धीमतोऽपि ततश्चाभूद्रौवणस्तत्सुतोऽभवत्॥४२॥
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्मादभूत्सुतः। शतजिद् रजसस्तस्य[1] जज्ञे पुत्रशतं द्विजाः॥४३॥

उस विराट् का पुत्र महावीर्य नाम वाला था, जिससे धीमान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था और उस धीमान् का पुत्र रौवण नामक था तथा उसका (रौवण का) पुत्र त्वष्टा था और त्वष्टा का पुत्र विरज और उस विरज का पुत्र रज नामक था। हे द्विजो! उस रज का शतजित् नामक पुत्र हुआ था और उसके एक सौ पुत्र हुए थे॥४२-४३॥

तेषां प्रधानो बलवान् विश्वज्योतिरिति स्मृतः। आराध्य देवं ब्रह्माणं क्षेमकं नाम पार्थिवम्॥४४॥
असूत पुत्रं धर्मज्ञं महाबाहुमरिन्दमम्। एते पुरस्ताद् राजानो महासत्त्वा महौजसः।
एषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं पृथिवी पुरा॥४५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे स्वायंभुव मनु-वंशवर्णननाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

उनमें से प्रधान और बलवान् विश्वज्योति नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने देव ब्रह्मा की आराधना करके क्षेमक नामक महाबाहु, शत्रुनाशक और धर्मज्ञ राजा को पुत्र रूप में जन्म दिया था। पूर्वकाल में ये सब महाबली और महातेजस्वी राजा हुए थे। इनके वंश में उत्पन्न राजाओं ने प्राचीन काल में इस पृथिवी का उपभोग किया था॥४४-४५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में स्वायंभुव मनु वंशवर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ज्योतिःसन्निवेशवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः। त्रैलोक्यस्यास्य मानं वो न शक्यं विस्तरेण तु॥१॥

सूत जी बोले- हे श्रेष्ठ द्विजो! अब मैं आप लोगों को तीनों लोकों का परिमाण संक्षेप में बतलाऊँगा, इनका विस्तार से वर्णन संभव नहीं है॥१॥

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा। जनस्तपश्च सत्यश्च लोकास्त्वण्डोद्भवाः स्मृताः॥२॥

भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक का उद्भव एक [विशालकाय] अण्ड से हुआ था॥२॥

सूर्याचन्द्रमसौ यावत्किरणैरेव भासतः। तावद्भूर्लोक आख्यातः पुराणे द्विजपुङ्गवाः॥३॥

१. शतजिद्रथजित्तस्य

हे श्रेष्ठ द्विजो! सूर्य और चन्द्रमा जहाँ तक अपनी किरणों से प्रकाशित करते हैं, उतने क्षेत्र को पुराणों में भूलोक कहा गया है॥३॥

यावत्प्रमाणो भूर्लोको विस्तरात्परिमण्डलात्। भुवर्लोकोऽपि तावत्स्यान्मण्डलाद्भास्करस्य तु॥४॥

सूर्य के परिमण्डल से भूलोक जितना विस्तृत और गोल है, उसके ऊपर स्थित भुवर्लोक भी उतना ही विस्तृत है॥४॥

ऊर्ध्वं यन्मण्डलं व्योम्नि ध्रुवो यावद् व्यवस्थितः। स्वर्लोकः स समाख्यातस्तत्र वायोस्तु नेमयः॥५॥

आकाश-मण्डल में जहाँ ग्रह-नक्षत्र हैं और जहाँ ध्रुव तारा स्थित है, वहाँ तक स्वर्लोक कहा गया है, वहाँ पर वायु की सात नेमियाँ हैं॥५॥

आवहः प्रवहश्चैव तथैवानुवहः पुनः। संवहो विवहश्चाथ तदूर्ध्वं स्यात्परावहः॥६॥
तथा परिवहश्चैव वायोर्वै सप्त नेमयः। भूमेर्योजनलक्षे तु भानोर्वै मण्डलं स्थितम्॥७॥

आवह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह, उसके ऊपर परावह और सबसे ऊपर परिवह- ये [नीचे से ऊपर की ओर] वायु की सात नेमियाँ हैं। भूमि से एक लाख योजन ऊपर सूर्यमण्डल स्थित है॥६-७॥

लक्षे दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्मृतम्। नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकाशते॥८॥

सूर्य मण्डल से एक लाख योजन के ऊपर चन्द्रमा का मण्डल बतलाया गया है। उससे एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित होता है॥८॥

द्विलक्षे ह्यन्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्। तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः॥९॥

हे ब्राह्मणो! नक्षत्र मण्डल से दो लाख योजन उत्तर (ऊपर) में बुध ग्रह है। बुध से उतनी ही दूरी में शुक्रग्रह विद्यमान है॥९॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः। लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः॥१०॥

शुक्र से उतनी ही दूरी पर मङ्गलग्रह स्थित है। मङ्गल से दो लाख योजन की दूरी पर देवगुरु बृहस्पति स्थित हैं॥१०॥

सौरिर्द्विलक्षेण गुरोर्ग्रहाणामथ मण्डलात्। सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमात्रे प्रकाशते॥११॥

बृहस्पति से दो लाख योजन की दूरी पर सूर्य का पुत्र शनि स्थित है। यह ग्रहमण्डल की स्थिति है। ग्रहमण्डल से एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षिमण्डल विराजित है॥११॥

ऋषीणां मण्डलादूर्ध्वं लक्षमात्रे स्थितो ध्रुवः। मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः।
तत्र धर्मः स भगवान् विष्णुर्नारायणः स्थितः॥१२॥

सप्तर्षिमण्डल से एक लाख योजन ऊपर ध्रुव तारा विद्यमान है। वह ध्रुव सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र की मेठी (नियन्त्रित करने वाले केन्द्र) के रूप में स्थित है। वहाँ साक्षात् नारायण भगवान् विष्णु ही धर्म (धारणकर्ता) रूप में स्थित हैं॥१२॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः। त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः॥१३॥

सूर्य का व्यास नौ हजार योजन कहा गया है। उस व्यास का तीन गुना सूर्यमण्डल का विस्तृत क्षेत्र (परिमण्डल) है॥१३॥

द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः। तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वा तानुपसर्पति॥१४॥

सूर्य के विस्तार (परिमण्डल) का द्विगुणित (दुगुना) विस्तार चन्द्रमा का है। स्वर्भानु (राहु) उनके समान होकर उनके पास जाता है॥१४॥

उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः। स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीयं यत् तमोमयम्॥१५॥

पृथिवी की छाया को लेकर मण्डलाकार बने हुए राहु का जो तीसरा बृहत् स्थान है, वह तमोमय (अन्धकारपूर्ण) है॥१५॥

चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते। भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः॥१६॥

चन्द्रमा के सोलहवें भाग के तुल्य विस्तार वाला ग्रह भार्गव (शुक्र) है। शुक्र से चतुर्थांश (चार भाग में से एक भाग) कम बृहस्पति का परिमण्डल है॥१६॥

बृहस्पतेः पादहीनौ भौमसौरावुभौ स्मृतौ। विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः॥१७॥

बृहस्पति से चतुर्थांश कम मङ्गल और शनि का परिमण्डल कहा गया है। उन दोनों के विस्तार और मण्डल से चतुर्थांश कम बुध का परिमण्डल है॥१७॥

तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै। बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलात्तथा॥१८॥

जो तारा और नक्षत्र रूपी विग्रह (पिण्ड) हैं, वे सभी विस्तार और मण्डल में बुध ग्रह के समान ही हैं॥१८॥

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्। शतानि पञ्चचत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने॥१९॥

जितने भी तारे और नक्षत्र हैं, वे एक-दूसरे से क्रमशः पाँच, चार, तीन और दो सौ योजन न्यून (कम) दूरी में स्थित हैं॥१९॥

ततो लघुतराण्यन्ये[१] तारकामण्डलानि तु। योजनाद्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते॥२०॥

जो उनसे भी अत्यन्त लघु तारा-मण्डल अन्तरिक्ष में विद्यमान हैं, वे एक योजन या आधे योजन के होते हैं। उनसे लघु कोई तारा विद्यमान नहीं है॥२०॥

उपरिष्टात् त्रयस्तेषां ग्रहा वै दूरसर्पिणः। सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः॥२१॥

उन तारा और नक्षत्रों के ऊपर ही दूरगामी (या दूरस्थ?) तीन ग्रह शनि, बृहस्पति और मङ्गल मन्दगति से भ्रमण करते हैं, ऐसा जानना चाहिए॥२१॥

तेभ्योऽधस्ताच्च चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः। सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः॥२२॥

उन तीन ग्रहों से नीचे भ्रमण करने वाले सूर्य, चन्द्र, बुध और शुक्र संज्ञक ये चार महाग्रह शीघ्रगामी (तेजगति वाले) हैं॥२२॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिमान्। तदा पूर्वग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति॥२३॥

---

१. पूर्वापरानुकृष्टानि

जब सूर्य दक्षिणायन वाले मार्ग से विचरण करते हैं, तब वह पूर्वोक्त (चन्द्र, बुध और शुक्र) ग्रहों के नीचे से जाते हैं॥२३॥

विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी। नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति॥२४॥

उन दिनों चन्द्रमा अपना मण्डल विस्तृत बनाकर अर्थात् चन्द्रमण्डल विस्तृत होकर उस सूर्य के ऊपर से विचरण करता है तथा सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल उस चन्द्रमा के ऊपर से भ्रमण करता है॥२४॥

नक्षेत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः। वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः॥२५॥

नक्षत्रों के ऊपर बुध और बुध के ऊपर शुक्र और शुक्र के ऊपर मंगल है तथा मंगल के ऊपर बृहस्पति हैं॥२५॥

तस्माच्छनैश्चरोऽप्यूर्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम्। ऋषीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुवश्चोर्ध्वं व्यवस्थितः॥२६॥

उस बृहस्पति के ऊपर शनिश्चर और शनिश्चर के ऊपर सप्तर्षिमण्डल है तथा सप्तर्षिमण्डल के ऊपर ध्रुव स्थित है॥२६॥

योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव। ईषादण्डस्तथा तस्य द्विगुणो द्विजसत्तमाः॥२७॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! सूर्य का रथ नौ हजार योजन का है और उसका दुगुना अर्थात् अठारह हजार योजन लम्बा उस रथ का ईषादण्ड (घोड़े जोतने का दण्ड) है॥२७॥

सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि तु। योजनानान्तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्॥२८॥

उस रथ का धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन का है (?) और उसमें ही सूर्य के रथ का चक्र (पहिया) संलग्न किया गया है॥२८॥

त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्णेमिन्यक्षयात्मके। संवत्सरमयं कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥२९॥

उस चक्र में तीन नाभि (जिसमें अरों का जोड़ा जाता है), पाँच अर (पहिए का अर्धव्यास) एवं छः नेमियाँ (पहिए की परिधियाँ) संलग्न हैं। उस चक्र में संवत्सर संज्ञक कालचक्र प्रतिष्ठित है॥२९॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः। पञ्चाशतानि सार्धानि योजनानि द्विजोत्तमाः॥३०॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उस चक्र (पहिए) का दूसरा धुरा चालीस हजार साढ़े पाँच सौ योजन वाला है॥३०॥

अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद् युगार्धयोः। ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्धेन ध्रुवाधारो रथस्य तु॥३१॥

उस रथ के दोनों धुरों का परिमाण (माप) भी युगार्ध (अर्थात् जुआ) के ही समान है। धुरे के आधार में स्थित छोटा अक्ष भी जुआ के ही समान है(?)। उस रथ का आधार ध्रुव है॥३१॥

द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले। हयाश्च सप्त छन्दांसि तन्नामानि निबोधत॥३२॥

सूर्य के रथ का दूसरा धुरा मानस पर्वत पर स्थित है। उस रथ के सात घोड़े सात छन्द हैं। उनके नामों को जानो॥३२॥

गायत्री च बृहत्युष्णिक् जगती पंक्तिरेव च। अनुष्टुप् त्रिष्टुबप्युक्ता छन्दांसि हरयो हरेः॥३३॥

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, पङ्क्ति, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्- ये सात छन्द ही भगवान् सूर्य के अश्व कहे गये हैं॥३३॥

मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां दिशि महापुरी। दक्षिणायां यमस्याथ वरुणस्य तु पश्चिमे॥३४॥
उत्तरेषु च सोमस्य तन्नामानि निबोधत। अमरावती संयमनी सुखा चैव विभावरी॥३५॥

पूर्व दिशा में मानस पर्वत पर देवराज इन्द्र की महापुरी है। दक्षिण दिशा में यमराज की पुरी, पश्चिम में वरुण की और उत्तर में सोम की पुरी है। उन पुरियों के नामों को जानें। वे क्रमशः अमरावती, संयमनी, सुखा और विभावरी नाम वाली हैं॥३४-३५॥

काष्ठां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति। ज्योतिषां चक्रमादाय देवदेवः दिवाकरः[१]॥३६॥

देवाधिदेव भगवान् सूर्य जब सम्पूर्ण ज्योतिशचक्र (अर्थात् ग्रह, नक्षत्र एवं तारा-समूह) को साथ लेकर दक्षिण दिशा में भ्रमण करते हैं, तब धनुष से निकले बाण के समान तीव्र गति से चलते हैं॥३६॥

दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः। सप्तद्वीपेषु विप्रेन्द्रा दृश्यो नैव निशासु तत्[२]॥३७॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! दिन के मध्याह्न काल में सभी द्वीपों में और सभी ऋतुओं में सूर्य आकाश के मध्य में रहता है और वह रात्रि में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है॥३७॥

उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु संमुखम्। दिशास्वशेषासु तथा विप्रेन्द्रा विदिशासु च॥३८॥

सूर्य उदय होते समय तथा अस्त होते समय सभी दिशाओं और विदिशाओं (दो दिशाओं के मध्य में) सदैव सम्मुख (सामने) दृष्टिगत होता है॥३८॥

कुलालचक्रवत्[३] नित्यं भ्रमत्येष दिनेश्वरः[४]। करोत्येष तथा[५] रात्रिं विमुञ्चन्मेदिनीं द्विजाः॥३९॥

हे द्विजो! यह सूर्य नित्यमेव कुम्हार के चाक के समान घूमता रहता है और सांयकाल पृथिवी से विदा होकर यहां रात कर जाता है॥३९॥

दिवाकरकरैरेतत्पूरितं भुवनत्रयम्। त्रैलोक्यं कथितं सद्भिर्लोकानां मुनिपुङ्गवाः॥४०॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! ये तीनों लोक भगवान् सूर्य की किरणों से व्याप्त हैं, ऐसा सत्पुरुषों ने कहा है॥४०॥

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः। भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥४१॥

इसमें सन्देह नहीं है कि तीनों लोकों [की सृष्टि] का मूल कारण सूर्य ही है। इस सूर्य से ही देव, असुर और मनुष्य तथा अन्य चराचर जगत् के प्राणी उत्पन्न हुए हैं॥४१॥

रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राणां दिवौकसाम्। द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम्॥४२॥

रुद्र, इन्द्र, विष्णु, चन्द्र, श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा सभी देवों का जो तेज है और द्युतिमान (प्रकाशमान) द्रव्यों का जो प्रकाश है और जो सभी लोकों का तेज है, वह सूर्य से ही प्राप्त है॥४२॥

सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः। सूर्य एष तु लोकस्य मूलं परमदैवतम्॥४३॥
द्वादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिणः। निर्वहन्ति पदं तस्य तदंशा विष्णुमूर्तयः॥४४॥

१. देवदेवः पितामहः, २. निशार्धस्य च सम्मुखः, ३. कुलालचक्रपर्यन्तं, ४. यथेश्वरः, ५. यथा

यह सूर्य ही सबका आत्मा, सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी, महादेव, प्रजापति, तीनों लोकों का मूल स्रोत और परम देवता है। अन्य जो द्वादश मासों के अधिकारी आदित्य देव हैं, वे विष्णु की प्रत्यक्ष मूर्ति-स्वरूप हैं और उन्हीं सूर्य भगवान् के अंश रूप हैं॥४३-४४॥

सर्वे नमस्यन्ति सहस्रबाहुं गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराद्याः।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्मुनीन्द्राश्छन्दोमयं ब्रह्ममयं पुराणम्॥४५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे ज्योतिषां सन्निवेशे एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

गन्धर्व, देवता, नाग, किन्नर आदि (बुद्धिमान् मनुष्य आदि) सभी सहस्र किरणों वाले सूर्य नारायण को नमस्कार करते हैं। सभी मुनीश्वर विविध यज्ञों के अनुष्ठान से छन्दोमय, ब्रह्म-स्वरूप, पुराण-पुरुष भगवान् सूर्य का यजन करते हैं॥४५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में ज्योतिर्गणों के वर्णन परक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥४१॥

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

सूर्यरथवर्णनम्

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मुनिभिस्तथा। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः॥१॥

सूत जी बोले- भगवान् सूर्य के रथ में देवता, द्वादश आदित्य, मुनिगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, ग्रामणी (यक्ष), नाग तथा राक्षस भी अधिष्ठित (बैठे) रहते हैं॥१॥

धातार्यमा च मित्रश्च वरुणः शक्र एव च। विवस्वानथ पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च॥२॥
भगस्त्वष्टा च विष्णुश्च द्वादशैते दिवाकराः।
आप्याययन्ति वै भानुं वसन्तादिषु वै क्रमात्॥३॥

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु ये द्वादश आदित्य हैं। ये द्वादश आदित्य वसन्त आदि ऋतुओं में (तात्पर्य यह कि मेषार्क, वृषार्क आदि मासों में) सूर्य को आप्यायित करते हैं[1] (अर्थात् सूर्य रथ में क्रमशः विराजमान होते हैं)॥२-३॥

पुलस्त्यः पुलहश्चात्रिर्वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः। भरद्वाजो गौतमश्च कश्यपः क्रतुरेव च॥४॥
जमदग्निः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः। स्तुवन्ति देवं विविधैश्छन्दोभिस्तु यथाक्रमम्॥५॥

पुलस्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, भरद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि और कौशिक

१. यह पाठ सुसंगत नहीं है।

जैसे ये बारह ब्रह्मवादी मुनिगण क्रमानुसार प्रतिमास (एक-एक करके) भगवान् सूर्य की विविध वैदिक मन्त्रों से स्तुति करते हैं॥४-५॥

रथकृच्च रथौजाश्च रथचित्रः सुबाहुकः। रथस्वनोऽथ वरुणः सुषेणः सेनजित्तथा॥६॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च रथजित् सत्यजित्तथा। ग्रामण्यो देवदेवस्य कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्॥७॥

रथकृत्, रथौजा, रथचित्र, सुबाहुक, रथस्वन, वरुण, सुषेण, सेनजित्, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, रथजित् तथा सत्यजित् नामक बारह यक्ष क्रमानुसार एक-एक करके भगवान् सूर्य के रथ की अभीषु (वागडोर, लगाम) को संभलाते हैं॥६-७॥

अथ हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा। सर्पो व्याघ्रस्तथापश्च वातो विद्युद्दिवाकरः॥८॥
ब्रह्मोपेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञोपेतस्तथैव च। राक्षसप्रवरा ह्येते प्रयान्ति पुरतः क्रमात्॥९॥

हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वध, सर्प, व्याघ्र, अपू, वात, विद्युत्, दिवाकर, ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक ये बारह श्रेष्ठ राक्षस क्रमशः प्रतिमास उस रथ के आगे चलते हैं॥८-९॥

वासुकिः कङ्कनीलश्च तक्षकः सर्पपुङ्गवः। एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः॥१०॥
धनञ्जयो महापद्मस्तथा कर्कोटको द्विजाः। कम्बलोऽश्वतरश्चैव वहन्त्येनं यथाक्रमम्॥११॥

वासुकि, कङ्कनील, सर्पराज तक्षक, ऐलापत्र, शङ्खपाल, ऐरावत, धनञ्जय, महापद्म, कर्कोटक एवं कम्बल तथा अश्वतर संज्ञक नाग क्रमानुसार सूर्य के रथ की लगाम बनते हैं॥१०-११॥

तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूर्विश्वावसुस्तथा। उग्रसेनो वसुरुचिरर्वावसुस्तथापरः॥१२॥
चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमाः। सूर्यवर्चा द्वादशैते गन्धर्वा गायनांवराः।
गायन्ति गानैर्विविधैर्भानुं षड्जादिभिः क्रमात्॥१३॥

तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू, विश्वावसु, उग्रसेन, वसुरुचि, अर्वावसु, चित्रसेन, ऊर्णायु, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा नामक ये गायन विद्या में श्रेष्ठ बारह गन्धर्व उस रथ में क्रमशः प्रतिमास षड्ज आदि स्वरों में गाना गाते हैं॥१२-१३॥

क्रतुस्थलाऽप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थला।
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमाः॥१४॥
अनुम्लोचा च विश्वाची घृताची चोर्वशी तथा।
अन्या च पूर्वचित्तिः स्याद्रम्भा चैव तिलोत्तमा॥१५॥
ताण्डवैर्विविधैरेनं वसन्तादिषु वै क्रमात्। तोषयन्ति महादेवं भानुमात्मानमव्ययम्॥१६॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! अप्सराओं में श्रेष्ठ क्रतुस्थला, पुञ्जिकस्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचा, अनुम्लोचा, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्ति, रम्भा और तिलोत्तमा नामक अप्सराएं क्रमशः वसन्त आदि ऋतुओं में प्रतिमास एक-एक करके ताण्डव आदि नृत्यों से उस अविनाशी और परमात्म-स्वरूप महान् देव सूर्य को सन्तुष्ट करती हैं॥१४-१६॥

एवं देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु। सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेजसां निधिम्॥१७॥

इस प्रकार ये विभिन्न देवता दो दो मास के क्रमानुसार सूर्य-मण्डल में निवास करते हैं और तेजोराशि सूर्य को अपने तेज से संतृप्त (पुष्ट) करते हैं॥१७॥

ग्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्। गन्धर्वाप्सरसश्चैनं नृत्यगेयैरुपासते॥१८॥

सूर्य के रथ में स्थित मुनिगण अपने द्वारा रचित स्तोत्रों से भगवान् सूर्य की स्तुति करते हैं। गन्धर्व और अप्सराएं अपने नृत्य और गीतों से सूर्य की उपासना करते हैं॥१८॥

ग्रामणीनागभूतानि[1] कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्। सर्पा वहन्ति देवेशं यातुधानाः प्रयान्ति च।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद् रविम्॥१९॥

ग्रामणी (यक्ष), नाग और भूत (राक्षस) उस सूर्य-रथ की लगाम को संभालते हैं और राक्षस गण उस रथ के आगे आगे चलते हैं। बालखिल्य उस सूर्य को उदय से लेकर अस्त होने तक चारों ओर से घेरकर चलते हैं॥१९॥

एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च। भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीति कीर्तिताः॥२०॥

ये द्वादश आदित्य तपते हैं (तपाते हैं), वर्षा करते हैं, प्रकाश करते हैं, पवन को प्रवाहित करते हैं तथा सृष्टि करते हैं। इनका कीर्तन किये जाने पर ये प्राणियों के अशुभ कर्मों के फल को दूर करते हैं॥२०॥

एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवि भानुगाः।
विमाने च स्थिता नित्यं कामगे वातरंहसि॥२१॥

वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै क्रमात्। गोपायन्तीह भूतानि सर्वाणीह युगक्रमात्॥२२॥

ये सभी (द्वादश आदित्य, मुनि, यक्ष, नाग, गन्धर्व अप्सरा आदि) सूर्य की इच्छानुसार चलने वाले वायु के समान तेजगति वाले विमान में बैठकर युग-क्रम के अनुसार यथासमय वर्षा करते हुए, तपते हुए और प्रजाओं को आनन्दित करते हुए सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं॥२१-२२॥

एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः। यथायोगं यथासत्त्वं स एष तपति प्रभुः॥२३॥

इन द्वादश आदित्य आदि देवों के पराक्रम, तप, योग-शक्ति, और बल के अनुरूप ही वह प्रभु भगवान् सूर्य भी युगानुसार तपते हैं॥२३॥

अहोरात्रव्यवस्थानकारणं स प्रजापतिः। पितृदेवमनुष्यादीन् स सदाप्याययेद्रविः॥२४॥

वह प्रजापति भगवान् सूर्य ही दिन और रात की व्यवस्था के प्रमुख कारण हैं। वह भगवान् सूर्य पितरों, देवों और मनुष्यों को सदा तृप्त करते हैं॥२४॥

तत्र देवो महादेवो भास्वान्साक्षान्महेश्वरः। भासते वेदविदुषां नीलग्रीवः सनातनः॥२५॥

यहाँ आकाश में सूर्य के रूप में देवाधिदेव महादेव नीलकण्ठ सनातन साक्षात् भगवान् शिव ही सूर्य के रूप में वेदज्ञ विद्वानों को दृष्टिगोचर होते हैं॥२५॥

१. ग्रामणीयक्षभूतानि

स एष देवो भगवान्परमेष्ठी प्रजापतिः। स्थानं तद्विदुरादित्यं वेदज्ञा वेदविग्रहम्॥२६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे सूर्यरथवर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

वेद के ज्ञाता विद्वद्जन यह जानते हैं कि वह भगवान् सूर्य ही परमेष्ठी प्रजापति हैं और वही वेदविग्रह (शरीर-धारी वेद) हैं॥२६॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में सूर्यरथवर्णनात्मक बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

सूत उवाच

एवमेष महादेवो देवदेवः पितामहः। करोति नियतं कालं कालात्मा ह्यैश्वरीं तनुः॥१॥

सूत जी बोले- इस प्रकार यह देवाधिदेव महानतम कालात्मा देव ईश्वरीय स्वरूप वाले पितामह सूर्य ही काल को निर्धारित करते हैं॥१॥

तस्या ये रश्मयो विप्राः सर्वलोकप्रदीपकाः। तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः[1]॥२॥

हे द्विजो! उन भगवान् सूर्य की जो रश्मियाँ (किरणें) सभी लोकों को प्रकाशित करती हैं, उनमें से सात श्रेष्ठ रश्मियाँ (किरणें) ग्रहों की जननी हैं॥२॥

सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च। विश्वश्रवाः[2] पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परः॥३॥
अर्वावसुरिति ख्यातः स्वराडन्यः[3] प्रकीर्तितः। सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम्॥४॥
तिर्यगूर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्नः परिपठ्यते। हरिकेशस्तु यः प्रोक्तो रश्मिर्नक्षत्रपोषकः॥५॥

सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वश्रवा, संयद्वसु, अर्वावसु तथा स्वराट् नामक ये सात सूर्य की रश्मियाँ हैं। सुषुम्न नामक सूर्य की रश्मि चन्द्रमा को पुष्ट करती है। वह सुषुम्न नामक रश्मि तिरछी भी चलती है और ऊपर की ओर भी जाती है। हरिकेश नामक रश्मि नक्षत्रों को पुष्ट करती है॥३-५॥

विश्वकर्मा तथा रश्मिर्बुधं पुष्णाति सर्वदा। विश्वश्रवास्तु यो रश्मिः शुक्रं पुष्णाति नित्यदा॥६॥

विश्वकर्मा नामक रश्मि सदैव बुध ग्रह को पुष्ट करती है। विश्वश्रवा नामक रश्मि सदैव शुक्र को पुष्ट करती है॥६॥

संयद्वसुरिति ख्यातो यः पुष्णाति स लोहितम्। बृहस्पतिं सुपुष्णाति रश्मिरर्वावसुः प्रभोः।
शनैश्चरं प्रपुष्णाति सप्तमस्तु स्वराट् तथा॥७॥

१. गृहमेधिनः, २. विश्वश्रवा के स्थान पर विश्वव्यचा पाठ भी है।, ३. स्वरकः सप्त कीर्तिताः

संयद्वसु नामक रश्मि मङ्गल को पुष्ट करती है। भगवान् सूर्य की अर्वावसु नामक रश्मि बृहस्पति को पुष्ट करती है। सूर्य की स्वराट् नामक सातवीं रश्मि शनिग्रह को पुष्ट करती है॥७॥

एवं सूर्यप्रभावेण सर्वा नक्षत्रतारकाः। वर्धन्ते वर्धिता नित्यं नित्यमाप्याययन्ति च॥८॥

इस प्रकार सूर्य के प्रभाव से सभी [ग्रह] नक्षत्र तथा तारे पुष्ट होते हैं और तव स्वयं पुष्ट होने पर दूसरों को भी नित्य पुष्ट करते हैं॥८॥

दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव नित्यशः। आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तमसामपि॥९॥

दिव्यलोक एवं भूलोक के तेज तथा रात्रियों के अन्धकार को नित्य ग्रहण करने के कारण सूर्य को आदित्य कहा गया है॥९॥

आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः। नादेयं चैव सामुद्रं कौप्यं चैव सहस्रदृक्।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव यच्च कुल्यादिकं पयः॥१०॥

वह हजारों नेत्रों वाले सूर्य अपनी सहस्र किरणों से नदियों, समुद्रों, कूपों तथा गूलों (नहरों) के तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् के जल को अवशोषित करते हैं॥१०॥

तस्य रश्मिसहस्रन्तु शीतवर्षोष्णनिस्रवम्। तासाञ्चतुःशता नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः॥११॥

उन भगवान् सूर्य की सहस्र किरणें शीत (जाड़ा), वर्षा और उष्णता (ताप, गरमी) उत्पन्न करती हैं। उन सहस्र किरणों में से विविध स्वरूप वाली चार सौ रश्मियाँ वर्षा करती हैं॥११॥

चन्द्रगाश्चैव गाहाश्च काञ्चनाः शातनास्तथाः[1]। अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः॥१२॥

वे चन्द्रगा, गाहा, काञ्चना और शातना नामक सभी अमृता नाम से विख्यात रश्मियाँ वर्षा करती हैं॥१२॥

हिमोद्वाहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशतं पुनः। रेष्यो मेष्यश्च वास्यश्च ह्लादिन्यः हिमसर्जनाः।
चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीतास्ताश्चैव गभस्तयः॥१३॥

हिम अर्थात् शीत को लाने वाली नाड़ी स्वरूपिणी रश्मियाँ तीन सौ हैं। रेषी, मेषी, वासी, ह्लादिनी तथा हिमसर्जना नामक ये सभी रश्मियाँ चन्द्रा नाम वाली हैं और पीतवर्ण की हैं॥१३॥

शुक्लाश्च कुङ्कुमाश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा। शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिविधा घर्मसर्जनाः॥१४॥

भगवान् सूर्य की शुक्ल तथा कुङ्कुम वर्ण की एवं विश्वभृत् संज्ञक तीन प्रकार की सभी किरणें शुक्ल नाम की हैं और वे सभी गरमी (गीष्म ऋतु) को बनाती हैं॥१४॥

एवं बिभर्ति ताभिः स मनुष्यपितृदेवताः। मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितृनपि।
अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रिभिस्त्रींस्त्रींस्तर्पयत्यसौ॥१५॥

उन रश्मियों से वह सूर्य भगवान् मनुष्यों, पितरों तथा देवों का पालन करते हैं। वह मनुष्यों को औषधियों (अन्न आदि) से, पितरों को स्वधा से तथा देवों को अमृत से तृप्त करते हैं। इस प्रकार वह क्रमशः औषधि आदि तीनों से मनुष्य आदि तीनों को तृप्त करते हैं॥१५॥

---

१. वन्दनाश्चैव याज्याश्च केतना भूतनासतया। (पाठान्तर)

वसन्ते ग्रीष्मके चैव शतैःस तपति त्रिभिः[1]। शरद्यपि च वर्षास्तु चतुर्भिः सम्प्रवर्षति।
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजति त्रिभिः॥१६॥

वसन्त ऋतु में तथा गीष्म ऋतु में सूर्य तीन सौ किरणों से तपते हैं। वर्षा ऋतु में तथा शरद् ऋतु में वह चार सौ किरणों से तपते हैं। हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में सूर्य तीन सौ किरणों से हिम (शीत) का उत्सर्जन करते (ठण्ड को बढ़ाते) हैं॥१६॥

वरुणो माघमासे तु सूर्यः पूषा तु फाल्गुने। चैत्रे मासे भवेदंशो[2] धाता वैशाखतापनः॥१७॥
ज्येष्ठे मासे भवेदिन्द्रः आषाढे तपते रविः। विवस्वान् श्रावणे मासि प्रौष्ठपद्यां भगः स्मृतः॥१८॥
पर्जन्योऽश्वयुजि त्वष्टा[3] कार्तिके मासि भास्करः। मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः॥१९॥

माघ मास में वरुण देव सूर्य (आदित्य) रूप में [रथ पर] विराजमान होते हैं, फाल्गुन मास में पूषा, चैत्र मास में अंश, वैशाख मास में धाता, ज्येष्ठ मास में इन्द्र, आषाढ में सविता, श्रावण में विवस्वान् भाद्रपद में भग, आश्विन में पर्जन्य, कार्तिक मास में त्वष्टा, मार्गशीर्ष में मित्र एवं पौष मास में सनातन विष्णु ही उस रथ में विराजमान रहते हैं॥१७-१९॥

पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि। षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंऽशः[4] सप्तभिस्तथा॥२०॥

भगवान् सूर्य के दायित्व का निर्वाह वरुण देव पाँच हजार रश्मियों से करते हैं, पूषा छः हजार रश्मियों से अंश नामक आदित्य सात हजार रश्मियों से सूर्य का कार्य करते हैं॥२०॥

धाताष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिश्च शतक्रतुः। विवस्वान्दशभिः पाति पात्येकादशभिर्भगः॥२१॥

धाता आठ हजार रश्मियों से, इन्द्र नौ हजार रश्मियों से, विवस्वान् (सविता) दश सहस्र रश्मियों से और भग एकादश हजार रश्मियों से सूर्य का कार्य करते हैं॥२१॥

सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिस्तपेत्। अर्यमा दशभिः पाति पर्जन्यो नवभिस्तथा।
षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति विश्वधृक्॥२२॥

सात हजार रश्मियों से मित्र, आठ हजार रश्मियों से धाता, दश हजार रश्मियों से अर्यमा और नौ हजार रश्मियों से पर्जन्य और विश्व को धारण करने वाले विष्णु छः हजार रश्मियों से तपते (प्रकाश करते) हैं॥२२॥

वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभः। श्वेतो वर्षासु विज्ञेयः पाण्डुरः शरदि प्रभुः।
हेमन्ते ताम्रवर्णः स्याच्छिशिरे लोहितो रविः॥२३॥

वसन्त ऋतु में सूर्य कपिल वर्ण (भूरे रंग) के, ग्रीष्म ऋतु में स्वर्णिम (सुनहरे) वर्ण के, वर्षा ऋतु में श्वेत वर्ण के, शरद् ऋतु में हल्का पीला पन वाले, हेमन्त ऋतु में ताम्रवर्ण के तथा शिशिर ऋतु में लोहित (लाल) रंग के होते हैं॥२३॥

ओषधीषु बलं[5] धत्ते स्वधामपि पितृष्वथ। सूर्योऽमरेष्वमृतं तु त्रयं त्रिषु नियच्छति॥२४॥

वह सूर्य [मनुष्यों के लिए] औषधियों में बलं (अर्थात् पोषक शक्ति), पितरों के लिए स्वधा तथा

१. षड्भिःसतपति प्रभुः, २. स देवेशो, ३. पर्जनयश्चाश्विने मासि, ४. देवेशः, ५. कलां

देवों के लिए अमृत की सृष्टि में योगदान देते हैं। इस प्रकार तीन प्रकार की सृष्टियों के पोषण हेतु तीन प्रकार के साधन देते हैं॥२४॥

अन्ये चाष्टौ ग्रहा ज्ञेयाः सूर्येणाधिष्ठिता द्विजाः। चन्द्रमाः सोमपुत्रश्च शुक्रश्चैव बृहस्पतिः।
भौमो मन्दस्तथा राहुः केतुमानपि चाष्टमः॥२५॥

अन्य आठ ग्रह चन्द्रमा, मंगल, सोमका पुत्र बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु-ये सभी सूर्य से अधिष्ठित-सूर्य के अधीन होते हैं॥२५॥

सर्वे ध्रुवे निबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः। भ्राम्यमाणा यथायोगं भ्रमन्त्यनु दिवाकरम्॥२६॥

वायु रूपी रश्मियों से सम्बद्ध (बँधे हुए) ये सभी ग्रह ध्रुव के साथ बँधे हुए हैं और [वात रश्मियों के द्वारा] यथाविधि घुमाये गये ये ग्रह सूर्य के अनुगामी होकर घूमते हैं॥२६॥

अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितास्तथा। यस्माद्वहति तान्वायुः प्रवहस्तेन स स्मृतः॥२७॥

हे द्विजो! वायु रूपी चक्र के द्वारा घुमाये गये ये ग्रह कुम्हार के चक्र के समान घूमते हैं। उन ग्रहों को वायु वहन करता है (घुमाता) है, अतः उसे प्रवह कहा जाता है॥२७॥

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः। वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन क्षपाकरः॥२८॥
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि रविर्यथा। ह्रासवृद्धी तु विप्रेन्द्रा [1]रश्मीनां सूर्यवत् स्मृता॥२९॥

सोम (चन्द्रमा) का रथ तीन चक्रों (पहियों) वाला है और उसमें कुन्द पुष्प के समान श्वेत वर्ण के दश अश्व बाँयी और दाँयी ओर जुते हुए हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस रथ से चन्द्रमा भी सूर्य के समान ही अपने मार्ग (कक्षा) में स्थित नक्षत्रों के मध्य से विचरण करता है। जैसे सूर्य की रश्मियों में कभी वृद्धि और कभी न्यूनता होती है तद्वत चन्द्रमा की कलाओं में ह्रास (क्षय) और वृद्धि होती रहती है॥२८-२९॥

स सोमः शुक्लपक्षे तु भास्करे परतः स्थिते। आपूर्यते परस्यान्ते सततं दिवसक्रमात्॥३०॥
क्षीणं पीतं सुरैः सोममाप्याययति नित्यदा। एकेन रश्मिना विप्राः सुषुम्नाख्येन भास्करः॥३१॥

वह चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में सूर्य के पर (=पृष्ठ?) भाग में स्थित होने पर क्रमशः प्रतिदिन पूर्णता को प्राप्त करता जाता है। तदनन्तर देवों के द्वारा चन्द्रकलाओं के पान करने से कृष्णपक्ष में क्षीण हुए उस चन्द्रमा को शुक्ल पक्ष में सूर्य सुषुम्न नामक अमृत स्वरूप एक रश्मि से प्रतिदिन नित्य पुष्ट करता है॥३०-३१॥

एषा सूर्यस्य वीर्येण सोमस्याप्यायिता तनुः। पौर्णमास्यां स दृश्येत सम्पूर्णो दिवसक्रमात्॥३२॥

सूर्य के तेज से आप्यायित (पोषित) चन्द्रमा का आकार प्रतिदिन बढ़ते हुए पूर्णिमा को सम्पूर्ण रूप में दृष्टिगत होता है॥३२॥

सम्पूर्णमर्द्धमासेन तं सोमममृतात्मकम्। पिबन्ति देवता विप्रा यतस्तेऽमृतभोजनाः॥३३॥

हे ब्राह्मणो! उस अमृतमय सम्पूर्ण चन्द्रमा में स्थित अमृत का आधे मास (पूरे कृष्णपक्ष) तक देवता पान करते हैं, क्योंकि वह अमृत ही उनका भोजन है॥३३॥

ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके। अपराह्ने पितृगणा जघन्यं पर्युपासते॥३४॥

१. ध्रुवाधाराणि सर्वदा

तब पन्द्रहवें भाग में कला मात्र अर्थात् अत्यल्प शेष रहे अमृत का पान अपराह्न में पितृगण करते हैं॥ ३४॥

पिबन्ति द्विलवं कालं शिष्टा तस्य कला तु या। सुधामृतमयीं पुण्यां तामिन्दोरमृतात्मिकाम्॥ ३५॥

देवों के पीने के बाद अवशिष्ट चन्द्रमा की अमृतमय एवं अमरत्वप्रद कला का पान पितृगण दो लव काल तक करते हैं॥ ३५॥

निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्। मासं तृप्तिमवाप्यैव पितरः सन्ति निर्वृताः॥ ३६॥

चन्द्रमा की किरणों से निःसृत (निकले हुए) स्वधा रूपी अमृत का पान करके तृप्त होकर पितर एक मास पर्यन्त प्रसन्न रहते हैं॥ ३६॥

न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा[1] देवैस्तु पीयते। एवं सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमाः॥ ३७॥

देवों के द्वारा अमृत का पान किये जाने पर भी चन्द्रमा का विनाश नहीं होता है। हे सज्जनो! चन्द्रमा की कलाओं का ह्रास और वृद्धि सूर्य के कारण ही होती है॥ ३७॥

सोमपुत्रस्य चाष्टाभिर्वाजिभिर्वायुवेगिभिः। वारिजैः स्यन्दनो युक्तस्तेनासौ याति सर्वतः॥ ३८॥

चन्द्रमा के पुत्र बुध के रथ में वायु के समान तेज गति वाले और जल में उत्पन्न आठ अश्व जुते रहते हैं। वह बुध उसी रथ से सर्वत्र गमन करता है॥ ३८॥

शुक्रस्य भूमिजैरश्वैः स्यन्दनो दशभिर्वृतः। अष्टभिश्चापि भौमस्य रथो हैमः सुशोभनः॥ ३९॥

शुक्र का रथ भूमि से उत्पन्न दश घोड़ों से युक्त है। मङ्गल के स्वर्ण से निर्मित रथ में आठ घोड़े जुते रहते हैं॥ ३९॥

बृहस्पते रथोऽष्टाश्वः स्यन्दनो हेमनिर्मितः। रथस्तमोमयोऽष्टाश्वो मन्दस्यायसनिर्मितः॥ ४०॥

बृहस्पति के स्वर्ण निर्मित रथ में आठ अश्व जुते रहते हैं। शनि का रथ लोहे का और तमोमय है और उसमें आठ अश्व जुते रहते हैं॥ ४०॥

स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथाष्टाभिर्हयैर्वृतः। एते महाग्रहाणां वै समाख्याता रथाश्च वै॥ ४१॥

स्वर्भानु (राहु) तथा केतु के रथ में आठ अश्व लगे रहते हैं। यह सब महाग्रहों के रथ बतलाये गये हैं॥ ४१॥

सर्वे ध्रुवे महाभागा निबद्धा वायुरश्मिभिः। ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः।
भ्रमन्ति भ्रामयन्त्येनं सर्वाण्यनिलरश्मिभिः॥ ४२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे भुवनकोशे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

हे महाभाग्यशाली मुनियो! ये सभी ग्रह, नक्षत्र और तारागण वायु की रश्मियों के द्वारा ध्रुव से सम्यक्तया संबद्ध (बाँधे गये) हैं और उन वात-रश्मियों के द्वारा परिचालित होकर ये सभी (अपनी अपनी कक्षाओं में) भ्रमण करते हैं तथा (ध्रुव को भी) भ्रमण कराते हैं॥ ४१-४२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में भुवनकोश-वर्णन-प्रसंग में तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४३॥

❖❖❖

१. सुधा चैव सुपीयते

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः
भुवनविन्यासवर्णनम्

सूत उवाच

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकः कोटियोजनविस्तृतः। कल्पाधिकारिणस्तत्र संस्थिता द्विजपुङ्गवाः॥१॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! ध्रुवतारे के ऊपर एक करोड़ योजन विस्तार वाला महर्लोक है। वहाँ कल्प के अधिकारी देवता निवास करते हैं॥१॥

जनलोको महर्लोकात्तथा कोटिद्वयात्मकः। सनकाद्यास्तथा तत्र संस्थिता ब्रह्मणः सुता॥२॥

महर्लोक के ऊपर दो करोड़ योजन विस्तार वाला जनलोक है। वहाँ ब्रह्मा के पुत्र सनक, सनन्दन आदि निवास करते हैं॥२॥

जनलोकात्तपोलोकः कोटित्रयसमन्वितः। वैराजास्तत्र वै देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः॥३॥

जनलोक के ऊपर तीन करोड़ योजन विस्तृत तपोलोक है। वहाँ वैराज नामक देवगण सन्ताप रहित होकर निवास करते हैं॥३॥

तपो लोकात्[1]सत्यलोकः कोटिषट्केन संयुतः। अपुनर्मारको नाम ब्रह्मलोकस्तु स स्मृतः॥४॥

तपोलोक के ऊपर छः करोड़ योजन विस्तार वाला सत्यलोक है। उस अपुनर्मारक (पुनः मृत्यु से रहित) लोक को ब्रह्मलोक कहा गया है॥४॥

अत्र लोकगुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः। आस्ते स योगिभिर्नित्यं पीत्वा योगामृतं परम्॥५॥

वहाँ पर लोक-गुरु विश्वात्मा और विश्व-भावन (विश्व के स्रष्टा) ब्रह्मा परम योग रूपी अमृत का पान करके योगियों के साथ निवास करते हैं॥५॥

वसन्ति यतयः शान्ता नैष्ठिका ब्रह्मचारिणः। योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनः॥६॥

वहाँ पर शान्त स्वभाव वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगी, तपस्वी, सिद्ध तथा परमेष्ठी (ब्रह्मा) के मन्त्र का जप करने वाले साधक निवास करते हैं॥६॥

द्वारं तद्योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम्। तत्र गत्वा न शोचन्ति स विष्णुः स च शङ्करः॥७॥

परम पद को प्राप्त करने वालों के लिए वह सत्यलोक मुख्य द्वार के समान है। वहाँ जाकर [कोई भी मनुष्य] शोक नहीं करता, क्योंकि वह स्वयं विष्णु रूप और शिव स्वरूप हो जाता है॥७॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरं तस्य दुरासदम्। न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकुलम्॥८॥

सत्यलोक का वह पुर कोटि सूर्यों के समान देदीप्यमान और दुष्प्राप्य है। ज्वाला समूह से व्याप्त उस लोक का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ॥८॥

तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे। शेते तत्र हरिः श्रीमान् योगी मायामयः परः॥९॥

---

१. प्राजापत्यात्

ब्रह्मा के उस पुर में भगवान् विष्णु का भी एक भवन है। वहाँ श्रीपति मायामय परम योगी भगवान् विष्णु शयन करते हैं॥९॥

स विष्णुलोकः कथितः पुनरावृत्तिवर्जितः। यान्ति तत्र महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम्॥१०॥

उस विष्णु लोक को पुनरागमन की प्रवृत्ति (पुनर्जन्म) से रहित कहा गया है अर्थात् वहाँ जाने वालों का इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता है। भगवान् विष्णु की शरण में स्वयं को समर्पित करने वाले व्यक्ति ही वहाँ पहुँचते हैं॥१०॥

ऊर्ध्वं तद् ब्रह्मसदनात्पुरं ज्योतिर्मयं शुभम्। वह्निना च परिक्षिप्तं तत्रास्ते भगवान् हरः॥११॥

ब्रह्मा के भवन से ऊपर अग्नि से परिवेष्टित (घिरा हुआ) ज्योतिर्मय शुभ पुर है, वहाँ भगवान् शिव निवास करते हैं॥११॥

देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः। योगिभिः शतसाहस्रैर्भूतै रुद्रैश्च संवृतः॥१२॥

सैकड़ों, हजारों मनीषियों (विद्वानों) तथा योगियों, भूतों एवं रुद्रों से घिरे हुए वह महादेव शिव वहाँ देवी पार्वती के साथ रहते हैं॥१२॥

तत्र संयमिनो यान्ति[1] भक्ता वै ब्रह्मचारिणः। महादेवपराः शान्तास्तापसाः सत्यवादिनः॥१३॥

वहाँ संयमी (इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाले) भक्त, ब्रह्मचारी, शिव-भक्तिनिरत, शान्त और सत्यवादी, तपस्वी जन ही जाते हैं॥१३॥

निर्ममा निरहङ्काराः कामक्रोधविवर्जिताः। द्रक्ष्यन्ति ब्राह्मणा युक्ता रुद्रलोकं[2] तु नेतेरे॥१४॥

माया-मोह रहित, अहंकार रहित, कामक्रोध-रहित एवं युक्त (सत्कर्म में संलग्न) ब्राह्मण ही उस रुद्रलोक को देख पाते हैं, अन्य कोई नहीं॥१४॥

एते सप्त महालोकाः कीर्तिताः पृथिव्यादयः[3]। महातलादयश्चाधः पातालाः सन्ति वै द्विजाः॥१५॥

हे द्विजो! ये पृथिवी आदि सात महालोक कहे गये हैं। पृथिवी के नीचे भी महातल आदि सात लोक हैं॥१५॥

महातलं च पातालं सर्वरत्नोपशोभितम्। प्रासादैर्विविधैः शुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम्॥१६॥

महातल नामक पाताल सभी रत्नों से सुसम्पन्न और सुशोभित तथा विविध प्रकार के भवनों तथा उज्ज्वल देवालयों से युक्त है॥१६॥

अनन्तेन च संयुक्तं मुचुकुन्देन धीमता। नृपेण बलिना चैव पातालं स्वर्गवासिना॥१७॥

उस महातल लोक में अनन्त नामक नाग, बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्द तथा पाताल रूपी स्वर्ग में निवास करने वाले राजा बलिका भी निवास है॥१७॥

शैलं रसातलं विप्राः शार्करं हि तलातलम्। पीतं सुतलमित्युक्तं वितलं विद्रुमप्रभम्।
सितं च वितलं प्रोक्तं तलं चैव सितेतरम्॥१८॥

हे विप्रो! रसातल नामक पाताल पर्वतों से पूर्ण है, तलातल कङ्कणों से युक्त है, सुतल नामक

---

१. ते यान्ति निरता, २. रुद्रलोकः स वै स्मृतः, ३. पृथिव्याः परिकीर्तिताः

पाताल पीतवर्ण का और वितल नामक पाताल मूँगे के समान वर्ण का है। वितल (?) नामक पाताल श्वेतवर्ण का तथा तल नामक पाताल कृष्णवर्ण का है॥१८॥

सुपर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम्। रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्च निषेवितम्॥१९॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! रसातल नामक शुभ पाताल गरुड, वासुकि नाग आदि के द्वारा सेवित है॥१९॥

विरोचनहिरण्याक्षतारकाद्यैश्च सेवितम्। तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम्॥२०॥

सभी प्रकार से सुशोभित तलातल नामक पाताल विरोचन, हिरण्याक्ष तथा तक्षक आदि के द्वारा सेवित है॥२०॥

वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः। पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलञ्च तथा परैः॥२१॥

सुतलनामक पाताल वैनतेय (गरुड) आदि पक्षियों, कालनेमि आदि असुरों एवं पूर्वकालीन देवों से व्याप्त है॥२१॥

वितलं यवनाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा। जम्भकाद्यैस्तथा नागैः प्रह्लादेनासुरेण च॥२२॥

वितलनामक पाताल यवनों, तारक, अग्नि मुख आदि असुरों एवं जम्भक आदि नागों एवं प्रह्लाद नामक असुर से सेवित है॥२२॥

वितलं चैव विख्यातं कम्बलाहीन्द्रसेवितम्। महाजम्भेन वीरेण हयग्रीवेण धीमता॥२३॥

वितल नामक पाताल कम्वल नामक नागराज, महाजम्भ नामक वीर, बुद्धिमान् हयग्रीव से युक्त है॥२३॥

शंकुकर्णेन सहितं[1] तथा नमुचिपूर्वकैः। तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तलं चैव सुशोभनम्॥२४॥

शङ्कुकर्ण, नमुचि तथा अन्य विविध नाग तल नामक सुन्दर पाताल में रहते हैं॥२४॥

तेषामधस्तान्नरकाः मायाद्याः[2] परिकीर्तिताः। पापिनस्तेषु पच्यन्ते न ते वर्णयितुं क्षमाः॥२५॥

उन पातालों के नीचे माया आदि नरक बतलाये गये हैं। उन नरकों में पापियों को यातना दी जाती है। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता॥२५॥

पातालानामधश्चास्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः। कालाग्निरुद्रो योगात्मा नारसिंहोऽपि माधवः॥२६॥
योऽनन्तः पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दनः। तदाधारमिदं सर्वं स कालाग्निं समाश्रितः॥२७॥

उन पातालों के नीचे शेषनाग नामक भगवान् विष्णु की मूर्ति स्थित है, जिसको कालाग्नि रुद्र, योगात्मा, नारसिंह तथा माधव भी कहा जाता है। उन नाग रूपी जनार्दन देव को अनन्त भी कहा जाता है। ये सम्पूर्ण पृथवी आदि लोक तथा सभी पाताल उन्हीं अनन्त देव पर आधारित हैं और वह स्वयं कालाग्नि पर आधारित हैं॥२६-२७॥

तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनोत्थितः। विषज्वालामयश्चेशो जगत् संहरति स्वयम्॥२८॥

उन शेषनाग में प्रविष्ट होकर महायोगी काल विष की ज्वाला से युक्त ईश्वर उनके (शेषनाग के) मुख से निकल कर स्वयं इस जगत् का संहार करता है॥२८॥

---

१. सम्भिन्नं, २. कूर्माद्याः

सहस्रमायोऽप्रतिमः[१] संहर्ता शङ्करोद्भवः। तामसी शाम्भवी मूर्तिः कालो लोकप्रकालनः॥२९॥

॥इतिं श्रीकूर्मपुराणे भुवनविन्यासे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

सहस्र मायाओं से युक्त अप्रितम (अतुलनीय), भगवान् रुद्र से आविर्भूत शङ्कर की तामसी मूर्ति रूपी वह संहारक काल सम्पूर्ण लोक का संहारक है॥२९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में भुवन-विन्यास-प्रसंग में चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशे पर्वतादिसंख्यावर्णनम्

सूत उवाच

एतद् ब्रह्माण्डमाख्यातं चतुर्दशविधं महत्। अतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्यास्य निर्णयम्॥१॥

सूत जी बोले- मैंने यह चौदह प्रकार का (भूमि सहित ऊपर के सात लोक तथा भूमि के नीचे के सात लोक) ब्रह्माण्ड बतलाया है। अब मैं इस भूलोक का निर्णय (अर्थात् विवरण) प्रस्तुत करूँगा॥१॥

जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मलिरेव च। कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः॥२॥

इस भूलोक में जम्बूद्वीप प्रधान है। तदनन्तर उसके बाहर क्रमशः प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च और शाकद्वीप तथा सातवाँ पुष्कर द्वीप है॥२॥

एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः। द्वीपाद् द्वीपो महानुक्तः सागराच्चापि सागरः॥३॥

ये सात महाद्वीप क्रमशः सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। एक द्वीप से उसके बाहर का दूसरा द्वीप तथा एक सागर से दूसरा सागर अपेक्षाकृत महान् है॥३॥

क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः। दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चेति सागराः॥४॥

क्षारोदक (नमकीन जल का समुद्र), इक्षुरसोदक, सुरोदक, घृतोदक, दध्योदक, क्षीरोदक तथा स्वादूदक नामक महासागर हैं॥४॥

पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता। द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समन्ततः॥५॥

समुद्रों सहित यह पृथिवी पचास करोड़ योजन विस्तार वाली बतलायी गयी है और यह सभी ओर से (चारों दिशाओं से) सात द्वीपों से युक्त है॥५॥

जम्बूद्वीपः समस्तानां मध्ये चैव व्यवस्थितः। तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः॥६॥

१. सहस्रमारिप्रतिमः

जम्बूद्वीप सभी द्वीपों के मध्य में स्थित है। उसके मध्य में स्वर्ण के समान कान्तिवाला महामेरु नामक पर्वत है॥६॥

चतुरशीतिसाहस्रो योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥७॥

उस महामेरु पर्वत की ऊँचाई चौरासी हजार योजन है और वह धरती के नीचे सोलह योजन गहराई तक प्रविष्ट है तथा उसकी चोटी का भाग बत्तीस योजन चौड़ा है॥७॥

मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः। भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः॥८॥

उस पर्वत का मूल (जड़) वाला भाग सभी ओर सोलह हजार योजन विस्तृत है। यह महामेरु पर्वत पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका रूप में स्थित है॥८॥

हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥९॥

इस महामेरु पर्वत के दक्षिण में हिमवान्, हेमकूट और निषध नामक पर्वत तथा उत्तर में नील, श्वेत, एवं शृङ्गी नामक वर्ष पर्वत हैं॥९॥

लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे। सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥१०॥

इन पर्वतों में से [हिमवान् व हेमकूट नामक] दो पर्वत एक लाख योजन परिमाण वाले (अर्थात् लम्बाई वाले) हैं और अन्य पर्वत उन दोनों की अपेक्षा दश योजन कम विस्तार (कम लम्बाई) वाले हैं। उनकी ऊँचाई दो हजार योजन तथा उतनी ही (दो हजार योजन) उनकी चौड़ाई भी है॥१०॥

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम्। हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः॥११॥
रम्यकञ्चोत्तरं वर्षं तस्यैवानुहिरण्मयम्। उत्तरे कुरवश्चैव यथैते भारतास्तथा॥१२॥

दे द्विजो! [जम्बूद्वीप के नौ वर्षों में से] मेरु के दक्षिण में भारत वर्ष है। तदनन्तर किम्पुरुष वर्ष और तब हरिवर्ष है। उत्तर में रम्यक्, हिरण्मय एवं उत्तरकुरु वर्ष स्थित हैं। ये सभी वर्ष भारतवर्ष के समान हैं॥११-१२॥

नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः। इलावृतञ्च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः॥१३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इन वर्षों में से प्रत्येक वर्ष नौ हजार योजन विस्तार वाला है। इन वर्षों के मध्य में इलावृत नामक वर्ष है और उसके मध्य में सर्वोच्च मेरु पर्वत है॥१३॥

मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रविस्तरम्। इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वताः॥१४॥
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः। पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥१५॥
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः। कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च॥१६॥

हे महाभागो! मेरु के चारों ओर नौ हजार योजन विस्तृत इलावृत नामक वर्ष है, जिसमें चार पर्वत हैं, जिनकी ऊँचाई दश हजार योजन है। उन चार पर्वतों में से पूर्व दिशा में मन्दर पर्वत, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में विपुल तथा उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत है। उन पर्वतों में क्रमशः कदम्ब, जम्बू, पिप्पल तथा वट के वृक्ष हैं॥१४-१६॥

जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महर्षयः। महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि च॥१७॥

हे महर्षियो! वह जम्बूवृक्ष ही जम्बूद्वीप के नाम का हेतु रहा है। उस जम्बू वृक्ष के फल विशाल हाथी के तुल्य प्रमाण के होते हैं॥१७॥

पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः। रसेन तस्याः प्रख्याता तत्र जम्बूनदी गिरौ। सरित्प्रवर्तते चापि पीयते तत्र वासिभिः॥१८॥

वे फल पर्वत के पृष्ठ पर सभी ओर गिरकर फट जाते हैं। तब उन फलों के रस से प्रख्यात जम्बूनदी उस पर्वत से प्रवाहित होती है और वहाँ के निवासी उस नदी का रस (जल) पीते हैं॥१८॥

न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः। न तापः स्वच्छमनसां नासौख्यं तत्र जायते॥१९॥

[उस नदी का जल पीने वाले] स्वच्छ मन वाले वहाँ के निवासियों के शरीर से न तो पसीना आता है, न दुर्गन्ध आती है, न उनको वृद्धावस्था आती है, न उनकी इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं न कोई सन्ताप या व्याधि और न कोई कष्ट ही उनको होता है॥१९॥

तत्तीरमृद्रसं प्राप्य वायुना सुविशोषितम्। जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥२०॥

उस नदी के तट की मिट्टी उन जम्बू फलों के रस से ओत-प्रोत होकर वायु के द्वारा सुखाये जाने पर जाम्बूनद नामक स्वर्ण (सोना) बन जाती है और उससे सिद्धजनों के आभूषण बनते हैं॥२०॥

भद्राश्वः पूर्वतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम्॥२१॥

मेरु पर्वत के पूर्व में भद्राश्व नामक तथा पश्चिम में केतुमाल नामक दो वर्ष हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! उन दोनों के मध्य में इलावृत वर्ष है॥२१॥

वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम्॥२२॥

उस वर्ष में पूर्व की ओर चैत्ररथ नामक वन, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज नामक वन तथा उत्तर में सवितृवन स्थित है॥२२॥

अरुणोदं महाभद्रमसितोदश्च मानसम्। सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा॥२३॥

उन वनों में क्रमशः अरुणोद, महाभद्र, असितोद एवं मानस नामक चार सरोवर हैं। ये चारों सरोवर सदा देवों के उपभोग हेतु हैं॥२३॥

सितान्तश्च कुमुद्वांश्च कुररी माल्यवांस्तथा। वैकङ्को मणिशैलश्च [1]वृक्षवांश्चाचलोत्तमः॥२४॥
महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्मन्दरस्तथा। वेणुमांश्चैव मेघश्च निषधो देवपर्वतः। इत्येते देवरचिताः सिद्धावासाः प्रकीर्तिताः॥२५॥

सितान्त, कुमुद्वान्, कुररी, माल्यवान्, वैकङ्क, मणिशैल, वृक्षवान (ऋक्षवान्), महानील, रुचक, सबिन्दु, मन्दर, वेणुमान, मेघ, निषध तथा देवपर्वत सहित ये सभी पर्वत देवों के द्वारा सेवित हैं। इन सभी पर्वतों में सिद्धों का निवास बतलाया गया है॥२४-२५॥

अरुणोदस्य सरसः पूर्वतः केसराचलः। त्रिकूटशिखरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा॥२६॥
निषधो वसुधारश्च कलिङ्गस्त्रिशिखस्तथा। समूलो [2]वसुवेदिश्च कुरुरुश्चैव सानुमान्॥२७॥

---

१. ऋक्षवान्, २. वसुधारः

ताम्रातश्च विशालश्च कुमुदो वेणुपर्वतः। एकशृङ्गो महाशैलो गजशैलश्च पिञ्जकः[१]॥ २८॥
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः। इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः॥ २९॥

अरुणोद नामक सरोवर के पूर्व में केसराचल, त्रिकूटशिखर, पतङ्ग, रुचक, निषध, वसुधार, कलिङ्ग, त्रिशिख, समूल, वसुवेदि (या वसुधार) कुरुरु, सानुमान् ताम्रात, विशाल, कुमुद, वेणुपर्वत, एकशृङ्ग, महाशैल, गजशैल, पिञ्जक, पञ्चशैल, कैलास, पर्वतराज हिमवान् सहित ये सभी उत्तम पर्वत देवों के द्वारा चरित (तात्पर्य यह है कि देवों के विचरण स्थान, निवास-स्थान) हैं॥ २६-२९॥

महाभद्रस्य सरसो दक्षिणे केसराचलः। शिखिवासश्च वैदूर्यः कपिलो गन्धमादनः॥ ३०॥
जारुधिश्च सुराम्बुश्च[२] सर्वगन्धाचलोत्तमः[३]। सुपार्श्वश्च सुपक्षश्च कङ्कः कपिल एव च॥ ३१॥
विरजो[४] भद्रशैलश्च सुरसश्च महाबलः। अञ्जनो मधुमांस्तद्वच्चित्रशृङ्गो महालयः॥ ३२॥
कुमुदो मुकुटश्चैव पाण्डुरः कृष्ण एव च। पारिजातो महाशैलस्तथैव कपिलाचलः॥ ३३॥
सुषेणः पुण्डरीकश्च महामेघस्तथैव च। एते पर्वतराजानः सिद्धगन्धर्वसेविताः॥ ३४॥

महाभद्र नामक सरोवर के दक्षिण में केसराचल, शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन, जारुधि, सुराम्बु (या सुगन्धि), सर्वगन्ध नामक उत्तम पर्वत (या श्रीशृङ्ग नामक उत्तम पर्वत) सुपार्श्व, सुपक्ष, कङ्क, कपिल, विरज, भ्रदशैल, सुरस, महाबल, अञ्जन, मधुमान्, चित्रशृङ्ग, महालय, कुमुद, मुकुट, पाण्डुर, कृष्ण, पारिजात, महाशैल, कपिलाचल, सुषेण, पुण्डरीक तथा महामेघ सहित ये सभी पर्वतराज सिद्धों और गन्धर्वों से सेवति हैं अर्थात् वे यहाँ विचरण या निवास करते हैं॥ ३०-३४॥

असितोदस्य सरसः पश्चिमे केसराचलः। शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसो नागस्तथैव च॥ ३५॥
कालाञ्जनः शुक्रशैलो नीलः कमल एव च।
पारिजातो महाशैलः शैलः कनक एव च॥ ३६॥
पुष्पकश्च सुमेघश्च वाराहो विरजास्तथा। मयूरः कपिलश्चैव महाकपिल एव च॥ ३७॥
इत्येते देवगन्धर्वासिद्धयक्षैश्च सेविताः। सरसो मानसस्येह उत्तरे केसराचलः॥ ३८॥

असितोद नामक सरोवर के पश्चिम में क्रमशः केसराचल, शङ्खकूट, वृषभ, हंस, नाग, कालाञ्जन, शुक्रशैल, नील, कमल, पारिजात, महाशैल, शैल, कनक, पुष्पक, सुमेघ, वाराह, विरजा, मयूर, कपिल और महाकपिल नामक पर्वत देवों, गन्धर्वों तथा सिद्धों और यक्षों के द्वारा सेवित हैं अर्थात् वे सब यहाँ विराजमान होते हैं। मानस सरोवर के उत्तर में केसराचल है॥ ३५-३८॥

एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम्।
सन्ति चैवान्तरद्रोण्यः सरांसि च वनानि च॥ ३९॥

इन प्रमुख पर्वतों के अन्तर्गत क्रमानुसार अनेक द्रोणियाँ अर्थात् घाटियाँ, सरोवर तथा वन विद्यमान हैं॥ ३९॥

---

१. पिशाचकः, २. सुगन्धिश्च, ३. श्रीशृङ्गश्चाचलोत्तमः, ४. पिञ्जल

वसन्ति तत्र मुनयः सिद्धा वै ब्रह्मभाविताः। प्रसन्नाः शान्तरजसः सर्वदुःखविवर्जिताः॥४०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे भुवनकोशे पर्वतसंख्याने पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

वहाँ प्रसन्नचित्त रहने वाले, रजोगुण आदि विकारों से रहित और सभी दुःखों से मुक्त ब्रह्म परायण मुनिगण और सिद्धजन निवास करते हैं॥४०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में भुवनकोश-वर्णन-प्रसंग में 'पर्वत-संख्यान' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्दशसहस्राणि योजनानां महापुरी। मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधसः॥१॥

सूत जी बोले- मेरु पर्वत के ऊपर स्थित देवाधिदेव ब्रह्मा जी की चौदह हजार योजन विस्तार वाली प्रख्यात महापुरी है॥१॥

तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः। उपास्यमानो योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रोपेन्द्रशङ्करैः॥२॥

वहाँ विश्व-स्रष्टा विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा निवास करते हैं तथा अनेक योगीश्वर, मुनीश्वर, इन्द्र एवं भगवान् विष्णु और भगवान् शिव उनकी आराधना करते हैं॥२॥

तत्र देवेश्वरेशानं विश्वात्मानं प्रजापतिम्। सनत्कुमारो भगवानुपास्ते नित्यमेव हि॥३॥

वहाँ पर भगवान् सनत्कुमार नित्यमेव उन देवेश्वर विश्वात्मा भगवान् प्रजापति की उपासना करते हैं॥३॥

स सिद्धऋषिगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरैरपि। समास्ते योगयुक्तात्मा पीत्वा तत्परमामृतम्॥४॥

सिद्धों, गन्धर्वों तथा देवों के द्वारा भी पूजित हो रहे वह योगात्मा भगवान् बह्मा उस योग रूपी परम (उत्कृष्ट) अमृत का पान करके वहाँ विराजमान रहते हैं॥४॥

तत्र देवाधिदेवस्य शम्भोरमिततेजसः। दीप्तमायतनं शुभ्रं पुरस्ताद् ब्रह्मणः स्थितम्॥५॥

वहाँ पर ब्रह्मा की पुरी के समक्ष (सामने) अमित तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् शिव का शुभ्र (उज्जवल) एवं दीप्तिमान् भवन (आवास) है॥५॥

दिव्यकान्तिसमायुक्तं चतर्द्वारं सुशोभनम्। महर्षिगणसङ्कीर्णं ब्रह्मविद्भिर्निषेवितम्॥६॥

उनका वह भवन दिव्य कान्तिमय, अत्यन्त सुन्दर, एवं [चार दिशाओं में] चार द्वारों से युक्त है। वह भवन ब्रह्मर्षिगणों से पूर्ण तथा ब्रह्मवेत्ता मनीषियों के समागम से सेवित है॥६॥

देव्या सह महादेवः शशाङ्कार्काग्निलोचनः। रमते तत्र विश्वेशः प्रमथैः प्रमथेश्वरः॥७॥

वहाँ पर चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूपी तीन नेत्रों वाले एवं गणों के स्वामी भगवान् शिव उन गणों तथा देवी पार्वती के साथ रमण करते हैं॥७॥

तत्र वेदविदः शान्ता मुनयो ब्रह्मचारिणः। पूजयन्ति महादेवं तापसाः सत्यवादिनः॥८॥

वहाँ वेदों के विद्वान्, शान्त चित्त वाले मुनि, ब्रह्मचारीगण, तपस्वी एवं सत्यवादी जन महादेव शिव की पूजा करते हैं॥८॥

तेषां साक्षान्महादेवो मुनीनां भावितात्मनाम्। गृह्णाति पूजां शिरसा पार्वत्या परमेश्वरः॥९॥

उन पुण्यात्माओं के द्वारा की गयी पूजा को पार्वती सहित साक्षात् परमेश्वर महादेव नतमस्तक होकर स्वीकार करते हैं॥९॥

तत्रैव पर्वतवरे शक्रस्य परमा पुरी। नाम्नामरावती पूर्वे सर्वशोभासमन्विता॥१०॥

उसी श्रेष्ठ मेरु पर्वत में पूर्व की ओर देवराज इन्द्र की सभी प्रकार से सुशोभित अमरावती नामक श्रेष्ठ पुरी है॥१०॥

तत्र चाप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः सिद्धचारणाः। उपासते सहस्राक्षं देवास्तत्र सहस्रशः॥११॥

वहाँ सभी अप्सराएँ, गन्धर्व, सिद्ध, चारण तथा हजारों देवगण उन सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र की उपासना करते हैं॥११॥

ये धार्मिका वेदविदो यागहोमपरायणाः। तेषां तत्परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्॥१२॥

जो मनुष्य धार्मिक, वेद के ज्ञाता, यज्ञ तथा होम में सलग्न हैं, उनको वह देवदुर्लभ स्थान [अमरावती में निवास] प्राप्त होता है॥१२॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे वह्नेरमिततेजसः। तेजोवती नाम पुरी दिव्याश्चर्यसमन्विता॥१३॥

उसके दक्षिण भाग में अमित तेजस्वी अग्निदेव की दिव्य आश्चर्यों से युक्त तेजोवती नामक पुरी है॥१३॥

तत्रास्ते भगवान्वह्निर्भ्राजमानः स्वतेजसा। जपिनां होमिनां स्थानं दानवानां दुरासदम्॥१४॥

वहाँ पर अपने तेज से देदीप्यमान अग्निदेव विराजमान रहते हैं। वह दानवों के लिए दुष्प्राप्य स्थान जप और होम परायण धार्मिक जनों को ही प्राप्त होता है॥१४॥

दक्षिणे पर्वतवरे यमस्यापि महापुरी। नाम्ना संयमनी दिव्या सर्वशोभासमन्विता॥१५॥

उस श्रेष्ठ मेरु-पर्वत के दक्षिण में यमराज की भी सर्व-शोभायुक्त संयमनी नामक दिव्य महापुरी है॥१५॥

तत्र वैवस्वतं देवं देवाद्याः पर्युपासते। स्थानं तत्सत्यसन्धानां लोके पुण्यकृतां नृणाम्॥१६॥

वहाँ देवता आदि दिव्य योनि के प्राणी वैवस्वत (विवस्वान के पुत्र) देव यम की उपासना करते हैं। वह स्थान इस भूलोक में सत्यनिष्ठ और पुण्यकृत्य करने वाले धार्मिक जनों को ही प्राप्त होता है॥१६॥

तस्यास्तु पश्चिमे भागे निर्ऋतेस्तु महात्मनः। रक्षोवती नाम पुरी राक्षसैः सर्वतो वृता[१]॥१७॥

उस संयमनी पुरी के पश्चिमी भाग में महात्मा निर्ऋति की रक्षोवती नामक पुरी है, जो सभी ओर से राक्षसों से भरी हुई है॥१७॥

तत्र ते नैर्ऋतं देवं राक्षसाः पर्युपासते। गच्छन्ति तां धर्मरता ये तु तामसवृत्तयः॥१८॥

वहाँ पर राक्षसगण नैर्ऋत देव की उपासना करते हैं। जो मनुष्य तामसी प्रवृति वाले होकर धार्मिक कृत्य करते हैं, वे उस [राक्षोवती नामक] पुरी में जाते हैं॥१८॥

पश्चिमे पर्वतवरे वरुणस्य महापुरी। नाम्ना शुद्धवती पुण्या सर्वकामर्द्धिसंयुता॥१९॥

उस श्रेष्ठ मेरु पर्वत में पश्चिम की ओर वरुण देव की शुद्धवती नामक पवित्र महापुरी है, जो सभी मनोकामाओं को पूर्ण करने वाली तथा सभी प्रकार की समृद्धियों से सम्पन्न है॥१९॥

तत्राप्सरोगणैः सिद्धैः सेव्यमानो जलाधिपः[२]। आस्ते स वरुणो राजा तत्र गच्छन्ति येऽम्बुदाः॥२०॥

वहाँ अप्सरागणों तथा सिद्धों के द्वारा सेवित जलाधिप राजा वरुण निवास करते हैं। जो मनुष्य जल का दान करते हैं, वह वहाँ जाते हैं॥२०॥

तस्या उत्तरदिग्भागे वायोरपि महापुरी। नाम्ना गन्धवती पुण्या तत्रास्तेऽसौ प्रभञ्जनः॥२१॥
अप्सरोगणगन्धर्वैः सेव्यमानो महान् प्रभुः। प्राणायामपरा विप्राः स्थानं तद्यान्ति शाश्वतम्॥२२॥

वरुण की उस शुद्धवती पुरी से उत्तर दिशा की ओर वायुदेव की गन्धवती नामक पवित्र महापुरी है, जहाँ वह पवन देवता निवास करते हैं। उन महा प्रभु वायु देव की सेवा अप्सरागण और गन्धर्व करते हैं। प्राणायाम परायण विप्रगण उस शाश्वत (सनातन) स्थान में जाते हैं॥२१-२२॥

तस्याः पूर्वे तु दिग्भागे सोमस्य परमा पुरी। नाम्ना कान्तिमती शुभ्रा तस्यां सोमो विराजते॥२३॥

उस गन्धवती पुरी से पूर्व दिशा की ओर सोम (चन्द्रमा) की कान्तिमती नामक परम उज्ज्वलपुरी है। उसमें वह सोमदेव (चन्द्रमा) विराजमान रहते हैं॥२३॥

तत्र ये धर्मनिरताः स्वधर्मं पर्युपासते। तेषां तदुचितं स्थानं नानाभोगसमन्वितम्॥२४॥

जो धर्मपरायण मनुष्य स्वधर्म पालन में तत्पर रहते हैं, उनके लिए नाना भोग-विलास के साधनों से युक्त वह स्थान ही उचित है अर्थात् वे मनुष्य ही वहाँ जा पाते हैं॥२४॥

तस्यास्तु पूर्वदिग्भागे शङ्करस्य महापुरी। नाम्ना यशोवती पुण्या सर्वेषां सा दुरासदा॥२५॥

सोम की उस (कान्तिमती) पुरी से पूर्व की ओर शङ्कर की यशोमती नामक पवित्र महापुरी है, जो कि अन्य सभी के लिए दुर्गम है॥२५॥

तत्रेशानस्य भवनं रुद्रेणाधिष्ठितं शुभम्। गणेश्वरस्य विपुलं तत्रास्ते स गणावृतम्॥२६॥

वहाँ पर गणों के अधिपति ईशान (रुद्र) के उस शुभ भवन में वह भगवान् रुद्र सभी गणों सहित निवास करते हैं॥२६॥

१. संवृता तु या, २. सेव्यमानोऽमराधिपैः

तत्र भोगादिलिप्सूनां भक्तानां परमेष्ठिनः। निवासः कल्पितः पूर्वं देवदेवेन शूलिना॥२७॥

पूर्वकाल में त्रिशूलधारी देवाधिदेव भगवान् शिव ने परमेष्ठी (ब्रह्मा) के भोगाभिलाषी भक्तों के निमित्त वहाँ पर निवास (आवास) बनाया था॥२७॥

विष्णुपादाद्विनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम्। समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै ततः॥२८॥

भगवान् विष्णु के चरण से निकली गङ्गा चन्द्रमण्डल को आप्लावित करके वहाँ से ब्रह्मा की पुरी के चारों ओर गिरती है॥२८॥

सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा ह्यभवद् द्विजाः। सीता चालकनन्दा च सुचक्षुर्भद्रनामिका॥२९॥

हे द्विजो! ब्रह्मपुरी पर गिरने पर वह गङ्गा चारों दिशाओं में क्रमशः अलकनन्दा, सीता, सुचक्षु एवं भद्रा नाम से प्रवाहित होती है॥२९॥

पूर्वेण शैलाच्छैलं तु सीता यात्यन्तरिक्षगा। ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वाद्याति चार्णवम्॥३०॥

सीता नामक नदी आकाश से उतर कर एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर बहती हुई पूर्व दिशा में भद्राश्ववर्ष से प्रवाहित होकर समुद्र में जाती है॥३०॥

तथैवालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम्। प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः॥३१॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उसी प्रकार अलकनन्दा नामक नदी दक्षिण दिशा की ओर भारत में आकर सात भागों में विभक्त होकर समुद्र में गिरती है॥३१॥

सुचक्षुः पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्तथा। पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वेति चार्णवम्॥३२॥

सुचक्षु नामक नदी पश्चिम दिशा के सभी पर्वतों से होकर पश्चिम में स्थित केतुमाल वर्ष में जाकर समुद्र में मिलती है॥३२॥

भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून्। अतीत्य चोत्तराम्भोधिं समभ्येति महर्षयः॥३३॥

हे महर्षियो! भद्रा नामक नदी उत्तर दिशा के पर्वतों से होते हुए उत्तर कुरुवर्ष में जाकर उत्तर दिशा में स्थित समुद्र में पहुँचती है॥३३॥

आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ। तयोर्मध्यं गतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः॥३४॥

माल्यवान् और गन्धमादन नामक दोनों पर्वत क्रमशः नील और निषध पर्वत तक विस्तार वाले हैं। उन दोनों [माल्यवान् और गन्धमादन] पर्वतों के मध्य में स्थित मेरु पर्वत पृथिवी की कर्णिका के समान स्थित है॥३४॥

भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा। पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः॥३५॥

उपर्युक्त चार मर्यादा पर्वतों के बाहर लोक (पृथिवी) रूपी कमल के पत्तों के समान भारत, केतुमाल, भद्राश्व तथा कुरुवर्ष स्थित हैं॥३५॥

जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ। दक्षिणोत्तरमायातावानीलनिषधायतौ॥३६॥

जठर और देवकूट नामक दोनों मर्यादा पर्वत क्रमशः दक्षिण एवं उत्तर में नील एवं निषध पर्वतों तक फैले हुए हैं॥३६॥

गन्धमादनकैलासो पूर्वपश्चायतावुभौ। अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥ ३७॥

गन्धमादन और कैलास नामक दोनों पर्वत भी पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं और अस्सी योजन विस्तार (चौड़ाई) वाले हैं तथा समुद्र के अन्दर तक व्याप्त हैं॥ ३७॥

निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वताविमौ। मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथापूर्वं व्यवस्थितौ॥ ३८॥

निषध और पारियात्र नामक दोनों मर्यादा पर्वत मेरु से पश्चिम दिशा में पूर्वोक्त पर्वतों के समान ही व्यवस्थित हैं॥ ३८॥

त्रिशृङ्गो जारुधिस्तद्वदुत्तरे वर्षपर्वतौ। तावदायामविस्तारावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥ ३९॥

त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक दो वर्षपर्वत उत्तर में स्थित हैं। वे दोनों ही पर्वत भी पूर्व से लेकर पश्चिम तक पूर्वोक्त मर्यादा-पर्वतों के समान आयाम और विस्तार (लम्बाई चौड़ाई) वाले हैं और समुद्र के अन्दर तक व्याप्त हैं॥ ३९॥

मर्यादापर्वताः प्रोक्ता अष्टाविह मया द्विजाः। जठराद्याः स्थिता मेरोश्चतुर्दिक्षु महर्षयः॥ ४०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे भुवनविन्यासे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

हे द्विजो! मैंने ये आठ मर्यादा पर्वत बतला दिये हैं। हे महर्षियो! जठर आदि वर्ष पर्वत मेरु पर्वत के बाहर चारों दिशाओं में स्थित हैं॥ ४०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में भुवनविन्यास-प्रसंग में छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशावर्णनम्

सूत उवाच

केतुमाले कृष्णवर्णा[1] नराः पनसभोजनाः।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभास्ते जीवन्ति वर्षायुतम्॥ १॥

केतुमाल वर्ष के पुरुष काले रंग (कृष्ण वर्ण) के होते हैं और वे सभी कटहल को भोजन रूप में खाते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ कमल-पत्र के समान (हल्के नीले) वर्ण की होती हैं। वहाँ के सभी मनुष्य दश हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं॥ १॥

भद्राश्वे पुरुषाः शुक्लाः स्त्रियश्चन्द्रांशुसन्निभाः।
दश वर्षसहस्राणि जीवन्ते चान्नभोजनाः॥ २॥

१. नराः काका सर्वे

भद्राश्व वर्ष के पुरुष शुक्ल वर्ण के होते हैं तथा वहाँ की स्त्रियाँ चन्द्रमा की किरणों के समान (उज्ज्वल) वर्ण की होती हैं। वहाँ के सभी मनुष्य अन्न का भोजन करते हैं और दश हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं॥२॥

रम्यके पुरुषा नार्यो रमन्ति रजतप्रभाः। दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति चैव सत्त्वस्था न्यग्रोधफलभोजनाः॥३॥

रम्यक वर्ष में सभी स्त्री-पुरुष रजत (चाँदी) के समान (श्वेत) वर्ण के होते हैं तथा (सदैव) रमण करते हैं। वे सत्त्वगुण वाले अर्थात् सात्त्विक प्रवृति के होते हैं तथा वटवृक्ष के फल का भोजन करते हैं और ग्यारह हजार पाँच सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं॥३॥

हिरण्मये हिरण्याभाः सर्वे श्रीफलभोजनाः। एकादशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति पुरुषा नार्यो देवलोकस्थिता इव॥४॥

हिरण्मय वर्ष में सभी स्त्री-पुरुष स्वर्णिम आभा वाले, श्रीफल को भोजन रूप में खाने वाले होते हैं और देवलोक के निवासियों के समान [आनन्द से] रहते हैं तथा बारह हजार पाँच सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं॥४॥

त्रयोदशसहस्त्राणि शतानि दश पञ्च च। जीवन्ति कुरुवर्षे तु श्यामाङ्गाः क्षीरभोजनाः॥५॥
सर्वे मिथुनजाताश्च नित्यं सुखनिषेविताः। चन्द्रद्वीपे महादेवं यजन्ति सततं शिवम्॥६॥

कुरुवर्ष में सभी स्त्री-पुरुष मिथुन (दम्पती) रूप में उत्पन्न होते हैं और वे श्यामल वर्ण के होते हैं। वे दूध को आहार रूप में ग्रहण करते हैं। वे चौदह हजार पाँच सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं और सुखी जीवन बिताते हैं और वे सदैव चन्द्र द्वीप में महादेव शिव की उपासना करते हैं॥५-६॥

तथा किंपुरुषे विप्रा मानवा हेमसन्निभाः। दशवर्षसहस्त्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजनाः॥७॥
यजन्ति सततं देवं चतुःशीर्षं चतुर्भुजम्। ध्याने मनः समाधाय सादरं भक्तिसंयुताः॥८॥

हे विप्रो! उसी प्रकार किंपुरुष वर्ष के मनुष्य भी स्वर्णिम कान्ति वाले होते हैं। वे प्लक्ष (पाकड़) के फलों को भोजन रूप में खाते हैं और दश हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं। वे निरन्तर चार मुखों और चार भुजाओं वाले देव ब्रह्मा जी के ध्यान में मन को केन्द्रित करके भक्तिभाव से और आदर पूर्वक उनका निरन्तर पूजन करते हैं॥७-८॥

तथा च हरिवर्षे तु महारजतसन्निभाः। दशवर्षसहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिनः॥९॥
तत्र नारायणं देवं विश्वयोनिं सनातनम्। उपासते सदा विष्णुं मानवा विष्णुभाविताः॥१०॥

उसी प्रकार हरिवर्ष में महा रजत (चाँदी) के समान वर्ण वाले मनुष्य इक्षु (ईख) के रस को पीकर जीवन यापन करते हैं। वे दश हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं। वहाँ के निवासी मनुष्य विश्व के मूल स्रोत सनातन भगवान् विष्णु की भक्ति में लीन होकर सदैव उन नारायण की उपासना करते हैं॥९-१०॥

तत्र चन्द्रप्रभं शुभ्रं शुद्धस्फटिकसन्निभम्। विमानं वासुदेवस्य पारिजातवनाश्रितम्॥११॥

वहाँ पर पारिजात वन में भगवान् वासुदेव विष्णु का शुद्ध स्फटिक मणि के समान एवं चन्द्रमा की उज्जवल कान्ति के समान धवल विमान (निवास-भवन) है॥ ११॥

चतुर्द्वारमनौपम्यं चतुस्तोरणसंयुतम्। प्राकारैर्दशभिर्युक्तं दुराधर्षं सुदुर्गमम्॥ १२॥

उस अनुपम विमान में चार द्वार तथा उसके बाहर चार तोरण हैं तथा उसके बाहर से दश प्राकार हैं। अतः वह दुराधर्ष (अपराजेय) और दुर्गम है॥ १२॥

स्फाटिकैर्मण्डपैर्युक्तं देवराजगृहोपमम्। सुवर्णस्तम्भसाहस्रैः सर्वतः समलंकृतम्॥ १३॥

स्फटिक मणि से निर्मित मण्डपों से युक्त एवं हजारों स्वर्ण निर्मित स्तम्भों से सभी ओर से अलंकृत वह विमान देवराज इन्द्र के गृह के समान है॥ १३॥

हेमसोपानसंयुक्तं नानारत्नोपशोभितम्। दिव्यसिंहासनोपेतं सर्वशोभासमन्वितम्।
सरोभिः स्वादुपानीयैर्नदीभिश्चोपशोभितम्॥ १४॥

स्वर्ण से निर्मित सोपान (सीढी) से युक्त एवं नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित तथा दिव्य सिंहासन वाला वह विमान सर्वविधि शोभा-सम्पन्न है। स्वादिष्ट जल वाले सरोवरों एवं नदियों से वहाँ की भूमि सुशोभित है॥ १४॥

नारायणपरैः शुद्धैर्वेदाध्ययनतत्परैः। योगिभिश्च समाकीर्णं ध्यायद्भिः पुरुषं हरिम्।
स्तुवद्भिः सततं मन्त्रैर्नमस्यद्भिश्च माधवम्॥ १५॥

वहाँ की भूमि विष्णु-भक्ति परायण, शुद्ध चित्त वाले, वेदाध्ययन में तत्पर जनों, योगियों तथा पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के ध्यान में निरत भक्तों, [वेद मन्त्रों से] निरन्तर स्तुति करने वाले तथा उन माधव को प्रणाम करने वाले भक्तों से युक्त है॥ १५॥

तत्र देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः। राजानः सर्वकालं तु महिमानं प्रकुर्वते॥ १६॥

राजा लोग वहाँ सदैव अमित तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् विष्णु की महिमा का गान करते हैं॥ १६॥

गायन्ति चैव नृत्यन्ति विलासिन्यो मनोहराः। स्त्रियो यौवनशालिन्यः सदा मण्डनतत्पराः॥ १७॥

वहाँ पर सदैव अलंकृत रहने वाली एवं यौवनावस्था वाली तथा विलास (हाव-भाव) में निपुण मनोहर स्त्रियाँ गीत और नृत्य में संलग्न रहती हैं॥ १७॥

इलावृते पद्मवर्णा जम्बूफलरसाशिनः। त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां च स्थिरायुषः॥ १८॥

इलावृत वर्ष में [सभी लोग] कमल के समान वर्ण वाले होते हैं एवं जम्बू फल के रस का पान करते हैं और वे तेरह हजार वर्ष की स्थिर आयु वाले होते हैं॥ १८॥

भारतेषु स्त्रियः पुंसो नानावर्णाः प्रकीर्तिताः। नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्माणि कुर्वते।
परमायुः स्मृतं तेषां शतं वर्षाणि सुव्रताः॥ १९॥

भारतवर्ष के स्त्री-पुरुष अनेक वर्ण के कहे गये हैं। वे नाना देवों की आराधना में निरत रहते हैं तथा नाना प्रकार के कर्म करते हैं। हे सद्व्रती द्विजो! उनकी परम (अधिकतम) आयु सौ वर्ष की बतलायी गयी है॥ १९॥

नवयोजनसाहस्रं वर्षमेतत्प्रकीर्तितम्। कर्मभूमिरियं विप्रा नराणामधिकारिणाम्॥२०॥

यह [भारत] वर्ष नौ हजार योजन विस्तार वाला कहा गया है। हे विप्रो! यहाँ निवास करने वाले अधिकारी (सुयोग्य) पुरुषों के लिए इस देश को कर्मभूमि कहा गया है॥२०॥

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः॥२१॥

यहाँ (भारत में) महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षपर्वत, विन्ध्य तथा पारियात्र नामक सात कुल पर्वत हैं॥२१॥

इन्द्रद्वीपः कसेरुक्मान् ताम्रपर्णो गभस्तिमान्। नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः॥२२॥

अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंस्थितः। योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥२३॥

इन्द्रद्वीप, कसेरुमान् (कसेरु), ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य [द्वीप], गन्धर्व तथा वारुण द्वीप के साथ ही सागर से घिरा हुआ यह द्वीप (=भारत) नवाँ है। यह दक्षिण से उत्तर तक सहस्र योजन विस्तार वाला है॥२२-२३॥

पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्रास्तथैव च॥२४॥

इस देश की सीमा से बाहर पूर्व में किरात एवं [इसकी सीमा से बाहर] पश्चिम में यवन रहते हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इस देश के मध्य में रहते हैं॥२४॥

इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्त्यत्र मानवाः। स्रवन्ते पावनाः नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती॥२५॥

शतद्रुश्चन्द्रभागा च सरयूर्यमुना तथा। इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः॥२६॥

गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती। कौशिकी लोहिता चेति हिमवत्पादनिःसृताः॥२७॥

यहाँ के मनुष्य यज्ञानुष्ठान, युद्ध-कौशल तथा वाणिज्य [कृषि आदि] से जीविका चलाते हैं। यहाँ पर्वतों से पवित्र नदियाँ निकलती हैं। गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी तथा लोहिता नदी हिमालय से निकली हैं॥२५-२७॥

वेदस्मृतिर्वेदवती व्रतघ्नी त्रिदिवा तथा। पर्णाशा चन्दना चैव सचर्मण्यवती सुरा।
विदिशा वेत्रवत्यापि पारियात्राश्रयाः स्मृताः॥२८॥

वेदस्मृति, वेदवती, व्रतघ्नी, त्रिदिवा, पर्णाशा, चन्दना (?वन्दना), चर्मण्वती, सुरा (?), विदिशा, वेत्रवती आदि नदियाँ पारियात्र नामक पर्वत से निकलती हैं॥२८॥

नर्मदा सुरसा शोणो दशार्णा च महानदी। मन्दाकिनी चित्रकूटा तमसा च पिशाचिका॥२९॥

चित्रोपला विपाशा च मंजुला वालुवाहिनी। ऋक्षवत्पादजा नद्यः सर्वपापहरा नृणाम्॥३०॥

नर्मदा, सुरसा, शोणनामक नद, दशार्णा, महानदी, मन्दाकिनी, चित्रकूटा, तमसा, पिशाचिका, चित्रोपला, विपाशा, मंजुला तथा बालुवाहिनी ये सभी पापों की नाश करने वाली नदियाँ ऋक्षवान् पर्वत से निकलती हैं॥२९-३०॥

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या शीघ्रोदा च महानदी। विन्ना (वेणी) वैतरणी चैव बलाका च कुमुद्वती॥३१॥

तथा चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्तु सद्यः पापहरा नृणाम्॥३२॥

तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, शीघ्रोदा, महानदी, विन्रा (वेणी), वैतरणी, बलाका, कुमुद्वती, महागौरी, दुर्गा एवं अन्तःसलिला नामक नदियाँ विन्ध्याचल से निकलती हैं। ये नदियाँ मनुष्यों के पापों को शीघ्र नष्ट कर देती हैं॥३१-३२॥

गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा च बंजुला। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च द्विजोत्तमाः॥३३॥
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः। कृतमाला ताम्रपर्णी पुण्यवत्युत्पलावती॥३४॥
मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाःशीतजलाः स्मृताः। ऋषिकुल्या त्रिसामा च गन्धमादनगामिनी॥३५॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा (कृष्णवेणा), वंजुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा कावेरी- ये सभी दक्षिणापथ की नदियाँ सह्याद्रि की तलहटी से निकलती हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, ऋषीका तथा वंशधारिणी नामक सभी शीतल जल वाली नदियाँ मलयाचल से निकलती हैं। ऋषिकुल्या और त्रिसामा नदी मन्धमादन पर्वत से निकलती हैं॥३३-३५॥

क्षिप्रा पलाशिनी चैव ऋषीका वंशधारिणी। शुक्तिमत्पादसञ्जाताः सर्वपापहरा नृणाम्॥३६॥

क्षिप्रा, पलाशिनी ऋषीका एवं वंशधारिणी नामक पापहारिणी नदियाँ शुक्तिमत् पर्वत से निकलती हैं॥३६॥

आसां नद्युपनद्यश्च शतशो द्विजपुङ्गवाः। सर्वपापहराः पुण्याः स्नानदानादिकर्मसु॥३७॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इन महानदियों में सैकड़ों नदियाँ तथा उपनदियाँ मिलती हैं, जिनमें स्नान, दान आदि धार्मिक कृत्य किये जाने पर वे सभी पापों का नाश करती हैं॥३७॥

तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः। पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः॥३८॥
पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च कृत्स्नशः। तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शकाभीरास्तथार्बुदाः[1]॥३९॥
मालवा[2]मागधाश्चैव पारियात्रनिवासिनः। सौवीराः सैन्धवा हूणा[3]शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः॥४०॥
माद्रा [4]वत्सास्तथैवान्ध्राः पारसीकास्तथैव च। आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां तटे॥४१॥

इन सभी नदियों के तटों पर कुरु, पाञ्चाल, मध्य देश के निवासी, पूर्व दिशा के देशों के निवासी, कामरूप के निवासी, पुण्ड्र, कलिङ्ग, मगध एवं सभी दक्षिणापथ निवासी तथा अपरान्त एवं सौराष्ट्र के निवासी, शक, आभीर, अर्बुद (आबू, माउण्ट आबू) के निवासी, मालवा, मगध एवं पारियात्र के निवासी, सौवीर एवं सिन्धु देश के निवासी, हूण, शाल्व एवं जाङ्गल? अर्थात् वन के निवासी, मद्र देश, वत्स, आन्ध्र और पारसीक भी इन नदियों के तटों में निवास करते हैं और इनका जल पीते हैं॥३८-४१॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन्। कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित्॥४२॥

[त्रिकालदर्शी प्राचीन] कवियों ने कहा है कि भातरवर्ष में कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग नामक चार युग होते हैं। अन्यत्र कहीं भी ये चार युग नहीं होते हैं॥४२॥

यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ महर्षयः। न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयं न च॥४३॥

१. शूद्रा हीनास्तथार्बुदाः, २. मालका मलपाश्चैव, ३. माल्या बाल्यनिवासिनः, ४. रामा

महर्षियों ने जो किम्पुरुष आदि आठ वर्ष बतलाये हैं, उनमें किसी को भी कोई शोक, परिश्रम का कष्ट, उद्वेग (शोक-दुःख) तथा क्षुधा (भुखमरी) का कोई भय नहीं होता॥४३॥

स्वस्थाः प्रजाः निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः। रमन्ते विविधैर्भावैः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः॥४४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

वहाँ के सभी प्रजाजन सदैव स्वस्थ, निरातङ्क तथा सभी दुःखों से मुक्त रहते हैं। वे सभी स्थिर यौवन वाले होते हैं और अनेक प्रकार के भावों से रमण करते हैं॥४४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'भुवनकोश-वर्णन' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

सूत उवाच

हेमकूटगिरेः शृङ्गे महाकूटं सुशोभनम्। स्फाटिकं देवदेवस्य विमानं परमेष्ठिनः॥१॥

हेमकूट नामक पर्वत के शिखर में देवाधिदेव परमेष्ठी शिव का सफटिक (मणि) से निर्मित महाकूट नामक अति सुन्दर विमान (शिवालय) है॥१॥

तत्र देवाधिदेवस्य भूतेशस्य त्रिशूलिनः। देवाः सिद्धगणाः यक्षाः[1] पूजां नित्यं प्रकुर्वते॥२॥

वहाँ पर सभी देवता, सिद्धगण और यक्ष नित्यमेव त्रिशूलधारी देवाधिदेव भगवान् भूतनाथ शिव की पूजा करते हैं॥२॥

स देव्या गिरिशः सार्धं महादेवो महेश्वरः। भूतैः परिवृतो नित्यं भाति तत्र पिनाकधृक्॥३॥

चारों ओर से भूतों से नित्य घिरे हुए पिनाक धनुष को धारण करने वाले महादेव महेश्वर गिरीश शिव वहाँ देवी पार्वती के साथ नित्य सुशोभित होते हैं॥३॥

विभक्तचारुशिखरः कैलासो यत्र पर्वतः। निवासः कोटियक्षाणां कुबेरस्य च धीमतः।
तत्रापि देवदेवस्य भवस्यायतनं महत्॥४॥

वहाँ पृथक्-पृथक् सुन्दर शिखरों वाले कैलास पर्वत में करोड़ों यक्षों का और बुद्धिमान् कुबेर का भी निवास है। वहाँ उस कैलास पर्वत में भी देवाधिदेव भगवान् शिव का विशाल भवन (मन्दिर) है॥४॥

मन्दाकिनी तत्र दिव्या पुण्या सुविमलोदका। नदी नानाविधैः पद्मैरनेकैः समलंकृता॥५॥

१. सर्षिगणः सिद्धा

वहाँ पवित्र और निर्मल जल वाली दिव्य मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती है। वह नदी नाना प्रकार के विकसित कमलों के पुष्पों से अलंकृत है॥५॥

देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसकिन्नरैः। उपस्पृष्टजला नित्यं सुपुण्या सुमनोरमा॥६॥

उस अति पवित्र एवं मनोहर नदी के जल में देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर भी नित्यमेव स्नान-पान आचमन करते हैं॥६॥

अन्याश्च नद्यः शतशः स्वर्णपद्मैरलंकृताः। तासां कूले तु देवस्य स्थानानि परमेष्ठिनः। देवर्षिगणजुष्टानि तथा नारायणस्य तु॥७॥

वहाँ अन्य भी सैकड़ों नदियाँ हैं, जो उनमें विकसित स्वर्णिम कमलों से सुशोभित हैं। उन नदियों के तट पर परमेष्ठी देव ब्रह्मा तथा नारायण विष्णु के देवालयों में देवता और ऋषिगण उनकी उपासना में निरत रहते हैं॥७॥

तस्यापि शिखरे रम्ये शुभ्रं पारिजातवनं शुभम्। तत्र शक्रस्य विपुलं भवनं रत्नमण्डितम्। स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं हेमगोपुरशोभितम्॥८॥

उस कैलास (या हेमकूट?) के रम्य शिखर में पारिजात का शुभ वन है। वहाँ इन्द्र का रत्नों से मण्डित विशाल भवन है जो स्फटिक मणि के स्तम्भों से युक्त और सोने से निर्मित गोपुर (मुख्य द्वार) से सुशोभित है॥८॥

तत्रापि देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः। पुण्यञ्च भवनं रम्यं सर्वरत्नोपशोभितम्॥९॥

तत्र नारायणः श्रीमान् लक्ष्म्या सह जगत्पतिः। आस्ते सर्वेश्वरः भक्तैः[1] पूज्यमानः सनातनः॥१०॥

वहाँ देवाधिदेव विश्वात्मा भगवान् विष्णु का भी सभी रत्नों से अलंकृत सुरम्य एवं पवित्र भवन है। उस भवन में जगत् के स्वामी सर्वेश्वर सनातन श्रीमान् भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ रहते हैं और वहाँ भक्तजन उनकी पूजा करते रहते हैं॥९-१०॥

तथा च वसुधारे तु वसूनां रत्नमण्डितम्। आलयः सुमहत्[2] पुण्यं दुराधर्षं सुरद्विषाम्॥११॥

वसुधार पर्वत में अष्टवसुओं का रत्न जटित अति पवित्र भवन है, जो कि देवों के शत्रु असुरों के लिए अपराजेय है॥११॥

रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम्। सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासैर्युतानि च॥१२॥

रत्नधार नामक श्रेष्ठ पर्वत में महात्मा सप्तर्षियों के सात आश्रम हैं, जो कि सिद्धों के आवास से युक्त हैं॥१२॥

तत्र हैमं चतुर्द्वारं वज्रनीलादिमण्डितम्। सुपुण्यं सुमहत्धाम[3] ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥१३॥

वहाँ पर अव्यक्त जन्म वाले (अजन्मा) ब्रह्मा का स्वर्ण से निर्मित एवं वज्र (हीरा) और नीलम जैसे रत्नों से अलंकृत चार द्वारों वाला अत्यन्त पवित्र विशाल धाम (भवन) है॥१३॥

तत्र देवर्षयो विप्राः सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपरे। उपासते देवदेवं पितामहमजं परम्॥१४॥

---

१. श्रेष्ठः, २. स्थानानामुत्तमं, ३. सदवस्थानं

हे ब्राह्मणो! वहाँ पर उन अजन्मा देवाधिदेव परम पितामह ब्रह्मा की उपासना देवर्षियों, सिद्धों और अन्य अनेक ब्रह्मर्षियों के द्वारा की जाती है॥१४॥

सर्वैः सम्पूजितो नित्यं देव्या सह चतुर्मुखः। आस्ते हिताय लोकानां शान्तानां परमा गतिः॥१५॥

उन सभी के द्वारा नित्य पूजे जाने वाले एवं शान्त स्वभाव वाले सज्जनों को परमगति देने वाले चतुरानन ब्रह्मा जी देवी (अपनी पत्नी) सहित लोकहित में वहाँ पर नित्य निवास करते हैं॥१५॥

तस्यैकशृङ्गशिखरे महापद्मैरलंकृते। स्वच्छामृतजलं पुण्यं सुगन्धं सुमहत्सरः॥१६॥

उसी पर्वत की एक चोटी में महान् कमलों से सुशोभित एवं अमृत तुल्य पवित्र और सुगन्धित जल से पूर्ण विशाल सरोवर है॥१६॥

जैगीषव्याश्रमं पुण्यं योगीन्द्रैरुपसेवितम्। तत्रास्ते भगवान्नित्यं सर्वशिष्यैः समावृतः॥१७॥

प्रशान्तदोषैरक्षुद्रैर्ब्रह्मविद्भिर्महात्मभिः। शङ्खो मनोहरश्चैव कौशिकः कृष्ण एव च।
सुमना वेदवादश्च शिष्यास्तस्य प्रसादतः॥१८॥

सर्वयोगरताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः उपासते महावीर्या ब्रह्मविद्यापरायणाः॥ १९॥

उस पर्वत में अनेक योगीश्वरों से सेवित जैगीषव्य मुनि का पवित्र आश्रम है। वहाँ वह भगवान् महर्षि जैगीषव्य अपने सभी शिष्यों सहित निवास करते हैं। उनकी कृपा से वे शिष्य सभी दोषों से रहित महान् ब्रह्मज्ञानी महात्मा थे, जो क्रमशः शङ्ख, मनोहर, कौशिक, कृष्ण, सुमना तथा वेदवाद नामक थे, वे सभी उन महर्षि की कृपा से सम्पूर्ण योग-साधना में निरत, शान्त स्वभाव वाले तथा अपने शरीर में भस्मलेपन किये रहते हैं। वे महाशक्तिशाली ब्रह्मविद्यापरायण शिष्य अपने उन गुरु जैगीषव्य की उपासना (सेवा) करते हैं॥१७-१९॥

तेषामनुग्रहार्थाय यतीनां शान्तचेतसाम्। सान्निध्यं कुरुते भूयो देव्या सह महेश्वरः॥२०॥

उन शान्तचित्त संन्यासियों पर अनुग्रह के उद्देश्य से भगवान् शिव देवी पार्वती के साथ वहाँ निवास करते हैं॥२०॥

अनेकान्याश्रमाणि स्युस्तस्मिन् गिरिवरोत्तमे। मुनीनां युक्तमनसा सरांसि सरितस्तथा॥२१॥

उस सर्वश्रेष्ठ पर्वत पर योग-साधना में निरत चित्त वाले मुनियों के अनेक आश्रम हैं तथा वहाँ अनेक सरोवर हैं और अनेकों नदियाँ वहाँ से निकलती हैं॥२१॥

तेषु योगरता विप्रा जापकाः संयतेन्द्रियाः। ब्रह्मण्यासक्तमनसो रमन्ते ज्ञानतत्पराः॥२२॥

वहाँ के उन आश्रमों में योग-साधना में संलग्न, जप में निरत, इन्द्रिय-संयमी, ब्रह्म में आसक्त मन वाले एवं ज्ञानार्जन में तत्पर विप्रगण साधना करते हैं॥२२॥

आत्मन्यात्मानमाधाय शिखान्ते पर्यवस्थितम्। ध्यायन्ति देवमीशानं येन सर्वमिदं ततम्॥२३॥

वे स्वयं आत्मनिष्ठ होकर शिखा के अन्दर (अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में) स्थित उस परम ब्रह्म का ध्यान करते हैं, जिसने इस सम्पूर्ण जगत् का विस्तार अर्थात् सृष्टि की है॥२३॥

सुमेघे वासवस्थानं सहस्रादित्यसन्निभम्। तत्रास्ते भगवानिन्द्रः शच्या सह सुरेश्वरः॥२४॥

सुमेघ नामक पर्वत पर इन्द्र का स्थान (आवास) है, जो कि हजारों सूर्यों के समान दीप्तिमान है। वहाँ देवराज इन्द्र शची के साथ निवास करते हैं॥२४॥

गजशैले तु दुर्गाया भवनं मणितोरणम्। आस्ते भगवती दुर्गा तत्र साक्षान्महेश्वरी॥२५॥

गजशैल में देवी दुर्गा का मन्दिर है, जिसका तोरण (प्रवेश द्वार) मणियों से निर्मित है। वहाँ साक्षात् महेश्वरी भगवती दुर्गा विराजमान हैं॥२५॥

उपास्यमाना विविधैः शक्तिभेदैरितस्ततः। पीत्वा योगामृतं लब्ध्वा साक्षादानन्दमैश्वरम्॥२६॥

वह देवी योगरूपी अमृत का पान करके (अर्थात् योग-सिद्ध करके) साक्षात् ईश्वरीय आनन्द प्राप्त कर नाना शक्ति-स्वरूपा देवियों के रूप में अनेकत्र पूजित होती हैं॥२६॥

सुनीलस्य गिरेः शृङ्गे नानाधातुसमुज्ज्वले। राक्षसानां पुराणि स्युः सरांसि शतशो द्विजाः॥२७॥

हे द्विजो! नाना प्रकार के धातुओं से दीप्तिमान सुनील नामक पर्वत की चोटी पर राक्षसों के पुर हैं तथा वहाँ पर सैकड़ों सरोवर भी हैं॥२७॥

तथा पुरशतं विप्राः शतशृङ्गे महाचले। स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं यक्षाणाममितौजसाम्॥२८॥

हे विप्रो! उसी प्रकार शतशृङ्ग नामक विशाल पर्वत पर अनुपम तेजस्वी यक्षों के स्फटिक के स्तम्भों से युक्त सौ नगर हैं॥२८॥

श्वेतोदरगिरेः शृङ्गे सुपर्णस्य पुरं महत्। प्राकारगोपुरोपेतं मणितोरणमण्डितम्॥२९॥

श्वेतोदर पर्वत के शिखर पर गरुड का विशाल पुर है, जो मणियों से निर्मित तोरण, प्राकार तथा गोपुर से सुशोभित है॥२९॥

स तत्र गरुडः श्रीमान् साक्षाद्विष्णुरिवापरः।
ध्यात्वास्ते तत्परं ज्योतिरात्मन्येवमथाव्ययम्॥३०॥

वह साक्षात् विष्णु के समान श्रीयुक्त गरुड अपने हृदय में विद्यमान अविनाशी ज्योति स्वरूप उन अपने प्रभु भगवान् विष्णु के ध्यान में निरत रहते हैं॥३०॥

अन्यच्च भवनं पुण्यं श्रीशृङ्गे मुनिपुङ्गवाः। श्रीदेव्याः सर्वरत्नाढ्यं हैमं समणितोरणम्॥३१॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! श्री देवी (लक्ष्मी) का श्रीशृङ्ग के शिखर में एक अन्य पवित्र धाम है, जो स्वर्ण से निर्मित एवं सभी रत्नों से जटित है और जिसमें मणियों से जटित तोरण (सिंह द्वार) है॥३१॥

तत्र सा परमा शक्तिर्विष्णोरतिमनोरमा। अनन्तविभवा लक्ष्मीर्जगत्संमोहनोत्सुका॥३२॥
अध्यास्ते देवगन्धर्वसिद्धचारणवन्दिता। विचिन्त्या जगतो योनिं स्वशक्तिकिरणोज्ज्वला॥३३॥

अत्यन्त मनोरम स्वरूप वाली, अनन्त वैभव वाली, सम्पूर्ण जगत् को संमोहित करने को उत्सुक वह भगवान् विष्णु की परमाशक्ति लक्ष्मी देवी वहाँ पर देवों, गन्धर्वों, सिद्धों और चारणों के द्वारा पूजित होकर तथा अपनी शक्ति की किरणों से उज्जवल होकर जगत् के मूल कारण भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए विराजमान रहती हैं॥३२-३३॥

तत्रैव देवदेवस्य विष्णोरायतनं महत्। सरांसि तत्र चत्वारि विचित्रकमलाशयाः॥३४॥

वहीं पर देवाधिदेव भगवान् विष्णु का विशाल भवन है तथा वहाँ विचित्र कमलों वाले चार सरोवर भी हैं॥३४॥

तथा सहस्रशिखरे विद्याधरपुराष्टकम्। रत्नसोपानसंयुक्तं सरोभिश्चोपशोभितम्॥३५॥
नद्यो विमलपानीयाः फुल्लनीलोत्पलाकराः। कर्णिकारवनं दिव्यं तत्रास्ते शङ्करः स्वयम्॥३६॥

वहाँ सहस्र शिखर में विद्याधरों के आठ पुर हैं, जिनकी सीढ़ियाँ रत्नों से निर्मित हैं और वे पुर सरोवरों से सुशोभित हैं। वहाँ की नदियाँ निर्मल जल वाली हैं, जिनमें विकसित नील कमलों की खान जैसी प्रचुर मात्रा दिखाई देती है। वहाँ कर्णिकार वृक्षों के दिव्य वन में स्वयं भगवान् शिव भी विराजमान रहते हैं॥३५-३६॥

पारियात्रे महाशैले महालक्ष्म्याः पुरं शुभम्। रम्यप्रासादसंयुक्तं घण्टाचामरभूषितम्॥३७॥
नृत्यद्भिरप्सरः संघैरितश्चेतश्च शोभितम्। मृदङ्गपणवोद्घुष्टं वेणुवीणानिनादितम्॥३८॥

पारियात्र नामक विशाल पर्वत में महालक्ष्मी का सुन्दर भवनों वाला एवं घण्टा तथा चामरों से अलंकृत पवित्र पुर है जो यत्र तत्र नृत्य करती हुई अप्सराओं के समूहों से सुशोभित रहता है और जो मृदंग, पणव (ढोल) वेणु (वंशी) तथा वीणा के वादन से निनादित रहता है॥३७-३८॥

गन्धर्वकिन्नराकीर्णं संवृतं सिद्धपुङ्गवैः। भास्वद्भित्तिसमायुक्तं[१] महाप्रासादसङ्कुलम्॥३९॥

वह पुर गन्धर्व, किन्नर तथा श्रेष्ठ सिद्धों के समूह से व्याप्त रहता है। वहाँ दीप्तिमान् भित्तियों (दीवालों) से युक्त विशाल भवनों का समूह विद्यमान है॥३९॥

महागणेश्वरैर्जुष्टं धार्मिकाणां सुदर्शनम्। तत्र सा वसते देवी नित्यं योगपरायणा॥४०॥

महागणेश्वरों के द्वारा सेवित तथा धार्मिक जनों के द्वारा सम्यक् रूप से दर्शनीय उस पुर में वह देवी पार्वती नित्यमेव योग-परायण होकर निवास करती है॥४०॥

शिवार्धाङ्गी[२] महादेवी त्रिशूलवरधारिणी। त्रिनेत्रा सर्वशक्त्यौघसंवृता सदसन्मयी।
पश्यन्ति तत्र मुनयः सिद्धा ये ब्रह्मवादिनः॥४१॥

वह भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी त्रिनेत्रा (तीन नेत्रों वाली) और उत्तम त्रिशूल को हाथ में धारण करने वाली तथा सभी शक्तियों (देवियों) के समूह से घिरी रहने वाली महादेवी पार्वती सदसत् स्वरूपा है। उन महादेवी का दर्शन वहाँ रहने वाले मुनि, सिद्ध तथा ब्रह्मवेत्ता जन ही कर पाते हैं॥४१॥

सुपार्श्वस्योत्तरे भागे सरस्वत्याः पुरोत्तमम्। सरांसि सिद्धजुष्टानि देवभोग्यानि सत्तमाः॥४२॥

सुपार्श्व पर्वत के उत्तर में देवी सरस्वती का उत्तम पुर है। हे सज्जनो! वहाँ सिद्धों के द्वारा सेवित और देवों के उपभोग के योग्य अनेक सरोवर हैं॥४२॥

पाण्डुरस्य गिरेः शृङ्गे विचित्रद्रुमसङ्कुले। गन्धर्वाणां पुरशतं दिव्यस्त्रीभिः समावृतम्॥४३॥

पाण्डुर पर्वत की चोटी पर अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त स्थान पर दिव्य स्त्रियों से परिपूर्ण गन्धर्वों के एक सौ पुर (नगर) हैं॥४३॥

---
१. भास्वद्भिभृशमायुक्तं, २. महालक्ष्मी

तत्र नित्यं मदोत्सिक्ता नरा नार्यस्तथैव च। क्रीडन्ति मुदिता नित्यं विलासैर्भोगतत्पराः॥४४॥

उन पुरों में भोग-विलास में तत्पर मदोन्मत्त स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर नित्य क्रीडा करते हैं॥४४॥

अञ्जनस्य गिरेः शृङ्गे नारीपुरमनुत्तमम्। वसन्ति तत्राप्सरसो रम्भाद्या रतिलालसाः॥४५॥

अञ्जन पर्वत की चोटी पर अति उत्तम नारी-पुर है। उसमें रति की अभिलाषा वाली रम्भा आदि अप्सराएँ निवास करती हैं॥४५॥

चित्रसेनादयो यत्र समायान्त्यर्थिनः सदा। सा पुरी सर्वरत्नाढ्या नैकप्रस्रवणैर्युता॥४६॥

वहाँ चित्रसेन आदि (गन्धर्व) कामातुर होकर आते हैं। वह पुरी सभी प्रकार के रत्नों से सम्पन्न है और वहाँ अनेक झरने हैं॥४६॥

अनेकानि पुराणि स्युः कौमुदे चापि सुव्रताः। रुद्राणां शान्तरजसामीश्वरासक्तचेतसाम्।४७॥

तेषु रुद्रा महायोगा महेशान्तरधारिणः। समासते परं ज्योतिरारूढाः स्थानमैश्वरम्॥४८॥

हे सद्व्रती द्विजो! कौमुद पर्वत में शान्त रजोगुण वाले और ईश्वर (शंकर) में आसक्त चित्त वाले रुद्रों के अनेक पुर हैं और उन पुरों में महायोगी, परं ज्योतिर्मय ईश्वरीय तत्त्वों पर आरूढ महेश्वर को अपने अन्तःकरण में धारण करने वाले रुद्रगण विराजमान रहते हैं॥४७-४८॥

पिञ्जरस्य गिरेः शृङ्गे गणेशानां पुरत्रयम्। नन्दीश्वरस्य कपिले तत्रास्ते स महामतिः॥४९॥

पिञ्जर पर्वत की चोटी पर गणेश्वरों के तीन पुर हैं। वहीं (निकट में) कपिल शिखर पर नन्दीश्वर का पुर (भवन) है, जहाँ वह महाबुद्धिमान् [नन्दीश्वर] निवास करते हैं॥४९॥

तथा च जारुधेः शृङ्गे देवदेवस्य धीमतः। दीप्तमायतनं पुण्यं भास्करस्यामितौजसः॥५०॥

तथैव जारुधि शिखर पर अतुल तेजस्वी देवाधिदेव परम बुद्धिमान् भगवान् सूर्य का दीप्तिमान् पवित्र भवन है॥५०॥

तस्यैवोत्तरदिग्भागे चन्द्रस्थानमनुत्तमम्। वसते तत्र रम्योऽसौ भगवान् शीतदीधितिः॥५१॥

उसके ही उत्तर दिशा की ओर चन्द्र देव का उत्तम निवास-स्थान है। वहाँ पर वह शीतरश्मि सुन्दर चन्द्रमा निवास करते हैं॥५१॥

अन्यच्च भवनं दिव्यं हंसशैले महर्षयः। सहस्रयोजनायामं सुवर्णमणितोरणम्॥५२॥

तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सिद्धसङ्घैरभिष्टुतः। सावित्र्या सह विश्वात्मा वासुदेवादिभिर्युतः॥५३॥

हे महर्षियो! हंस पर्वत पर एक अन्य भवन है, जो एक हजार योजन विस्तार वाला है, जिसमें स्वर्ण और मणियों वाला मुख्य द्वार है। उसमें भगवान् विष्णु आदि देवों के साथ विश्वात्मा ब्रह्मा जी सावित्री सहित निवास करते हैं॥५२-५३॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धानां पुरमुत्तमम्। सनन्दनादयो यत्र वसन्ति मुनिपुङ्गवाः॥५४॥

उस हंस पर्वत के दक्षिण में सिद्धों का उत्तमपुर है, जहाँ सनन्दन आदि मुनिवर निवास करते हैं॥५४॥

पञ्चशैलस्य शिखरे दानवानां पुरत्रयम्। नातिदूरेण तस्माच्च दैत्याचार्यस्य धीमतः॥५५॥

पञ्चशैल पर्वत के शिखर में दानवों के तीन पुर हैं। उनके निकट ही दैत्य गुरु शुक्राचार्य का निवास है॥५५॥

सुगन्धशैलशिखरे सरिद्भिरुपशोभितम्। कर्दमस्याश्रमं पुण्यं तत्रास्ते भगवानृषिः॥५६॥

नदियों से सुशोभित सुगन्ध नामक पर्वत के शिखर पर कर्दम का पवित्र आश्रम है, जहाँ पर वह भगवान् ऋषि निवास करते हैं॥५६॥

तस्यैव पूर्वदिग्भागे किञ्चिद्वै दक्षिणाश्रिते। सनत्कुमारो भगवांस्तत्रास्ते ब्रह्मवित्तमः॥५७॥

उसी आश्रम से पूर्व दिशा की ओर से कुछ दक्षिण में ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार निवास करते हैं॥५७॥

सर्वेष्वेतेषु शैलेषु तथान्येषु मुनीश्वराः। सरांसि विमला नद्यो देवानामालयाः शुभाः५८॥

हे मुनीश्वरो! इन सभी पर्वतों तथा अन्य पर्वतों में भी नाना सरोवर एवं निर्मल जल वाली नदियाँ और दिव्य देवालय विद्यमान हैं॥५८॥

सिद्धलिङ्गानि पुण्यानि मुनिभिः स्थापितानि च। तानि चायतनान्याशु संख्यातुं नैव शक्यते॥५९॥

वहाँ मुनियों के द्वारा स्थापित पवित्र और सिद्ध शिवलिङ्ग हैं। उन दिव्य देवालयों की गणना भी नहीं की जा सकती है॥५९॥

एष संक्षेपतः प्रोक्तो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः। न शक्यो विस्तराद्वक्तुं मया वर्षशतैरपि॥६०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे जम्बूद्वीपवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

जम्बूद्वीप का यह विवरण मैंने संक्षेप में कहा है। इसका विस्तार से वर्णन मैं सौ वर्षों तक भी नहीं कर सकता हूँ॥६०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'जम्बूद्वीपवर्णन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

अथैकोनपञ्चाशोऽध्यायः

भुवन-विन्यासवर्णनम्

सूत उवाच

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः। संवेष्टयित्वा क्षारोदं प्लक्षद्वीपो व्यवस्थितः॥१॥

जम्बूद्वीप के विस्तार से बाहर उससे द्विगुणित (दुगुने) विस्तार वाले क्षार समुद्र (खारे पानी का समुद्र) को चारों ओर से आवृत करके (घेरकर उसके बाहर) प्लक्ष द्वीप स्थित है॥१॥

प्लक्षद्वीपे च विप्रेन्द्राः सप्तासन्कुलपर्वताः। ऋज्वायताः[१] सुपर्वाणः सिद्धसङ्घनिषेविताः॥२॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! प्लक्ष द्वीप में सात कुल पर्वत हैं, जो सीधे और चौड़े तथा सुन्दर पहाड़ी ढलानों वाले हैं और उनमें सिद्धों के समूह निवास करते हैं॥२॥

गोमेदः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्चन्द्र उच्यते। नारदो दुन्दुभिश्चैव मणिमान् ऋषभस्तथा[२]।
वैभ्राजः सप्तमस्तेषां ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभः॥३॥

[उन कुल पर्वतों में] प्रथम है-गोमेद पर्वत तथा दूसरा चन्द्र पर्वत कहलाता है। तब आगे क्रमशः नारद पर्वत, दुन्दुभि पर्वत, मणिमान्, ऋषभ तथा सातवाँ वैभ्राज नामक पर्वत है, जो ब्रह्मा को अत्यन्त प्रिय है॥३॥

तत्र देवर्षिगन्धर्वैः सिद्धैश्च भगवानजः। उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वदृक्॥४॥

वहाँ देवों, ऋषियों, गन्धर्वों और सिद्धों के द्वारा सर्वसाक्षी जगत्-स्रष्टा विश्व की आत्मा भगवान् ब्रह्मा का पूजन किया जाता है॥४॥

तेषु पुण्या जनपदा आधयो व्याधयो न च। न तत्र पापकर्तारः पुरुषा वै कथञ्चन॥५॥

उन प्लक्ष द्वीप के पवित्र जनपदों में आधि-व्याधि कहीं नहीं है और वहाँ के पुरुष किसी प्रकार का पाप नहीं करते॥५॥

तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणां तु समुद्रगाः। तासु ब्रह्मर्षयो नित्यं पितामहमुपासते॥६॥

वहाँ के वर्ष-पर्वतों से निकली सात नदियाँ समुद्र में जाकर मिलती हैं और उन नदियों में ब्रह्मर्षिगण नित्यमेव पितामह (ब्रह्मा) की उपासना करते हैं॥६॥

अनुतप्ता शिखी चैव विपापा त्रिदिवा कृता। अमृता सुकृता चैव नामतः परिकीर्तिताः॥७॥

वे सात नदियाँ अनुतप्ता, शिखी, विपापा, त्रिदिवा, कृता, अमृता और सुकृता नाम वाली हैं॥७॥

क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याताः सरांसि च बहून्यपि। न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुषः॥८॥
आर्यकाः कुरुराश्चैव विदेहा भाविनस्तथा। ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन्द्वीपे प्रकीर्तिताः॥९॥

वहाँ छोटी नदियाँ तो असंख्य हैं और बहुत से सरोवर भी वहाँ हैं। वहाँ चार युगों की जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। वहाँ के पुरुष दीर्घायु होते हैं। उस द्वीप के निवासी आर्यक, कुरुर, विदेह तथा भाविन ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहे गये हैं॥८-९॥

इज्यते भगवान सोमो[३] वर्णैस्तत्र निवासिभिः। तेषाञ्च सोमसायुज्यं सारूप्यं च भवेद् द्विजाः॥१०॥

वहाँ वर्णों के निवासियों के द्वारा भगवान् सोम का पूजन किया जाता है और उनको सोम का सायुज्य और सारूप्य प्राप्त होता है॥१०॥

सर्वे धर्मरता नित्यं सर्वे मुदितमानसाः। पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः॥११॥

वहाँ के सभी निवासी धर्मपालन में नित्य तत्पर रहते हैं और सभी प्रसन्न चित्त रहते हैं और वे रोग-रहित रहकर पाँच हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं॥११॥

१. सिद्धायुताः, २. सोमश्च ऋषभस्तथा, ३. ईशो

प्लक्षद्वीपप्रमाणं तु द्विगुणेन समन्ततः। संवेष्ट्येक्षुरसाम्भोधिं शाल्मलिः संव्यवस्थितः॥१२॥

प्लक्ष द्वीप के प्रमाण अर्थात् समग्र क्षेत्र के चारों ओर से द्विगुणित क्षेत्र में स्थित इक्षु रस के समुद्र को वेष्टित (घेर) कर उसके बाहर शाल्मलि द्वीप स्थित है॥१२॥

सप्त वर्षाणि तत्रापि सप्तैव कुलपर्वताः। ऋज्वायताः सुपर्वाणः सप्त नद्यश्च सुव्रताः॥१३॥

हे सद्व्रती द्विजो! वहाँ भी सात वर्ष और सात कुल पर्वत हैं, जो सीधे और विस्तृत तथा सुन्दर पर्वों वाले हैं। वहाँ सात (प्रमुख) नदियाँ भी हैं॥१३॥

कुमुदश्चान्नदश्चैव तृतीयश्च बलाहकः। द्रोणः कंसस्तु महिषः ककुद्मान् सप्तमस्तथा॥१४॥

वहाँ कुमुद, अन्नद, बलाहक, द्रोण, कंस, महिष और सातवाँ कुल पर्वत ककुद्मान् नामक है॥१४॥

योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी। निवृत्तिश्चेति ता नद्यः स्मृताः पापहरा नृणाम्॥१५॥

वहाँ योनी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और निवृत्ति नामक सात नदियाँ मनुष्यों के पापों का हरण करने वाली कही गयी हैं॥१५॥

न तेषु विद्यते लोभः क्रोधो वा द्विजसत्तमाः। न चैवास्ति युगावस्था जना जीवन्त्यनामयाः॥१६॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! शाल्मलि द्वीप के सात वर्षों में निवास करने वाले मनुष्यों में लोभ, क्रोध (आदि कोई दोष) नहीं है। वहाँ चार युगों की जैसी व्यवस्था भी नहीं है। वहाँ के मनुष्य रोग रहित रहकर जीवित रहते हैं॥१६॥

यजन्ति सततं तत्र वर्णा वायुं सनातनम्। तेषां तस्याथ सायुज्यं सारूप्यञ्च सलोकता॥१७॥

वहाँ सभी वर्णों के मनुष्य सनातन वायु देव का पूजन करते हैं। अन्त में वे सब उसी वायु देव का सायुज्य, सारूप्य और सालोक्य प्राप्त करते हैं॥१७॥

कपिला ब्राह्मणाः प्रोक्ता राजानश्चारुणास्तथा।
पीता वैश्याः स्मृताः कृष्णा द्वीपेऽस्मिन् वृषला द्विजाः॥१८॥

वहाँ के ब्राह्मण कपिल (भूरे) वर्ण के, क्षत्रिय अरुण (लाल) वर्ण के, वैश्य पीले वर्ण के और हे द्विजो! उस द्वीप के शूद्र कृष्ण वर्ण के होते हैं॥१८॥

शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः। संवेष्ट्य तु सुरोदाब्धिं कुशद्वीपो व्यवस्थितः॥१९॥

शाल्मल द्वीप के विस्तार (क्षेत्रफल) से दुगुने क्षेत्र में चारों ओर स्थित सुरोदाब्धि (सुरा-समुद्र) को घेरकर उसके बाहर कुशद्वीप स्थित है॥१९॥

विद्रुमश्चैव हेमश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा। कुशेशयो हरिश्चैव मन्दरः सप्त पर्वताः॥२०॥

वहाँ विद्रुम, हेम, द्युतिमान् पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और मन्दर नामक सात कुल पर्वत हैं॥२०॥

धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मिता तथा। विद्युत्प्रभा मही रामा महानद्योऽत्रसप्त वै॥२१॥

वहाँ धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मिता, विद्युत्प्रभा, मही और रामा नामक सात महानदियाँ हैं॥२१॥

अन्याश्च शतशो विप्रा नद्यो मणिजलाः शुभाः। तासु ब्रह्माणमीशानं देवाद्याः पर्युपासते॥२२॥

हे विप्रो! वहाँ अन्य भी सैकड़ों पवित्र नदियाँ हैं जो मणि के समान स्वच्छ जल वाली हैं। उन नदियों [के जल] में देवादि के द्वारा ब्रह्मा और ईशान (शिव) की उपासना की जाती है॥२२॥

ब्राह्मणा द्रविणो विप्राः क्षत्रियाः शुष्मिणस्तथा। वैश्यास्तोभास्तु[1] मन्देहाः शुद्रास्तत्र प्रकीर्तिताः॥२३॥

हे द्विजो! वहाँ के ब्राह्मणों को द्रविण, क्षत्रियों को शुष्मिन्, वैश्यों को स्तोभ तथा शूद्रों को मन्देह कहा गया है॥२३॥

सर्वे विज्ञानसम्पन्ना मैत्र्यादिगुणसंयुताः। यथोक्तकारिणः सर्वे सर्वे भूतहिते रताः॥२४॥

वे सभी विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न, मैत्री आदि गुणों से युक्त, शास्त्र-विहित कर्म करने वाले और सभी प्राणियों का हित करने में संलग्न रहते हैं॥२४॥

यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्। तेषाञ्च ब्रह्मसायुज्यं सारूप्यञ्च सलोकता॥२५॥

वे विविध प्रकार के यज्ञों से परमेष्ठी ब्रह्मा की उपासना करते हैं। वे सभी ब्रह्म का सायुज्य, सारूप्य और सालोक्य प्राप्त करते हैं॥२५॥

कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः। क्रौञ्चद्वीपः स्थितो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम्॥२६॥

हे विप्रो! कुशद्वीप के विस्तार से द्विगुणित विस्तार वाले घृतोदधि को चारों ओर से घेरकर उसके बाहर क्रौञ्च द्वीप स्थित है॥२६॥

क्रौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चान्धकारिकः। देवाब्दश्च[2] विवेदश्च पुण्डरीकस्तथैव च।
नाम्ना च सप्तमः प्रोक्तः पर्वतो दुन्दुभिस्वनः॥२७॥

उस (क्रौञ्च द्वीप) में क्रौञ्च, वामनक, अन्धकारक, देवाब्द, विवेद, पुण्डरीक तथा दुन्दुभिस्वन नामक सात कुल पर्वत कहे गये हैं॥२७॥

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा। कोशी च[3] पुण्डरीका च नद्यः प्राधान्यतः स्मृताः॥२८॥

उस क्रौञ्च द्वीप में गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, कोशी और पुण्डरीका नामक सात नदियाँ प्रधानतः बतलायी गयी हैं॥२८॥

पुष्कलाः पुष्करा धन्यास्तिष्या वर्णाः क्रमेण वै। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव द्विजोत्तमाः॥२९॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों को क्रमशः पुष्कल, पुष्कर, धन्य और तिष्य कहा गया है॥२९॥

अर्चयन्ति महादेवं यज्ञदानशमादिभिः। व्रतोपवासैर्विविधैर्होमैश्च पितृतर्पणैः॥३०॥

वे यज्ञ, दान, शम, दम आदि से तथा व्रत, उपवास, विविध प्रकार के होम और पितरों के तर्पण से महादेव शिव की उपासना करते हैं॥३०॥

तेषां वै रुद्रसायुज्यं सारूप्यं चातिदुर्लभम्। सलोकता च सामीप्यं जायते तत्प्रसादतः॥३१॥

उनको उन महादेव रुद्र की कृपा से अति दुर्लभ सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य और समीप्य प्राप्त होता है॥३१॥

१. वैश्याः स्नेहास्तु, २. दिवावृत्त गिरीन्द्रश्च, ३. कोभिश्च

क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः। शाकद्वीपः स्थितो विप्रा आवेष्ट्य दधिसागरम्॥ ३ २॥

हे विप्रो! क्रौञ्च द्वीप के विस्तृत क्षेत्र के बाहर स्थित दधिसागर को आवेष्टित (चारों ओर से घेर) कर उसके बाहर शाकद्वीप स्थित है॥ ३ २॥

उदयो रैवतश्चैव श्यामकाष्ठगिरिस्तथा[१]। आम्बिकेयस्तथा रम्यः केसरी चेति पर्वताः॥ ३ ३॥

उस शाकद्वीप में उदय, रैवत, श्याम (श्यामाक), काष्ठगिरि, आम्बिकेय, रम्य एवं केशरी नामक वर्षपर्वत हैं॥ ३ ३॥

सुकुमारी कुमारी च नलिनी वेणुका तथा। इक्षुका धेनुका चैव गभस्तिश्चेति निम्नगाः॥ ३ ४॥

वहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, वेणुका, इक्षुका, धेनुका और गभस्ति नामक प्रमुख नदियाँ हैं॥ ३ ४॥

आसां पिबन्तः सलिलं जीवन्ति तत्र मानवाः। अनामयाश्चाशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः॥ ३ ५॥

वहाँ के मनुष्य इन नदियों का जल पीते हैं और वे रोग रहित, शोक रहित तथा राग-द्वेष रहित रह कर चिरकाल तक जीवित रहते हैं॥ ३ ५॥

मगाश्च मगधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चात्र क्रमेण तु॥ ३ ६॥

वहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः मग, मगध, मानस और मन्दग कहलाते हैं॥ ३ ६॥

यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम्। व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेवं दिवाकरम्॥ ३ ७॥

वे सभी व्रत, उपवास आदि विविध धार्मिक कृत्यों से सदैव सभी लोकों के एकमात्र साक्षी देवाधिदेव भगवान् सूर्य की उपासना करते हैं॥ ३ ७॥

तेषां वै सूर्यसायुज्यं सामीप्यञ्च सरूपता। सलोकता च विप्रेन्द्रा जायते तत्प्रसादतः॥ ३ ८॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उन भगवान् सूर्य की कृपा से उन सभी को सूर्य का सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य और सालोक्य प्राप्त होता है॥ ३ ८॥

शाकद्वीपं समावृत्य क्षीरोदः सागरः स्थितः। श्वेतद्वीपञ्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः॥ ३ ९॥

शाकद्वीप के बाहर चारों ओर क्षीरोद नामक सागर (क्षीरसागर) है। उसके मध्य में श्वेत द्वीप है, जहाँ पर नारायण भगवान् विष्णु की भक्ति में लीन भक्तगण रहते हैं॥ ३ ९॥

तत्र पुण्या जनपदा नानाश्चर्यसमन्विताः। श्वेतास्तत्र नरा नित्यं जायन्ते विष्णुतत्पराः॥ ४ ०॥

वहाँ नाना प्रकार के आश्चर्यों से युक्त पवित्र जनपद हैं। वहाँ के मनुष्य श्वेत (सफेद) वर्ण के होते हैं। वे नित्य विष्णु भक्ति में लीन रहते हैं॥ ४ ०॥

नाधयो व्याधयस्तत्र जरामृत्युभयं न च। क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्जिताः॥ ४ १॥

वहाँ के मनुष्य आधि-व्याधि रहित और जरा (वृद्धावस्था) तथा मृत्यु के भय से रहित, क्रोध-लोभ से मुक्त तथा माया (छल कपट) और ईर्ष्या (-द्वेष) से रहित होते हैं॥ ४ १॥

नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिनः। नारायणसमाः सर्वे नारायणपरायणाः॥ ४ २॥

---

१. श्यामाकास्तगिरिस्तथा

वे सदैव हृष्ट-पुष्ट, आतङ्क-रहित, नित्य आनन्दित, भोग-साधनों का उपयोग करने वाले और सभी नारायण के समान तथा नारायण के भक्त होते हैं॥४२॥

केचिद् ध्यानपरा नित्यं योगिनः संयतेन्द्रियाः। केचिज्जपन्ति तप्यन्ति केचिद्विज्ञानिनोऽपरे॥४३॥

वहाँ कुछ जितेन्द्रिय योगी नित्य ध्यान-परायण रहते हैं, कुछ जप करते हैं तो कुछ तप करते हैं और अन्य योगी विशेष ज्ञान से संतृप्त हैं॥४३॥

अन्ये निर्बीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविताः। ध्यायन्ति तत्परं ब्रह्म वासुदेवं सनातनम्॥४४॥

कुछ अन्य साधक निर्बीज योग के द्वारा ब्रह्म-भाव से भावित (संतृप्त) होकर उस वासुदेव नामक सनातन परं ब्रह्म का ध्यान करते हैं॥४४॥

एकान्तिनो निरालम्बा महाभागवताः परे। पश्यन्ति तत्परं ब्रह्म विष्ण्वाख्यं तमसः परम्॥४५॥

कुछ एकान्त में स्थित और कुछ अन्य आश्रय रहित महाभागवत (भगवद्भक्त) होकर विष्णु संज्ञक उस परम ब्रह्म का दर्शन करते हैं, जो तमस (तमोगुण रूपी अन्धकार) से परे हैं॥४५॥

सर्वे चतुर्भुजाकाराः शङ्खचक्रगदाधराः। सुपीतवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः॥४६॥

वहाँ के सभी निवासी चार भुजाओं वाले, शङ्ख, चक्र और गदा को धारण करने वाले, पीत वस्त्र धारण करने वाले तथा श्रीवत्स से अंकित वक्षस्थल वाले होते हैं॥४६॥

अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कित-मस्तकाः। स्वयोगोद्भूतकिरणा महागरुडवाहनाः॥४७॥

वहाँ कुछ अन्य जन भगवान् शिव के भक्त हैं, जो अपने मस्तक में त्रिपुण्ड्र धारण किये रहते हैं। वे अपने योग बल से प्रादुर्भूत किरणों (से लोक को दीप्तिमान करने) वाले तथा महागरुड वाहन वाले होते हैं॥४७॥

सर्व-शक्तिसमायुक्ता नित्यानन्दाश्च निर्मलाः। वसन्ति तत्र पुरुषा विष्णोरन्तरचारिणः॥४८॥

सर्वशक्ति-सम्पन्न, नित्यमेव आनन्दमग्न और निर्मल तथा भगवान् विष्णु के समीप विचरण करने वाले पुरुष वहाँ निवास करते हैं॥४८॥

तत्र नारायणस्यान्यद् दुर्गमं दुरतिक्रमम्। नारायणं नाम पुरं प्रासादैरुपशोभितम्॥४९॥

वहाँ नारायण विष्णु का एक अन्य दुर्गम और दुर्जेय नारायण नामक पुर है जो अनेक प्रासादों (भवनों) से सुशोभित है॥४९॥

हेमप्राकारसंयुक्तं स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम्। प्रभासहस्रकलिलं दुराधर्षं सुशोभनम्॥५०॥

जो स्वर्ण के बने प्राकार (परिसर के चारों ओर की दीवार) तथा स्फटिक से बने मण्डप से युक्त है। वह हजारों प्रकार की प्रभाओं (प्रकाश-किरणों) से सुशोभित अत्यन्त शोभायमान और अपराजेय है॥५०॥

हर्म्य-प्रासादसंयुक्तं महाट्टालसमाकुलम्। हेमगोपुरसाहस्रैर्नानारत्नोपशोभितैः॥५१॥

वह पुर दिव्य प्रासादों (भवनों) तथा विशाल अट्टालिकाओं (ऊँची-ऊँची हवेलियों) से पूर्ण तथा नाना रत्नों से सुशोभित एवं स्वर्ण से निर्मित सहस्रों गोपुरों (मुख्य द्वारों) से सुशोभित है॥५१॥

शुभ्रास्तरणसंयुक्तैर्विचित्रैः समलंकृतम्। काननैर्विविधाकारैः स्रवन्तीभिश्च शोभितम्॥५२॥

वहाँ के भवनों में उत्तम और रंगविरंगे आस्तरण (विछोना, गद्दा) बिछे हैं। वह नगर विविध प्रकार के उपवनों तथा नदियों से शोभायमान है॥५२॥

सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणावेणुनिनादितम्। पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम्॥५३॥

वहाँ सभी दिशाओं में सरोवर हैं। वहाँ वीणा और वेणु (वंशी) की ध्वनि गूँजती रहती है। वह पुर विविध रंगों वाली अनेकों पताकाओं से सुशोभित है॥५३॥

वीथिभिः सर्वतो युक्तं सोपानै रत्नभूषितैः। नारी[1]शतसहस्राढ्यं दिव्यगाननिनादितम्॥५४॥

वहाँ सभी ओर गलियाँ तथा रत्नों से अलंकृत सीढ़ियाँ हैं। वह पुर सैकड़ों हजारों दिव्य नारियों से युक्त और दिव्य संगीत से निनादित रहता है॥५४॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्। चातुर्द्वारमनौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम्॥५५॥

[वहाँ के सरोवर] हंस, कारण्डव (बतख) तथा चक्रवाक (चकवा) पक्षियों से सुशोभित रहते हैं। वह [चार दिशाओं में] चार प्रमुख द्वारों वाला पुर अतुलनीय तथा देवों के शत्रुओं के लिए अगम्य है॥५५॥

तत्र तत्राप्सरः संघैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम्। नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्लभैः॥५६॥

वहाँ की भूमि अनेकत्र नृत्य करती हुई अप्सराओं के समूहों से सुशोभित है। देवों के लिए भी दुर्लभ नाना प्रकार के गीतों की गान-विद्या की विधि को वे अप्सराएँ जानती हैं॥५६॥

नानाविलासचतुरैः कामुकैरतिकोविदैः। सुपूर्णचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसंयुतैः॥५७॥
ईषत्स्मितैः सुबिम्बोष्ठैर्बालमुग्धमृगेक्षणैः। अशेषविभवोपेतैस्तनुमध्यविभूषितैः॥५८॥
सुराजहंसचलनैः सुवेषैर्मधुरस्वनैः। संलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितैः॥५९॥
स्तनभारविनम्रैश्च मधुघूर्णितलोचनैः। नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियैः॥६०॥

वे अप्सराएँ नाना प्रकार के हाव-भाव आदि विलास में चतुर, कामातुर, रति-निपुण, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली, नूपुरों की झङ्कार करने वाली, किञ्चित् मुस्कान युक्त मुख वाली, पके हुए बिम्ब के फल के समान लाल होंठों वाली, हिरन के बच्चे की आँखों के समान मोहक नेत्रों वाली, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न, आभूषणों से अलंकृत पतली कमर वाली, राजहंस के समान चाल (गति) वाली, सुन्दर वेश-भूषा वाली, मधुर वचन बोलने वाली, वार्तालाप में कुशल, दिव्य आभूषणों से अलंकृत, स्तनों के भार से झुके शरीर वाली, मद-मस्त चञ्चल नेत्रों वाली, अनेक प्रकार के अङ्गराग से अलंकृत अङ्गों वाली वे अप्सराएँ नाना प्रकार के भोग-विलास में संलिप्त रहती हैं॥५७-६०॥

उत्फुल्लकुसुमोद्यानैरपि सर्वत्र शोभितम्। असंख्येयगुणं व्याप्तमसंख्यैस्त्रिदशैरपि॥६१॥

वह नगर सर्वत्र विकसित पुष्पों के उद्यानों से सुशोभित है। असंख्य गुणों से युक्त वह नगर असंख्य देवताओं से भी भरा हुआ है॥६१॥

श्रीमत्पवित्रं देवस्य श्रीपतेरमितौजसः। तस्य मध्येऽतितेजस्कमुच्चप्राकारतोरणम्॥६२॥

१. नदी

धाम तद्वैष्णवं दिव्यं योगिनां सिद्धिदायकम्। तन्मध्ये भगवानेकः पुण्डरीकदलद्युतिः॥६३॥
शेतेऽशेषजगत्सूतिः शेषाहिशयने हरिः। विचिन्त्यमानो योगीन्द्रैः सनन्दनपुरोगमैः॥६४॥

अत्यन्त तेजस्वी श्रीपति (लक्ष्मी के पति) भगवान् विष्णु का वह नगर श्री-सम्पन्न और अति पवित्र है। उस पुर के मध्य में भगवान् विष्णु का ऊँचे प्राकार (चारदिवारी) तथा तोरण से युक्त अत्यन्त तेजोमय और दिव्य धाम है, जो योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाला है। उस धाम के मध्य में शेष नाग की शय्या के ऊपर सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा कमल दल के समान कान्तिमान् भगवान् विष्णु शयन करते हैं और सनन्दन आदि योगीश्वर उनका ध्यान करते हैं॥६२-६४॥

स्वात्मानन्दामृतं पीत्वा परं तत् तमसः परः। पीतवासा विशालाक्षो महामायो महाभुजः॥६५॥
क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः। सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया।
समास्ते तन्मना नित्यं पीत्वा नारायणामृतम्॥६६॥

आत्मदर्शन रूपी अमृत का पान करके वह भगवान् विष्णु तमोगुण से रहित हैं। पीत वस्त्र धारण करने वाले, विशाल नयनों वाले, महामायावी, और महाभुजाओं वाले उन भगवान् विष्णु के दोनों चरणों की सेवा क्षीरसागर में उत्पन्न कन्या महालक्ष्मी नित्यमेव करती है। वह जगत् पूजिता भगवान् विष्णु की प्रयेसी (प्रिया) नारायण रूपी अमृत का [नेत्रों से] पान (अर्थात् दर्शन) करके उनके चरणों में मन लगा कर वहीं पर स्थित रहती हैं॥६५-६६॥

न तत्राधार्मिका यान्ति न च देवान्तराश्रयाः। वैकुण्ठं नाम तत्स्थानं त्रिदशैरपि वन्दितम्॥६७॥

क्षीर सागर में स्थित उस भगवान् विष्णु के धाम में अधर्मी जन नहीं जा सकते हैं तथा अन्य देवों की उपासना करने वाले भी वहाँ नहीं जा सकते हैं। वैकुण्ठ नामक वह स्थान देवों के द्वारा भी पूजित है॥६७॥

न मे प्रभवति प्रज्ञा कृत्स्नशस्तन्निरूपणे। एतावच्छक्यते वक्तुं नारायणपुरं हि तत्॥६८॥

मैं उस भगवान् नारायण के पुर का पूर्णतः वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं इतना ही कह सकता हूँ॥६८॥

स एव परमं ब्रह्म वासुदेवः सनातनः। शेते नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्॥६९॥

वह श्रीपति सनातन वासुदेव नामक परम ब्रह्म नारायण अपनी माया से जगत् को मोहित करते हुए [क्षीर सागर में शेषशय्या पर] शयन करते हैं॥६९॥

नारायणादिदं जातं तस्मिन्नेव व्यवस्थितम्। तमेवाभ्येति कल्पान्ते[१] स एव परमा गतिः॥७०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे भुवनविन्यासवर्णने एकोनपञ्चाशोऽध्यायः॥४९॥

भगवान् नारायण से ही यह जगत् प्रकट हुआ है, उन्हीं में व्यवस्थित है तथा कल्पान्त में उन्हीं में लीन हो जाता है। वह भगवान् विष्णु ही परमगति हैं॥७०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'भुवन-विन्यास-प्रकरण' में उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥४९॥

---

१. तमाश्रयति कालान्ते

अथ पञ्चाशोऽध्यायः

पुष्करद्वीपवर्णनम्

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन व्यवस्थितः। क्षीरार्णवं समावृत्य[1] द्वीपः पुष्करसंज्ञितः॥१॥

शाकद्वीप के विस्तार से [उसके बाहर के] दुगुने क्षेत्र में क्षीरसागर स्थित है। उसी को आवृत कर उसके बाहर पुष्कर द्वीप स्थित है॥१॥

एक एवात्र विप्रेन्द्राः पर्वतो मानसोत्तरः। योजनानां सहस्राणि सार्धं[2] पञ्चाशदुच्छ्रितः॥२॥
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः पारिमण्डलः। स एव द्वीपश्चार्द्धेन मानसोत्तरसंज्ञितः[3]॥३॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस द्वीप में मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। वह साढ़े पचास हजार योजन ऊँचा तथा उतने ही विस्तार में सभी ओर इसका परिमण्डल (?वृत्त) है। उसी शाकद्वीप का आधा भाग (पर्वत के ही नामानुसार) मानसोत्तर कहलाता है॥२-३॥

एक एव महाभागः सन्निवेशो द्विधा कृतः। तस्मिन्द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ॥४॥

एक ही महापर्वत उसकी विशेष स्थिति के कारण दो भागों में विभक्त है। उस शाकद्वीप में दो पवित्र जनपद कहे गये हैं॥४॥

अपरौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ। महावीतं स्मृतं वर्षं धातकीखण्डमेव च॥५॥

वे दोनों भाग मानस पर्वत के अनुमण्डल हैं। उनमें से एक महावीत वर्ष तथा दूसरा धातकी खण्ड कहलाता है॥५॥

स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः। तस्मिन्द्वीपे महावृक्षो न्यग्रोधोऽमरपूजितः॥६॥

सादूदक नामक समुद्र से वह पुष्कर द्वीप घिरा हुआ है। उस द्वीप में देवताओं के द्वारा पूजित एक विशाल न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है॥६॥

तस्मिन्निवसति ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः। तत्रैव मुनिशार्दूल शिवनारायणालयः॥७॥

उसमें विश्व की आत्मा और विश्व की सृष्टि करने वाले (विश्वभावन) ब्रह्मा निवास करते हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! वहीं पर शिव और नारायण का धाम है॥७॥

वसत्यत्र महादेवो हरोऽर्धं हरिरव्ययः। सम्पूज्यमानो ब्रह्माद्यैः कुमाराद्यैश्च योगिभिः।
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैश्वरः कृष्णपिङ्गलः॥८॥

वहाँ पर आधे शरीर वाले हर आधे शरीर वाले विष्णु के साथ मिलकर हरि-हर रूप में निवास करते हैं। वहाँ ब्रह्मा आदि देवों, कुमार कार्तिकेय आदि तथा योगी जनों और गन्धर्वों, किन्नरों एवं यक्षों के द्वारा उन कृष्ण-पिङ्गल स्वरूप [वाले हरि-हर] का पूजन किया जाता है॥८॥

---

१. समाश्रित्य, २. चोर्ध्वं, ३. संस्थितः

स्वस्थास्तत्र प्रजाः सर्वा ब्राह्मणा सदृशस्त्विषः। निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः॥९॥

वहाँ के सभी प्रजाजन स्वस्थ तथा ब्रह्मा के समान तेजस्वी, नीरोग, शोक रहित तथा राग-द्वेष रहित होते हैं॥९॥

सत्यानृते न तत्रास्तां नोत्तमाधममध्यमाः। न वर्णाश्रमधर्माश्च न नद्यो न च पर्वताः॥१०॥

वहाँ सत्य और असत्य कुछ नहीं है तथा उत्तम मध्यम और अधम जैसा भी कुछ नहीं है। वहाँ वर्णाश्रम धर्म भी नहीं है और वहाँ नदियाँ तथा पर्वत भी नहीं है॥१०॥

परेण पुष्करेणाथ समावृत्य स्थितो महान्। स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद् द्विजसत्तमाः॥११॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! पुष्कर द्वीप के परे (अर्थात् उसके बाहर) उसे चारों ओर से घेर कर विशाल स्वादूदक (स्वादिष्ट जल वाला) समुद्र स्थित है॥११॥

परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः। काञ्चनी द्विगुणा भूमिः सर्वत्रैकशिलोपमा॥१२॥

उसके बाहर महती लोक-स्थिति (विशाल संसार) के दर्शन होते हैं। वहाँ सर्वत्र पुष्कर द्वीप से भी दुगुनी और स्वर्णमय भूमि एक विशाल शिला के समान विद्यमान है॥१२॥

तस्याः परेण शैलस्तु मर्यादा भानुमण्डलः। प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते॥१३॥

उसके आगे भानुमण्डल नामक एक विशाल मर्यादा-पर्वत है। उसमें कहीं पर प्रकाश है और कहीं प्रकाश नहीं है। अतः उसको लोकालोक पर्वत कहा जाता है॥१३॥

योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः। तावानेव च विस्तारो लोकालोकमहागिरेः॥१४॥

उस विशाल लोकालोक पर्वत की ऊँचाई दश हजार योजन है और उतना ही उसका विस्तार (चौड़ाई) है॥१४॥

समावृत्य तु तं शैलं सर्वतो वै तमः स्थितम्। तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम्॥१५॥

उस लोकालोक पर्वत को बाहर सभी ओर से अन्धकार ने आच्छादित किया हुआ है और उस अन्धकार को भी बाहर से सभी ओर से अण्ड (ब्रह्माण्ड) रूपी कटाह ने परिवेष्टित अर्थात् आच्छादित किया हुआ है॥१५॥

एते सप्त महालोकाः पातालाः सप्त कीर्तिताः। ब्रह्माण्डस्यैव विस्तारः संक्षेपेण मयोदितः।
अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः॥१६॥

मैंने ये सात महालोक तथा सात पाताल बतला दिये हैं और ब्रह्माण्ड के विस्तार का वर्णन भी संक्षेप में कर दिया है। इस प्रकार के ब्रह्माण्डों की संख्या हजारों करोड़ है, ऐसा समझना चाहिए॥१६॥

सर्वगत्वात्प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मनः। अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश।
तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रा नारायणादयः॥१७॥

प्रधान अर्थात् प्रकृति सर्व-व्यापी, सर्व-सृष्टि की कारण होते हुए भी अविनाशी है। अतः सभी ब्रह्माण्डों में चौदह लोक (पृथिवी आदि सत्य लोक पर्यन्त सात लोक तथा सात पाताल) हैं। उन सभी लोकों में चतुर्मुख-ब्रह्मा और रुद्र तथा नारायण विष्णु भी हैं॥१७॥

दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम्। समन्तात्संस्थितं विप्रास्तत्र यान्ति मनीषिणः॥१८॥

हे विप्रो! इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर सात आवरण हैं जो क्रमशः एक-दूसरे से दश गुना बड़े हैं। वहाँ मनीषी (ऋषि-मुनि) ही जाते हैं॥१८॥

अनन्तमेकमव्यक्तमनादिनिधनं महत्। अतीत्य वर्तते सर्वं जगत्प्रकृतिरक्षरम्॥१९॥

अनन्त, अद्वितीय, अव्यक्त, अनादि-निधन (आदि अन्त रहित), महतो महीयान् (महानतम), जगत् की प्रकृति स्वरूप अक्षर परम ब्रह्म उक्त (पिछले श्लोक में कहे गये) सात आवरणों से ऊपर स्थित है॥१९॥

अनन्तत्वमनन्तस्य यतः संख्या न विद्यते। तदव्यक्तमिदं ज्ञेयं तद् ब्रह्म परमं ध्रुवम्॥२०॥

उस परम ब्रह्म के जगत् में विद्यमान असंख्य स्वरूपों की गणना नहीं हो सकती। अतः अनन्त कहा जाता है। उस ब्रह्म को निश्चयमेव अव्यक्त समझना चाहिए॥२०॥

अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते। तस्य पूर्वं मयाप्युक्तं यत्तन्माहात्म्यमुत्तमम्॥२१॥

उस परम ब्रह्म को सदैव सर्वत्र सभी स्थानों में अनन्त कहा जाता है। उस परम ब्रह्म का माहात्म्य मैंने पहले भी बतला दिया है॥२१॥

गतः स एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पूज्यते। भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले।
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः॥२२॥

वह ब्रह्म सर्वत्र गामी है और सभी स्थानों में पूज्य है। वह भूमि में, पाताल में, आकाश में, पवन में, अग्नि में, सभी समुद्रों में तथा आकाश में भी निःसन्देह (अर्थात् अवश्य) विद्यमान है॥२२॥

तथा तमसि तत्त्वे वाप्येषु एव महाद्युतिः। अनेकधा विभक्तश्च क्रीडते पुरुषोत्तमः॥२३॥

वह महा तेजस्वी परम ब्रह्म पुरुषोत्तम अन्धकार में तथा प्रत्येक तत्त्व में भी अनेक प्रकार से विभक्त होकर नाना लीलाएँ करता है॥२३॥

महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्। अण्डाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिदं जगत्॥२४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे भुवनकोशवर्णनं नाम पञ्चाशोऽध्यायः॥५०॥

वह (पर ब्रह्म) महेश्वर अव्यक्त से भी परे है। वह अण्ड (ब्रह्माण्ड) अव्यक्त से प्रादुर्भूत होता है। अण्ड से ही ब्रह्मा प्रकट होते हैं और उन (ब्रह्मा) ने ही इस जगत् की सृष्टि की है॥२४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'भुवनकोश-वर्णन' नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥५०॥

अथैकपञ्चाशोऽध्यायः

मन्वन्तरकीर्तने विष्णुमाहात्म्यम्

ऋषय ऊचुः

अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि वै। तानि त्वं कथयास्मभ्यं व्यासाञ्च द्वापरे युगे॥१॥

ऋषि बोले- हे सूत जी! जो मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं तथा जो वर्तमान में है तथा जो भविष्य में आने वाले हैं, उनको तथा द्वापर युग के व्यासों को बतलाइए॥१॥

वेदशाखाप्रणयिनो देवदेवस्य धीमतः। तथाऽवतारान् धर्मार्थमीशानस्य कलौ युगे॥२॥

कियन्तो देवदेवस्य शिष्याः कलियुगेऽपि वै। एतत्सर्वं समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि॥३॥

वेद-शाखाओं की रचना तथा कलियुग में देवाधिदेव भगवान् विष्णु के अवतार तथा देव-स्वरूप भगवान् व्यास जी के कितने शिष्य हुए थे यह सब संक्षेप में बतलाइए॥२-३॥

सूत उवाच

मनुः स्वायम्भुवः पूर्वं ततः स्वारोचिषो मनुः। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥४॥

सूत जी बोले- सर्वप्रथम स्वायम्भु मनु हुए, तदनन्तर क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष मनु हुए थे॥४॥

षडेते मनवोऽतीताः साम्प्रतं तु रवेः सुतः। वैवस्वतोऽयं यस्यैतत्सप्तमं वर्ततेऽन्तरम्॥५॥

यह छः मनु व्यतीत हो चुके हैं। सम्प्रति भगवान् सूर्य के पुत्र ही मनु हैं, जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है॥५॥

स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया। अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं मनोः स्वारोचिषस्य तु॥६॥

कल्प के आदि में हुए स्वायंभुव मन्वन्तर का वर्णन मैंने कर दिया है। अब उसके आगे के स्वारोचिष मन्वन्तर को आप जानें॥६॥

पारावताश्च तुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे। विपश्चिन्नाम देवेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः॥७॥

स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और तुषित नामक देवता हुए थे तथा असुरों का नाश करने वाला विपश्चित् नामक इन्द्र हुआ था॥७॥

ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दान्तोऽथ ऋषभस्तथा। तिमिरश्चार्वरीवांश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥८॥

ऊर्ज, स्तम्भ, प्राण, दान्त, ऋषभ, तिमिर तथा उर्वरीवान् नामक सात सप्तर्षि हुए थे॥८॥

चैत्रकिम्पुरुषाद्यास्तु सुताः स्वारोचिषस्य च। द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं शृणु चोत्तमम्॥९॥

स्वारोचिष मनु के चैत्र, किम्पुरुष आदि पुत्र थे। यह द्वितीय मन्वन्तर मैंने बतलाया है। अब तीसरे उत्तम नामक मन्वन्तर को सुनें॥९॥

तृतीयेऽप्यन्तरे चैव उत्तमो नाम वै मनुः। सुशान्तिस्तत्र देवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः॥१०॥

उस तीसरे मन्वन्तर में उत्तम नामक मनु तथा सुशान्ति नामक देवराज इन्द्र था, जो शत्रुओं का नाशक था॥१०॥

सुधामानस्तथा सत्याः शिवाश्चाथ[1] प्रतर्दनः। वशवर्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशकाः स्मृताः॥११॥

सुधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वशवर्ती ये पाँच गण देवताओं के हैं, जिनमें प्रत्येक गण में बारह देवता होते हैं॥११॥

रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा। सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥१२॥

(उस उत्तम मन्वन्तर में) रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र नामक ये सात सप्तर्षि हुए थे॥१२॥

तामसस्यान्तरे देवाः सुपारा हरयस्तथा[2]। सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः॥१३॥

तामस मन्वन्तर में सुपार, हरि, सत्य तथा सुधी संज्ञक देवों के इन चार गणों में से प्रत्येक में सत्ताईस देवता होते हैं॥१३॥

शिबिरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः। बभूव शङ्करे भक्तो महादेवार्चने रतः॥१४॥

एक सौ (अश्वमेध) यज्ञ करने वाले शिव के भक्त तथा उन भगवान् शिव की नित्य उपासना में संलग्न करने वाले राजा शिबि उस तामस मन्वन्तर में इन्द्र हुए थे॥१४॥

ज्योतिर्धामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निवसनस्तथा। पीवरस्त्वृषयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे॥१५॥

ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वसन तथा पीवर नामक सप्तर्षि उस तामस मनवन्तर में हुए थे॥१५॥

पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः। मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः॥१६॥

हे द्विजेन्द्रो! पाँचवें रैवत मनवन्तर में रैवत नामक मनु तथा विभु नामक इन्द्र हुआ था, जो शत्रुओं का विनाश कारक था॥१६॥

अमिताभा भूतरया[3] वैकुण्ठाश्च सुमेधसः[4]। एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश॥१७॥

उस मन्वन्तर में अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ तथा सुमेधा नामक चार प्रकार देवसमूह में प्रत्येक में चौदह चौदह देवता सम्मिलित थे॥१७॥

हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथैव च। वेदबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यश्च महामुनिः।
एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन् रैवतेऽन्तरे॥१८॥

हे विप्रो! हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुबाहु, पर्जन्य एवं महामुनि नामक सप्तर्षि रैवत मनवन्तर में हुए थे॥१८॥

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा। प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः॥१९॥

स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत नामक ये चार मनु राजा प्रियव्रत के वंश में उत्पन्न हुए थे॥१९॥

१. जपाश्चाथ, २. सुरायासहरास्तथा, ३. अमिता भूतयस्तत्र, ४. सुरोत्तमाः

षष्ठे मन्वन्तरे चापि चाक्षुषस्तु मनुर्द्विजाः। मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवांश्चैव निबोधत॥२०॥

हे द्विजो! छठे मन्वन्तर में चाक्षुष नामक मनु हुए थे और मनोजव नामक इन्द्र हुआ था। अब आप उस मन्वन्तर के देवताओं को सुनें॥२०॥

आद्याः[१] प्रसूता भव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः। महानुभावा लेख्याश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः॥२१॥

आद्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक और लेख्य नामक पाँच प्रकार के महानुभाव देवगण उस चाक्षुष मन्वन्तर में हुए थे॥२१॥

सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधुः[२]। अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन् ऋषयः शुभाः॥२२॥

सुमेधा, विरज, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा तथा सहिष्णु नामक सात शुभ सप्तर्षि चाक्षुष मन्वन्तर में हुए थे॥२२॥

विवस्वतः सुतो विप्राः श्राद्धदेवो महाद्युतिः। मनुः संवर्तते विप्राः साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे॥२३॥

हे ब्राह्मणो! इस समय सातवें मन्वन्तर में विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र महातेजस्वी श्राद्धदेव नामक मनु हैं॥२३॥

आदित्या वसवो रुद्रा देवास्तत्र मरुद्गणाः। पुरन्दरस्तथैवेन्द्रो बभूव परवीरहा॥२४॥

द्वादश आदित्य, आठ वसु, एकादश रुद्र और उनपचास मरुद्गण इस सातवें मन्वन्तर के देवता हैं और शत्रुहन्ता पुरन्दर इस मन्वन्तर का इन्द्र है॥२४॥

वसिष्ठः कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतमः। विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥२५॥

वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज नामक सात ऋषि इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं॥२५॥

विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ। तदंशभूता राजानः सर्वे च त्रिदिवौकसः॥२६॥

इस मन्वन्तर में भगवान् विष्णु की जो सत्त्वगुण सम्पन्न अनुपम शक्ति सृष्टि की रक्षा और पालन करती है, उसी के अंश से सभी राजा और देवगण उत्पन्न हुए हैं॥२६॥

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाकूत्यां[३] मानसः सुतः। रुचेः प्रजापतेर्यज्ञस्तदंशेनाभवद् द्विजाः॥२७॥

हे द्विजो! पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में वह भगवान् विष्णु रुचि नामक प्रजापति की पत्नी आकूति में अपने एक अंश से यज्ञ नामक मानस पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे॥२७॥

ततः पुनरसौ देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे। तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितैः सह दैवतैः॥२८॥

तदनन्तर स्वारोचिष मन्वन्तर में वह (भगवान् विष्णु) तुषिता में तुषित संज्ञक देवगणों के साथ प्रकट हुए थे॥२८॥

उत्तमे त्वन्तरे विष्णुः सत्यैः सह सुरोत्तमः। सत्यायामभवत्सत्यः सत्यरूपो जनार्दनः॥२९॥

उत्तम मन्वन्तर में वह सत्यरूपी पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु सत्या नामक जननी में सत्य नामक देवगणों के साथ सत्य नाम से प्रकट हुए थे॥२९॥

---

१. आप्याः, २. द्रष्टव्य- विष्णुपुराण ३/१/२८, ३. पूर्वं प्रकृत्यां

तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि। हर्यायां हरिभिर्देवैर्हरिरेवाभवद्धरिः॥३०॥

तामस मनवन्तर आने पर वह भगवान् विष्णु अपनी हर्या नामक जननी में हरि नामक देवों के साथ हरि नाम से प्रकट हुए थे॥३०॥

रैवतेऽप्यन्तरे चैव सम्भूत्यां मानसो हरिः। सम्भूतो मानसैः सार्धं देवैः सह महाद्युतिः॥३१॥

रैवत मन्वन्तर में वह महातेजस्वी भगवान् विष्णु सम्भूति (नामक जननी) में मानस नामक देवों के साथ मानस नाम से प्रकट हुए थे॥३१॥

चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैव वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः। विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतैः सह॥३२॥

चाक्षुष मन्वन्तर में वह पुरुषोत्तम विष्णु माता विकुण्ठा में वैकुण्ठ नामक देवताओं के साथ वैकुण्ठ नाम से प्रकट हुए थे॥३२॥

मन्वन्तरे च सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे। वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह॥३३॥

वैवस्वत मन्वन्तर आने पर भगवान् विष्णु कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से वामन अवतार रूप में प्रकट हुए थे॥३३॥

त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना। पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम्॥३४॥

उन महात्मा भगवान् वामन ने तीन पगों से तीनों लोकों को [राजा बलि से] जीतकर तीनों लोकों का निष्कण्टक राज्य इन्द्र को प्रदान किया था॥३४॥

इत्येतास्तनवस्तस्य सप्त मन्वन्तरेषु वै। सप्त चैवाभवन्विप्रा याभिः संरक्षिताः प्रजाः॥३५॥

हे विप्रो! इतने सब सात मन्वन्तरों में भगवान् विष्णु के सात अवतार हुए हैं और उन सब अवतारों ने [तत् तत् मन्वन्तर में] प्रजाओं की रक्षा की है॥३५॥

यस्माद्विष्टमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना। तस्मात्सर्वैः स्मृतो विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात्॥३६॥

भगवान् वामन ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने तीन पगों से व्याप्त (तात्पर्य यह कि आच्छादित) कर दिया था। अतः 'विश्' धातु का प्रवेश अर्थ होने के कारण उनको 'विष्णु' कहा गया है॥३६॥

एष सर्वं सृजत्यादौ पाति हन्ति च केशवः। भूतान्तरात्मा भगवान्नारायण इति श्रुतिः।
एकांशेन जगत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥३७॥

सभी प्राणियों की अन्तरात्मा स्वरूप वह भगवान् नारायण विष्णु सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं और उसका पालन करते हैं तथा अन्त में उसका संहार करते हैं। ऐसा वेद का वचन है। वह भगवान् नारायण विष्णु अपने एक अंश से सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं॥३७॥

चतुर्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च।
एका भगवतो मूर्तिर्ज्ञानरूपा शिवामला॥३८॥
वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला।
द्वितीया कालसंज्ञान्या तामसी शिवसंज्ञिता॥३९॥

निहन्त्री सकलस्यान्ते वैष्णवी परमा तनुः। सत्त्वोद्रिक्ता तृतीयान्या प्रद्युम्नेति च संज्ञिता॥४०॥

जगत्संस्थापयेद्विश्वं सा विष्णोः प्रकृतिर्ध्रुवा। चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्तिर्ब्रह्मेति संज्ञिता॥४१॥
राजसी सानिरुद्धस्य स्वभावात् सृष्टिकारिका।
यः स्वपित्यखिलं हत्वा प्रद्युम्नेन सह प्रभुः॥४२॥
नारायणाख्यो ब्रह्मासौ प्रजासर्गं करोति सः।
यासौ नारायणतनुः प्रद्युम्नाख्या शुभा स्मृता॥४३॥
तया सम्मोहयेद्विश्वं सदेवासुरमानुषम्। ततः सैव जगन्मूर्तिः प्रकृतिः परिकीर्तिता॥४४॥

वह भगवान् विष्णु यद्यपि निर्गुण हैं, तथापि सगुण रूप में व्याप्त होकर वह चार स्वरूपों में स्थित हैं। भगवान् का एक स्वरूप वासुदेव संज्ञक है, जो कि ज्ञानमय कल्याणकारी, निर्मल, निर्गुण और निष्कल (कला रहित) है। उनकी दूसरी काल संज्ञक तामसी मूर्ति शिव संज्ञक है। वह भगवान् विष्णु का ही अन्य स्वरूप है, जो कि अन्त में सबका संहारकारक है। भगवान् विष्णु की सत्त्वगुण प्रधान तीसरी मूर्ति प्रद्युम्न संज्ञक है, जो कि सम्पूर्ण जगत् की स्थिति (पालन) कारक है। वह भगवान् विष्णु की ध्रुवा (स्थिर) प्रकृति है। भगवान् वासुदेव (विष्णु) की चौथी मूर्ति ब्रह्मा नामक है। वह अनिरुद्ध की राजसी मूर्ति स्वभावतः सृष्टि करने वाली है। जो प्रभु समस्त सृष्टि का संहार करके प्रद्युम्न के साथ शयन करते हैं, वही नारायण ब्रह्मा बन कर प्रजा की सृष्टि करते हैं। भगवान् विष्णु का जो प्रद्युम्न नामक शुभ स्वरूप है, उससे वह सभी देवों, असुरों और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण विश्व को संमोहित करते हैं। अतः जगत् का संमोहन करने वाले भगवान् के उस प्रद्युम्न स्वरूप को ही प्रकृति कहा जाता है॥३८-४४॥

वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणो हरिः। प्रधानं पुरुषं कालः सत्त्वत्रयमनुत्तमम्।
वासुदेवात्मकं नित्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥४५॥

वह वासुदेव हरि भगवान् विष्णु केवल (एक मात्र) अनन्त आत्मा और निर्गुण हैं। प्रधान (प्रकृति), पुरुष, काल तथा सत्त्व, रज और तमोगुण रूप तीनों तत्त्व भी वासुदेव-मय हैं। जो मनुष्य यह जान लेता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है॥४५॥

एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्धापुनरच्युतः। बिभेद वासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम्॥४६॥

च्युत, वासुदेव, प्रद्युम्न, भगवान् हरि विष्णु नारायण ने स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यास रूप में स्वेच्छया अवतार लेकर चतुष्पादात्मक एक वेद को चार संहिताओं के रूप में विभक्त किया था॥ ।४६॥

अवातरत् स सम्पूर्णं स्वेच्छया भगवान् हरिः। अनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा ऋषयो विदुः।
एकोऽयं वेद भगवान् व्यासो नारायणः प्रभुः॥४७॥

उन भगवान् विष्णु ने स्वेच्छानुसार कृष्णद्वैपायन व्यास रूप में पूर्ण रूप से अवतार लिया था। उन अनादि, अनन्त, परम ब्रह्म को न तो देवता और न ऋषि ही जान सके हैं। उन परब्रह्म परमात्मा को एकमात्र नारायण भगवान् प्रभु व्यास जी ही जानते थे॥४७॥

इत्येतद्विष्णुमाहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमाः। एतत्सत्यं पुनः सत्यमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति॥४८॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे मन्वन्तरकीर्तने विष्णुमाहात्म्यं नामैकपञ्चाशोऽध्यायः॥५१॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यह भगवान् विष्णु का माहात्म्य मैंने आप लोगों से कहा है। यह सत्य है। यह पुनः पुनः सत्य है यह जानने वाला मोह-ग्रस्त नहीं होता॥४८॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में मनवन्तर-वर्णन-प्रसंग में 'विष्णु-माहात्म्य' नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥५१॥

अथ द्वापञ्चाशोऽध्यायः

अथ वेदशाखाप्रणयनम्

सूत उवाच

अस्मिन्मन्वन्तरे पूर्वं वर्तमाने महान् प्रभुः। द्वापरे प्रथमे व्यासो मनुः स्वायम्भुवो मतः॥१॥
बिभेद बहुधा वेदं नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः। द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः॥२॥

इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम द्वापर युग में महान् प्रभु स्वायम्भुव मनु को व्यास माना गया था। उन्होंने प्रभु ब्रह्मा के आदेशानुसार वेद को अनेकधा विभाजित किया था। द्वितीय द्वापर में प्रजापति स्वयं व्यास हुए थे॥१-२॥

तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे स्याद् बृहस्पतिः। सविता पञ्चमे व्यासः षष्ठे मृत्युः प्रकीर्तितः॥३॥
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः। सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मतः॥४॥

तृतीय द्वापर युग में उशना (भृगु के पुत्र शुक्राचार्य) ने व्यास का दायित्व निभाया था तथा चौथे द्वापर युग में बृहस्पति, पाँचवे द्वापर में सविता तथा छठे द्वापर में मृत्यु (यम), सातवें द्वापर में इन्द्र, आठवें द्वापर में वसिष्ठ, नवें द्वापर में सारस्वत तथा दशवें द्वापर में त्रिधामा नामक व्यास हुए थे॥३-४॥

एकादशे तु ऋषभः सुतेजा द्वादशे स्मृतः। त्रयोदशे तथा धर्मः सुचक्षुस्तु चतुर्दशे॥५॥
त्र्य्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः। कृतञ्जयः सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतञ्जयः॥६॥

ग्यारहवें द्वापर में ऋषभ बारहवें द्वापर में सुतेजा, तेरहवें द्वापर में धर्म तथा चौदहवें द्वापर में सुचक्षु, पन्द्रवें द्वापर में त्र्य्यारुणि, सोलहवें में धनञ्जय, सत्रहवें द्वापर में कृतञ्जय तथा अठारहवें द्वापर में ऋतञ्जय, नामक व्यास हुए थे॥५-६॥

ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वं तु गौतमः। वाजश्रवाश्चैकविंशे तस्मात् शुष्मायणाः परः[1]॥७॥

---

१. तस्मान्नारायणः परः

तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्परः स्मृतः। पञ्चविंशे तथा शक्तिः षड्विंशे तु पराशरः॥८॥
सप्तविंशे तथा व्यासो जातूकर्णो महामुनिः। अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते ह्यस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः[१]।
पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत्॥९॥

तदनन्तर उनीसवें द्वापर में भरद्वाज नामक व्यास हुए थे तथा बीसवें द्वापर में गौतम नामक व्यास हुए थे। इक्कीसवें द्वापर में वाजश्रवा, तब बाईसवें द्वापर में शुष्मायण, तेईसवें द्वापर में तृणबिन्दु, चौबीसवें द्वापर में ऋक्ष, पच्चीसवें द्वापर में शक्ति, छब्बीसवें द्वापर में पराशर, सत्ताइसवें द्वापर में जातुकर्ण नामक महामुनि तथा अट्ठाईसवें इस वर्तमान द्वापर में पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन नाम के व्यास हुए हैं॥७-९॥

स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः। पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरिः॥१०॥
आराध्य देवमीशानं दृष्ट्वा स्तुत्वा त्रिलोचनम्। तत्प्रसादादसौ व्यासं वेदानामकरोत्प्रभुः॥११॥

उन्होंने चारों वेदों का दर्शन (सम्पादन) तथा सभी पुराणों का प्रवर्तन-संपादन किया था। पराशर मुनि के पुत्र महायोगी भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास ने त्रिलोचन महादेव शिव की आराधना करके उनका दर्शन प्राप्त कर तथा उन भगवान् शिव की स्तुति करके उनकी कृपा प्राप्त कर ही वेदों का चार संहिताओं के रूप में संपादन किया था॥१०-११॥

अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान्। जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च॥१२॥
पैलं तेषां चतुर्थञ्च पञ्चमं मां महामुनिः। ऋग्वेदसंहितां पैलं प्रददौ स महामुनिः॥१३॥

तब उन महामुनि ने वेदों में पारंगत जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन और पैल नामक चार शिष्यों को चार वेद तथा मुझ सूत को पुराण की शिक्षा प्रदान की थी। उन महामुनि व्यास जी ने ऋग्वेद संहिता अपने शिष्य पैल को ग्रहण करायी थी॥१२-१३॥

यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च। जैमिनिं सामवेदस्य पाठकं सोऽन्वपद्यत॥१४॥

उन्होंने वैशम्पायन को यजुर्वेद का प्रवक्ता (पारायणकर्ता) बनाया था तथा जैमिनि को उन्होंने सामवेद का पाठक बनाया था॥१४॥

तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्। इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत्॥१५॥

तथा ऋषियों में श्रेष्ठ सुमन्तु को अथर्ववेद के पारायण में नियोजित किया था और मुझे (सूत को) इतिहास-पुराण के प्रवचन हेतु नियोजित किया था॥१५॥

एक आसीत् पुरावेदस्तं चतुर्धा प्रकल्पयत्। चातुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥१६॥

आरम्भ में वेद एक ही था, जिसको व्यास जी ने चार भागों में विभक्त किया था तथा वेदोक्त चातुर्होत्र के विधान के अनुसार यज्ञों का अनुष्ठान किया गया था॥१६॥

आध्वर्यवं यजुर्भिः स्याद् ऋग्भिर्होत्रं द्विजोत्तमाः। औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः॥१७॥

---

१. अट्ठाईस द्वापरों में से किस द्वापर में कौन व्यास था इसका विवरण विष्णुपुराण (३/३/१०-२१) ब्रह्माण्ड (१/२/३५/११६-१२५) तथा वायुपुराण पूर्वार्द्ध २३/१११-२०७ में है।

अध्वर्यु (यज्ञ में आहुति का अनुष्ठान) का कार्य यजुर्वेद के मन्त्रों से, होता का कार्य ऋग्वेद के मन्त्रों से एवं सामवेद के मन्त्रों से उद्‌गाता के द्वारा देवता की स्तुति का गान तथा अथर्व वेद के मन्त्रों का उद्घोष करना ब्रह्मा का दायित्व था॥१७॥

ततः स ऋच उद्‌धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः। यजूंषि तु यजुर्वेदं सामवेदं तु सामभिः॥१८॥

भगवान् वेदव्यास ने समग्र वेदराशि में से ऋचाओं का पृथक् संकलन करके ऋग्वेद संहिता को सम्पादित किया था। यजुष् अर्थात् यज्ञ से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन यजुर्वेद में किया था तथा साम-गान से सम्बन्धित मन्त्रों को सामवेद में सम्पादित किया था॥१८॥

एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा। शाखानान्तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत्॥१९॥
सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रबिभेद सः। अथर्वाणमथो वेदं बिभेद नवकेन सः।
भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः॥२०॥

प्रभु वेदव्यास जी ने ऋग्वेद की विभिन्न शाखाओं के इक्कीस भेदों का संपादन तथा यजुर्वेद की एक सौ शाखाओं का संपादन किया था। उन्होंने सामवेद की एक हजार शाखा-भेदों का तथा अथर्ववेद की नौ शाखाओं का सम्पादन किया था। प्रभु व्यास जी ने पुराण-संहिता को अष्टादश भेदों अर्थात् अष्टादश महापुराणों के रूप में संपादित किया था॥१९-२०॥

सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनः। ओङ्कारो ब्रह्मणो जातः सर्वदोषविशोधनः॥२१॥

पूर्वकाल में ब्रह्मा के मुख से ओङ्कार सहित पुरातन एक वेद चतुष्पाद रूप में प्रकट हुआ था, जो सभी दोषों को दूर करने वाला है॥२१॥

वेद-वेद्योऽथ भगवान्वासुदेवः सनातनः। स गीयते परो वेदे यो वेदैनं स वेदवित्॥२२॥

सनातन भगवान् वासुदेव को वेद के द्वारा ही जाना जा सकता है। उन्हीं परम पुरुष वासुदेव का गान वेद में किया गया है। जो उन परमपुरुष को जानता है, वही वास्तव में वेद का ज्ञाता है॥२२॥

एतत्परतरं ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम्। वेदवाक्योदितं तत्त्वं वासुदेवः परम्पदम्॥२३॥

वह भगवान् विष्णु ही परात्पर ब्रह्म, परं ज्योति तथा उत्तम आनन्द स्वरूप हैं। वेद वचनों में कथित परम तत्व और परम पद वही वासुदेव हैं॥२३॥

वेदवेद्यमिमं वेत्ति यस्तु वेदपरो मुनिः। अवेद्यं परमं वेत्ति वेदाभ्यासरतो नरः॥२४॥

वेद के पारायण (अध्ययन) में तत्पर व्यक्ति वेद के द्वारा जानने योग्य वेद रूप भगवान् को जानता है। वेद के पारायण में संलग्न व्यक्ति उस परम तत्व को भी जान लेता है, जिसका ज्ञान सरल सुगम नहीं है॥२४॥

स वेदवेद्यो भगवान्वेदमूर्तिर्महेश्वरः। स एव वेद्यो वेदश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते॥२५॥

वह वेदमूर्ति भगवान् महेश्वर वेद के द्वारा ही जाने जा सकते हैं। वही वेद हैं और वही जानने योग्य हैं। उनका आश्रय लेकर मनुष्य भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है॥२५॥

इत्येतदक्षरं वेद्यमोङ्कारं वेदमव्ययम्। अवेदञ्च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः॥२६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे वेदशाखाप्रणयनं नाम द्वापञ्चाशोऽध्यायः॥५२॥

पराशर के पुत्र महामुनि व्यास जी अक्षर (अविनाशी) और अव्यय (विकारहीन) और अवश्य जानने योग्य ओङ्कार स्वरूप परमात्मा को जानते हैं तथा जिसे जनसाधारण के लिए जानना कठिन है, उसको भी वह जानते हैं॥२६॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में 'वेदशाखा-प्रणयन' नामक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

कलियुगेषु महादेवावताराणां वर्णनम्

सूत उवाच

वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु। महादेवावताराणि कलौ शृणुत सुव्रताः[1]॥१॥

सूत जी बोले- हे उत्तम व्रत वाले द्विजो! मैंने द्वापर युग में होने वाले वेदव्यास के अवतारों को कह दिया है। अब आप लोग कलियुग में होने वाले भगवान् शिव के अवतारों को सुनें॥१॥

आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युतिः। नाम्ना हिताय विप्राणामभूद्वैवस्वतेऽन्तरे॥२॥

हिमवच्छिखरे रम्ये छगले पर्वतोत्तमे। तस्य शिष्याः प्रशिष्याश्च बभूवुरमितप्रभाः॥३॥

वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम कलियुग में ब्राह्मणों का हित सिद्ध करने के लिए अत्यन्त तेजस्वी श्वेत नामक देवाधिदेव शिव हिमालय क्षेत्र के अति उत्तम छगल नामक पर्वत में अवतरित हुए थे। उनके अत्यन्त तेजस्वी शिष्य और प्रशिष्य (शिष्यों के शिष्य) थे॥२-३॥

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः। चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः॥४॥

उनमें से श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य तथा श्वेतलोहित नामक चार महात्मा ब्राह्मण शिष्य वेद में पारंगत विद्वान् थे॥४॥

सुतारो मदनश्चैव सुहोत्रः कङ्कणस्तथा। लोकाक्षिस्त्वथ योगीन्द्रो जैगीषव्योऽथ सप्तमे॥५॥

[वैवस्वत मन्वन्तर के द्वितीय कलियुग से छठे कलियुग तक] क्रमशः सुतार, मदन, सुहोत्र, कङ्कण एवं योगीश्वर लोकाक्षि नामक अवतार हुए थे और सातवें कलियुग में शिव का जैगीषव्य नामक अवतार हुआ था॥५॥

१. वैवस्वत मनवन्तर के २८ कलियुगों में शिव के २८ अवतारों का वर्णन लिङ्गपुराण १/७/३०-३४ तथा शिवपुराण ७/२/९/२-६ में भी है।

अष्टमे दधिवाहः स्यान्नवमे ऋषभः प्रभुः। भृगुस्तु दशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्रः परः स्मृतः॥६॥

आठवें कलियुग में दधिवाह, नवें कलियुग में प्रभु ऋषभ, दशम कलियुग में भृगु तथा अग्रिम ग्यारहवें कलियुग में शिव का उग्र नामक अवतार हुआ था॥६॥

द्वादशेऽत्रिः समाख्यातो बाली चाथ त्रयोदशे। चतुर्दशे गौतमस्तु वेददर्शी[1] ततः परः॥७॥
गोकर्णश्चाभवत्तस्माद् गुहावासः शिखण्डधृक्। जटामाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली तथा॥८॥
महाकालो[2] मुनिः शूली डिण्डमुण्डीश्वरः स्वयम्। सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीश्वर एव च॥९॥

बारहवें कलियुग में अत्रि नामक अवतार हुआ था। तेरहवें कलियुग में बाली, चौदहवें में गौतम, पन्द्रहवें कलियुग में वेददर्शी (वेदशिरा), सोलहवें में गोकर्ण, सत्रहवें में गुहावासी, अठारहवें कलियुग में शिखण्डी, उनीसवें में जटामाली, बीसवें में अट्टहास, इकीसवें में दारुक, बाइसवें में लाङ्गली, तेइसवें में महाकाल, चौबीसवें में मुनि, पच्चीसवें में शूली, छब्बीसवें में डिण्डमुण्डीश्वर, सत्ताईसवें में सोमशर्मा तथा अट्ठाईसवें कलियुग के अवतार को नकुलीश्वर (लकुलीश्वर) कहा गया है॥७-९॥

वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिशूलिनः। अष्टाविंशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभोः।
तीर्थे कायावतारे स्याद्देवेशो नकुलीश्वरः॥१०॥

वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईस कलियुगों में त्रिशूलधारी भगवान् शिव के अट्ठाईस अवतार कहे गये हैं। अन्तिम कलियुग में कायावतार नामक तीर्थ में देवेश्वर नकुलीश्वर (लकुलीश्वर) का अवतार होगा॥१०॥

तत्र देवाधिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः। शिष्या बभूवुश्चान्येषां प्रत्येकं मुनिपुङ्गवाः॥११॥
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमास्थिताः। क्रमेण तान्प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान्॥१२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! देवाधिदेव भगवान् शिव के चार महातपस्वी शिष्य हुए थे। उन चार शिष्यों के भी प्रत्येक कलियुग में चार शिष्य थे जो सदैव प्रसन्न चित्त, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाले तथा ईश्वर (शिव) की भक्ति में तत्पर रहते थे। योग-विद्या के विद्वानों में श्रेष्ठतम उन योगियों को मैं क्रमशः बतलाऊँगा॥११-१२॥

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः[3] श्वेतलोहितः। दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा।
विशोकश्च विकेशश्च विशाखः शापनाशनः॥१३॥
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः। सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः॥१४॥
दालभ्यश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः। सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपात्रजं एव च॥१५॥
सारस्वतस्तथा मेघो[4] धनवाहः सुवाहनः। कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखो मुनिः॥१६॥

१. वेदशिरा (शिव ७/२/९/३), २. महायामो/संशोधित पाठ शिवपुराण ७/२/९/५ से

३. लिङ्गपुराण १/७/३७ तथा शिवपुराण ७/२/९/८ में 'श्वेताश्व' पाठ है। इन दोनों पुराणों में अन्य अनेक नामों में भी अन्तर है।

४. मोघो

पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा। बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥१७॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च विक्रोशो लम्बकः शुकः। सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यासाध्यस्तथैव च॥१८॥

सुधामा काश्यपश्चाथ वसिष्ठो विरजास्तथा।
अत्रिरुग्रस्तथा चैव श्रवणोऽथ सुवैद्यकः॥१९॥
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः।
कश्यपो ह्युशना चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः॥२०॥
उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महानिलः।
वाजश्रवाः सुकेशश्च श्यावाश्वः यतीश्वरः॥२१॥
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा।
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव कुबन्धः कुषिकन्धरः॥२२॥
प्लक्षो दाल्भ्यायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।
भल्लाची मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोधनः॥२३॥
उषिजो बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च।
शालिहोत्राग्निवेश्यश्च युवनाश्वः शरद्वसुः॥२४॥
छगलः कुण्डकर्णश्च कुन्तश्चैव प्रवाहकः।
उलूको विद्युतश्चैव शाद्वलो ह्याश्वलायनः॥२५॥
अक्षपादः कुमारश्च ह्युलूको[1] वसुवाहनः।
कुणिकश्चैव गर्गश्चमित्रको रुरुरेव च॥२६॥
शिष्या एते महात्मानः सर्वावर्तेषु योगिनाम्।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः॥२७॥

वे क्रमशः श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य, श्वेत-लोहित, दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान, विशोक, विकेश, विशाख, शापनाशन (पाशनाशन), सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम, सनक, सनातन, सनन्दन, दालम्य, महायोगी, धर्मात्मा, महौजा, सुधामा, विरजा, शङ्खपात्रज, सारस्वत, मेघ, धनवाह, सुवाहन, कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख, पराशर, गर्ग, भार्गव, अङ्गिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृङ्ग, तपोधन, लम्बोदर, लम्ब, विक्रोश, लम्बक, शुक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्यासाध्य, सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ, विरज, अत्रि, उग्र, श्रवण, सुवैद्य, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानिल (? महाबल), वाजश्रवा, सुकेश, श्यावाश्व, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य,

१. उलूक नाम श्लोक २५ में भी आ चुका है।

लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमिनि, कुबन्ध, कुषिकन्धर, प्लक्ष, दाल्भ्यायणि, केतुमान्, गौतम, भल्लाची (?) मधुपिङ्ग, तपस्वी श्वेतकेतु, उशिज, बृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व, शरद्वसु, छगल, कुण्डकर्ण, कुन्त, प्रवाहक, उलूक, विद्युत्, शाद्वल, आश्वलायन, अक्षपाद, कुमार, उलूक (?), वसुवाहन, कुणिक, गर्ग (?कुणिगर्ग), मित्रक और रुरु नामक ये योगेश्वरों के शिष्य वैवस्वत मन्वन्तर के क्रमशः सभी (अट्ठाईस) कलियुगों में होते हैं। ये सभी विशुद्ध ब्रह्मचिन्तन में लीन, ज्ञानयोग परायण होते हैं॥१३-२७॥

कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां हिताय च।
योगेश्वराणामादेशाद्वेदसंस्थापनाय वै॥२८॥

ये सभी शिष्य योगेश्वरों (भगवान् शिव के नाना अवतारों) के आदेशानुसार ब्राह्मणों के हित-साधन तथा वेदों की स्थापना अर्थात् रक्षा के निमित्त अवतार लेते हैं॥२८॥

ये ब्राह्मणाः संस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा।
तर्पयन्त्यर्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयुः॥२९॥

जो ब्राह्मण इनका सदैव स्मरण करते हैं, इनको प्रणाम करते हैं, इनका तर्पण करते हैं और पूजन करते हैं, वे ब्रह्म-विद्या को प्राप्त करते हैं॥२९॥

इदं वैवस्वतं प्रोक्तमन्तरं विस्तरेण तु। भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च॥३०॥

यह वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन विस्तार से किया है। इसके आगे भविष्य में आठवाँ सावर्णि मन्वन्तर, नवाँ दक्ष सावर्णि मन्वन्तर होगा॥३०॥

दशमो ब्रह्मसावर्णो धर्म एकादशः स्मृतः।
द्वादशो रुद्रसावर्णो रोचमानस्त्रयोदशः॥३१॥
भौत्यश्चतुर्दशः प्रोक्तो भविष्या मनवः क्रमात्।
अयं वः कथितो ह्यंशः पूर्वो नारायणेरितः॥३२॥
भूतैर्भव्यैर्वर्तमानैराख्यानैरुपबृंहितः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥३३॥

दशवाँ ब्रह्म सावर्ण, ग्यारहवाँ धर्मसावर्ण, बारहवाँ रुद्रसावर्ण, तेरहवाँ रोचमान नामक मन्वन्तर तथा चौदहवाँ भौत्य नामक मन्वन्तर कहा गया है। ये भविष्यत् कालीन मन्वन्तर तत्तत् मनु के नाम से ही कहे गये हैं अर्थात् विभिन्न मनुओं के नामानुसार ही हैं। हे द्विजो! भूतकाल के तथा वर्तमान काल के तथा भविष्यत् कालीन आख्यानों से संवर्धित भगवान् नारायण (कूर्म) के द्वारा कथित पुराण का यह पूर्व खण्ड (पूर्वार्ध) मैंने आप लोगों को कह दिया है। इसको जो पढ़ेगा अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को इसकी कथा सुनायेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा॥३१-३३॥

पठेद्देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि। नारायणं नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम्॥३४॥

इसका पाठ स्नान करके देवालय में अथवा नदियों के तटों में बैठकर भक्तिभाव से पुरुषोत्तम नारायण विष्णु को नमस्कार करके करना चाहिए॥३४॥

नमो देवाधिदेवाय देवानां परमात्मने। पुरुषाय पुराणाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥३५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वार्द्धे त्रिपञ्चाशोऽध्यायः॥५३॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वार्द्धं समाप्तम्॥

देवों के भी देवाधिदेव पुराण पुरुष परमात्मा प्रभविष्णु भगवान् विष्णु को नमस्कार है॥३५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के पूर्वार्ध में तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥५३॥

॥कूर्मपुराण का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ॥

❖❖❖

अथ श्रीकूर्मपुराणम्

(उत्तरार्द्धम्)

अथ प्रथमोऽध्यायः

ईश्वरगीता वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायम्भुवः प्रभो। ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तारो मन्वन्तरविनिश्चयः॥१॥

ऋषि बोले- हे प्रभु सूत जी! आपने स्वायम्भुव मनु की सृष्टि तथा मन्वन्तरों का वर्णन और ब्रह्माण्ड के विस्तार का वर्णन अच्छी तरह कर दिया है॥१॥

तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्मतत्परैः। ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्त्वया॥२॥

आपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले धर्मपरायण एवं ज्ञानयोग में निरत जनों के द्वारा नित्य आराध्य ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् का भी वर्णन किया है॥२॥

तद्वदाशेषसंसारदुःखनाशनमुत्तमम्। ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं येन पश्येम तत्परम्॥३॥

अब आप संसार के सम्पूर्ण कष्टों का नाश करने वाले एकमात्र ब्रह्म विषयक उत्तम ज्ञान को बतलावें, जिससे कि हम उस परम तत्व का दर्शन कर सकें॥३॥

त्वं हि नारायणात् साक्षात् कृष्णद्वैपायनात् प्रभो। अवाप्ताखिलविज्ञानस्तत्त्वां पृच्छामहे पुनः॥४॥

हे प्रभो! आपने कृष्ण द्वैपायन व्यास रूपी साक्षात् नारायण से सम्पूर्ण विशिष्ट ज्ञान (अध्यात्म ज्ञान) प्राप्त किया है। अतः आपसे हम पुनः उस ज्ञान को पूछते हैं॥४॥

श्रुत्वा मुनीनां तद्वाक्यं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्। सूतः पौराणिकःस्मृत्वा भाषितुं ह्युपचक्रमे॥५॥

मुनियों के उस वचन को सुनकर सूत जी ने प्रभु कृष्णद्वैपायन व्यास जी का स्मरण करके अपना भाषण प्रारम्भ किया था॥५॥

तथास्मिन्नन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्। आजगाम मुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रं समासते॥६॥

तभी कृष्णद्वैपायन मुनि व्यास जी स्वयं वहाँ पहुँच गये थे जहाँ पर श्रेष्ठ मुनिजन यज्ञ कर रहे थे॥६॥

तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसं कालमेघसमद्युतिम्। व्यासं कमलपत्राक्षं प्रणेमुर्द्विजपुङ्गवाः॥७॥

कृष्ण वर्ण के मेघ के समान कान्ति वाले एवं कमल के पत्ते के समान नेत्रों वाले उन वेद के विद्वान् व्यास जी को देखकर वहाँ पर स्थित सभी ब्राह्मणों ने उनको प्रणाम किया था॥७॥

पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वासौ लोमहर्षणः। प्रदक्षिणी कृत्य गुरुं प्राञ्जलिः पार्श्वगोऽभवत्॥८॥

लोमहर्षण सूत जी ने भी उन व्यास जी को देखकर भूमि में दण्डवत लेट कर उनके चरणों में प्रणाम किया था और तब वह हाथ जोड़कर उन गुरुवर व्यास जी की परिक्रमा करके उनके समीप बैठ गये थे॥८॥

पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम्। समाश्वास्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन्॥९॥

तब उन शौनक आदि मुनियों से कुशल प्रश्न पूछे जाने पर उन सभी ने महामुनि को सब ठीक है कह कर आश्वस्त किया तथा उनको समुचित आसन प्रदान किया था॥९॥

अथैतानब्रवीद्वाक्यं पराशरसुतः प्रभुः। कच्चिन्न हानिस्तपसः स्वाध्यायस्य श्रुतस्य च॥१०॥

तब पराशर मुनि के पुत्र व्यास जी ने उन सबसे कहा कि क्या आप लोगों के तप, स्वाध्याय और वेदाध्ययन में कोई हानि तो नहीं हुई है॥१०॥

ततश्च सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम्। ज्ञानं तद्ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि॥११॥

तब सूत जी ने अपने गुरु महामुनि व्यास जी को प्रणाम करके यह कहा कि आप इन सब उपस्थित मुनियों को ब्रह्म विषयक ज्ञान बतलाइए॥११॥

इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्मतत्पराः। शुश्रूषा जायते चैषां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥१२॥

ये सभी मुनि शान्त स्वभाव वाले, तपस्वी और धर्म परायण हैं। ये आपके प्रवचन सुनना चाहते हैं। अतः आप तत्त्व की बातें बतलावें॥१२॥

ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात्त्वयोदितम्। मुनीनां व्याहृतं पूर्वं विष्णुना कूर्मरूपिणा॥१३॥

जो ज्ञान दिव्य और मुक्ति प्रदान करने वाला है और जिसे पूर्वकाल में आप भगवान् विष्णु ने कूर्म रूप में साक्षात् अवतार लेकर मुनियों को बतलाया था अब आप उसका उपदेश दे सकते हैं॥१३॥

श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवतीसुतः। प्रणम्य शिरसा रुद्रं वचः प्राह सुखावहम्॥१४॥

सूत जी के वचन को सुनकर सत्यवती के पुत्र मुनि व्यास जी ने नत-मस्तक होकर भगवान् शिव को प्रणाम करके सुखद वचन कहे॥१४॥

व्यास उवाच

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैः पुरा। सनत्कुमारप्रमुखैः स स्वयं समभाषत॥१५॥

व्यास जी बोले- प्राचीन काल में सनत्कुमार प्रभृति योगीश्वरों के द्वारा पूछे जाने पर देवाधिदेव महादेव ने स्वयं जो कहा था, वह मैं आप लोगों से कहता हूँ॥१५॥

सनत्कुमारः सनकस्तथैव च सनन्दनः। अङ्गिरा रुद्रसहितो भृगुः परमधर्मवित्॥१६॥
कणादः कपिलो गर्गो वामदेवो महामुनिः। शुक्रो वसिष्ठो भगवान् सर्वे संयतमानसाः॥१७॥
परस्परं विचार्यैते संयमाविष्टचेतसः। तप्तवन्तस्तपो घोरं पुण्ये बदरिकाश्रमे॥१८॥

सनत्कुमार, सनक तथा सनन्दन, अङ्गिरा एवं रुद्र सहित परम धर्मज्ञ भृगु, कणाद, कपिल, गर्ग, महामुनि वामदेव, शुक्र तथा भगवान् वसिष्ठ सहित इन सभी [धर्मात्माओं] ने अपने मन को संयमित करके एवं परस्पर विचार करके पवित्र बदरिकाश्रम में जाकर घोर तपश्चर्या की थी॥१६-१८॥

अपश्यंस्ते महायोगमृषिं धर्मसुतं शुचिम्। नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा॥१९॥

तब उन्होंने वहां धर्म के पुत्र पवित्र महायोगी अनादि अनन्त ऋषि नारायण को नर के साथ देखा॥१९॥

संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः सर्ववेदसमुद्भवैः। प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनो योगवित्तमम्॥२०॥

तब उन सभी तपस्वी योगियों ने सभी वेदों में सुलभ विविध स्तोत्रों से उन नारायण की भक्तिपूर्वक स्तुति करके उन सर्वश्रेष्ठ योगी नारायण को प्रणाम किया था॥२०॥

विज्ञाय वाञ्छितं तेषां भगवानपि सर्ववित्। प्राह गम्भीरया वाचा किमर्थं तप्यते तपः॥२१॥

सर्वज्ञ भगवान् ने उन सभी की मनोकामना को जानते हुए भी गम्भीर वाणी में यह कहा कि आप लोग किस उद्देश्य से तपस्या कर रहे हैं॥२१॥

अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानं सनातनम्। साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम्॥२२॥
वयं संशममापन्नाः सर्वे वै ब्रह्मवादिनः। भवन्तमेकं शरणं प्रपन्नाः पुरुषोत्तमम्॥२३॥

तब उन विश्वात्मा सनातन भगवान् नारायण के आगमन को अपने मनोरथ की सिद्धि का सूचक जानकर प्रसन्न मन वाले उन योगियों ने कहा कि हम सभी ब्रह्मवादी शंसय-ग्रस्त होने पर आप पुरुषोत्तम नारायण की शरण में आये हैं॥२२-२३॥

त्वं वेत्सि परमं गुह्यं सर्वन्तु भगवानृषिः। नारायणः स्वयं साक्षात्पुराणोऽव्यक्तपूरुषः॥२४॥

आप साक्षात् पुराण-पुरुष ऋषि-स्वरूप में स्थित स्वयं अव्यक्त परमात्मा भगवान् नारायण हैं। आप परम गोपनीय तत्व को भी जानते हैं॥२४॥

न ह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वर। स त्वमस्माकमखिलं संशयं छेत्तुमर्हसि॥२५॥

हे परमेश्वर! आपके अतिरिक्त अन्य कोई सर्वज्ञ नहीं है। अतः आप ही हमारे सम्पूर्ण संशय का निराकरण कर सकते हैं॥२५॥

किं कारणमिदं कृत्स्नं को नु संसरते सदा। कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किंनिमित्तकः॥२६॥

इस सम्पूर्ण [सृष्टि] का कारण क्या है? (अर्थात् इस सृष्टि को किसने और क्यों बनाया है?) और इस संसार में संसरणशील (आवागमन कर्ता) कौन है? आत्मा कौन है? मुक्ति क्या है? और यह संसार किस निमित्त बना है?॥२६॥

कः संसार-इतीशानः को वा सर्वं प्रपश्यति। किं तत्परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि॥२७॥

इस संसार का नियन्ता स्वामी कौन है? इस सम्पूर्ण जगत् का द्रष्टा कौन है? परात्पर ब्रह्म कौन है? आप यह सब हमें बतलाने में समर्थ हैं॥२७॥

एवमुक्त्वा तु मुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम्। विहाय तापसं वेषं संस्थितं स्वेन तेजसा॥२८॥

मुनियों ने ऐसा कहने के बाद वहाँ यह देखा कि वह पुरुषोत्तम नारायण अपने तपस्वी के वेश को त्याग कर अपने तेजस्वी स्वरूप में स्थित हो गये हैं॥२८॥

विभ्राजमानं विमलं प्रभामण्डलमण्डितम्। श्रीवत्सवक्षसं देवं तप्तजाम्बूनदप्रभम्॥२९॥

वह देव अग्नि में प्रतप्त सोने के समान कान्ति वाले और प्रभा-मण्डल से अलंकृत, दीप्तिमान एवं निर्मल श्रीवत्स से अंकित वक्षस्थल वाले थे॥२९॥

शङ्खचक्रगदापाणिं शार्ङ्गहस्तं श्रियावृतम्। न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैव तेजसा॥३०॥

वह अपने हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुष को धारण किये हुए थे। उसी क्षण उनके तेज के प्रभाव से [उन नारायण के साथ स्थित] नर दृष्टिगत नहीं हो रहे थे॥३०॥

तदन्तरे महादेवः शशाङ्काङ्कितशेखरः। प्रसादाभिमुखो रुद्रः प्रादुरासीन्महेश्वरः॥३१॥

उसी समय चन्द्रमा से विभूषित चूडा वाले महादेव महेश्वर रुद्र प्रसन्नचित्त होकर वहाँ प्रकट हुए थे॥३१॥

निरीक्ष्य ते जगन्नाथं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम्। तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या तं परमेश्वरम्॥३२॥

चन्द्रमा को आभूषण रूप में धारण करने वाले उन जगत् के स्वामी त्रिनेत्र शिव को देख कर वहाँ उपस्थित सभी मुनियों ने प्रसन्न मन होकर भक्तिभाव से उन परमेश्वर की (इस प्रकार) स्तुति की थी॥३२॥

जयेश्वर महादेव जय भूतपते शिव। जयाशेषमुनीशान तपसाऽभिप्रपूजित॥३३॥

हे ईश्वर! हे महादेव! आपकी जय हो। हे भूतनाथ शिव! आपकी जय हो। सभी मुनियों के ईश्वर और तपस्या से पूजित प्रभु की जय हो॥३३॥

सहस्रमूर्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्तक। जयानन्त जगज्जन्मत्राणसंहारकारक॥३४॥

हे जगत् रूपी यन्त्र के संचालक सहस्र-मूर्ति विश्वात्मा, हे जगत् की सृष्टि, रक्षा तथा संहार करने वाले, हे अनन्त मूर्ति वाले शिव आपकी जय हो॥३४॥

सहस्रचरणेशान शम्भो योगीन्द्रवन्दित। जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर॥३५॥

हे सहस्र चरणों वाले ईशान! हे शम्भु! योगीश्वरों के द्वारा पूजित, हे अम्बिका के पति, हे देव! आपकी जय हो! हे परमेश्वर! आपको नमस्कार है॥३५॥

संस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः। समालिङ्ग्य हृषीकेशं प्राह गम्भीरया गिरा॥३६॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः। इमं समागता देशं किन्नु कार्यं मयाच्युत॥३७॥

मुनियों के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भक्तवत्सल त्र्यम्बक भगवान् शिव ने हृषीकेश भगवान् विष्णु का आलिङ्गन करके उनसे गम्भीर वाणी में यह कहा कि हे पुण्डरीकाक्ष! ये ब्रह्मवादी मुनीश्वर इस देश में किस प्रयोजन से आये हैं? हे अच्युत! मुझे क्या करना चाहिए?॥३६-३७॥

आकर्ण्य तस्य तद्वाक्यं देवदेवो जनार्दनः। प्राह देवो महादेवं प्रसादाभिमुखं स्थितम्॥३८॥

इमे हि मुनयो देव तापसाः क्षीणकल्मषाः। अभ्यागता मां शरणं सम्यग्दर्शनकांक्षिणः॥३९॥

उनके उक्त वचन को सुनकर देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने वहां पर प्रसन्नमुद्रा में स्थित महादेव

शिव से कहा कि हे देव! ये निष्पाप तपस्वी मुनिवर अच्छी तरह से मेरे दर्शन (तत्व ज्ञान) प्राप्ति की कामना से मेरी शरण में आये हैं॥३८-३९॥

यदि प्रसन्नो भगवान्मुनीनां भावितात्मनाम्। सन्निधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि॥४०॥

हे भगवान् शिव! आप इन संयमित आत्मा वाले मुनियों पर प्रसन्न हैं तो आप मेरे सान्निध्य में इनको दिव्य ज्ञान का प्रवचन कर सकते हैं॥४०॥

त्वं हि वेत्सि स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव। अतस्त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शय॥४१॥

हे शिव! आप स्वयं अपने आत्म-स्वरूप को जानते हैं। आपके समान ज्ञानी अन्य कोई नहीं है। अतः आप स्वयं अपने स्वरूप का दर्शन इन मुनीश्वरों को करावें॥४१॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रोवाच मुनिपुङ्गवान्। प्रदर्शयन्योगसिद्धिं निरीक्ष्य वृषभध्वजम्॥४२॥

ऐसा कह कर हृषीकेश भगवान् विष्णु ने योग-सिद्धि का प्रदर्शन कराते हुए वृषभध्वज भगवान् शिव की ओर देखकर उन मुनिवरों से यह कहा॥४२॥

सन्दर्शनान्महेशस्य शङ्करस्याथ शूलिनः। कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्त्वतः॥४३॥

हे मुनियो! त्रिशूलधारी महेश्वर शिव का यथार्थ रूप में दर्शन प्राप्त करके आप लोग अपने को कृतार्थ समझें॥४३॥

प्रष्टुमर्हथ देवेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम्। ममैव सन्निधाने स यथावद्वक्तुमीश्वरः॥४४॥

आप लोग अपने सम्मुख प्रत्यक्ष विद्यमान देवेश्वर शिव से मेरे समक्ष ही अपने प्रश्न पूछ सकते हैं। वह शिव आपको यथार्थ तत्व-ज्ञान का बोध कराने में समर्थ हैं॥४४॥

निशम्य विष्णोर्वचनं प्रणम्य वृषभध्वजम्। सनत्कुमारप्रमुखाः पृच्छन्ति स्म महेश्वरम्॥४५॥

भगवान् विष्णु के वचनों को सुनकर सनत्कुमार आदि मुनियों ने वृषभध्वज भगवान् महेश्वर को प्रणाम करके उनसे अपने प्रश्नों को पूछा था॥४५॥

अथास्मिन्नन्तरे दिव्यमासनं विमलं शिवम्। किमप्यचिन्त्यं गगनादीश्वरार्थं समुद्बभौ॥४६॥

उसी समय भगवान् शिव के लिए आकाश से अकस्मात् एक अकल्पनीय एवं दिव्य और निर्मल आसन वहाँ पर प्रकट हुआ था॥४६॥

तत्रासससाद योगात्मा विष्णुना सह विश्वकृत्। तेजसा पूरयन्विश्वं भाति देवो महेश्वरः॥४७॥

तब विश्वकर्ता योगात्मा देव महेश्वर शिव उस आसन पर विष्णु के साथ विराजमान हुए थे। तब वह भगवान् शिव अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित कर रहे थे॥४७॥

ततो देवाधिदेवेशं शङ्करं ब्रह्मवादिनः। विभ्राजमानं विमले तस्मिन्ददृशुरासने॥४८॥

तब उस समय ब्रह्मवादी मुनियों ने देवाधिदेव भगवान् शिव को उस निर्मल आसन पर विराजमान देखा था॥४८॥

तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरे किल। यदन्तरा सर्वमेतद्यतोऽभिन्नमिदं जगत्॥४९॥

उन मुनियों ने उन भूतनाथ शिव को आसन पर स्थित देखा जिनके अन्दर स्थित यह जगत् उनसे अभिन्न रूप में स्थित है॥४९॥

सवासुदेवमासीनं तमीशं ददृशुः परम्। प्रोवाच पृष्ठो भगवान्मुनीनां परमेश्वरः।
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम्॥५०॥

तब उन मुनियों ने भगवान् शिव को वासुदेव विष्णु के साथ एक ही आसन पर विराजमान होते देखा था। मुनियों के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर भगवान् शिव ने पुण्डरीकाक्ष (कमल समान नेत्र वाले) भगवान् विष्णु को देखकर अपने श्रेष्ठ योग का वर्णन किया था॥५०॥

तच्छृणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयानघाः। प्रशान्तमनसः सर्वे ज्ञानमीश्वभाषितम्[1]॥५१॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगेशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

आप सभी पुण्यात्मा मुनिगण शान्त मन वाले होकर मेरे द्वारा कहे जाने वाले उस विशुद्ध ईश्वरीय ज्ञान को सुनें॥५१॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् में पहला अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥१॥

❖❖❖

अथ द्वितीयोऽध्यायः

आत्मतत्त्व-निरूपणम्

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद्विज्ञानं मम गुह्यं सनातनम्। यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः॥१॥

हे द्विजो! यह मेरा परम गूढ और सनातन विशिष्ट ज्ञान परम गोपनीय (अवाच्य) है, जिसे देवता प्रयत्न करने पर भी नहीं जान पाते हैं॥१॥

इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्राह्मीभूता द्विजोत्तमाः। न संसारं प्रपद्यन्ते पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः॥२॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इस ज्ञान का आश्रय लेकर पूर्वकाल के ब्रह्मवादी भी ब्रह्मभाव को प्राप्त हुए हैं। अब वे ब्रह्मवादी पुनः इस असार संसार में नहीं आते हैं॥२॥

गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः। वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम्॥३॥

यह गुप्त ज्ञान अत्यन्त गोपनीय है। अतः इस साक्षात् ज्ञान को प्रयत्न-पूर्वक गुप्त रखना चाहिए। आप ब्रह्मवादी जन भक्तिभाव वाले हैं, अतः मैं इसे आप लोगों को बतलाऊंगा॥३॥

---

१. विशुद्धं ज्ञानमैश्वरम्

आत्माऽयं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः। अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः॥४॥

यह आत्मा अद्वितीय, स्वच्छ, शुद्ध, सूक्ष्म, सनातन, सभी प्राणियों के अन्दर साक्षात् विद्यमान, चिन्मात्र तथा तमोगुण से रहित है॥४॥

सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः। स कालोऽत्र तदव्यक्तं स एवेदमिति[1] श्रुतिः॥५॥

वह आत्मा अन्तर्यामी, पुरुष, प्राण, महेश्वर, काल, अग्नि तथा अव्यक्त भी वही है- ऐसा वेद का वचन है॥५॥

अस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते। स मायी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः॥६॥

उसी आत्मा से विश्व उत्पन्न होता है और उसी में लीन होता है। वह माया का स्वामी माया के बन्धन में आकर अनेक शरीर धारण करता है॥६॥

न चाप्ययं संसरति न संसारमयः प्रभुः। नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः॥७॥
न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च। न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्ता न वागपि॥८॥

यह प्रभु न तो संसार में विचरण करता है और न संसारमय है। यह न तो पृथिवी है, न जल है, न तेज (अग्नि) है, न पवन है और न आकाश है। वह न तो प्राण है और न मन है, न अव्यक्त है, न शब्द है और न स्पर्श है और न वह रूप, रस, गन्ध है और न कर्ता है न वाणी है॥७-८॥

न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः। न च कर्ता न भोक्ता वा न च प्रकृतिपूरुषौ।
न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं[2] परमार्थतः॥९॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! वह प्रभु न तो हाथ - पैर है, पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग) भी वह नहीं हैं। वह कर्ता, भोक्ता या प्रकृति और पुरुष भी नहीं है। वह न माया है और न ही प्राण है, अपितु परमार्थतः वह चैतन्य रूप है॥९॥

यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते। तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः॥१०॥

जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता उसी प्रकार (सांसारिक) प्रपञ्च और परमात्मा का परस्पर एकता का कोई सम्बन्ध नहीं होता है॥१०॥

छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ। तद्वत्प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थतः॥११॥

जिस प्रकार लोक में छाया और आतप (धूप) परस्पर विलक्षण (परस्पर भिन्न) हैं, उसी प्रकार लौकिक प्रपञ्च और परमात्मा तत्त्वतः परस्पर भिन्न हैं॥११॥

तथात्मा मलिनः सृष्टो विकारी स्यात् स्वभावतः[3]। न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि॥१२॥

(परमात्मा से भिन्न होने के कारण) आत्मा अर्थात् जीवात्मा की सृष्टि स्वाभाविक रूप से मलिन और विकारयुक्त होती हैं, सैकड़ों जन्मों तक भी उसको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है॥१२॥

पश्यन्ति मुनयो युक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः। विकारहीनं निर्द्वन्द्वमानन्दात्मानमव्ययम्॥१३॥

---
१. सच वेद इति श्रुतिः, २. प्राणा चैव परमार्थतः, ३. स्वरूपतः

योग-साधना में निरत मुनिजन आत्मा को परमार्थतः विकारहीन सुख-दुःख आदि नाना द्वन्द्वों से रहित, अविनाशी और आनन्द-स्वरूप देखते हैं॥१३॥

अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः। सा चाहङ्कारकर्तृत्वादात्मन्यारोपिता जनैः॥१४॥

मैं कर्ता हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ, कृषकाय हूँ, या स्थूल (मोटा) हूँ ऐसा चिन्तन करने वाली बुद्धि मनुष्यों ने अहंकारवश स्वयं अपने आत्मा में (भ्रमवश) आरोपित की हुई है॥१४॥

वदन्ति वेदविद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम्। भोक्तारमक्षरं बुद्धं सर्वत्र समवस्थितम्॥१५॥

वेद के विद्वान् आत्मा को साक्षी, प्रकृति से पृथक्, भोक्ता, अक्षर (विकार रहित), शुद्ध-बुद्ध तथा सर्वत्र व्याप्त बतलाते हैं॥१५॥

तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम्। अज्ञानादन्यथाज्ञानं तच्च प्रकृतिसङ्गतम्॥१६॥

अतः सभी देहधारियों के लिए यह सांसारिक-बन्धन अज्ञान के कारण ही है। अज्ञान के कारण मनुष्य (तत्त्वज्ञान) के विपरीत (मिथ्या ज्ञान) को ही ज्ञान समझ लेते हैं। वस्तुतः वह उन (अज्ञानियों) के लिए स्वाभाविक ही है॥१६॥

नित्योदितः स्वयं ज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः। अहङ्काराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते॥१७॥

परम पुरुष नित्य जागृत, स्वयं प्रकाशमान, सर्वव्यापी होता है। किन्तु (साधारण मनुष्य) अहङ्कार और अज्ञान के कारण मैं ही (स्वतन्त्र) कर्ता हूँ- ऐसा मानता है॥१७॥

पश्यन्ति ऋषयोऽव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्। प्रधानं पुरुषं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः॥१८॥

ब्रह्मवादी ऋषिगण प्रधान (प्रकृति) और पुरुष को कारण स्वरूप मानकर सत् और असत् एवं अव्यक्त का भी नित्य दर्शन करते हैं॥१८॥

तेनायं सङ्गतः स्वात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जनः। स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्येत तत्त्वतः॥१९॥

यह जीवात्मा कूटस्थ और निरञ्जन होते हुए भी उस प्रधान (प्रकृति) आदि से संगत होने के कारण वह स्वयं अपने अक्षर ब्रह्म स्वरूप को यथार्थ रूप में नहीं जान पाता है॥१९॥

अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद्दुःखं तथेतरत्। रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः॥२०॥

अनात्मा (जो आत्मा नहीं है) में आत्मा होने का मिथ्या ज्ञान ही दुःख का कारण है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के मन में जो राग-द्वेष आदि दोष उत्पन्न होते हैं, वे सब भ्रान्ति (अज्ञान) के कारण ही होते हैं॥२०॥

कर्मण्यस्य महान्दोषः पुण्यापुण्यमिति स्थितिः। तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः॥२१॥

आचार भ्रष्ट अज्ञानी मनुष्य का कर्म ही महान् दोष का कारण होता है। कर्म पुण्यप्रद भी होता है और [अनुचित कर्म] पुण्य के विपरीत (पापजनक) भी होता है। अपने कर्म के वश में (अर्थात् कर्मानुसार ही) सभी प्राणी [अनेक प्रकार की] योनियों में जन्म प्राप्त करते हैं॥२१॥

नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः। एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः॥२२॥

आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ और दोष-रहित है। वह एक होने पर भी माया की शक्ति के कारण भिन्न भिन्न स्वरूपों में प्रकट होता है, किन्तु स्वभावतः वह नाना भेदों वाला नहीं है॥२२॥

तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः। भेदो व्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया॥२३॥

अतः मुनियों ने परमार्थतः आत्मा को अद्वैत ही कहा-है। आत्मा के विषय में जो भेद (भिन्नता) की चर्चा है, वह व्यक्त स्वभाव अर्थात् महान् तत्त्व और अहंकार आदि के कारण ही है और इससे पूर्व जिस माया की चर्चा की गयी है, वह माया आत्मा पर ही आश्रित रहती है॥२३॥

यथा च धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत्। अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते॥२४॥

जिस प्रकार धुएँ के सम्पर्क में आने पर भी आकाश उससे मलिन नहीं होता उसी प्रकार अन्तःकरण में उत्पन्न भावों (विचारों) से आत्मा संलिप्त अर्थात् प्रभावित नहीं होता॥२४॥

यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलैः। उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते॥२५॥

जिस प्रकार स्फटिक मणि केवल अपनी प्रभा से दीप्तिमान् होता है, उसी प्रकार किसी उपाधि (अर्थात् किसी अन्य साधन) के बिना भी निर्मल आत्मा स्वयं प्रकाशित होता है॥२५॥

ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः। अर्थस्वरूपमेवाज्ञाः पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः॥२६॥

विद्वान् लोग इस जगत् को ज्ञान-स्वरूप ही कहते हैं। जो अन्य कुत्सित दृष्टि (कुत्सित विचार) वाले अज्ञानी मनुष्य हैं, वह इस जागत् को अर्थस्वरूप अर्थात् भौतिक वस्तु मात्र मानते हैं॥२६॥

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः। दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्ज्ञानदृष्टिभिः॥२७॥

ज्ञान रूपी नेत्रों की दृष्टि वाले विद्वान् चैतन्य युक्त आत्मा को स्वभावतः कूटस्थ, निर्गुण और सर्वव्यापी रूप में विद्यमान देखते हैं॥२७॥

यथा स लक्ष्यते रक्तः केवलं स्फाटिको जनैः। रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत्परमपूरुषः॥२८॥

जिस प्रकार लाल रंग की गुञ्जा (रत्ती) आदि (लाल रंग की वस्तु) के सम्पर्क में जन सामान्य को स्फटिक भी लाल रंग का दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार परम पुरुष को भी वे नाना नाम रूप में देखते हैं॥२८॥

तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वत्रगोऽव्ययः। उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः॥२९॥

अतः मोक्षार्थीजनों को अक्षर (अविनाशी), शुद्ध, नित्य विद्यमान, सर्वत्र व्याप्त, और अविकारी परमात्मा की उपासना, चिन्तन (ध्यान) और तद्विषयक कथा का श्रवण करना चाहिए॥२९॥

यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्र सर्वदा। योगिनः श्रद्दधानस्य ब्रह्मसम्पद्यते तदा॥३०॥

जब श्रद्धालु योगी के मन में सदैव और सर्वत्र चैतन्य प्रकाशमान या प्रतीत होता है, तब उसको ब्रह्म-ज्ञान हो जाता है॥३०॥

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥३१॥

जब योगी पुरुष सभी प्राणियों को अपने आत्मा में विद्यमान तथा अपने आत्मा को सभी प्राणियों में विद्यमान देखता है अर्थात् जानता है, तब उसको ब्रह्मज्ञान (ब्रह्मभाव) प्राप्त हो जाता है॥३१॥

यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति। एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलम्॥ ३२॥

योगी जब समाधि में लीन होकर पर ब्रह्म से एकत्व भाव (अभिन्न मानने का भाव) प्राप्त कर लेता है और सभी प्राणियों को अपने से पृथक् नहीं देखता तब वह केवल [एक मात्र ब्रह्ममय] हो जाता है॥३२॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः। तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पण्डितः॥ ३३।

जब योगी-साधक के हृदय में स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब वह विद्वान् पुरुष अमृतत्त्व से युक्त कल्याण को प्राप्त करता है॥३३॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति। तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥३४॥

जब प्राणियों की अनेकता में भी योगी पुरुष एकत्व भाव देखता है और उस एकत्व से ही जगत् के विस्तार को जानता है तो तब उसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है॥३४॥

यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः। मायामात्रं तदा सर्वं जगद्भवति निर्वृतः॥३५॥

जब वह ज्ञानी पुरुष परमार्थतः केवल एकमात्र आत्मा (परमात्मा) को ही जगत् में वास्तव में विद्यमान देखता है तथा शेष जगत् को केवल माया मात्र जानता है, तब वह मुक्त (जीवन-मुक्त) हो जाता है॥३५॥

यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेकभेषजम्। केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः॥३६॥

जब योगी पुरुष को जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और व्याधि को दूर करने का एकमात्र साधन ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त हो जाता है तो तब वह शिव-स्वरूप हो जाता है॥३६॥

यथा नदीनदा लोके सागरेणैकतां ययुः। तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत्॥३७॥

जिस प्रकार इस लोक में सभी नद एवं नदियाँ समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती हैं, उसी प्रकार यह जीवात्मा निष्कल अक्षर ब्रह्म में मिलकर उसके साथ एकाकार हो जाता है॥३७॥

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः। अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति॥३८॥

अतः विज्ञान (परमात्म-ज्ञान) ही एकमात्र सत्य है, यह लौकिक प्रपञ्च और नाशवान संसार परम सत्य नहीं है। इस लोक में अज्ञान ने विज्ञान को आवृत किया हुआ है अतः मनुष्य मोहग्रस्त हो जाता है॥३८॥ द्रष्टव्य ''अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्वतः। गीता ५/१५।

यद्ज्ञानं विमलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्। तदेव मुनिभिः प्रोक्तं विज्ञानं मोक्षदं शुभम्॥३९॥

जो ज्ञान विशुद्ध, सूक्ष्म, विकल्प रहित, अव्यय (विकार रहित), मोक्षप्रद और शुभ हो उसी ज्ञान को मुनियों ने विज्ञान कहा है॥३९॥

एतद्वः कथितं सांख्ये यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम्। सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैकचित्तता॥४०॥

यह आप लोगों को सांख्य दर्शन में वर्णित उत्तम ज्ञान मैंने कहा है। यह सम्पूर्ण वेदान्त का सार है। इस ज्ञान में चित्त को एकाग्र करना ही योग है॥४०॥

योगात्सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते। योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित्॥४१॥

योग साधना से ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से योग में प्रवृत्ति होती है। योग और ज्ञान की सिद्धि में संलग्न व्यक्ति के लिए कुछ भी प्राप्त करना कठिन नहीं है॥४१॥

यदेव योगिनो यान्ति सांख्यैस्तदधिगम्यते। एकं सांख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति स तत्त्ववित्॥४२॥

योगियों को जो (फल) योग द्वारा प्राप्त होता है, वही फल सांख्यदर्शन के विद्वानों को भी प्राप्त होता है। अतः जो व्यक्ति सांख्य और योग को एक समान जानता है, वही तत्त्वज्ञानी है॥४२॥

ये चान्ये[1] योगिनो विप्रा ह्यैश्वर्यासक्तचेतसः। मज्जन्ति तत्र तत्रैव ये चान्ये कुण्ठबुद्धयः॥४३॥

हे ब्राह्मणो! जो अन्य योगी (विरक्त नहीं है और) ऐश्वर्य (धन-वैभव एवं योग से प्राप्य सिद्धियों) में आसक्त चित्त वाले हैं तथा अन्य जो भी कुण्ठित बुद्धि के योगी हैं, वे उसी (मोह माया) में डूब मरते हैं॥४३॥

यत्तत्सर्वगतं दिव्यमैश्वर्यममलं महत्। ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात्॥४४॥

जो सर्वव्यापी, विशुद्ध और अत्यन्त महान् दिव्य ऐश्वर्य है, उसको ज्ञानयोग से सम्पन्न योगी देहान्त के पश्चात् प्राप्त करता है॥४४॥

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः। कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥४५॥

योगी पुरुष यह जानता है कि मैं ही वह अव्यक्त आत्मा हूँ जिसको सभी वेदों में मायावी, परमेश्वर, सर्वात्मा, सर्वतोमुख कहा गया है॥४५॥

सर्वरूपः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः। सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः॥४६॥

मैं सर्वरूप, सभी रसों के रूप में स्थित, सभी गन्धों वाला, अजर, अमर, सभी ओर हाथ-पैरों वाला, अन्तर्यामी और सनातन हूँ॥४६॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः। अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः शृणोम्यहम्॥४७॥

मैं बिना हाथ-पैरों वाला होने पर भी द्रुतगति से गमन करने वाला और सब कुछ पकड़ने में सक्षम हूँ। सबके हृदय में निवास करता हूँ। मैं नेत्रहीन होने पर भी सब कुछ देखता हूँ तथा कान न होने पर भी सब कुछ सुनता हूँ॥४७॥

वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन। प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः॥४८॥

मैं सर्वज्ञ हूँ- यहाँ जो कुछ भी है, उस सबको मैं जानता हूँ। मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शी विद्वान् पुरुष मुझे एकमात्र महान् पुरुष कहते हैं॥४८॥

पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मनः सूक्ष्मदर्शिनः निर्गुणामलरूपस्य यत् तदैश्वर्यमुत्तमम्॥४९॥

सूक्ष्मदर्शी ऋषि ही निर्गुण और निर्मल आत्मा के कारण स्वरूप उत्तम ऐश्वर्य का दर्शन कर पाते हैं॥४९॥

यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मम मायया। वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः॥५०॥

हे ब्रह्मवादी ऋषियो! मेरी माया से मोहित होने के कारण देवता भी जिसे नहीं जानते वह (गूढ तत्त्व) मैं कहता हूँ। आप लोग सुनें॥५०॥

---

१. अन्ये च

नाहं प्रशस्तः सर्वस्य मायातीतः स्वभावतः। प्रेरयामि तथापीदं कारणं सूरयो विदुः॥५१॥

मैं स्वभावतः माया से परे हूँ। अतः सबके लिए प्रशस्त (?) नहीं हूँ। तथापि मैं इस सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित करता हूँ। इसका कारण विद्वान् लोग जानते हैं॥५१॥

यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः। प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम्॥५२॥

मेरा जो परम गोपनीय एवं सर्वव्यापी देह (=स्वरूप) है, उसमें तत्त्वदर्शी योगीजन ही प्रविष्ट होते हैं और तब वे मेरे अविनाशी सायुज्य को प्राप्त करते हैं॥५२॥

ये हि मायामतिक्रान्ता मम या विश्वरूपिणी।
लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणं ते मया सह॥५३॥

जो योगीजन मेरी संसार रूपिणी माया से पार हो जाते हैं, वे परम शुद्ध निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त करके मेरे सायुज्य में आते हैं॥५३॥

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद्वेदानुशासनम्॥५४॥

हे योगीश्वरो! मेरी कृपा से सैकड़ों करोड़ वर्षों तक भी उन योगियों का इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता- ऐसा वेद का वचन है॥५४॥

तत्पुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्यं ब्रह्मवादिभिः। मदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम्॥५५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

मेरे द्वारा दिये गये यह सांख्य-योग पर आधारित विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) ब्रह्मवादी विद्वानों के द्वारा अपने पुत्रों, शिष्यों तथा योगीजनों को ही दिया जाना चाहिए॥५५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् में द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अव्यक्तशिवतत्त्वात्सृष्टि वर्णनम्

ईश्वर उवाच

अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः। तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्॥१॥

ईश्वर ने कहा- अव्यक्त तत्व से काल, प्रधान (प्रकृति) तथा परम पुरुष प्रकट हुआ था। उन तीनों से यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ था। अतः यह जगत् ब्रह्ममय है॥१॥

सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥२॥

वह ब्रह्म सभी ओर हाथ-पैरों वाला, सभी ओर आँख, शिर और मुख वाला एवं सभी ओर कान वाला है तथा वह समस्त विश्व को आवृत (आच्छादित) करके स्थित है॥२॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम्॥३॥

वह सभी इन्द्रियों से रहित है, तथापि उसे सभी इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है। वह सबका आधार, सदैव आनन्दमय, अव्यक्त और द्वैतवर्जित अर्थात् एकमात्र परम सत्ता होने के कारण अद्वैत संज्ञक है॥३॥

सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम्। निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम्॥४॥
अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्। निर्गुणं परमं ज्योतिस्तज्ज्ञानं सूरयो विदुः॥५॥

वह परम ब्रह्म सभी उपमानों से रहित, सभी प्रमाणों से भी परे, अदृश्य (अगोचर), निर्विकल्प, निराभास, सभी का आश्रय-स्वरूप, परम अमृत-स्वरूप, अभिन्न (भेदरहित) होते हुए भी भिन्न-भिन्न रूपों में स्थित, शाश्वत (सनातन), ध्रुव (अटल), अविनाशी, निर्गुण और परम ज्योतिरूप है। उस परम ब्रह्म का ज्ञान केवल विद्वानों को ही होता है॥४-५॥

स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तरः परः। सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः॥६॥

वह आत्मा (परमब्रह्म) सभी प्राणियों के बाहर और अन्दर स्थित, सर्वत्र विद्यमान, शान्त और ज्ञान रूप आत्मा वाला परमेश्वर मैं ही हूँ॥६॥

मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तमूर्तिना[१]। मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित्[२]॥७॥

अव्यक्त स्वरूप वाले मैंने ही इस विश्व की सृष्टि की है। सभी प्राणी मुझ में ही सिथत हैं। जो इस तथ्य को जानता है, वही वास्तव में वेद का ज्ञाता है॥७॥

प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम्[३]। तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोजकः[४] परः॥८॥

प्रधान (प्रकृति) और पुरुष ये दो प्रमुख तत्त्व कहे गये हैं। अनादि काल को उन दोनों का परम संयोजक कहा गया है॥८॥

त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम्। तदात्मकं तदन्यत् स्यात् तद्रूपं मामकं विदुः॥९॥

ये तीनों [प्रकृति पुरुष और काल] ही आदि और अन्त से रहित (अनादि, अनन्त) हैं और अव्यक्त (संज्ञक परम तत्त्व) में स्थित हैं। उन प्रधान (प्रकृति) आदि के रूप में तथा उनसे भिन्न रूप में भी जो कुछ है, वह मेरा ही रूप है॥९॥

महदाद्यं विशेषान्तं सम्प्रसूतेऽखिलं जगत्। या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥१०॥

महत् तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त (अर्थात् महत् तत्व से लेकर अहंकार, दशों इन्द्रियाँ तथा पञ्चभूत आदि) सम्पूर्ण जगत् को जो उत्पन्न करती है, उसको प्रकृति कहा गया है। वह सभी प्राणियों को मोहित करती है॥१०॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो वै भुंक्ते यः प्राकृतान् गुणान्। अहङ्कारविमुक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः॥११॥

१. जगत् स्थावर जङ्गमम्, २. यस्तं वेद विदो विदुः, ३. तद्वस्तु समुदाहृतम्, ४. संयोगजः

पुरुष स्वयं प्रकृति में स्थित होकर प्रकृति के गुणों का भोग करता है, किन्तु वह अहंकार से मुक्त रहने के कारण पचीसवाँ तत्त्व कहलाता है॥११॥

आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानिति च कथ्यते। विज्ञातृशक्तिविज्ञानात् ह्यहङ्कारस्तदुत्थितः॥१२॥

प्रकृति का प्रथम विकार महान् (महत् तत्व) कहलाता है, उसमें विज्ञान की शक्ति होती है, क्योंकि वह विज्ञाता (बुद्धितत्व) है। उससे अहंकार उत्पन्न होता है॥१२॥

एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते। स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः॥१३॥

महान् (महत्तत्त्व) ही एक मात्र आत्मा है। वही अहंकार कहलाता है। तत्त्व-चिन्तकों ने उसी को जीव तथा अन्तरात्मा भी कहा है॥१३॥

तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्च जन्मसु। स विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम्॥१४॥

उसी अहंकार से जीव नाना जन्मों में सभी सुख-दुःख आदि का अनुभव करता है। वह अहंकार विज्ञानात्मक है और मन उसका उपकारक है॥१४॥

भवेदेवाविवेकाच्च[1] संसारः पुरुषस्य तु। स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात्कालेन जायते[2]॥१५॥

पुरुष के अविवेक के कारण ही यह संसार अस्तित्व में आता है तथा वह अविवेक प्रकृति के साथ काल के चिर संयोग के फलस्वरूप होता है॥१५॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे॥१६॥

काल ही प्राणियों की सृष्टि करता है तथा काल ही उनका संहार करता है। सभी प्राणी काल के वशीभूत होते हैं, किन्तु काल किसी के वश में नहीं होता॥१६॥

सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः। प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः॥१७॥

वह काल सनातन है और सम्पूर्ण सृष्टि में विद्यमान होकर उसका नियमन करता है। उस काल को ही भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ और पुरुषोत्तम भी कहा जाता है॥१७॥

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः। मनसश्चाप्यहङ्कारमहङ्कारान्महान्परः॥१८॥

विद्वानों ने मन को सभी इन्द्रियों से परमोत्तम बतलाया है। मन से परम महत्त्व अहंकार का है और अहंकार से अधिक श्रेष्ठ महत् तत्त्व (महान्) है॥१८॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरुषाद्भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥१९॥

महान् (महत् तत्त्व) से अधिक श्रेष्ठ अव्यक्त है और अव्यक्त से अधिक श्रेष्ठ पुरुष है तथा पुरुष से श्रेष्ठ प्राण स्वरूप भगवान् हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उन प्राण रूप भगवान् से ही (जीवित) है॥१९॥

प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः। सोऽहं ब्रह्माव्ययः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः[3]।
नास्ति मत्तः परं भूतं माञ्च विज्ञाय मुच्यते॥२०॥

---

१. तेनापि तन्मयस्तस्मात्, २. सोऽभवत्, ३. मायातीतमिदं जगत्।

प्राण से अधिक श्रेष्ठ आकाश है और आकाश से श्रेष्ठ अग्नि रूपी ईश्वर है। वही मैं ब्रह्म, अविनाशी शान्त, ज्ञानरूप परमेश्वर हूँ मुझसे श्रेष्ठ अन्य कोई तत्त्व नहीं है। अतः मुझको ज्ञात करके जीव मुक्त हो जाता है॥२०॥

नित्यं नास्तीति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्। ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्॥२१॥

इस जगत् में एकमात्र मुझ अव्यक्त आकाश रूप महेश्वर के अतिरिक्त कोई स्थावर- जङ्गम (चराचर) प्राणी नित्य जीवित नहीं रहता है॥२१॥

सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत्। मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः॥२२॥

वही माया का स्वामी और मायामय देव मैं ही काल से मिलकर सदैव सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और संहार करता रहता हूँ॥२२॥

मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत्। नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम्॥२३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे तृतीयोऽध्यायः॥३॥

मेरे सान्निध्य में ही यह काल सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है। वेद का कथन है कि अनन्त आत्मा वाला वह काल ही सबको अपने अपने कार्य में नियोजित (प्रवृत्त) करता है॥२३॥

इस प्रकार श्रीकूर्मपूराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् में तृतीय अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥३॥

❖❖❖

अथ चतुर्थोऽध्यायः

शिवभक्तिमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः। माहात्म्यं देवदेवस्य येन सर्वं प्रवर्तते॥१॥

भगवान् शिव बोले- हे ब्रह्मवादी मुनियो! जो देवाधिदेव सम्पूर्ण जगत् का संचालन करते हैं, मैं उनका माहात्म्य बतलाता हूँ। आप लोग सुनें॥१॥

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया। शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्॥२॥

लोग मुझे उत्तम भक्ति (रूपी साधन) से ही जान सकते हैं, उसके अतिरिक्त न तो तपस्या से और न विविध प्रकार के दान करने से और न तो यज्ञानुष्ठान से ही मुझे जाना जा सकता है॥२॥

अहं हि सर्वभूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः[1]। मां सर्वसाक्षिणं लोको न जानाति मुनीश्वराः॥३॥

---

१. सर्वतः

हे मुनीश्वरो मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ और सभी प्राणियों के अन्तःकरण में निवास करता हूँ। मैं सर्व-साक्षी हूँ, किन्तु लोग मुझे नहीं जानते हैं॥३॥

यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तरः[1] परः। सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुखः॥४॥

जिसके अन्दर यह सम्पूर्ण संसार विद्यमान है तथा जो सबके अन्दर स्थित है, वही मैं धाता, विधाता, काल, अग्नि और सभी दिशाओं की ओर मुखवाला हूँ॥४॥

न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वे पितृदिवौकसः। ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः॥५॥

सभी मुनिगण, पितृगण और देवगण, ब्रह्मा, सभी मनु, इन्द्र तथा अन्य जो भी विख्यात तेजस्वी हैं, वे भी मुझे नहीं देख पाते हैं॥५॥

गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम्। यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः॥६॥

वेद भी मुझ एक मात्र परमेश्वर की निरन्तर स्तुति करते हैं तथा विद्‌वान ब्राह्मण अनेक प्रकार के वैदिक यज्ञों से मेरी आराधना करते हैं॥६॥

सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामहः। ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम्॥७॥

सभी मनुष्य तथा लोक पितामह ब्रह्मा मुझे नमस्कार करते हैं तथा योगीजन मुझ भूतनाथ महादेव शिव का ध्यान करते हैं॥७॥

अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः। सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्थितः[2]॥८॥

मैं सभी देवों के शरीर रूप में स्थित एवं सब का आत्मा बनकर तथा सर्वत्र विद्यमान रहकर [यज्ञ-यागादि में प्रदत्त] सभी आहुतियों का भोग करता हूँ तथा [भक्तों को उनके पुण्य का] फल-प्रदान करता हूँ॥८॥

मां पश्यन्तीह विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः। तेषां सन्निहितो नित्यं ये भक्त्या[3] मामुपासते॥९॥

धार्मिक और वेद के प्रवक्ता विद्वान् मेरा दर्शन करते हैं। जो धार्मिक जन मेरी उपासना करते हैं, मैं सदैव उनके समीप रहता हूँ॥९॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते। तेषां ददामि तत्स्थानमानन्दं परमंपदम्॥१०॥

धर्म पालन में तत्पर जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि मेरी उपासना करते हैं, उनको मैं आनन्दमय परम पद रूप स्थान प्रदान करता हूँ॥१०॥

अन्येऽपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राश्चैवान्त्यजास्तथा[4]। भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेन मयि सङ्गताः॥११॥

अन्य जो भी शूद्र एवं अन्त्यज अपने धर्म का पालन करते हुए मेरी भक्ति करते हैं, वे कालान्तर में मुक्त होकर मुझमें लीन हो जाते हैं॥११॥

मद्‌भक्ता न विनश्यन्ति मद्‌भक्ता वीतकल्मषाः। आदावेव प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति॥१२॥

मेरे भक्त कभी विनष्ट नहीं होते हैं। मेरे भक्त पाप-रहित हो जाते हैं। मैंने आदि काल से ही यह

---

१. सर्वान्तकः, २. सर्वसंप्लुतः, ३. ये मां नित्यं, ४. शूद्राद्या नीचजातयः

प्रतिज्ञा की हुई है कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होगा (अर्थात् मैं अपने भक्त को विनष्ट नहीं होने दूंगा)॥१२॥

यो वै निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति। यस्तं पूजयते भक्त्या स पूजयति मां सदा॥१३॥

जो मूर्ख मेरे उस भक्त की निन्दा करता है, वह मुझ देवाधिदेव की निन्दा करता है। जो मेरे उस भक्त का सदैव पूजन करता है, वह वस्तुतः मेरा ही पूजन करता है॥१३॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्। यो मे ददाति नियतं स मे भक्तः प्रियो मतः॥१४॥

जो भक्त मेरी आराधना हेतु पत्र, पुष्प, फल और जल आदि मुझको नियमपूर्वक अर्पित करता है, वह मुझे बहुत प्रिय है॥१४॥

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्। विधाय दत्तवान्वेदानशेषानात्मनिःसृतान्॥१५॥

जगत् की सृष्टि के आरम्भ काल में मैंने परमेष्ठी ब्रह्मा की सृष्टि करके अपने (मुख) से निकले हुए सभी चारों वेद उनको (ब्रह्मा को) प्रदान किये थे॥१५॥

अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः। धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम्॥१६॥

मैं सभी योगियों का अविनाशी गुरु हूँ एवं धार्मिकजनों का रक्षक हूँ तथा वेद के विरोधी शत्रुओं का संहारकर्ता हूँ॥१६॥

अहं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह। संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः॥१७॥

मैं ही योगियों को इस समस्त संसार से मुक्ति प्रदान करता हूँ। मैं इस संसार की सृष्टि का हेतु हूँ तथापि इस संसार से पृथक् हूँ॥१७॥

अहमेव हि संहर्ता संस्रष्टा परिपालकः। माया वै मामिका शक्तिः सर्वलोकविमोहिनी॥१८॥

मैं ही सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता भी हूँ। समस्त संसार को मोहित करने वाली माया मेरी ही शक्ति है॥१८॥

ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते। नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः॥१९॥

मेरी ही जो पराशक्ति विद्या कहलाती है, उसी से मैं योगियों के हृदय में स्थित होकर माया को नष्ट कर देता हूँ॥१९॥

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः। आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च॥२०॥

मैं सभी शक्तियों का प्रवर्तक (संचालक) तथा उन शक्तियों का निवर्तक (वापस लेने वाला) भी हूँ। मैं उन सभी शक्तियों का आधार स्वरूप हूँ तथा अमृत का भण्डार भी हूँ॥२०॥

एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत्। आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मदीया[1] मदधिष्ठिता॥२१॥

मुझ में स्थित मेरी शक्ति, जो कि अंशतः सभी जीवों के अन्दर भी है, वह ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके नाना प्रकार की सृष्टि करती है॥२१॥

अन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति मे जगत्। भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः॥२२॥

१. मन्मयी

मेरी अन्य महाशक्ति ही जगत् के स्वामी, जगन्मय, अनन्त एवं नारायण संज्ञक रूप धारण करके जगत् का पालन करती है॥२२॥

तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत्। तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी॥२३॥

मेरी जो रुद्ररूप वाली काल संज्ञक तामसी तीसरी महाशक्ति कही गयी है, वह सम्पूर्ण जगत् का संहार करती है॥२३॥

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे। अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे॥२४॥

कुछ लोग ध्यान के द्वारा मेरा दर्शन करते हैं, कोई ज्ञान के द्वारा तो कोई भक्तियोग के द्वारा तथा अन्य जन कर्मयोग के द्वारा मेरा दर्शन करते हैं॥२४॥

सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतमो मम। यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा॥२५॥

इन सभी प्रकार के भक्तों में से मुझे वही भक्त अभीष्ट एवं सर्वाधिक प्रिय है जो सदैव ज्ञान से ही मेरी आराधना करता है न कि अन्य विधि से॥२५॥

अन्येऽपि ये त्रयो[1] भक्ता मदाराधनकारिणः। तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येव नावर्तन्ते च वै पुनः॥२६॥

मेरी आराधना करने वाले जो अन्य तीन प्रकार के (ध्यान, भक्ति एवं कर्मयोग से आराधना करने वाले) भक्त हैं, वे सभी मुझे प्राप्त करते हैं और पुनः इस संसार में उनका जन्म नहीं होता॥२६॥

मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानपुरुषात्मकम्। मय्येव संस्थितं विश्वं मया सम्प्रेर्यते जगत्॥२७॥

मैंने ही इस प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुषात्मक विश्व की सृष्टि की है। यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें ही स्थित है तथा मेरे द्वारा ही संचालित होता है॥२७॥

नाहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमास्थितः। प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद् यो वेद सोऽमृतः॥२८॥

हे विप्रो! मैं सदैव परम योग में स्थित रहता हूँ। मैं प्रेरक नहीं हूँ तथापि सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित करता हूँ। इस तथ्य को जो जानता है, वह अमर हो जाता है॥२८॥

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः। करोति कालो भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम्॥२९॥

यह सम्पूर्ण संसार स्वभावतः विद्यमान है। मैं [निरपेक्ष भाव से] इसका दर्शक मात्र हूँ। काल रूपी भगवान् महायोगेश्वर स्वयं इस संसार का संचालन करते हैं॥२९॥

योऽहं सम्प्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः। योगीश्वरोऽसौ भगवान् महादेवो महाप्रभुः॥३०॥

विद्वानों ने शास्त्रों में जिसे माया का प्रयोग करने वाला योगी कहा है, वह योगीश्वर भगवान् महादेव महाप्रभु मैं ही हूँ॥३०॥

महत्त्वं सर्वतत्त्वानां परत्वात् परमेष्ठिनः। प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महाब्रह्ममयोऽमलः॥३१॥

परमेष्ठी सभी तत्वों से परे हैं। अतः तत्वों का महत्त्व है (?)। भगवान् ब्रह्मा को महाब्रह्म-मय और निर्मल कहा गया है॥३१॥

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम्। सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥३२॥

---

१. अन्ये च हरये

जो व्यक्ति मुझे महायोगेश्वरों का भी ईश्वर जानता है, वह निःसन्देह निर्विकल्प (समाधि रूपी) योग से युक्त हो जाता है॥३२॥

सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रितः। नृत्यामि योगी सततं यस्तद्वेद स योगवित्॥३३॥

मैं परम आनन्द का आश्रय लेकर योगी रूप में निरन्तर नृत्य निरत रहता हूँ तथा जगत् को प्रेरित करता रहता हूँ। इस तथ्य को जो जानता है, वह वस्तुतः योग का ज्ञाता है॥३३॥

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम्। प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये॥३४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

यह गुप्त ज्ञान सभी वेदों में निहित है। यह ज्ञान प्रसन्न चित्त वाले धार्मिक एवं अग्निहोत्री विद्वान् को ही देना चाहिए॥३४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् में चतुर्थ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मुनिभिः शिवस्य स्तुतिः

व्यास उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्योगिनां परमेश्वरः। ननर्त परमं भावमैश्वरं सम्प्रदर्शयन्॥१॥

व्यास जी बोले- योगियों के परमेश्वर भगवान् शिव अपने परम ईश्वरीय भाव का प्रदर्शन करते हुए नृत्य करने लगे थे॥१॥

तं ते ददृशुरीशानं तेजसां परमं निधिम्। नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले॥२॥

उन मुनियों ने परम तेजो-निधि ईशान महादेव को भगवान् विष्णु के साथ निर्मल आकाश में नृत्य करते हुए देखा था॥२॥

यं विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः। तमीशं सर्वभूतानामाकाशे ददृशुः किल॥३॥

योग के तत्त्व को जानने वाले संयत मन वाले योगी ही जिनको जानते हैं, उन सभी प्राणियों के स्वामी भगवान् शिव को मुनियों ने आकाश में देखा था॥३॥

यस्य मायामयं सर्वं येनेदं प्रेर्यते जगत्। नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशः खलु दृश्यते॥४॥

यह सम्पूर्ण जगत् जिनकी माया स्वरूप है तथा जिनके द्वारा इस जगत् को प्रेरित (संचालित) किया जाता है, उन विश्वनाथ भगवान् शिव को विप्रगण आकाश में नृत्य करते हुए देख रहे थे॥४॥

यत्पादपङ्कजं स्मृत्वा पुरुषोऽज्ञानजं भयम्। जहाति नृत्यमानं तं भूतेशं ददृशुः किल॥५॥

जिनके चरण कमल का स्मरण करके मनुष्य अज्ञान जनित भय को त्याग देता है, उन भूतनाथ भगवान् को मुनियों ने नृत्य करते हुए देखा था॥५॥

यं विनिद्रा जितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः। ज्योतिर्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल॥६॥

निद्रा त्याग कर सदा जागृत रहने वाले तथा अपने श्वास पर विजय प्राप्त करने वाले, शान्त स्वभाव के और भक्ति भाव वाले साधक जिन ज्योतिर्मय देव का दर्शन करते हैं, उनको ही वे मुनि देख रहे थे॥६॥

योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्रं प्रसन्नो भक्तवत्सलः। तमेव मोचकं रुद्रमाकाशे ददृशुः परम्॥७॥

जो भक्तवत्सल देव प्रसन्न होने पर [अपने भक्तों को] अज्ञान से शीघ्र मुक्त कर देते हैं, उन मुक्तिदाता परमेश्वर रुद्र को मुनियों ने आकाश में देखा था॥७॥

सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणाकृतिम्। सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्॥८॥
वसानं चर्म वैयाघ्रं शूलासक्तमहाकरम्। दण्डपाणिं त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम्॥९॥
ब्रह्माण्डं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य धिष्ठितम्। दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥१०॥
सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलं जगत्। नृत्यन्तं ददृशुर्देवं विश्वकर्माणमीश्वरम्॥११॥

सहस्र शिर, सहस्र चरण तथा सहस्र बाहु वाले, जटाधारी, मस्तक पर अर्धचन्द्र को धारण करने वाले, व्याघ्रचर्म को धारण करने वाले, अपने महान् हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले तथा अन्य हाथ में दण्ड धारण करने वाले, वेदत्रयी रूपी तीन नेत्रों वाले, सूर्य, चन्द्र और अग्नि रूपी तीन नेत्रों वाले, अपने तेज से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आवृत करके स्थित, भंयकर दाढ़ों वाले, दुर्धर्ष, करोड़ों सूर्यो के समय दीप्तिमान्, अग्नि ज्वाला को सृजित करके सम्पूर्ण विश्व को दग्ध करते हुए नृत्य करने में तत्पर विश्व के कर्ता परमेश्वर भगवान् शिव को मुनियों ने देखा था॥८-११॥

महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम्। पशूनां पतिमीशानमानन्दं ज्योतिरव्ययम्॥१२॥
पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजं भवरोगिणाम्। कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम्॥१३॥
उमापतिं विरूपाक्षं योगानन्दमयं परम्। ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम्॥१४॥
शाश्वतैश्वर्यविभवं धर्माधारं दुरासदम्। महेन्द्रोपेन्द्रनमितं महर्षिगणवन्दितम्॥१५॥
योगिनां हृदि तिष्ठन्तं योगमायासमावृतम्। क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम्॥१६॥
ईश्वरेणैक्यमापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः। दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रं नारायणात्मकम्।
कृतार्थं मेनिरे संतः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः॥१७॥

महायोगी महादेव शिव, देवों के भी देव, पशुपति, ईशान, आनन्द-मूर्ति, अविनाशी ज्योति-स्वरूप, पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले, विशाल नेत्रों वाले, भव-सागर रूपी रोग से ग्रस्त जनों के लिए औषधि-स्वरूप, कालात्मा, काल के भी काल, देवाधिदेव, महेश्वर, उमापति, विरूपाक्ष, परम योगानन्दमय, ज्ञान-वैराग्य के आश्रय, ज्ञानयोगी, सनातन, शाश्वत ऐश्वर्य और वैभव सम्पन्न, धर्म के आधार, [पापियों के लिए] दुरासद (दुष्प्राप्य), इन्द्र और विष्णु के द्वारा प्रणम्य, महर्षिगणों के द्वारा पूजित, योगियों के हृदय में

विराजमान, योगमाया के द्वारा आवृत तथा जगत् के मूल-स्रोत महादेव ईश्वर शिव में तत्क्षण अनामय भगवान् विष्णु को भी एकाकार होते हुए ब्रह्मवादी मुनियों ने देखा था। उस नारायणमय रुद्र के ईश्वरीय स्वरूप का दर्शन करके उन ब्रह्मवादी सन्तों ने अपने को कृतार्थ माना था॥१२-१७॥

सनत्कुमारः सनको भृगुश्च सनातनश्चैव सनन्दनश्च।
रैभ्योऽङ्गिरा वामदेवोऽथ शुक्रो महर्षिरत्रिः कपिलो मरीचिः॥१८॥
दृष्ट्वाथ रुद्रं जगदीशितारं तं पद्मनाभाश्रितवामभागम्।
ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना कृताञ्जलिं स्वेषु शिरःसु भूयः॥१९॥

सनत्कुमार, सनक, भृगु, सनातन, सनन्दन, रैभ्य, अङ्गिरा, वामदेव, शुक्र, महर्षि अत्रि, कपिल तथा मरीचि प्रभृति ऋषियों ने भगवान् पद्मनाम विष्णु को अपने वामभाग में विराजमान करने वाले जगदीश्वर शिव को देखकर उनका अपने हृदय में ध्यान करके शिर झुकाकर और हाथ जोड़कर प्रणाम किया था॥१८-१९॥

ओङ्कारमुच्चार्य विलोक्य देवमन्तः शरीरे निहितं गुहायाम्।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभिरानन्दपूर्णा यतमानसास्ते॥२०॥

उन्होंने भगवान् शिव को देखकर अपने शरीर के अन्दर हृदय रूपी गुफा में भी उनका ध्यान करके आनन्दित एवं संयत-चित्त होकर एवं ओङ्कार का उच्चरण करके उन भगवान् शिव की वेद-सम्मत स्तोत्रों से स्तुति की थी॥२०॥

मुनय ऊचुः

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम्।
नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम्॥२१॥

मुनि बोले- हम सभी मुनिजन आप एकमात्र ईश्वर, पुराण-पुरुष, प्राणों के स्वामी, रुद्र, अनन्त योग- वाले, हृदय में विराजमान, प्रचेता, ब्रह्ममय और पवित्र परमेश्वर को प्रणाम करते हैं॥२१॥

पश्यन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं दान्ताः शान्ता विमलं रुक्मवर्णम्।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे कविं परेभ्यः परमं परञ्च॥२२॥

इन्द्रियों पर संयम रखने वाले, शान्त प्रकृति के मुनिजन आप ब्रह्मयोनि, निर्मल एवं स्वर्णिम क्रान्ति वाले, अचल, कवि (क्रान्तदर्शी), परात्पर एवं परमात्म देव को अपंने हृदय में भी विद्यमान मानते हुए आपका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं॥२२॥

त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः सर्वात्मभूस्त्वं परमाणुभूतः।
अणोरणीयान्महतो महीयांस्त्वामेव सर्वे प्रवदन्ति सन्तः॥२३॥

सम्पूर्ण जगत् की प्रसूति (सृष्टि) आप से ही हुई है। आप सभी प्राणियों के आत्मा और परमाणु स्वरूप हैं। आपको ही सभी सन्तजन अणु से भी सूक्ष्म परमाणु स्वरूप एवं महान् से भी महान् कहते हैं॥२३॥

हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा त्वत्तोऽस्ति जातः पुरुषः पुराणः।
सञ्जायमानो भवता विसृष्टो यथाविधानं सकलं ससर्ज॥२४॥

जगत् के अन्तरात्मा हिरण्यगर्भ पुराण पुरुष (ब्रह्मा) आपसे ही उत्पन्न हुए हैं तथा उत्पन्न होते ही उन्होंने आपके आदेश से यथाविधि सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की थी॥२४॥

त्वत्तो वेदाः सकलाः संप्रसूतास्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते।
पश्यामस्त्वाञ्जगतो हेतुभूतं नृत्यन्तं स्वे हृदये सन्निविष्टम्॥२५॥

आपसे ही सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं तथा वे अन्त में आप में ही संस्थित (विलीन) हो जाते हैं। आप ही जगत् (की सृष्टि) के कारण-स्वरूप हैं। नृत्य-परायण आपको हम अपने हृदय में भी विद्यमान देख रहे हैं॥२५॥

त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रं मायावी त्वं जगतामेकनाथः।
नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्ना योगात्मानं नृत्यन्तं दिव्यनृत्यम्॥२६॥

आपके द्वारा ही इस ब्रह्मचक्र का संचालन किया जाता है। आप मायावी हैं तथा जगत् के एकमात्र स्वामी हैं। हे दिव्य नृत्य करने वाले योगात्मा हम आपकी की शरण में आये हैं और आपको प्रणाम करते हैं॥२६॥

पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये नृत्यन्तं ते महिमानं स्मरामः।
सर्वात्मानं बहुधा सन्निविष्टं ब्रह्मानन्दं चानुभूयानुभूय॥२७॥

हम आपको विशाल आकाश में नृत्य करते हुए देख रहे हैं और आपकी महिमा का स्मरण कर रहे हैं। सभी के आत्मा-स्वरूप तथा अनेक रूपों में स्थित आपको देखकर हम ब्रह्मानन्द का बार-बार अनुभव कर रहे हैं॥२७॥

ओङ्कारस्ते वाचको मुक्तिबीजं त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम्।
तत्त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः स्वयम्प्रभं भवतो यत्प्रभावम्॥२८॥

आपका वाचक अर्थात् बोध कराने वाला ओङ्कार मुक्ति का बीज है। आप अविनाशी हैं और प्रकृति में गुप्त रूप से स्थित हैं। आपको सन्तजन सत्यस्वरूप बतलाते हैं। आपका जो प्रभाव है, वह स्वयं प्रकाशित होता है॥२८॥

स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः।
शान्तात्मानः सत्यसन्धा वरिष्ठं विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः॥२९॥

सभी वेद निरन्तर आपकी स्तुति करते हैं। निर्दोष ऋषिगण सदा आपको प्रणाम करते हैं। शान्तचित्त वाले, सत्य परायण, वरिष्ठ एवं ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी जन आप में ही प्रवेश करते हैं॥२९॥

भवानीशोऽनादिमान्विश्वरूपो ब्रह्मा विष्णुः परमेष्ठी वरिष्ठः।
स्वात्मानन्दमनुभूयाधिशेते स्वयं ज्योतिरचलो नित्यमुक्तः॥३०॥

आप ही परमेश्वर, अनादि, विश्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु, परमेष्ठी, वरिष्ठ (श्रेष्ठतम), स्वयं ज्योति (स्वयं प्रकाशित), अचल और नित्य-मुक्त हैं तथा आप स्वात्मानन्द का अनुभव करके शयन करते हैं॥३०॥

एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपः।
त्वामेवान्ते निलयं विन्दतीदं नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्नाः॥३१॥

आप एकमात्र देव रुद्र ही विश्व की सृष्टि करते हैं तथा विश्व स्वरूप आप ही उस विश्व का पालन करते हैं। यह विश्व अन्त में आप में ही विलीन हो जाता है। हम आपकी शरण में आये हैं। आपको नमस्कार करते हैं॥३१॥

एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम्।
वन्द्यं त्वां ये शरणं संप्रपन्ना मायामेतां ते तरन्तीह विप्राः[१]॥३२॥

वेद एक होने पर भी बहुत शाखाओं वाला होने के कारण अनन्त हो जाता है। वह वेद आपके अद्वितीय एकमात्र स्वरूप का ही बोध कराता है। आप सर्वपूज्य भगवान् की शरण में जो विप्रगण आते हैं, वे इस माया को पार कर लेते हैं॥३२॥

त्वामेकमाहुः कविमेकरुद्रं ब्रह्मं बृहन्तं हरिमग्निमीशम्।
इन्द्रं यममनिलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम्॥३३॥

आप एक हैं, अद्वितीय हैं, तथापि आप कवि, अद्वितीय रुद्र, बृहत् स्वरूप वाले ब्रह्म, हरि (विष्णु), अग्नि, ईश, इन्द्र, यम, वायु, चेकितान धाता, आदित्य आदि अनेक रूप वाले हैं॥३३॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि॥३४॥

आप अविनाशी हैं। सर्वाधिक जानने योग्य हैं। आप इस विश्व के सर्वोत्तम आधार हैं। आप विकार-रहित, शाश्वत (चिरस्थायी), धर्म के रक्षक, सनातन तथा पुरुषोत्तम हैं॥३४॥

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः।
त्वं विश्वनाथः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि॥३५॥

आप ही विष्णु हैं, आप ही ब्रह्मा हैं और आप ही भगवान् रुद्र ईश्वर हैं। आप ही विश्वनाथ, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर एवं परमेश्वर भी हैं॥३५॥

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
चिन्मात्रमव्यक्तमनन्तरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिं निर्गुणञ्च॥३६॥

आपको अद्वितीय, पुराण-पुरुष, सूर्य के समान वर्ण वाले अर्थात् उज्जवल और दीप्तिमान एवं तमोगुण से रहित (या अन्धकार से रहित), चिन्मात्र, अव्यक्त, अनन्त रूप वाले, आकाश-रूप, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति तथा निर्गुण कहा जाता है॥३६॥

---

१. तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।

यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम्।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमेतत्तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम्॥३७॥

आपके अन्दर यह सम्पूर्ण (जगत्) विराजमान है, आप विकार रहित, निर्मल तथा एक रूप (अद्वितीय) हैं। आपका यह रूप अचिन्त्य है, जिसके अन्दर [सम्पूर्ण] तत्त्व आभासित होता है॥३७॥

योगेश्वरं रुद्रमनन्तशक्तिं परायणं ब्रह्मतनुं पुराणम्।
नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते महेश॥३८॥

योगेश्वर, रुद्र, अनन्तशक्ति वाले, परम आश्रय स्वरूप, ब्रह्मस्वरूप, पुराण पुरुष आपको हम सब शरण-याचना करने वाले मुनिगण प्रणाम करते हैं। हे भूतनाथ महादेव! आप हम पर प्रसन्न होवें॥३८॥

त्वत्पादपद्मस्मरणादशेषसंसारबीजं विलयं प्रयाति।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं प्रसादयामो वयमेकमीशम्॥३९॥

आपके चरण-कमलों का स्मरण करने से सम्पूर्ण संसार का बीज (अर्थात् सांसारिक कर्मों के फल) का नाश हो जाता है। हम अपने मन को नियमित अर्थात् एकाग्र करके तथा अपनी काया (शरीर) को (आपके चरणों में) झुकाकर आप एकमात्र ईश्वर को प्रसन्न करते हैं॥३९॥

नमो भवायास्तु भवोद्भवाय कालाय शर्वाय हराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते नमोऽग्नये देव नमः शिवाय॥४०॥

भगवान् भव, भवोद्भव, काल, शर्व, हर आपको नमस्कार है। रुद्र, कपर्दी, अग्नि रूप देव शिव को [हम सभी मुनि] नमस्कार करते हैं॥४०॥

ततः स भगवान्प्रीतः कपर्दी वृषवाहनः। संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद्भवः॥४१॥

तब वृषभ वाहन वाले कपर्दी भगवान् भव (शिव) प्रसन्न होकर अपना वह परम (नर्तक) रूप त्याग कर अपने स्वाभाविक रूप में आ गये थे॥४१॥

ते भवं भूतभव्येशं पूर्ववत्समवस्थितम्। दृष्ट्वा नारायणं देवं विस्मिता वाक्यमब्रुवन्॥४२॥

उन मुनियों ने भूत और भविष्य के स्वामी भगवान् शिव और विष्णु को पूर्ववत् (पहले जैसा) देखकर आश्चर्यान्वित होकर यह वचन कहे थे॥४२॥

भगवान् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन। दृष्ट्वा ते परमं रूपं निर्वृत्ताः स्मः सनातन॥४३॥

[मुनि बोले-] हे भूत और भविष्य के स्वामी! नन्दी वृषभ से चिन्हित शासन अर्थात् ध्वज वाले सनातन भगवान्! हम आपके इस परम (दिव्य) रूप का दर्शन करके परम प्रसन्न हुए हैं॥४३॥

भवत्प्रसादादमले परस्मिन् परमेश्वरे। अस्माकं जायते भक्तिस्त्वय्येवाव्यभिचारिणी॥४४॥

आपकी कृपा से ही निर्मल परात्पर परमेश्वर स्वरूप आप पर हमारे मन में आपके प्रति एकनिष्ठ उत्कट भक्ति उत्पन्न हुई है॥४४॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शङ्कर। भूयोऽपि चैव यन्नित्यं याथात्म्यं परमेष्ठिनः॥४५॥

हे शिव! इस समय आप परमेष्ठी का जो शाश्वत यथार्थ विषयक माहात्म्य है, उसे हम पुनः सुनना चाहते हैं॥४५॥

स तेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिनां योगसिद्धिदः। प्राह गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम्॥४६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

उन मुनियों के इस प्रकार के वचनों को सुनकर योगियों को योग की सिद्धि प्रदान करने वाले भगवान् शिव ने विष्णु की ओर देखकर गम्भीर वाणी में यह कहा था॥४६॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् में पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

ईश्वरस्य सर्वव्यापकत्ववर्णनम्

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत्परमेष्ठिनः। वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यं यत्तद्वेदविदो विदुः॥१॥

ईश्वर शिव बोले- हे ऋषियो! आप लोग सुनें। अब मैं परमेष्ठी ईश्वर के उस माहात्म्य का यथावत् वर्णन करूँगा, जिसे वेद के विद्वान् जानते हैं॥१॥

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता। सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माह सनातनः॥२॥

सबका आत्मा और सनातन मैं ही सभी लोकों का सृष्टिकर्ता, सभी लोकों का रक्षक तथा सभी लोकों का संहारकर्ता भी हूँ॥२॥

सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी महेश्वरः। मध्ये चान्तः स्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः॥३॥

मैं सभी वस्तुओं का अन्तर्यामी महेश्वर हूँ। सभी के अन्दर स्थित हूँ तथापि सर्वत्र [प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगत] नहीं हूँ॥३॥

भवद्भिरद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपञ्च मामकम्। ममैषा ह्युपमा विप्रा मायया दर्शिता मया॥४॥

हे विप्रो! आप लोगों ने मेरे जिस अद्भुत रूप को देखा है, वह मेरी एक उपमा (या प्रतिकृति) है, जिसे मैंने अपनी माया से दिखलाया है॥४॥

सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थितः। प्रेरयामि जगत्कृत्स्नं क्रियाशक्तिरियं मम॥५॥

मैं इस संसार के सभी (स्थावर-जङ्गम) जीवों के अन्दर विद्यमान होकर सम्पूर्ण जगत् को संचालित करता हूँ। यह मेरी क्रिया-शक्ति है॥५॥

मयेदं चेष्टते विश्वं तद्वै भावानुवर्ति मे। सोऽहं कालो जगत्कृत्स्नं प्रेरयामि कलात्मकम्॥६॥

उसी क्रिया शक्ति से यह विश्व क्रियाशील रहता है तथा मेरी इच्छानुसार चलता है। वही मैं काल बनकर अपनी कला-स्वरूप इस सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित (अर्थात् संचालित) करता हूँ॥६॥

एकांशेन जगत्कृत्स्नं करोमि मुनिपुङ्गवाः। संहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु॥७॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! मैं अपने एक अंश से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता हूँ तथा दूसरे रूप से सृष्टि का संहार करता हूँ। ये दोनों अवस्थाएँ अर्थात् दोनों स्वरूप मेरे ही हैं॥७॥

आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो गायातत्त्वप्रवर्तकः। क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ॥८॥

मैं आदि, मध्य और अन्त रहित हूँ और माया तत्त्व का प्रवर्तक हूँ। मैं ही सृष्टि के आदि में प्रधान (प्रकृति) और पुरुष को [सृष्टि हेतु] प्रेरित करता हूँ॥८॥

ताभ्यां सञ्जायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम्। महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते॥९॥

उन दोनों-प्रकृति और पुरुष के परस्पर संयोग से यह विश्व उत्पन्न होता है। प्रकृति से महत् तत्त्व आदि के प्रादुर्भाव के रूप में मेरे ही तेज का विस्तार होता है॥९॥

यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः। हिरण्यगर्भो मार्तण्डः सोऽपि मद्देहसम्भवः॥१०॥

जो सम्पूर्ण जगत् के साक्षी तथा कालचक्र का संचालन करने वाले भगवान् सूर्य हैं तथा जो हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मा हैं, वह भी मेरे ही शरीर से उत्पन्न (प्रकट) हुए हैं॥१०॥

तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम्। दत्तवानात्मजान् वेदान् कल्पादौ चतुरो द्विजाः॥११॥

हे द्विजो! कल्प के आरम्भ में मैंने उन ब्रह्मा को अपना दिव्य ऐश्वर्य तथा सनातन ज्ञानयोग एवं अपने आत्मा से प्रादुर्भूत चारों वेद प्रदान किये थे॥११॥

स मन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावितः। दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदा वहति स्वयम्॥१२॥

वह ब्रह्मा मेरे भाव से ओत प्रोत होकर मेरे आदेशानुसार मेरे दिव्य ऐश्वर्य को सदैव वहन करते हैं॥१२॥

स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित्। भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्मसम्भवः॥१३॥

मेरे आदेश से ही समस्त लोकों के निर्माता स्वयम्भू और सर्वज्ञ वह ब्रह्मा चार मुखों वाले होकर सृष्टि की रचना करते हैं॥१३॥

योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवोऽव्ययः। ममैव च परा मूर्तिः करोति परिपालनम्॥१४॥

लोकों के जनक, अनन्त, अविनाशी नारायण विष्णु भी मेरी ही मूर्ति हैं। वे जगत् का पालन करते हैं॥१४॥

योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः। मदाज्ञयासौ सततं संहरिष्यति मे तनुः॥१५॥

जो सभी प्राणियों का संहार करते हैं, वह कालस्वरूप रुद्र भी मेरा ही स्वरूप हैं। वह प्रभु मेरी ही आज्ञा से सदैव संहार करते हैं॥१५॥

हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि। पाकञ्च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिनोदितः॥१६॥

जो अग्नि देव देवताओं को हव्य तथा कव्य-भोक्ता पितरों को कव्य पहुँचाते हैं तथा जो सब कुछ पका देते हैं, वह भी मेरी शक्ति से प्रेरित होकर यह सब करते हैं॥१६॥

भुक्तमाहारजातञ्च पचते तदहर्निशम्। वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः॥१७॥

ईश्वर (शिव) के निर्देशानुसार ही वैश्वानर अग्निदेव [प्राणियों के द्वारा] खाये गये आहार को रात-दिन पचाते रहते हैं॥१७॥

योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुङ्गवः। सोऽपि सञ्जीवयेत्कृत्स्नमीश्वरस्य नियोगतः॥१८॥

जो वरुण देव सभी प्रकार के जलों के मूलस्रोत हैं, वह भी ईश्वर के निर्देशानुसार सम्पूर्ण जीवों को जल प्रदान कर जीवनदान देते हैं॥८॥

योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवः प्रभञ्जनः। मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि॥१९॥

जो वायु देव सभी प्राणियों के अन्दर तथा बाहर [सर्वत्र] विद्यमान हैं, वह मेरी आज्ञा से उन सभी के शरीरों को धारण करते हैं॥१९॥

योऽपि सञ्जीवनो नृणां देवानाममृताकरः। सोमः स मन्नियोगेन नोदितः किल वर्तते॥२०॥

जो चन्द्रमा (सोम) मनुष्यों के लिए जीवन-दाता तथा देवों के लिए अमृत का आकर (भण्डार) हैं, वह भी मेरे निर्देशानुसार प्रेरित होकर कार्य करते हैं॥२०॥

यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदाः। सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयंभुवः॥२१॥

जो भगवान् सूर्य अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं, वह स्वयम्भू (ब्रह्मा) के आदेशानुसार वर्षा भी करवाते हैं॥२१॥

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः। यज्वनां फलदो देवो वर्तते स मदाज्ञया॥२२॥

जो इन्द्र सभी देवों के स्वामी, सम्पूर्ण जगत् के शासक और यज्ञ करने वालों को अभीष्ट फलप्रद हैं, वह भी मेरी आज्ञानुसार ही प्रवृत्त होते हैं॥२२॥

यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्तते नियमादिह। यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः॥२३॥

जो दुष्टों को नियमानुसार दण्डित करते हैं, वह विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र यमराज भी देवाधिदेव शिव के नियमानुसार ही व्यवहार करते हैं॥२३॥

योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः। सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्तते सदा॥२४॥

जो सभी प्रकार के धनों के अधिपति हैं और [भक्तों को] धन प्रदान करते हैं, वह कुबेर भी ईश्वर (शिव) के निर्देशानुसार ही व्यवहार करते हैं॥२४॥

यः सर्वरक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रदः। मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋतिः सदा॥२५॥

जो सभी राक्षसों के स्वामी हैं तथा तमोगुणी जनों को [उनके दुष्कर्म] का फल देते हैं, वह निर्ऋतिदेव भी मेरे आदेशानुसार ही सदा [अपने कार्य में] प्रवृत्त होते हैं॥२५॥

वेतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः। ईशानः किल भक्तानां सोऽपि तिष्ठेन्मदाज्ञया॥२६॥

जो वेतालगणों तथा भूतों के स्वामी हैं तथा भक्तों को [पुण्यकर्म के] फल को भोगने देते हैं, वह ईशान भी मेरी आज्ञा में स्थित रहते हैं॥२६॥

यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः। रक्षको योगिनां नित्यं वर्ततेऽसौ मदाज्ञया॥२७॥

अङ्गिरा के शिष्य जो वामदेव रुद्रगणों में अग्रगण्य हैं तथा योगीजनों की जो नित्य रक्षा करते हैं, वह भी मेरी आज्ञानुसार चलते हैं॥२७॥

यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्ननायकः। विनायको धर्मरतः सोऽपि मद्वचनात्किल॥२८॥

सम्पूर्ण जगत् में पूज्य जो धर्मपरायण एवं विघ्नविनाशक विनायक हैं, वह भी मेरे वचनानुसार चलते हैं॥२८॥

योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः। स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयम्भूर्विधिनोदितः॥२९॥

जो ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ देवों के सेनापति स्वयम्भू प्रभु स्कन्द हैं, वह भी नित्य विधि के द्वारा प्रेरित होने पर कार्य में प्रवृत्त होते हैं॥२९॥

ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः। सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः॥३०॥

जो महर्षि मरीचि आदि अनेक प्रजापति हैं, वे परब्रह्म परमात्मा के आदेश से ही विविध लोकों की सृष्टि करते हैं॥३०॥

या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम्। पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात्॥३१॥

जो भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी सभी प्राणियों को प्रचुर धन (ऐश्वर्य) प्रदान करती है, वह मेरे अनुग्रह से ही अपने कार्य में संलग्न रहती है॥३१॥

ज्ञानं[1] ददाति विविधं या च देवी सरस्वती। सापीश्वरनियोगेन नोदिता सम्प्रवर्तते॥३२॥

देवी सरस्वती जो विविध ज्ञान प्रदान करती है, वह भी ईश्वर के आदेश से प्रेरित होने पर ही अपने कार्य में प्रवृत्त होती है॥३२॥

याशेषपुरुषान् घोरान्नरकात्तारयिष्यति। सावित्री संस्मृता देवी मदाज्ञानुविधायिनी॥३३॥

जो देवी सावित्री स्मरण (जप) किये जाने पर सभी जापक पुरुषों का तारण करने वाली कही गयी है, वह भी मेरी आज्ञा का अनुपालन करती है॥३३॥

पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी। यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा॥३४॥

जो श्रेष्ठ पार्वती देवी विशेष रूप से ध्यान किये जाने पर ब्रह्मविद्या प्रदान करती है, वह भी मेरे वचनों का पालन करती है॥३४॥

योऽनन्तमहिमानन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः। दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः॥३५॥

जो अनन्त महिमा वाले सभी देवों के स्वामी शेषनाग हैं, वे भी देवेश्वर शिव के आदेशानुसार सम्पूर्ण लोक को अपने शिर पर धारण करते हैं॥३५॥

योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः। पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः॥३६॥

---

१. वाचं

जो संवर्तक नामक अग्नि है, वह भी वडवानल के रूप में स्थित होकर ईश्वर के आदेशानुसार सम्पूर्ण समुद्र को पीता रहता है॥३६॥

ये चतुर्दश लोकेऽस्मिन् मनवः प्रथितौजसः। पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः॥३७॥

इस लोक में विख्यात पुरुषार्थ वाले चौदह मनु भी उन भगवान् शिव के आदेशानुसार ही प्रजा पालन करते हैं॥३७॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ। अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छास्त्रे समधिष्ठिताः[१]॥३८॥

द्वादश आदित्य, आठ वसु, एकादश रुद्र, उनपचास मरुत् तथा दो अश्विनी कुमार तथा अन्य सभी देवता भी मेरे शासन के अनुसार चलते हैं॥३८॥

गन्धर्वा गरुडाद्याश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः। यक्षरक्षः पिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे[२] स्वयंभुवः॥३९॥

गन्धर्व, गरुड आदि पक्षी, सिद्ध, साध्य, चारण, यक्ष, राक्षस तथा पिशाच भी स्वयम्भू (ब्रह्मा) के शासन के आधीन रहते हैं॥३९॥

कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः। ऋतवः पक्षमासाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः॥४०॥

[कालमान का बोध कराने वाली] कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिन, रात, ऋतु, पक्ष तथा मास भी प्रजापति के शासनानुसार होते हैं॥४०॥

युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने। पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथा परे॥४१॥

युग, मन्वन्तर, पर (काल की अधिकतम अवधि) तथा परार्ध एवं काल के अन्य भेद भी प्रजापति के शासनानुसार होते हैं॥४१॥

चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। नियोगादेव वर्तन्ते देवस्य परमात्मनः॥४२॥

अण्डज, स्वेदज, उद्‌भिज और जरायुज संज्ञक चार प्रकार के चर और स्थावर (अचर) प्राणी परमात्मा देव के विधानानुसार ही चलते हैं॥४२॥

पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात्। ब्रह्माण्डानि च वर्तन्ते सर्वाण्येव स्वयंभुवः॥४३॥

सभी पाताल तथा सभी [भू, भुवः स्वः मह, जन, तप, सत्य] लोक एवं सभी ब्रह्माण्ड भी स्वयम्भू के शासन में ही स्थित रहते हैं॥४३॥

अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि ममाज्ञया। प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समन्ततः॥४४॥

ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मगैः। करिष्यन्ति सदैवाज्ञां परस्य परमात्मनः॥४५॥

असंख्य ब्रह्माण्ड व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान में मेरी आज्ञानुसार सभी ओर नाना पदार्थ-समूहों सहित जो ब्रह्माण्ड हैं तथा जो भविष्य में अपने अधीनस्थ वस्तु-समूह सहित प्रकट होंगे वे सभी परमात्मा परमेश्वर की आज्ञा का पालन करेंगे॥४४-४५॥

भूमिरापोऽनलो दायुः खं मनो बुद्धिरेव च। भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्तते॥४६॥

१. शास्त्रेणैव विनिर्मिताः, २. सृष्टाः

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, भूतादि [अहंकार आदि] तथा आदि-प्रकृति भी मेरे नियन्त्रण में है॥४६॥

याशेषजगतां योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम्। माया विवर्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः॥४७॥

समस्त जगत् को जन्म देने वाली तथा सभी प्राणियों को मोह-ग्रस्त करने वाली माया भी ईश्वर के निर्देशानुसार ही प्रवृत्त होती है॥४७॥

यो वै देहभृतां देवः पुरुषः पठ्यते परः। आत्मासौ वर्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः॥४८॥

जो सभी देहधारी प्राणियों में विद्यमान परात्पर देव परम पुरुष आत्मा रूप में विद्यमान हैं, वह भी ईश्वर के आदेशानुसार ही वहाँ हैं॥४८॥

विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत्पदम्। सापि बुद्धिर्महेशस्य नियोगवशवर्तिनी॥४९॥

जिसके द्वारा मोह-पाश को दूर कर परमात्मा के परम पद का दर्शन होता है, वह बुद्धि भी महेश्वर शिव की आज्ञा के वशीभूत रहती है॥४९॥

बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत्। मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत्॥५०॥

अधिक कहने से क्या लाभ। यह सम्पूर्ण जगत् मेरी शक्ति से शक्तिमान है। यह सम्पूर्ण जगत् मेरे द्वारा ही प्रेरित किया जाता है तथा अन्त में यह मुझमें ही विलीन हो जाता है॥५०॥

अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः। परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यो न विद्यते॥५१॥

मैं ही स्वयं प्रकाशमान सनातन भगवान्, ईश्वर, परमात्मा तथा परंब्रह्म हूँ। मुझसे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है॥५१॥

इत्येतत्परमं ज्ञानं युष्माकं कथितं मया। ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥५२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे षष्ठोऽध्यायः॥६॥

इतना सब परम ज्ञान मैंने आप सबसे कह दिया है। इसे जान कर जीव पुनर्जन्म तथा सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाता है॥५२॥

**॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् में ब्रह्मविद्या सम्बन्धी
छठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥६॥**

अथ सप्तमोऽध्यायः
ईश्वरविभूतिवर्णनम्

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः। यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत्पुनः॥१॥

ईश्वर बोले- हे ऋषियो! आप सभी परमेष्ठी के प्रभाव को सुनें, जिसे जानकर पुरुष मुक्त हो जाता है और वह पुनः संसार में नहीं गिरता॥१॥

परात्परतरं ब्रह्म शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्। नित्यानन्दं निर्विकल्पं तद्धाम परमं मम॥२॥

जो परात् परतर (परम श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ), सनातन, ध्रुव (अटल), अविनाशी, नित्य आनन्दमय तथा निर्विकल्प ब्रह्म है, वही मेरा परमधाम है॥२॥

अहं ब्रह्मविदां बह्मा स्वयंभूर्विश्वतोमुखः। मायाविनामहं देवः पुराणो हरिरव्ययः॥३॥

मैं ब्रह्मज्ञानियों में विश्वतोमुख (अर्थात् चारों दिशाओं में मुख वाला) ब्रह्मा हूँ। मैं मायावियों में पुराण पुरुष अव्यय (विकार रहित) विष्णु हूँ॥३॥

योगिनामस्म्यहं शम्भुः स्त्रीणां देवी गिरीन्द्रजा। आदित्यानामहं विष्णुर्वसूनामस्मि पावकः॥४॥

मैं योगियों में शम्भु (शिव) हूँ। स्त्रियों में मैं गिरजा पार्वती हूँ। मैं द्वादश आदित्यों में विष्णु तथा अष्ट वस्तुओं में अग्नि हूँ॥४॥

रुद्राणां शङ्करश्चाहं गरुडः पततामहम्। ऐरावतो गजेन्द्राणां रामः शस्त्रभृतामहम्॥५॥

मैं एकादश रुद्रों में शङ्कर हूँ तथा पक्षियों में गरुड हूँ। मैं गजराजों में ऐरावत तथा शस्त्रधारियों में परशुराम हूँ॥५॥

ऋषीणां च वसिष्ठोऽहं देवानां च शतक्रतुः। शिल्पिनां विश्वकर्माहं प्रह्लादः सुरविद्विषाम्॥६॥

ऋषियों में वसिष्ठ हूँ तथा देवों में इन्द्र हूँ। मैं शिल्प के ज्ञाताओं में विश्वकर्मा हूँ तथा असुरों में प्रह्लाद हूँ॥६॥

मुनीनामप्यहं व्यासो गणानां च विनायकः। वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनिः॥७॥

मैं मुनियों में व्यास हूँ, गणों में विनायक हूँ। वीरों में वीरभद्र हूँ तथा सिद्धों में कपिल मुनि हूँ॥७॥

पर्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः। वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमस्म्यहम्॥८॥

मैं पर्वतों में मेरु पर्वत हूँ। नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ। आयुधों में वज्र हूँ तथा व्रतों में सत्य हूँ॥८॥

अनन्तो भोगिनां देवः सेनानीनां च पावकिः। आश्रमाणां गृहस्थोऽहमीश्वराणां महेश्वरः॥९॥

मैं सर्पों (नागों) में अनन्त (शेष नाग) हूँ। सेनापतियों में कार्तिकेय हूँ। आश्रमों में मैं गृहस्थ हूँ तथा ईश्वरों में महेश्वर हूँ॥९॥

महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम्। कुबेरः सर्वयक्षाणां गणेशानां च वीरकः[१]॥१०॥

मैं कल्पों में महाकल्प, युगों में कृतयुग (सत्ययुग), सभी यक्षों में कुबेर तथा गणेश्वरों में वीरक (? वीरभद्र) हूँ॥१०॥

प्रजापतीनां दक्षोऽहं निर्ऋतिः सर्वरक्षसाम्। वायुर्बलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम्॥११॥

मैं प्रजापतियों में दक्ष तथा सभी राक्षसों में निर्ऋति, बलवानों में वायु तथा द्वीपों में पुष्कर द्वीप हूँ॥११॥

मृगेन्द्राणां च सिंहोऽहं यन्त्राणां धनुरेव च। वेदानां सामवेदोऽहं यजुषां शतरुद्रियम्॥१२॥

मैं मृगेन्द्रों में सिंह हूँ, यन्त्रों में (श्रेष्ठ) धनुष हूँ, वेदों में सामवेद तथा यजुर्वेद के मन्त्रों में शतरुद्रिय हूँ॥१२॥

सावित्री सर्वजप्यानां गुह्यानां प्रणवोऽस्म्यहम्। सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु॥१३॥

सभी जप योग्य मन्त्रों में श्रेष्ठ मन्त्र सावित्री हूँ। गोपनीय मन्त्रों में प्रणव (ओङ्कार) हूँ। सूक्तों में पुरुष सूक्त तथा सामवेद [के मन्त्रों] में ज्येष्ठसाम हूँ॥१३॥

सर्ववेदार्थविदुषां मनुः स्वायम्भुवोऽस्म्यहम्। ब्रह्मावर्तस्तु देशानां क्षेत्राणामविमुक्तकम्॥१४॥

मैं सभी वेदार्थ के ज्ञाता विद्वानों में स्वायम्भुव मनु हूँ, सभी देशों में (श्रेष्ठ) ब्रह्मावर्त हूँ तथा क्षेत्रों में श्रेष्ठ अविमुक्त क्षेत्र (काशी विश्वनाथ परिसर) हूँ॥१४॥

विद्यानामात्मविद्याहं ज्ञानानामैश्वरं परम्। भूतानामस्म्यहं व्योम तत्त्वानां मृत्युरेव च॥१५॥

मैं विद्याओं में आत्मविद्या (अध्यात्म विद्या) तथा ज्ञानों में परमश्रेष्ठ ईश्वरीय ज्ञान हूँ। मैं पञ्च महाभूतों में आकाश हूँ तथा तत्वों में मृत्यु ही हूँ॥१५॥

पाशानामस्म्यहं माया कालः कलयतामहम्। गतीनां मुक्तिरेवाहं परेषां परमेश्वरः॥१६॥

मैं सभी पाशों (बन्धनों) में माया रूपी पाश हूँ तथा मैं संहार करने वालों में काल हूँ, गतियों में मुक्ति (मोक्ष) रूप हूँ तथा परमोत्तमों में परमेश्वर हूँ॥१६॥

यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोबलाधिकम्। तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम्॥१७॥

इस लोक में अन्य जो भी सत्त्व (प्राणी या वस्तु) तेज, बल आदि में अधिक हों उन सबको मेरे ही तेज से सम्पन्न या समृद्ध समझें॥१७॥

आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्तिनः। तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः॥१८॥

इस संसार में रहने वाले सभी प्राणी पशु कहे गये है। मैं देव (ईश्वर) ही उनका पति (स्वामी) हूँ। अतः विद्वानों ने मुझे पशुपति कहा है॥१८॥

मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया। मामेव मोचकं प्राहुः पशूनां वेदवादिनः॥१९॥

मैं अपनी लीला करते हुए इन पशुओं को माया रूपी पाश से बन्धन में डाल देता हूँ। वेद के विद्वान् मुझको ही इन पशुओं को बन्धन से मुक्त करने वाला बतलाते हैं॥१९॥

---

१. तृणानां चैव वीरुधः

मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते। मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्॥ २०॥

भूतों के अधिपति मुझ अविनाशी परमात्मा के अतिरिक्त मायापाश के बन्धन में बँधे जीवों को मुक्त करने वाला अन्य कोई भी नहीं है॥२०॥

चतुर्विंशति तत्त्वानि माया कर्म गुणा इति। एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्च पशुबन्धनाः॥ २१॥

चौबीस तत्त्व (प्रकृति, महान्, अहंकार आदि सांख्य के तत्त्व) तथा माया, कर्म एवं गुण (सत्व, रज, तम) ये पशुपति के पाश हैं और पशुओं को बन्धन में डालने वाले क्लेश भी हैं(?)॥२१॥

मनो बुद्धिरहङ्कारः खानिलाग्निजलानि भूः। एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे॥ २२॥

मन, बुद्धि अहंकार तथा आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ये आठ प्रकृति (विकार रहित) हैं तथा अन्य तत्त्व विकृति (विकार) हैं॥२२॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणञ्चैव तु पञ्चमम्। पायूपस्थं करौ पादौ वाक् चैव दशमी मता॥ २३॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च। त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानि प्राकृतानि च॥ २४॥

कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा गुदा, उपस्थ (जननेन्द्रिय), हाथ, पैर, वाणी- ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ सहित सभी दश इन्द्रियाँ (एवं इनके साथ ही) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचों सहित ये सब तेईस प्राकृत (प्रकृति से प्रादुर्भूत) तत्त्व हैं॥२३-२४॥

चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम्। अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतः परम्॥ २५॥

चौबसीवां तत्त्व प्रधान (अर्थात् प्रकृति) है जो अव्यक्त है और गुणों से लक्षित होता है। वह आदि, मध्य और अन्त से रहित है तथा जगत् का परम कारण है॥२५॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम्। साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तां प्रकृतिं विदुः॥ २६॥

सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण कहे गये हैं। इन तीन गुणों की साम्यावस्था को अव्यक्त प्रकृति कहा गया है॥२६॥

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रजो[१] मिश्रमुदाहृतम्। गुणानां बुद्धिवैषम्याद्वैषम्यं कवयो विदुः॥ २७॥

सत्त्वगुण ज्ञान (अध्यात्म ज्ञान) रूपी, तमोगुण अज्ञान मय तथा रजोगुण को मिश्रित रूप वाला (ज्ञान और अज्ञान का मिश्रण वाला) कहा गया है। बुद्धि की विषमता के कारण ही गुणों में भी विषमता होती है। ऐसा विद्वानों ने कहा है॥२७॥

धर्माधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्वौ कर्मसंज्ञितौ। मय्यर्पितानि कर्माणि न बन्धाय विमुक्तये॥ २८॥

धर्म और अधर्म नामक कर्म संज्ञक दो पाश बतलाये गये हैं। मुझको अर्पित किये गये कर्म बन्धन कारक नहीं अपितु बन्धन से मुक्ति के लिए होते हैं॥२८॥

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं चाभिनिवेशनम्। क्लेशाख्यानचलान् प्राहुः पाशानात्मनिबन्धनान्॥ २९॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश (आसक्ति) संज्ञक इन पाँच अटल क्लेशों को आत्मा का बन्धन कारक पाश कहा गया है॥२९॥

---

१. रजसं समुदाहृतम्

एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते। मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति॥३०॥

इन पाशों (बन्धनों) का कारण माया कही गयी है। वह माया अव्यक्त मूल प्रकृति के रूप में मेरी ही शक्ति है और मुझमें ही रहती है॥३०॥

स एव मूलप्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च। विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः॥३१॥

मूल प्रकृति ही प्रधान है। वह प्रधान (प्रकृति), पुरुष तथा महत् तत्त्व आदि विकार भी सनातन देवाधिदेव के ही रूप हैं॥३१॥

स एव बन्धः स च बन्धकर्ता स एव पाशः पशवः[1] स एव।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुषं पुराणम्॥३२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

वह सनातन देवेश्वर ही बन्धन स्वरूप है, वही बन्धन में डालने वाला, वही पाश तथा वही पशु भी है। वह सब कुछ जानता है। उसको कोई नहीं जानता। उसको ही आदि पुराण पुरुष कहा गया है॥३२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् विषयक सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

सांख्यसिद्धान्तनिरूपणम्

ईश्वर उवाच

अन्यद् गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुङ्गवाः। येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम्॥१॥

ईश्वर बोले- हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अब मैं अन्य ज्ञान बतलाऊँगा, जो अत्यन्त गोपनीय है। जिस ज्ञान से यह प्राणी इस घोर संसार-सागर को पार कर लेता है॥१॥

अहं ब्रह्ममयः शान्तः शाश्वतो निर्मलोऽव्ययः। एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वरः॥२॥

मैं ब्रह्ममय, शान्त, शाश्वत (चिरन्तन), निर्मल, अव्यय (अविनाशी), केवल एकमात्र भगवान् परमेश्वर कहलाता हूँ॥२॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तत्र गर्भं दधाम्यहम्। मूलमायाभिधानं तं ततो जातमिदं जगत्॥३॥

महद्ब्रह्म मेरा योनि स्वरूप है। उसमें मैं मूलमाया नामक गर्भ स्थापित करता हूँ और उसी गर्भ से यह जगत् उत्पन्न हुआ है॥३॥

प्रधानं पुरुषो ह्यात्मा महान् भूतादिरेव च। तन्मात्राणि मनो भूतानीन्द्रियाणि च जज्ञिरे॥४॥

---

१. पशुभृत् स एव

उसी गर्भ से प्रधान (प्रकृति), पुरुष, आत्मा, महत्तत्त्व (महान्), भूतादि (अहंकार), पञ्च तन्मात्राएँ (अर्थात् पञ्च सूक्ष्मभूत), मन, पञ्चमहाभूत तथा इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई थी॥४॥

ततोऽण्डमभवद्धैममर्ककोटिसमप्रभम्। तस्मिञ्जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्या चोपबृंहितः॥५॥

तदनन्तर करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान सुवर्णमय अण्ड उत्पन्न हुआ था तथा उसमें से महा ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे, जो मेरी शक्ति से वृद्धि को प्राप्त हुए थे॥५॥

ये चान्ये बहवो जीवा मन्मयाः सर्व एव ते। न मां पश्यन्ति पितरं मायया मम मोहिताः॥६॥

तब जो अन्य बहुत से प्राणी उत्पन्न हुए थे, वे सब भी मेरी शक्ति से युक्त हैं, किन्तु मेरी माया से मोहित होने के कारण वे मुझको अपने जनक-पिता रूप में नहीं देख पाते हैं (नहीं जान पाते हैं)॥६॥

यासु योनिषु ताः सर्वाः सम्भवन्तीह मूर्तयः। तां मातरं परां योनिं मामेव पितरं विदुः॥७॥

जिन योनियों में वे सब मूर्तियाँ अर्थात् मनुष्य आदि प्राणी उत्पन्न होते हैं, उनकी योनि (जननी) परा माया है और मुझको ही उनका पिता जाना जाता है॥७॥

यो मामेवं विजानाति बीजिनं पितरं प्रभुम्। स वीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति॥८॥

इस प्रकार जो मुझ प्रभु को बीज स्वरूप पिता रूप में जान लेता है, वह धीर पुरुष सभी लोकों में कभी मोहग्रस्त नहीं होता है॥८॥

ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः। ओङ्कारमूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः॥९॥

मैं सभी विद्याओं का स्वामी, सभी प्राणियों का परमेश्वर, ओङ्कार स्वरूप, प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हूँ॥९॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥१०॥

जो व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सभी प्राणियों में समान रूप से स्थित तथा अन्य वस्तुओं के विनष्ट होने पर भी मुझे अविनाशी रूप में देखता है, वह वस्तुतः [यथार्थ तत्त्व को] देखता समझता है॥१०॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्। न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥११॥

जो व्यक्ति ईश्वर को सर्वत्र समान रूप से स्थित देखता है, वह (सबको तथा स्वयं को भी ईश्वर स्वरूप जानकर) अपने से अपनों की हिंसा नहीं करता है। अतः वह परमगति प्राप्त करता है॥११॥

विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं च महेश्वरम्। प्रधानविनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति॥१२॥

सात सूक्ष्म तत्त्वों (पञ्च तन्मात्रा, मन एवं आत्मा) तथा षडङ्ग (छः अङ्गों वाले) महेश्वर (शिव) को तथा प्रधान विनियोग को जान कर मनुष्य परम ब्रह्म को प्राप्त करता है॥१२॥

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वच्छन्दता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोः शिवस्य[१] षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य[२]॥१३॥

(महेश्वर के षडङ्ग एवं प्रधान विनियोग का स्पष्टीकरण आगे श्लोक १३, १४ में है)। सर्वज्ञता,

---

१. विभोर्विदित्वा

२. द्रष्टव्य- सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च महेश्वरस्य यन्मानसैश्वर्यमवैति वेदः॥ शिवपुराण १/१८/१२; द्रष्टव्य वही ७/२/१८/५५

तृप्ति, अनादि ज्ञान, स्वच्छन्दता (स्वतन्त्रता), नित्य अलुप्त (अर्थात् सदैव जागृत) रहने की शक्ति तथा अनन्त शक्ति को भगवान् महेश्वर शिव का षडङ्ग स्वरूप बतलाया गया है॥१३॥

तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्मकानि।
या सा हेतुः प्रकृतिः सा प्रधानं बन्धः प्रोक्तो विनियोगोऽपि तेन॥१४॥

पञ्च तन्मात्राएं (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के सूक्ष्म रूप), मन तथा आत्मा इन सात सूक्ष्म तत्त्वों के प्रादुर्भाव की हेतु रूपा जो प्रकृति है, उसको प्रधान कहा गया है तथा उस प्रधान (प्रकृति) के द्वारा की गयी (महत्, अहंकार, सूक्ष्म तन्मात्राएं, पञ्च महाभूत तथा दशइन्द्रियों की) सृष्टि रूपी शृङ्खला को ही विनियोग कहा गया है॥१४॥

या सा शक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोनिः।
तस्या एकः परमेष्ठी पुरस्तान्महेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः॥१५॥

वह जो शक्ति प्रकृति में विलीन अर्थात् मिली हुई है, जिसे वेदों में ब्रह्म की योनि तथा (सृष्टि का) कारण कहा गया है, उसके आगे (स्वामी रूप में) एक मात्र सत्यस्वरूप महेश्वर पुरुष ही सत्य रूप है॥१५॥

ब्रह्मा योगी परमात्मा महीयान् व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः।
एको रुद्रो मृत्युमव्यक्तमेकं बीजं विश्वं देव एकः स एव॥१६॥

वह एकमात्र रुद्र ही ब्रह्मा, योगी, परमात्मा, महान् से भी महान्, आकाश में व्याप्त, वेदों (के ज्ञान) से ज्ञात होने योग्य, पुराण-पुरुष, मृत्यु (काल-स्वरूप), अव्यक्त, अद्वितीय, [सृष्टि के] बीजस्वरूप तथा एकमात्र विश्व-स्वरूप देव हैं॥१६॥

तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं त्वेकात्मानं[1] केचिदन्ये तथाहुः।
अणोरणीयान्महतो महीयान्महादेवः प्रोच्यते वेदविद्भिः॥१७॥

उन भगवान् रुद्र को कोई एक मात्र देव कहते हैं तो कोई अनेक स्वरूपों वाला कहते हैं। कुछ अन्य उन्हें अद्वितीय आत्मा वाला कहते हैं। वेद के विद्वान् उन महादेव को अणु से भी अणुतर तथा महान् से भी अधिक महान् कहते हैं॥१७॥

एवं हि यो वेद गुहाशयं परं प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम्।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥१८॥

इति श्रकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे अष्टमोऽध्यायः॥८॥

भक्तजनों की हृदय रूपी गुफा में शयन (निवास) करने वाले हिरण्मय परात्पर पुराण पुरुष, जो कि बुद्धिमान् मनुष्यों को परम गति प्रदान करने वाले हैं, उन विश्वरूप प्रभु को इस रूप में जो बुद्धिमान् मनुष्य जानता है, वह बुद्धि को पार कर जाता है॥१८॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण में उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् में आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥८॥

❖❖❖

१. विनयेनापि

अथ नवमोऽध्यायः
महादेवस्य विश्वरूपत्ववर्णनम्

ऋषय ऊचुः

निष्कलो निर्मलो नित्यो निष्क्रियः परमेश्वरः। तन्नो वद महादेव विश्वरूपः कथं भवान्॥१॥

ऋषि बोले- हे महादेव! आप निष्कल (कला रहित), निर्मल, नित्य (सनातन) तथा निष्क्रिय परमेश्वर हैं, तो तब आप हमें यह बतलाइए कि आप विश्व-रूप कैसे हैं?॥१॥

ईश्वर उवाच

नाहं विश्वो न विश्वं च मामृते विद्यते द्विजाः। माया निमित्तयत्रास्ति सा चात्मानमपाश्रिता॥२॥

ईश्वर बोले- हे द्विजो! मैं विश्वमय नहीं हूँ तथापि यह विश्व मुझसे पृथक् नहीं है। इसका कारण माया ही है और वह माया आत्मा को अपना आश्रय बना कर रहती है॥२॥

अनादिनिधना शक्तिर्मायाव्यक्तसमाश्रिता। तन्निमित्तः प्रपञ्चोऽयमव्यक्ताज्जायते खलु॥३॥

आदि अन्त से रहित वह शक्तिशाली माया अव्यक्त तत्त्व पर आश्रित रहती है और उसी के कारण अव्यक्त तत्त्व से यह प्रपञ्च (संसार) उत्पन्न होता है॥३॥

अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम्। अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥४॥

अव्यक्त को ही व्यक्त संसार का कारण कहा गया है। आनन्दमय और ज्योति (प्रकाश) स्वरूप परं ब्रह्म मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न अन्य कुछ नहीं है॥४॥

तस्मान्मे विश्वरूपत्वं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः। एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥५॥

इसीलिए ब्रह्मवादियों ने मेरे विश्वरूप (ब्रह्माण्ड स्वरूप की आकृति) को निश्चित [रूप से स्वीकृत] किया है। मेरे एकत्व, पृथक्त्व (एक स्वरूप तथा अनेक स्वरूप) का यही (विश्वरूप) उदाहरण कहा गया है॥५॥

अहं तत्परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः। अकारणं द्विजाः प्रोक्तो न दोषो लिप्यते मयि॥६॥

हे द्विजो! मैं कारण रहित सनातन परम ब्रह्म परमात्मा हूँ। मुझे [सृष्टि सम्बन्धी] कोई दोष नहीं लगता है॥६॥

अनन्ताः शक्तयोऽव्यक्ते मायया: संस्थिता ध्रुवाः। तस्मिन्दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम्॥७॥

माया की अनन्त और ध्रुव (शाश्वत, स्थिर) शक्तियाँ अव्यक्त तत्त्व में निहित रहती हैं तथा वह अव्यक्त केवल (अकेले ही) आकाश तत्त्व में विराजमान रहता है॥७॥

अभिन्नं लक्ष्यते भिन्नं ब्रह्माव्यक्तं सनातनम्। एकया मायया युक्तमनादिनिधनं ध्रुवम्॥८॥

अनादि, अनन्त, ध्रुव (शाश्वत), अव्यक्त और सनातन ब्रह्म अभिन्न होने पर भी केवल एक माया से युक्त होने पर भिन्न अर्थात् अनेक रूप वाला प्रतीत होता है॥८॥

तदेतत्परमव्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम्। तदक्षरं परं ज्योतिस्तद्विष्णोः परमं पदम्॥९॥

यह प्रभा मण्डल से मण्डित, परम अव्यक्त, अक्षर (अविनाशी) परं ज्योति ही भगवान् विष्णु का परम पद है॥९॥

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्। तदेवेदं जगत्कृत्स्नं तद्विज्ञाय विमुच्यते॥१०॥

उसमें ही यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है। वही यह सम्पूर्ण जगत् है। उसे जान लेने पर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है॥१०॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन॥११॥

[जिसे प्राप्त करने के प्रयास में लगे] मन तथा वाणी जिसे प्राप्त न कर सकने पर लौट आते हैं, उस आनन्द मय ब्रह्म का ज्ञाता विद्वान् कहीं भी किसी से भयभीत नहीं होता॥११॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः॥१२॥

मैं सूर्य के समान वर्ण वाले, तम (अन्धकार एवं तमोगुण) से रहित पुरुष को जानता हूँ। उसे जानकर विद्वान् व्यक्ति भव बन्धन से मुक्त एवं नित्य आनन्दमय और ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है॥१२॥

अस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित् यद् ज्योतिषाँ ज्योतिरेकं दिविस्थम्।
तदेवात्मानं मन्यमानोऽथ विद्वानात्मानन्दी भवति ब्रह्मभूतः॥१३॥

जो आकाश में स्थित ज्योतियों का भी [प्रकाशक] परं ज्योति है तथा जिससे रहित अन्य कुछ नहीं है, उसी [परं ज्योति] को आत्मा रूप मानने वाला विद्वान् नित्य आनन्दमय और ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है॥१३॥

तदव्ययं कलिलं गूढदेहं ब्रह्मानन्दममृतं विश्वधाम।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा यत्र गत्वा न निवर्तेत भूयः॥१४॥

ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण जिसे अविनाशी, अभेद्य, गूढदेह (प्रच्छन्न रूप वाला), ब्रह्मानन्दमय, अमृत तथा सम्पूर्ण जगत् का धाम (आश्रय) कहते हैं, उस लोक में जाकर जीवात्मा पुनः इस संसार में लौट कर नहीं आता॥१४॥

हिरण्मये परमाकाशतत्त्वे यदर्चिषि प्रविभातीव तेजः।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा विभ्राजमानं विमलं व्योम धाम॥१५॥

स्वर्णिम परम आकाशतत्त्व में जो ज्वाला सदृश तेज दीप्तिमान होता है, उस प्रकाशमान एवं निर्मल व्योम रूपी ईश्वरीय तेज का दर्शन विद्वान् लोग अपने विज्ञान (विशेष ज्ञान) के बल पर करते हैं॥।१५॥

ततः परं परिपश्यन्ति धीरा आत्मन्यात्मानमनुभूय साक्षात्।
स्वयंप्रभः परमेष्ठी महीयान् ब्रह्मानन्दी भगवानीश एषः॥१६॥

तब धीर पुरुष [विशेष ज्ञान से] अपने आत्मा में बार-बार परमानन्द तत्त्व का साक्षात् दर्शन करते हैं और यह अनुभव करते हैं कि स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मानन्द स्वरूप महान् से महान् परमेश्वर भगवान् ईश्वर यही है॥१६॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥१७॥

सर्वव्यापी तथा सभी प्राणियों का अन्तरात्मा एक ही देव सभी प्राणियों में गुप्त रूप से स्थित है। जो धीर पुरुष उस एक देव का सर्वत्र दर्शन करते हैं, उनको ही शाश्वत (चिर-स्थायी) शान्ति प्राप्त होती है [किन्तु उनके अतिरिक्त] अन्य किसी को वैसी शान्ति प्राप्त नहीं होती॥१७॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी स भगवान् तस्मादन्यन्न विद्यते॥१८॥

सभी [दिशाओं की] ओर मुख, शिर तथा ग्रीवा (कण्ठ) वाला सभी प्राणियों की हृदय रूपी गुफा में स्थित भगवान् स्र्वव्यापी है। उनसे भिन्न अन्य कुछ नहीं है॥१८॥

इत्येतदैश्वरं ज्ञानमुक्तं वो मुनिपुङ्गवाः। गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम्॥१९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे नवमोध्यायः॥९॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! आप लोगों को मैंने यह ईश्वरीय ज्ञान बतलाया है। यह ज्ञान विशेष रूप से गोपनीय है और योगियों के लिए भी दुर्लभ है॥१९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ईश्वरगीतोपनिषद् का नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

मुक्तिप्रदमहेश्वरज्ञानकथनम्

ईश्वर उवाच

अलिङ्गमेकमव्यक्तलिङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम्। स्वयं ज्योतिः परं तत्त्वं परे व्योम्नि व्यवस्थितम्॥१॥

अलिङ्ग अर्थात् किसी परिचय बोधक चिह्न से रहित तथा अव्यक्त लिङ्ग वाले अद्वितीय देव को ही ब्रह्म संज्ञा से सुनिश्चित किया गया है। वह स्वयं प्रकाशमान परम तत्त्व ही परम व्योम (आकाश) में स्थित है॥१॥

अव्यक्तं कारणं यत् तदक्षरं परमं पदम्। निर्गुणं शुद्धविज्ञानं तद्वै पश्यन्ति सूरयः॥२॥

जो अव्यक्त, अविनाशी, निर्गुण, शुद्ध विज्ञानमय और जगत् का कारण परम पद है, उसको विद्वज्जन ही देख पाते हैं॥२॥

तन्निष्ठाः शान्तसङ्कल्पा नित्यं तद्भावभाविताः। पश्यन्ति तत्परं ब्रह्म यत्तल्लिङ्गमिति श्रुतिः॥३॥

जिसे वेद में लिङ्ग अर्थात् प्रतीक रूप में कहा गया है, उस परम ब्रह्म का दर्शन नित्य उसके चिन्तन-मनन में तत्पर और तल्लीन एवं दृढ़ संकल्प वाले ही कर पाते हैं॥३॥

अन्यथा न हि मां द्रष्टुं शक्यं वै मुनिपुङ्गवाः। न हि तद् विद्यते ज्ञानं यतस्तज्ज्ञायते परम्॥४॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! अन्य किसी उपाय से मेरा दर्शन नहीं हो सकता है। ऐसा कोई अन्य ज्ञान या उपाय नहीं है, जिससे कि उस परमतत्त्व को ज्ञात किया जा सके॥४॥

एतत् तत् परमं ज्ञानं केवलं कवयो विदुः। अज्ञानमितरत् सर्वं यस्मान्मायामयं जगत्॥५॥

इस परम तत्त्व विषयक ज्ञान को केवल विद्वान् ही जान पाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी कुछ अज्ञानमय है, जिसके कारण यह जगत् माया से व्याप्त है॥५॥

यज्ज्ञानं निर्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निरञ्जनम्। ममात्मासौ तदेवेदमिति प्राहुर्विपश्चितः॥६॥

जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प (विकल्प रहित) तथा विशुद्ध है, वह मेरा (शिव का) आत्मा स्वरूप है, ऐसा विद्वानों का कथन है॥६॥

येऽप्यनेकं प्रपश्यन्ति तत्परं परमं पदम्। आश्रिताः परमां निष्ठां बुद्ध्वैक्यं तत्त्वमव्ययम्॥७॥

जो उस परात्पर परम पद को अनेक रूपों में स्थित देखते हैं, वे उस अविनाशी परमतत्त्व को जान कर उसमें परम निष्ठा का आश्रय लेते हैं[१] (?)॥७॥

ये पुनः परमं तत्त्वमेकं वानेकमीश्वरम्। भक्त्या मां सम्प्रपश्यन्ति विज्ञेयास्ते तदात्मकाः॥८॥

जो भक्त ईश्वरीय परमतत्त्व को एक या अनेक बतला कर उसमें भक्तिपूर्वक मेरा दर्शन करते हैं, उनको भी मेरा ही स्वरूप मानना चाहिए॥८॥

साक्षाद्देवं प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम्। नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः॥९॥

उस प्रकार के भक्त अपने आत्मा में ही नित्य आनन्दमय, निर्विकल्प (विकल्प रहित) एवं सत्य-स्वरूप परमेश्वर का साक्षात् दर्शन करते हैं॥९॥

भजन्ते परमानन्दं सर्वगं जगदात्मकम्। स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताः परेऽव्यक्तात्मनः सदा॥१०॥

शान्त स्वभाव वाले अन्य मुनिगण अपने आत्मा अर्थात् हृदय में स्थित परम आनन्द स्वरूप, सर्वव्यापी जगत् के आत्मा स्वरूप अव्यक्त परमात्मा का सदा ध्यान करते हैं॥१०॥

एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम्। निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदुः॥११॥

इसी अवस्था को विद्वानों ने परम मोक्ष की स्थिति, मेरे उत्तम सायुज्य की प्राप्ति, परम निर्वाण, ब्रह्म के साथ एकात्म्य भाव एवं कैवल्य संज्ञक मोक्ष कहा है॥११॥

तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवम्। स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय प्रमुच्यते॥१२॥

अतः आदि, मध्य और अन्त से रहित एकमात्र परम सत्य शिव ही हैं। वही ईश्वर और महादेव हैं। ऐसा ज्ञान हो जाने पर जिज्ञासु भक्त मोक्ष को प्राप्त करता है॥१२॥

न तत्र सूर्यः प्रतिभातीह चन्द्रो न च नक्षत्राणां गणो नोत विद्युत्।
तद्भासेदमखिलं भाति विश्वं स्वयं स्वभासा च स विभाति देवः॥१३॥

उस परमात्मा के पास न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न नक्षत्र और न विद्युत्। उसी के

---

१. इस श्लोक में पुराणकार का वक्तव्य स्पष्ट नहीं हो पाता है।

प्रकाश से यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है तथा वह देव परमेश्वर तो स्वयं अपने प्रकाश से ही प्रकाशमान रहता है॥१३॥

नित्योदितं निष्कलं निर्विकल्पं शुद्धं बृहत्परमं सद्विभाति[1]।
अत्रान्तरे ब्रह्मविदोऽथ नित्यं पश्यन्ति तत्त्वमचलं यत्स ईशः॥१४॥

वह नित्य उदित, निष्कल, निर्विकल्प, शुद्ध, विशाल एवं परम दीप्तिमान है। उस (प्रकाश-पुञ्ज) के अन्दर ब्रह्मतत्त्व के ज्ञाता विद्वान् जिस अचल और नित्य (सनातन) तत्त्व का दर्शन करते हैं, वही ईश्वर है॥१४॥

नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं शुद्धं वदन्ति पुरुषं सर्ववेदाः।
तमोमिति प्रणवेनेशितारं[2] ध्यायन्ति वेदार्थनिश्चितार्थाः॥१५॥

सभी वेद उसी पुरुष को नित्य आनन्दमय, अमृत स्वरूप (अमर), सत्य-रूप एवं शुद्ध कहते हैं। वेदार्थ के निर्णय में पारंगत विद्वान् उसी परमात्मा का 'ॐ' संज्ञक प्रणवाक्षर के रूप में [जप करते हुए] ध्यान करते हैं॥१५॥

न भूमिरापो न मनो न वह्निः प्राणोऽनिलो गगनं नोत बुद्धिः।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाशमध्ये विभाति देवः शिव एक केवलः॥१६॥

परम आकाश के मध्य में न तो भूमि, न जल, न मन, न अग्नि, न प्राण, न पवन, न गगन (आकाश), न बुद्धि और न कोई अन्य चेतन प्राणी ही वहाँ है, वहाँ तो केवल एकमात्र शिव ही दीप्तिमान् रहते हैं॥१६॥

इत्येतदुक्तं परमं रहस्यं ज्ञानं चेदं सर्ववेदेषु गीतम्।
जानाति योगी विजनेऽर्थ देशे युञ्जीत योगं प्रयतो ह्यजस्रम्॥१७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे दशमोऽध्यायः॥१०॥

सभी वेदों में कथित यह परम रहस्यमय ज्ञान मैंने बतलाया है। इस ज्ञान को निर्जन स्थान में प्रयत्न पूर्वक निरन्तर योग साधना करने वाला योगी ही जान सकता है॥१७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के ईश्वरगीतोपनिषद् में दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥१०॥

❖❖❖

१. यद्विभाति
२. प्राणानिति प्राणविनेशितारं

अथैकादशोऽध्यायः

अष्टाङ्गयोगवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम्। येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम्॥१॥

ईश्वर बोले- अब इसके आगे मैं उस परम दुर्लभ योग को बतलाऊंगा जिसके द्वारा आत्मा रूपी ईश्वर को सूर्य के समान प्रत्यक्ष देखा जा सकता है॥१॥

योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्। प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्॥२॥

योग रूपी अग्नि सम्पूर्ण पाप-राशि को शीघ्र भस्म कर देता है और तब साक्षात् मुक्ति रूपी सिद्धि प्रदान करने वाला विशुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है॥२॥

योगात्सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते। योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः॥३॥

योग-साधना से ज्ञान-लाभ भी होता है और ज्ञान से योग-साधना सफल होती है। योग तथा ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य पर भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं॥३॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च। ये युञ्जन्ति महायोगं ते विज्ञेया महेश्वराः॥४॥

जो मनुष्य दिन में नित्य एक बार या दो बार या तीन बार योग-साधना करते हैं, उनको साक्षात् महेश्वर (शिव) समझना चाहिए॥४॥

योगस्तु द्विविधो ज्ञेयो ह्यभावः प्रथमो मतः। अपरस्तु महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः॥५॥

यह समझना चाहिए कि योग दो प्रकार का होता है। प्रथम है अभाव (भाव रहित) योग और दूसरा है महायोग, जो कि सभी योगों में सर्वोत्तम होता है॥५॥

शून्यं सर्वनिराभासं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते। अभावयोगः स प्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति॥६॥

जिस योग में सभी प्रकार के आभासों से रहित शून्य स्वरूप का चिन्तन किया जाता है, उसे अभाव योग कहते हैं। इसके द्वारा आत्मा का दर्शन किया जाता है॥६॥

यत्र पश्यति चात्मानं नित्यानन्दं निरञ्जनम्। मयैक्यं स महायोगो भाषितः परमोत्तमः॥७॥

जिस योग के द्वारा नित्य आनन्दमय, निरञ्जन (निष्कलंक) आत्मा का दर्शन होता है तथा मेरे (शिव के) साथ तादात्म्य भाव स्थापित होता है, उसे सर्वोत्तम योग अर्थात् महायोग कहा गया है॥७॥

ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे। सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥८॥

नाना ग्रन्थों में योगियों के जिन नाना प्रकार के योगों का विवरण सुना जाता है, वे सब योग ब्रह्मयोग (महायोग) के सोलहवें अंश के तुल्य भी नहीं हैं॥८॥

यत्र साक्षात्प्रपश्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम्। सर्वेषामेव योगानां स योगः परमो मतः॥९॥

जिस योग को सिद्ध करने वाले जीवन-मुक्त पुरुष समस्त विश्व को साक्षात् ईश्वर रूप में देखते हैं, उस योग को सभी योगों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है॥९॥

सहस्रशोऽथ शतशो ये चेश्वरबहिष्कृताः। न ते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यतमानसाः॥१०॥

जो ईश्वर-बहिष्कृत (ईश्वर पर आस्था से रहित) सैकड़ों हजारों योगी हैं, वे मन को संयमित करने पर भी मुझ अद्वितीय ईश्वर का दर्शन नहीं कर पाते हैं॥।१०॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा। समाधिश्च मुनिश्रेष्ठा यमश्च नियमासने॥११॥
मय्येकचित्तता योगः वृत्यन्तरनियोगतः। तत्साधनानि चाष्टानि युष्माकं कथतानि तु॥१२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि संज्ञक योग के ये आठ साधन मैंने आपको बतलाये हैं। अन्य सभी विषयों के प्रति चित्तवृत्ति को रोककर एकाग्रचित्त होकर मेरा ध्यान करना ही योग है॥११-१२॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम्॥१३॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिहग्रह- ये पाँच यम हैं जो मनुष्यों के चित्त को शुद्ध करते हैं॥१३॥

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा। अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः॥१४॥

महर्षियों ने कहा है कि समस्त प्राणि जगत् में कभी भी किसी भी प्राणी को मन से, वचन से या कर्म से क्लेश (पीड़ा) न पहुँचाना ही अहिंसा है॥१४॥

अहिंसायाः परो धर्मो नास्त्यहिंसा परं सुखम्। विधिना या भवेद्धिंसा सात्वहिंसैवं कीर्तिता॥१५॥

(अहिंसा सर्वोत्तम धर्म है) अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं है। अहिंसा परम सुख (-प्रद) है। धार्मिक विधानानुसार विहित हिंसा को अहिंसा ही कहा गया है॥१५॥

सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्। यथार्थकथनाचारः सत्यं प्रोक्तं द्विजातिभिः॥१६॥

सत्य के द्वारा सब कुछ (जो इच्छित हो वह) प्राप्त होता है। सत्य में सब कुछ निर्भर है। द्विजातियों ने यथार्थ कथन के आचार (-व्यवहार) को सत्य कहा है॥१६॥

परद्रव्यापहरणं चौर्यादथ बलेन वा। स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम्॥१७॥

चोरी करके अथवा बलपूर्वक पराये द्रव्य का अपहरण स्तेय कहलाता है। वैसा न करना अस्तेय है, जो कि धर्म का साधन है॥१७॥

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥१८॥

सभी अवस्थाओं में सदैव और सर्वत्र ही मन, वाणी (वचन) और कर्म से मैथुन के त्याग को ब्रह्मचर्य कहा गया है॥१८॥

द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि यथेच्छया। अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत्॥१९॥

आपत्तिकाल में भी इच्छानुसार द्रव्यों को ग्रहण न करना 'अपरिग्रह' है। उस अपरिग्रह का पालन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए॥१९॥

तपः स्वाध्यायसन्तोषो शौचमीश्वरपूजनम्। समासान्नियमाः प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनः॥२०॥

तप, स्वाध्याय, संतोष, शौच और ईश्वर का पूजन (ईश्वर प्राणिधान) ये पाँच नियम संक्षेप में बताये गये हैं। [इनका पालन किये जाने पर] ये योग-सिद्धि प्रदायक होते हैं॥२०॥

उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः। शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम्॥२१॥

तपस्वियों (योगियों) ने कृच्छ्र, चान्द्रायण, पराक आदि व्रतों और उपवासों से शरीर को सुखाना अर्थात् कृषकाय होना ही उत्तम तप बतलाया है॥२१॥

वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः। सत्त्वसिद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते॥२२॥

विद्वानों ने वेद-वेदान्त के ग्रन्थों [के पारायण] शतरुद्रिय एवं ओङ्कार आदि के जप को स्वाध्याय कहा है, जिससे मनुष्यों के सत्त्व की शुद्धि होती है॥२२॥

स्वाध्यायस्य त्रयो भेदा वाचिकोपांशुमानसाः। उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः॥२३॥

स्वाध्याय (या जप) के क्रमशः वाचिक, उपांशु तथा मानस संज्ञक तीन भेद कहे गये हैं, जिनमें प्रथम की अपेक्षा दूसरे तथा दूसरे की अपेक्षा तीसरे को वेदार्थ के विद्वानों अधिक विशिष्ट कहा है॥२३॥

यः शब्दबोधजननः परेषां शृण्वतां स्फुटम्। स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम्॥२४॥
ओष्ठयोः स्पन्दमात्रेण परस्याशब्दबोधकम्। उपांशुरेष निर्दिष्टः साध्वसौ वाचिकाज्जपात्॥२५॥

वाचिक स्वाध्याय उसे कहा गया है, जिससे वक्ता के द्वारा बोले गये शब्दों का अन्य श्रोताओं को स्पष्टतः बोध हो जाय। उपांशु जप का लक्षण यह है कि इसमें वक्ता के केवल ओष्ठों में स्पन्दन होता है और किसी भी अन्य व्यक्ति को कोई शब्द नहीं सुनायी पड़ता है। यह उपांशु जप वाचिक जप से श्रेष्ठ होता है॥२४-२५॥

यत्पदार्थस्य[1] सङ्गत्या परिस्पन्दनवर्जितम्। चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तज्जपं विदुः॥२६॥

[मन्त्र जपते समय] जब अर्थबोध सहित सभी शब्दों का मन से चिन्तन करने पर जिह्वा एवं होंठों में कोई स्पन्दन (कम्पन) न हो तो उस जप को मानस जप कहते हैं॥२६॥

यदृच्छालाभतो वित्तं अलं पुंसो भवेदिति। प्राशस्त्यमृषयः प्राहुः सन्तोषं सुखलक्षणम्॥२७॥

बिना माँगे जो कुछ प्राप्त हो जाय उसी धन से सन्तुष्ट रहना तथा उसी को पर्याप्त मानना ही ऋषियों ने सुख-सन्तोष का लक्षण बतलाया है॥२७॥

बाह्यमाभ्यन्तरं शौचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः। मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिरथान्तरम्॥२८॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! बाह्य तथा आभ्यन्तर (आन्तरिक) भेद से शौच को दो प्रकार का बतलाया गया है। मिट्टी एवं जल से की जाने वाली शुद्धि (साफ-सफाई) को बाह्य शौच तथा आन्तरिक अर्थात् मन की शुद्धि को आन्तरिक शौच कहा गया है॥२८॥

स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मनः कायकर्मभिः। सुनिश्चला शिवे भक्तिरेतदीशस्य पूजनम्॥२९॥

१. यत् पदाक्षरसङ्गत्या

मन से वचन से तथा कर्म से भगवान् शिव की स्तुति, उनका ध्यान एवं पूजा तथा शिव में दृढ़ भक्ति को ईश्वर-पूजन में गिनाया गया है॥२९॥

यमाश्च नियमाः प्रोक्ताः प्राणायामं निबोधत। प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्॥३०॥

मैंने यम तथा नियम बतला दिये हैं, अब आप प्राणायाम के विषय में सुनें। अपने शरीरस्थ वायु को प्राण कहा जाता है तथा उस वायु का निरोध (रोकना) आयाम कहलाता है॥३०॥

उत्तमाधममध्यत्वात् त्रिधायं प्रतिपादितः। स एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भ एव च॥३१॥

यह प्राणायाम उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद से तीन प्रकार का बतलाया गया है तथा सगर्भ एवं अगर्भ भेद से वह दो प्रकार का कहा गया है॥३१॥

मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः। मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोत्तमः[1]॥३२॥

द्वादश बार प्रणव (ॐ) के उच्चारण के काल तक किये जाने वाले प्राणायाम को मन्द अर्थात् लघु प्राणायाम, चौबीस बार प्रणव के उच्चारण तक किये जाने वाले प्रणायाम को मध्यम-तथा छत्तीस बार प्रणव के उच्चारण तक किये जाने वाले प्राणायाम को उत्तम कहा गया है[2]॥३२॥

यः स्वेदकम्पनोच्छ्वासजनकस्तु यथाक्रमम्। मन्द-मध्यम-मुख्याना[3]मानन्दादुत्ततोत्तमः॥३३॥

प्राणायाम करने पर जब पसीना आये या शरीर में कम्पन होने लगे या उच्छ्वास (जोर की सांस) आये तो ऐसे प्राणायाम को क्रमानुसार लघु, मध्यम और मुख्य (उत्तम) एवं आनन्द प्रद कहा जाता है॥३३॥

सगर्भमाहुः सजपमगर्भं विजपं बुधाः[4]। एतद्वै योगिनां प्राहुः प्राणायामस्य लक्षमणम्॥34॥

विद्वानों ने जप सहित किये गये प्राणायाम को सगर्भ तथा जप रहित प्राणायाम को अगर्भ कहा है। योगियों के प्राणायाम का यही लक्षण कहा गया है॥३४॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह[5]। त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते[6]॥३५॥

श्वास (सांस) रोककर प्रणव (ॐ) तथा सप्त व्याहृतियों (भूः भवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्) एवं वेदमाता गायत्री (तत्सवितुर्वरेण्यं इत्यादि) का शिरो मन्त्र [आपो ज्योती रसोऽमृतं] सहित तीन बार [साँस लेते समय, साँस रोककर तथा साँस बाहर छोड़ते समय] जप करे। इसी को प्राणायाम कहते हैं॥३५॥

रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः। प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः॥३६॥

संयत मन वाले योगियों ने सभी शास्त्रों में पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम का वर्णन किया है॥३६॥

रेचको बाह्यनिश्वासः पूरणात् पूरकः स्मृतः[7]। साम्येन संस्थितिर्या सा कुम्भकः परिगीयते॥३७॥

श्वास को निरन्तर बाहर निकालने को रेचक कहते हैं, उस श्वास से वायु को शरीर के अन्दर ग्रहण करना पूरक कहलाता है तथा साम्यावस्था अर्थात् साँस को रोके रखने की स्थिति को कुम्भक कहा गया है॥३७॥

---

१. षट्त्रिंशान्मात्रिकोऽन्तकः, २. द्रष्टव्य - गरुडमहापुराण ४९/३४, ३. संयोगश्च मनुष्याणा

४. सुनफाख्यं हितं योगं सगर्भविजयं बुधाः, ५. आपो ज्योति रस इति गायत्र्यास्तु शिरःस्मृतम्। अग्निपुराण २१५/४४

६. प्राणायामोऽथ नामतः। ७. पूरकस्तन्निरोधनः,

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः। निग्रहः प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु सत्तमाः॥ ३८॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! स्वभावतः विषयों (रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श) में आसक्त हो जाने वाली इन्द्रियों के निग्रह (अपने नियन्त्रण में रखने) को सत्पुरुषों ने प्रत्याहार कहा है॥ ३८॥

हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्नि पर्वसु मस्तके। एवमादिषु देशेषु धारणा चित्तबन्धनम्॥ ३९॥

अपने हृदय रूपी कमल में या नाभि में या शिर में या सन्धि (जोड़ों) या मस्तक में चित्त के बन्धन अर्थात् ध्यान को केन्द्रित करने को धारणा कहा जाता है॥ ३९॥

देशावस्थितिमालम्ब्य बुद्धेर्या[1] वृत्तिसन्ततिः। वृत्त्यन्तरैरसंसृष्टा तद्ध्यानं सूरयो विदुः॥ ४०॥

किसी अङ्ग-विशेष या स्थान विशेष में बुद्धि को केन्द्रित करने और चित्तवृत्ति को अन्यत्र आसक्त न होने देने की स्थिति को विद्वानों ने 'ध्यान' कहा है॥ ४०॥

एकाकारः समाधिः स्याद्देशालम्बनवर्जितः। प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगशासनमुत्तमम्॥ ४१॥

किसी साधन का आलम्बन (आश्रय) लिए बिना ध्येय (ध्यान योग्य) के ध्यान में तल्लीन होना ही समाधि है॥ ४१॥

धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणाः। ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते॥ ४२॥

द्वादश (बारह) बार प्रणायाम की अवधि तक चित्तवृत्ति को एकत्र केन्द्रित बनाये रखना ही धारणा है तथा द्वादश बार तक निरन्तर धारणा में संलग्न रहना ही ध्यान कहलाता है और द्वादश बार तक अखण्ड रूप से निरन्तर ध्यान करते रहना ही समाधि है॥ ४२॥

आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्धासनं तथा। साधनानाञ्च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम्॥ ४३॥

योगी के लिए स्वस्तिक आसन, पद्मासन तथा अर्धासन को सभी साधनों में उत्तम साधन कहा गया है॥ ४३॥

ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्राः कृत्वा पादतले उभे। समासीनात्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम्॥ ४४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! दोनों पैरों के तलवों को जंघा के ऊपर रख कर बैठना पद्मासन कहलाता है। यह उत्तम आसन होता है॥ ४४॥

उभे कृत्वा पादतले जानूर्वोरन्तरेण हि। समासीनात्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम्॥ ४५॥

दोनों पैरों को घुटनों और जांघों के अन्दर करके बैठने को स्वस्तिक नामक उत्तम आसन कहा गया है॥ ४५॥

एकं पादमथैकस्मिन्विष्टभ्योरसि सत्तमाः। आसीनार्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम्॥ ४६॥

हे सज्जनो! एक पैर को दूसरे पैर पर रखकर (घुटने को) छाती से लगाकर बैठना अर्धासन कहलाता है जो कि योग-साधना में उत्तम माना जाता है॥ ४६॥

अदेशकाले योगस्य दर्शनं न हि विद्यते। अग्न्यभ्यासे जले वापि शुक्लपर्णचये तथा॥ ४७॥
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे। सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसञ्चये॥ ४८॥

---

१. ऊर्ध्वं या

अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते। नाचरेद्देहवाधे वा दौर्मनस्यादिसम्भवे॥४९॥

अपवित्र स्थान में तथा अनुचित समय में योगाभ्यास का विधान नहीं किया गया है। अग्नि के समीप, जल के मध्य में, सूखे पत्तों के समूह के ऊपर, जीव-जन्तुओं से युक्त स्थान में, श्मशान में, जीर्ण-शीर्ण गौशाला में, चौराहे में, कोलाहल युक्त स्थान में, भयजनक स्थान में, चैत्य के समीप, दीमक के टीले के ऊपर, अशुभ स्थान में, दुष्टजनों से युक्त स्थान में, मच्छर आदि कीट-पतंगों वाले स्थान में एवं शारीरिक व्याधि होने पर तथा मानसिक अशान्ति होने पर भी योग-साधना नहीं करनी चाहिए॥४७-४९॥

सुगुप्ते सुशुभे देशे गुहायां पर्वतस्य च। नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा॥५०॥
गृहे वा सुशुभे रम्ये निर्जने जन्तुवर्जिते। युञ्जीत योगं सततमात्मानं मत्परायणः॥५१॥

सुरक्षित शुभ स्थान में, किसी पर्वत की गुफा में, नदी के तट में, किसी पवित्र स्थान में, देवालय में अथवा सुन्दर एवं शुभ घर में या जीव-जन्तुओं से रहित निर्जन स्थान में योगी स्वयं को मेरी (अर्थात् शिव की) भक्ति में संलग्न रखते हुए योगाभ्यास करे॥५०-५१॥

नमस्कृत्याथ योगीन्द्रान् सशिष्यांश्च विनायकम्। गुरुञ्चैव च मां योगी युञ्जीत सुसमाहितः॥५२॥

योगीश्वरों को उनके शिष्यों सहित प्रणाम करके तथा विनायक (गणेश) एवं अपने गुरु तथा मुझे (शिव को) प्रणाम करके एकाग्र-मन वाला होकर योग करना चाहिए॥५२॥

आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्धमथापि वा। नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः॥५३॥
कृत्वाथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत्। स्वात्मन्येव स्थितं देवं चिन्तयेत् परमेश्वरम्॥५४॥

योगी को स्वस्तिक, पद्मासन या अर्धासन की मुद्रा में बैठकर अधखुली आँखों की दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में केन्द्रित करके सांसारिक मायामोह को त्याग कर तथा निर्भय और शान्त होकर अपने आत्मा में स्थित देव परमात्मा का चिन्तन अर्थात् ध्यान करना चाहिए॥५३-५४॥

शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम्। धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्॥५५॥
ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम्। चिन्तयेत्परमं कोशं कर्णिकायां हिरण्मयम्॥५६॥

शिखा से बारह अङ्गुल लम्बे आगे के भाग में बाँधी गयी धर्म रूपी गाँठ या मूल (जड़) से उत्पन्न ज्ञान रूपी सुन्दर नाल वाले, ऐश्वर्य रूपी अष्ट दल वाले एवं वैराग्य रूपी कर्णिका वाले श्वेतवर्ण के सुन्दर कमल की कल्पना करके उस कमल-पुष्प की कर्णिका में परम सुन्दर हिरण्यमय कोष का ध्यान करे॥५५-५६॥

सर्वशक्तिमयं साक्षाद् यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम्। ओङ्कारवाच्यमव्यक्तं रश्मिजालसमाकुलम्॥५७॥

हे विप्रो! उस सर्व-शक्ति सम्पन्न [हिरण्मय] कोश को परम दिव्य, अविनाशी, अव्यक्त तथा प्रकाश-किरणों से व्याप्त एवं ओङ्कार संज्ञा वाला कहा गया है॥५७॥

चिन्तयेत्तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम्। तस्मिन्ज्योतिषि विन्यस्य स्वात्मानं तदभेदतः[१]॥५८॥

उस परम ज्योति (प्रकाश) से अपने आत्मा का अभेद सम्बन्ध अर्थात् तादात्म्य स्वीकार कर अपने आत्मा में अविनाशी निर्मल ज्योति का चिन्तन करे॥५८॥

१. स्वानन्दं मम भेदतः

ध्यायीत कोशमध्यस्थमीशं परमकारणम्। तदात्मा सर्वथा[1] भूत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥५९॥

वह योगी [हिरण्मय कर्णिका में स्थित] कोश[2] के मध्य में स्थित जो जगत् का परम कारण स्वरूप ईश्वर है, उसमें सर्वथा तल्लीन होकर उसका ध्यान करे तथा अन्य किसी विषय का चिन्तन न करे॥५९॥

एतद् गुह्यतमं ज्ञानं ध्यानं वक्ष्याम्यथैश्वरम्[3]। चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तं हृदये पद्ममुत्तमम्॥६०॥
आत्मानमथ कर्तारं तत्रानलसमत्विषम्। मध्ये वह्नि शिखाकारं पुरुषं पञ्चविंशकम्॥६१॥
चिन्तयेत्परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम्। ओङ्कारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्॥६२॥

यह (ध्यान विषयक) ज्ञान मैंने कहा। अब मैं ईश्वर विषयक ध्यान को बतलाता हूँ। जैसा कि पीछे (श्लोक ५४-५९ तक) कहा है अपने हृदय में उत्तम कमल का चिन्तन (ध्यान) करके उस कमल के मध्य (बीच) में अग्निसदृश तेजस्वी एवं अग्नि ज्वाला के समान तेज वाले [सांख्यदर्शनोक्त] पुरुष संज्ञक पचीसवें तत्त्व रूपी परमात्मा का चिन्तन (ध्यान) जगत् के कर्ता परमेश्वर के रूप में करे। उस परमेश्वर के अन्दर परम आकाश तत्त्व स्थित है, जिसका बोध ओङ्कार से होता है। उस शाश्वत (सनातन) तत्त्व को ही अच्युत शिव कहा जाता है॥६०-६२॥

अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम्। तदन्तः परमं तत्त्वमात्माधारं निरञ्जनम्॥६३॥
ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम्। विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः॥६४॥
संस्थाप्य मयि चात्मानं निर्मले परमे पदे। प्लावयित्वाऽऽत्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा॥६५॥
मदात्मा मन्मना भस्म गृहीत्वा त्वग्निहोत्रजम्। तेनोद्धूलितसर्वाङ्गमग्निरित्यादि मन्त्रतः[4]।
चिन्तयेत्स्वात्मनीशानं परं ज्योतिः स्वरूपिणम्॥६६॥

योगी उस परम शिव में अव्यक्त, प्रकृति में लीन परमोत्तम ज्योति, आत्मा का आधार स्वरूप, निरञ्जन, नित्य एवं एक स्वरूप वाले महेश्वर का तन्मय होकर ध्यान करे। अथवा प्रणव (ओङ्कार) के उच्चारण से सभी तत्त्वों अर्थात् (शरीरस्थ) पञ्च तत्त्वों को शुद्ध करके निर्मल परम पद रूप मुझ में अपने आत्मा को स्थापित करके एवं उसी ज्ञान रूपी जल से अपने शरीर को आप्लावित (स्नान या जल स्पर्श से शुद्ध) करके मेरे में समर्पित आत्मा वाला तथा मेरे में समर्पित मन वाला होकर अग्निहोत्र [के यज्ञ कुण्ड] से भस्म लेकर उस भस्म को 'अग्निरिति भस्म'[5] इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित करके सम्पूर्ण शरीर में विलेपन करके अपने आत्मा में परम ज्योति स्वरूप ईशान (शिव) के स्वरूप का ध्यान करे॥६३-६६॥

एष पाशुपतो योगः पशुपाशविमुक्तये। सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रममिति श्रुतिः॥६७॥

यह पाशुपत योग है जो पशु (जीव) को पाश (माया जाल रूपी बन्धन) से मुक्ति देता है। यह सम्पूर्ण वेदान्त का सार रूप है तथा अन्तिम आश्रम (संन्यास) के लिए विहित है, ऐसा वेद का कथन है॥६७॥

---

१. सर्वगो, २. हिरण्मय कर्णिका में विद्यमान कोश की चर्चा पीछे श्लोक ५६ में है।
३. ध्यानान्तरमथोच्यते, ४. हिरण्मय कर्णिका में विद्यमान कोश की चर्चा पीछे श्लोक ५६ में है।
५. अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म वायुरिति भस्म।

एतत्परतरं गुह्यं मत्सायुज्यप्रदायकम्। द्विजातीनां तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम्॥६८॥

यह उपदेश अत्यन्त गोपनीय और मेरा सायुज्य प्रदान कराने वाला है। द्विजों के लिए तथा मेरे भक्तों और ब्रह्मचारियों के लिए ही यह उपदेश दिया गया है॥६८॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च क्षमा शौचं तपो दमः। सन्तोषः सत्यमास्तिक्यं व्रताङ्गानि विशेषतः॥६९॥

ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, शौच, तप, दम (इन्द्रिय-निग्रह), सन्तोष, सत्य तथा आस्तिकता (ईश्वर तथा परलोक में विश्वास) ये व्रत के विशेष अङ्ग कहे गये हैं॥६९॥

एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्य न तु लुप्यते। तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति॥७०॥

यदि व्रत के इन (उपरोक्त) अङ्गों में कोई एक अङ्ग न्यून (कम) हो जाय तो भी व्रत लुप्त (खण्डित) नहीं होता। अतः उपर्युक्त अहिंसा, क्षमा आदि आत्मगुणों से युक्त होकर योगी मेरे व्रत का पालन कर सकता है॥७०॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः। बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः॥७१॥

जिनके मन से राग, भय और क्रोध बीत गये हों, वे मेरी भक्ति में लीन होकर मेरी शरण में आते हैं तो ऐसे बहुत से लोग इस योग का पालन करने से पवित्र होकर मेरे सान्निध्य भाव को प्राप्त करते हैं॥७१॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। ज्ञानयोगेन मां तस्माद् यजेत परमेश्वरम्॥७२॥

जो भक्त जिस प्रकार या जिस भाव से मेरी शरण में आते हैं, मैं उसी प्रकार उसी भाव से उन्हें स्वीकार करता हूँ। अतः ज्ञानयोग के द्वारा मुझ परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए॥७२॥

अथवा भक्तियोगेन वैराग्येण परेण तु। चेतसा बोधयुक्तेन पूजयेन्मां सदा शुचिः॥७३॥

अथवा परम वैराग्य के साथ तथा प्रबुद्ध चित्त वाला एवं शुद्ध रहकर भक्तियोग से मेरा पूजन करे॥७३॥

सर्वकर्माणि संन्यस्य भिक्षाशी निष्परिग्रहः। प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम्॥७४॥

सभी कर्मों को त्याग कर भिक्षान्न भोजी होकर तथा कुछ भी संग्रह न करके योगी मेरा सायुज्य प्राप्त करता है। यह गुप्त ज्ञान मैंने बतला दिया है॥७४॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। निर्ममो निरहङ्कारो यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥७५॥

सभी प्राणियों के प्रति द्वेष-भाव से रहित, सबसे मित्रता बनाये रखने वाला, करुणा युक्त (दयालु), मोह-माया रहित और अहंकार रहित जो मेरा भक्त हो वही मुझे प्रिय है॥७५॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः। मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥७६॥

जो योगी सदैव सन्तुष्ट रहे, इन्द्रिय को वश में रखे, दृढ़ निश्चय वाला हो तथा जिसने अपने मन और बुद्धि को मुझे अर्पित कर दिया हो वह मेरा भक्त मुझे [बहुत] प्रिय है॥७६॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स हि मे प्रियः॥७७॥

जिसके द्वारा लोग पीडित या आतंकित नहीं किये जाते तथा जो लोगों से उद्विग्न (खिन्न) नहीं होता और जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग की प्रवृत्ति से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है॥७७॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः। सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥७८॥

जो व्यक्ति अपेक्षा (लालसा) से रहित, शुद्ध, तन-मन वाला प्रबुद्ध (ज्ञानार्जन में निपुण), तटस्थ (सुख-दुःख, मान-अपमान, शत्रु-मित्र आदि के प्रति सम भाव वाला), व्यथा (पीड़ा) होने पर भी उसकी अनुभूति से रहित, ऐहिक एवं आमुष्कि सुख विषयक कर्मों का परित्याग करने वाला वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है॥७८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्। अनिकेतः स्थिरमतिर्मद्भक्तो मामुपैष्यति॥७९॥

अपनी निन्दा अथवा प्रशंसा में भी समान भाव वाला, मौन रहने वाला, जिस किसी से भी सन्तुष्ट रहने वाला, किसी घर को अपनाने या उसमें आसक्ति की भावना से रहित तथा स्थिर बुद्धि वाला मेरा भक्त मुझे प्राप्त करता है॥७९॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मत्परायणः। मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं परमं पदम्॥८०॥

मेरी भक्ति में लीन (मत्परायण) होकर सदैव सभी कर्मों को करते हुए भी वह भक्त मेरी कृपा से सनातन परम पद को प्राप्त करता है॥८०॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः। निराशीर्निर्ममो भूत्वा मामेकं शरणं व्रजेत्॥८१॥

अपने चित्त से सभी कर्मों को मुझमें अर्पित करके मेरी भक्ति में तल्लीन होकर आशा रहित एवं ममता रहित होकर उसे मेरी शरण में आ जाना चाहिए॥८१॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यपि प्रवृत्तोऽपि नैव तेन निबध्यते॥८२॥

कर्म के फल की आसक्ति को त्यागकर नित्य सन्तुष्ट रहने वाला, आश्रय (आवास विशेष) पर अपनत्व भाव से रहित भक्त कर्म में संलग्न होने पर भी उसके (फल की आसक्ति के) बन्धन में नहीं पड़ता॥८२॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः। शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति तत्पदम्॥८३॥

जो आशा-रहित एवं संयमित चित्तवाला हो एवं सभी संचित संपदाओं का त्याग कर चुका हो वह केवल अपने शरीर [के भरण-पोषण] हेतु कर्म करने पर पाप का भागी नहीं होता॥८३॥

यदृच्छालाभतृप्तस्य द्वन्द्वातीतस्य चैव हि। कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसारनाशनम्॥८४॥

जो कुछ भी अनायास उपलब्ध हो जाय उसी से सन्तुष्ट रहने वाले तथा सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से विचलित न होने वाले व्यक्ति के द्वारा मेरी प्रसन्नता के लिए जो कर्म किया जाता है, वह कर्म उसके सांसारिक बन्धन का नाश करता है॥८४॥

मन्मना मन्नमस्कारो मद्याजी मत्परायणः। मामुपैस्यति योगीशो ज्ञात्वा मां परमेश्वरम्॥८५॥

मुझमें समर्पित मन वाला, मुझे प्रणाम करने वाला, मेरी उपासना करने वाला, मुझमें लीन (तल्लीन) योगीश्वर मुझ परमेश्वर को ज्ञात करके मुझे प्राप्त कर लेता है॥८५॥

मामेवाहुः परं ज्योतिर्बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं मम सायुज्यमाप्नुयुः॥८६॥

मुझे ही परम ज्योति स्वरूप कहा गया है, इस तथ्य को जो एक-दूसरे को बतलाते हैं तथा नित्य मेरी चर्चा करते हैं, वे मेरा सायुज्य प्राप्त करते हैं॥८६॥

एवं नित्याभियुक्तानां मायां चाज्ञानसंभवाम। नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन भास्वता॥८७॥

इस प्रकार जो लोग नित्य योग साधना में तल्लीन रहते हैं, उनके माया-मोह तथा अज्ञान जनित तम (अन्धकार अर्थात् अविवेक) को मैं ज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश से पूर्णतः नष्ट कर देता हूँ॥८७॥

मद्‌बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥८८॥

मुझ में बुद्धि लगाने वाले (अर्थात् नित्य मेरा ध्यान करने वाले) जो मनुष्य नित्य मेरा पूजन करते हैं, उन नित्यमेव योग साधना में निरत जनों का योग-क्षेम (अभीष्ट की प्राप्ति तथा जो विद्यमान है, उसकी सुरक्षा) के दायित्व का निर्वाह मैं स्वयं करता हूँ॥८८॥

ये जना[१] भोगकामार्था यजन्ते ह्यन्यदेवताः। तेषां तदन्तं विज्ञेयं देवतानुगतं फलम्॥८९॥

जो लोग भोग-विलास के साधनों की प्राप्ति हेतु अन्य अनेक देवों का पूजन करते हैं, उनका अन्तिम लक्ष्य वही समझा जाना चाहिए, क्योंकि जिस भावना से जो जैसे देवता का पूजन करता है, उसको उस देवता से वैसा ही फल मिलता है॥८९॥

ये चान्यदेवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः। मद्‌भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि मानवाः॥९०॥

जो अन्य देवताओं के भक्त हैं और श्रद्धापूर्वक उनका पूजन करते हैं, वे जब पूजा के समय मेरी भावना (मेरा ध्यान) करते हैं तो वे मनुष्य भी मोक्ष प्राप्त करते हैं॥९०॥

तस्मादनीश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः। मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम्॥९१॥

अतः अन्य सभी अनीश्वर (ईश्वरीय शक्ति से रहित) देवों का पूजन त्याग कर जो व्यक्ति एक मात्र मुझ ईश्वर (शिव) का आश्रय ग्रहण करता है (मेरी शरण में आता है) वह परम पद को प्राप्त करता है॥९१॥

त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निःशोको निष्परिग्रहः। यजेच्चामरणाल्लिङ्गे विरक्तः परमेश्वरम्॥९२॥

अतः पुत्र आदि के प्रति स्नेह भाव त्याग कर शोक रहित और अपरिग्रही (गृह-सम्पदादि रहित) विरक्त होकर मृत्युपर्यन्त लिङ्ग में परमेश्वर शिव का पूजन करना चाहिए॥९२॥

येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगानशेषतः। एकेन जन्मना तेषां ददामि परमं पदम्॥९३॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण भोग-विलास के साधनों का त्याग कर सदैव लिङ्ग का पूजन करते हैं, मैं उनको केवल एक ही जन्म के अन्त में परम पद प्रदान कर देता हूँ॥९३॥

परात्मनः सदा लिङ्गं केवलं सन्निरञ्जनम्। ज्ञानात्मकं सर्वगतं योगिनां हृदि संस्थितम्॥९४॥

परम आनन्दरूप केवल सद्‌रूप, निरञ्जन, ज्ञानात्मक एवं सर्वत्र व्याप्त लिङ्ग योगियों के हृदय में सदैव विद्यमान रहता है॥९४॥

ये चान्ये नियता भक्ता भावयित्वा विधानतः। यत्र क्वचन तल्लिङ्गमर्चयन्ति महेश्वरम्॥९५॥

(भगवान् शिव के) अन्य जो भी निष्ठावान् भक्त हैं, वे कहीं भी यथाविधि ध्यान लगाकर महेश्वर के उस लिङ्ग की आराधना करते हैं॥९५॥

---

१. ये चान्ये

जले वा वह्निमध्ये वा व्योम्नि सूर्येऽथ वान्यतः। रत्नादौ भावयित्वेशमर्चयल्लिङ्गमैश्वरम्॥९६॥

जल में, अग्नि में, आकाश में, सूर्य में या रत्न आदि में या अन्यत्र भी भावना (अर्थात् ध्यान) करके भगवान् शिव के लिङ्ग का पूजन करना चाहिए॥९६॥

सर्वं लिङ्गमयं ह्येतत्सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्। तस्माल्लिङ्गेऽर्चयेदीशं यत्र क्वचन शाश्वतम्॥९७॥

यह सम्पूर्ण जगत् लिङ्गमय है और सब कुछ लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है। अतः जहाँ कहीं भी उस शाश्वत (सनातन) लिङ्ग में ईश्वर शिव की अर्चना करनी चाहिए॥९७॥

अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम्। काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गन्तु योगिनाम्॥९८॥

[यज्ञादि अनुष्ठान जैसे] धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करने वाले के लिए वह लिङ्ग अग्नि में विद्यमान रहता है तो अन्य धार्मिक मनीषियों के लिए वह लिङ्ग जल में, आकाश में या सूर्य में वह देव विद्यमान है। मूर्खों के लिए वह काष्ठ आदि में स्थित हैं तो योगियों के लिए वह लिङ्ग उनके हृदय में विद्यमान रहता है॥९८॥

यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः। यावज्जीवं जपेद् युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः॥९९॥

यदि (साधक को ब्रह्मविषयक) विशेष ज्ञान का बोध नहीं भी हुआ हो तो तथापि वह विरक्त होकर आजीवन पर ब्रह्म के शब्दविग्रह स्वरूप प्रणव (ॐ) का एकाग्रचित्त होकर जप करे॥९९॥

अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद् द्विजः। एकाकी यतचित्तात्मा स याति परमं पदम्॥१००॥

अथवा वह संयत चित्तवाला [साधना निरत] द्विज अकेला ही मृत्युपर्यन्त (अर्थात् आजीवन) शतरुद्रिय का जप करे। ऐसा करने से वह परम पद को प्राप्त करता है॥१००॥

वसेच्चामरणाद्विप्रो वाराणस्यां समाहितः। सोऽपीश्वरप्रसादेन याति तत्परमं पदम्॥१०१॥

अथवा वह विप्र एकाग्रचित्त होकर आजीवन वाराणसी में निवास करे। तब वह शिव की अनुकम्पा से परम पद को प्राप्त करता है॥१०१॥

तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामेव देहिनाम्। ददाति परमं ज्ञानं येन मुच्येत बन्धनात्॥१०२॥

वहाँ काशी में सभी प्राणियों की मृत्यु के समय जब प्राण निकलने लगते हैं तो उस समय भगवान् शिव उन प्राणियों को परम ज्ञान प्रदान करते हैं, जिससे वे (जन्म-मरण के) बन्धन से मुक्त हो जाते हैं॥१०२॥

वर्णाश्रमविधिं कृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः। तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्ध्वा याति शिवं पदम्॥१०३॥

[काशी में] जो मनुष्य वर्णाश्रम धर्म का विधि-विधानानुसार पूर्णतः पालन करता हुआ मेरे प्रति समर्पित रहता है, वह उसी (एक ही) जन्म में ज्ञान प्राप्त करके शिव-पद को प्राप्त करता है॥१०३॥

येऽपि तत्र वसन्तीह नीचा वै पापयोनयः। सर्वे तरन्ति संसारमीश्वरानुग्रहाद् द्विजाः॥१०४॥

हे द्विजो! वहाँ (काशी में) पापयोनियों के नीच प्राणी जो भी रहते हैं, वे सभी भगवान् शिव के अनुग्रह से संसार (-सागर) को पार कर लेते हैं॥१०४॥

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम्। धर्मं समाश्रयेत्तस्मान्मुक्तये सततं द्विजाः॥१०५॥

किन्तु जो मनुष्य पाप से कलुषित चित्त वाले होते हैं, उनको काशी में बहुत विघ्न-बाधाएँ झेलनी पड़ती है। हे द्विजो! अतः मुक्ति-प्राप्ति हेतु [काशी में] निरन्तर धर्म का आश्रय लेकर [उसका पालन करते] रहना चाहिए॥१०५॥

एतद्रहस्यं वेदानां न देयं यस्य कस्यचित्। धार्मिकायैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचारिणे॥१०६॥

यह वेदों का रहस्यमय ज्ञान है। यह जिस किसी को नहीं देना चाहिए। यह ज्ञान धर्मपरायण ब्रह्मचारी भक्त को ही देना चाहिए॥१०६॥

व्यास उवाच

इत्येतदुक्त्वा भगवानात्मयोगमुत्तमम्। व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम्॥१०७॥
मयैतद्भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम्। दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम्॥१०८॥

व्यास जी बोले- भगवान् शिव ने इस प्रकार आत्मविषयक उत्तम योग का वर्णन करके वहीं पर बैठे हुए अनामय (प्रसन्नचित्त) भगवान् विष्णु से कहा- मैंने ब्रह्मवादी मुनियों के हित के लिए इस ज्ञान को कहा है। आप इस कल्याणकारी ज्ञान को शान्त चित्त वाले शिष्यों को ही प्रदान करें॥१०७-१०८॥

उक्त्वैवमर्थं योगीन्द्रानब्रवीद्भगवानजः। हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः॥१०९॥
भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम्। उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम॥११०॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! तब अजन्मा भगवान् शिव ने उन योगीश्वरों से कहा कि द्विजातियों तथा सभी भक्तों के कल्याण हेतु आप लोग भी मेरे इस ज्ञान का उपदेश सभी शिष्यों और भक्तों को प्रदान करें॥१०९-११०॥

अयं नारायणो योऽसावीश्वरो नात्र संशयः। नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम्॥१११॥

यह जो नारायण हैं, वह ईश्वर (शिव) ही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। जो (हम दोनों में) कोई अन्तर (भेद) नहीं देखते हैं, उनको ही यह परम ज्ञान देना चाहिए॥१११॥

ममैषा परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया। सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंस्थिता॥११२॥

नारायण नामक मेरी ही यह परम मूर्ति सभी प्राणियों के अन्तरात्मा में स्थित शान्त और अक्षर (अविनाशी) कहलाती है॥११२॥

येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः। न ते मुक्तिं प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः॥११३॥

इस लोक में जो भेदभाव देखने वाले लोग हैं और मुझ (शिव) को अन्यथा (नारायण से भिन्न) रूप में देखते हैं, वे मोक्ष नहीं प्राप्त करते और इस लोक में बार-बार जन्म लेते हैं॥११३॥

ये त्वेनं विष्णुमव्यक्तं माञ्च देवं महेश्वरम्। एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥११४॥

जो इन अव्यक्त भगवान् विष्णु तथा मुझ महेश्वर शिव को अनन्य भाव से- एक ही देवरूप में देखते हैं, उनका इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होता (वे मोक्ष प्राप्त करते हैं)॥११४॥

तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्। मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च॥११५॥

अतः अनादि अनन्त अविनाशी परमात्मा विष्णु को भी मेरा ही स्वरूप मान कर देखो और उसी भावना से पूजन करो॥११५॥

येऽन्यथा सम्प्रपश्यन्ति मत्त्वैवं देवतान्तरम्। ते यान्ति नरकान् घोरान्नाहं तेषु व्यवस्थितः॥११६॥

जो मनुष्य हम दोनों देवताओं में अन्तर मानकर हम दोनों को एक-दूसरे से भिन्न रूप में देखते हैं, वे घोर नरकों में जाते हैं। मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ॥११६॥

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्। मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्॥११७॥

मेरा आश्रय लेने वाला (शरणागत) मूर्ख या पण्डित, ब्राह्मण या चाण्डाल जो भी हो उसे मैं मुक्ति प्रदान करता हूँ, किन्तु नारायण (विष्णु) की निन्दा करने वाले को मोक्ष नहीं देता हूँ॥११७॥

तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः। अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय वै॥११८॥

अतः मेरे भक्तों को मुझे प्रसन्न करने के लिए (अनुग्रह प्राप्त करने के लिए) महायोगी पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए तथा उनको ही प्रणाम करना चाहिए॥११८॥

एवमुक्त्वा वासुदेवमालिंग्य स पिनाकधृक्। अन्तर्हितोऽभवत्तेषां सर्वेषामेव पश्यताम्॥११९॥

ऐसा कह कर पिनाक-धनुष को धारण करने वाले शिव ने वासुदेव भगवान् विष्णु का आलिङ्गन किया और तब वह उन सभी योगी-ऋषि-मुनियों के देखते-देखते अन्तर्धान हो गये थे॥११९॥

नारायणोऽपि भगवांस्तापसं वेषमुत्तमम्। धृत्वाऽऽह योगिनः सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपुः॥१२०॥

ज्ञातं भवद्भिरमलं प्रसादात्परमेष्ठिनः। साक्षाद् देव महेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम्॥१२१॥

तब भगवान् नारायण ने अपने परमोत्तम दिव्य स्वरूप को त्याग कर तपस्वी का वेश धारण करके वहाँ सभी योगियों से कहा- आप लोगों ने साक्षात् परमेष्ठी देव महेश्वर (शिव) की कृपा से सांसारिक बन्धनों के विनाशक निर्मल ज्ञान को ज्ञात कर लिया है॥१२०-१२१॥

गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः। प्रवर्तयध्वं शिष्येभ्यो धार्मिकेभ्यो मुनीश्वराः॥१२२॥

हे मुनीश्वरो! अब आप लोग सन्ताप रहित (निश्चिन्त) होकर यहाँ से जावें और अपने धार्मिक शिष्यों को परमेष्ठी भगवान् शिव के द्वारा उपदिष्ट इस विज्ञान का उपदेश देकर इस मार्ग में प्रवृत्त करें॥१२२॥

इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकायाहिताग्नये। विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषतः॥१२३॥

यह ईश्वर विषयक विशेष ज्ञान शान्त-स्वभाव वाले भक्त, धार्मिक तथा विशेषतः अग्निहोत्री (ब्राह्मण) को ही देना चाहिए॥१२३॥

एवमुक्त्वा स विश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः। नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम्॥१२४॥

योगियों में सर्वश्रेष्ठ योग के ज्ञाता महायोगी विश्वात्मा नारायण विष्णु ऐसा कहकर स्वयं अन्तर्धान हो गये थे॥१२४॥

ऋषयस्तेऽपि देवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम्। नारायणञ्च भूतादिं स्वानि स्थानानि लेजिरे॥१२५॥

तब सभी ऋषिगण भी देवाधिदेव महेश्वर शिव को तथा समस्त प्राणियों के आदि स्रोत नारायण विष्णु को प्रणाम करके अपने स्थानों को चले गये थे॥१२५॥

सनत्कुमारो भगवान् संवर्ताय महामुनिः। दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्यव्रताय च॥१२६॥

महामुनि भगवान् सनत्कुमार ने [शिव के द्वारा प्रदत्त] ईश्वरीय ज्ञान का उपदेश संवर्त को दिया था और उन (संवर्त) ने वह ज्ञान सत्यव्रत को दिया था॥१२६॥

सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये। प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः॥१२७॥

योगिराज सनन्दन ने महर्षि पुलह को वह ज्ञान दिया था और उन प्रजापति पुलह ने गौतम को वह ज्ञान प्रदान किया था॥१२७॥

अङ्गिरा वेदविदुषे भारद्वाजाय दत्तवान्। जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च।१२८॥

अङ्गिरा ने वह ज्ञान वेद के विद्वान् भरद्वाज को दिया और कपिल ने जैगीषव्य तथा पञ्चशिख को [वह ज्ञान दिया था]॥१२८॥

पराशरोऽपि सनकात्पिता मे सर्वतत्त्वदृक्। लेभे तत्परमं ज्ञानं तस्माद् वाल्मीकिराप्तवान्॥१२९॥

मेरे सर्वतत्त्व द्रष्टा पिता पराशर ने सनक से वह परम ज्ञान प्राप्त किया था और उनसे यह परम ज्ञान वाल्मीकि ने प्राप्त किया था॥१२९॥

मामुवाच पुरा देवः सतीदेहभवाङ्गजः। वामदेवो महायोगी रुद्रः किल पिनाकधृक॥१३०॥

प्राचीन काल में देवी सती तथा पिनाकधारी भगवान् शिव के अंश से उत्पन्न महायोगी वामदेव ने यह ज्ञान मुझे बतलाया था॥१३०॥

नारायणोऽपि भगवान्देवकीतनयो हरिः। अर्जुनाय स्वयं साक्षाद्दत्तवानिदमुत्तमम्॥१३१॥

देवकीनन्दन नारायण साक्षात् भगवान् कृष्ण ने यह उत्तम ज्ञान स्वयं अर्जुन को दिया था॥१३१॥

यदाहं लब्धवान् रुद्राद्वामदेवादनुत्तमम्।
विशेषाद् गिरिशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत्॥१३२॥

जब मैंने इस उत्तम ज्ञान को वामदेव रुद्र से प्राप्त किया था, तब से लेकर मेरे मन में भगवान् गिरीश-शिव पर विशेष भक्ति उत्पन्न हो गयी थी॥१३२॥

शरण्यं शरणं रुद्रं प्रपन्नोऽहं विशेषतः। भूतेशं गिरिशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम्॥१३३॥

मैं सबके शरण-प्रदाता भूतनाथ, गिरीश, स्थाणु, त्रिशूल धारी देवाधिदेव रुद्र की शरण में विशेष रूप से जाता हूँ॥१३३॥

भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम्। प्रपद्यध्वं सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम्॥१३४॥

आप लोग भी अपनी पत्नी एवं पुत्रों सहित नन्दीवृषभ वाहन वाले भगवान् शम्भु शिव की शरण में जावें॥१३४॥

वर्तध्वं तत्प्रसादेन कर्मयोगेन शङ्करम्। पूजयध्वं महादेवं गोपतिं भूतिभूषणम्॥१३५॥

आप लोग उन भगवान् शङ्कर की कृपा के पात्र बनकर कर्मयोग से उन विभूति-विभूषित एवं नन्दी वृषभवाहन के स्वामी महादेव का पूजन करें॥१३५॥

एवमुक्तेऽथ मुनयः शौनकाद्या महेश्वरम्। प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥१३६॥

ऐसा कहे जाने पर शौनक आदि मुनियों ने सनातन स्थाणु देव शिव को तथा सत्यवती के पुत्र व्यास जी को प्रणाम किया था॥१३६॥

अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्। साक्षाद् देवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम्॥१३७॥

तब प्रसन्न मन वाले सभी मुनियों ने साक्षात् देव हृषीकेश (विष्णु) एवं सम्पूर्ण लोक के महेश्वर शिव के समान प्रभु कृष्ण द्वैपायन व्यास से यह कहा॥१३७॥

भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे। इदानीं जायते भक्तिर्या देवैरपि दुर्लभा॥१३८॥

आपकी कृपा से हमें शरणागत रक्षक वृभषध्वज शिव पर अचल भक्ति प्राप्त हुई है, जो कि देवों को भी दुर्लभ है॥१३८॥

कथयस्व मुनिश्रेष्ठ कर्मयोगमनुत्तमम्। येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः॥१३९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप हमें वह उत्तम कर्मयोग बतलाइए जिसके अनुपालन से मोक्षार्थी जनों के द्वारा भगवान् शंकर की आराधना की जा सके॥१३९॥

त्वत्सन्निधावेव सूतः शृणोतु भगवद्वचः।
तद्वचाखिललोकानां रक्षणं धर्मसंग्रहम्॥१४०॥

आपके सान्निध्य में यह सूत जी भी आपके वचनों को सुनें। अतः आप सम्पूर्ण लोकों के रक्षण हेतु धर्म के संग्रह का प्रवचन करें॥१४०॥

यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्मरूपिणा। पृष्टेन मुनिभिः सर्वं शक्रेणामृतमन्थने॥१४१॥

पूर्वकाल में अमृत-मन्थन के समय मुनियों तथा इन्द्र के द्वारा पूछे जाने पर कूर्मरूप धारी भगवान् विष्णु ने जो कहा था, उसे आप कहें॥१४१॥

श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं सनातनम्। मुनीनां भाषितं कृत्स्नं प्रोवाच सुसमाहितः॥१४२॥

सत्यवती के पुत्र व्यास जी ने मुनियों के कथन को सुनकर एकाग्रचित्त से सनातन कर्मयोग का प्रवचन किया था॥।१४२॥

य इमं पठते नित्यं संवादं कृत्तिवाससः। सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते।१४३॥

जो मनुष्य कृत्तिवासा भगवान् शिव का सनत्कुमार आदि प्रमुख मुनियों के साथ किये गये संवाद को नित्य पढ़ता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१४३॥

श्रावयेद्वा द्विजान् शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान्।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम्॥१४४॥

जो उस संवाद को ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले शुद्ध ब्राह्मणों को सुनाता है अथवा जो उस संवाद के अर्थ का विचार या चिन्तन करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है॥१४४॥

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥१४५॥

जो व्यक्ति भक्तिभाव से युक्त होकर और दृढ़ता से अपने व्रत का पालन करते हुए इस कथा को नित्य सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है॥१४५॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः। श्रोतव्यश्चानुमन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणैः सदा॥१४६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे एकादशोऽध्यायः॥११॥

अतः विद्वज्जनों को सम्पूर्ण प्रयास करते हुए इस कथानक को पढ़ना और सुनना चाहिए तथा विशेषतः सदैव ब्राह्मणों के साथ बैठकर सदैव इसका मनन करना चाहिए॥१४६॥

॥इस प्रकार श्री कूर्मपुराण के उत्तरार्ध के ईश्वरगीतोपनिषद् में ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥११॥

❖❖❖

अथ द्वादशोऽध्यायः

व्यासगीताकथनम्

व्यास उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम्। कर्मयोगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम्॥१॥

व्यास जी बोले- आप सभी ऋषिगण मेरे द्वारा कहे जाने वाले सनातन कर्मयोग को सुनें, जो ब्राह्मणों को आत्यन्तिक (शाश्वत) फल-प्रदान करने वाला है॥१॥

आम्नायसिद्धमखिलं ब्रह्मणातूपदर्शितम्[1]। ऋषीणां शृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः॥२॥

यह वेद में विहित (प्रसिद्ध) ज्ञान ब्रह्मा के द्वारा उपदिष्ट है। पूर्वकाल में ऋषियों को सुनाते हुए प्रजापति (स्वायंभुव) मनु ने इसका उपदेश दिया था॥२॥

सर्वपापहरं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम्। समाहितधियो यूयं शृणुध्वं गदतो मम॥३॥

ऋषियों के समूह के द्वारा अपनाये गये इस सर्वपापनाशक पवित्र ज्ञान को मैं कह रहा हूँ। आप इसे सावधान होकर सुनें॥३॥

कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमाः। गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः॥४॥
दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः। भिक्षाचारी ब्रह्मचारी स्वाश्रमे निवसन् सुखम्॥५॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! गर्भ से आठवें या जन्म से आठवें वर्ष में अपने गृह्यसूक्त में विहित विधान के अनुसार उपनयन संस्कार होने पर दण्ड, मेखला (करधनी), सूत्र (यज्ञोपवीत) तथा कृष्ण वर्ण का मृगचर्म धारण करके मुनि के समान आचरण वाला ब्रह्मचारी भिक्षाटन करते हुए ब्रह्मचर्याश्रम में सुख पूर्वक रहे॥४-५॥

कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा। ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा॥६॥

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत के निर्माण हेतु ही कपास को बनाया था। ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत तीन बार लपेटे हुए सूत्र वाला अथवा कुश से निर्मित या वस्त्र से बनाया होना चाहिए॥६॥

१. ब्राह्मणानां प्रदर्शितम्

सदोपवीती चैव स्यात्सदा बद्धशिखो द्विजः। अन्यथा यत्कृतं कर्म तद्भवत्ययथाकृतम्॥७॥

ब्राह्मण को सदैव यज्ञोपवीत धारण किये रहना चाहिए तथा सदैव शिखा को बाँधे रखना चाहिए। अन्यथा वह जो भी धार्मिक कृत्य करता है, वह सब न किये हुए के समान (निष्फल) हो जाता है॥७॥

वसेच्च[1] धवलं वासः कार्पासं वा कषायकम्। तदेव परिधानीयं शुद्धमच्छिद्रमुत्तमम्॥८॥

ब्रह्मचारी कपास या रेशम से निर्मित श्वेत वस्त्र पहने। वही वस्त्र पहनना चाहिए जो शुद्ध हो, छिद्र रहित हो तथा देखने में उत्तम हो॥८॥

उत्तरन्तु समाख्यातं वासः कृष्णाजिनं शुभम्। अभावे दिव्यमजिनं रौरवं वा विधीयते॥९॥

कृष्णवर्ण के मृगचर्भ का उत्तरीय (ऊपर के अङ्ग में धारण करने का) वस्त्र शुभ कहा गया है। उसके अभाव में दिव्य अजिन या रुरु नामक मृग का चर्म उत्तरीय के लिए विहित है॥९॥

उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सव्ये बाहौ समर्पितम्। उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जने॥१०॥

दाहिना हाथ उठाकर (उससे नीचे) और बाँये हाथ (बाँये कन्धे) के ऊपर से पहना गया यज्ञसूत्र उपवीत कहलाता है तथा केवल कण्ठ से (माला के समान) लटके रहने पर वह यज्ञसूत्र 'निवीत' कहलाता है॥१०॥

सव्यं बाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः। प्राचीनावीतमित्युक्तं पैत्रे कर्मणि योजयेत्॥११॥

हे द्विजो! जब दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण कर बाँया हाथ उठाकर (बाँये कन्धे के नीचे की ओर करके) यज्ञोपवीत पहना जाता है तो उसे [अपसव्य या] प्राचीनावीत कहा जाता है। उसका प्रयोग पितृकर्म में करना चाहिए॥११॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च। स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ॥१२॥
उपासने गुरूणां च सन्ध्ययोः साधुसङ्गमे। उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः॥१३॥

यज्ञाशाला में, गोशाला में, होम, जप, स्वाध्याय एवं भोजन के समय तथा ब्राह्मणों के सानिन्ध्य में, गुरुजनों की सेवा के समय, दोनों सन्ध्याओं की उपासना के समय, साधुजनों (सज्जनों) के सत्संग में सदैव उपवीती होना चाहिए। यही सनातन धर्म का विधान है॥१२-१३॥

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला। कुशेन निर्मिता विप्रा ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः॥१४॥

ब्राह्मण को मूंज की बनी हुई और तीन बार लपेटी (गुंथी) हुई, सम (बराबर) और चिकनी मेखला पहननी चाहिए। मूँज के अभाव में कुश से निर्मित एक या तीन गाँठों वाली मेखला पहननी चाहिए॥१४॥

धारयेद् बैल्वपालाशौ दण्डौ केशान्तकौ द्विजः। यज्ञार्हवृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेव च॥१५॥

ब्राह्मण वटु को बिल्व वृक्ष का अथवा पलाश जैसे यज्ञीय वृक्ष का बना हुआ सुन्दर और व्रण (खत) रहित (अर्थात् खुरदुरा न हो) ऐसा दण्ड धारण करना चाहिए, जो कि उसके शिर के बालों तक की ऊँचाई वाला हो[2]॥१५॥

---

१. वसेदविकृतं

२. केशसम्मतो ब्राह्मणस्य॥ वसिष्ठ धर्मसूत्र ११/५५ केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः। मनु २/४६

सायं प्रातर्द्विजः संध्यामुपासीत समाहितः। कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्त्यक्त्वैनां पतितो भवेत्॥ १६॥

द्विज बालक को सायंकाल तथा प्रातःकाल एकाग्र चित्त होकर सन्ध्यावन्दन करना चाहिए। काम, लोभ, भय या मोह के वशीभूत होकर सन्ध्यावन्दन का त्याग करने पर वह पतित हो जाता है॥ १६॥

अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायम्प्रातर्यथाविधि। स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा॥ १७॥

वह सन्ध्या वन्दन के अनन्तर सायंकाल एवं प्रातःकाल विधिपूर्वक अग्नि में हवन भी करे तथा प्रातःकाल स्नान करके देवों, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण भी करे॥ १७॥

देवताभ्यर्चनं कुर्यात्पुष्पैः पत्रेण चाम्बुना। अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मतः॥ १८॥

पत्र-पुष्प एवं जल से देवों की पूजा करे। वह धर्मानुसार नित्यमेव वृद्धों, गुरुजनों को अभिवादन अवश्य करे॥ १८॥

असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम्। आयुरारोग्य-सिद्ध्यर्थं द्रव्यादिपरिवर्जितम्॥ १९॥

उन वृद्धों से द्रव्य आदि की प्राप्ति की भावना से रहित होकर केवल उनसे दीर्घायु तथा आरोग्य लाभ हेतु आशीर्वाद प्राप्ति के लिए यह मैं अमुक आपको प्रणाम करता हूँ ऐसा विनय पूर्वक कहे॥ १९॥

आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने। अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरप्लुतः॥ २०॥

अभिवादन किये जाने पर गुरु शिष्यों को 'हे सौम्य! तुम आयुष्मान् अर्थात् दीर्घायु बनो' ऐसा कहे॥ अभिवादन करने वाले के नाम के अन्तिम स्वर या अन्तिम व्यञ्जन के पूर्ववर्ती स्वर को प्लुत (अर्थात् दीर्घ) स्वर के रूप में बोलना चाहिए॥ २०॥

न कुर्याद्योऽभिवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम्। नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः॥ २१॥

अभिवादन किये जाने पर यदि कोई द्विज उसके उत्तर में अभिवादन नहीं करता तो विद्वान् पुरुष उसका कभी अभिवादन न करे, क्योंकि वह शूद्र के समान होता है॥ २१॥

व्यत्यस्तपाणिना कार्यं पादसंग्रहणं गुरोः। सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः[१]॥ २२॥

गुरु का चरण-स्पर्श व्यत्यस्तपाणि होकर (दायाँ हाथ बाँयी ओर तथा बायाँ हाथ दाँयी ओर करके) करे। बाँये हाथ से गुरु का बाँया पैर तथा दाँहिने हाथ से दाहिना पैर का स्पर्श करना चाहिए॥ २२॥

लौकिकं वैदिकं चापि तथाध्यात्मिकमेव वा। आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्॥ २३॥

जिस गुरु से लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता हो सर्वप्रथम उसी का अभिवादन करे॥ २३॥

नोदकं धारयेद् भैक्ष्यं पुष्पाणि समिधं तथा। एवं विधानि चान्यानि न दैवाद्येषु कर्मसु॥ २४॥

देव पूजा आदि (अर्थात् पितृकर्म आदि) कर्मों में प्रयोग हेतु जल, पुष्प, समिधा एवं इसी प्रकार के अन्य अपेक्षित वस्तु को भिक्षा रूप में ग्रहण करके अपने प्रयोग में न लावे॥ २४॥

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्। वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रमारोग्यमेव च॥ २५॥

---

१. मनु २/७२

ब्राह्मण से मिलने पर कुशल, क्षत्रिय से 'अनामय' वैश्य से 'क्षेम' (प्रसन्नता) तथा शूद्र से आरोग्य के विषय में पूछे॥२५॥

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः। मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ।
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च सर्वे ते गुरवः स्मृताः॥२६॥

उपाध्याय (शिक्षक), पिता, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, शशुर, मातामह (नाना), पितामह, अपने से श्रेष्ठ वर्ण का व्यक्ति तथा पितृव्य (चाचा) सहित ये सभी जन गुरु कहलाते हैं॥२६॥

माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः। श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा भ्रातृजाया गुरुस्त्रियः॥२७॥
इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतस्तथा। अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः॥२८॥

माता, मातामही (नानी), गर्भवती नारी, पिता की बहिन (बुआ), माता की बहिन (मौसी), सास, पितामही (दादी), ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी तथा गुरु की पत्नी को माता तथा पिता के पक्ष से गुरु वर्ग (गुरु की श्रेणी) में गिनाया गया है। इनका मन, वचन तथा शारीरिक कर्म से अनुसरण (उनके वचन पालन) करना चाहिए॥२७-२८॥

गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः। नैतेरुपविशेत्सार्धं विवदेन्नार्थकारणात्॥२९॥

गुरु को देखकर आसन से उठ कर हाथ जोड़ कर अभिवादन (चरण-स्पर्श) करना चाहिए। गुरुजनों के साथ एक आसन में नहीं बैठना चाहिए। किसी प्रयोजनवश उनके साथ विवाद भी नहीं करना चाहिए॥२९॥

जीवितार्थमपि द्वेषाद्गुरुभिर्नैव भाषणम्। उदितोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः॥३०॥

अपने जीवन हेतु भी गुरु से द्वेषपूर्वक कुछ नहीं बोलना चाहिए। [गुरु की अपेक्षा] शिष्य में अन्य गुण अधिक होने पर भी यदि वह गुरु के प्रति द्वेष करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है॥३०॥

गुरूणामपि सर्वेषां पूज्याः पञ्च विशेषतः। तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता॥३१॥

जितने भी गुरु बतलाये गये हैं, उन सभी में पाँच गुरु विशेषतः पूजनीय हैं। उन पाँचों में आरम्भ के तीन अधिक श्रेष्ठ हैं तथा उन तीनों में माता विशेषतः पूजनीय है॥३१॥

यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते। ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः॥३२॥

जो जनक होता है तथा जो माता शिशु को जन्म देती है तथा जो विद्या का उपदेश देता है एवं ज्येष्ठ भ्राता तथा स्त्री के लिए उसका पति- ये पाँच गुरु कहे गये हैं॥३२॥

आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः। पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता॥३३॥

अपने कल्याण की कामना करने वाले व्यक्ति के द्वारा समग्र प्रयास से या फिर अपना प्राण त्याग कर भी ये पाँचों विशेषतः पूजनीय हैं॥३३॥

यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ। तावत्सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः॥३४॥

जब तक माता और पिता दोनों विकार (अर्थात् महापाप आदि किसी गंम्भीर अपराध) से ग्रस्त न हों तब तक पुत्र अपने अन्य धर्म-कृत्यों को त्याग कर उन दोनों की सेवा में तत्पर रहे॥३४॥

पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि। स पुत्रः सकलं धर्ममाप्नुयात्तेन कर्मणा॥ ३५॥

यदि माता-पिता अपने पुत्र के गुणों से प्रसन्न रहते हैं तो वह पुत्र अपने द्वारा किये गये [माता-पिता की सेवा के] कर्म से सम्पूर्ण धर्म [जनित पुण्य-फल] प्राप्त कर लेता है॥ ३५॥

नास्ति मातृसमो देवो नास्ति तातसमो गुरुः। तयोः प्रत्युपकारो हि न कथञ्चन विद्यते॥ ३६॥

माता के समान कोई देवी-देवता नहीं होता तथा पिता के समान कोई गुरु नहीं होता। उनके उपकार का [पूर्ण] प्रत्युपकार किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है॥ ३६॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा। न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥ ३७॥
वर्जयित्वा मुक्तिफलं नित्यं नैमित्तिकं तथा। धर्मसारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः॥ ३८॥

पुत्र को चाहिए कि वह मन, वचन तथा कर्म से वही करे जो उन दोनों को प्रिय हो। अपने मुक्ति-प्रद एवं नित्य-नैमित्तिक कृत्यों के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म या धार्मिक कृत्य उनकी आज्ञा लिए विना न करे। पुत्र के लिए यही धर्म का सार बतलाया गया है। यह धर्म का सार मृत्यु के पश्चात् भी अनन्त पुण्य फल-प्रद बतलाया गया है॥ ३७-३८॥

सम्यगाराध्य वक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया। शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य वा पूज्यते दिवि॥ ३९॥

विद्या-प्रदाता गुरु की अच्छी तरह सेवा करके उनके आदेशानुसार ब्रह्मचर्याश्रम से विदा होने पर ही शिष्य विद्या के फल का भोग करता है और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग में पूजित होता है॥ ३९॥

यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खोऽवमन्यते। तेन दोषेण स प्रेत्य निरयं घोरमृच्छति[1]॥ ४०॥

जो मूर्ख अपने पिता के समान ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करता है, वह उस दोष (पाप) के कारण मृत्यु के पश्चात् घोर नरक में जाता है॥ ४०॥

ये नरा भर्तृपिण्डार्थं स्वान्प्राणान् सन्त्यजन्ति हि। तेषामथाक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान्मनुः॥ ४१॥

जो मनुष्य अपने स्वामी से प्राप्त जीविका के प्रत्युपकार रूप में आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राण दे देते हैं, उनको अक्षय लोक की प्राप्ति होती है, ऐसा भगवान् मनु ने कहा है॥ ४१॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून्। असावहमिति ब्रूयुः प्रत्युत्थाय यवीयसः॥ ४२॥

अपने से आयु में छोटे मामा, चाचा, शशुर, ऋत्विज् (पुरोहित) तथा गुरु को [अभिवादन के समय] खड़ा होकर मैं अमुक हूँ- ऐसा कहे॥ ४२॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत्। भो भवत्पूर्वकत्वेन अभिभाषेत धर्मवित्॥ ४३॥

यज्ञ आदि कर्म हेतु दीक्षित पुरुष अपने से छोटी उम्र का भी हो तो भी उसका नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिए। धर्म को जानने वाला व्यक्ति उसे भो! भवान् (आप) कह कर पुकारे॥ ४३॥

अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा वन्द्य एव च। ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा॥ ४४॥

---

१. श्लोक ४० के बाद वैङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण में तथा उसके आधार पर प्रकाशित संस्करणों में (४१-४२ श्लोक में) प्रदत्त पाठ असंगत है। अतः नीचे टिप्पणी में दिया गया है-

पुंसां वर्त्मनि तिष्ठेत पूज्यो भर्ता च सर्वदा। अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्धि गौरवम्॥

ऐश्वर्य लाभ की कामना करने वाले क्षत्रिय आदि वर्णों के लोगों के लिए ब्राह्मण सदैव वन्दनीय, पूजनीय तथा शिर झुकाकर नमस्करणीय है॥४४॥

नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथञ्चन। ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः॥४५॥

ब्राह्मण कथञ्चिदपि क्षत्रिय आदि का अभिवादन न करे, भले ही वे बहुत ज्ञानी सत्कर्म-परायण, सद्गुणी तथा बहुत शास्त्रों के अध्येता क्यों न हों॥४५॥

ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः। सवर्णेषु सवर्णानां काम्यमेवाभिवादनम्॥४६॥

अभिवादन करने वाले सभी वर्णों के लोगों को ब्राह्मण 'स्वस्ति' (कल्याण) हो ऐसा कहे। यह वेद का वचन है। समान वर्ण के लोग अपने वर्ण के लोगों से परस्पर स्वेच्छानुसार अभिवादन करें॥४६॥

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥४७॥

द्विजातियों (ब्राह्मणों) का गुरु अग्नि है। सभी वर्णों के मनुष्यों का गुरु ब्राह्मण है, स्त्रियों का गुरु केवल उनका पति होता है तथा अतिथि सभी वर्णों का गुरु होता है॥४७॥

विद्या कर्म वयो बन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम्। मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात्॥४८॥

विद्या, कर्म, आयु, बन्धुत्व (या जाति) तथा पाँचवाँ धन ये पाँच सम्मान का पात्र बनाने वाले साधन कहे गये हैं। इन पाँचों में परवर्ती की अपेक्षा पूर्ववर्ती अधिक श्रेष्ठ होता है॥४८॥

एतानि त्रिषु वर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च। यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥४९॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य संज्ञक तीनों वर्णों के मनुष्यों में से जिनके पास भी ये पूर्वोक्त गुण अधिक हों या अधिक प्रबल हों वही सर्वाधिक सम्मान का पात्र होता है। दशवीं अवस्था अर्थात् नब्बे वर्ष से अधिक अवस्था का शूद्र भी सम्मान का पात्र होता है॥४९॥

पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे। वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च॥५०॥

ब्राह्मण, स्त्री, राजा (तथा राजपुरुष), नेत्रहीन (अन्धा) व्यक्ति, वृद्ध, भार से झुके हुए व्यक्ति एवं रोगी तथा दुर्बल व्यक्ति के चलने के लिए मार्ग दे देना चाहिए॥५०॥

भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्। निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया॥५१॥

शुद्ध आचरण वाला रहते हुए वटु (विद्यार्थी) शिष्ट (शुद्धआचरण वाले) सद्गृहस्थों के घर से प्रतिदिन भिक्षा लाकर गुरु को समर्पित करे तथा उन गुरु की अनुमति से मौन रहकर स्वयं भी भोजन करे॥५१॥

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः। भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्॥५२॥

ब्राह्मण वटु भिक्षा माँगते समय 'भवत्' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम करे। यथा- 'भवति भिक्षां देहि मातः'। क्षत्रिय बालक भिक्षा माँगते समय 'भवत्' का प्रयोग मध्य में करे तथा वैश्य 'भवत्' का प्रयोग अन्त में करे, यथा क्षत्रिय बालक 'भिक्षां भवति देहि' तथा वैश्य बालक 'भिक्षां देहि भवति' कहे॥५२॥

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्। भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत्॥५३॥

उपनयन संस्कार के अनन्तर सर्वप्रथम भिक्षा अपनी माता या बहिन या मौसी से अथवा जो उसका अपमान न करे उससे ही माँगनी चाहिए॥५३॥

स्वजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा। भैक्ष्यस्य चरणं युक्तं पतितादिषु वर्जितम्॥५४॥

वटुक को अपनी जाति के घरों से अथवा [वहाँ से संभव न हो तो] अन्य सभी वर्णों के घरों से भिक्षाटन करना चाहिए, किन्तु पतित आदि के घरों से भिक्षा लेना वर्जित है॥५४॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रपन्नानां स्वकर्मसु। ब्रह्मचारीहरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्॥५५॥

ब्रह्मचारी प्रयत (शुद्ध आचरण वाला) होकर प्रतिदिन उन घरों से भिक्षा माँगे जहाँ वेद-पारायण तथा यज्ञानुष्ठानों का प्रचलन हो और जिन घरों के गृहस्थ अपने विहित कर्मों में संलग्न रहते हों॥५५॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु। अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत्॥५६॥

ब्रह्मचारी अपने गुरु के कुल में तथा अपने सजातीय कुल एवं अपने बन्धुओं के घर से भी भिक्षा न माँगे। यदि अन्य घरों से भिक्षा न मिले तो पूर्वोक्त क्रम में कथित प्रथम को छोड़ कर दूसरे घर से भिक्षा माँगे॥५६॥

सर्वं वा विचरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे। नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत्[१]॥५७॥

पूर्वोक्त घरों से भिक्षा प्राप्त न होने पर सम्पूर्ण गाँव में भिक्षाटन हेतु जावे, किन्तु अपनी वाणी में प्रयत्न पूर्वक नियन्त्रण रखे और अभिशस्त (पापी) जनों के घरों में भिक्षाटन न करे॥५७॥

समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं पचेदन्नममायया। भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्यमानसः॥५८॥

भिक्षा में प्राप्त अन्न को एकत्रित कर निष्कपट, निश्छल और शुद्ध भाव से पकाकर एकाग्रचित्त होकर और मौन रहकर भोजन करे॥५८॥

भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यमेकान्नादी भवेद् व्रती। भैक्ष्येण वृत्तिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता॥५९॥

ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए नित्य भिक्षाटन करे तथा वह एक ही अन्न को ग्रहण करे। भिक्षाटन से जीविका हेतु निर्भरता को उपवास के समान मनाया गया है॥५९॥

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च ततो भुञ्जीत वाग्यतः॥६०॥

भोजन को नित्य [देवता के समान] पूजना अर्थात् आदर देना चाहिए। खाते समय उसकी निन्दा न करे। भोजन को देखकर हर्ष और प्रसन्नता व्यक्त करे और तब मौन धारण कर अन्न ग्रहण करे॥६०॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम्। अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत् परिवर्जयेत्॥६१॥

अधिक भोजन करने से आरोग्य, आयुष्य, स्वर्ग और पुण्य का नाश होता है। अति भोजन करने वाले की लोक में निन्दा होती है। अतः अधिक भोजन नहीं करना चाहिए॥६१॥

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा। नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः॥६२॥

पूर्व की ओर मुख करके अथवा सूर्य की ओर मुख करके भोजन करे। उत्तर की ओर मुख करके सदैव भोजन न करे। यह सनातन धर्म का विधान है॥६२॥

१. दिशस्त्वनवलोकयन्

प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् । शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत्॥ ६ ३॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे द्वादशोऽध्यायः॥ १ २॥

हाथ-पैर धोकर शुद्ध स्थान में बैठकर भोजन के आरम्भ में दो बार आमचन करे तथा भोजन करके अन्त में दो बार पुनः आचमन करे॥ ६ ३॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीतोपनिषद् में बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १ २॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणम्

व्यास उवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे। ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च॥ १॥
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे। ष्ठीवित्वाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा॥ २॥
चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तमः। सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः॥ ३॥

भोजन करके, कोई पेय पीकर, शय्या में से उठकर, स्नान करके, रथ्या (जिस मार्ग में गाड़ियाँ चलती हैं, उसमें) से चलकर, रोम (बाल) रहित ओष्ठों का स्पर्श करके, वस्त्र पहन कर, वीर्य-त्याग एवं मल-मूत्र त्याग कर, अनुचित बोलकर, थूकने के बाद, अध्ययन आरम्भ करने के पहले, खाँसी आने पर तथा श्वास आने पर, चौराहों या श्मशान भूमि को पार करने के बाद तथा दोनों सन्ध्याओं के समय पूर्वतः आचमन किये रहने पर भी पुनः आचमन करे॥ १-३॥

चण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे। उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यञ्चापि तथाविधम्॥ ४॥
आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च। भोजने सन्ध्ययोः स्नात्वा त्यागे मूत्रपुरीषयोः॥ ५॥
आचान्तोऽप्याचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यतः अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च॥ ६॥

चण्डाल और या म्लेच्छ के साथ वार्तालाप करने पर, स्त्री, शूद्र एवं जूठे मुख वाले से वार्तालाप करने पर, जूठे मुख वाले व्यक्ति का तथा जूठे भोजन का स्पर्श होने पर एवं आँसू बहने तथा शरीर से रक्त बहने पर भी आचमन करे। भोजन के समय तथा दोनों सन्ध्याओं के समय, स्नान करने के बाद एवं मल-मूत्र त्याग करने पर पहले आचमन किये होने पर भी पुनः आचमन करे। निद्रा त्यागने के बाद अथवा अन्य समय यद्यपि पहले आमचन कर चुका हो तथापि एक बार आमचन करे। [अथवा] वह अग्नि या गाय या अन्य पवित्र [व्यक्ति या वस्तु] का स्पर्श करे॥ ४-६॥

स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीवीं वा परिधाय च। उपस्पृशेज्जलं वार्द्रं तृणं वा भूमिमेव च॥ ७॥

स्त्रियों का स्पर्श होने पर एवं अपने गुप्ताङ्ग का स्पर्श होने पर तथा नीवी (कटिवन्ध) को पहनने के बाद जल का स्पर्श करे अथवा गीले या [हरे] तिनके का या भूमि का स्पर्श करे॥७॥

केशानां चात्मनः स्पर्शं वाससोऽक्षालितस्य च। अनुष्णाभिरफेनाभिर्विशुद्धादूभिश्च वाग्यतः॥८॥

अपने केशों का तथा विना धुले वस्त्रों का स्पर्श करने पर मौन रहकर फेन रहित शुद्ध शीतल जल से [आचमन करे]॥८॥

शौचेप्सुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः। शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा॥९॥
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्। सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाचमेद्बुधः॥१०॥

शुद्धि की कामना वाला सदा पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुखकर के आचमन करे। शिर को तथा कण्ठ को ढकने पर एवं कच्छ (धोती की कांछ) के खुलने या शिखा खुलने पर एवं बिना पैर धोये आचमन करने पर भी मनुष्य अशुचि ही रहता है। जूता पहन कर, जल में स्थित होकर या शिर में पगड़ी पहनकर विद्वान् पुरुष आचमन न करे॥९-१०॥

न चैव वर्षधाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा बुधः। नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः।
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुकरोऽपि वा॥११॥

विद्वान् व्यक्ति वर्षा जल की धारा से, जूठे हाथ से या एक हाथ से गिराये गये जल से तथा यज्ञोपवीत पहने बिना एवं पादुका (खड़ाऊँ, चप्पल या जूता) के ऊपर बैठकर तथा हाथों को घुटनों से बाहर करके आचमन न करे॥११॥

नाशुचेश्च करामुक्तैर्न चोच्छिष्टैस्तथैव च। न चैवांगुलिभिः शब्दं प्रकुर्वन्नन्यमानसः॥१२॥

अशुद्ध व्यक्ति के हाथ से दिये गये तथा जूठे जल से भी आचमन न करे। अङ्गुलियों से शब्द करते हुए तथा अन्यमनस्क होकर भी आमचन न करे॥१२॥

न वर्णरसदुष्टाभिर्न चैवाप्रचुरोदकैः। न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिष्कक्ष एव वा॥१३॥

जिस जल का वर्ण स्वच्छ न हो जो दूषित हो तथा जिसका रस (स्वाद) ठीक न हो उससे तथा बहुत कम जल से भी आचमन न करे। जिस जल में हाथ डाल कर घुमाया गया हो उससे भी आमचन न करे तथा जब कच्छ धोती से बाहर आ जाय तब भी आमचन नहीं करना चाहिए अर्थात् कच्छ को ठीक से बाँध कर ही आमचन करना चाहिए॥१३॥

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठ्याभिः क्षत्रियः शुचिः। प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽम्भसः॥१४॥

आमचन का जल जब हृदय तक पहुँच जाय तभी ब्राह्मण पवित्र होता है। क्षत्रिय आमचन का जल कण्ठ तक पहुँचने पर शुद्ध होता है। वैश्य मुख के अन्दर जल के पहुँचने पर तथा स्त्री एवं शूद्र होंठ तक जल का स्पर्श होने पर शुद्ध हो जाते हैं॥१४॥

अङ्गुष्ठमूलरेखायां तीर्थं ब्राह्ममिहोच्यते। प्रदेशिन्याश्च यन्मूलं पितृतीर्थमनुत्तमम्॥१५॥

अँगूठे के मूल में स्थित रेखा को ब्राह्मतीर्थ कहा जाता है, तर्जनी [तथा अंगुष्ठ] के मूल में उतम पितृतीर्थ होता है॥१५॥

कनिष्ठामूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्रचक्षते। अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं तदेवार्षं प्रकीर्तितम्॥१६॥

कनिष्ठा के मूल को प्रजापत्य तीर्थ कहा जाता है। सभी अंगुलियों के सम्मिलित अग्रभाग में देवतीर्थ एवं उसी को आर्ष तीर्थ भी कहा जाता है॥१६॥

मूले वा दैवमादिष्टमाग्नेयं मध्यतः स्मृतम्। तदेव सौमिकं तीर्थमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति॥१७॥

अथवा अंगुलियों के मूल भाग को ही देवतीर्थ तथा मध्य भाग को आग्नेय तीर्थ माना गया है। उसी को सौमिक [?] तीर्थ भी कहा गया है। इसे जान कर विद्वान् व्यक्ति को मोह या संशय नहीं होता॥१७॥

ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्। कायेन वाथ दैवेन चाथाचान्ते शुचिर्भवेत्॥१८॥

ब्राह्मण सदैव ब्राह्मतीर्थ से ही आचमन करे। वह प्राजापत्य तीर्थ से या दैवतीर्थ से आचमन करने पर भी शुद्ध हो जाता है॥१८॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः। संवृताङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः॥१९॥

ब्राह्मण शुद्ध होकर पहले तीन बार जल से आमचन करे तब अंगूठे को मोड़ कर उसके मूल भाग से मुख को स्पर्श करे और तब अँगूठे और अनामिका से दोनों नेत्रों का स्पर्श करे॥१९॥

तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम्। कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत्॥२०॥

तर्जनी और अँगूठे को मिलाकर दोनों नासापुटों (नाक के दोनों ओर) का स्पर्श करे। कनिष्ठा तथा अँगूठे को मिलाकर उन दोनों से दोनों कानों का स्पर्श करे॥२०॥

सर्वाङ्गुलीभिर्बाहू च हृदयन्तु तलेन वा। नाभिः शिरश्च सर्वाभिरङ्गुष्ठेनाथवा द्वयम्॥२१॥

सभी अंगुलियों से दोनों भुजाओं का तथा हथेली से हृदय का स्पर्श करे। सभी अँगुलियों से अथवा अँगूठे से नाभि का तथा शिर का स्पर्श करे॥२१॥

त्रिः प्राश्नीयात्यदम्भस्तु सुप्रीतास्तेन देवताः। ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम॥२२॥

तीन बार आमचन में जो जल पिया जाता है, उससे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव संज्ञक तीनों देवता प्रसन्न होते हैं, ऐसा हमने सुना है॥२२॥

गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात्। संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ॥२३॥

मार्जन करने से गङ्गा तथा यमुना दोनों नदियाँ प्रसन्न होती हैं तथा दोनों नेत्रों का स्पर्श करने से चन्द्रमा और सूर्य प्रसन्न होते हैं॥२३॥

नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये। श्रोत्रयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेते चानिलानलौ॥२४॥

दोनों नासापुटों का स्पर्श करने से नासत्य और दस्र नामक दोनों अश्विनी कुमार प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार दोनों कानों का स्पर्श करने से अनिल (वायु) और अनल (अग्नि) प्रसन्न होते हैं॥२४॥

संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः। मूर्ध्नि संस्पर्शनादेव प्रीतस्तु पुरुषो भवेत्॥२५॥

हृदय का स्पर्श करने पर सभी देवता प्रसन्न होते हैं तथा शिर का स्पर्श करने पर परम पुरुष (भगवान् विष्णु) प्रसन्न होते हैं॥२५॥

नोच्छिष्टं कुर्वते नित्यं विप्रुषोऽङ्गं नयन्ति याः। दन्तान्तर्दन्तलग्नेषु जिह्वोष्ठैरशुचिर्भवेत्॥२६॥

आचमन करते समय गिरने वाले जलकणों के स्पर्श से शरीर अशुद्ध नहीं होता। दाँतों के अन्दर चिपकी हुई खाद्य-सामग्री [दाँतों के समान ही होती है किन्तु] जिह्वा के स्पर्श से वह अशुचि (अशुद्ध) हो जाती है॥२६॥

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्। भूमिकास्ते समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्॥२७॥

दूसरों को आचमन कराते समय जो जल की बूँदें पैरों में गिरती हैं, उनको भूमि पर गिरे हुए जल के समान मानना चाहिए। उनसे कोई व्यक्ति अपवित्र नहीं होता॥२७॥

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे। फले मूलेक्षुदण्डे च न दोषं प्राह वै मनुः॥२८॥

मधुपर्क, सोम (रस), ताम्बूल, फल, कन्दमूल तथा ईख (गन्ने) को किसी से भी ग्रहण करने में कोई दोष नहीं होता-ऐसा मनु ने कहा है॥२८॥

प्रचुरान्नोदपानेषु यद्युच्छिष्टो भवेद् द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षिपेत्ततः॥२९॥

अधिक मात्रा में अन्न और पेय पदार्थ लेकर चलने वाले द्विज का मुख यदि जूठा हो जाय तो ब्राह्मण उस सबको भूमि में रख कर आचमन करके उस पर प्रोक्षण कर लेना चाहिए॥२९॥

तैजसं वा समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद् द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याह्रियते तु तत्॥३०॥

यदि घृत आदि तैजस पदार्थ हाथ में लिया हुआ ब्राह्मण उच्छिष्ट (जूठा या अशुद्ध) हो जाय तो वह उसे भूमि में रखकर आचमन करके तब अपने साथ ले जाय?॥३०॥

यद्यमत्रं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः। अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात्।
वस्त्रादिषु विकल्पः तत्संस्पृष्ट्वाऽऽचमेद्धि सः॥३१॥

अपने साथ किसी 'अमत्र' (अर्थात् पात्र) को ले जाने वाला व्यक्ति यदि उच्छिष्ट (जूठन से अशुद्ध) हो जाय तो वह उस पात्र को भूमि में रखे बिना आचमन करने से ही शुद्ध हो जाता है। परन्तु वस्त्र आदि के विषय में विकल्प है [उच्छिष्ट होने पर वस्त्र का स्पर्श होने पर आचमन] एवं वस्त्र का प्रोक्षण भी वह कर सकता है॥३१॥

अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि। कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति॥३२॥

वन में, जल रहित स्थान में तथा चोरों या व्याघ्र आदि हिसंक पशुओं से व्याप्त मार्ग में यदि कोई व्यक्ति मल-मूत्र त्याग करता है तो [जल के अभाव में आचमन आदि न करने पर भी] उसके हाथ में रखी वस्तु अशुद्ध नहीं होती॥३२॥

निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः। अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः॥३३॥

मल-मूत्र त्याग करते समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान में डाल कर दिन में उत्तर की ओर मुख करके तथा रात में दक्षिण की ओर मुख करके बैठना चाहिए॥३३॥

अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्टैस्तृणेन वा। प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ ३४॥

भूमि को काष्ठ, पत्तों, मिट्टी के ढेलों अथवा घास से ढककर तथा शिर को वस्त्र से लपेट कर या ढक कर मल-मूत्र का त्याग करे॥ ३४॥

छायाकूपनदीगोष्ठचैत्यान्तः पथि भस्मसु। अग्नौ वेश्म श्मशाने च विण्मूत्रे न समाचरेत्॥ ३५॥

किसी वृक्ष आदि की छाया में, कुआँ के समीप, नदी, गोष्ठ, चैत्य (किसी पवित्र टीला आदि) में, मार्ग में, भस्म में, अग्नि में एवं श्मशान में मल-मूत्र त्याग न करे॥ ३५॥

न गोपथे न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले। न तिष्ठन्वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके॥ ३६॥

गायों के गोष्ठ एवं चरागाह में, जुती हुई भूमि में, महा-वृक्ष के नीचे तथा घास के मैदान में मल-मूत्र का त्याग न करे तथा खड़े होकर या निर्वस्त्र होकर भी मल-मूत्र त्याग न करे। पर्वत की चोटी पर भी मल-मूत्र त्याग न करे॥ ३६॥

न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन। न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्वा समाचरेत्॥ ३७॥

जीर्ण-शीर्ण देवालय, दीमकों का टीला या जीव-जन्तुओं से युक्त गड्ढा जहाँ हो वहाँ तथा चलते-चलते भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए॥ ३७॥

तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च। न क्षेत्रे विमले चापि न तीर्थे न चतुष्पथे॥ ३८॥
नोद्याने न समीपे वा नोषरे न पराशुचौ। न सोपानत्पादुको वा छत्री यानान्तरिक्षगः॥ ३९॥
न चैवाभिमुखं स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्न च। न देवदेवालययोरपामपि कदाचन॥ ४०॥

धान आदि की भूसी, जलते हुए अंगार, खोपड़ी, राजमार्ग, खेत, स्वच्छ स्थान, तीर्थ, चौराहा, उद्यान तथा उसके समीप की भूमि, ऊसर भूमि, अत्यधिक अशुद्ध भूमि में मल-मूत्र त्याग न करे। जूता या खड़ाऊँ पहनकर, छाता लेकर, अन्तरिक्ष में (भूमि के ऊपर खुले आकाश में), स्त्री या गुरु या ब्राह्मण आदि के समक्ष, देव-प्रतिमा या देवालय के पास तथा जल के पास कदापि मल-मूत्र न करे॥ ३८-४०॥

नैव ज्योतींषि वीक्षित्वा न वार्यभिमुखोऽथ वा।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च॥ ४१॥

ग्रह नक्षत्रों की ओर देखकर, जल की ओर मुख करके एवं सूर्य, चन्द्र या अग्नि की ओर मुख करके मल-मूत्र का त्याग न करे॥ ४१॥

आहृत्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणात्। कुर्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः॥ ४२॥

लेप तथा दुर्गन्ध को दूर करने के लिए आलस्य त्याग कर नदी तट से मिट्टी को लाकर कूप आदि से निकाले हुए शुद्ध जल से शौच (शुद्धि) करे॥ ४२॥

नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांशुलान्न च कर्दमात्। न मार्गान्नोषराद्देशाच्छौचोच्छिष्टात्तथैव च॥ ४३॥

ब्राह्मण को चाहिए कि वह धूल से, कीचड़ से, मार्ग से उठाई गयी मिट्टी से, ऊसर भूमि की मिट्टी से तथा किसी अन्य व्यक्ति के शौच से अवशिष्ट मिट्टी से शौच न करे॥ ४३॥

न देवायतनात्कूपाद् ग्रामादन्तर्जलात्तथा। उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः॥४४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्यासंसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

देवालय या कूप (कुआँ), गाँव तथा जल के अन्दर की मिट्टी से भी शौच न करे। [शौच करने के बाद] नित्यमेव पीछे कथित विधान के अनुसार आचमन करे॥४४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीतोपनिषद् में तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्मचारिणां धर्माः

व्यास उवाच

एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः। आहूतोऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥१॥

इस प्रकार ब्रह्मचारी दण्ड आदि धारण करके एवं शौच के नियमों का तथा सदाचार का पालन करते हुए गुरु के द्वारा आह्वान किये जाने पर (उनके समक्ष बैठकर) उनके मुखारबिन्द की ओर देखते हुए अध्ययन करे॥१॥

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्सन्ध्याचारसमन्वितः। आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः॥२॥

सन्ध्यावन्दन आदि विहित सदाचार का पालन करने वाला वह ब्रह्मचारी अपने दाहिने हाथ को उत्तरीय-वस्त्र से ऊपर उठाये रखे तथा गुरु के द्वारा बैठने का आदेश दिये जाने पर उनकी ओर मुख करके बैठे॥२॥

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत्। नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन् न पराङ्मुखः॥३॥

विद्यार्थी विस्तर में लेटकर या बैठे बैठे या भोजन करते हुए या पीठ गुरु की ओर करके न उनकी बात सुने और न उनसे वार्तालाप करे॥३॥

न च शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ। गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्॥४॥

शिष्य की शय्या तथा आसन सुदा गुरु के [शय्या और आसन के] समीप नहीं होना चाहिए। शिष्य को गुरु के समक्ष जहाँ इच्छा हो वहाँ नहीं बैठ जाना चाहिए॥४॥

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्। न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्॥५॥

परोक्ष में भी गुरु का [सम्मान सूचक शब्दों के बिना केवल] नाम नहीं बोलना चाहिए। गुरु के चलने-फिरने, बोलने तथा चेष्टाओं (हाव-भाव आदि) का भी अनुकरण नहीं करना चाहिए॥५॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा चापि प्रवर्तते। कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥६॥

जहाँ गुरु का परीवाद (विद्यमान अवगुणों की चर्चा) या निन्दा हो रही हो वहाँ विद्यार्थी को अपने कानों को बंद कर लेना चाहिए या वहाँ से अन्यत्र चला जाना चाहिए॥६॥

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः। न चैवास्योत्तरं ब्रूयात् स्थितो नासीत सन्निधौ॥७॥

गुरु की पूजा दूर से न करे तथा क्रोधित होकर भी न करे। जब गुरु अपनी पत्नी के समीप हो तब भी उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए। गुरु की बात के विरोध में कोई उत्तर नहीं देना चाहिए। यदि शिष्य गुरु के समीप में ही स्थित हो तो [उनकी अनुमति के बिना] वहाँ न बैठे॥७॥

उदकुम्भं कुशान् पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा। मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वा समाचरेत्॥८॥

वह गुरु के लिए नित्यमेव घड़े (कलश) में जल भर कर लाये तथा कुश, पुष्प, समिधा भी लाया करे। वह प्रतिदिन गुरु के के शरीर की मालिश और सफाई करे तथा सुगन्धित द्रव्यों का लेपन करे॥८॥

नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि। आक्रमेदासनं छायामासन्दीं वा कदाचन॥९॥

वह कभी भी गुरु को अर्पित करने के पश्चात् उतारी गयी माला तथा गुरु की शय्या, पादुका (खड़ाऊँ), जूता, आसन, छाया (परछाँही) तथा आसन्दी (बैठने की चौकी आदि) को न लाँघे॥९॥

साधयेद्दन्तकाष्ठादीनं कृत्यञ्चास्मै निवेदयेत्। अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहिते रतः॥१०॥

गुरु के लिए दन्तकाष्ठ (दतून) आदि की व्यवस्था करे तथा जो भी कार्य करना हो उसे गुरु को बतला कर ही करे। गुरु को पूछे बिना कहीं नहीं जाना चाहिए। शिष्य वही करे जो गुरु को प्रिय और हितकर हो॥१०॥

न पादौ प्रसारयेन्नास्य सन्निधाने कदाचन। जृम्भाहास्यादिकं चैव कण्ठप्रावरणं तथा॥११॥

गुरु के समीप में कदापि पैर फैलाकर नहीं बैठना चाहिए और जँभाई तथा हास-परिहास न करे तथा कण्ठ (गले) में कोई माला या उत्तरीय वस्त्र आदि न लपेटे॥११॥

वर्जयेत्सन्निधौ नित्यमवस्फोटनमेव च। यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः॥१२॥

गुरु के समीप ताली बजाने जैसी कोई आवाज न निकाले। गुरु जब तक अन्यमनस्क न हो जाय तब तक अध्ययन करता रहे॥१२॥

आसीताथ गुरोरुक्ते फलके वा समाहितः। आसने शयने याने नैकस्तिष्ठेत्कदाचन॥१३॥

गुरु के कहने पर शिष्य संयमित होकर उनके साथ लकड़ी के तखत पर बैठ सकता है, किन्तु गुरु के आसन, शय्या तथा यान पर अकेला कभी न बैठे॥१३॥

धावन्तमनुधावेत्तं गच्छन्तञ्चानुगच्छति। गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च॥१४॥
आसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च। जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः॥१५॥

गुरु के दौड़ने पर उनके पीछे दौड़े तथा वह जहाँ को चले वह भी उनके पीछे चले। बैलगाड़ी, घोड़ा-गाड़ी या ऊँट की सवारी में, किसी प्रासाद (भवन) में या किसी चौड़े पत्थर के ऊपर या चटाई में या किसी शिला की सतह पर गुरु के साथ बैठ सकता है। वह ब्रह्मचारी सदा जितेन्द्रिय रहे, मन को वश में रखे, क्रोध न करे तथा शुद्ध रहे॥१४-१५॥

प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम्। गन्धमाल्यं रसं भव्यं शुक्लं प्राणिविहिंसनम्॥ १६॥
अभ्यङ्गञ्चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च। कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्तनम्॥ १७॥
द्यूतं जनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा। परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ १८॥

वह सदा मधुर और हितकर वाणी बोले। सुगन्धित द्रव्यों, माला, सरस पेय पदार्थ, भव्य (अति सुन्दर) एवं शुक्ल वर्ण के परिधान आदि का प्रयोग तथा प्राणियों की हिंसा, अभ्यङ्ग (तेल-मालिश), अञ्जन (काजल) लगाना, जूता पहनना, छाता ओढना, काम, लोभ, भय, निद्रा, गाना, बजाना, नृत्य करना, द्यूत-क्रीड़ा, लोगों की निन्दा करना, स्त्री का दर्शन, स्त्री का स्पर्श, दूसरों को चोटिल करना एवं चुगलखोरी करना प्रयत्न पूर्वक त्याग दे॥ १६-१८॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान्। आहरेद्यावदर्थानि भैक्ष्यञ्चाहरहश्चरेत्॥ १९॥

वह प्रतिदिन आवश्यकतानुसार जल से पूर्ण घड़ा, पुष्प, गोबर, मिट्टी और कुश लावे तथा प्रतिदिन भिक्षाटन भी करे॥ १९॥

कृतञ्च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितञ्च यत्। अनृत्यदर्शी सततं भवेद्गीतादिनिःस्पृहः॥ २०॥

वह कृत्रिम नमक तथा सभी बासी खाद्य-पदार्थों का भोजन त्याग दे। वह कभी भी नृत्य न देखे तथा गीत-संगीत आदि के प्रति अनिच्छुक रहे॥ २०॥

नादित्यं वै समीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम्। एकान्तमशुचिस्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम्॥ २१॥

वह [उदय और अस्तकालीन?] सूर्य की ओर न देखे तथा दतून न करे(?)। उसे एकान्त में अपवित्र स्त्रियों (रजस्वला आदि), शूद्र एवं अन्त्यज आदि से वार्तालाप नहीं करना चाहिए॥ २१॥

गुरुप्रियार्थं सर्वं हि प्रयुञ्जीत न कामतः। मलापकर्षणं स्नानमाचरेद्वै कथञ्चन॥ २२॥

वह वही सब कार्य करे जो गुरु को प्रिय हों और स्वेच्छानुसार कुछ न करे। येन केन प्रकारेण मलापकर्षण (शरीर के मल को दूर करने का) स्नान अवश्य करे॥ २२॥

न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागं कदाचन। मोहाद्वा यदि वा लोभात्त्यक्त्वैनं पतितो भवेत्॥ २३॥

ब्राह्मण वटु मन से भी गुरु को त्यागने का विचार न करे। मोहवश या लोभवश गुरु का त्याग करने पर वह पतित हो जाता है॥ २३॥

लौकिकं वैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव च। आददीत यतो ज्ञानं न तं द्रुह्येत्कदाचन॥ २४॥

जिस गुरु से लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है, उसके प्रति कभी द्रोह न करे॥ २४॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथं प्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत्॥ २५॥

गुरु भी यदि अहंकार से ग्रस्त है तथा उचित या अनुचित कार्य का भेद भी नहीं जानता और कुमार्गगामी हो जाता है तो उसको त्याग देना चाहिए, ऐसा मनु ने कहा है॥ २५॥

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्भक्तिमाचरेत्। न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत्॥ २६॥

गुरु के गुरु के सान्निध्य में उनके प्रति भी गुरु के समान ही भक्तिभाव पूर्ण व्यवहार करे। गुरु के सामने ही यदि विद्यार्थी के माता-पिता आ जायें तो जब तक गुरु अनुमति न दे, तब तक उनको प्रणाम न करे॥२६॥

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु। प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितं चोपदिशत्स्वपि॥२७॥

विद्यां-प्रदाता गुरुओं, अपने जनक-जननी (माता-पिता) तथा अधर्म का आचरण करने से निवारित करने वाले एवं हितैषी तथा सद्धर्म और सदाचार का उपदेश देने वालों के प्रति भी नित्य गुरु के समान ही आदर पूर्वक व्यवहार करना चाहिए॥२७॥

श्रेष्ठेसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्। गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु॥२८॥

अपने से [ज्ञान, तप आदि में] श्रेष्ठ सज्जनों, अपने गुरु के पुत्रों, गुरु की पत्नी तथा गुरु के बन्धु-बान्धवों के प्रति भी गुरु के समान ही आदर भाव का व्यवहार करना चाहिए॥२८॥

बालः समानजन्मा[१] वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि। अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति॥२९॥

गुरु का पुत्र चाहे आयु में छोटा हो या अपने समान अवस्था वाला हो या यज्ञादि कृत्यों में शिष्य समान हो तथापि यदि वह अध्यापन करता है तो वह गुरु के समान ही आदरणीय है॥२९॥

उत्सादनं वै गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने। न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च॥३०॥

किन्तु गुरु के पुत्र के शरीर में तेल-मालिश करना, स्नान कराना, उसका चखा हुआ जूठा भोजन खाना एवं उसके पैर धुलाना वर्जित करे॥३०॥

गुरुवत्परिपूज्याश्च सवर्णा गुरुयोषितः। असवर्णास्तु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः॥३१॥

गुरु की सवर्णा पत्नियाँ गुरु के समान ही पूजनीय होती हैं, किन्तु असवर्ण पत्नियों का केवल खड़े होकर अभिवादन मात्र करके सम्मान देना चाहिए॥३१॥

अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च। गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्च प्रसाधनम्॥३२॥

गुरु-पत्नी के शरीर में उबटन लगाना, उनको स्नान कराना, उनके शरीर की मालिश करना तथा उनके केश संवारने का कार्य भी न करे॥३२॥

गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः। कुर्वीत वन्दनं भूमावसावहमिति ब्रूवन्॥३३॥

गुरु की पत्नी यदि युवती (युवावस्था की) हो तो उसके अभिवादन में चरण स्पर्श न करे, अपितु मैं अमुक आपका अभिवादन करता हूँ ऐसा कहते हुए भूमि में झुक कर प्रणाम करे॥३३॥

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम्। गुरुदारेषु सर्वेषु सतां धर्ममनुस्मरन्॥३४॥

प्रवास से लौटकर आने पर शिष्य सत्पुरुषों के धर्म (सदाचार) का ध्यान रखते हुए गुरु की सभी पत्नियों का चरण-स्पर्श करे तथा अन्य समय में प्रतिदिन केवल अभिवादन करे॥३४॥

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चाथ पितृष्वसा। सम्पूज्या गुरुपत्नीवत् समास्ता गुरुभार्यया॥३५॥

मौसी, मामी, सास तथा बुआ भी गुरु पत्नी के समान पूजनीय होती है॥३५॥

---

१. संमानयनूमान्यान्

भ्रातुर्भार्या च संग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि। विप्रस्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः॥३६॥

अपने अग्रज भ्राता की सवर्ण भार्या का चरण-स्पर्श प्रतिदिन करना चाहिए, किन्तु अपनी जाति या कुल की तथा सम्बन्ध की स्त्रियों का चरण-स्पर्श केवल प्रवास से लौटने पर ही करना चाहिए॥३६॥

पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि। मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥३७॥

पिता की बहिन (बुआ), माता की बहिन (मौसी) तथा अपनी सगी बड़ी बहिन (दीदी) के साथ माता के समान आदर के साथ व्यवहार करना चाहिए, किन्त माता इनसे अधिक श्रेष्ठ होती है॥३७॥

एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम्। वेदमध्यापयेद् धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यशः॥३८॥

इस प्रकार सदाचार का पालन करने वाले सद्बुद्धि सम्पन्न और दम्भ (आडम्बर) रहित शिष्य को गुरु प्रतिदिन वेद, धर्मशास्त्र, पुराण तथा वेदाङ्गों की शिक्षा प्रदान करे॥३८॥

संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन्। हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः॥३९॥

एक वर्ष तक गुरु के आश्रम में रह कर उसकी सेवा में संलग्न शिष्य को यदि गुरु ज्ञान (विद्या) नहीं देता तो वह उस शिष्य के दुष्कृत (पाप) को प्राप्त करता है॥३९॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः। आप्तःशक्तोऽर्थदः[1] साधुः स्वाध्याप्या दश धर्मतः॥४०॥

आचार्य का पुत्र, सेवा-शुश्रूषा करने वाला, ज्ञान देने वाला (अर्थात् एक विद्या या कला देकर अन्य विद्या प्राप्ति का इच्छुक), धार्मिक प्रवृत्ति वाला, शुद्ध चरित्र वाला, आप्त अर्थात् अपना बन्धु या मित्र, सशक्त (अध्ययन करने में समर्थ), धन प्रदान करने वाला, सरल स्वभाव वाला सच्चरित्र छात्र तथा स्वकीय या सजातीय बालक इन दश प्रकार के छात्रों को धर्मानुसार अध्यापन कराना चाहिए॥४०॥

कृतज्ञश्च तथाऽद्रोही मेधावी तूपकृन्नरः। आप्तः प्रियोऽथ विधिवत् षडध्याप्या द्विजातयः।
एतेषु ब्रह्मणो दानमन्यत्र च यथोदितान्॥४१॥

कृतज्ञ, द्रोह न करने वाला, बुद्धिमान्, उपकार करने वाला, विश्वास पात्र तथा जो अपना प्रिय पात्र हो ऐसे छः प्रकार के द्विज बालकों को विधिपूर्वक ब्रह्म (वेद वेदाङ्ग) की शिक्षा देनी चाहिए तथा अन्य छात्रों को अन्य विविध विधाओं की शिक्षा दी जा सकती है॥४१॥

आचम्य संयतो नित्यमधीयीत ह्युदङ्मुखः। उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामस्त्विति नारभेत्॥४२॥

विद्यार्थी आचमन करके उत्तराभिमुख होकर गुरु के चरणों में प्रणाम करे और तब उनके मुख को देखते हुए एकाग्र मन से अध्ययन करे। गुरु के द्वारा 'अध्ययन करो' कहने पर अध्ययन आरम्भ करे तथा 'अब विराम करो' कहने पर वह अध्ययन को समाप्त करे॥४२॥

प्राञ्जलिश्च समासीनः पवित्रैश्चैव पावितः। प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति॥४४॥

(गुरु के समीप) हाथ जोड़कर बैठकर कुश पवित्र धारण करने से पवित्र होकर तथा तीन बार प्राणायाम करके शुद्ध होने के अनन्तर वह ओङ्कार का उच्चारण करने योग्य होता है॥४३॥

१. सूक्तार्थदोऽरसः

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादन्ते च विधिवद् द्विजाः। कुर्यादध्ययनं नित्यं बद्धाञ्जलिकरस्थितः[१]॥४४॥

हे द्विजो! ब्राह्मण वेदाध्यन के (आरम्भ में तथा) अन्त में प्रणव (ॐ) का उच्चारण करे। वह नित्य हाथ जोड़कर ही वेद का अध्ययन करे॥४४॥

सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनम्। अधीयीत द्विजो[२] नित्यं ब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा॥४५॥

सभी मनुष्यों के लिए (ज्ञान रूपी) सनातन नेत्र वेद ही है। ब्राह्मण सदैव वेद का अध्ययन करे। अन्यथा वह ब्राह्मणत्व से पतित हो जाता है॥४५॥

योऽधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या स देवताः। प्रीणाति तर्पयन्त्येनं कामैस्तृप्ताः सदैव हि॥४६॥

जो ब्राह्मण नित्य ऋग्वेद का अध्ययन करता है, वह मानो दूध की आहुति से देवताओं को तृप्त करता है और देवता भी तृप्त होकर सदैव उसकी मनोकामना पूर्ण कर उसे तृप्त करते हैं॥४६॥

यजूंष्यधीते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः। सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम्॥४७॥

जो नित्य यजुर्वेद का अध्ययन करता है, वह दही (की आहुति) से देवताओं को तृप्त करता है तथा जो सामवेद का अध्ययन करता है, वह प्रतिदिन घृत की आहुति से देवों की तृप्त करता है॥४७॥

अथर्वाङ्गिरसो नित्यं मध्वां प्रीणाति देवताः। वेदाङ्गानि पुराणानि मांसैश्च तर्पयेत्सुरान्॥४८॥

अथर्ववेद का अध्ययन करने वाला नित्य मधु से देवों को तृप्त करता है। वेदाङ्गों (शिक्षा कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त तथा छन्द शास्त्र) तथा पुराणों का अध्ययन करने वाला मांस से देवों को तृप्त करता है॥४८॥

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमाश्रितः। गायत्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥४९॥

नित्य कर्म की विधि का पालन करने वाला ब्रह्मचारी वन में जल के समीप जाकर एकाग्र मन से गायत्री मन्त्र का जप करे॥४९॥

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्। गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्तितः॥५०॥

देवी गायत्री के एक हजार जप को परम श्रेष्ठ, एक सौ बार जप को मध्यम तथा दश बार जप को निम्न कोटि का कहा गया है॥५०॥

गायत्रीञ्चैव वेदांस्तु तुलयाऽतोलयत्प्रभुः। एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीञ्च तथैकतः॥५१॥

परमात्मा ने गायत्री मन्त्र को तथा वेदों को तुला में तोला। एक ओर गायत्री मन्त्र को तथा दूसरी ओर चारों वेदों को रखा (तो दोनों बराबर हुए थे)॥५१॥

ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम्। ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः॥५२॥

आदि में ओङ्कार तब तीन महाव्याहृतियों (भूर्भुवःस्वः) को बोलने के बाद श्रद्धापूर्वक एकाग्र मन से गायत्री मन्त्र का जप करे॥५२॥

पुराकल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवः स्वः सनातनाः। महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाशुभनिबर्हणाः॥५३॥

१. ब्रह्माञ्जलिकरस्थितः

२. अधीयीताप्ययं

आदिकल्प में 'भूः, भुवः, स्वः' ये तीन सनातन महाव्याहृतियाँ प्रादुर्भूत हुई थी, जो कि सभी प्रकार के अमङ्गल को विनष्ट करती हैं॥५३॥

प्रधानं पुरुषः कालो विष्णुर्ब्रह्मा महेश्वरः। सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद् व्याहृतयः स्मृताः॥५४॥

ये तीनों महाव्याहृतियाँ क्रमशः प्रधान (प्रकृति), पुरुष एवं काल, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तथा सत्त्व, रज और तमोगुण स्वरूप कही गयी हैं॥५४॥

ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षरम्। एष मन्त्रो महायोगः सारात्सार उदाहृतः॥५५॥

ओङ्कार (ॐ) परम ब्रह्म है तथा गायत्री मन्त्र अविनाशी तत्त्व स्वरूप है। इस गायत्री मन्त्र को महायोग तथा सभी सारों का सार स्वरूप कहा गया है॥५५॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां सावित्रीं वेदमातरम्। विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम्॥५६॥

जो ब्रह्मचारी इस वेदमाता गायत्री के अर्थ को ज्ञात करके प्रतिदिन इसका अध्ययन (जप) करता है, वह परम गति प्राप्त करता है॥५६॥

गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी। न गायत्र्याः परं जाप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥५७॥

गायत्री को वेद की माता कहा गया है। गायत्री लोक को पवित्र करने वाली है। गायत्री से अधिक श्रेष्ठ जपने योग्य कोई मन्त्र नहीं है। इस तथ्य को ज्ञात कर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है॥५७॥

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः। आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम्॥५८॥

आषाढ या श्रावण या भाद्रपद मास की पूर्णिमा तिथि के दिन (अपने गृह्यसूत्रोक्त विधानानुसार) वेदों का उपाकर्म (वेद पाठ के आरम्भ में किया जाने वाला अनुष्ठान) विहित किया गया है॥५८॥

उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान्विप्रोऽर्द्धपञ्चमान्। अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः॥५९॥

ग्राम एवं नगर को त्याग करके ब्रह्मचारी ब्राह्मण किसी शुद्ध स्थान में जाकर साढ़े पाँच मास पर्यन्त एकाग्र मन से वेदों का अध्ययन करे॥५९॥

पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद् बहिरुत्सर्जनं द्विजाः। माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि॥६०॥

हे द्विजो! पौष मास में पुष्य नक्षत्र में अथवा माघ मास में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन पूर्वाह्ण में ग्राम के बाहर जाकर वेदों का उत्सर्जन (कुछ समय तक वेदाध्ययन का विराम) करे॥६०॥

छन्दांस्यूर्ध्वमथोऽभ्यस्येच्छुक्लपक्षेषु वै द्विजः[१]। वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षे च मानवम्॥६१॥

तदनन्तर द्विज शुक्ल पक्ष में वेदों का तथा कृष्ण पक्ष में वेदाङ्गों, पुराणों तथा मनुस्मृति (आदि) का अध्ययन करे॥६१॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत्। अध्यापनं च कुर्वाणो ह्यनध्यायान्विवर्जयेत्॥६२॥

अध्ययन में प्रवृत्त छात्र इन (वक्षमाण) अनध्याय के दिनों में कभी भी (वेद का) अध्ययन न करे। अध्यापन करने वाला, गुरु भी अनध्याय के दिनों में अध्यापन वर्जित करे॥६२॥

---

१. छन्दसां प्रीणनं कुर्यात् स्वेषु ऋक्षेषु वै द्विजः।

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांशुसमूहने। विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कापात सम्प्लवे॥६३॥
आकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः। निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्जने॥६४॥
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि। प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने॥६५॥
सज्योतिः स्यादनध्यायमनृतौ चात्र दर्शने। नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च॥६६॥

जब रात्रि में वायु के बहने का शब्द कान से सुनाई पड़े अथवा दिन में वायु के साथ धूल उड़े, जब बिजली के गर्जन के साथ वर्षा होने लगे, विशाल उल्कापात होने पर (उल्का पिण्ड टूट कर गिरने पर) तथा जलप्लावन (बाढ़ की स्थिति) होने पर प्रजापति ने आकालिक अनध्याय (इन स्थितियों के आरम्भ से दूसरे दिन उसी समय तक अनध्याय) विहित किया है। वज्रपात होने पर, भूकम्प आने पर, सूर्य या चन्द्रमा में ग्रहण लगने पर, असमय आग लगने, बिजली गिरने तथा मेघ के गर्जन होने पर प्रकाश के होते हुए भी अनध्याय होता है। ये अनध्याय ग्रामों तथा नगरों में भी नित्य होंगे॥६३-६६॥

धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च नित्यशः। अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ॥६७॥
अनध्यायो रुद्यमाने[1] समवाये जनस्य च। उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रं च विसर्जयन्[2]॥६८॥

धर्म पालन में निपुणता के इच्छुक व्यक्तियों को चाहिए कि वे दुर्गन्ध युक्त स्थान में, ग्राम में शव के रहने पर, वृषल (अन्त्यज) के सान्निध्य में, रुदन होने पर, एकत्रित जन समूह के समक्ष, जल में, मध्य रात्रि में तथा मलमूत्र विसर्जन करते समय भी अनध्याय के नियम को मानें॥६७-६८॥

उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत्। प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम्॥६९॥

उच्छिष्ट अवस्था में (जूठे मुख वाला होने पर) तथा श्राद्धान्न भोजन करने पर एवं एकोदिष्ट श्राद्ध का भोजन का निमन्त्रण पाने पर विद्वान् व्यक्ति मन से भी वेद आदि विद्याओं के अध्ययन का विचार न करे॥६९॥

त्र्यहं न कीर्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके। यावदेकोऽनुद्दिष्टस्य स्नेहो लेपश्च तिष्ठति।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत्॥७०॥

राजा के घर में सूतक होने पर, राहु के कारण (सूर्य या चन्द्र ग्रहण से) सूतक होने पर तीन दिन तक वेद का अध्ययन न करे। विद्वान् ब्राह्मण के शरीर में जब तक एकोद्दिष्ट श्राद्ध में किये गये भोजन के घृत, तेल आदि की चिकनाई या लेप (चन्दन आदि का लेप) विद्यमान रहे तब तक वेद का अध्ययन न करे॥७०॥

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा वै चावसिक्थकाम्। नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकाद्यन्नमेव च॥७१॥

विस्तर में शयन करते हुए, उकड़ूँ बैठकर, दोनों घुटनों में वस्त्र लपेटकर अध्ययन न करे। मांस भक्षण करके तथा सूतक वाले घर में बना भोजन खाकर भी अध्ययन न करे॥७१॥

नीहारे बाणपाते च सन्ध्ययोरुभयोरपि। अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च॥७२॥

---

१. भुज्यमाने द्र०- अनध्यायो रुद्यमाने समये जलदस्य च। पद्म ३/५३/७०

२. विवर्जयेत्

जब कुहरा लगा हो, जब बाण छोड़े जा रहे हों तथा दोनों सन्ध्याओं (प्रातः एवं सायंकाल) के समय, अमावस्या, चतुर्दशी, पौर्णमासी, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की अष्टमी को अध्ययन वर्जित है॥७२॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्। अष्टकासु त्र्यहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु॥७३॥

उपाकर्म तथा उत्सर्ग (एक निश्चित अवधि तक वेदाध्ययन में विराम) करने पर तीन दिनों तक वेदाध्ययन वर्जित किया गया है। अष्टकाओं में तथा प्रत्येक ऋतु की अन्तिम रात्रि में अनध्याय होगा॥७३॥

मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च। तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः॥७४॥

विद्वानों ने मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमियों को अष्टका कहा है॥७४॥

श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च। कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः॥७५॥

श्लेष्मातक (लिसोड़ा), शाल्मलि (सेमल), मधूक (महुआ), कोविदार (कचनार) तथा कपित्थ (कैथ) की छाया में बैठ कर कदापि अध्ययन नहीं करना चाहिए॥७५॥

समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि। आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्॥७६॥

अपने समान विद्या का अध्ययन करने वाले सहपाठी ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर तथा आचार्य (गुरु) की मृत्यु होने पर भी तीन रात (तीन अहोरात्र) तक अध्ययन वर्जित बतलाया गया है॥७६॥

छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः। हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विवर्जयेत्॥७७॥

जो अनध्याय कहे गये हैं, वह ब्राह्मणों के लिए छिद्र स्वरूप हैं। उन अनध्याय के दिनों [अध्ययन कर्ता पर] राक्षस प्रहार करते हैं। अतः इन अनध्याय के दिनों अध्ययन वर्जित करे॥७७॥

नैत्यिके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च। उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि॥७८॥

नित्यकर्म में, सन्ध्योपासन में, उपाकर्म में, पूर्वतः प्रवर्तित कृत्य के अन्त में तथा होम मन्त्रों के उच्चारण में अनध्याय [का नियम लागू] नहीं होता॥७८॥

एकामृचमथैकं वा यजुः सामाथवा पुनः। अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चाति वायति॥७९॥

ऋग्वेद की एक ऋचा, यजुर्वेद का एक मन्त्र अथवा सामवेद का एक साम तेज वायु बहते समय तथा तीनों अष्टकाओं के दिनों में भी पढ़ा जा सकता है॥७९॥

अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः। न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वाण्येतानि वर्जयेत्॥८०॥

वेदाङ्गों, इतिहास-पुराण, धर्मशास्त्र तथा अन्य विद्याओं पर अनध्याय का विधान लागू नहीं होता है। किन्तु इनका अध्ययन पर्वकाल में [तथा अष्टमी आदि के दिनों में] वर्जित करे॥८०॥

एष धर्मः समासेन कीर्तितो ब्रह्मचारिणाम्। ब्रह्मणाभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम्॥८१॥

ब्रह्मचारियों के लिए यह धर्म संक्षेप में कहा गया है। पूर्वकाल में इस धर्म का उपदेश ब्रह्मा ने पवित्र आत्मा वाले ऋषियों को दिया था॥८१॥

योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः। स सम्मूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः॥८२॥

जो द्विज वेद का अध्ययन न करके अन्यत्र [अन्य शास्त्रों के अध्ययन में] प्रयास करता है, वह वेद-बाह्य (वेद से बहिष्कृत) है। द्विजातियों को उस अज्ञानी के साथ वार्तालाप भी नहीं करना चाहिए॥८२॥

न वेदपाठमात्रेण सन्तुष्टो वै भवेद्द्विजः[१]। पाठमात्रावसानस्तु[२] पङ्के गौरिव सीदति॥८३॥

द्विज को वेद का पाठ मात्र करके सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। वेद का पाठ मात्र करके [अर्थ-ज्ञान को] छोड़ देने वाला कीचड़ में फंसी गाय के समान कष्ट भोगता है॥८३॥

योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत्। स चान्धः शूद्रकल्पस्तु पात्रतां[३] न प्रपद्यते॥८४॥

जो द्विज विधि-पूर्वक वेद का अध्ययन करके उस वेद के अर्थ-ज्ञान पर विचार नहीं करता वह अन्धा है और शूद्र के समान है। वह [यज्ञ-यागादि तथा अध्यापन एवं दान के लिए] सत्पात्र नहीं होता॥८४॥

यदि चात्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छति वै गुरौ। युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात्[४]॥८५॥

यदि शिष्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनकर आजीवन गुरुकुल में ही निवास करना चाहता है तो वह गुरु की मृत्युपर्यन्त एकाग्र मन से सेवा करे॥८५॥

गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्। अभ्यसेत्स तदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः॥८६॥

अथवा वह [गुरु के न रहने पर] वन में जाकर यथाविधि अग्नि में हवन करे तथा ब्रह्म-निष्ठ (परमात्म चिन्तन में लीन) होकर एकाग्र मन से वेद पारायण में संलग्न रहे॥८६॥

सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदाङ्गानि विशेषतः। अभ्यसेत् सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः॥८७॥

वह भस्म-धारण करके नित्य गायत्री मन्त्र का जप, शतरुद्रिय का पाठ तथा वेदाङ्गों का अनुशीलन करे॥८७॥

एतद्विधानं परमं पुराणं वेदागमे सम्यगिहेरितञ्च।
पुरा महर्षिप्रवरानुपृष्टः स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः॥८८॥

वेद के ज्ञान विषयक यह परम प्राचीन विधान मैंने आप लोगों के समक्ष सम्यक् रूप से कहा है। प्राचीनकाल में महर्षियों के द्वारा पूछे जाने पर देवस्वरूप स्वाम्भुव मनु ने इसे कहा था॥८८॥

एवमीश्वरसमर्पितान्तरो योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवित्।
मोहजालमपहाय सोऽमृतं याति तत्पदमनामयं शिवम्॥८९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधान को जानता है तथा स्वयं को ईश्वर में समर्पित करके (शास्त्रोक्त) विधि का पालन करता है, वह सांसारिक मोहजाल से मुक्त होकर परम निरामय कल्याणमय पद को प्राप्त करता है॥८९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'ब्रह्मचारीधर्मनिरूपण' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥१४॥

---

१. द्विजोत्तमाः, २. एवमाचारहीनस्तु, ३. पदार्थं, ४. शरीराभिधातनम्

अथ पञ्चदशोऽध्यायः
गार्हस्थ्यधर्माः

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान् साङ्गान्वा चतुरो द्विजाः। अधीत्य चाभिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः॥ १॥

व्यास जी बोले- हे श्रेष्ठ द्विजो! उत्तम द्विज को चाहिए कि वह एक वेद अथवा दो वेद या चारों वेदों का वेदाङ्गों सहित अध्ययन करके तथा उनका अर्थ ज्ञात करके समावर्तन संस्कार के अङ्ग रूप में स्नान करे॥ १॥

गुरवे तु धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया। चीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा सशक्तः स्नातुमर्हति॥ २॥

वह गुरु को दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से ही स्नान कर सकता है। जिसने ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण कर लिया हो ऐसा युक्तात्मा अर्थात् सुयोग्य एवं समर्थ शिष्य ही (समावर्तन संस्कार के अङ्गरूप में) स्नान कर सकता है॥ २॥

वैणवीं धारयेद्यष्टिमन्तर्वासं तथोत्तरम्। यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकञ्च कमण्डलुम्॥ ३॥
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ। रौक्मे च कुण्डले धार्ये[1] व्युप्तकेशनखः शुचिः॥ ४॥

[स्नानोपरान्त] स्नातक को बाँस का दण्ड (लाठी), कौपीन, उत्तरीय (चादर), दो यज्ञोपवीत तथा जल-पूर्ण कलश, छाता, [श्वेत वर्ण की] स्वच्छ पगड़ी, पादुका (खड़ाऊँ) या जूता, तथा सोने के कुण्डल धारण करने चाहिए। उसे केश और नाखून काट कर शुद्ध हो जाना चाहिए॥ ३-४॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् बहिर्माल्यं न धारयेत्। अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रः न रक्तां बिभृयात्स्रजम्॥ ५॥

स्नातक नित्य स्वाध्याय करता रहे। माला को वस्त्रों के बाहर से न धारण करे। सोने की माला के अतिरिक्त ब्राह्मण लाल रंग की कोई माला धारण न करे॥ ५॥

शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः। न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै वैभवे सति॥ ६॥

वह नित्य श्वेत रंग के वस्त्र पहने तथा सुगन्धित चन्दन, इत्र आदि का लेप शरीर में करे, जिससे कि वह सुन्दर-प्रिय दिखलाई पड़े। धन-वैभव होने पर वह जीर्ण (फटे हुए) तथा मैले वस्त्र न पहने॥ ६॥

न रक्तमुल्बणं चान्यधृतं वासो न कुण्डलम्[2]। नोपानहौ स्रजं वाथ पादुके न प्रयोजयेत्॥ ७॥

लाल रंग के या भड़कीले या दूसरों के द्वारा पहने गये वस्त्र, कुण्डल, जूते, माला या पादुका (खड़ाऊँ) को न पहने॥ ७॥

उपवीतमलङ्कारं दर्भान् तथा कृष्णाजिनानि च। नापसव्यं परीदध्याद्वासो न विकृतञ्च यत्॥ ८॥

दूसरे के द्वारा पहने गये यज्ञोपवीत, आभूषण, तथा प्रयोग में लाये गये कुश, कृष्णमृग के चर्म

---

१. द्रष्टव्य-रौक्मे च कुण्डले धार्ये। पद्मपुराण ३/५४/४,

२. कुण्डिकाम्/द्रष्टव्य- न रक्तमुल्बणं चान्यधृतं वासो न कुण्डलम। पद्मपुराण ३/५४/६

का प्रयोग न करे। यज्ञोपवीत को अपसव्य करके न पहने तथा विकृत (बेढंगे, कटे-फटे, गन्दे) वस्त्र न पहने॥८॥

आहरेद्विधिवद्दारान् सदृशानात्मनः शुभान्। रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान्॥९॥

अपने समान कुल और शील-स्वभाव वाली, शुभावह, सुन्दर रूप वाली, सुलक्षणा, योनि दोष रहित, पत्नी को यथाविधि विवाह करके ग्रहण करे॥९॥

अमातृगोत्रप्रभवामसमानर्षिगोत्रजाम्। आहरेद् ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम्॥१०॥

ब्राह्मण ऐसी कन्या के साथ विवाह करे जो उसकी माता के गोत्र में उत्पन्न न हुई हो तथा स्वयं उसके पूर्वज ऋषि के वंश और गोत्र में उत्पन्न न हुई हो तथा सच्चरित्र एवं शौच समन्वित अर्थात् साफ-सफाई वाली हो॥१०॥

ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते। वर्जयेत्प्रतिषिद्धानि दिनानि तु प्रयत्नतः॥११॥

जब तक पुत्र उत्पन्न नहीं होता तब तक ऋतुकाल में ही पत्नी के साथ शयन करे, किन्तु निषद्ध दिनों में पत्नी के साथ शयन प्रयत्न पूर्वक वर्जित करे॥११॥

युग्मासु जायते पुत्रो तथाऽयुग्मासु कन्यका। तस्मादयुग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियाः[१]॥१२॥

युग्म तिथियों (अर्थात् आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं, सोलहवीं रात्रि में) पत्नी के साथ समागम के फलस्वरूप गर्भ-धारण होने पर पुत्र उत्पन्न होता है तथा अयुग्म (विषम) तिथियों में समागम से कन्या उत्पन्न होती है। अतः पुत्र की कामना से पुरुष को युग्म तिथियों में ही पत्नी के साथ समागम करना चाहिए॥१२॥

आदधीतावसथ्याग्निं जुहुयाज्जातवेदसम्। व्रतानि स्नातको नित्यं पावनानि च पालयेत्॥१३॥

स्नातक गृहस्थ पुरुष घर में अग्निहोत्र की अग्नि को स्थापित करके उसमें नित्य हवन करे और पवित्र व्रतों का पालन करे॥१३॥

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानूयाति भीषणान्॥१४॥

वह वेदोक्त स्वकीय गृहस्थ धर्म में विहित कृत्यों का सदैव जागरूक रह कर पालन करे। वैसा न करने पर वह शीघ्र पतित हो जाता है और मृत्यु के पश्चात् भीषण (भयानक) नरकों में गिरता है॥१४॥

अभ्यसेत्प्रयतो वेदं महायज्ञांश्च भावयेत्। कुर्याद् गृह्याणि कर्माणि सन्ध्योपासनमेव च॥१५॥

स्नातक गृहस्थ पवित्र होकर वेद का अभ्यास करे, [पञ्च] महायज्ञों को नित्य करे। सन्ध्योपासन तथा गृहस्थ धर्म के कृत्यों को नित्य करे॥१५॥

सख्यं समाधिकैः कुर्यादर्चयेदीश्वरं सदा। दैवतान्यभिगच्छेत कुर्याद्भार्याविभूषणम्॥१६॥

वह अपने समान तथा अपने से श्रेष्ठ जनों के साथ मित्रता करे। सदा ईश्वर का पूजन करे, देवों का दर्शन पूजन करे तथा पत्नी को अलंकारों से अलंकृत करे॥१६॥

---

१. षष्ट्यष्टमीं पञ्चदशींद्वादशीं च चतुर्दशीम्। ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं ब्राह्मणः संयतेन्द्रियः॥१२॥
कूर्मपुराण का यह पाठ मनुस्मृति ४/१२८ के अनुकरण पर आधारित होने पर भी सुग्राह्य और सुस्पष्ट नहीं है।

न धर्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि। कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पनम्॥१७॥

विद्वान् व्यक्ति अपने द्वारा किये गये धर्म का ख्यापन न करे तथा अपने पाप को गुप्त न रखे। नित्य अपने हित में सभी कार्य करे तथा सभी प्राणियों पर दया करे॥१७॥

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च। वेदवाग्बुद्धिसारूप्यमाचन्विहरेत्सदा॥१८॥

गृहस्थ पुरुष सदा अपनी आयु, कर्म (व्यवसाय), आर्थिक स्थिति, शिक्षा के स्तर, कुलीनता, वेश-भूषा, भाषा-बोली तथा बुद्धि के अनुरूप आचार व्यवहार करे॥१८॥

श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः। तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित्॥१९॥

वेदों और स्मृतियों में जो समीचीन आचार कहा गया है तथा सत्पुरुषों ने जिसका पालन किया है, उसी का पालन सद्गृहस्थ करे। तद्भिन्न आचरण की कामना कभी न करे॥१९॥

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन् तरिष्यति॥२०॥

जिस सज्जनोचित मार्ग पर माता-पिता और पितामह चले हों उसी का अनुसरण स्नातक गृहस्थ करे। उस पर चलने से वह सुख पूर्वक जीवन यापन करता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है॥२०॥

नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान्। सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥२१॥

[सद्गृहस्थ द्विज] नित्य स्वाध्याय निरत रहे, नित्य यज्ञोपवीत धारण किया रहे। वह सदा सत्य बोले तथा क्रोध में नियन्त्रण रखे। ऐसा करने से वह [जीवन के अन्त में] ब्रह्म-स्वरूप अर्थात् मोक्षभागी होता है॥२१॥

सन्ध्यास्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः। अनसूयो मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रेत्य वर्द्धते॥२२॥

नित्य स्नान और नित्य सन्ध्या-वन्दन करने वाला सदा ब्रह्म-यज्ञ (वेद आदि धर्मग्रन्थों के अध्ययन में निरत), ईर्ष्या-द्वेष रहित, मृदु (सरल) स्वभाव वाला और दान्त (जितेन्द्रिय) गृहस्थ मृत्यु के बाद पर लोक में [तथा पुनर्जन्म में भी] अभ्युदय को प्राप्त करता है॥२२॥

वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः। सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही॥२३॥

राग, भय, लोभ, क्रोध और मोह से रहित तथा नित्य गायत्री मन्त्र का जप करने वाला एवं श्राद्ध करने वाला गृहस्थ मोक्ष प्राप्त करता है॥२३॥

मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रतः। दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥२४॥

माता-पिता और गौ तथा ब्राह्मण के हितकर कार्य में संलग्न, जितेन्द्रिय, यज्ञ करने वाला और देवों का भक्त गृहस्थ ब्रह्मलोक में महिमा प्राप्त करता है॥२४॥

त्रिवर्गसेवी सततं देवतानां च पूजनम्। कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत् प्रयतः सुरान्॥२५॥

निरन्तर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का सेवन करने वाला गृहस्थ प्रतिदिन देवों का पूजन करे और सदा पवित्र मनोभाव से देवों को प्रणाम करे॥२५॥

विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः। गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥२६॥

अपनी अर्जित सम्पत्ति का सदैव शास्त्रोक्त विधानानुसार [धर्मकृत्यों में तथा परिवार के भरण-पोषण आदि में] विभाजित करने वाला, क्षमाशील और दयालु स्वभाव वाला पुरुष ही वास्तव में गृहस्थ कहलाता है, केवल गृह में निवास करने मात्र से कोई गृहस्थ नहीं होता॥२६॥

क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः। अध्यात्मनित्यताज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥२७॥

क्षमा, दया, विज्ञान (लोक-परलोक विषयक विशिष्ट आध्यात्मिक ज्ञान) सत्य, दम (इन्द्रियों पर नियन्त्रण), शम (शान्ति) तथा सदा अध्यात्म-परायण रहना ये सभी ब्राह्मण के लक्षण हैं॥२७॥

एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमाः। यथाशक्ति चरेत्कर्म निन्दितानि विवर्जयेत्॥२८॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण को विशेषतः अपने लिए ऊपर कथित इन विशेष गुणों के विषय में कोई प्रमाद नहीं करना चाहिए। वह यथाशक्ति अपने लिए विहित कर्म करता रहे तथा जो कृत्य निन्दित हो उसे वर्जित करे॥२८॥

विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्। गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्या विचारणा॥२९॥

मोहरूपी कालुष्य को दूर कर परम श्रेष्ठ योग को प्राप्त करके गृहस्थ पुरुष बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस विषय में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए॥२९॥

विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम्। अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा॥३०॥

दूसरों के द्वारा क्रोधवश की गयी निन्दा, अनादर, आक्षेप (मिथ्या दोषारोपण), हिंसा, बन्धन तथा वध (मार-पीट) जैसे दोषों को भी सहन करना ही क्षमा है॥३०॥

स्वदुःखेष्विव कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदात्। दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम्॥३१॥

दूसरों के दुःख को अपना जैसा दुःख मान कर उनके प्रति मित्रवत् करुणा का भाव रखना ही दया है, जो कि धर्म का साक्षात् साधन है॥३१॥

चतुर्दशानां विद्यानां[१] धारणं हि यथार्थतः। विज्ञानमिति तद् विद्याद्यत्र धर्मो विवर्धते॥३२॥

चतुर्दश विद्याओं को अर्थ सहित ज्ञात करके धारण करना ही विज्ञान कहा गया है। इन विद्याओं [के अध्ययन, मनन और तदनुसार आचरण] से धर्म की वृद्धि होती है॥३२॥

अधीत्य विधिवद्वेदानर्थञ्चैवोपलभ्य तु। धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद्विज्ञानमिष्यते॥३३॥

यथाविधि वेदों का अध्ययन कर उनका अर्थ ज्ञात करके भी यदि कोई व्यक्ति धर्मकार्यों से विरत रहता है तो उसका वह ज्ञान विज्ञान नहीं कहा जायेगा॥३३॥

सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम्। यथाभूतप्रवादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः॥३४॥

मनुष्य सत्य के बल पर ही लोक पर विजय प्राप्त करता है। सत्य ही वह परम पद है। जो जैसा देखा या सुना गया हो उसके तद्वत् कथन को ही मनीषियों ने सत्य कहा है॥३४॥

दमः शरीरोपरमः शमः प्रज्ञाप्रसादजः। अध्यात्ममक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचति॥३५॥

शरीर पर नियन्त्रण अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह को दम कहा जाता है तथा उत्कृष्ट अध्यात्म ज्ञान से

१. अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्याय विस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ विष्णुपुराण ३/६/२८

होने वाली मानसिक शान्ति को शम कहा जाता है। अध्यात्म (आत्मा सम्बन्धी) ज्ञान को अविनाशी तत्त्व मानना चाहिए, जिसे प्राप्त कर (अर्थात् ज्ञात कर) मनुष्य शोक नहीं करता॥३५॥

यया स देवो भगवान्विद्यया वेद्यते परः। साक्षाद्देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्॥३६॥

जिस विद्या के द्वारा परात्पर देव साक्षात् महादेव भगवान् शिव को जाना जा सकता है, उसे ही ज्ञान कहा गया है॥३६॥

तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः। महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम्॥३७॥

उन भगवान् शिव में निष्ठावान्, नित्य उनकी आराधना में तत्पर, क्रोध-रहित, शुद्ध तन-मन वाला तथा प्रतिदिन पञ्च महायज्ञों को करने वाला ब्राह्मण उस उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता है॥३७॥

धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं प्रतिपालयेत्। न च देहं विना रुद्रो विद्यते पुरुषैः परः॥३८॥

यह शरीर धर्म का आयतन है अर्थात् इस शरीर के द्वारा ही धर्म किया जा सकता है। अतः इस शरीर का पालन प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए, क्योंकि शरीर के बिना परात्पर भगवान् शिव को नहीं जाना जा सकता॥३८॥

नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः। न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्॥३९॥

ब्राह्मण को चाहिए कि वह संयमित रह कर नित्यमेव धर्म, अर्थ और काम की साधना में संलग्न रहे। धर्म से रहित अर्थ और काम का चिन्तन मन से भी न करे॥३९॥

सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत्। धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु॥४०॥

धर्म पालन में कष्ट होने पर भी कदापि अधर्म न करे, क्योंकि धर्म ही भगवान्, देवता तथा सभी प्राणियों की गति है॥४०॥

भूतानां प्रियकारी स्यान्न पर द्रोहकर्मधीः। न वेददेवतानिन्दां कुर्यात् तैश्च न संवदेत्॥४१॥

सभी प्राणियों के साथ प्रेम के साथ व्यवहार करे। दूसरों के प्रति द्रोह पूर्ण (विद्वेष-पूर्ण) कर्म में अपनी अपनी बुद्धि नहीं लगावे। वेदों और देवों की निन्दा कभी न करे तथा जो ऐसा करते हैं, उनके साथ वार्तालाप भी न करे॥४१॥

यस्त्विमं नियतं विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः। अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते॥४२॥

इति श्रकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे गार्हस्थ्यधर्मनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

जो ब्राह्मण शुद्ध रहकर नित्य इस अध्याय का पाठ करेगा अथवा इसे दूसरों को पढायेगा अथवा सुनायेगा, वह ब्रह्मालोक में महिमा प्राप्त करेगा॥४२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में ब्रह्मविद्या-वर्णन-प्रसंग में गार्हसथ्यधर्मनिरूपण नामक पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत्क्वचित्। नाहितं नाप्रियं ब्रूयान्न स्तेनः स्यात्कथञ्चन॥१॥

व्यास जी बोले- गृहस्थ को किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिए। न तो अहितकर और न अप्रिय वचन बोलना चाहिए और कभी भी चोरी नहीं करनी चाहिए॥१॥

तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव च। परस्यापहरन्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते॥२॥

अन्य व्यक्ति का तृण (तिनका) या शाक या मिट्टी या जल का भी अपहरण (चोरी) करने वाला नरक में गिरता है॥२॥

न राज्ञः प्रति गृह्णीयान्न शूद्रात्पतितादपि। नान्यस्माद्याचकत्वञ्च निन्दितादवर्जयेद् बुधः॥३॥

राजा से दान नहीं लेना चाहिए तथा शूद्र और पतित से भी दान नहीं लेना चाहिए। किसी अन्य से भी भीख नहीं मांगनी चाहिए। निन्दित व्यक्ति से भी दान नहीं लेना चाहिए॥३॥

नित्यं याचनको न स्यात्पुनस्तं नैव याचयेत्। प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्मतिः॥४॥

एक ही व्यक्ति से नित्य याचना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जब एक ही गृहस्थ से पुनः बार-बार भीख माँगता है तो वह दुर्बुद्धि उस दाता के मानो प्राण ही हर लेता है॥४॥

न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमः। ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन॥५॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण को तो विशेषतः देवताओं को अर्पित धन का अपहरण कभी नहीं करना चाहिए तथा आपत्ति के समय भी ब्राह्मण के धन का अपहरण कभी भी नहीं करना चाहिए॥५॥

न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते। देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः॥६॥

विष को ही विष नहीं कहते, ब्राह्मण के धन को भी विष कहते हैं तथा देवताओं का धन भी विष के समान है। अतः ब्राह्मण के धन तथा देवता के धन को सदा प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए॥६॥

पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले तृणे फले। अदत्तादानमस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः॥७॥

गृहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजाः। नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम्॥८॥

प्रजापति मनु ने कहा है कि दूसरे के खेत से स्वामी के द्वारा दिये बिना पुष्प, शाक, जल, काष्ठ, मूल, फल और तृण लेना चोरी नहीं है। किन्तु हे द्विजो! दूसरे के खेत से पुष्प केवल देवपूजा के लिए ग्रहण करने चाहिए, किन्तु बिना स्वामी की आज्ञा के सदा एक ही स्थान से पुष्प नहीं लेने चाहिए॥७-८॥

तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद् बुधः। धर्मार्थं केवलं ग्राह्यं ह्यन्यथा पतितो भवेत्॥९॥

बुद्धिमान् व्यक्ति केवल धर्म-कार्यों के लिए और सबके सामने ही तृण, काष्ठ, फल और पुष्प ले जावे, तदन्यथा ऐसा करने पर वह पतित हो जाता है॥९॥

तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः। क्षुधार्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः॥१०॥

हे ब्राह्मणो! [कहीं यात्रा पर जा रहे] पथिक यदि क्षुधा से व्याकुल हों तो वे दूसरे के खेत से तिल, मूँग और यव (जौ) आदि की एक-एक मुट्ठी ग्रहण कर सकते हैं, यदि वे क्षुधार्त नहीं हों तो तब ऐसा नहीं कर सकते। ऐसा धर्म के ज्ञाता मुनियों ने कहा है॥१०॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत्। व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम्[1]॥११॥
प्रेत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः। छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति॥१२॥

पाप करके धार्मिक कृत्य के बहाने (उस पाप से मुक्ति हेतु) किसी व्रत का अनुष्ठान न करे। व्रत के द्वारा पाप को छिपाने वाले और स्त्री तथा शूद्र आदि को धोखा देने वाले ब्राह्मण की इस लोक में तथा परलोक में भी ब्रह्मवादी अर्थात् वेद के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा निन्दा की जाती है तथा इस प्रकार छल-कपट वाले व्रत का फल राक्षसों को प्राप्त होता है॥११-१२॥

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेन यो वृत्तिमुपजीवति। स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते॥१३॥

अपने वर्ण या आश्रम सम्बन्धी लिङ्ग (धार्मिक चिह्न) से रहित जो व्यक्ति किसी अन्य के लिङ्ग (धार्मिक चिह्न) वाला वेश धारण करके आजीविका चलाता है तो वह उन वास्तविक लिङ्ग धारकों के पाप का भागी होता है और मृत्यु के पश्चात् पशु-पक्षियों की योनि में जन्म प्राप्त करता है॥१३॥

बैडालव्रतिनः पापा लोके धर्मविनाशकाः। सद्यः पतन्ति पापेन कर्मणस्तस्य तत्फलम्॥१४॥

धर्म का नाश (पाप) करने वाले और बिडाल व्रती (बिल्ली की तरह घात लगाकर झपटने वाले) पापियों का अपने पाप के कारण शीघ्र ही [नरक में] पतन होता है। उनके उस दुष्कर्म का वैसा ही फल उनको मिलता है॥१४॥

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वामाचारांस्तथैव च। पाञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥१५॥

पाखण्डी, निषिद्ध कर्म करने वाले, वाममार्गी, पाञ्चरात्र तथा पाशुपत मतानुयायियों को वाणी मात्र से भी सम्मान नहीं देना चाहिए॥१५॥

वेदनिन्दारतान् मर्त्यान्देवनिन्दारतांस्तथा। द्विजनिन्दारतांश्चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥१६॥

जो मनुष्य वेद की निन्दा, देव-निन्दा तथा द्विज-निन्दा करने में तत्पर हों उनका मन से भी स्मरण नहीं करना चाहिए॥१६॥

याजनं योनिसम्बन्धं सहवासञ्च भाषणम्। कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद्यत्नेन वर्जयेत्॥१७॥

ऐसे दुष्ट पुरुषों से यज्ञ करवाने, इनसे वैवाहिक सम्बन्धी बनाने, उनके साथ सहवास एवं वार्तालाप करने से भी सत्पुरुष का पतन हो जाता है, अतः उनके साथ सम्पर्क को यत्नपूर्वक वर्जित करे॥१७॥

देवद्रोहाद्गुरुद्रोहः कोटि कोटिगुणाधिकः। ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम्॥१८॥

१. दम्भनम्=वञ्चनम् (नन्दन कृत मनुस्मृति व्याख्या)। व्रतेन स्त्रीशूद्रमूर्खादिजन मोहनं... नानुतिष्ठेत्। मनुस्मृति ४/१९८ पर कुल्लूक भट्टकृत व्याख्या।

देवता के प्रति द्रोह से गुरु के प्रति द्रोह कोटि (करोड़ों) गुना अधिक पापजनक होता है, उससे भी कोटि गुना अधिक पाप (सदुपदेश युक्त) ज्ञान की निन्दा एवं नास्तिकता से लगता है॥ १८॥

गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया। कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः॥ १९॥

गायों से या देवों को माध्यम बनाकर या ब्राह्मणों के माध्यम से या कृषि से या राजकीय सेवा से जीविकोपार्जन करने वाले लोग यदि धर्माचरण से रहित हैं तो उनके कुल निम्न स्तरीय (अर्थात् हीन कुल) हो जाते हैं॥ १९॥

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥ २०॥

निन्दित विवाह (राक्षस, पैशाच आदि विवाह करने से), नित्य-नैमित्तिक आदि क्रियाओं को न करने, वेद का अध्ययन न करने तथा ब्राह्मणों का अनादर करने से उच्च कुल भी हीन (निम्न) कुल हो जाते हैं॥ ।२०॥

अनृतात्पारदार्याच्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणात्। अश्रौतधर्माचरणात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २१॥

असत्य भाषण, परस्त्री-गमन, अभक्ष्य-भक्षण तथा वेद-विरुद्ध धर्म का आचरण करने से कुल शीर्ष ही नष्ट हो जाता है॥ २१॥

अश्रोत्रियेषु वै दानाद्वृषलेषु तथैव च। विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २२॥

वेदाध्ययन रहित एवं विहित आचार का पालन न करने वाले ब्राह्मण को तथा वृषल (अधर्मी) पुरुष को दान देने से शीघ्र ही दाता के कुल का नाश हो जाता है॥ २२॥

नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम्। न शूद्रराज्ये निवसेन्न पाखण्डजनैर्वृते॥ २३॥

जिस गाँव में अधर्मी और पाखण्डी लोग अधिक संख्या में निवास करते हों जहाँ व्याधियाँ अधिक होती हों तथा जहाँ शूद्र का राज्य हो वहाँ निवास न करे॥ २३॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्वपश्चिमयोः शुभम्। मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद् द्विजः॥ २४॥

हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्यवर्ती देश तथा पूर्वी समुद्र के तट से पश्चिमी समुद्र तट के मध्यवर्ती देश में निवास के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं निवास न करे[1]॥ २४॥

कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः। पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः॥ २५॥

अथवा जहाँ कृष्णसार- मृग स्वभावतः नित्य विचरण करता है अथवा जहाँ सुप्रसिद्ध पवित्र नदियाँ बहती हैं। ब्राह्मण को वहाँ निवास करना चाहिए॥ २५॥

अर्धक्रोशान्नदीकूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः। नान्यत्र निवसेत्पुण्यां नान्त्यजग्रामसन्निधौ॥ २६॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण को नदी के तट से आधा कोस तक की दूरी की भूमि को त्याग कर उसके बाहर की पवित्र भूमि में निवास करना चाहिए। उसके अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए। अनत्यजों के गाँव के निकट भी निवास नहीं करना चाहिए॥ २६॥

न संवसेच्च पतितैर्न चण्डालैर्न पुक्कसैः। न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः॥ २७॥

१. यह श्लोक मनुसमृति २/२१ के आशय पर आधारित है।

विप्र कभी भी पतितों, चण्डालों, पुक्कसों, मूर्खों, धन-बल आदि से मदोन्मत्त लोगों, अन्त्यजों तथा अन्त्यावसायियों[1] के साथ निवास नहीं करना चाहिए॥२७॥

एकशय्यासनं पंक्तिर्भाण्डे पक्वान्नमिश्रणम्। याजनाध्यापनं योनिस्तथैव सहभोजनम्॥२८॥
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च। एकादशैते निर्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंज्ञिताः॥२९॥

उनके साथ एक शय्या में एक साथ शयन करना, एक आसन पर एक साथ बैठना, एक पंक्ति में बैठकर भोजन, अपने और उनके भोजन-पात्रों को तथा पकाये हुए भोजन को परस्पर मिलाना, उनका यज्ञ करना, उनका अध्यापन, उनके साथ विवाह-सम्बन्ध, उनके साथ भोजन करना, उनके साथ अध्ययन तथा उनके साथ मिलकर यज्ञ करना ये एकादश दोष संकरीकरण के हेतु कहे गये हैं॥२८-२९॥

समीपे वा व्यवस्थानात्पापं संक्रमते नृणाम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सङ्करं वर्जयेद् बुधः॥३०॥

ऐसे व्यक्तियों के समीप में रहने वाले मनुष्य पर भी उनका पाप संक्रमित हो जाता है। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति सभी प्रकार के प्रयत्न करके ऐसे संकरीकरण के हेतुओं को वर्जित करे॥३०॥

एकपंक्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्। भस्मना कृतमर्यादा न तेषां सङ्करो भवेत्॥३१॥

एक पंक्ति में बैठे हुए व्यक्ति जब एक-दूसरे का स्पर्श नहीं करते हों तथा उनके मध्य में भस्म से सीमा रेखा बना दी गयी हो तो उनको संकरीकरण दोष नहीं लगता॥३१॥

अग्निना भस्मना चैव सलिलेन विशेषतः। द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पंक्तिर्विभिद्यते॥३२॥

अग्नि, भस्म, जल (के छिड़काव), द्वार, स्तम्भ तथा मार्ग (जब दो व्यक्तियों के मध्य में हों तो तब) इन छः से पंक्ति विभक्त हो जाती है॥३२॥

न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादं चैव पैशुनम्। परक्षेत्रे गां चरन्तीं न चाचक्षति कस्यचित्।
न संवसेत्सूतकिना न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत्॥३३॥

व्यर्थ का बैर और कलह तथा चुगली किसी से भी न करे और दूसरों के खेत में चरती हुई गाय के विषय में किसी से कुछ न कहे। जिसको सूतक लगा हो उसके साथ निवास न करे और न किसी को मर्माहत करे॥३३॥

न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शवाग्निकम्। परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनं वा कदाचन॥३४॥

विद्वान् व्यक्ति किसी दूसरे को सूर्य-मण्डल या इन्द्रधनुष या चिता की अग्नि, या चन्द्रमण्डल कभी न दिखलावे॥३४॥

न कुर्याद्बहुभिः सार्धं विरोधं बन्धुभिस्तथा[2]। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥३५॥

अनेक लोगों के प्रति तथा अपने बन्धु-बान्धवों के प्रति विरोध न करे। जो व्यवहार स्वयं अपने को प्रतिकूल लगे वैसा व्यवहार दूसरों के प्रति भी न करे॥३५॥

तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्न नक्षत्राणि विनिर्दिशेत्। नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वा द्विजोत्तमः॥३६॥

१. चाण्डालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहिकस्तथा। मागधायोगवौ चैव सप्तैतेऽन्त्यावसायिनः॥ संस्कृत हिन्दी कोश
२. वा कदाचन

श्रेष्ठ द्विज पक्ष की तिथि न बतलावे तथा नक्षत्रों का निर्देश न करे। वह रजस्वला स्त्री से वार्तालाप न करे तथा अशुचि व्यक्ति से भी वार्तालाप न करे॥३६॥

न देवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत्। न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दाञ्च वर्जयेत्। वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥३७॥

देवता, गुरु तथा ब्राह्मणों को दिये जा रहे दान को रोकने की चेष्टा न करे। स्वयं अपनी प्रशंसा न करे और दूसरों की निन्दा कदापि न करे। वेद की निन्दा तथा देवता की निन्दा को प्रयत्न पूर्वक वर्जित करो॥३७॥

यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान्वा निन्दति द्विजः। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रोष्विह मुनीश्वराः॥३८॥

हे मुनीश्वरो! जो द्विज देवों, ऋषियों, ब्राह्मणों अथवा वेदों की निन्दा करता है, उसके लिए शास्त्रों में (पाप से मुक्ति हेतु) कोई भी प्रायश्चित्त नहीं बतलाया गया है॥३८॥

निन्दयेद्वै गुरून्देवान्वेदं वा सोपबृंहणम्। कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः॥३९॥

जो भी व्यक्ति गुरुजनों, देवों तथा इतिहास-पुराण सहित वेद-वेदाङ्गों की निन्दा करता है, उसको सैकड़ों करोड़ वर्षों से भी अधिक काल तक रौरव नरक में यातना दी जाती है॥३९॥

तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम्। कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत्॥४०॥

देवों, ऋषियों ब्राह्मणों तथा वेदों की निन्दा जहाँ हो रही हो वहाँ यदि द्विज (असमर्थ) हो तो वह मौन रहे तथा अपने कान बंद करके वहाँ से अन्यत्र चला जाय तथा उनकी ओर देखे भी नहीं॥४०॥

वर्जयेद्वै रहस्यञ्च परेषां गूहयेद्बुधः। विवादं स्वजनैः सार्धं न कुर्याद्वै कदाचन॥४१॥

विद्वान् व्यक्ति दूसरों के रहस्य को जानने का यत्न न करे और उसे जानने पर भी गुप्त रखे, किसी को न बतलावे। अपने आत्मीय जनों के साथ कदापि विवाद न करे॥४१॥

न पापं पापिनां ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमाः। स तेन तुल्यदोषी स्यादनृते द्विगुणं तथा[१]॥४२॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! पापियों के पाप की चर्चा न करे और पाप-रहित व्यक्ति को पापी न कहे। पापी के विषय में सत्य कहने वाला भी उसी के समान दोषी होता है और मिथ्या दोषारोपण करने पर उसके दुगुने दोष का भागी होता है॥४२॥

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात्। तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥४३॥

जिन व्यक्तियों पर मिथ्या दोष लगाया जाता है, उनके रुदन से जो आंसू गिरते हैं, वे उन मिथ्या आरोप लगाने वालों के पुत्रों और पशुओं का नाश कर देते हैं॥४३॥

ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे। दृष्टं विशोधनं सद्भिर्नास्ति मिथ्याभिशंसने॥४४॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णस्तेय तथा गुरुपत्नी गमन जैसे महापापों का प्रायश्चित्त सत्पुरुषों ने बतलाया है, किन्तु मिथ्या दोषारोपण का कोई प्रायश्चित्त होता ही नहीं है॥४४॥

१. मिथ्यादिदोषवान् भवेत्

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनञ्चानिमित्ततः। नास्तं यातं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम्।
तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तरगामिनम्॥४५॥

बिना किसी प्रयोजन के सूर्योदय और चन्द्रोदय को नहीं देखना चाहिए और न उनको अस्त होते हुए तथा न जल में उनके प्रतिबिम्ब को देखे। उनको आकाश के मध्य में आया हुआ या ग्रहण लगा हुआ भी न देखे। उनको वस्त्र से आच्छादित करके अथवा दर्पण में प्रतिबिम्बित रूप में भी न देखे॥४५॥

न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन। न च मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम्॥४६॥
नाशुचिः सूर्यसोमादीन् ग्रहानालोकयेद्बुधः। पतितव्यङ्गचण्डालानुच्छिष्टान्नावलोकयेत्॥४७॥

कदापि नग्न स्त्री या नग्न पुरुष को न देखे। मल-मूत्र का त्याग करते हुए अथवा मैथुन में संलग्न व्यक्ति को भी न देखे। अशुद्धि की स्थिति में सूर्य, चन्द्र तथा ग्रह-नक्षत्रों की ओर न देखे। पतित, विकलांग, चण्डाल तथा जूठे मुख वाले व्यक्ति की ओर न देखें॥४६-४७॥

नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वावगर्वितः। न स्पृशेत्प्रेतसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्।
न तैलोदकयोश्छायां न पत्नीं भोजने सति॥४८॥

जूठे मुख से अथवा अहंकार से युक्त होकर अन्य व्यक्ति से वार्तालाप न करे। जिस व्यक्ति ने प्रेत (मृतक) का स्पर्श किया हो [वह जब तक स्नान करके शुद्ध न हो जाय तब तक] उसका स्पर्श न करे। जब गुरु क्रोध से युक्त हो तब उसके मुख को न देखे। तेल में या जल में अपनी परछाईं को तथा भोजन करती हुई अपनी पत्नी को न देखे॥४८॥

न मुक्तबन्धनी गां वा[१] नोन्मत्तं मत्तमेव वा। नाश्नीयात् भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत मेहनीम्।
क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम्॥४९॥

बन्धन-मुक्त गाय को, पागल को तथा मदोन्मत्त व्यक्ति को न देखे। पत्नी के साथ भोजन न करे। जब पत्नी लघुशंका कर रही हो, क्षींक रही हो या जम्हाई ले रही हो या सुखपूर्वक आराम से बैठी हो तो उस समय उसको न देखे॥४९॥

नोदके चात्मनो रूपं न कूलं श्वभ्रमेव वा। न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन॥५०॥

जल में अपना रूप न देखे। नदी या तालाब के तट को तथा किसी गढ्ढे को और मूत्र को कभी न लांघे और न कदाचिदपि उस पर बैठे॥५०॥

न शूद्राय मतिंदद्यात्कृशरं पायसं दधि। नोच्छिष्टं वा घृतमधु न च कृष्णाजिनं हविः।
न चैवास्मै व्रतं दद्यात् न च धर्मं वदेत् बुधः॥५१॥

शूद्र को उपदेश न दे और उसे कृशर (तिल, चावल आदि मिश्रित खाद्य सामग्री), खीर, दही, घी, मधु, कृष्ण-मृगचर्म, हवन-सामग्री और कोई जूठी खाद्य सामग्री भी उसे न प्रदान करे। विद्वान् व्यक्ति न तो उसे कोई व्रत करने को कहे और न धर्म का उपदेश दे॥५१॥

---

१. नियुक्तबन्धनाङ्गां वा

न च क्रोधवशं गच्छेद् द्वेषं रागञ्च वर्जयेत्। लोभं दम्भं तथा शाठ्यमसूयां ज्ञानकुत्सनम्[१]।
मानं मोहं तथा क्रोधं द्वेषञ्च परिवर्जयेत्॥५२॥

विद्वान् गृहस्थ को कभी भी क्रोध के वशीभूत नहीं होना चाहिए। राग, द्वेश, लोभ, दम्भ (दिखावा, अहंकार), शठता (दुष्टता), ईर्ष्या, ज्ञान की निन्दा, व्यर्थ का अभिमान, मोह, क्रोध और द्वेष को सदा के लिए त्याग दे॥५२॥

न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यञ्च ताडयेत्। न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् क्वचित्॥५३॥

कभी किसी को पीड़ित न करे। [कोई त्रुटि करने वाले] पुत्र और शिष्य को सुधारने के लिए प्रताडित करे। हीन व्यक्तियों की तथा तीक्ष्णमति (तीखे स्वभाव) वालों की सेवा कभी भी न करे॥५३॥

नात्मानञ्चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत्। न च शिष्टानसत्कुर्यान्नात्मानं शंसयेद्बुधः॥५४॥

ज्ञानी पुरुष अपना अनादर स्वयं कभी भी न करे। दीनता की भावना का प्रयत्नपूर्वक त्याग करे। सत्पुरुषों का कभी भी अनादर न करे तथा स्वयं अपनी प्रशंसा न करे॥५४॥

न नखैर्विलिखेद् भूमिं गां च संवेशयेन्न हि। न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वतेषु च पर्वतान्॥५५॥

अपने नखों से भूमि पर न लिखे तथा गाय की पीठ पर कभी न बैठे। एक नदी में दूसरी नदी की तथा एक पर्वत में दूसरे पर्वत की चर्चा (या प्रशंसा) न करे॥५५॥

आवासे भोजने वापि[२] न त्यजेत्सहयायिनम्। नावगाहेदपो नग्नो वह्निं नाति व्रजेत्पदा॥५६॥

अपने साथ चलने वाले यात्री को भोजन और आवास हेतु अकेला न छोड़े (अर्थात् उसको भी भोजन और आवास हेतु अपने साथ रखे)। जल में नग्न होकर स्नान न करे तथा अग्नि को अपने पैर से न लांघे॥५६॥

शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्। न शस्त्रसर्पैः क्रीडेत न स्वानि खानि च स्पृशेत्।
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह व्रजेत्॥५७॥

अपने शिर पर लगाने के पश्चात् बचे हुए तेल को शरीर पर नहीं मलना चाहिए। सर्पों और शस्त्रों से खिलवाड़ न करे तथा अपनी (गोपनीय) इन्द्रियों का स्पर्श न करे एवं अपने गुप्ताङ्गों के रोमों का भी स्पर्श न करे और अशिष्ट व्यक्ति के साथ कहीं न जावे॥५७॥

न पाणिपादवाङ्नेत्रचापल्यं समुपाश्रयेत्[३]। न शिश्नोदरचापल्यं न च श्रवणयोः क्वचित्॥५८॥

अपने हाथ, पैर या वाणी (या जिह्वा) से या नेत्रों से या लिङ्ग से अथवा पेट से या कानों से भी कोई चञ्चलता न करे॥५८॥

न चाङ्गनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत्। नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन॥५९॥

अपने किसी अङ्ग से अथवा नखों से शब्द न निकाले। अञ्जलि से जल नहीं पीना चाहिए। अपने हाथों से या पैरों से जल को न पीटे॥५९॥

---

१. तथा वर्ज्यं यात्राविज्ञानकुत्सनम्

२. आवसेत् तेन नैवापि

३. न पाणिपादावग्नौ च चापलानि समारयेत्। संशोधित पाठ पद्मपुराण ३/१६/५९ में भी है।

न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च। न म्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच्च पदासनम्॥६०॥

ईंट-पत्थर से या फल से भी वृक्ष के फल न तोड़े। म्लेच्छों की भाषा को न सीखे और अपने बैठने के आसन को पैर से न खींचे॥६०॥

न भेदनमधिस्फोटं छेदनं वा विलेखनम्। कुर्याद्विमर्दनं धीमान्नाकस्मादेव निष्फलम्॥६१॥

बुद्धिमान् व्यक्ति अकारण काट-पीट तोड़फोड़ छेद करने तथा कहीं पर भी लेखन या खुरचने की चेष्टा न करे तथा अकारण अपने शरीर के अङ्गों को भी नहीं मरोड़ना चाहिए॥६१॥

नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् वृथाचेष्टाञ्च नाचरेत्। न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्॥६२॥

खाद्य सामग्री को गोद में रखकर नहीं खाना चाहिए। व्यर्थ में कोई कार्य करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। [स्नातक गृहस्थ द्विज को जब मन हो तब] नृत्य, अथवा गायन और वाद्य-वादन नहीं करना चाहिए॥६२॥

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः। न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोषयेद् वाक्पतेरपि[1]॥६३॥

दोनों हाथों को एक साथ मिला कर अपना शिर नहीं खुजलाना चाहिए। देवताओं की स्तुति लोक-भाषा में लिखित स्तोत्रों से नहीं करनी चाहिए, भले ही वह स्तोत्र बृहस्पति या तत्सदृश विद्वान् न लिखे हों॥६३॥

नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत नाप्सु विण्मूत्रमाचरेत्। नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्॥६४॥

अक्ष-क्रीडा (जुआ या पाशों को खेलना) न करे, व्यर्थ में न दौड़े तथा जल में मल-मूत्र विसर्जन न करे। जूठे मुख सहित (शय्या में) शयन न करे तथा [जल में] नंगा होकर स्नान न करे॥६४॥

न गच्छेन्न पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्। न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत्॥६५॥

[नंगा होकर] कहीं नहीं जावे और न पढ़े और न अपने शिर का स्पर्श करे। दाँतों से अपने नखों तथा केशों को न काटे। सोये हुए व्यक्ति को नहीं जगावे॥६५॥

न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्जयेत्। नैकः सुप्याच्छून्यगृहे स्वयं नोपानहौ हरेत्॥६६॥

उगते हुए सूर्य की धूप को नहीं तापना चाहिए। चिता के धुएँ के पास से दूर हट जाना चाहिए। जन शून्य घर में अकेला न सोये तथा अपने जूतों को स्वयं न ढोये॥६६॥

नाकारणाद्वा निष्ठीवेत् न बाहुभ्यां नदीं तरेत्। न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन॥६७॥

अकारण कहीं न थूके और अपनी भुजाओं के बल पर तैर कर नदी पार जाने की चेष्टा न करे तथा अपने एक पैर से रगड़ कर दूसरे पैर को धोने का प्रयास कभी न करे॥६७॥

नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद् बुधः। नापि प्रसारयेद्देवं ब्राह्मणान् गामथापि वा।
वाय्वग्निगुरुविप्रान् वा सूर्यं वा शशिनं प्रति॥६८॥

बुद्धिमान् व्यक्ति अग्नि में अपने पैरों को न तपाये और कांसे की थाली में पैरों को न धोये। अपने पैरों को देवता, ब्राह्मण, गौ, वायु, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, सूर्य या चन्द्रमा की ओर नहीं फैलाना चाहिए॥६८॥

१. भेषजैरपि

अशुद्धःशयनं यानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम्। बहिर्निष्क्रमणञ्चैव न कुर्वीत कथञ्चन॥६९॥

शरीर यदि अशुद्ध हो तो तब शयन (शय्या में सोना), वाहन में बैठकर जाना, स्वाध्याय, दान, भोजन तथा घर से निकल कर बाहर घूमना फिरना कदापि न करे॥६९॥

स्वप्नमध्ययनं यानमुद्वर्तं भोजनं गतिम्। उभयोः सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने चैव वर्जयेत्॥७०॥

दोनों सन्ध्याओं के समय तथा मध्याह्न काल में शयन, अध्ययन, वाहन से चलना, उबटन लगाना, भोजन करना तथा चलना-फिरना वर्जित करे॥७०॥

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्। न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत्॥७१॥

ब्राह्मण जिस समय जूठे मुख, जूठे हाथ वाला हो तो तब अपने हाथ से अथवा पैर से भी गौ, ब्राह्मण, अग्नि, तथा देव-प्रतिमा का स्पर्श न करे॥७१॥

नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान् कीर्तयेदृषीन्। नावगाहेदगाधाम्बु न वेगान् धारयेद् हठात्॥७२॥

अपवित्रता या अशौच की स्थिति में अग्नि की परिचर्या (सेवा), देवों तथा ऋषियों के नाम का उच्चारण, अगाध जल में अवगाहन (डुबकी लगाना) न करे तथा मल-मूत्र के वेग को न रोके॥७२॥

न वामहस्तेनोद्धृत्य पिबेद्वक्त्रेण वा जलम्। नोत्तरेदनुपस्पृश्य नाप्सु रेतः समुत्सृजेत्॥७३॥

बाँये हाथ से जल पात्र को उठा कर या (नदी, तालाब अथवा किसी बड़े बरतन में स्थित) जल में मुख डालकर उस जल को नहीं पीना चाहिए। बिना आचमन या बिना कुल्ला किये जल में न उतरे। जल में वीर्य का त्याग न करे॥७३॥

अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा। व्यतिक्रमेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत्॥७४॥

अपवित्र (मल-मूत्र आदि) से लिप्त वस्तु को या रक्त या रक्त से रञ्जित वस्तु तथा विष को जल में न फेंके। तीव्र वेग से बहती हुई नदी को नहीं लाँघना चाहिए। जल में मैथुन नहीं करना चाहिए॥७४॥

चैत्यं वृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्सृजेत्। नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान्।
तुषाङ्गारकरीषं[1] वा नाधितिष्ठेत्कदाचन॥७५॥

चैत्यवृक्ष (गूलर का वृक्ष या पवित्र स्थान पर स्थित पवित्र वृक्ष) को न काटे। जल में न थूके तथा जल में हड्डी एवं भस्म, कपाल (खोपड़ी), केश तथा काँटों को न डाले। तुष (भूसी) तथा करीष (गोबर के कण्डों) पर न बैठे॥७५॥

न चाग्निं लंघयेद्धीमान्नोपदध्यादधः क्वचित्। न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद्बुधः॥७६॥

बुद्धिमान् व्यक्ति अग्नि को न लाँघे तथा अग्नि को अपनी शय्या के नीचे भी न रखे और न अग्नि में पैर लगावे तथा मुख से फूंक मार कर अग्नि को न जलावे॥७६॥

न कूपमवरोहेत नावेक्षेताशुचिः क्वचित्। अग्नौ न प्रक्षिपेदग्निं नाद्भिः प्रशमयेत्तथा॥७७॥

कुएं में न उतरे तथा अशुचि (अपवित्र) अवस्था में कुएँ को न देखे। एक स्थान पर प्रज्वलित अग्नि पर दूसरे स्थान से लाई गयी अग्नि को न डाले। अग्नि को जल से न बुझावे॥७७॥

१. ओषाङ्गारकरीषं

सुहृन्मरणमार्तिं वा न स्वयं श्रावयेत्परान्। अपण्यं कूट-पण्यं वा विक्रये न प्रयोजयेत्॥७८॥

अपने मित्र की मृत्यु अथवा उसके कष्ट का समाचार स्वयं अपने मुख से दूसरों को न सुनावे। जो वस्तु बिक्री योग्य न हो या नकली वस्तु हो उसका विक्रय न करे॥७८॥

न वह्निं मुखनिश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः। पुण्यस्नानोदकस्थानं सीमान्तं वा कृशेन्न तु॥७९॥

बुद्धिमान् व्यक्ति मुख से फूँक मार कर अग्नि को न प्रज्वलित करे तथा अशुचि अवस्था में भी अग्नि को न प्रज्वलित करे। स्नान योग्य पवित्र जल वाली भूमि तथा ग्राम की सीमा पर स्थित भूमि को कृषि हेतु न जोते॥७९॥

न भिन्द्यात्पूर्वसमयं सत्योपेतं कदाचन। परस्परं पशून् व्यालान् पक्षिणो नावबोधयेत्॥८०॥

पहले की गयी सत्य-प्रतिज्ञा को कदापि न तोड़े। पशुओं, सर्पों तथा पक्षियों को परस्पर लड़ने के लिए प्रेरित न करे॥८०॥

परबाधां न कुर्वीत जलवातातपादिभिः। कारयित्वा स्वकर्माणि कारून् पश्चान्न वञ्चयेत्।
सायं प्रातर्गृहद्वारान् भिक्षार्थं नावघाटयेत्[1]॥८१॥

जल, वायु तथा धूप आदि से किसी दूसरे को बाधा या पीड़ा न पहुँचावे। शिल्पियों से अपना कार्य करवा कर बाद में उनको पारिश्रमिक देते समय ठगना नहीं चाहिए। सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षा माँगने के लिए किसी के भी द्वार नहीं खटखटाने चाहिए॥८१॥

बहिर्माल्यं बहिर्गन्धं भार्यया सह भोजनम्। विगृह्यवादं कुद्वारप्रवेशं च विवर्जयेत्॥८२॥

दूसरे के द्वारा प्रयोग के पश्चात् बाहर रखी गयी माला तथा प्रयोग के बाद फेंके गये सुगन्धित पदार्थ को ग्रहण न करे। पत्नी के साथ भोजन न करे। किसी के साथ विवाद न करे तथा कुद्वार से घर में प्रवेश न करे॥८२॥

न खादन् ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पन्न हसन् बुधः। स्वमग्निं नैव हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत्॥८३॥

विद्वान् ब्राह्मण को भोजन करते हुए खड़ा नहीं होना चाहिए और हँसते हुए नहीं बोलना चाहिए। अपने घर की अग्नि का हाथ से स्पर्श न करे तथा अधिक समय तक जल में न रहे॥८३॥

न व्यजनेनोपधमेन्न[2] शूर्पेण न पाणिना। मुखेनैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत॥८४॥

अग्नि को न पंखे की हवा से न सूप से और न हाथ से हवा करके प्रज्वलित करे। मुख की हवा से ही अग्नि को प्रज्वलित करे, क्योंकि मुख से ही अग्नि प्रकट हुई थी (मुखादग्निरजायत वाज० सं० ३१/१२)॥८४॥

परस्त्रियं न भाषेत नायाज्यं याजयेद् द्विजः। नैकश्चरेत्सभां विप्रःसमवायं च वर्जयेत्।
देवतायतनं गच्छेत्कदाचिन्नाप्रदक्षिणम्॥८५॥

परस्त्री से वार्तालाप नहीं करना चाहिए। जो अयाज्य (यज्ञानुष्ठान के अनधिकारी) हैं, उनका

१. सायं प्रातर्गृहद्वारान्रक्षार्थं परिघट्टयेत्। पद्मपुराण ३/५५/८४

२. न पक्षकेणोपधमेन्न।

यज्ञ ब्राह्मण न करवाये। ब्राह्मण अकेले सभा में प्रवेश न करे, किन्तु अपने साथ अधिक लोगों की भीड़ भी सभा में न ले जाय। देवालय में उसे दाँये रख कर प्रवेश करे बाँयी ओर से नहीं॥८५॥

न वीजयेद्वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत्। नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह॥८६॥

वस्त्र से हवा न करे और देवालय में जाकर शयन न करे। मार्ग में अकेले नहीं जाना चाहिए और न अधर्मी जनों के साथ जाना चाहिए॥८६॥

न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैः पतितैर्न वा। नोपानद्वर्जितोऽध्वानं जलादिरहितस्तथा॥८७॥

मार्ग में व्याधिग्रस्त रोगियों, शूद्रों तथा पतितों के साथ भी नहीं चलना चाहिए। मार्ग में कहीं बिना जूता पहने न जाय तथा जल आदि अपेक्षित सामग्री को साथ लिए बिना न जाय॥८७॥

न रात्रौ नारिणा सार्धं न विना च कमण्डलुम्।
नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत्क्वचित्॥८८॥

न रात्रि में, न शत्रु के साथ तथा न बिना कमण्डल के कहीं की भी यात्रा करनी चाहिए। कहीं भी अग्नि, गौ तथा ब्राह्मण आदि के मध्य से नहीं जाना चाहिए॥८८॥

निवत्स्यन्तीं न वनितामतिक्रामेद् द्विजोत्तमाः।
न निन्देद्योगिनः सिद्धान् व्रतिनो वा यतींस्तथा॥८९॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! आश्रय की कामना से आयी हुई स्त्री की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। योगियों, सिद्धों, व्रत-परायण जनों तथा संन्यासियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए॥८९॥

देवतायतनं प्राज्ञो न देवानां चैव सत्रिणाम्। नाक्रामेत्कामतश्छायां ब्राह्मणानां गवामपि॥९०॥

बुद्धिमान् पुरुष देवालयों, देवताओं, यज्ञ-कर्ता ब्राह्मणों तथा गायों की छाया को इच्छा करके न लांघे॥९०॥

स्वां तु नाक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः। नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत्कदाचन॥९१॥

पतित आदि दुष्टों तथा रोगियों से अपनी छाया को भी न लांघने दे। अङ्गार, भस्म और केश आदि में कभी न बैठे॥९१॥

वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम्। न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयञ्च पिबेद् द्विजाः॥९२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे गार्हस्थ्यधर्मनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

झाडू की धूल एवं स्नान करने तथा वस्त्र धोने के बाद बचे हुए जल के छींटों को अपने ऊपर गिरने से वर्जित करे (रोके)। ब्राह्मण अभक्ष्य-भक्षण न करे तथा (मदिरा आदि) अपेय का पान न करे॥९२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'गृहस्थ-धर्म-निरूपण' नामक सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयः

व्यास उवाच

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि वान्यतः। स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुंक्ते ह्यनापदि॥१॥

व्यास जी बोले- ब्राह्मण को शूद्र का अन्न नहीं खाना चाहिए। जो ब्राह्मण आपद्-काल न होने पर भी मोहवश (अज्ञान में) या अन्य किसी कारणवश शूद्र का अन्न खाता है, वह शूद्रयोनि में जन्म पाता है॥१॥

षण्मासान् यो द्विजो भुंक्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्। जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥२॥

जो द्विज छः मास तक शूद्र का गर्हित (निन्दित) अन्न खाता है, वह जीवित रहते हुए (इसी जन्म में) शूद्र हो जाता है तथा मृत्यु के पश्चात् श्वान की योनि में जन्म पाता है॥२॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः। यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात्॥३॥

हे मुनीश्वरो! मृत्यु के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र में से जिसका अन्न पेट में रहता है, वह मृतात्मा उसी योनि में जन्म प्राप्त करता है॥३॥

राजान्नं[1] नर्तकान्नञ्च तक्ष्णोऽन्नं चर्मकारिणः। गणान्नं गणिकान्नञ्च षडन्नानि च वर्जयेत्॥४॥

राजा, नर्तक, बढ़ई, चर्मकार, गण (अनेक मनुष्यों का संगठन) तथा गणिका (वेश्या) - इन छः लोगों के अन्न को वर्जित करे॥४॥

चक्रोपजीवि-रजक-तस्कर-ध्वजिनां तथा। गन्धर्व-लोहकारान्नं सूतकान्नञ्च वर्जयेत्॥५॥

तेली, धोबी, चोर, मद्य-विक्रेता, गायक, लोहार तथा सूतक वाले का अन्न वर्जित करे॥५॥

कुलालचित्रकारान्नं वार्धुषेः पतितस्य च। सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च॥६॥
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च। स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च॥७॥

कुम्हार, चित्रकार, सूदखोर, पतित, स्वर्णकार, नट, व्याध, बन्धन में रखा अपराधी, रोगी, चिकित्सक, पुंश्चली (व्यभिचारिणी) स्त्री, दण्डित करने वाला जल्लाद, चोर, नास्तिक तथा देवता की निन्दा करने वाले का अन्न न खावे॥६-७॥

सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः। भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे॥८॥

सोमलता के विक्रेता का अन्न तथा चाण्डाल का अन्न विशेष रूप से वर्जित करे। जो व्यक्ति स्त्री के वशीभूत हो गया हो तथा जिसके घर में उसकी पत्नी का उपपति रहता हो उसका अन्न वर्जित करे॥८॥

उच्छिष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः। अपंक्त्यन्नञ्च संघान्नं शस्त्रजीवस्य चैव हि॥९॥
क्लीबसंन्यासिनश्चान्नं मत्तोन्मत्तस्य चैव हि। भीतस्य रुदितस्यान्नमवकृष्टं परिक्षुतम्[2]॥१०॥

---

१. गणान्नं, २. परिग्रहम्

उच्छिष्ट (जूठे मुख वाला) व्यक्ति, कृपण, उच्छिष्टभोक्ता (जूठा खाने वाला) का अन्न नहीं खाना चाहिए। पंक्ति से बाहर दिया गया अन्न, सामूहिक (एक साथ अनेक लोगों) का अन्न, शस्त्र का प्रयोग या विक्रय करके जीविका चलाने वाले का अन्न, नपुंसक, संन्यासी, मदोन्मत्त, पागल, भयभीत एवं रोते हुए व्यक्ति का अन्न, अभिशप्त अन्न तथा जिस अन्न पर किसी ने छींक दिया हो उसे नहीं खाना चाहिए॥९-१०॥

ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च। वृथापाकस्य चैवान्नं शठान्नं चतुरस्य[१] च॥११॥

ब्राह्मणों के प्रति द्वेष करने वाले एवं पाप कर्म में रुचि वाले का अन्न तथा श्राद्ध का अन्न, सूतक वाले का अन्न, वृथा पाकी (ईश्वर को समर्पित न कर केवल अपना पेट भरने के लिए भोजन बनाने वाले) का अन्न, दुष्ट व्यक्ति का अन्न तथा रोग-पीड़ित व्यक्ति का अन्न नहीं खाना चाहिए॥११॥

अप्रजानान्तु नारीणां भृतकस्य तथैव च। कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा॥१२॥

सन्तान-रहित (बाँझ) स्त्री के द्वारा बनाया गया अन्न, वेतनभोगी या भाड़े के श्रमिक का अन्न, कारुक[२] (कारीगर) का अन्न तथा विशेष रूप से शस्त्र-विक्रेता का अन्न नहीं खाना चाहिए॥१२॥

शौण्डान्नं घाण्टिकानं च भिषजामन्नमेव च। विद्धप्रजननस्यान्नं परिवेत्रन्नमेव च॥१३॥

शौण्डिक (सुरा-विक्रेता), घाण्टिक (घण्टी बजाने वाला = भाट या चारण) का अन्न, वैद्य (चिकित्सक) का अन्न, विद्धलिङ्गी (जिस पुरुष का लिङ्ग छेदन किया गया हो) तथा परिवेत्ता[३] (अग्रज के अविवाहित रहते विवाह करने वाले अनुज) का अन्न नहीं खाना चाहिए॥१३॥

पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः। अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम्।
गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम्॥१४॥

पुनर्भू (पुनः दूसरे पुरुष से विवाह करने वाली) स्त्री के हाथ का बना अन्न तथा दिधिषू-पति[४] (पुनर्विवाहिता स्त्री का पति) का अन्न विशेष रूप से नहीं खाना चाहिए। तिरस्कार या घृणा या रोष (क्रोध) या विस्मय (अर्थात् अभिमान) पूर्वक दिया गया अन्न नहीं खाना चाहिए। संस्कार-रहित (=अशुद्ध) अन्न यदि गुरु ने भी दिया हो तो भी उसे नहीं खाना चाहिए॥१४॥

दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम्। यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्॥१५॥

मनुष्य के द्वारा किया गया सम्पूर्ण पाप उसके अन्न में स्थित रहता है। अतः जो जिसका अन्न खाता है, वह उसका (अन्नदाता) के पाप को भोगता है॥१५॥

आर्द्धिकः कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापितः। कुशीलवः कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एव च।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पं पणं बुधैः॥१६॥

आर्धिक (बटाईदार, आधा भाग पाने वाला), कुल- परम्परा से मित्र के समान माना गया, अपनी

---

१. चतुरस्य।

२. तक्षा च तन्तुवायश्च नापितो रजकस्तथा। पञ्चमश्चर्मकारश्चकारवः शिल्पिनो मताः॥

३. दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवतेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः॥ मनुस्मृति ३/१७१

४. भ्रातुर्मृतसय भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः। धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः॥ मनुस्मृति ३/१७३

(क्षेत्र स्वामी की) गौओं को पालने वाला, नाई, कुशीलव (नट, भाट या चारण), कुम्हार तथा खेत में काम करने वाले श्रमिक का अन्न यत् चिञ्चित् धन देकर ग्रहण किया जा सकता है॥१६॥

पायसं स्नेहपक्वं यत् गोरसं चैव सक्तवः। पिण्याकं चैव तैलं च शूद्राद् ग्राह्यं तथैव च॥१७॥

पायस (मक्खन, खोआ), तेल या घृत में पकाये हुए खाद्य पदार्थ, गोरस (दूध, दही, मट्ठा आदि), सत्तू, पिण्याक (खली) तथा तेल को शूद्र से ग्रहण किया जा सकता है॥१७॥

वृन्ताकं नालिकाशाकं कुसुम्भाश्मन्तकं तथा। पलाण्डुं लसुनं सूक्तं निर्यासं चैव वर्जयेत्॥१८॥
छत्राकं विड्वराहञ्च शेलुं पेयूषमेव च। विलयं सुमुखञ्चैव कवकानि च वर्जयेत्॥१९॥

बैगन, नालिकाशाक (कमलनाल?) कुसुम्भ (कुसुमी का शाक) अश्मन्तक, (अरुई?) प्याज, लहसुन, शुक्त, वृक्ष से निकलने वाले गोंद, छत्राक (कुकुरमुत्ता), ग्राम में रहने वाले सूअर का मांस, शेलु (वनमेथी), तथा पेयूष (नव-प्रसूता गौ का दूध), विलय? सुमुख? तथा कवक (कुकुरमुत्ता) को वर्जित करे॥१८-१९॥

गृञ्जनं किंशुकं चैव कुक्कुटं च तथैव च। उदुम्बरमलाबुं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः॥२०॥

गृञ्जन (गाजर), किंशुक (पलाश), मुर्गा (मुर्गे का मांस), गूलर तथा अलाबु (गोल लौकी) को खाकर द्विज का पतन हो जाता है॥२०॥

वृथा कृशरसंयावं पायसापूपमेव च। अनुपाकृतमांसं च देवान्नानि हवींषि च।
यवागूं मातुलिङ्गञ्च मत्स्यानप्यनुपाकृतान्॥२१॥

देवता के लिए नहीं अपितु अपने लिए पकाये गये कृशरान्न (तिल चावल मिश्रित खाद्य पदार्थ), संयाव (लपसी), खीर, पुआ, देवता को समर्पित अन्न, हवनीय द्रव्य, यवागू (जौ की कांजी), मातुलिंग (बिजौरा नीबू), मन्त्रों से होने वाली शुद्धि से रहित (अनुपाकृत) मांस तथा मन्त्र-शुद्धि रहित मत्स्य-मांस वर्जित करे॥२१॥

नीपं कपित्थं प्लक्षं च प्रयत्नेन विवर्जयेत्। पिण्याकं चोद्धृतस्नेहं देवधान्यं तथैव च॥२२॥

कदम्ब, कपित्थ (कैथ) तथा प्लक्ष (पाकड़) को प्रयत्नपूर्वक त्याग दे। जिसमें से तेल पूर्णतः निकाला जा चुका हो ऐसी खली को तथा देवता को अर्पित धान्य (अन्न) को भी वर्जित करे॥२२॥

रात्रौ च तिलसम्बद्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत्। नाश्नीयात्पयसा तक्रं न बीजान्युपजीवयेत्॥२३॥

रात्रि में तिल सम्बन्धित खाद्य वस्तु तथा दही को प्रयत्नपूर्वक त्याग दे। दूध के साथ मट्ठे को न खावे। बीजों की बिक्री करके जीविकोपार्जन न करे॥२३॥

क्रियादुष्टं भावदुष्टमसत्सङ्गं विवर्जयेत्। केशकीटावपन्नं च स्वहृल्लेखं[1] च नित्यशः॥२४॥
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा। उदक्यया च पतितैर्गवा चाघ्रातमेव च॥२५॥

जो व्यक्ति कर्म से दूषित हो या भाव से दूषित (दूषित भाव वाला) हो उसका तथा दुर्जनों का साथ छोड़ दे। जिस भोजन में केश (बाल) या कीड़े पड़े हों तथा जिसे देखकर मन खिन्न हो जाय, उसे सदा

१. स्वभूर्लेखं

वर्जित करे। कुत्ते के द्वारा सूँघा गया, पुनः पकाया गया, चाण्डाल के द्वारा देखा गया, रजस्वला स्त्री के द्वारा तथा पतित के द्वारा देखा गया या गौ के द्वारा सूँघा गया भोजन नहीं खाना चाहिए॥२४-२५॥

अनर्चितं पर्युषितं पर्यस्तान्नं च नित्यशः। काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव संयुतम्॥२६॥

जो अन्न तिरस्कार पूर्वक दिया गया हो, जो बासी हो या फेंक कर दिया गया हो उसको सदा वर्जित करे॥ कौवे या कुक्कुट (मुर्गे) के द्वारा स्पर्श किये गये अन्न को तथा जिस अन्न में कीड़े लगे हों उसको वर्जित करे॥२६॥

मनुष्यैरथवा घ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च। न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोषकम्।
मलवद्वाससा वापि परार्थं चोपपादितम्॥२७॥

अथवा जिस अन्न को मनुष्यों ने सूँघा हो या कोढ़ी ने छू दिया हो उसे वर्जित करे। रजस्वला के द्वारा दिये गये या व्यभिचारिणी स्त्री के द्वारा प्रदत्त या रुष्ट स्त्री के द्वारा दिये गये अन्न को वर्जित करे। मलिन वस्त्र धारण करके बनाये गये तथा किसी अन्य के लिए बनाये गये भोजन को भी नहीं खाना चाहिए॥२७॥

विवत्सायाश्च गोः क्षीरमौष्ट्रं वा निर्दशस्य च। आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत्॥२८॥

जिसका बछड़ा मर गया हो अथवा जो दश दिन के भीतर ब्यायी हुई हो अथवा गाभिन हो उस गाय का तथा वैसी ऊँटनी और भेड़ का दूध भी नहीं पीना चाहिए ऐसा मनु ने कहा है॥२८॥

बलाकं हंसदात्यूहं कलविंकं शुकं तथा। कुररं च चकोर च[1] जालपादञ्च कोकिलम्॥२९॥
चाषांश्च खञ्जरीटांश्च श्येनं गृध्रं तथैव च। उलूकं चक्रवाकञ्च भासं पारावतं तथा॥३०॥
कपोतं टिट्टिभञ्चैव ग्रामकुक्कुटमेव च। सिंह व्याघ्रञ्च मार्जारं श्वानं शूकरमेव च।
शृगालं मर्कटं चैव गर्दभञ्च न भक्षयेत्॥३१॥

बगुला, हंस, दात्यूह (चातक), कलविंक (गौरैया), शुक (तोता), कुरर (क्रौंच पक्षी, समुद्री उकाव), चकोर (चकवा), जालपाद (कलहंस), कोयल, चाष (नीलकण्ठ पक्षी), खञ्जरीट (खञ्जन), श्येन (बाज), गिद्ध, उल्लू, चकवा, भास (गिद्ध), पारावत (फाख्ता), कपोत (कबूतर), टिट्टिभ (टिटहरी), ग्राम का कुक्कुट, सिंह, व्याघ्र (बाघ), बिल्ली, कुत्ता, शृगाल (सियार), मर्कट (बन्दर) तथा गधे का मांस नहीं खाना चाहिए॥२९-३१॥

न भक्षयेत्सर्वमृगान् पक्षिणोऽन्यान् वनेचरान्। जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा॥३२॥

[जिनका मांस-भक्षण विहित है, उनके अतिरिक्त अन्य] सभी पशु-पक्षियों का मांस भक्षण न करे, चाहे वे गाँव के हों या वन में रहने वाले हों और चाहे वे जलचर हों या स्थल (भूमि) में निवास करने वाले, वे सभी अभक्ष्य हैं॥३२॥

गोधा कूर्मः शशः श्वावित् सल्लकी चेति सत्तमाः। भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः॥३३॥

प्रजापति मनु ने कहा है कि गोधा (मगरमच्छ, घड़ियाल), कछुवा, शश (खरगोश), श्वावित् (गेंडा),

---

१. तथा कुररवल्लूरं

सल्लकी (शाही) नामक इन पाँच नख वाले प्राणियों का मांस खाया जा सकता है॥३३॥

मत्स्यान् सशल्कान् भुञ्जीयान्मांसं रौरवमेव च। निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा॥३४॥

[मांस-भक्षकों के द्वारा] छिलके वाली मछली तथा रुरु मृग का मांस देवताओं तथा ब्राह्मणों को अर्पित करके खाया जा सकता है, अन्यथा उनको अर्पित किया बिना उसे खाना वर्जित है॥३४॥

मयूरं तित्तिरं चैव कपिञ्जलकमेव च। वार्ध्रीणसं द्वीपिनञ्च भक्ष्यानाह प्रजापतिः॥३५॥

प्रजापति मनु के अनुसार (मांस-भक्षी जनों के द्वारा) मोर, तीतर, कपिञ्जल (पपीहा, चातक), गैंड़ा (वार्ध्रीणस), द्वीपी (चीता, बाघ) का मांस खाया जा सकता है॥३५॥

राजीवान् सिंहतुण्डांश्च तथा पाठीनरोहितौ। मत्स्येष्वेते समुद्दिष्टा भक्षणीया मुनीश्वराः॥३६॥

मछलियों में से राजीव नामक मछली, सिंगी, पाठा तथा राहू मछलियों को खाया जा सकता है॥३६॥

प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसञ्च द्विजकाम्यया। यथाविधि नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये॥३७॥

भक्षयेदेव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते। औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद् यज्ञकारणात्[1]॥३८॥

द्विजातियों के द्वारा इच्छा होने पर इनका मांस प्रोक्षण करके ग्रहण किया जा सकता है। प्राण संकट होने पर रोगी व्यक्ति को भी विहित किये जाने पर इनका मांस दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में मांस भक्षण से पाप नहीं लगता। यज्ञ में शेष बचे मांस का भक्षण करने वाला पाप से लिप्त नहीं होता। असमर्थ रोगी द्वारा औषध रूप में या यज्ञानुष्ठान के अङ्गरूप में मांस खाया जा सकता है॥३७-३८॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्। यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत्॥३९॥

जो व्यक्ति श्राद्ध में निमिन्त्रित होने पर या देवकार्य में दिये जाने पर मांस-भक्षण नहीं करता वह जिस पशु का मांस हो उस पशु के जितने रोम हों उतने वर्ष तक नरक में रहता है॥३९॥

अपेयं चाप्यदेयञ्च[2] तथैवास्पृश्यमेव च। द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥४०॥

ब्राह्मणों के लिए मद्य-पान करना, मद्य का अन्य व्यक्ति को दान या स्पर्श करना और उसे देखना भी सदैव वर्जित है॥४०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मद्यं निन्द्यञ्च वर्जयेत्। पीत्वा पतितः कर्मभ्यो न सम्भाष्यो भवेद् द्विजैः॥४१॥

अतः उस निन्दित पेय मद्य को यथा संभव पूर्ण प्रयत्न करके वर्जित करे। मद्यपान करके ब्राह्मण पतित हो जाता है। वह धार्मिक कृत्यों को करने का अधिकारी नहीं रहता। उसके साथ अन्य ब्राह्मणों को वार्तालाप भी नहीं करना चाहिए॥४१॥

भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वापेयान्यपि द्विजः। नाधिकारी भवेत्तावद्यावत्तत्र व्रजत्यधः॥४२॥

अभक्ष्य भक्षण करके तथा अपेय मद्य को पीकर ब्राह्मण धार्मिक कृत्य करने का अधिकारी तब तक नहीं होता जब तक [प्रायश्चित्त करने पर] उसका वह पाप दूर नहीं हो जाता है॥४२॥

---

१. नियोगाद्यं न कारयेत्

२. वापयपेयञ्च

तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः। अपेयानि चैव विप्रेन्दोऽन्यथा[1] याति रौरवम्॥४३॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे भक्ष्याभक्ष्यनिर्णये सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

अतः ब्राह्मण प्रयत्नपूर्वक अभक्ष्य-भक्षण (तथा अपेय पान) को वर्जित करे अन्यथा वह रौरव नरक में गिरता है॥४३॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'भक्ष्याभक्ष्य-निर्णय' नामक सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्माणि

ऋषय ऊचुः

अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां महामुने। तदाचक्ष्वाखिलं कर्म येन मुच्येत बन्धनात्॥१॥

ऋषि बोले- हे महामुनि व्यास जी! अब आप ब्राह्मणों के द्वारा करणीय उन सभी कृत्यों को हमें बतलाइए जिनको करने से सांसारिक-बन्धन से मुक्ति मिल सकती है॥१॥

व्यास उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं गदतो मम। अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां क्रमाद्विधिम्॥२॥

व्यास जी बोले- अब मैं ब्राह्मणों के द्वारा प्रतिदिन अवश्य किये जाने योग्य कृत्यों को क्रमशः विधि-पूर्वक कहूँगा, आप लोग एकाग्र मन से सुनें॥२॥

ब्राह्मे मुहूर्ते तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत्। कायक्लेशञ्च यन्मूलं ध्यायेत मनसेश्वरम्॥३॥

ब्राह्म मुहूर्त में नींद से उठकर मन से ईश्वर का चिन्तन करे और तब धर्म तथा अर्थ (धन) विषयक चिन्तन तथा शारीरिक कष्ट के मूल कारण के विषय में भी चिन्तन करे॥३॥

उषःकाले च सम्प्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः। स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि॥४॥

तब उषाकाल (पौ फटते समय) विद्वान् व्यक्ति शौच आदि आवश्यक कृत्य करके विधि-पूर्वक शुद्ध जल वाली नदियों में स्नान करे॥४॥

प्रातः स्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रातः स्नानं समाचरेत्॥५॥

जो भी पापी जन हैं, वे सभी प्रातःकाल स्नान से पवित्र हो जाते हैं। अतः यथासंभव पूर्ण प्रयत्न करके प्रातःकाल स्नान अवश्य करे॥५॥

प्रातः स्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत्। ऋषीणामृषिता नित्यं प्रातः स्नानान्न संशयः॥६॥

१. आरोप्य याति चैवेको तथा वै

प्रातः-स्नान प्रत्यक्ष दृश्य लाभ (शारीरिक शुद्धि) तथा अदृष्ट लाभ (पुण्य प्राप्ति) दायक है। ऋषियों को ऋषित्व भी निःसंदेह प्रातः स्नान से ही प्राप्त होता है॥६॥

मुखे सुप्तस्य सततं लाला याः संस्रवन्ति हि। ततो नैवाचरेत्कर्म अकृत्वा स्नानमादितः॥७॥

सोये हुए व्यक्ति के मुख से रात में निरन्तर लार बहती रहती है। अतः प्रातः उठकर आरम्भ में शौच करके स्नान कर शुद्ध हुए बिना कोई कार्य न करे॥७॥

अलक्ष्मीः कालकर्णी च[१] दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम्। प्रातः स्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः॥८॥

प्रातः स्नान से अलक्ष्मी (दरिद्रता), कालकर्णी, दुःस्वप्न का दोष तथा दुश्चिन्ता [जैसे अपशकुन] दूर होते हैं और प्रातःकाल स्नान करने से पापों से मुक्त होकर मनुष्य पवित्र हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥८॥

न च स्नानं विना पुंसां पावनं कर्म संस्मृतम्। होमे जप्ये विशेषेण तस्मात्स्नानं समाचरेत्॥९॥

प्रातःकाल स्नान किये बिना पुरुष कोई शुभ कर्म विशेषतः जप और होम जैसे कर्म नहीं कर सकता। अतः स्नान अवश्य करे॥९॥

अशक्तावशिरस्कं वा स्नानमस्य विधीयते। आर्द्रेण वाससा वाथ मार्जनं कापिलं स्मृतम्॥१०॥

जब असमर्थ हो तो उस अवस्था में शिर को छोड़कर शेष शरीर को स्नान से शुद्ध करे अथवा गीले वस्त्र से शरीर को पोछ कर शुद्ध कर ले- इसे कपिल स्नान कहते हैं॥१०॥

असामर्थ्ये[२] समुत्पन्ने स्नानमेवं समाचरेत्। ब्राह्मादीनि यथाशक्तौ स्नानान्याहुर्मनीषिणः॥११॥

जब द्विज असमर्थ हो तब ऐसा स्नान करे। सुधीजनों ने ब्राह्म आदि स्नानों को करने में असमर्थ व्यक्ति के लिए ऐसा स्नान विहित किया है॥११॥

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च। वारुणं यौगिकं चैव षोढा स्नानं समासतः॥१२॥

ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण एवं यौगिक नामक छः प्रकार के स्नान कहे गये हैं॥१२॥

ब्राह्मं तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः। आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद्देहधूलनम्॥१३॥

मन्त्रोच्चारण करते हुए शरीर में कुशों से जल की बूंदें छिड़कना ब्राह्म स्नान कहलाता है। मस्तक से लेकर पैरों तक भस्म-लेपन को आग्नेय स्नान कहा जाता है॥१३॥

गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम्। यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते॥१४॥

गायों के चलने से उड़ने वाली धूल के शरीर में संलग्न होने को वायव्य स्नान कहा जाता है। जब धूप आयी हो उसी समय होने वाली वर्षा के जल में स्नान को दिव्य स्नान कहा जाता है॥१४॥

वारुणश्चावगाहस्तु मानसं स्वात्मवेदनम्। यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेनात्मविचिन्तनम्[३]॥१५॥

आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः। मनः शुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत्स्नानमाचरेत्।
शक्तश्चेद्वारुणं स्नानं कुर्याद्ब्राह्मं तथैव च॥१६॥

---

१. अलक्ष्यकोजलं चिश्चित्, २. आयत्वे वै, ३. योगे विश्वातिचिन्तनम्

तालाब या नदी के जल में घुस कर नहाना वारुण स्नान कहा जाता है तथा मन से आत्म-तत्त्व विषयक चिन्तन करने को यौगिक स्नान कहा जाता है। ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित इस स्नान को आत्मतीर्थ में स्नान कहा गया है। यह स्नान मनुष्यों के मन को शुद्ध करने वाला है। अतः यह स्नान नित्य करना चाहिए। विद्वान् व्यक्ति यदि समर्थ है तो वह वारुण स्नान तथा ब्राह्म स्नान अवश्य करे॥१५-१६॥

प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वा विधानतः। आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत्॥१७॥

[शौच से निवृत्त होकर] दन्तकाष्ठ (दातौन) को यथाविधि धोकर उसे चबाकर- कूची जैसी बनाकर दाँत साफ करके कुल्ला करके नित्य प्रातःकाल स्नान करे॥१७॥

मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलसम्मितम्। सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण तु धावयेत्॥१८॥

दातौन मध्यमा अंगुली के बराबर मोटी तथा एक बित्ता (बारह अंगुल) लम्बी तथा छिल्के से युक्त होना चाहिए। उसके अग्रभाग से दाँत साफ करने चाहिए॥१८॥

क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्। अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरं विशेषतः॥१९॥

दूध वाले वृक्ष या मालती (चमेली), अपामार्ग, बिल्व या करवीर (कनेर) वृक्ष का दातौन शुभ (अच्छा) होता है॥१९॥

वर्जयित्वा निन्दितानि गृहीत्वैकं यथोदितम्। परिहृत्य दिनं पापं भक्षयेद्वै विधानवित्॥२०॥

विहित नियमों का ज्ञाता व्यक्ति निन्दित वृक्षों को छोड़ उपर्युक्त वृक्षों में से किसी एक वृक्ष की दातौन को लेकर निषिद्ध दिन के अतिरिक्त प्रत्येक दिन दाँत साफ करे॥२०॥

नोत्पाटयेद्दन्तकाष्ठं नाङ्गुल्या धावयेत् क्वचित्[1]। प्रक्षाल्य भंक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः॥२१॥

दन्तकाष्ठ (दातौन) को उखाड़े नहीं। अङ्गुली से दाँत साफ न करे। दन्तकाष्ठ को बाद में धोकर तोड़ कर सावधानी से किसी शुद्ध स्थान पर फेंक दे॥२१॥

स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा। आचम्य मन्त्रविन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः॥२२॥

सम्मार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः। आपोहिष्ठा व्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः॥२३॥

तदनन्तर स्नान करने के बाद आचमन करके मन्त्र-ज्ञाता ब्राह्मण देवों, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करे। तदनन्तर वाणी में संयम रखते हुए पुनः आचमन करके मन्त्रोच्चारण करते हुए कुशों से अपने ऊपर जल की बूँदें छोड़ते हुए तथा 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्र तथा भूः, भुवः स्वः आदि सप्त व्याहृतियों एवं सावित्री मन्त्र (तत्सवितुवरेण्यं आदि) तथा वरुण के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अपने ऊपर कुशा से जल की बूँदों से मार्जन करे॥२२-२३॥

ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम्। जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भास्करं प्रति तन्मनाः॥२४॥

तब ओङ्कार तथा व्याहृतियों (भुभुर्वः स्वः) सहित वेदमाता गायत्री का जप करते हुए एकाग्र मन से भगवान् भास्कर को जलाञ्जलि प्रदान करे॥२४॥

प्राक्कूलेषु[2] ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः। प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति स्मृतिः॥२५॥

---

१. नाङ्गुल्यग्रेण धारयेत्, २. प्राक्कल्पेषु ततः स्थित्वा

तदनन्तर पूर्व की ओर विछाये हुए कुशों के आसन पर बैठकर एकाग्र मन से तीन बार प्राणायाम करके सन्ध्या का ध्यान करे, ऐसा श्रुति (वेद) का वचन है॥२५॥

या सन्ध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला। ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा॥ २६॥

जो सन्ध्या है, वही जगत् की जननी है, वह माया से परे, कला-रहित एवं तीनों तत्त्वों से उत्पन्न एकमात्र ईश्वरी शक्ति है॥२६॥

ध्यात्वार्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपेद्बुधः। प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत्॥ २७॥

विद्वान् ब्राह्मण पूर्व की ओर मुख करके बैठ कर सूर्य-मण्डल में स्थित सावित्री (गायत्री मन्त्र) का जप करते हुए नित्य सन्ध्यावन्दन करे॥२७॥

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलमाप्नुयात्॥ २८॥

सन्ध्या-वन्दन नहीं करने वाला ब्राह्मण सदा अशुद्ध रहता है और वह सभी धर्म-कृत्यों को करने के लिए अयोग्य हो जाता है। वह अन्य जो कुछ भी (धर्म-कार्य) करता है, उसका कोई फल उसे नहीं मिलता है॥२८॥

अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः। उपास्य विधिवत् सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वं परां गतिम्॥ २९॥

पूर्वकाल में वेद में पारंगत और शान्त-स्वभाव वाले ब्राह्मणों ने एकाग्र मन से विधिवत् सन्ध्या वन्दन करके परम गति प्राप्त की थी॥२९॥

योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः। विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम्॥ ३०॥

जो श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी सन्ध्या वन्दन को छोड़कर अन्य धर्मकृत्यों को करने का प्रयास करता है, वह सहस्रों नरकों में गिरता है॥३०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत्। उपासितो भवेत् तेन देवो योगतनुः परः॥ ३१॥

अतः पूर्ण प्रयास करके सन्ध्योपासन अवश्य करना चाहिए। उसी से योगात्मा भगवान् परमेश्वर की उपासना संभव हो जाती है॥३१॥

सहस्रपरमां नित्यं शतमध्यां दशावराम्। सावित्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः स्थितः॥ ३२॥

बुद्धिमान् पुरुष पूर्वाभिमुख बैठकर एकाग्रमन से गायत्री मन्त्र का जप करे। सहस्र बार मन्त्र का जप सर्वोत्तम, सौ बार का जप मध्यम तथा दश बार का जप अधम कोटि का होता है॥३२॥

अथोपतिष्ठेदादित्यमुद्यन्तं वै समाहितः। मन्त्रैस्तु विविधैः सौरैर्ऋग्यजुः सामसम्भवैः॥ ३३॥

उस जप के अनन्तर खड़े होकर एकाग्र मन से उदयीमान सूर्य की ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के [सूर्य-स्तुति सम्बन्धी] मन्त्रों से स्तुति करे॥३३॥

उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम्। कुर्वीत प्रणतिं भूमौ भक्त्या चेदं पठेत् स्तवम्[1]॥ ३४॥

महायोगी देवाधिदेव सूर्य के उपस्थान (उपासना, स्तुति) के अनन्तर भूमि में नतमस्तक होकर (प्रणाम करके) भक्तिभाव से इस स्तोत्र का पाठ करे॥३४॥

---

१. भमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रतः

ओम् खद्योताय च शान्ताय कारणत्रयहेतवे। निवेदयामि चात्मानं नमस्ते विश्वरूपिणे॥ ३५॥

(सूर्य-स्तुति-) ऊँ खद्योत (आकाश में दीप्तिमान), शान्त, कारणत्रय के हेतु, विश्वरूप [सूर्य] को नमस्कार है, मैं अपने को [आपकी शरण में] समर्पित करता हूँ॥३५॥

नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे। त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योतीरसोऽमृतम्।
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः शर्वो रुद्रः सनातनः॥ ३६॥

घृणिन् (दयालु), और ब्रह्म-स्वरूप सूर्य को नमस्कार है। आप ही परम ब्रह्म, जल, ज्योति, रस और अमृत रूप हैं। आप भूः, भुवः (अन्तरिक्ष) तथा स्वर्लोक हैं, आप ही ओङ्कार, शर्व, रुद्र और सनातन हैं॥३६॥

पुरुषः सन्महोऽन्तस्थं प्रणमामि कपर्दिनम्। त्वमेव विश्वं बहुधा जात यज्जायते च यत्।
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः॥ ३७॥

आप सभी के हृदय में विराजमान महापुरुष हैं। आप कपर्दी को मैं प्रणाम करता हूँ। आप ही अनेक प्रकार से उत्पन्न विश्वस्वरूप हैं तथा जो भी उत्पन्न हो रहा है, वह आपका ही स्वरूप हैं। रुद्र तथा सूर्य रूप वाले आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ॥३७॥

प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय च। नमो नमस्ते रुद्राय त्वामह शरणं गतः।
हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः॥ ३८॥

आप प्रचेता को तथा भीढुष्टम शिव को मैं नमस्कार करता हूँ। आप रुद्र को बारंबार नमस्कार है, मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप हिरण्यबाहु तथा हिरण्यपति को मैं नमस्कार करता हूँ॥३८॥

अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः। नमोऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने॥ ३९॥

अम्बिका के पति, उमा के पति आपको नमस्कार है। नीलग्रीव (नीलकण्ठ) को नमस्कार है, पिनाकी आपको नमस्कार है॥३९॥

विलोहिताय भर्गाय सहस्राक्षाय ते नमः। नमो हंसाय[१] ते नित्यमादित्याय नमोऽस्तु ते॥ ४०॥

विलोहित, भर्ग, सहस्राक्ष को नमस्कार है। हंस संज्ञक आपको नमस्कार, आदित्य स्वरूप आपको नमस्कार है॥४०॥

नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः। प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम्॥ ४१॥

अपने हाथ में वज्रधारण करने वाले त्र्यम्बक को नमस्कार है। मैं आप विरूपाक्ष महानतम परमेश्वर की शरण में आया हूँ॥४१॥

हिरण्मये गृहे गुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम्। नमस्यामि परं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परां गतिम्[२]॥ ४२॥

सभी प्राणियों के हृदय रूपी हिरण्मय गृह में गुप्त रूप से विद्यमान, परं ज्योति एवं परमगति स्वरूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ॥४२॥

---

१. तमोपहाय ते, २. परामृतम्

विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम्। नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने।
उग्राय सुरतक्षाय[१] त्वां प्रपद्ये सदैव हि॥४३॥

विश्व-स्वरूप, पशुपति, भीम, अर्धनारीश्वर स्वरूप, सूर्य, रुद्र, तथा प्रकाशमान परमेष्ठी को नमस्कार है। उग्र और देवों के तक्षा (विश्वकर्मा) आपको नमस्कार है॥४३॥

ऐतद्वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम्। प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद् दिवाकरम्॥४४॥

इस सर्वोत्तम सूर्य-हृदय स्तोत्र का पाठ करके प्रातःकाल तथा मध्याह्नकाल में भगवान् सूर्य को नमस्कार करे॥४४॥

इदं पुत्राय शिष्याय धार्मिकाय द्विजातये। प्रदेयं सूर्यहृदयं ब्रह्मणा तु प्रदर्शितम्॥४५॥

ब्रह्मा के द्वारा प्रदर्शित (अर्थात् उपदिष्ट) इस स्तोत्र का उपदेश अपने पुत्र, शिष्य तथा धार्मिक ब्राह्मण को देना चाहिए॥४५॥

सर्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम्। ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसंघैर्निषेवितम्॥४६॥

वेदों के सार रूप में प्रकट हुआ यह स्तोत्र ब्राह्मणों के लिए हितकारक, पवित्र और ऋषियों के समूह द्वारा पढ़ा गया है। इसका पाठ करने वाले के सभी पापों का नाश हो जाता है॥४६॥

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि। प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्॥४७॥

[जल में स्नान, सन्ध्यावन्दन आदि करके] ब्राह्मण अपने घर में आकर आचमन करके यथाविधि अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें हवन (अग्निहोत्र) करे॥४७॥

ऋत्विक् पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः। प्राप्यानुज्ञां विशेषेण ह्यध्वर्युर्वा यथाविधि॥४८॥

अथवा [गृहस्थ की अनुपस्थिति में यह कार्य] उसकी आज्ञा पाकर ऋत्विक् ब्राह्मण या उस गृहस्थ का पुत्र या पत्नी या शिष्य या सहोदर भ्राता यथाविधि अग्निहोत्र करे॥४८॥

पवित्रपाणिः पूतात्मा शुक्लाम्बरधरः शुचिः। अनन्यमनसा नित्यं जुहुयात्संयतेन्द्रियः॥४९॥

शुद्ध होकर हाथ में पवित्री धारण करके तथा सफेद वस्त्र पहन कर इन्द्रियों में नियन्त्रण रखते हुए एकाग्र मन से अग्नि में वहन करे॥४९॥

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः। राक्षसं तद्भवेत्सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम्॥५०॥

हाथ में कुश धारण किये बिना तथा यज्ञोपवीत धारण किये बिना जो धार्मिक कृत्य किया जाता है, वह राक्षसों को प्राप्त होता है, उसका फल न तो इस जन्म में मिलता है और न परलोकों में मिलता है॥५०॥

दैवतानि नमस्कुर्यादुपहारान्निवेदयेत्। दद्यात्पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत्॥५१॥

गृहस्थ ब्राह्मण सदा देवों को प्रणाम करे तथा उनको पुष्प आदि अर्पित करे एवं उपहार रूप में द्रव्य आदि निवेदित करे और वृद्धों को प्रणाम करे॥५१॥

गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत्। वेदाभ्यासं ततः कुर्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः॥५२॥

१. सर्वतक्षाय

गुरु की सेवा करे तथा उनके हित में कार्य करे। तब प्रयत्नपूर्वक यथाशक्ति वेदों का अध्ययन (पारायण) करे॥५२॥

जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत्। अवेक्ष्य तच्च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमाः॥५३॥
वैदिकांश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः। उपेयादीश्वरं वाथ योगक्षेमप्रसिद्धये॥५४॥

द्विज सदा मन्त्र का जप करे शिष्यों को पढ़ावे तथा स्वयं वेदादि विद्याओं का अभ्यास करे एवं उनके अर्थ का विचार करे। हे श्रेष्ठ द्विजो! वह धर्मशास्त्र आदि विद्याओं, वेदों, वेदाङ्गों जैसे वैदिक साहित्य का सम्यक् अनुशीलन करे। वह योग-क्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति तथा प्राप्त की रक्षा) हेतु ईश्वर (राजा) की शरण में जावे॥५३-५४॥

साधयेद्विविधानर्थान् कुटुम्बार्थे ततो द्विजः। ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत्।
पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोशकृच्छुद्धमेव वा॥५५॥

तब कुटुम्ब के भरण-पोषण हेतु विविध प्रकार की वस्तुओं का उपार्जन करके घर में लाये। तब मध्याह्नकाल में स्नान हेतु मिट्टी, पुष्प, अक्षत, कुश, तिल तथा शुद्ध गोबर लावे॥५५॥

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च। स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च॥५६॥

द्विज को चाहिए कि वह नित्य पवित्र नदियों या देवस्थानों में निर्मित कुण्डों, तालाबों, सरोवरों, बावलियों या झरनों में स्नान करे॥५६॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन। पञ्चपिण्डान्समुद्धृत्य स्नायाद्वासम्भवे पुनः॥५७॥

दूसरों के जालशयों में कदापि स्नान न करे। यदि अन्यत्र कहीं सार्वजनिक जलाशय उपलब्ध न हो तो दूसरों के जलाशय से मिट्टी के पाँच पिण्डों को निकाल कर बाहर फेंकने के बाद ही उसमें स्नान करे॥५७॥

मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि। अधस्तु तिसृभिः कार्यः पादौ षड्भिस्तथैव च॥५८॥

[पीछे श्लोक ५५ में कथित] मिट्टी के [बारह भाग करके] एक भाग से शिर, दो भागों से नाभि के ऊपर का शरीर, तीन भागों से नाभि से नीचे का शरीर तथा मिट्टी के शेष छः भागों से पैरों तक रगड़ कर शरीर को शुद्ध करना चाहिए॥५८॥

मृत्तिका च समुद्दिष्टा सार्द्रामलकमात्रिका। गोमयं तावदेव स्यात्[१] तेनाङ्गं लेपयेत्पुनः॥५९॥
लेपयित्वा तीरसंस्थं तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः। प्रक्षाल्याचम्य विधिवत् ततः स्नायात्समाहितः॥६०॥

मिट्टी कुछ आर्द्र (गीली) तथा उसका प्रत्येक भाग आँवले के फल के बराबर होना चाहिए। गोबर भी उतना ही होना चाहिए। उससे भी शरीर का उसी प्रकार लेपन गोमय सम्बन्धी मन्त्रों को पढ़ते हुए करना चाहिए। मिट्टी लेपन मन्त्र 'अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते' तथा 'उद्धृतासि वराहेण' इत्यादि तथा गोयम लेपन मन्त्र 'मा न स्तोकेः' तथा अग्रं अग्रं चरन्तीनां' इत्यादि है। तब शरीर में लेपित उस मिट्टी और गोमय को प्रक्षालित (धो) करके आचमन करके विधिपूर्वक सावधानी से स्नान करे॥५९-६०॥

१. गोमयस्य प्रमाणं तु

अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणैः शुभैः। भावपूतस्तदव्यक्तं ध्यायन्वै विष्णुमव्ययम्॥६१॥

तब जल को वरुण सम्बन्धी [ॐ इमं मे वरुणः, तत्त्वा यामिः, इत्यादि यजुर्वेद २१/१-४ के] शुभ मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके पवित्र भाव से अव्यक्त भगवान् विष्णु का ध्यान करे॥६१॥

आपो नारायणोद्भूतास्ता एवास्यायनं पुनः। तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद्बुधः॥६२॥

जलों का प्रादुर्भाव नारायण से हुआ था तथा बाद में वह जल ही नारायण के अयन (आवास) हो गये थे। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति स्नान करते समय नारायण देव को स्मरण करे॥६२॥

प्रेक्ष्य सोङ्कारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये। आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥६३॥

तब ओङ्कार [का उच्चारण करके] सूर्य को देखकर जलाशय में तीन बार डुबकी लगावे। पहले आचमन करने के बाद भी पुनः इस [अधोलिखित] मन्त्र को पढ़कर आचमन करे॥६३॥

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम्॥६४॥

[आचमन मन्त्र का अर्थ यह है] हे प्रभो आप सभी प्राणियों की हृदय रूपी गुफा में विचरण करते हैं। आप सभी ओर मुख वाले हैं। आप ही यज्ञ-स्वरूप, वषट्कार, जलस्वरूप तथा ज्योति, रस और अमृत भी हैं॥६४॥

द्रुपदां वा त्रिरभ्यसेद् व्याहृतिं प्रणवान्विताम्। सावित्रीं वा जपेद्विद्वान्तथा चैवाघमर्षणम्॥६५॥

तदनन्तर (तीन बार) 'द्रुपदादिव मुमुचानः[1]' इस मन्त्र को या ओङ्कार तथा व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः) सहित गायत्री मन्त्र को तथा अघमर्षण सूक्त[2] का जप (पाठ) करे॥६५॥

ततः सम्मार्जनं कुर्यात् आपो हि ष्ठा मयो भुवः।
इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च॥६६॥

तथाभिमन्त्र्य तत्तोयमापो हि ष्ठादिभिस्त्रिकैः। अन्तर्जलगतो मग्नो जपेत् त्रिरघमर्षणम्॥६७॥

तदनन्तर 'आपो हिष्ठा मयो भुवः'[3] तथा 'इदमापःप्रवहत'[4] तथा व्याहृतियों एवं आपो हिष्ठा' से प्रारम्भ होने वाले मन्त्रों के एवं ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् इत्यादि अघमर्षण सूक्त[5] को जल में प्रविष्ट होकर तीन बार जपे॥६६-६७॥

---

१. द्रुपदादिव मुमुचानोः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेषाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥ यजुर्वेद २०/२०

२. ऋतंच सत्यं चामीद्धात। इत्यादि-ऋग्वेद १०/१९०/१-३

३. द्रष्टव्य-ऋग्वेद १०/९/१-३; यजुर्वेद १०/५०-५२; ३६/१४-१६

४. इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्। आपो मा तसमादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु। ऋग्वेद १०/९/८; यजुर्वेद ६/१७,

५. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोऽजायत। इत्यादि ऋग्वेद १९०/१-३

द्रुपदां[१] वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः[२] परमं पदम्। आवर्तयेद् वा प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम्॥६८॥

जल में स्थित होते हुए ही 'द्रुपदादिव मुमुचानः' इत्यादि मन्त्र का या गायत्री मन्त्र का एवं 'तद्विष्णोः परमं पदं इत्यादि मन्त्र का या प्रणव (=ॐ) का जप करे अथवा भगवान् विष्णु का स्मरण करे॥६८॥

द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः। अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥६९॥

'द्रुपदादिव मुमुचानः' इत्यादि जो मन्त्र यजुर्वेद में है, उसको जल के अन्दर रहकर तीन बार जपने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥६९॥

अपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते। विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं मुच्यते सर्वपातकैः॥७०॥

इस मन्त्र के जप के अनन्तर हाथ में जल लेकर मार्जन करने (शिर में जल के छींटे डालने) से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥७०॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः तथाघमर्षणं प्रोक्तं सर्वपापापनोदनम्॥७१॥

जिस प्रकार यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ सभी पापों को दूर कर देता है, उसी प्रकार अघमर्षण सूक्त को भी सभी पापों को दूर करने वाला कहा गया है॥७१॥

अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वं पुष्पान्वितं जलम्। प्रक्षिप्यालोकयेद्देवमुद्वयं[३] तमसस्परि॥७२॥
उदुत्यं[४] चित्रमित्येते[५] तच्चक्षुरिति[६] मन्त्रतः। हंसः[७] शुचिषदन्तेन सावित्र्या च विशेषतः॥७३॥
अन्यैश्च वैदिकैर्मन्त्रैः सौरैः पापप्रणाशनैः। सावित्रीं वै जपेत् पश्चात् जपयज्ञः स वै स्मृतः॥७४॥

तब सूर्योपस्थान करते हुए भगवान् सूर्य की ओर देख कर पुष्पाक्षत-रोली युक्त जल अर्पित करे और उस समय उद्वयं तमस्परि, उदुत्यं जातवेदसं, चित्रं देवानां, तच्चक्षुर्देवहितं, हंस शुचिषद् आदि मन्त्रों तथा विशेषतः गायत्री मन्त्र तथा सूर्य सम्बन्धी अन्य पापनाशक मन्त्रों को पढ़े और तत्पश्चात् गायत्री मन्त्र का जप करे, उसे जप-यज्ञ कहा जाता है॥७२-७४॥

विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च। शतरुद्रीयमथर्वशिरः सौरान्मन्त्रांश्च सर्वतः॥७५॥

---

१. द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥ (यजु० २०/२०)
२. तद्विष्णोः परमं पद ँ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ (यजु० ६/५)
३. उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (यजु० २०/२१)
४. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य ँ स्वाहा॥ (यजु० ७/४१)
५. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ (यजु. ७/४२)
६. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजु. ३६/२४)
७. हंसः शुचिसद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ (ऋग्वेद ४/४०/५; यजु० १०/२४; १२/१४)

तदनन्तर विभिन्न पवित्र मन्त्रों, गोपनीय विद्याओं, शतरुद्रिय, अथर्वशीर्ष तथा भगवान् सूर्य के मन्त्रों का यथाशक्ति जप करे॥७५॥

प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्राङ्मुखः शुचिः। तिष्ठंश्च वीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात् समाहितः॥७६॥

जप करते समय पूर्व की ओर बिछाये हुए कुशों पर पूर्वाभिमुख बैठकर सूर्य की ओर देखते हुए एकाग्र मन से जप करे॥७६॥

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः। कर्तव्या त्वक्षमाला स्यादुत्कृष्टा चोत्तरोत्तरा[1]॥७७॥

जप हेतु स्फटिक, इन्द्राक्ष, रुद्राक्ष या पुत्रजीव की माला का प्रयोग करना चाहिए। इनमें प्रथम की अपेक्षा क्रमशः अग्रिम माला को श्रेष्ठतर कहा गया है॥७७॥

जपकाले न भाषेत नान्यं वीक्षेत[2] वै बुधः। न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत्॥७८॥

गुह्यका राक्षसा सिद्धा हरन्ति प्रसभं यतः। एकान्तेषु शुचौ देशे तस्माज्जप्यं समाचरेत्॥७९॥

जप करते समय बुद्धिमान् व्यक्ति किसी से वार्तालाप न करे और न अन्य व्यक्ति की ओर देखे। वह अपने शिर अथवा गरदन को भी न हिलावे और न दाँत दिखाये, क्योंकि ऐसा करने पर गुह्यक, राक्षस और सिद्ध उस जप के फल का हरण कर लेते हैं। अतः एकान्त और पवित्र स्थान में ही जप करना चाहिए॥७८-७९॥

चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वा चैव पुनर्जपेत्। तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव पुनर्जपेत्॥८०॥

चाण्डाल, अशौच युक्त व्यक्ति या पतित व्यक्ति को जप के समय देखने पर पुनः जप करे तथा उनसे वार्तालाप करने पर तो स्नान करके पुनः जप करे॥८०॥

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने। सौरान्मन्त्रान्[3] शक्तितो वै पावमानीस्तु[4] कामतः॥८१॥

अशुचि (अपवित्र) वस्तु को देखने पर आचमन करके प्रयत (पवित्र) होकर यथाशक्ति तथा स्वेच्छानुसार सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों तथा पावमानी (पवमान-सूक्त) का जप करना चाहिए॥८१॥

यदि स्यात् क्लिन्नवासा वै वारिमध्यं गतो जपेत्। अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः॥८२॥

स्नान के बाद यदि वस्त्र गीले हों तो जल के मध्य में ही जप करे अन्यथा शुद्ध भूमि में कुशों के ऊपर बैठकर एकाग्रमन से जप करे॥८२॥

प्रदक्षिणं सकृत्कृत्वा[5] नमस्कृत्य ततः क्षितौ। आचम्य च यथाशास्त्रं भक्त्या स्वाध्यायमाचरेत्॥८३॥

जप सम्पन्न हो जाने पर उस स्थान पर एक बार प्रदक्षिणा करके पृथ्वी पर नमस्कार करके आमचन करने के बाद शास्त्र-निर्देशानुसार भक्तिपूर्वक स्वाध्याय करे॥८३॥

१. स्यादुत्तरादुत्तमा स्मृता
२. व्यंगा न प्रक्षयेद बुधः,
३. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो...। इत्यादि! ऋग्वेद १/३५/२; यजुर्वेद ३३/४३
४. (क) द्रष्टव्य- ऋग्वेद ९/६७/२१-२४
(ख) पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः इत्यादि- यजुर्वेद १९/३९-४३
५. समावृत्य

ततः सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा। आदावोङ्कारमुच्चार्य नामान्ते तर्पयामि वः॥८४॥

तदनन्तर देवों, ऋषियों तथा पितृगणों का तर्पण करे। इस तर्पण में आरम्भ में ॐ का उच्चारण करके देव, ऋषि या पितरों का नाम लेकर अन्त में तर्पयामि (आपको तृप्त करता हूँ) ऐसा कहे॥८४॥

देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः। तिलोदकैः पितृन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः॥८५॥

अपने गृह्यसूत्र में विहित विधानानुसार देवों तथा ब्रह्मर्षियों का तर्पण भक्तिपूर्वक अक्षत तथा जल से करे तथा तिल और जल से पितरों का तर्पण करे॥८५॥

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितृन्॥८६॥

बुद्धिमान् पुरुष बाँये हाथ से दाहिने हाथ की कुहनी का स्पर्श कराते हुए जलाञ्जलि से देवों, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करे॥८६॥

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे। प्राचीनावीती पित्र्ये तु स्वेन तीर्थेन भावितः॥८७॥

देवों का तर्पण यज्ञोपवीती (बाँये कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए) होकर करे एवं निवीती होकर (जनेऊ को कण्ठ में माला के समान पहनकर) ऋषियों का तर्पण तथा जनेऊ को प्राचीनावीती (अपसव्य) करके पितरों का तर्पण करे। देवतर्पण देवतीर्थ (अंगुलियों के अग्रभाग) से, ऋषितर्पण कायतीर्थ (कनिष्ठिका अंगुली के मूल भाग से तथा पितृतर्पण को पितृतीर्थ अंगुष्ठ और तर्जनी के मूल भाग) से करे॥८७॥

निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु समाचम्य च वाग्यतः। स्वैर्मन्त्रैरचर्यद्देवान् पुष्पैः पत्रैरथाम्बुभिः॥८८॥

तब वाणी में संयम रखते हुए जिस वस्त्र से स्नान किया हो उसे निचोड़ने के बाद सम्यक् रूप से आचमन करके पत्र-पुष्प और जल से देवों का पूजन उनके लिए विहित मन्त्रों से करे॥८८॥

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम्। अन्यांश्चाभिमतान्देवान् भक्त्या[1] चाक्रोधनोऽत्वर॥८९॥

ब्रह्मा, शिव, सूर्य, विष्णु तथा अन्य अभीष्ट देवों की पूजा-भक्ति पूर्वक एवं क्रोध रहित (शान्त) तथा त्वरा (जल्दबाजी) रहित होकर करनी चाहिए॥८९॥

प्रदद्याद्वाथ पुष्पाणि सूक्तेन पौरुषेण तु। आपो वै देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः॥९०॥

अथवा पुरुषसूक्त का पाठ करते हुए देवता पर पुष्प अर्पित करे। जल सभी देवों का अंशस्वरूप है, उससे सभी देवों की पूजा सम्यक् रूप से हो जाती है॥९०॥

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै देवतानि समाहितः। नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक्॥९१॥

ओङ्कार का उच्चारण करते हुए एकाग्र मन से देवताओं का ध्यान करके उनको नमस्कार करते हुए उन पृथक्-पृथक् देवों पर पुष्पों को चढ़ावे॥९१॥

विष्णोराराधनं[2] पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम्। तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम्॥९२॥

विष्णु की आराधना परम पवित्र वैदिक कर्म है। अतः आदि मध्य और अन्त रहित भगवान् विष्णु की आराधना नित्य करनी चाहिए॥९२॥

---

१. भक्त्याचारो नरोत्तमः २. विष्णोराराधनात्

तद्विष्णोरिति[1] मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु[2]। न ताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि॥९३॥

'तद्विष्णोः परमं पद' इत्यादि मन्त्र से तथा पुरुषसूक्त से भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए। इनके समान कोई भी मन्त्र चारों वेदों में नहीं है॥९३॥

निवेदयेत स्वात्मानं विष्णावमलतेजसि। तदात्मा तन्मनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः॥९४॥

'तद्विष्णोः' इस मन्त्र का जप करते हुए विष्णु के साथ तादात्म्य और तन्मयता का भाव बनाकर स्वयं को निर्मल तेजोमय विष्णु को समर्पित कर देना चाहिए॥९४॥

अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम्। आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम्॥९५॥

अथवा पवित्र मनोभाव वाला होकर सनातन भगवान् ईशान देवाधिदेव महादेव महेश्वर की आराधना करनी चाहिए॥९५॥

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः। ईशानेनाथवा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः॥९६॥

पुष्पैः पत्रैरथाद्भिर्वा चन्दनाद्यैर्महेश्वरम्। उक्त्वा नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा जपेत्॥९७॥

एकाग्र मनोभाव से रुद्र-गायत्री[3] मन्त्र अथवा प्रणव (ॐ) ईशान मन्त्र या रुद्र मन्त्र या 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मन्त्र को बोलते हुए पत्र-पुष्प, जल तथा चन्दन आदि से महेश्वर शिव की पूजा करे तथा 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र का जप करे॥९६-९७॥

नमस्कुर्यान्महादेवं तं मृत्युञ्जयमीश्वरम्। निवेदयीत स्वात्मानं यो ब्रह्माणमितीश्वरम्॥९८॥

उन परमेश्वर मृत्युञ्जय महादेव को प्रणाम करे तथा 'यो ब्रह्माणं विदधाति[4] इस मन्त्र को पढ़ते हुए स्वयं अपने को उन ईश्वर के चरणों में समर्पित करे॥९८॥

प्रदक्षिणं द्विजः कुर्यात्पञ्च ब्रह्माणि वै जपन्[5]। ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्यगतं शिवम्॥९९॥

तब पञ्च ब्रह्म[6] नामों वाले मन्त्र का जप (मौन रहकर) करते हुए प्रदक्षिणा करे और उस समय आकाश के मध्य में विद्यमान देवाधिदेव ईशान शिव का ध्यान करे॥९९॥

अथावलोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यृचा। कुर्यात् पञ्च महायज्ञान् गृहं गत्वा समाहितः॥१००॥

तदनन्तर 'हंसः शुचिषद्[7]' इस ऋचा का पाठ करते हुए भगवान् सूर्य की ओर देखकर अपने घर में आकर पञ्चयज्ञों को सम्पादन करे॥१००॥

---

१. तद् विष्णोः परमं पद ँ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ ऋग्वेद १/२२/२०; यजुर्वेद ६/५
२. ऋग्वेद १०/९०/१-१६ यजुर्वेद ३१/१-१६
३. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रयोदयात्।
४. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। त ँ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमह प्रपद्ये॥ श्वेताश्वतरोपनिषत् ६/१८
५. पञ्चवर्षाणि वै बुधः
६. ईशानः सर्वविद्यानाभीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवोऽस्तु सदा शिवोम्॥
७. द्रष्टव्य पीछे पृ० ४२५ टि० ७।

देवयज्ञं पितृयज्ञं भूतयज्ञं तथैव च। मानुष्यं ब्रह्मयज्ञं च पञ्च यज्ञान् प्रचक्षते॥१०१॥

देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ को पञ्चयज्ञ कहा गया है॥१०१॥

यदि स्यात्तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञः कृतो न हि। कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाध्यायमाचरेत्॥१०२॥

यदि तर्पण से पूर्व ब्रह्मयज्ञ न किया हो तो मनुष्ययज्ञ के अनन्तर स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करे॥१०२॥

अग्नेः पश्चिमतो देशे भूतयज्ञान्त एव च। कुशपुञ्जे समासीनः कुशपाणिः समाहितः॥१०३॥
शालाग्नौ लौकिके वाथ जले भूम्यामथापि वा। वैश्वदेवश्च कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः॥१०४॥

भूतयज्ञ के अनन्तर अग्नि से पश्चिम दिशा में कुशपुञ्ज में बैठकर हाथ में कुश लेकर एकाग्र मन से यज्ञशाला की अग्नि में अथवा लौकिक अग्नि में या जल में अथवा भूमि में ही वैश्वदेव (विश्वेदेवों के नाम से हवन) करना चाहिए। उसी को देव यज्ञ कहा जाता है॥१०३-१०४॥

यदि स्याल्लौकिके पक्वं[1] ततोऽन्नं तत्र हूयते। शालाग्नौ चेत् पचेदन्नं तदा तत्रैव हूयते[2]॥१०५॥

यदि लौकिक अग्नि में अन्न पकाया गया हो तो उसी अग्नि में हवन किया जाता है। यदि यज्ञशाला में अन्न पकाया गया हो तो वहाँ की अग्नि में ही वैश्वदेव होम होगा। यह सनातन विधान है॥१०५॥

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूतबलिं हरेत्। भूतयज्ञः स विज्ञेयो भूतिदः सर्वदेहिनाम्॥१०६॥

देवों को आहुति देने के अनन्तर शेष अन्न से भूत-बलि प्रदान करे। उसे भूतयज्ञ कहते हैं, जो कि सभी प्राणियों के लिए सुख-समृद्धि दायक होता है॥१०६॥

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च। दद्याद्भूमौ बहिश्चान्नं पक्षिभ्यो द्विजसत्तमाः॥१०७॥
सायं चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत्। भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायम्प्रातर्यथाविधि॥१०८॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! कुत्तों, चाण्डाल, पतित तथा पक्षियों के लिए घर के बाहर भूमि में अन्न की बलि देनी चाहिए। सायंकाल पके हुए अन्न में से पत्नी बिना मन्त्र पढ़े बलि प्रदान करे। इस प्रकार यह भूतबलि संज्ञक यज्ञ नित्य सायंकाल और प्रातःकाल किया जाता है॥१०७-१०८॥

एकन्तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्दिश्य सन्ततम्। नित्यश्राद्धं तदुद्दिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः॥१०९॥

पितरों के उद्देश्य से प्रतिदिन एक ब्राह्मण को भोजन करावे। इसी को नित्य श्राद्ध कहते हैं। इस नित्य श्राद्ध को ही पितृयज्ञ कहा गया है। यह उत्तम गति-प्रद होता है॥१०९॥

उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः। वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत्॥११०॥

अथवा इसके स्थान पर एकाग्र भाव से यथाशक्ति कुछ अन्न निकाल कर वेद के तत्त्वार्थ-ज्ञाता ब्राह्मण को प्रदान करे॥११०॥

पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्चयेद् द्विजम्। मनोवाक्कर्मभिः शान्तमागतं स्वगृहं ततः॥१११॥

तदनन्तर नित्यमेव अपने घर आये हुए [शान्त स्वभाव वाले] अतिथि द्विज का मन वचन और कर्म से नमस्कार पूर्वक अर्चन-पूजन करे॥१११॥

---

१. पक्षे, २. विधिरेषसनातनः

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। हन्तकारमथाग्रं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः।
दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम्॥११२॥

तब गृहस्थ द्विज बाँये हाथ से दाँहिने हाथ का स्पर्श करके उस दाहिने हाथ से अतिथि को परमेश्वर स्वरूप मान कर अपनी क्षमतानुसार हन्तकार, अग्र या भिक्षा प्रदान करे॥११२॥

भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रामग्रं तत्स्याच्चतुर्गुणम्। पुष्कलं हन्तकारन्तु तच्चतुर्गुणमुच्यते॥११३॥

एक गास मात्र अन्न को भिक्षा कहा जाता है। उसके चौगुने (चार गास) के बराबर अन्न को अग्र कहा जाता है तथा अग्र का चतुर्गुण अर्थात् सोलह ग्रास के बराबर अन्न को हन्तकार कहा जाता है॥११३॥

गोदोहकालमात्रं वै प्रतीक्ष्यो ह्यतिथिः स्वयम्। अभ्यागतान्यथाशक्ति पूजयेदतिथीन्सदा॥११४॥

गाय दुहने में जितना समय लगता है, उतने समय तक स्वयं अतिथि के आगमन की प्रतीक्षा करनी चाहिए। घर में आये अभ्यागत (सुपरिचित व्यक्ति) तथा अतिथि (अकस्मात आया हुआ कोई भी व्यक्ति) का यथाशक्ति आदर सत्कार करना चाहिए॥११४॥

भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद् ब्रह्मचारिणे। दद्यादन्नं यथाशक्ति ह्यर्थिभ्यो लोभवर्जितः॥११५॥

गृहस्थ पुरुष भिक्षाटन हेतु आये हुए ब्रह्मचारी को यथाविधि भिक्षा प्रदान करे तथा लोभ को त्याग कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार याचकों को अन्न प्रदान करे॥११५॥

सर्वेषामप्यलाभे हि त्वन्नं गोभ्यो निवेदयेत्। भुञ्जीत बहुभिः सार्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्॥११६॥

इन सभी के न आने पर [उस संकल्पित] अन्न को गायों को समर्पित कर दे। तदनन्तर वाणी में संयम रखकर तथा अन्न की निन्दा न करते हुए सभी भाई-बन्धुओं के साथ बैठकर भोजन करे॥११६॥

अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमाः।
भुञ्जीत चेत् स मूढात्मा तिर्यग्योनिं तु गच्छति॥११७॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! जो द्विज पञ्च महायज्ञों का किये बिना भोजन करता है, वह महामूर्ख मृत्यु के बाद पशु योनि में जन्म पाता है॥११७॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाः क्षमा। नाशयन्त्याशु पापानि देवताभ्यर्चनं तथा॥११८॥

प्रतिदिन यथाशक्ति वेदों के अध्ययन तथा पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान तथा क्षमा-शीलता एवं देवों की पूजा करने से मनुष्य के पाप शीघ्र नष्ट होते हैं॥११८॥

यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम्। स भुङ्क्ते नरकं घोरं शूकरश्च ततो भवेत्॥११९॥

जो मनुष्य अज्ञानवश या आलस्यवश देवों की पूजा किये बिना भोजन करता है, वह घोर नरक में यातना भोगता है और अन्त में शूकर योनि में जन्म पाता है॥११९॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै द्विजाः। भुञ्जीत स्वजनैः सार्धं स याति परमां गतिम्॥१२०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्मनिरूपणं नाम अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

अतः हे द्विजो! समग्र प्रयास से सभी विहित पञ्च महायज्ञादि कृत्यों को सम्पन्न करके स्वजनों के साथ बैठकर भोजन करने वाला द्विज परम गति को प्राप्त करता है॥१२०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के अन्तर्गत 'ब्राह्मणों का नित्य कर्तव्य कर्म-निरूपण' नामक अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥१८॥

❖❖❖

अथैकोनविंशोऽध्यायः

ब्राह्मणानां भोजनादि विधानम्

व्यास उवाच

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा। आसीनः स्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय च॥१॥

व्यास जी बोले- शुद्ध आसन पर पूर्व की ओर या सूर्य की ओर मुख करके एवं पैरों को भूमि में रखते हुए बैठकर भोजन करे॥१॥

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः। श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः॥२॥

पूर्व की ओर मुख करके भोजन करने से दीर्घायु की प्राप्ति, दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करने से यश का लाभ, पश्चिम की ओर मुख करके भोजन करने से सम्पत्ति की प्राप्ति तथा उत्तर की ओर मुख करके भोजन करने से सत्य की प्राप्ति (सत्य-लाभ) होता है॥२॥

पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद्भूमौ पात्रं निधाय च। उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः॥३॥

अपने पाँच अङ्गों (दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख) को धोकर भोजन पात्र को भूमि में रखकर भोजन करना चाहिए। इस प्रकार के भोजन को प्रजापति मनु ने उपवास के तुल्य बतलाया है॥३॥

उपलिप्ते शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ। आचम्यार्द्राननोऽक्रोधः पञ्चार्द्रो भोजनं चरेत्॥४॥

अपने दोनों पैरों, दोनों हाथों तथा मुख को धोकर आमचन करके इस प्रकार पाँचों अङ्गों को गीला करके गोबर से लीपी हुई शुद्ध भूमि में बैठ कर ही भोजन करना चाहिए॥४॥

महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु। अमृतोपस्तरणमसीत्यापोशानक्रियाञ्चरेत्॥५॥

ऊँ भूर्भुवः स्वः- इन तीन महाव्याहृतियों से अन्न को जल से चारों ओर से परिवेष्टित या परिशोधित करके 'अमृतोपस्तरणमसि' कहते हुए आचमन करे॥५॥

स्वाहाप्रणवसंयुक्तां प्राणायाद्याहुतिं ततः। अपानाय ततो भुक्त्वा व्यानाय तदनन्तरम्॥६॥
उदानाय ततः कुर्यात्समानायेति पञ्चमम्। विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनि द्विजः॥७॥

तब 'ऊँ प्राणाय स्वाहा', 'ऊँ अपानाय स्वाहा', 'ऊँ व्यानाय स्वाहा' 'ऊँ उदानाय स्वाहा' एवं ऊँ समानाय स्वाहा' कहते हुए तथा इनका रहस्य समझते हुए अर्थात् इनसे शरीरस्थ पाँच प्राणों की पुष्टि का बोध करते हुए द्विज को पाँच गासों में ये पाँचों आहुतियाँ अपने आत्मा (में स्थित पाँच प्राणों) को देनी चाहिए॥६-७॥

शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम्। ध्यात्वा तन्मनसा देवानात्मानं वै प्रजापतिम्॥८॥

तदनन्तर थाली में परोसे गये शेष अन्न को स्वजनों सहित मन ही मन अपने आराध्य देवों, प्रजापति तथा अपने आत्मा [में स्थित परमात्मा] का ध्यान करते हुए ग्रहण करे॥८॥

अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत्। आचान्तः पुनराचामेदयं गौरिति मन्त्रतः॥९॥

तब 'अमृतापिधानभसि' यह कह कर जल पीना चाहिए। तब एक बार आचमन करके पुनः 'आयं गौः पृश्निरक्रमीद'[१] इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पुनः आचमन करे॥९॥

द्रुपदां वा त्रिरावर्त्य सर्वपापप्रणाशिनीम्। प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेद् हृदयं[२] ततः॥१०॥

तदनन्तर सर्वपापनाशक 'द्रुपदादिवः[३]' इत्यादि मन्त्र को तीन बार पढ़कर 'प्राणानां ग्रन्थिरसि[४]' कहते हुए हृदय का स्पर्श करे॥१०॥

आचम्याङ्गुष्ठमात्रेति पादाङ्गुष्ठेऽथ दक्षिणे। निःस्रावयेद्हस्तजलमूद्र्ध्वहस्तः समाहितः॥११॥

हुतानुमन्त्रणं[५] कुर्यात्सन्ध्यायामिति मन्त्रतः। अथ क्रमेण[६] स्वात्मानं योजयेद् ब्रह्मणेति हि॥१२॥

तब आचमन करके 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति'[७] इस मन्त्र को पढ़कर अपने हाथ में स्थित जल को दाहिने पैर के अँगूठे पर गिरावे। तब हाथ को ऊपर की ओर उठा कर एकाग्र मन से 'श्रद्धायां'[८](?) इत्यादि मन्त्र को पढ़कर हुतानुमन्त्रण(?) करे। तब क्रमशः अपने आत्मा को ब्रह्म[९] से जोड़े॥।११-१२॥

सर्वेषामेव यागानामात्मयागः स्मृतः परः। योऽनेन विधिना कुर्यात् स[१०] याति ब्रह्मणः पदम्॥१३॥

सभी यागों में आत्मयाग को श्रेष्ठ कहा गया है। अतः जो इस विधि से आत्म-याग करता है, वह पर ब्रह्म के पद को प्राप्त करता है॥१३॥

यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालंकृतः शुचिः। सायम्प्रातर्न भुञ्जीत[११] सन्ध्यायान्तु विशेषतः॥१४॥

यज्ञोपवीत धारण किया होने पर ही भोजन करे। भोजन के समय गन्ध (चन्दन आदि) तथा माला

---

१. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ ऋग्वेद १०/१८९/१; यजुर्वेद ३/६

२. त्यालभेदुदरं

३. द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥ यजुर्वेद २०/२०

४. प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकः तेनान्नेनाप्यायस्व।- महानारायणोपनिषत् १६/८

५. कृतानुमन्त्रणं

६. अथाक्षरेण

७. कठोपनिषत् ४/१२

८. द्रष्टव्य- महानारायणोपनिषत् १६/२-४

९. द्रव्टव्य- ब्रह्मणे त्वामहसा ऊँ मित्यात्मानं युञ्जीत। महानारायणोपनिषत् १७/१५

१०. स कवि र्ब्राह्मणः स्वयम्

११. सायं प्रातर्नान्तरा वै

से अलंकृत रहना चाहिए। सायंकाल तथा प्रातःकाल और विशेषतः सन्ध्याकाल में भोजन कभी नहीं करना चाहिए॥ १४॥

नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वमह्नि सायं शशिग्रहात्। ग्रहकाले न चाश्नीयात् स्नात्वाश्नीयाद्विमुक्तयोः॥ १५॥

दिन में सूर्य-ग्रहण के पूर्व भोजन न करे तथा चन्द्र-ग्रहण के पूर्व सायंकाल में भी भोजन न करे। ग्रहण-काल में कदापि भोजन न करे। चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण के समाप्त हो जाने के पश्चात् स्नान करके ही भोजन करे॥ १५॥

मुक्ते शशिनि चाश्नीयाद् यदि न स्यान्महानिशा। अमुक्तयोरस्तङ्गतयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि॥ १६॥

चन्द्र ग्रहण समाप्त होने पर यदि महानिशा (आधीरात) न हुई हो तो तब भोजन कर लेना चाहिए। जब ग्रहण समाप्ति के पूर्व ही सूर्य या चन्द्रमा अस्त हो जाय तो दूसरे दिन सूर्य के दर्शन के पश्चात् भोजन करना चाहिए॥ १६॥

नाश्नीयात्प्रेक्षमाणानामप्रदाय च दुर्मतिः। न यज्ञशिष्टादन्यद्वा[1] न क्रुद्धो नान्यमानसः॥ १७॥

भोजन की ओर देख रहे भूखे लोगों को दिये बिना भोजन न करे तथा जिस समय बुद्धि विकृत हुई हो उस समय भी भोजन न करे। यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न के अतिरिक्त अन्य अन्न को नहीं खाना चाहिए। क्रोधित होकर या अन्यमनस्क (निरर्थक चिन्तन में निरत) होकर भी भोजन नहीं करना चाहिए॥ १७॥

आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्। वृत्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम्॥ १८॥

जो केवल अपने लिए भोजन बनाता है, जो केवल कामवासना की सन्तुष्टि के लिए मैथुन करता है और जो व्यक्ति केवल जीविकोपार्जन हेतु अध्ययन करता है, उसका जीवन निष्फल होता है॥ १८॥

यद्भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते उदङ्मुखः।
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम्॥ १९॥

जो व्यक्ति शिर में वस्त्र लपेट कर या शिर ढककर भोजन करता है, जो उत्तर की ओर मुख करके भोजन करता है तथा जो जूता चप्पल पहन कर भोजन करता है, उसके उस भोजन को आसुरी भोजन समझना चाहिए॥ १९॥

नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक्। न च भिन्नासनगतो न शयानः स्थितोऽपि वा॥ २०॥

अर्धरात्रि में, मध्याह्न में, अजीर्ण होने पर, गीले वस्त्र पहनकर या टूटे हुए आसन पर बैठकर या लेटकर या खड़े होकर भोजन नहीं करना चाहिए॥ २०॥

न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु। नोच्छिष्टो घृतमादद्यात् न मूर्धानं स्पृशेदपि॥ २१॥

टूटे-फूटे पात्र में या भूमि में या हाथ में रखकर भी भोजन नहीं करना चाहिए। जूठा मुख या जूठा हाथ होने पर घृतपात्र में से घी न ले और न अपने शिर का स्पर्श करे॥ २१॥

न ब्रह्म कीर्तयनूवापि न निःशेषं न भार्यया। नान्धकारे न सन्ध्यायां न च देवालयादिषु॥ २२॥

वेद का पाठ करते हुए भी भोजन न करे। थाली में परोसे हुए सम्पूर्ण अन्न को नहीं खाना चाहिए।

---

१. यज्ञावशिष्टमद्याद् वा

[अर्थात् कुत्ते आदि के लिए अन्त में कुछ भोजन छोड़ देना चाहिए।] पत्नी के साथ भी भोजन न करे; और न अन्धकार में, न सन्ध्याकाल में तथा न देवालय में बैठकर भोजन करे॥२२॥

नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः। न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन् विलपन्नपि॥२३॥

केवल एक वस्त्र पहन कर भोजन न करे तथा किसी यान (वाहन) में बैठकर या शय्या (विस्तर) में बैठकर भी भोजन न करे। बिना खड़ाऊँ उतारे तथा हँसते हुए या रोते हुए भी भोजन नहीं करना चाहिए॥२३॥

भुक्त्वा वै सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत्। इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत्॥२४॥

इस प्रकार भोजन करके सुखपूर्वक बैठकर उस भोजन को पचाना चाहिए तथा इातिहास और पुराणों की कथाओं का श्रवण-मनन करके वेदों के तात्पर्य को ज्ञातकर उस ज्ञान के विस्तार का प्रयास करे॥२४॥

ततः सन्ध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना शुचिः। आसीनश्च जपेद् देवीं गायत्रीं पश्चिमां प्रति॥२५॥

तदनन्तर सायंकाल शुद्ध होकर पूर्वोक्त (पीछे पृष्ठ १८, २५-२७, ७५ में) कथित विधि के अनुसार सन्ध्योपासन करे। शुद्ध आसन में पश्चिम की ओर मुख करके बैठकर गायत्री देवी के मन्त्र का जप करे॥२५॥

नोपतिष्ठति[1] तु यः पूर्वां नैव सन्ध्यां च पश्चिमाम्। स शूद्रेण समो लोके सर्वकर्मविवर्जितः॥२६॥

जो द्विज प्रातःकालीन (पूर्व की) तथा सायंकालीन- (पश्चिम की) सन्ध्या की उपासना (जप) नहीं करता है, वह इस लोक में शूद्र के समान है और सभी धार्मिक कृत्यों में वर्जित है॥२६॥

हुत्वाग्निं विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम्। सभृत्यबान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि॥२७॥

रात्रि में मन्त्रोच्चारण करते हुए विधिपूर्वक अग्नि में हवन करने के अनन्तर शेष अन्न को भृत्यों और बान्धव जनों के साथ मिल बैठकर खाने के बाद रात्रि में पैरों को सुखा कर शयन करे॥२७॥

नोत्तराभिमुखः स्वप्यात्पश्चिमाभिमुखो न च। न चाकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित्॥२८॥

उत्तर की ओर शिर करके या पश्चिम की ओर शिर करके नहीं सोना चाहिए। खुले आकाश के नीचे नहीं सोना चाहिए और न निर्वस्त्र (नंगा) होकर तथा न अशुद्ध होकर ही सोना चाहिए और बैठने के आसन पर भी कभी नहीं सोना चाहिए॥२८॥

न शीर्णायान्तु खट्वायां शून्यागारे न चैव हि। नानुवंशे न पालाशे शयने वा कदाचन॥२९॥

जीर्णशीर्ण खाट (चारपाई) पर नहीं सोना चाहिए और निर्जन घर में कभी भी अकेले नहीं सोना चाहिए। बांस की बनी हुई या पलाश (ढाक) की लकड़ी से बनी हुई खाट पर भी कदापि नहीं सोना चाहिए॥२९॥

इत्येतदखिलं प्रोक्तमहन्यहनि वै मया। ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम्॥३०॥

मैंने ब्राह्मणों के लिए प्रतिदिन करणीय इन सभी कृयों को पूर्णतः कह दिया है। इन कृत्यों को करने से ये मोक्षरूपी फल को प्रदान करते हैं॥३०॥

१. न तिष्ठति

नास्तिक्यादथवालस्याद् ब्राह्मणो न करोति यः। स याति नरकान् घोरान् काकयोनौ च जायते॥३१॥

जो ब्राह्मण नास्तिकता वश अथवा आलस्य के कारण इन कृत्यों को नहीं करता है, वह घोर नरक में जाता है तथा अन्त में काकयोनि में जन्म लेता है॥३१॥

नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाश्रमविधिं स्वकम्। तस्मात्कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः॥३२॥

इति श्रीकर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्मसु भोजनादिविधानवर्णनं नामोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

अपने वर्ण तथा आश्रम के लिए विहित विधि-विधानों का पालन न करने वाले द्विज के लिए मुक्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं है। अतः परमेष्ठी (परमात्मा) की प्रसन्नता हेतु अपने लिए विहित कृत्यों को अवश्य करते रहना चाहिए॥३२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता में 'ब्राह्मणों के नित्य कर्तव्य गें भोजनादि वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥१९॥

❖❖❖

अथ विंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

व्यास उवाच

अथ श्राद्धममावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः। पिण्डान्वाहार्यकं भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥१॥

व्यास जी ने कहा- श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रतिमास अमावास्या के दिन भक्तिभाव से पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना चाहिए। यह श्राद्ध भोग और मोक्ष को देने वाला है॥१॥

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे चन्द्रे[1] च शस्यते। अपराह्णे द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण च॥२॥

इस विषय में मनु ने यह कहा है- पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यानमासानुमासिकम्। पितृणां मासिकं श्राद्धमन्वाहायं विदुर्बुधाः॥ मनु ३/१२२-३। पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध चन्द्रमा के क्षीण होने पर आमिष से करना ही द्विजातियों के लिए प्रशस्त माना जाता है॥२॥

प्रतिपत्प्रभृति ह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके। चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तराः[2]॥३॥

श्राद्ध के लिए कृष्णपक्ष में चतुर्दशी तिथि को वर्जित कर प्रतिपदा से लेकर आगे की अन्य सभी तिथियाँ उत्तरोत्तर प्रशस्त बतायी गयी हैं॥३॥

१. राजनि, २. ह्युपरोधतः

अमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु। तिस्रस्तास्त्वष्टकाः पुण्या माघी पञ्चदशी तथा॥४॥
त्रयोदशी मघायुक्ता वर्षासु च विशेषतः। शस्यपाक-श्राद्धकालाः नित्याः प्रोक्ता दिने दिने॥५॥

अमावास्या एवं पौष, माघ तथा फाल्गुन मासों के [कृष्णपक्ष की] अष्टका (अष्टमी तिथियाँ) तथा माघी पूर्णिमा एवं वर्षाऋतु में मघा नक्षत्र से युक्त त्रयोदशी और फसल पकने की कालावधि को श्राद्ध के लिए प्रशस्त बतलाया गया है। इन दिनों को नित्यश्राद्ध का काल कहा गया है। तब प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिए॥४-५॥

नैमित्तिकं तु कर्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। बान्धवानां च मरणे[1] नारकी स्यादतोऽन्यथा॥६॥

नैमित्तिक श्राद्ध चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण के समय तथा अपने बान्धवों की मृत्यु होने पर किया जाता है। उस नैमित्तिक श्राद्ध को नहीं करने पर गृहस्थ द्विज नरक में गिरता है॥६॥

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु। अयने विषुवे चैव व्यतीपाते त्वनन्तकम्॥७॥

ग्रहण आदि के समय किये गये काम्य श्राद्धों को प्रशस्त माना गया है। उत्तरायण एवं दक्षिणायन में तथा विषुव (मेष राशि एवं तुला राशि में सूर्य के प्रवेश) के दिन एवं व्यतीपात योग में किये गये श्राद्ध का अनन्त फल होता है॥७॥

संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि। नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काम्यं[2] विशेषतः॥८॥

संक्रान्तियों के दिनों में तथा जन्मदिन में किया गया श्राद्ध अक्षय होता है। सभी नक्षत्रों में विशेषतः काम्य श्राद्ध करना चाहिए॥८॥

स्वर्गञ्च लभते कृत्वा कृत्तिकासु द्विजोत्तमः। अपत्यमथ रोहिण्यां सौम्ये तु ब्रह्मवर्चसम्॥९॥

कृत्तिका नक्षत्र में श्राद्ध करने वाला द्विज स्वर्ग को प्राप्त करता है। रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध करने पर सन्तान-प्राप्ति तथा सौम्य (=मृगशिरा) नक्षत्र में श्राद्ध करने से ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है॥९॥

रौद्राणां कर्मणां सिद्धिमार्द्रायां शौर्यमेव च। पुनर्वसौ तथा भूमिं श्रियं पुष्ये तथैव च॥१०॥

आर्द्रा नक्षत्र में श्राद्ध करने से उग्र कर्मों की सिद्धि (सफलता-प्राप्ति) तथा शौर्य (पराक्रम) सिद्ध होता है। पुनर्वसु नक्षत्र में श्राद्ध करने पर भूमि लाभ तथा पुष्य नक्षत्र में श्राद्ध करने पर श्री (धन-सम्पदा) का लाभ होता है॥१०॥

सर्वान्कामांस्तथा सार्प्ये पित्र्ये सौभाग्यमेव च। अर्यम्णे तु धनं विन्देत् फाल्गुन्यां पापनाशनम्॥११॥

अश्लेशा नक्षत्र में श्राद्ध करने से सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, मघा नक्षत्र में श्राद्ध करने पर सौभाग्य-लाभ, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध से धन-लाभ तथा उत्तरा फाल्गुनी में श्राद्ध करने पर पाप का नाश होता है॥११॥

ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायां च बहून् सुतान्।
वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ तु विशाखासु सुवर्णकम्॥१२॥

हस्त नक्षत्र में श्राद्ध करने से अपनी जाति या कुल में सर्वश्रेष्ठ होने का गौरव, चित्रा में श्राद्ध

१. विस्तरेण, २. काले

करने से बहुत पुत्रों की प्राप्ति, स्वाति नक्षत्र में श्राद्ध करने पर व्यापार में लाभ तथा विशाखा में श्राद्ध से स्वर्ण-लाभ होता है॥१२॥

मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्यं शाक्रे तथैव च। मूले कृषिं लभेद्यानात्[1] सिद्धिमाप्ये समुद्रतः॥१३॥

मैत्र अर्थात् अनुराधा नक्षत्र में श्राद्ध करने से बहुत से लोग मित्र बन जाते हैं तथा शाक्र (ज्येष्ठा) नक्षत्र में श्राद्ध करने से राज्य की प्राप्ति (या राजकीय पद का लाभ), मूल नक्षत्र में श्राद्ध करने पर कृषि सम्बन्धी लाभ तथा आप्य (पूर्वाषाढा) नक्षत्र में श्राद्ध करने से समुद्रयान से सिद्धि प्राप्त होती है॥१३॥

सर्वान् कामानुवैश्वदेवे श्रैष्ठ्यन्तु श्रवणे पुनः। धनिष्ठायां तथा कामान् वारुणे च परं बलम्॥१४॥

[द्रष्टव्य- समुद्रयानसिद्धिमाप्ये।- चतुवर्गचिन्तामणिः श्राद्धकल्प पृ. २६७।] वैश्वदेव नक्षत्र (उत्तराषाढा) में श्राद्ध करने से सभी मनोरथों की सिद्धि, श्रवण नक्षत्र में श्राद्ध से श्रेष्ठता, धनिष्ठा में श्राद्ध करने से मनोकामना की पूर्ति तथा वारुण (शतमिषा) नक्षत्र में श्राद्ध करने से शारीरिक बल की प्राप्ति होती है॥१४॥

अजैकपादे कुप्यं स्यादाहिर्बुध्ने गृहं शुभम्। रेवत्यां बहवो गावो ह्यश्विन्यांतुरगांस्तथा।
याम्ये तु जीवनं दीर्घं[2] यदि श्राद्धं प्रयच्छति॥१५॥

आदित्यवारे त्वारोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च। कुजे सर्वत्र विजयं सर्वान् कामान् बुधस्य तु॥१६॥

अजैकपाद (पूर्वाभद्रपद) नक्षत्र में श्राद्ध करने से कुप्य अर्थात् (सोना-चांदी के अतिरिक्त) ताम्र आदि धातुओं की प्राप्ति, अहिर्बुध्न्य (उत्तराभाद्रपद) नक्षत्र में श्राद्ध करने से शुभ गृह प्राप्त होता है। रेवती नक्षत्र में श्राद्ध से बहुत सी गायें तथा अश्विनी नक्षत्र में श्राद्ध से अश्वों की प्राप्ति होती है। याम्य (भरणी) नक्षत्र में श्राद्ध करने से दीर्घायु प्राप्त होती है। [सभी नक्षत्रों में श्राद्ध का जो फल मिलता है, उसका उल्लेख चतुर्वर्गचिन्तामणि-श्राद्धकल्प पृ. २६७-२७२। में है।] रविवार को श्राद्ध करने पर आरोग्य लाभ, सोमवार को सौभाग्य वृद्धि, मंगल के दिन श्राद्ध करने पर सर्वत्र विजय तथा बुध के दिन श्राद्ध करने से सभी मनोकामनाऐं पूर्ण होती हैं॥१५-१६॥

विद्यामभीष्टां तु गुरौ धनं वै भार्गवे पुनः। शनैश्चरे लभेदायुः प्रतिपत्सु सुतान् शुभान्॥१७॥

गुरुवार को श्राद्ध करने से अभीष्ट विद्या की प्राप्ति, शुक्रवार को धन लाभ तथा शनिवार को श्राद्ध करने से आयुष्य वृद्धि होती है। प्रतिपदा को श्राद्ध करने से शुभ आचरण वाले पुत्र प्राप्त होते हैं॥१७॥

कन्यकां वै द्वितीयायां तृतीयायां तु वन्दिनः।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां वै पञ्चम्यां शोभनान् सुतान्॥१८॥

द्वितीया तिथि को श्राद्ध करने पर कन्या उत्पन्न होती है। तृतीया को श्राद्ध करने पर (कुटुम्ब के) वन्दी जनों की (बन्धन से मुक्ति?) प्राप्ति, चतुर्थी को श्राद्ध करने से क्षुद्र (छोटे) पशुओं की प्राप्ति तथा पञ्चमी को श्राद्ध करने पर सुन्दर पुत्रों की प्राप्ति होती है॥१८॥

षष्ठ्यां द्युतिं कृषिञ्चापि सप्तम्यां च धनं नरः। अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा॥१९॥

१. लभेद् ज्ञानं, २. याम्ये तु जीवितन्तु स्याद्यः

षष्ठी तिथि को श्राद्ध करने से द्युति (शारीरिक सौन्दर्य) की प्राप्ति तथा कृषि में लाभ, सप्तमी में धन तथा अष्टमी में श्राद्ध करने वाला व्यापार में लाभ प्राप्त करता है॥१९॥

स्यान्नवम्यामेकखुरं दशम्यां द्विखुरं बहु। एकादश्यां तथा रूप्यं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्॥२०॥

नवमी में श्राद्ध करने से एक खुर वाले पशु तथा दशमी में श्राद्ध करने से दो खुर वाले बहुत पशु प्राप्त होते हैं। एकादशी को श्राद्ध करने से रजत (चाँदी) तथा ब्रह्मतेज युक्त पुत्रों की प्राप्ति होती है॥२०॥

द्वादश्यां जातरूपं च रजतं कुप्यमेव च। ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यान्तु कुप्रजाः।
पञ्चदश्यां सर्वकामान् प्राप्नोति श्राद्धदः सदा॥२१॥

द्वादशी के दिन श्राद्ध करने से सोना, चाँदी तथा कुप्य (ताम्र आदि धातुओं) की प्राप्ति होती है। त्रयोदशी को श्राद्ध करने से अपनी जाति में श्रेष्ठता प्राप्त होती है, चतुर्दशी के दिन श्राद्ध करने से दुष्ट सन्तान का जन्म होता है तथा पञ्चदशी (पूर्णिमा, अमावास्या) को श्राद्ध करने से श्राद्धकर्ता की सभी मनोकामनाएँ सदा पूर्ण होती हैं॥२१॥

तस्माच्छ्राद्धं न कर्तव्यं चतुर्दश्यां द्विजातिभिः। शस्त्रेण तु हतानान्तु श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत्॥२२॥

अतः द्विजातियों को चतुर्दशी के दिन श्राद्ध नहीं करना चाहिए। उस तिथि के दिन उनका श्राद्ध करना चाहिए जो शस्त्र आदि से मारे गये हों॥२२॥

द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालनियमः कृतः। तस्माद्भोगापवर्गार्थं श्राद्धं कुर्युर्द्विजातयः॥२३॥

द्रव्य, ब्राह्मण एवं सम्पत्ति के उपलब्ध होने पर श्राद्ध के लिए कोई नियम नहीं है, तब कभी भी श्राद्ध किया जा सकता है। अतः इस जीवन में भोग-साधनों की प्राप्ति तथा मृत्यु के पश्चात् अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति हेतु द्विजातियों को श्राद्ध करना चाहिए॥२३॥

कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादभ्युदये पुनः। पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पार्वणं पर्वसु स्मृतम्॥२४॥

सभी शुभ कृत्यों के आरम्भ में तथा पुत्र-जन्म [नामकरण, उपनयन, विवाह] आदि के अवसर पर आभ्युदयिक-श्राद्ध करना चाहिए तथा पर्व के दिनों में पार्वण-श्राद्ध करना चाहिए॥२४॥

अहन्यहनि नित्यं स्यात् काम्यं नैमित्तिकं पुनः। एकोद्दिष्टादि विज्ञेयं वृद्धिश्राद्धन्तु पार्वणम्॥२५॥
एतत्पञ्चविधं श्राद्धं मनुना परिकीर्तितम्। यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेन पालयेत्॥२६॥

प्रतिदिन किये जाने वाले श्राद्ध को नित्यश्राद्ध तथा विशेष कामना से किये जाने वाले अनुष्ठान के अङ्गरूप में किये जाने वाले श्राद्ध को काम्य-श्राद्ध या नैमित्तिक श्राद्ध कहा जाता है। एक व्यक्ति के निमित्त किये गये श्राद्ध को एकोदिष्ट श्राद्ध कहा जाता है। इस प्रकार क्रमशः नित्यश्राद्ध, काम्य-श्राद्ध, नैमित्तिक-श्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध (आभ्युदयिक श्राद्ध) और पार्वण श्राद्ध भेद से पांच प्रकार के श्राद्ध मनु ने कहे हैं। [पार्वण श्राद्ध की विधि से पितृपक्ष के श्राद्ध भी किये जाते हैं- कन्यागते सवितरि दिनानि दशपञ्च च। पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते॥] यात्रा में किया जाने वाला श्राद्ध छठा कहा गया है। उसे भी प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए॥२५-२६॥

शुद्धये सप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणा परिभाषितम्। दैविकं चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्वा मुच्यते भयात्॥२७॥

शुद्धि हेतु किये जाने वाले श्राद्ध को ब्रह्मा ने सातवें श्राद्ध-भेद के रूप में विहित किया है। आठवाँ दैविक श्राद्ध है, जिसे करने वाला भय से मुक्त हो जाता है॥२७॥

सन्ध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं राहोरन्यत्र दर्शनात्। देशानान्तु विशेषेण भवेत्पुण्यमनन्तकम्॥२८॥

श्राद्ध कभी भी सन्ध्या के समय तथा रात्रि में नहीं करना चाहिए। किन्तु राहु के द्वारा चन्द्रमा को ग्रस्त किये जाने पर रात्रि में भी श्राद्ध किया जा सकता है। पवित्र देश विशेष में श्राद्ध करने का अनन्त पुण्य होता है॥२८॥

गङ्गायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके। गायन्ति पितरो गाथां नर्तयन्ति मनीषिणः॥२९॥
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः। तेषान्तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥३०॥
गयां प्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्धं समाचरेत्। तारिताः पितरस्तेन स याति परमाङ्गतिम्॥३१॥

गङ्गा तट पर, प्रयाग में तथा अमरकण्टक में श्राद्ध करने का अनन्त फल होता है। पितर इस गाथा (गीत) को गाते हैं तथा मनीषी जन भी यह कहते हैं कि मनुष्य को बहुत से चरित्रवान् तथा गुणवान् पुत्रों की कामना करनी चाहिए। उन सभी में से यदि एक भी गया में जाता है और अनुषङ्गवश गया में जाकर यदि वह श्राद्ध कर देता है तो वह पितरों का उद्धार कर देता है तथा स्वयं भी परम गति प्राप्त करता है॥२९-३१॥

वाराहपर्वते चैव गयायां वै विशेषतः। वाराणस्यां विशेषेण यत्र देवः स्वयं हरः॥३२॥
गङ्गाद्वारे प्रभासे तु बिल्वके नीलपर्वते। कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुङ्गे महालये॥३३॥
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च। सरस्वत्यां विशेषेण पुष्करे तु विशेषतः॥३४॥
नर्मदायां कुशावर्ते श्रीशैले भद्रकर्णके। वेत्रवत्यां विशाखायां गोदावर्यां विशेषतः॥३५॥
एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च। नदीनाञ्चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा॥३६॥

वाराह पर्वत में, गया में तथा विशेषतः जहां स्वयं महादेव विश्वनाथ विराजमान हैं, उस वाराणसी में एवं गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रभास क्षेत्र, बिल्व-तीर्थ, नील पर्वत, कुरुक्षेत्र, कुब्जाम्र क्षेत्र, भृगुतुङ्ग, महालय, केदारनाथ, फल्गुतीर्थ, नैमिषारण्य, विशेषतः सरस्वती नदी के तट पर एवं पुष्कर में विशेष रूप से तथा नर्मदा, कुशावर्त, श्रीशैल, भद्रकर्णक, वेत्रवती नदी, विपाशा नदी एवं विशेषतः गोदावरी नदी आदि में तथा अन्य तीर्थों एवं नदियों के तटों में श्राद्ध करने से पितर सदैव तृप्त होते हैं॥३२-३६॥

व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा। श्यामाकैश्च यवैः काशैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः।
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्॥३७॥

चावल, जौ, माष, मूल, फल तथा जल, श्यामाक (साँवाँ), जौ, काश, नीवार (तिन्नी), प्रियङ्गु (काउन?), गेहूँ, तिल तथा मूँग से किये गये श्राद्ध से पितर एक मास तक तृप्त रहते हैं॥३७॥

आम्रान् पानेरतानिक्षून् मृद्वीकांश्च सदाडिमान्। विदार्यांश्च [1]कुरण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत्॥३८॥

---

१. कुरण्ड या भरण्ड पाठ का भी अर्थ स्पष्ट नहीं है। कुरण्ड का अर्थ अण्डकोश की वृद्धि कारक रोग है तो भरण्ड का अर्थ कीड़ा है।

आम, पानेरत (करौंदा), ईख, द्राक्षा (अंगूर), दाड़िम, विदारी (भूमि-कूष्माण्ड) तथा कुरण्ड या भरण्ड(?) को श्राद्ध में पितरों को देना चाहिए॥३८॥

लाजान् मधुयुतान् दद्यात्सक्तून् शर्करया सह। दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गाटककशेरुकान्॥३९॥

मधु से युक्त लाजा तथा शर्करा (शक्कर) से युक्त सत्तू, शृङ्गाटक (सिंघाड़ा) तथा कशेरू(?) भी श्राद्ध में प्रयत्न पूर्वक देना चाहिए॥३९॥

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हरिणेन तु। औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनेह पञ्च तु॥४०॥
षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेनेहं सप्त वै। अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु॥४१॥
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः। शशकूर्मयोर्मांसेन मासानेकादशैव तु॥४२॥

श्राद्ध में मत्स्य-मांस से पितर दो मास तक, हिरन के मांस से तीन मास, औरभ्र (भेड़ के मांस) से चार मास, पक्षियों के मांस से पांच मास, बकरे के मांस से छः मास, पार्षत (एक विशेष प्रकार के हिरन के मांस) से सात मास, एण (काले वर्ण का बारहसिंगा हिरन) के मांस से आठ मास, रुरु मृग के मांस से नौ मास, वराह तथा महिष (भैंसा) के मांस से दश मास, शश (खरगोश) के एवं कछुए के मांस से ग्यारह मास तक पितर तृप्त रहते हैं॥४०-४२॥

संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन तु। वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥४३॥

गाय के दूध से या खीर से श्राद्ध करने पर पितर एक वर्ष तक तृप्त रहते हैं तथा गैंडे के मांस से श्राद्ध करने पर पितर बारह वर्षों तक तृप्त रहते हैं॥४३॥

कालशाकं महाशल्कं खड्गलोहामिषं मधु। आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः॥४४॥

कालशाक (पटुआ या करेमू का साग), महाशल्क (मोटे छिलके वाली मछली), गैंडे के एवं लाल बकरे के मांस, मधु एवं मुनियों के द्वारा खाये जाने वाले अन्नों से श्राद्ध करने पर पितर अनन्त काल तक तृप्त रहते हैं॥४४॥

क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वै द्विजः। दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमुच्यते॥४५॥

मांस आदि को क्रय करके या किसी से [दान में] प्राप्त करके या स्वयं अपने प्रयास से प्राप्त करके श्राद्ध में पितरों को प्रदान करे। यह अनन्त फलदायक कहा गया है॥४५॥

पिप्पली रुचकञ्चैव तथा चैव मसूरकम्। कूष्माण्डालाबुवार्ताकभूतृणं सरसं तथा॥४६॥
कुसुम्भपिण्डमूलं वै तन्दुलीयकमेव च। राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषाजं विवर्जयेत्॥४७॥

पिपली, रुचक (बिजौरा नीबू), मसूर की दाल, कद्दू, अलाबु (गोलाकार लौकी), वार्ताक (बैगन), सरस भूतृण (ताजी सुगन्धित घास?) कुसुम्भ (केसर), पिण्डमूल (गाजर), तन्दुलीयक (चौराई या चौलाई का साग), राजमाष (बड़ी उड़द) एवं भैंस का दूध तथा बकरी का दूध श्राद्ध में वर्जित करना चाहिए॥४६-४७॥

आढक्यः कोविदाराश्च पालक्याः मरिचास्तथा। वर्जयेत् सप्रयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः॥४८॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! [उपर्युक्त वर्जित वस्तुओं के साथ ही] आढकी (कोदों), कोविदार (कचनार), पालक तथा मरिच (कालीमिर्च) को श्राद्धकाल में पूरे प्रयत्न से वर्जित करे॥४८॥

केचित् त्रैवर्णिकाद् भिन्ना केचित् पूर्वोत्तरे द्विजाः। श्राद्धं मांसेन कुर्वन्ति न तु सर्वे द्विजातयः[1]॥४९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पे विंशोऽध्यायः॥२०॥

विभिन्न पशुओं के मांस से पितरों के श्राद्ध का उपर्युक्त (पीछे ४० से ४४ श्लोक में कथित) विधान त्रैवर्णिकों से भिन्न जातियों के लिए है। वे तथा कुछ पूर्वोत्तर के द्विज पितरों को श्राद्ध में मांस अर्पित करते हैं, किन्तु अन्य सभी द्विजाति श्राद्ध में पितरों को मांस कदापि नहीं देते॥४९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के वर्णन-प्रसंग में श्राद्धकल्प नामक बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥२०॥

❖❖❖

अथैकविंशोऽध्यायः

श्राद्धविषये पंक्तिपावनब्राह्मणानां लक्षणम्

व्यास उवाच

स्नात्वा यथोक्तं सन्तर्प्य पितृंश्चन्द्रक्षये द्विजः। पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात् सौम्यमनाः शुचिः॥१॥

व्यास जी बोले- चन्द्रमा के क्षीण होने के दिन अर्थात् अमावास्या को द्विज स्नान करके शास्त्रोक्त विधि से पितरों का तर्पण करके शान्त मन से और पवित्रता के साथ पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करे॥१॥

पूर्वमेव समीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्। तीर्थं तद्हव्यकव्यानां प्रदानानाञ्च स स्मृतः॥२॥

वह पहले से ही वेद में पारंगत ब्राह्मण को देख-परख ले, क्योंकि उसी को दान तथा हव्य-कव्य का सत्पात्र कहा गया है॥२॥

ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञाः शान्तचेतसः। व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः॥३॥

जो ब्राह्मण सोमपान करने वाले, रजोगुण से रहित, धर्म के ज्ञाता, शान्तचित्त, व्रत-परायण, विहित निमयों का पालन करने वाले, ऋतुकालाभिगामी हैं [वे ही हव्य-कव्य के लिए सत्पात्र होते हैं]॥३॥

[2]सद्वृत्तश्चाप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च। बह्वृचश्च त्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वा च योऽभवत्॥४॥
त्रिणाचिकेतच्छन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च। अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः॥५॥
अग्निहोत्रपरो विद्वान् न्यायविच्च षडङ्गवित्। मन्त्रब्राह्मणविच्चैव यश्च स्याद्धर्मपाठकः॥६॥
ऋषिव्रती ऋषीकश्च शान्तचेता जितेन्द्रियः। ब्रह्मदेयानुसन्तानो गर्भशुद्धः सहस्रदः॥७॥
चान्द्रायणव्रतचरः सत्यवादी पुराणवित्। गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः॥८॥

---

१. संयोजितोऽयं पाठः

२. पञ्चाग्निरप्य

विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः। महादेवार्चनरतो वैष्णवः पंक्तिपावनः॥९॥
अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा। सत्री च दाननिरतो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥१०॥

सदाचारी, अध्ययनरत, यजुर्वेद का ज्ञाता, ऋग्वेदी ब्राह्मण, त्रिसुपर्ण (ऋग्वेद के त्रिसुपर्ण संज्ञक अंश का पाठ करने वाला), त्रिमधु (मधुवाता ऋतायते आदि का पाठ करने वाला) त्रिणाचिकेत संज्ञक यजुर्वेद के अंश का पाठ करने वाला, छन्दोग (सामवेद के छन्द विशेष का गाने करने वाला), ज्येष्ठसाम का गान करने वाला, अथर्वशीर्ष का पाठ करने वाला तथा विशेषतः रुद्राष्टाध्यायी का पाठ करने वाला, अग्निहोत्र करने वाला, न्यायदर्शन (तर्कशास्त्र) का ज्ञाता, वेद के छः अङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष) का ज्ञाता, वेद के मन्त्र भाग (संहिताओं) तथा ब्राह्मण भाग (चारों वेदों के ब्राह्मण-ग्रन्थों) का ज्ञाता, धर्मशास्त्र का अध्ययन करने वाला, ऋषियों के समान व्रतों का पालन करने वाला, ऋषियों की वंश-परम्परा में उत्पन्न, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय ब्राह्मविवाह करने वाले पिता का सन्तान, गर्भाधानादि सभी संस्कारों से शुद्ध, सहस्र मुद्रा का दानकर्ता, चान्द्रायण व्रत करने वाला, सत्यवादी, पुराण का ज्ञाता, गुरु, देव तथा अग्नि की पूजा में निरत, ज्ञानार्जन में तत्पर, सभी दोषों से मुक्त, धीर, ब्रह्मपरायण, द्विजों में श्रेष्ठ, महादेव शिव के पूजन में संलग्न रहने वाला, वैष्णव (विष्णु का उपासक), पंक्ति पावन, सदा अहिंसा व्रत का पालन करने वाला, प्रतिग्रह (दान ग्रहण) न करने वाला, दीर्घकालीन यज्ञ (सत्र) करने वाला तथा दान-परायण विप्र को पंक्तिपावन समझना चाहिए॥४-१०॥

युवानः श्रोत्रियाः स्वस्था महायज्ञपरायणाः। सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः॥११॥

युवा और स्वस्थ श्रोत्रिय[1] [संस्कारों से सुसंस्कृत वेदादि विद्याओं में पारंगत ब्राह्मण], गायत्री जप करने वाले ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं॥११॥

कुलीनाः श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विनः। अग्निचित् स्नातको विप्रो विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः॥१२॥

कुलीन, वेदज्ञ, सुशील, तपस्वी, अग्निहोत्री तथा स्नातक ब्राह्मणों को पंक्तिपावन कहा गया है॥१२॥

मातापित्रोर्हिते युक्तः प्रातः स्नायी तथा द्विजः। अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥१३॥

माता-पिता के हितकर, प्रातः स्नान से शुद्ध रहने वाले, अध्यात्मज्ञानी, मुनि तथा दान्त (इन्द्रिय-संयमी) ब्राह्मणों को पंक्तिपावन समझना चाहिए॥१३॥

ज्ञाननिष्ठो महायोगी वेदान्तार्थविचिन्तकः। श्रद्धालुः श्राद्धनिरतो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥१४॥

ज्ञान-निष्ठ, महायोगी, वेदान्त के अर्थ के विचार में तत्पर, श्रद्धालु, श्राद्धकर्ता ब्राह्मण को पंक्तिपावन जानना चाहिए॥१४॥

वेदविद्यारतः स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा। अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥१५॥

वेद-विद्या के अध्ययन में संलग्न तथा सदैव ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला स्नातक, अथर्ववेद के अध्येता तथा मुमुक्षु (मोक्ष कामना वाले) ब्राह्मणों को पंक्तिपावन कहा गया है॥१५॥

---

१. जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते॥

असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च। सम्बन्धशून्यो विज्ञेयो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥१६॥

अपने प्रवर से भिन्न प्रवर (असमान प्रवर) तथा अपने से भिन्न गोत्र वाला एवं अपने सम्बन्ध (रिस्तेदारी) से भिन्न (असम्बन्धी) होने पर भी जो ब्राह्मण सुयोग्य हो उस ब्राह्मण को भी पंक्तिपावन समझना चाहिए॥१६॥

भोजयेद्योगिनं शान्तं तत्त्वज्ञानरतं यतिम्। अभावे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा॥१७॥

श्राद्ध में तत्त्वज्ञान की साधना में संलग्न शान्त स्वभाव के योगी को एवं संन्यासी को भोजन करवाये। उसके अभाव में नैष्ठिक, संयमी उपकुर्वाण (गुरु के आश्रम में निवास करते हुए सेवा करने वाले) ब्रह्मचारी को भोजन करावे॥१७॥

तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सङ्गवर्जितम्। सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थमपि भोजयेत्॥१८॥

उसके अभाव में आसक्ति रहित होकर मोक्ष की कामना करने वाले गृहस्थ को भोजन करावे और सबके अभाव में साधक [अपने पैतृक व्यवसाय में संलग्न रहते हुए भी ईश्वर की आराधना में निरत] ब्राह्मण को भोजन करावे॥१८॥

प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्याश्नाति यतिर्हविः। फलं वेदान्तवित्तस्य सहस्रादतिरिच्यते॥१९॥

प्रकृति के गुणों और तत्त्वों का ज्ञाता संन्यासी जिस गृहस्थ के घर हविष्यान्न का भोजन करता है, उसको एक सहस्र वेदान्त के ज्ञाताओं को भोजन कराने से भी अधिक पुण्य फल मिलता है॥१९॥

तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम्। भोजयेद्हव्यकव्येषु अलाभादितरान् द्विजान्॥२०॥

अतः हव्य-कव्य (देवकार्य और पितृकार्य) में ईश्वरीय ज्ञान की साधना में तत्पर योगीश्वर को यत्नपूर्वक भोजन करावे। उसके अभाव में ही अन्य ब्राह्मणों को भोजन करावे॥२०॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः। अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः॥२१॥

हव्य-कव्य में ब्राह्मण-भोजन विषयक यह विधान प्रथम कल्प रूप में है। सज्जनों के द्वारा अनुष्ठित अनुकल्प गौड़ या वैकल्पिक विधान सदैव के लिए यह जानना चाहिए (जो आगे कहा गया है)॥२१॥

मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम्। दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत्॥२२॥

मातामह (नाना), मामा, भान्जा श्वशुर, गुरु, दौहित्र, जामाता, बन्धु, ऋत्विक् (पुरोहित) तथा याज्य (यज्ञ करवाने वाले) ब्राह्मण को भी श्राद्ध में भोजन करावे॥२२॥

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः। पैशाची दक्षिणा सा हि नेहामुत्र फलप्रदा॥२३॥

मित्र को श्राद्ध में भोजन नहीं कराना चाहिए। उसका संग्रह (अर्थात् उसके साथ मित्रता) धन के आदान-प्रदान से की जा सकती है। मित्र को श्राद्ध में दी गयी दक्षिणा पैशाची (पिशाच को प्राप्त) होती है। वह दक्षिणा न तो इस लोक में और न परलोक में ही फलप्रद होती है अर्थात् निष्फल होती है॥२३॥

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम्। द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम्॥२४॥

सुयोग्य पात्र के अभाव में भले ही मित्र को भोजन आदि देकर सत्कार करे, किन्तु अभिरूप

(अर्थात् सुयोग्य और सत्पात्र) होने पर भी शत्रु को श्राद्ध में भोजन न करावे, क्योंकि शत्रु के द्वारा खायी गयी हवि (श्राद्ध भोजन आदि) परलोक में निष्फल हो जाती है॥२४॥

ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति। तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते॥२५॥

वेद आदि विद्याओं के अध्ययन से रहित ब्राह्मण तिनकों में लगी हुई अग्नि के समान निस्तेज हो जाता है। अतः उसे हवि (हविष्यान्न) नहीं देना चाहिए, क्योंकि भस्म में होम नहीं किया जाता॥२५॥

यथोषरे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्। तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम्॥२६॥

जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज बोने पर कृषक को कोई फल नहीं मिलता उसी प्रकार वेद के ज्ञान से रहित ब्राह्मण को हवि प्रदान करने से दाता को कोई फल नहीं मिलता॥२६॥

यावतो ग्रसते पिण्डान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्। तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान्॥२७॥

वेद मन्त्रों को नहीं जानने वाला ब्राह्मण हव्य-कव्य (देवकार्य में या श्राद्ध में) जितने पिण्ड (ग्रास) खाता है, उसको मृत्यु के पश्चात् परलोक में उतने ही अग्नि में प्रतप्त लोहे के पिण्डों को खाना पड़ता है॥२७॥

अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः। यत्रैते भुञ्जते हव्यं तद्भवेदासुरं द्विजाः॥२८॥

हे द्विजो! विद्या का अध्ययन कर लेने तथा उत्तम कुल में उत्पन्न होने पर भी जो अधम मनुष्य चरित्रहीन हैं, वे जहाँ देवकार्य या पितृकार्य में हव्य-कव्य ग्रहण करते हैं, वह सब आसुरी हो जाता है॥२८॥

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्। स वै दुर्ब्राह्मणो नार्हः श्राद्धादिषु कदाचन॥२९॥

जिसके कुल में विगत तीन पीढ़ियों से वेद तथा यज्ञवेदी से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया हो वह दुर्ब्राह्मण श्राद्ध आदि कर्मों में निमन्त्रण योग्य नहीं होता है॥२९॥

शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलो ग्रामयाजकः। वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः॥३०॥

शूद्र का प्रेष्य (=सेवक) राजा का नौकर, वृषल (जाति-बहिष्कृत), ग्रामयाजक (गाँव का पुरोहित) तथा लोगों का वध करके जीविका चलाने वाला एवं लोगों को बन्धक बनाकर जीविका चलाने वाला- ये छः ब्रह्मबन्धु (केवल नाम के ब्राह्मण) श्राद्ध में वर्ज्य होते हैं॥३०॥

दत्तानुयोगान्द्रव्यार्थं पतितान्मनुरब्रवीत्। वेदविक्रयिणो ह्येते श्राद्धादिषु विगर्हिताः॥३१॥

मनु ने जीविका के लिए भृत्यकर्म (नौकरी) करने वाले ब्राह्मणों को पतित कहा है। ये सभी वेद-विक्रेता ब्राह्मण श्राद्ध आदि कृत्यों में निन्दित (अर्थात् वर्जित) हैं॥३१॥

सुतविक्रयिणो ये तु परपूर्वासमुद्भवाः। असामान्यान् यजन्ते ये पतितास्ते प्रकीर्तिताः॥३२॥

जो अपने पुत्र के विक्रेता हैं, जो पुनर्विवाहिता स्त्री के पुत्र हैं जो असामान्य (त्रैवर्णिकों से बहिष्कृत) जनों का यज्ञ कराते हैं, उनको पतित कहा गया है। [अतः श्राद्ध में वर्ज्य हैं]॥३२॥

असंस्कृताध्यापका ये भृत्यर्थेऽध्यापयन्ति ये। अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्तिताः॥३३॥

जो उपनयन-संस्कार रहित वटु के अध्यापक हैं, जो वेतन लेकर अध्यापन करते हैं तथा जो [उपनयन संस्कार से संस्कृत न होने पर भी] वेद का अध्ययन करते हैं, वे भी पतित कहे गये हैं॥३३॥

वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः। कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः॥ ३४॥
यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः। न तस्य तद्भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम्॥ ३५॥

वृद्ध श्रावक (बौद्ध) तथा निर्ग्रन्थ (जैन), पाञ्चरात्र के ज्ञाता जन, कापालिक, पाशुपत तथा अन्य पाषण्डी (वैदिक सनातन धर्म के निन्दक) तथा अन्य उसी प्रकार के दुरात्मा तामसी जन जिस गृहस्थ के घर श्राद्ध में भोजन करते हैं, उसके द्वारा किया गया वह श्राद्ध इस लोक में तथा परलोक में भी फलदायी नहीं होता है॥ ३४-३५॥

अनाश्रमी द्विजो यः स्यादाश्रमी वा निरर्थकः। मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेयाः पंक्तिदूषकाः॥ ३६॥

जो द्विज किसी आश्रम में नहीं हो (आश्रम धर्म का पालन नहीं करता हो) अथवा नाम मात्र के लिए किसी आश्रम का हो (उस आश्रम धर्म का पालन न करता हो) वैसे सभी द्विज मिथ्याश्रमी हैं। उनको पंक्तिदूषक कहा गया है॥ ३६॥

दुश्चर्मा कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः। विद्धप्रजननश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः॥ ३७॥
मद्यपो वृषलीसक्तो वीरहा दिधिषूपतिः। आगारदाही कुण्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः॥ ३८॥

दुश्चर्मा (विकृत-चमड़ी वाला), विकृत नखों वाला, कुष्ठ रोग वाला, श्वित्री (श्वेत कुष्ठ से ग्रस्त), काले-मटमैले दाँतों वाला, विद्ध (कटे हुए) लिङ्ग वाला, चोर, नपुंसक, नास्तिक, मद्यपान करने वाला, वृषली (शूद्रा) स्त्री में आसक्त, वीरहा (अग्नि होत्र प्रारंभ करके बाद में छोड़ देने वाला ब्राह्मण), दिधिषूपति (पुनर्विवाहिता स्त्री का पति), आगारदाही (घर जला देने वाला), कुण्ड (पति के जीवित रहते हुए पत्नी में परपुरुष से उत्पन्न सन्तान) का भोजन करने वाला तथा सोमलता के विक्रेता द्विज पंक्तिदूषक कहे गये हैं॥ ३७-३८॥

परिवेत्ता च हिंस्रश्च परिवित्तिर्निराकृतिः। पौनर्भवः कुसीदी च तथा नक्षत्रदर्शकः॥ ३९॥
गीतवादित्रशीलश्च व्याधितः काण एव च। हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णी तथैव च॥ ४०॥
कन्यादूषी कुण्डगोलौ अभिशस्तोऽथ देवलः। मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव नित्यं भार्यानुवर्तकः॥ ४१॥
मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च। गोत्रमिद् भ्रष्टशौचश्च शस्त्राजीवी तथैव च[1]॥ ४२॥
अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवकः। समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदकः॥ ४३॥
वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दापरस्तथा। द्विजनिन्दारतश्चैव वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मणि॥ ४४॥

परिवेत्ता (अग्रज के विवाह के पूर्व अपना विवाह करने वाला अनुज), हिंसक, परिवित्ति (अनुज के विवाह तक अविवाहित अग्रज), निराकृति (जिसने अपने वर्ण के लिए विहित वेद आदि का अध्ययन नहीं किया हो), पौनर्भव (दूसरा विवाह करने वाली विधवा का पुत्र) कुसीदी (ब्याज लेने वाला, सूदखोर), नक्षत्र दर्शक (ज्योतिष से आजीविका चलाने वाला), गीत-वाद्य में रमने वाला, व्याधिग्रस्त, काना, विकलाङ्ग, अधिक अङ्गों वाला, अवकीर्णी (स्त्री-संगम करके ब्रह्मचर्य व्रत का खण्डन करने वाला विद्यार्थी), कन्या को दूषित करने वाला, कुण्ड (पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से उत्पन्न पुत्र), गोल (पति की मृत्यु के बाद

१. काण्डस्पृष्टस्तथैव च

उपपति से उत्पन्न पुत्र), अभिशस्त (जिस पर दोषोरोपण किया गया हो), देवल (देवमूर्ति में चढ़ाये गये द्रव्य से जीविका चलाने वाला), मित्र से द्रोह करने वाला, पिशुन (चुगलखोर), नित्य अपनी पत्नी के वश में रहकर उसी के कथनानुसार व्यवहार करने वाला, माता-पिता तथा गुरु को त्यागने वाला, पत्नी का त्याग करने वाला, सगोत्री या अपने कुल के जनों में वैर भाव कराने वाला, शौचाचार रहित, शस्त्र से जीविका चलाने वाला, सन्तानहीन, कूटसाक्षी (झूठी गवाही देने वाला), भीख मांगने वाला, रङ्गजीवी (चित्रकार, नाटक का पात्र), समुद्र की यात्रा करने वाला, अपने द्वारा की गयी प्रतिज्ञा को तोड़ने वाला, वेद की निन्दा एवं देवता की निन्दा तथा द्विज-निन्दा करने वाला श्राद्ध कर्म में वर्जनीय है॥३९-४४॥

कृतघ्नः पिशुनः क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दकः। मित्रध्रुक् कुहकश्चैव विशेषात्पंक्तिदूषकः॥४५॥

कृतघ्न, पिशुन (चुगलखोर), क्रूर, नास्तिक, वेद की निन्दा करने वाला, मित्रद्रोही तथा कुहक (ठग, ऐन्द्रजालिक) को विशेष रूप से पंक्तिदूषक कहा गया है॥४५॥

सर्वे पुनरभोज्यान्ना न दानार्हाश्च कर्मसु। ब्रह्मभावात् निरस्ताश्च[1] वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥४६॥

ये सभी ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन कराने योग्य नहीं हैं तथा सभी शुभ कर्मों (देव कार्य और पितृकार्य) में दान के पात्र भी नहीं हैं। ये सभी ब्रह्मभाव (ब्राह्मणोचित योग्यता) से रहित होते हैं। अतः इनको प्रयत्न पूर्वक वर्जित करना चाहिए॥४६॥

शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः सन्ध्योपासनवर्जितः। महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥४७॥

शूद्र के अन्न और जल से पुष्ट अङ्गों वाला, सन्ध्योपासन नहीं करने वाला तथा पञ्च महायज्ञों को नहीं करने वाला ब्राह्मण पंक्तिदूषक होता है॥४७॥

अधीतनाशनश्चैव स्नानदानविवर्जितः। तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥४८॥

वेद आदि विद्याओं का अध्ययन करके (उनका सदुपयोग न करके) उनको विस्मृत कर देने वाला तथा नित्य स्नान और दान आदि धर्मों से रहित, तमोगुणी और रजोगुणी ब्राह्मण पंक्तिदूषक होता है॥४८॥

बहुनात्र किमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते। निन्दितानाचरन्त्येते वर्ज्याः श्राद्धे प्रयत्नतः॥४९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पे एकविंशोऽध्यायः॥२१॥

अधिक कहने से क्या लाभ। जो ब्राह्मण विहित कर्म नहीं करते और निन्दित या वर्जित कर्म करते हैं, उन सभी को श्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक वर्जित करना चाहिए॥४९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के वर्णन-प्रसंग में श्राद्धकल्प नामक इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥२१॥

❖❖❖

१. ब्रह्महा चामिशस्ताश्च

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्राद्धविधिः

व्यास उवाच

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः। सन्निपत्य द्विजान् सर्वान् सज्जनान्[1] सन्निमन्त्रयेत्॥१॥

एकाग्र मन से श्राद्ध-भूमि को गोबर मिश्रित जल से शुद्ध करके सभी सज्जन ब्राह्मणों के पास जाकर उनको निमन्त्रित करे॥१॥

श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्य च। असम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान्॥२॥

उन ब्राह्मणों का पूजन कर यह कहे कि कल मेरे घर में श्राद्ध होगा। उसके लिए मैं आपको निमन्त्रित करता हूँ। यदि पहले दिन निमन्त्रण देना संभव न हो तो दूसरे दिन (श्राद्ध के दिन) जाकर पूर्वोक्त (पिछले अध्याय में कथित) लक्षणों से युक्त योग्य ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे॥२॥

तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्। अन्योऽन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः॥३॥

तैर्ब्राह्मणैः सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः। वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥४॥

उस श्राद्धकर्ता के पितर श्राद्ध का समय आने की बात सुनकर एक-दूसरे को परस्पर मन में ध्यान से आहूत कर अन्तरिक्ष में मन के समान तीव्र गति से चलकर वायु रूप में श्राद्ध-स्थल पर आकर वहाँ निमन्त्रित ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध की भोजन सामग्री के सार तत्त्व को ग्रहण करके परम गति अर्थात् परम तृप्ति को प्राप्त करते हैं॥३-४॥

आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते। वसेयुर्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः॥५॥

श्राद्धकाल में जिन ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया गया हो वे संयमी रहें और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें॥५॥

अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तः सत्यवादी समाहितः। भारं मैथुनमध्वानं श्राद्धकृद्वर्जयेद्ध्रुवम्॥६॥

श्राद्धकर्ता क्रोध, जल्दीबाजी तथा प्रमाद को त्याग दे तथा सत्य वचन बोले एवं भारी सामान को ढोना, मैथुन तथा यात्रा भी न करे॥६॥

आमन्त्रितो ब्राह्मणो वै योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम्। स याति नरकं घोरं सूकरत्वं प्रयाति च॥७॥

श्राद्ध में पहले से किसी के द्वारा निमन्त्रित ब्राह्मण यदि उसके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के निमन्त्रण को स्वीकार करता है तो वह घोर नरक में गिरता है और तदनन्तर सूकर योनि पाता है॥७॥

आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यं चामन्त्रयेद् द्विजम्। स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते॥८॥

एक ब्राह्मण को निमन्त्रित करने के बाद जो श्राद्धकर्ता अन्य ब्राह्मण को निमन्त्रित कर देता है, वह उस पूर्वोक्त (श्लोक ७ में कथित) से भी अधिक पापी होता है और विष्ठा-भोजी कीड़ा होता है॥८॥

---

१. साधुभिः

श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति। ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ च जायते॥९॥

श्राद्ध में निमन्त्रित जो ब्राह्मण मैथुन करता है, वह ब्रह्महत्या के पाप को प्राप्त करता है और मृत्यु के बाद पशु-योनि में जन्म पाता है॥९॥

निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः। भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनाः॥१०॥

श्राद्ध में निमन्त्रण पाने के बाद जो मूर्ख ब्राह्मण कहीं यात्रा को जाता है, उसके पितर उस एक मास तक धूल फाँकते हैं॥१०॥

निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धं कुर्याद्वै कलहं द्विजः। भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं मलभोजनाः॥११॥

श्राद्ध में निमन्त्रित जो ब्राह्मण किसी से कलह करता है, उसके पितर उस एक मास तक मल (विष्ठा) का भोजन करते हैं॥११॥

तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विजः। अक्रोधनः शौचपरः कर्ता चैव जितेन्द्रियः॥१२॥

अतः श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मण संयम के साथ रहे, क्रोध न करे और शुद्ध रहे। उसी प्रकार श्राद्धकर्ता भी जितेन्द्रिय रहे॥१२॥

श्वोभूते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्भान्समाहितः। समूलानाहरेद्वारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान्॥१३॥

दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विविक्तं[१] शुभलक्षणम्। शुचिं देशं परीक्षाशु[२] गोमयेनोपलेपयेत्॥१४॥

तब अगले दिन अर्थात् श्राद्ध के दिन दक्षिण दिशा में जाकर एकाग्र मन से दक्षिण की ओर झुके हुए निर्मल कुशों को जड़ सहित लाकर तथा शुद्ध जल लाकर दक्षिण की ओर ढाल वाले भीड़-भाड़ रहित (जनशून्य) और शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र स्थान को श्राद्ध के लिए चुनकर गोबर से लीपे॥१३-१४॥

नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव सानुषु[३]। विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा॥१५॥

पितृगण नदियों के तटों पर, तीर्थों में या स्वयं अपनी भूमि में या पर्वत-शिखरों में अथवा एकान्त स्थानों में किये गये श्राद्ध से सदैव सन्तुष्ट रहते हैं॥१५॥

पारक्ये भूमिभागे तु पितृणां नैव निर्वपेत्। स्वामिभिस्तद्विहन्येत मोहाद्यत् क्रियते नरैः॥१६॥

परकीय भूमि के किसी भी भाग में पितरों का श्राद्ध नहीं करना चाहिए। यदि अज्ञानवश कोई लोग परायी भूमि में पितृश्राद्ध करते हैं तो उनके द्वारा किये गये उस श्राद्ध का फल भूमि के स्वामियों के द्वारा विनष्ट कर दिया जाता है॥१६॥

अटव्यः पर्वताः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च। सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न ह्येतेषु परिग्रहः॥१७॥

वन, पर्वत, पवित्र तीर्थ तथा देवताओं के मन्दिर-परिसर की भूमि किसी व्यक्ति विशेष के स्वामित्व में नहीं होती। इन सभी स्थलों का कोई स्वामी नहीं होता॥१७॥

तिलान्प्रविकिरेत् तत्र सर्वतो बन्धयेदजान्। असुरोपहतं श्राद्धं तिलैः शुध्यत्यजेन वा॥१८॥

---

१. विभक्तं। यहाँ पाठ शुद्धि चतुर्वर्गचिन्तामणि श्राद्धकल्प पृ. १६०-१६१ में यम के वचन के अनुसार की गयी है।

२. विविक्तं च

३. नाम्बुषु

[जहाँ पर श्राद्ध करना हो] वहाँ पर तिलों को बिखेर दे तथा बकरों को बाँध दे। असुरों के द्वारा उपहत (क्षति पहुंचाये जाने से या दूषित किये जाने से) श्राद्ध की शुद्धि तिलों से होती है अथवा श्राद्धस्थल में बकरों को बाँधे रखने से होती है॥१८॥

ततोऽन्नं बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जन-संयुतम्। चोष्य पेयसमृद्धं[1] च यथाशक्ति प्रकल्पयेत्॥१९॥

तब अपनी क्षमतानुसार बहुत प्रकार से सुसंस्कृत (परिष्कृत) एवं अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त तथा चूसने और पीने वाले पेय द्रव्यों से युक्त भोजन को पकाकर तैयार करे॥१९॥

ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तरोमनखान् द्विजान्। अभिगम्य यथामार्गं प्रयच्छेद् दन्तधावनम्॥२०॥
तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयञ्च पृथग्विधम्। पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥२१॥

तब मध्याह्न काल बीत जाने पर श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों का, जो अपने नखों और बालों को कटा चुके हों उनको दातौन प्रदान करे। तब 'विश्वेदेवा आगत' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए उन गूलर के पात्र में तेल और उबटन तथा स्नान हेतु अलग-अलग पात्रों में जल प्रदान करे॥२०-२१॥

ततः स्नानान्निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः। पाद्यमाचमनीयं च सम्प्रयच्छेद्यथाक्रमम्॥२२॥

जब वे ब्राह्मण स्नान कर चुके हों तो श्राद्धकर्ता तब उठकर हाथ जोड़कर उनको क्रमशः पाद्य (पैर धोने के लिए जल) तथा आचमन के लिए जल प्रदान करे॥२२॥

ये चात्र विश्वदेवानां द्विजाः पूर्वं निमन्त्रिताः। प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहितानि च॥२३॥

जो ब्राह्मण विश्वदेवों के निमित्त सर्वप्रथम निमन्त्रित किये गये हैं, उनके निमित्त पूर्व की ओर मुख वाले तीन कुश आसन रूप में रखने चाहिए॥२३॥

दक्षिणामुखयुक्तानि पितृणामासनानि च। दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रोक्षितानि तिलोदकैः॥२४॥

पितरों के आसन दक्षिण की ओर मुख करके रखने चाहिए। उन कुशों का अग्रभाग दक्षिण की ओर होना चाहिए तथा उनका तिल और जल से प्रोक्षण करना चाहिए॥२४॥

तेषूपवेशयेदेतानासनं संस्पृशन्नपि। आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरस्ते पृथक् पृथक्॥२५॥

तब उन कुशासनों को स्पर्श करते हुए 'आप आकर बैठें' ऐसा कहे जाने पर पृथक्-पृथक् आसनों पर वे ब्राह्मण बैठें॥२५॥

द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्रे त्रयश्चोदङ्मुखास्तथा। एकैकं तत्र देवन्तु पितृमातामहेष्वपि॥२६॥

विश्वेदेवों से सम्बन्धित दो ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख करके तथा पितरों से सम्बन्धित तीन ब्राह्मणों को उत्तर मुख करके बैठावे। अथवा विश्वेदेवों के निमित्त एक ब्राह्मण तथा अपने पितरों के लिए एक तथा मातामह आदि के लिए भी एक ब्राह्मण को बैठावे॥२६॥

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम्। पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥२७॥

श्राद्ध में अधिक ब्राह्मणों को निमन्त्रित करने आदि की विस्तृत प्रक्रिया करने पर ब्राह्मणों का उचित सत्कार नहीं हो पाता, देश (स्थान) की समुचित व्यवस्था नहीं हो पाती, यथा समय कार्य नहीं हो

१. चोष्यं पेयं संसृतं च

पाता, शुद्धता नहीं रहती तथा सत्पात्र ब्राह्मण सुलभ नहीं हो पाते। अतः श्राद्ध में विस्तृत कार्यक्रम नहीं करना चाहिए॥२७॥

अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम्। श्रुतशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम्॥२८॥

श्राद्ध में विस्तार की अपेक्षा वेद में पारंगत, विद्वान् सुशील एवं कुलक्षणों से रहित केवल एक ही ब्राह्मण को भोजन करावे॥२८॥

उद्धृत्य पात्रे चान्नं तत्सर्वस्मात्प्रकृतातूततः। देवतायतने वासौ निवेद्यान्यत्प्रवर्तयेत्॥२९॥

अथवा श्राद्ध हेतु प्रस्तुत सभी भोज्य सामग्री में से कुछ अन्न एक पात्र में निकालकर देवालय में ले जाकर देवता को अर्पित करके तब श्राद्धकृत्य में प्रवृत्त होना चाहिए॥२९॥

प्राश्येदन्नं तदग्नौ तु दद्याद् वा ब्रह्मचारिणे। तस्मादेकमपि श्रेष्ठं विद्वांसं भोजयेद् द्विजम्॥३०॥

श्राद्ध हेतु प्रस्तुत उस अन्न का कुछ अंश अग्नि में डाल दे या किसी ब्रह्मचारी को प्रदान करे और तब किसी एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण को भोजन करावे॥३०॥

भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः। उपविष्टस्तु यः श्राद्धे कामं तमपि भोजयेत्॥३१॥

श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों के भोजन हेतु बैठ जाने के पश्चात् वहाँ भोजन की इच्छा से आये हुए ब्रह्मचारी तथा भिक्षुक को भी इच्छित भोजन करावे॥३१॥

अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रशस्यते। तस्मात् प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजैः॥३२॥

जिस श्राद्ध में अतिथि भोजन नहीं करता वह श्राद्ध प्रशस्त नहीं माना जाता। अतः द्विजों को चाहिए कि वे श्राद्धों में अतिथि-सत्कार अवश्य करें॥३२॥

आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातयः। काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैव न संशयः॥३३॥

अतिथि-सत्कार रहित श्राद्ध में जो ब्राहाण भोजन करते हैं, वे ब्राह्मण काक-योनि में जाते हैं तथा उस श्राद्ध को करने वाला भी निःसन्देह उसी काकयोनि में जाता है॥३३॥

हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी व्रणयुक्तस्तु नास्तिकः। कुक्कुटः शूकरश्वानौ वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः॥३४॥

श्राद्ध में हीनाङ्ग (विकलांग), पतित, कोढ़ी, व्रणयुक्त (शरीर में फोड़ा-फुन्सी या चोट के घाव वाला), नास्तिक व्यक्ति तथा कुक्कुट, शूकर एवं कुत्तों को दूर से वर्जित करे अर्थात् दूर से ही भगा दे॥३४॥

बीभत्समशुचिं नग्नं मत्तं धूर्तं रजस्वलाम्। नीलकाषायवसनं पाषण्डांश्च विवर्जयेत्॥३५॥

वीभत्स आकृति वाले, अशुचि, नग्न, मत्त (पागल), धूर्त तथा रजस्वला स्त्री, नीले रंग के वस्त्र धारी, काषाय (लाल या गेरुए रंग के) वस्त्रधारी तथा पाषण्डी जनों को श्राद्ध में वर्जित करना चाहिए॥३५॥

यत्तत्र क्रियते कर्म पैतृकं ब्राह्मणान्प्रति। तत्सर्वमेव कर्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥३६॥

श्राद्ध में ब्राह्मणों के प्रति जो पैतृक कृत्य किया जाता है, वह सब विश्वेदेव पूजन पूर्वक ही करना चाहिए॥३६॥

यथोपविष्टान् सर्वांस्तानलङ्कुर्याद्विभूषणैः। स्रग्दामभिः शिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनैः॥३७॥

श्राद्ध स्थल में यथाविधि बैठे हुए उन सभी ब्राह्मणों को (यथोपलब्ध) आभूषणों, माला, यज्ञोपवीत, शिरोवेष्टन (पगड़ी आदि), वस्त्र, धूप तथा चन्दन आदि से अलंकृत करना चाहिए॥ ३७॥

ततस्त्वावाहयेद्देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया। उदङ्मुखो यथान्यायं विश्वेदेवास इत्यृचा॥ ३८॥

तदनन्तर ब्राह्मणों की अनुमति लेकर यथोक्त रीति से उत्तर की ओर मुख करके 'विश्वेदेवास आगत'[1] इस मन्त्र से विश्वेदेवों का आवाह्न करे॥ ३८॥

द्वे पवित्रे गृहीत्वास्य भाजने क्षालिते पुनः। शन्नो देवी जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा॥ ३९॥
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते त्वर्घं विनिक्षिपेत्। प्रदद्याद्गन्धमाल्यानि धूपादीनि च शक्तितः॥ ४०॥

तब दो पवित्री लेकर अर्घ्यपात्र को धोकर उसमें 'शंनो देवीरमिष्टय' इस मन्त्र से जल 'यवोऽसि यवयास्मद्' इत्यादि मन्त्र से जौ डालकर 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण के हाथ में उस अर्घपात्र का जल डाले। तब अपनी क्षमतानुसार ब्राह्मण को गन्ध, माला, धूप आदि प्रदान करे॥ ३९-४०॥

अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणां दक्षिणामुखः। आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः॥ ४१॥
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु नस्ततः। शन्नो देव्योदकं पात्रे तिलोऽसीति तिलांस्तथा॥ ४२॥
क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वा पुनः। संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहितः।
पितृभ्यः स्थानमेतच्च न्युब्जपात्रं निधापयेत्॥ ४३॥

तब अपसव्य होकर तथा दक्षिण की ओर मुख करके 'उशन्तस्त्वा नि धीमहिः' इत्यादि (ऋग्वेद १०/१६/१२; यजुर्वेद १९/७०) मन्त्र से तथा 'आ यन्तु नः पितरः' (यजुर्वेद १९/५८) इस मन्त्र से विद्वान् पुरुष अपने पितरों का आवाहन करे। तब 'शं नो देवीरभिष्टय' (ऋग्वेद १०/९/४; यजुर्वेद ३६/१२) इस मन्त्र से पात्र में जल तथा 'तिलोऽसि सोमदैवत्यो' इत्यादि मन्त्र से तिलों को अर्घपात्र में डाले और तब एकाग्र मन से पूर्ववत् ब्राह्मण के हाथ में अर्घपात्र का जल डालकर संस्रव (शेष जल) को किसी पात्र में डाल दे। तब 'पितृभ्यः स्थानमसि' कहते हुए अर्घपात्र को (तीन कुशों के ऊपर) उलट कर रख दे॥ ४१-४३॥

अग्नौ करिष्येत्यादाय पृच्छेदन्नं घृतप्लुतम्। कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवित्॥ ४४॥

तब घृताक्त (घृत मिश्रित) अन्न को हाथ में लेकर ब्राह्मणों से कहे कि अब मैं 'अग्नौकरण' करूँगा। तब ब्राह्मणों के 'कुरुष्व' (करो) कहे जाने पर उपवीती (सव्य) होकर हवन करे॥ ४४॥

यज्ञोपवीतिना होमः कर्तव्यः कुशपाणिना। प्राचीनावीतिना पित्र्यं वैश्वदेवं तु होमवत्॥ ४५॥

हाथ में कुश धारण कर तथा यज्ञोपवीती (सव्य) होकर ही 'अग्नौकरण' में कथित होम करना चाहिए। पितृकार्य (श्राद्ध और तर्पण) प्राचीनावीती (अपसव्य) होकर किया जाता है तथा विश्वेदेवों के पूजन में होम करने के समान उपवीती (सव्य) होना चाहिए॥ ४५॥

दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान् परिचरन्सदा। पितृणां परिचर्यासु पातयेदितरं तथा॥ ४६॥

---

१. विश्वेदेवास आ गत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत॥ ऋग्वेद २/४१/१३; ६/५३/७; यजु० ७/३४

देवार्चन में सदैव दाहिना घुटना भूमि में टिका कर रखना चाहिए तथा पितरों का श्राद्ध, तर्पण आदि करते समय बाँये घुटने को भूमि में टेककर रखना चाहिए॥४६॥

सोमाय वै पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन्। अग्नये कव्यवाहनाय स्वधेति जुहुयात्ततः॥४७॥

श्राद्ध में अग्नौकरण (होम) क्रमशः 'सोमाय पितृमते स्वधा नमः' तथा 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा (नमः) कहकर होम करना चाहिए॥४७॥

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्। महादेवान्तिके वाथ गोष्ठे वा सुसमाहितः॥४८॥

अग्नि के अभाव में एकाग्र मन से ब्राह्मण के हाथ में ही हवन सामग्री को अर्पित करे या उस हवन सामग्री को भगवान् शिव के समीप या गोशाला में रख देना चाहिए॥४८॥

ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणां दिशम्। गोमयेनोपलिप्याथ स्थानं कुर्यात्ससैकतम्॥४९॥
मण्डलं चतुरस्त्रं वा दक्षिणाप्रवणं शुभम्। त्रिरुल्लिखेत्तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि॥५०॥

तदनन्तर उन ब्राह्मणों की आज्ञा से दक्षिण दिशा की ओर जाकर श्राद्ध-स्थल को गोबर से लीप कर उस पर सिकता (बालू) को बिछा कर उसके ऊपर दक्षिण की ओर प्रवण (ढलान) वाली गोल या चौकोर शुभ वेदी बनावे और उसके ऊपर एक कुश से तीन रेखाएँ खींचे॥४९-५०॥

ततः संस्तीर्य तत्स्थाने दर्भान्वै दक्षिणाग्रगान्। त्रीन् पिण्डान्निर्वपेत् तत्र हविःशेषात्समाहितः॥५१॥

तब उस वेदी पर दक्षिण की ओर नोक वाले कुशों को रखकर उनके ऊपर हवि प्रदान के पश्चात् शेष बचे हुए अन्न से तीन पिण्ड (दिवंगत पिता, पितामह, प्रपितामह के निमित्त) प्रदान करे॥५१॥

लुप्तपिण्डांस्तु[1] तद्धस्तं निमृज्याल्लेपभोजनान्। तेषु दर्भेष्वथाचम्य त्रिराचम्य शनैरसून्।
तदन्नं तु नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित्॥५२॥

तदनन्तर जिन पितरों का पिण्डदान नहीं होता- जो लेपभोगी हैं, उनके निमित्त वहाँ पर दर्भों (कुशों) के ऊपर अपने हाथ में लगे हुए अन्न को पौंछ कर 'लेपभागिनामयं भागोऽस्तु' अर्थात् यह अन्न लेपभागी पितरों के भाग का होवे- ऐसा कहे और तब तीन बार आमचन करके धीरे से प्राणायाम करे और तब वह मन्त्र का ज्ञाता श्राद्धकर्ता उस अन्न को तथा अपने पितरों को नमस्कार करे॥५२॥

उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः। अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथा न्युप्त्वा समाहितः॥५३॥

तब पुनः अर्धपात्र के जल को धीरे से पिण्ड के समीप गिरावे और तदनन्तर झुककर शान्त भाव से उन पिण्डों को सूँघे॥५३॥

अथ पिण्डाच्चशिष्टान्नं विधिवद्भोजयेद् द्विजान्। घृतपक्वानपूपांश्च दद्यात् कृसरपायसम्[2]।
सूपशाकफलानीक्षून् पयो दधि घृतं मधु॥५४॥
अन्नं चैव यथाकामं विविधं भोज्यपेयकम्। यद्यदिष्टं द्विजेन्द्राणां तत्सर्वं विनिवेदयेत्॥५५॥

तदनन्तर पिण्डदान के बाद शेष अन्न को विधिपूर्वक ब्राह्मणों को खिलावे। श्राद्ध हेतु घृत में पके मालपुओं, कृसर, पायस, सूप, शाक, फल, ईख, दूध, दही, घी, मधु तथा विविध प्रकार के भोज्य अन्न

१. उप्य पिण्डास्तु, २. विविधाञ्छाद्धकल्पांस्तु शोभनान्

आदि और पेय पदार्थों में से जो भी ब्राह्मणों को अभीष्ट हो वह सब उनको निवेदित करे अर्थात् परोस कर दे॥५४-५५॥

धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा। उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता।
अन्यत्र फलमूलेभ्यो पानकेभ्यस्तथैव च॥५६॥

विविध प्रकार के अन्न, तिल शर्करा (शक्कर) तथा उष्ण (गरमागरम) अन्न ही श्रेयस्कामना वाला व्यक्ति ब्राह्मणों को प्रदान करे, किन्तु फल, मूल और पेय पदार्थ उनको न दे॥५६॥

नाश्रूणि पातयेज्जातु[१] न कुप्येन्नानृतं वदेत्। न पादेन स्पृशेदन्नं न चैवमवधूनयेत्॥५७॥

श्राद्ध के दिन आँसू न बहावे, न क्रोध करे और न असत्य बोले। अन्न का पैर से स्पर्श नहीं करे और न उसे पैर से अवधूनन (मर्दन) करे अर्थात् न कुचले॥५७॥

क्रोधेनैव च यद्भुक्तं यद्भुक्तं त्वयथाविधि। यातुधानां विलुम्पन्ति जल्पता चोपपादितम्॥५८॥

क्रोधावेश में जो अन्न खाया जाता है तथा जो अन्न विधि-विधान से नहीं खाया जाता और जो अन्न बातें करते हुए खाया जाता है, उसके रस को भूत-प्रेत हरण कर लेते हैं॥५८॥

स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ तु द्विजन्मनाम्। न चात्र श्येनकाकादीन् पक्षिणः प्रतिषेधयेत[२]।
तद्रुपाः पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षवः॥५९॥

ब्राह्मणों के समीप गीले या पसीने से भीगे हुए शरीर से नहीं जाना चाहिए। श्राद्ध स्थल पर आये हुए श्येन (बाज) तथा कौआ आदि पक्षियों को वहाँ से नहीं हटाना चाहिए, क्योंकि उनके रूप में पितर ही भोजन की इच्छा से वहाँ आते हैं॥५९॥

न दद्यात् तत्र हस्तेन प्रत्यक्षं लवणं तथा। न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः॥६०॥

श्राद्ध में अपने हाथ से नमक उठाकर नहीं देना चाहिए और न लोहे के पात्र में भोजन देना चाहिए तथा न श्रद्धा रहित होकर कोई वस्तु देनी चाहिए॥६०॥

काञ्चनेन तु पात्रेण राजतोदुम्बरेण वा। दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषतः॥६१॥

सोने या चाँदी के पात्र में अथवा उदुम्बर (गूलर) की लकड़ी से बने पात्र में और विशेषतः गेंडे के चर्म से बने पात्र में दिया गया भोजन सदा के लिए अक्षय तृप्तिदायक होता है॥६१॥

पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे वै भोजयेद् द्विजान्। स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः॥६२॥

श्राद्ध में मिट्टी के पात्र में ब्राह्मणों को भोजन कराने वाला व्यक्ति तथा उस भोजन को खाने वाले ब्राह्मण भी घोर नरक में गिरते हैं॥६२॥

न पङ्क्त्यां विषमं दद्यान्न याचेत न दापयेत्। याचिता दापिता दाता नरकान्याति भीषणान्॥६३॥

एक पंक्ति में बैठे हुए ब्राह्मणों में (सभी को एक समान भोज्य पदार्थ न देकर) भिन्न-भिन्न ब्राह्मणों को पृथक्-पृथक् भोज्य पदार्थ न तो स्वयं दे, न दिलवाये और न कोई ब्राह्मण ऐसी याचना करे। ऐसी याचना करने वाले या दिलवाने वाले तथा देने वाले व्यक्ति भीषण नरकों में गिरते हैं॥६३॥

१. न भूमौ पातयेज्जानुं, २. न चात्र श्येनकाकादीन् पक्षिणः प्रतिलोमगान्

भुञ्जीरन् वाग्यताः शिष्टा[१] न ब्रूयुः प्राकृतान् गुणान् । तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥६४॥

श्राद्ध में निमन्त्रित शिष्ट ब्राह्मण वाणी में संयम रख कर अर्थात् मौन रह कर भोजन करें। वे भोजन के गुणों की चर्चा न करें। पितर तभी तक भोजन करते हैं, जब तक हवि अर्थात् भोजन के गुणों का वर्णन नहीं किया जाता। (अर्थात् भोजन के गुणों की चर्चा कर देने पर पितर उस भोजन को ग्रहण नहीं करते)॥६४॥

नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः। बहूनां पश्यतां सोऽन्यः पङ्क्त्या हरति किल्बिषम्॥६५॥

पंक्ति में सबसे आगे के आसन पर बैठा ब्राह्मण अन्य बहुत ब्राह्मणों के देखते हुए यदि पहले ही खाने लग जाता है तो वह उस पंक्ति में बैठे हुए सभी ब्राह्मणों के पाप को प्राप्त करता है॥६५॥

न किञ्चिद्वर्जयेच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः। भुञ्जीत श्रद्धया दत्तं न चान्यस्यान्नमीक्षयेत्॥६६॥

श्राद्ध में नियुक्त ब्राह्मण परोसे गये भोजन में से किसी भी खाद्य सामग्री को वर्जित न करे। श्रद्धापूर्वक प्रदत्त भोजन को वह शान्तिपूर्वक ग्रहण करे। वह अन्य ब्राह्मणों के भोजन को भी न देखे॥६६॥

यो नाश्नाति द्विजो भोज्यं नियुक्तः पितृकर्मणि। स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्॥६७॥

पितरों के श्राद्धकर्म में निमन्त्रित जो ब्राह्मण भोजन नहीं करता वह पशुयोनि में इक्कीस बार जन्म लेता है॥६७॥

स्वाध्यायं श्रावयेत् श्राद्धे धर्मशास्त्राणि चैव हि। इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान्॥६८॥

श्राद्ध में ब्राह्मणों को स्वाध्याय रूप में धर्मशास्त्रों तथा इतिहास-पुराण के वचनों तथा शुभंकर श्राद्धकल्पों के वचनों को सुनावे॥६८॥

ततोऽन्नमुत्सृजेद्भोक्ता स्वाग्रतो विकिरन्भुवि। पृष्ट्वा तृप्ताःस्थ इत्येवं[२] तृप्तानाचामयेत्ततः॥६९॥

भोजन करने के बाद वे ब्राह्मण शेष अन्न को अपने आगे भूमि पर फैला दें। तब श्राद्धकर्ता उनसे पूछे कि क्या आप लोग तृप्त हैं? तब उन तृप्त हुए ब्राह्मणों को आचमन करावे॥६९॥

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति। स्वधास्त्विति च तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्॥७०॥

उन ब्राह्मणों के आचमन कर लेने के पश्चात् उनसे कहे कि अब आप स्वेच्छानुसार रमण करें। तदनन्तर वे ब्राह्मण उससे 'स्वधाऽस्तु' कहें॥७०॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत्। यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः॥७१॥

तब ब्राह्मणों के द्वारा भोजन करने के बाद शेष अन्न को भी उन्हें निवेदित करे और वे जैसा कहें उनकी अनुज्ञानुसार वैसा ही करे॥७१॥

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाक्यं गोष्ठेषु सूनृतम्[३]। सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत इत्यपि॥७२॥

पितरों के (नित्य) श्राद्ध में 'स्वदित', गोष्ठ में किये गये श्राद्ध में 'सूनृत', आभ्युदयिक श्राद्ध (वृद्धि श्राद्ध) में 'सम्पन्न' तथा देवकार्य (याग आदि) के समय किये जाने वाले श्राद्ध में 'रोचते' कहना चाहिए॥७२॥

---

१. भुञ्जीरन्नग्रतः श्रेष्ठं, २. स्वदितमित्येवं, ३. सूत्रितम्

विसृज्य ब्राह्मणान् स्तुत्वा पितृपूर्वं तु वाग्यतः। दक्षिणां दिशमाकांक्षन्याचेतेमान् वरान्पितृन्॥७३॥

तब संयमित वाणी से पहले पितरों और तब ब्राह्मणों को विदा करे और विदा करते समय पितरों से इन वरों को मांगे॥७३॥

दातारो नोभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति॥७४॥

हमारे कुल में दान देने वालों की वृद्धि हो, वेदों के ज्ञान की तथा सन्तान की वृद्धि हो। देवों पितरों आदि में हमारी श्रद्धा कम न हो, बनी रहे तथा हमारे पास दान देने के लिए बहुत सा धन हो॥७४॥

पिण्डास्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा। मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी॥७५॥

श्राद्ध में दिये गये पिण्डों को गाय, अज (बकरा) अथवा किसी ब्राह्मण को प्रदान करे या अग्नि अथवा जल में विसर्जित करे। तीन पिण्डों में से मध्यवर्ती पिण्ड पुत्र-कामना वाली पत्नी को खाना चाहिए॥७५॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत्। ज्ञातिष्वपि च तुष्टेषु[1] स्वान् भृत्यान् भोजयेत्ततः॥७६॥

तब हाथ धोकर आमचन करके शेष भोजन अपने सजातीय कुल-बन्धुओं को खिलावे तथा उनके तृप्त हो जाने पर अपने मृत्यों को भोजन करावे॥७६॥

पश्चात् स्वयं च पत्नीभिः शेषमन्नं समाचरेत्। नोद्वासयेत् तदुच्छिष्टं यावन्नास्तङ्गतो रविः॥७७॥

तत्पश्चात् शेष भोजन को अपनी पत्नी आदि कुटुम्बीजनों के साथ ग्रहण करे। श्राद्ध-स्थल से उच्छिष्ट अन्न को तब तक न उठावे जब तक सूर्यास्त न हो जाय॥७७॥

ब्रह्मचारी भवेतां तौ दम्पती रजनीं तु ताम्। दत्त्वा श्राद्धं तथा भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम्।
महारौरवमासाद्य कीटयोनिं व्रजेत्पुनः॥७८॥

श्राद्ध करने के बाद उस रात्रि में पति-पत्नी ब्रह्मचारी रहें। श्राद्ध करके अथवा श्राद्ध में भोजन करके जो व्यक्ति मैथुन करता है, वह महारौरव नरक में यातना भोगने के बाद कीट योनि में जन्म लेता है॥७८॥

शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहितः। स्वाध्यायञ्च तथाध्वानं कर्ता भोक्ता च वर्जयेत्॥७९॥

श्राद्ध करने वाले तथा श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मण को शुद्ध, क्रोध रहित, शान्त, सत्यवादी तथा एकाग्र चित्त रहना चाहिए तथा उस दिन स्वाध्याय और यात्रा नहीं करनी चाहिए॥७९॥

श्राद्धं भुक्त्वा परश्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातयः। महापातकिभिस्तुल्या यान्ति ते नरकान् बहून्॥८०॥

श्राद्ध में भोजन करके जो ब्राह्मण उसी दिन किसी दूसरे श्राद्ध में भोजन करते हैं, वे महापातकियों के तुल्य पापी होते हैं और अनेक नरकों में यातना पाते हैं॥८०॥

एष वो विहितः सम्यक् श्राद्धकल्पः समासतः। अनग्निरध्वगो[2] वाऽपि तथैव व्यसनान्वितः॥८१॥
आमश्राद्धं तुः सः कुर्याद्विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः। तेनाग्नौकरणं कुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्॥८२॥

१. चतुर्थेषु

२. अनेन वर्धयेन्नित्यं ब्राह्मणोव्यसनान्वितः

मैंने यह श्राद्धकल्प संक्षेप में आप लोगों को यथावत् कहा है। जिसने अग्न्याधान नहीं किया हो, या जो कहीं यात्रा में गया हो अथवा संकट में पड़ा हुआ हो वह श्राद्ध-विधि का ज्ञाता द्विज श्रद्धा पूर्वक आम-श्राद्ध (बिना पके हुए अन्न से श्राद्ध) करे। वह उसी कच्चे अन्न से ब्राह्मण के हाथ में 'अग्नौकरण' करे तथा उसी अन्न से पिण्ड-दान करे॥८१-८२॥

योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्याद् वै शान्तमानसः। व्यपेतकल्मषो नित्यं यतीनां लभते[1] पदम्॥८३॥

[इस प्रसंग में मनु स्मृति (३/२१२) के यह वचन यहाँ प्रमाण रूप में उद्धृत हैं- अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्। यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते॥] जो शान्त मन वाला द्विज (ऊपर कथित) इस विधि से श्राद्ध करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर योगियों के नित्य पद को प्राप्त करता है॥८३॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् द्विजोत्तमः। आराधितो भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातनः॥८४॥

अतः श्रेष्ठ द्विज समग्र प्रयास से श्राद्ध करे। ऐसा करके उसके द्वारा सम्यक् प्रकार से सनातन परमात्मा की आराधना हो जाती है॥८४॥

अपि मूलैः फलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्धनो द्विजः। तिलोदकैस्तपर्ययित्वा पितॄन् स्नात्वा समाहितः॥८५॥

जो द्विज निर्धन है, वह स्नान करके एकाग्र मन वाला होकर तिल और जल से पितरों का तर्पण करके कन्द मूल या फलों से भी पितरों का श्राद्ध कर सकता है॥८५॥

न जीवत्पितृको दद्यादहोमान्तं वा विधीयते। येषां वापि पिता दद्यात्तेषाञ्चैके प्रचक्षते॥८६॥

जिसका पिता जीवित हो वह श्राद्ध न करे अथवा वह होम पर्यन्त (अग्नौकरण तक) के कृत्य कर सकता है। कुछ लोगों के अनुसार पिता जिनको पिण्डदान करता है, उनको पुत्र भी पिण्डदान कर सकता है॥८६॥

पितां पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। यो यस्य म्रियते[2] तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु॥८७॥

जिस व्यक्ति के पिता, पितामह और प्रपितामह की मृत्यु हुई हो वह उनको ही पिण्डदान करे अन्य किसी को नहीं॥८७॥

भोजयेद्वापि जीवन्तं यथाकामन्तु भक्तितः। न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति श्रूयते श्रुतिः[3]॥८८॥

पिता, पितामह, प्रपितामह में से जो जीवित हो उसको उसकी रुचि के अनुसार भक्तिभाव से भोजन करावे। शास्त्रों में श्रुति का वचन है कि जीवित व्यक्ति का भोजन कराये बिना दिवंगत पिता पितामह आदि को पिण्डदान नहीं करना चाहिए॥८८॥

द्व्यामुष्यायणिको दद्याद्बीजिक्षेत्रिकयोः समम्।
अधिकारी भवेत्सोऽथ नियोगोत्पादितो यदि॥८९॥

द्व्यामुष्यायण पुत्र, जो कि नियोग विधि से अविवाहित देवर या अन्य नियुक्त व्यक्ति के बीज से उत्पन्न हुआ हो, वह अपने बीजी पिता तथा क्षेत्री पिता (अपनी माता के विवाहित पति) दोनों का पिण्डदान करेगा तथा दोनों की सम्पत्ति का अधिकारी होगा॥८९॥

---

१. वर्तयेत् पदम्, २. प्रीयते, ३. प्रयतः शुचिः

अनियुक्तात्सुतो यश्च शुक्रतो जायते त्विह। प्रदद्याद् बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततः परम्[1]॥९०॥

यदि किसी स्त्री में विना नियोग के परपुरुष के बीज से पुत्र उत्पन्न होता है तो वह अपने बीजी (गर्भाधान करने वाले) पिता को पिण्डदान पहले करे और तदनन्तर अपने क्षेत्रीय पिता का पिण्डदान करे॥९०॥

द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्ताभ्यां क्षेत्रिणे बीजिने तथा। कीर्तयेदथ चैवास्मिन् बीजिनं क्षेत्रिणं ततः॥९१॥

इस प्रकार वह क्षेत्री पिता तथा बीजी पिता के लिए दो पिण्ड बनावे तथा पहले बीजी पिता का तब क्षेत्रीय पिता का नाम लेकर ही पिण्ड-प्रदान करे॥९१॥

मृताहनि तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः। अशौचे स्वे परिक्षीणे काम्यं वै कामतः पुनः॥९२॥

पिता की मृत्यु जिस तिथि में हुई हो उस तिथि के दिन विधि-पूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए। जब अशौच समाप्त हो जाय तब स्वेच्छानुसार काम्य श्राद्ध को कभी भी किया जा सकता है॥९२॥

पूर्वाह्णे चैव कर्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना। देववत्सर्वमेव स्यात् यवैः कार्या[2] तिल-क्रिया॥९३॥

अभ्युदय (वृद्धि) की कामना वाले को आभ्युदयिक श्राद्ध पूर्वाह्न में ही करना चाहिए। इस श्राद्ध में सभी कृत्य देवकार्य के समान करने चाहिए और तिलों के स्थान पर जौ का प्रयोग करना चाहिए॥९३॥

दर्भाश्च ऋजवः कार्या युग्मान्वै भोजयेद् द्विजान्। नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत्॥९४॥

इस श्राद्ध में केवल सीधे कुशों का प्रयोग करना चाहिए तथा केवल दो ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और पितरों को जो कुछ भी अर्पित करे उस समय 'नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तमा्' (नान्दीमुख पितर प्रसन्न होवें) ऐसा कहना चाहिए॥९४॥

मातृश्राद्धन्तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानान्तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥९५॥

वृद्धिश्राद्ध (आभ्युदयिक श्राद्ध) में तीन श्राद्ध कहे गये हैं। उनमें प्रथम मातृश्राद्ध, तदनन्तर पितृश्राद्ध और तत्पश्चात् मातामहश्राद्ध किया जाता है॥९५॥

देवपूर्वं प्रदद्याद्वै न कुर्याद् प्रदक्षिणम्। प्राङ्मुखो निर्वपेत् पिण्डानुपवीती समाहितः॥९६॥

देवों अर्थात् विश्वेदेवों का पूजन पहले करना चाहिए। उनका पूजन जनेऊ दाहिनी ओर करके (अर्थात् सव्य होकर) ही करना चाहिए (?)। एकाग्र-चित्त और उपवीती (सव्य) और पूर्वाभिमुख होकर पिण्डदान करना चाहिए॥९६॥

पूर्वं तु मातरः पूज्या भक्त्या वै सगणेश्वराः। स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु॥९७॥
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्भूषणैरपि पूजयेत्। पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं द्विजः॥९८॥

आरम्भ में गणपति सहित मातृकाओं का पूजन करना चाहिए। अलंकृत स्थण्डिल या प्रतिमा अथवा ब्राह्मणों में पुष्प, धूप, नैवेद्य, आभूषण समर्पित करते हुए मातृका-पूजन सम्पन्न करके द्विज को (पीछे श्लोक ९५ में कथित) तीनों श्राद्ध करने चाहिए॥९७-९८॥

---

१. ततोऽन्यथा, २. स्यान्नैव कार्या तिलैः क्रिया

अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं तु निवेशयेत्। तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिगच्छन्ति मातरः॥ ९९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पो नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

मातकाओं का पूजन किये बिना यदि कोई व्यक्ति श्राद्ध करने का प्रयास करता है तो वे मातृकाएँ क्रोधावेश में आकर उसके प्रति हिंसक हो जाती हैं॥ ९९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के वर्णन-प्रसंग में श्राद्धकल्प नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

❖❖❖

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

अशौचकल्पः

व्यास उवाच

दशाहं प्राहुराशौचं सपिण्डेषु विपश्चितः[1]। मृतेषु वापि जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः॥ १॥

व्यास जी ने कहा- हे श्रेष्ठ द्विजो! सपिण्ड सम्बन्ध वाले विद्वान् ब्राह्मणों के कुल में किसी के जन्म या मृत्यु होने पर दश दिन का अशौच विहित किया गया है॥ १॥

नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः। न कुर्याद्विहितं किञ्चित्स्वाध्यायं मनसापि च॥ २॥

उस अशौच काल में विशेषतः नित्यकर्म और काम्यकर्म तथा विहित स्वाध्याय (वेद पारायण आदि) नहीं करना चाहिए॥ २॥

शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालाग्नौ भावयेद् द्विजान्। शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानं जुहुयुश्च ते[2]॥ ३॥

अशौच की अवस्था [में गृहस्थ द्विज] यज्ञशाला की अग्नि में होम कार्य हेतु शुद्ध तथा क्रोध रहित भूमिदेव ब्राह्मणों को नियुक्त करे। वे ब्राह्मण उस यज्ञशाला की वैतान (यज्ञीय) अग्नि में सूखे अन्न का या फलों का होम करें॥ ३॥

न स्पृशेयुरिमानन्ये न च तेभ्यः समाहरेत्। चतुर्थे पञ्चमे चाह्नि संस्पर्शः कथितो बुधैः॥ ४॥

अन्य अशौच वाले व्यक्ति उन ब्राह्मणों का स्पर्श न करें तथा उन ब्राह्मणों से कोई व्यक्ति कुछ भी न ले। विद्वानों ने कहा है कि चौथे या पाँचवें दिन उनका स्पर्श किया जा सकता है॥ ४॥

सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो नैव दुष्यति। सूतकं सूतिकां चैव वर्जयित्वा नृणां पुनः॥ ५॥

सूतक में सपिण्डों का स्पर्श करने में कोई दोष नहीं लगता, किन्तु नवजात शिशु तथा सूतिका (प्रसव करने वाली स्त्री) का स्पर्श सभी जनों के लिए वर्जित कहा गया है॥ ५॥

१. विधीयते, २. जुहुयात् तथा

अधीयानस्तथा वेदान् वेदविच्च पिता भवेत्। संस्पृश्याः सर्व एवैते स्नानान्माता दशाहतः॥६॥

जननाशौच में वेदों का अध्ययन करने वाला तथा वेद का विद्वान् एवं पिता ये सभी (स्नान कर लेने पर) स्पर्श-योग्य होते हैं तथा नवजात शिशु की माता दश दिनों के बाद स्नान करने पर स्पर्श योग्य हो जाती है॥६॥

दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमाशौचं वातिनिर्गुणे। एकद्वित्रिगुणैर्युक्तश्चतुस्त्र्येकदिनैः[1] शुचिः॥७॥

वेद विद्या-अध्ययन आदि गुणों से रहित निर्गुणी या अत्यन्त निर्गुणी के लिए ही दश दिन का अशौच (सूतक) कहा गया है। एक गुण, दो गुण और तीन गुणों वालों के लिए क्रमशः चार, तीन और एक दिन के बाद शुद्धि विहित है॥७॥

दशाहात् तु परं सम्यगधीयीत जुहोति च। चतुर्थे तस्य संस्पर्शं मनुः प्राह प्रजापतिः॥८॥

[द्रष्टव्य- श्रौताग्निमतो मन्त्रब्राह्मणात्मककृत्स्नशाखाध्यायिन एकाहाशौचम्। तत्र श्रोताग्निवेदाध्ययन गुणयोरेकगुणरहितो हीनस्तस्य त्र्यहः। उभयगुणरहितस्तु हीनतरः केवलस्मार्ताग्निमांस्तस्य चतुरहः। सकलगुणरहितस्य दशाहः (मनुस्मृति ५/५९ पर कुल्लूक भट्ट)।] दश दिन के बाद सभी द्विज सम्यक् रूप से अध्ययन और होम कर सकते हैं। प्रजापति मनु ने एक गुण वाले द्विज को चौथे दिन स्पर्श योग्य कहा है॥८॥

क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च। यथेष्टाचरणस्येह मरणान्तमशौचकम्॥९॥

धार्मिक क्रिया-कलापों से रहित, मूर्ख एवं महारोगी तथा स्वच्छन्द होकर मनमाना दुराचरण करने वाला व्यक्ति मृत्युपर्यन्त (आजीवन) अशौचयुक्त रहता है॥९॥

त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम्। प्राक् संस्कारात्[2] त्रिरात्रं स्यात् दशरात्रं ततः परम्॥१०॥

ब्राह्मणों का अशौच तीन रात्रि तक या दश रात्रि तक का होता है। उपनयन संस्कार के पूर्व मृत्यु होने पर तीन रात तक अशौच रहता है तथा उपनयन संस्कार के पश्चात् मृत्यु होने पर दश रात का अशौच होता है॥१०॥

ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते। त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदि ह्यत्यन्तनिर्गुणः॥११॥

[कूर्मपुराण के वचनों का समर्थन अधोलिखित स्मृति वचनों से भी होता है- आदन्तजन्मतः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद् दशरात्रमतः परम्॥ याज्ञ० स्मृति ३/२३] दो वर्ष से कम अवस्था वाले बालक या बालिका की मृत्यु होने पर माता-पिता को तीन रात्रियों तक का अशौच होता है तथा अत्यन्त अवगुणी सपिण्ड सम्बन्ध वाले व्यक्ति की मृत्यु होने पर भी तीन रात्रियों तक अशौच होता है॥११॥

अदन्तजातमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते। जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातांतु निर्गुणौ॥१२॥

बिना दाँत वाले शिशु की मृत्यु होने पर माता-पिता को एक दिन का अशौच होता है। जिसके दाँत उत्पन्न हो गये हों उस शिशु की मृत्यु होने पर निर्गुण (गुणहीन) माता-पिता को तीन रात का अशौच होता है॥१२॥

---

१. चतुर्ह्व्येकदिनैः, २. प्राक् संवत्सरात्

आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम्। त्रिरात्रमौपनयनात्सपिण्डानामशौचकम्॥१३॥

दाँत उगने से पूर्व ही यदि शिशु की मृत्यु हो जाती है तो सपिण्डों का अशौच सद्यः (शीघ्र) निवृत्त हो जाता है। बालक के चूड़ाकरण के पहले मृत्यु होने पर सपिण्डों को एक रात तक का अशौच होता है तथा उपनयन से पूर्व मृत्यु होने पर सपिण्डों को तीन रात अशौच होता है॥१३॥

जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः। मातुश्च सूतकं तत्स्यात्पिता स्यात्स्पृश्य एव च॥१४॥

यदि कोई शिशु जन्म लेते ही मर जाता है तो पिता और माता दोनों को एक दिन का सूतक होता है, किन्तु पिता स्नान कर लेने पर तत्काल शुद्ध और स्पर्श योग्य हो जाता है॥१४॥

सद्यः शौचं सपिण्डानां कर्तव्यं सोदरस्य तु। ऊर्ध्वं दशाहादेकाहं सोदरो यदि निर्गुणः॥१५॥

सपिण्ड सम्बन्धी या सहोदर भाई की जन्म से दश दिन तक कभी भी मृत्यु होने पर शीघ्र शुद्धि हो जाती है। दश दिन के पश्चात् [सहोदर भाई की] मृत्यु होने पर एक दिन का अशौच उस सहोदर भाई को होगा जो निर्गुण (अवगुणी) है॥१५॥

ततोर्ध्वं दन्तजननात्सपिण्डानामशौचकम्। एकरात्रं निर्गुणानां चौलादूर्ध्वं त्रिरात्रकम्॥१६॥

दाँत उगने के पश्चात् शिशु की मृत्यु होने पर निर्गुण सपिण्डों को एक रात का अशौच होता है और बालक की चूड़ाकरण के पश्चात् मृत्यु होने पर तीन रात का अशौच होता है॥१६॥

अदन्तजातमरणं सम्भवेद्यदि सत्तमाः। एकरात्रं सपिण्डानां यदि तेऽत्यन्तनिर्गुणाः॥१७॥

यदि शिशु की मृत्यु दाँत उगने के पूर्व हो जाय तो अत्यन्त निर्गुण (सद्गुणों से रहित) सपिण्डों को एक रात का अशौच होता है॥१७॥

व्रतादेशात्सपिण्डानां गर्भस्रावात्स्वपाततः। सर्वेषामेव गुणिनामूर्ध्वन्तु विषमः पुनः॥१८॥

उपनयन के पूर्व किसी की मृत्यु हो जाय तो सपिण्ड सम्बन्ध वालों की शुद्धि हेतु स्नान का विधान किया गया है, किन्तु उपनयन के अनन्तर मृत्यु होने पर सभी गुणवानों के लिए अशौच से शुद्धि की विभिन्न व्यवस्था विहित है[1]॥१८॥

अर्वाक् षण्मासतः स्त्रीणां यदि स्याद् गर्भसंस्रवः। तदा माससमैस्तासामशौचं दिवसैः स्मृतम्॥१९॥

छः मास से पहले यदि स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है तो जितने मास के पश्चात् गर्भपात होता है, उन स्त्रियों को उतने दिनों का अशौच होता है॥१९॥

तत ऊर्ध्वन्तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम्। सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च धातुतः॥२०॥

छः मास के बाद गर्भपात होने पर स्त्रियों को बारह रात्रियों तक अशौच होता है। किसी धातु [आदि से चोट लगने] से गर्भस्राव होने पर सपिण्ड जन (स्नान कर लेने पर) शीघ्र शुद्ध हो जाते हैं॥२०॥

गर्भच्युतावहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे। यथेष्टाचरणे ज्ञातौ त्रिरात्रमिति निश्चयः॥२१॥

गर्भपात होने पर अत्यन्त अवगुणी सपिण्ड सम्बन्ध वाले के लिए अहोरात्र का अशौच तथा स्वेच्छचारी सजातीय व्यक्ति के लिए तीन रात तक अशौच निश्चित किया गया है॥२१॥

१. मरणेन समाप्यते

यदि स्यात्सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत्। शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहः शेषे त्रिरात्रकम्॥२२॥

यदि सपिण्ड सम्बन्ध वालों के सूतक (जननाशौच) में ही दूसरा सूतक हो जाय अथवा मृतकाशौच की अवधि में ही किसी की मृत्यु हो जाय तो प्रथम अशौच के शेष दिनों में दूसरे अशौच की भी शुद्धि हो जाती है, किन्तु यदि प्रथम अशौच का केवल एक दिन शेष बचा हो तो तब आगे की तीन रातों तक अशौच रहता है॥२२॥

मरणोत्पत्तियोगे तु मरणाच्छुद्धिरिष्यते[1]। आद्यं वृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुद्ध्यति॥२३॥

मरणाशौच और जननाशौच यदि एक साथ हो पड़ें तो मरणाशौच की शुद्धि के दिन ही जननाशौच भी निवृत्त हो जायेगा। यदि आदि अर्थात् पहले जो अशौच हुआ है, वह अधिक प्रबल है तो उसकी शुद्धि के दिन दूसरे अशौच की भी शुद्धि हो जाती है॥२३॥

अथ चेत् पञ्चमीरात्रिमतीत्य परतो भवेत्। अघवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुद्ध्यति॥२४॥

यदि पाँचवी रात्रि व्यतीत होने के बाद मरणाशौच या जननाशौच होता है तो प्रथम अशौच की शुद्धि के दिन ही दूसरे अशौच की भी शुद्धि हो जाती है। (श्लोक में 'अघ' शब्द मरणाशौच का सूचक है)॥२४॥

देशान्तरगतं श्रुत्वा सूतकं शावमेव च। तावदेवाशुचिर्मर्त्यो[2] यावच्छेषं समाप्यते॥२५॥

विदेश में गये हुए व्यक्ति के सूतक (जनना शौच) अथवा मरणाशौच का समाचार सुनने पर अशौच के जितने दिन शेष हों उतने दिन का अशौच होता है॥२५॥

शावाशौचे तथाऽतीते[3] सपिण्डानां त्रिरात्रकम्। अथैव मरणे स्नानमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि॥२६॥

मरणाशौच व्यतीत होने पर सूचना मिले तो सपिण्डों को तीन रात तक का अशौच होता है तथा एक वर्ष पश्चात् मृत्यु का समाचार मिलने पर स्नान करके शुद्धि हो जाती है॥२६॥

वेदार्थविच्चाधीयानो योऽग्निवान् वृत्तिकर्षितः। सद्यः शौचं भवेत्तस्य सर्वावस्थासु सर्वदा॥२७॥

जो व्यक्ति वेद-वेदान्त का ज्ञाता है या जो विद्याध्ययनरत है, जो अग्निहोत्री है या जो वृत्ति (आजीविका) विहीन है, ऐसे व्यक्ति सदा और सभी अवस्थाओं में स्नान से शीघ्र शुद्ध (अशौचमुक्त) हो जाते हैं॥२७॥

स्त्रीणामसंस्कृतानान्तु प्रदानात्परतः सदा। सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात्संस्कारे भर्तुरेव हि॥२८॥

जिस कन्या का वाग्दान हो गया हो, किन्तु विवाह संस्कार नहीं हुआ हो उसकी मृत्यु होने पर सपिण्डों को तीन रात का अशौच होता है और विवाह संस्कार हो जाने के बाद केवल पति और उसके सपिण्डों को ही अशौच होता है॥२८॥

अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणे स्मृतम्। ऊनद्विवर्षान्मरणे सद्यः शौचमुदाहृतम्॥२९॥

---

१. इस श्लोक का तात्पर्य स्पष्ट नहीं है।

२. तावद्प्रयतो मर्त्यो

३. अतीते सूतके प्रोक्तं

वाग्दान के पूर्व कन्या की मृत्यु होने पर एक दिन का अशौच होता है। दो वर्ष से कम आयु की कन्या की मृत्यु होने पर [उसको दफनाने के बाद] शीघ्र शुद्धि हो जाती है॥२९॥

आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम्। आप्रदानात् त्रिरात्रं स्याद् दशरात्रमतः परम्॥३०॥

दाँत निकलने के पहले कन्या की मृत्यु होने पर सहोदर भ्राता शीघ्र शुद्ध हो जाता है और चूड़ाकरण के पूर्व मृत्यु होने पर एक रात का अशौच होता है, एवं कन्यादान करने के पूर्व मृत्यु होने पर तीन रात का अशौच होता है तथा विवाह के बाद मृत्यु होने पर पति के कुल में दश रात्रि तक का अशौच होता है॥३०॥

मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम्। एकोदकानांमरणे[1] सूतके चैतदेव हि॥३१॥

नाना की मृत्यु होने पर दौहित्र (नाती) को तीन रात तक का अशौच होता है। समानोदक सम्बन्ध अर्थात् विगत (पिछली) सातवीं पीढ़ी से लेकर पूर्ववर्ती चौदहवीं पीढ़ियों के वंशजों की मृत्यु का अशौच भी तीन रात्रियों तक रहता है॥३१॥

पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च। एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि॥३२॥

[द्रष्टव्य- सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥ (मनुस्मृति ५/६०)]। योनि- सम्बन्ध के लोगों (यथा- मामा, मौसी, बहन, बुआ) तथा अपने कुल के [चौदह पीढ़ियों से अधिक कालावधि के वंश में उत्पन्न] बान्धवों में से किसी की मृत्यु होने पर 'पक्षिणी' अर्थात् दो दिन एक रात (तात्पर्य यह कि मृत्यु के दिन तथा उस रात्रि से लेकर दूसरे दिन) तक अशौच होता है। गुरु तथा सहपाठी ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर एक रात्रि तक का अशौच होता है॥३२॥

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद् विषये स्थितः। गृहे मृतासु सर्वासु कन्यासु च त्र्यहं पितुः॥३३॥

जिस राजा के राज्य में कोई भी व्यक्ति निवास करता है, उसको उस राजा की मृत्यु होने पर सज्योति काल (अर्थात् दिन में मृत्यु होने पर रात्रि तक एवं रात्रि में मृत्यु होने पर दिन होने) तक अशौच रहता है। [और तत्पश्चात् स्नान करने पर ही वह शुद्ध होता है]। पितृगृह में कन्या की (विवाहिता होने पर भी) मृत्यु होने पर पिता को तीन दिन का अशौच होता है॥३३॥

परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च। त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्ये स्वभार्यास्वन्यगासु च॥३४॥

जो स्त्री पहले अन्य व्यक्ति की पत्नी रही हो उस पुनर्विवाहिता की मृत्यु होने पर तथा कृत्रिम (गोद लिए हुए) पुत्र की एवं आचार्य की और जिसने अन्य पुरुष को अपना पति बना लिया हो ऐसी स्त्री की मृत्यु होने पर तीन रात तक का अशौच होता है॥३४॥

आचार्यपुत्रे पत्न्यां च अहोरात्रमुदाहृतम्। एकाहं स्यादुपाध्याये स्वग्रामे श्रोत्रियेऽपि च॥३५॥

[आचार्य के विषय में मनु २/१४० के वचन प्रमाण रूप में उद्धृत हैं- उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥] अपने आचार्य के पुत्र एवं पत्नी के निधन पर एक अहोरात्र

१. एकादशानाञ्च तथा सूतके

(दिन और रात) का अशौच होता है, उपाध्याय के निधन एवं अपने गाँव में आये हुए श्रोत्रिय के निधन पर भी एक दिन का अशौच होता है॥३५॥

त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च। त्रिरात्रं श्वश्रूमरणात् श्वशुरे चैतदेव हि।
सद्यःशौचं समुद्दिष्टं स्वगोत्रे संस्थिते सति॥३६॥

यदि किसी असपिण्ड सम्बन्ध वाले (अर्थात् गत सात पीढ़ियों से पूर्ववर्ती पीढ़ियों के वंशज) की मृत्यु अपने घर में हो जाय तो तीन रात तक का अशौच होता है। सास एवं ससुर की मृत्यु पर भी तीन रात तक का अशौच होता है। किसी सगोत्र व्यक्ति के निधन पर शीघ्र शुद्धि हो जाती है॥३६॥

शुद्ध्येद् विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥३७॥

अशौच से ब्राह्मणदश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होते हैं॥३७॥

क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः। तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते॥३८॥

ब्राह्मण के द्वारा क्षत्राणी, वैश्या या शूद्रा से उत्पन्न सन्तानों में से किसी की भी मृत्यु होने पर ब्राह्मणों की शुद्धि दश दिन में होती है॥३८॥

राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु। तमेव शौचं कुर्यातां विशुद्ध्यर्थमसंशयम्॥३९॥

क्षत्रिय और वैश्य भी अपने से हीन वर्ण की स्त्री से उत्पन्न सन्तानों की मृत्यु होने पर अपने वर्ण के लिए विहित शुद्धि के नियमों का संशय रहित होकर पालन करें॥३९॥

सर्वे तूत्तरवर्णानामशौचं कुर्युरादृताः। स्ववर्णविधिदृष्टेन स्वं तु शौचं स्वयोनिषु॥४०॥

उच्च वर्णों के लिए विहित अशौच के नियमों का पालन सभी को आदरपूर्वक करना चाहिए॥४०॥

षड्रात्रं तु त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं क्रमेण तु। वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव च॥४१॥

शूद्र के अशौच में उसके सान्निध्य में रहने वाले वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण को क्रमशः छः, तीन और एक रात का अशौच होता है॥४१॥

अर्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः। शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्यस्याशौचमेव च॥४२॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! वैश्य के अशौच में उसके सान्निध्य में रहने वाले शूद्र तथा क्षत्रिय एवं ब्राह्मण को क्रमशः पन्द्रह रात, छः रात तथा तीन रात का अशौच होता है॥४२॥

षड्रात्रं वै दशाहञ्च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः। अशौचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेण द्विजपुङ्गवाः॥४३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! क्षत्रिय के अशौच में उसके सान्निध्य वाले ब्राह्मण को छः रात एवं वैश्य और शूद्र को दस रात तक अशौच होता है॥४३॥

शूद्रविट्क्षत्रियाणान्तु ब्राह्मणे संस्थिते सति। दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलापतिः॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा है कि ब्राह्मण की मृत्यु होने पर उसके घनिष्ठ सहवासी शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रिय दश दिन में ही अशौच से शुद्ध होते हैं॥४४॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत्। अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुद्ध्यति॥४५॥

जो द्विज सपिण्ड सम्बन्ध का नहीं (अपितु उस सम्बन्ध से बाहर का) हो उसकी मृत्यु होने पर बन्धु के समान उसके प्रेतकर्म (अन्त्येष्टि) करने वाला और उसके घर में भोजन एवं निवास करने वाला ब्राह्मण दश रात्रियों के बाद शुद्ध होता है॥४५॥

यद्यन्नमत्ति तेषां तु त्रिरात्रेण ततः शुचिः। अनदनन्नमह्ना चेत् न स तस्मिन् गृहे वसेत्॥४६॥

मृतकाशौच वाले के घर में भोजन करने वाला तीन रात्रियों के बाद शुद्ध होता है। यदि वह उस घर का अन्न नहीं खाता है तो एक ही दिन में (स्नानोपरान्त) शुद्ध हो जाता है, किन्तु उसे उस घर में निवास नहीं करना चाहिए॥४६॥

सोदकेऽथ तदेव स्यान्मातुराप्तेषु बन्धुषु। दशाहेन शवस्पर्शी सपिण्डश्चैव शुद्ध्यति॥४७॥

समानोदकों (सपिण्ड सम्बन्ध वालों) तथा माता के आप्तजनों (अर्थात् माता के माता-पिता, भ्राता) के शव को स्पर्श करने (या ढोने) वाला तथा उनका सपिण्ड व्यक्ति दश दिन में शुद्ध होता है॥४७॥

यदि निर्हरति प्रेतं लोभादाक्रान्तमानसः। दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद् द्वादशाहेन भूमिपः॥४८॥
अर्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति। षड्रात्रेणाथवा सर्वे त्रिरात्रेणाथवा पुनः॥४९॥

लोभ के वशीभूत होकर किसी मृतक के शव को वहन करने वाला ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य आधे मास (पन्द्रह दिन) में तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। अथवा ऐसे सभी वर्णों वाले व्यक्ति छः रात या तीन रात में शुद्ध हो जाते हैं॥४८-४९॥

अनाथश्चैव निर्हृत्य ब्राह्मणं धनवर्जितम्। स्नात्वा सम्प्राश्य च घृतं शुध्यन्ति ब्राह्मणादयः॥५०॥

अनाथ अथवा निर्धन ब्राह्मण के शव को [श्मशान तक] ले जाने आदि कृत्य करने वाले ब्राह्मण आदि वर्णों के लोग स्नान करके घृत को पीने से शुद्ध हो जाते हैं॥५०॥

अवरश्चेत् वरं वर्णमवरं वा वरो यदि। अशौचे संस्पृशेत्स्नेहात्तदाशौचेन शुद्ध्यति॥५१॥

यदि कोई निम्न वर्ण का व्यक्ति स्नेहवश उच्चवर्ण के मृतकाशौच वाले व्यक्ति का स्पर्श करता है या उच्च वर्ण का व्यक्ति (स्नेहवश) निम्नवर्ण के मृतकाशौच वाले व्यक्ति का स्पर्श करता है तो वह उस मृतकाशौच वाले के अशौच शुद्धि के दिन ही शुद्ध होता है। (यहाँ विद्वानों ने स्पर्श का तात्पर्य शव-स्पर्श माना है)॥५१॥

प्रेतीभूतं द्विजं विप्रो ह्यनुगच्छेत कामतः। स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति॥५२॥
एकाहात्क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्च द्व्यहेन तु। शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः॥५३॥

जो ब्राह्मण स्वेच्छया किसी मृतक ब्राह्मण की शव यात्रा में जाता है, वह सचैल-स्नान (सवस्त्र-स्नान) करके घी खाकर शुद्ध होता है एवं क्षत्रिय की शवयात्रा में जाने पर एक दिन में, वैश्य की शवयात्रा में जाने पर दो दिन में तथा शूद्र की शवयात्रा में जाने पर ब्राह्मण तीन दिन में स्नान करके एक सौ बार प्राणायाम करने पर शुद्ध होता है॥५२-५३॥

अनस्थिसञ्चिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मणः स्वकैः। त्रिरात्रं स्यात्तथाशौचमेकाहं त्वन्यथा स्मृतम्॥५४॥

शूद्र के अस्थि-चयन के पूर्व ब्राह्मण यदि उसके घर जाकर उसके स्वजनों के साथ विलाप करता

है तो उसको तीन रात तक का अशौच होता है और अस्थि-चयन के बाद ऐसा करने पर उसको एक दिन का अशौच होता है॥५४॥

अस्थिसञ्चयनादर्वागेकाहः क्षत्रवैश्ययोः। अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणे स्नानमेव तु॥५५॥

अस्थिचयन से पूर्व [शूद्र के घर जाकर विलाप करने पर] क्षत्रिय और वैश्य को एक दिन का अशौच होता है तथा अस्थिचयन के पश्चात् उसके घर जाने पर सज्योति-स्नान [अर्थात् दिन में मृत्यु होने पर रात्रि में स्नान अथवा रात्रि में मृत्यु होने पर दिन में स्नान] से शुद्धि होती है। ब्राह्मण के लिए केवल स्नान का विधान है?॥५५॥

अनस्थिसञ्चिते विप्रो ब्राह्मणो रौति चेत्तदा। स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचैलेन न संशयः॥५६॥

ब्राह्मण की मृत्यु होने पर अस्थिचयन के पूर्व उसके घर जाकर यदि कोई ब्राह्मण रुदन अर्थात् विलाप करता है तो वह सचैल स्नान से ही निःसन्देह शुद्ध हो जाता है॥५६॥

यस्तैः सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि। बान्धवो वापरो वापि स दशाहेन शुध्यति॥५७॥

मृतकाशौच वालों के साथ भोजन शयन आदि करने वाला बान्धव या अन्य जो भी हो वह दश दिन में शुद्ध होता है॥५७॥

यस्तेषां सममश्नाति सकृदेवापि कामतः। तदाशौचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विशुध्यति॥५८॥

उनके साथ स्वेच्छया एक बार भी भोजन करने वाला उनके अशौच से निवृत्त होने के दिन ही स्नान करके शुद्ध होता है॥५८॥

यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतो नरः। तावन्त्यहान्यशौचं स्यात्प्रायश्चित्तं ततश्चरेत्॥५९॥

दुर्भिक्ष पीडित व्यक्ति जितने दिनों तक अशौच वालों के घर का अन्न खाता है, उतने दिनों तक वह अशौच में रहता है। तदनन्तर शुद्धि हेतु उसको प्रायश्चित्त करना चाहिए॥५९॥

दाहाद्यशौचं कर्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम्। सपिण्डानाञ्च मरणे मरणादितरेषु च॥६०॥

अग्निहोत्री ब्राह्मणों की मृत्यु होने पर शवदाह के बाद से अशौच मानना चाहिए। सपिण्ड सम्बन्ध वालों की मृत्यु होने पर तथा मृत्यु के अतिरिक्त अशौच (जननाशौच) की शुद्धि का भी पालन करना चाहिए॥६०॥

सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥६१॥

सपिण्डता सातवीं पीढ़ी के पुरुष तक ही रहती है, उसके बाद (आठवीं आदि पीढ़ियों में) नहीं होती। अपने कुल के मूल पुरुष के नाम का भी ज्ञान न रहने पर समानोदक भाव भी समाप्त हो जाता है॥६१॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। लेपभाजस्त्रयश्चात्मा[१] सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्॥६२॥

(श्राद्धकर्ता के पिता, पितामह तथा प्रपितामह ये तीन पिण्ड-भागी होते हैं।) और उनके ऊपर की तीन पीढ़ियों के लेपभागी पितर तथा श्राद्धकर्ता (सातवाँ व्यक्ति) सहित सात पीढ़ियों तक सपिण्डता होती है॥६२॥

---

१. लेपभाजस्त्रयो ज्ञेयाः

अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्। ऊढाननां[1] भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः पितामहः॥६३॥

अविवाहित नारियों की सपिण्डता उनके पिता के कुल की सात पीढ़ियों के अन्तर्गत ही होती है। पितामह देव ब्रह्मा ने कहा है कि विवाहिता स्त्रियों की सपिण्डता उनके पति के साथ होती है॥६३॥

ये चैकजाता बहवो भिन्नयोनय एव च। भिन्नवर्णास्तु सापिण्ड्यं भवेत्तेषां त्रिपूरुषम्॥६४॥

एक पिता से विभिन्न वर्णों की स्त्रियों अर्थात् असवर्ण स्त्रियों में उत्पन्न पुत्रों की सपिण्डता (केवल) तीन पीढ़ियों तक ही होती है॥६४॥

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च। दातारो नियमाच्चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ॥६५॥
सत्रिणो व्रतिनस्तावत्सद्यः शौचा उदाहृताः। राजा चैवाभिषिक्तश्च अन्नसत्रिण एव च॥६६॥

कारीगर, शिल्पकार, वैद्य, दासी, दास, नियमतः नित्य दान करने वाले, ब्रह्मज्ञानी पुरुष, ब्रह्मचारी, सत्र (तेरह दिन से अधिक अवधि के यज्ञ) के अनुष्ठान में संलग्न तथा व्रतानुष्ठान वाले व्यक्ति (अशौच की स्थिति में स्नान आदि के बाद) शीघ्र शुद्ध हो जाते हैं। जिसका अभिषेक हो चुका हो ऐसा राजा तथा अन्न का सत्र चलाने वाले (नित्य भोजन कराने वालो) भी शीघ्र शुद्ध हो जाते हैं॥६५-६६॥

यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च। सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे॥६७॥

यज्ञानुष्ठान एवं विवाह (के आरम्भ काल में) तथा देव पूजा के समय, दुर्भिक्ष काल में तथा उपद्रव के समय (स्नानादि करके) अशौच से शीघ्र शुद्धि हो जाती है॥६७॥

डिम्बाहवहतानाञ्च विद्युता पार्थिवैर्द्विजैः[2]। सद्यः शौचं समाख्यातं सर्पाद्यैर्मरणे[3] तथा॥६८॥

डिम्ब (दंगा फसाद) एवं युद्ध में मारे गये या विद्युत् (अर्थात् वज्रपात से) या राजदण्ड से अथवा ब्राह्मण के शाप से या सर्पदंश आदि से मारे गये व्यक्तियों के अशौच की शुद्धि शीघ्र हो जाती है॥६८॥

अग्नौ मरुत्प्रपतने वीराध्वन्यप्यनाशके। गोब्राह्मणार्थे संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते॥६९॥

अग्नि में जलने से, आँधी में अथवा पर्वत से गिरने पर मृत्यु होने पर या दुर्गम मार्ग पर यात्रा में जाने से, अनशन से, गाय या ब्राह्मण की रक्षा करते हुए या संन्यासी हो जाने पर जिसकी मृत्यु होती है, उनको अशौच की शुद्धि [स्नानोपरान्त] शीघ्र हो जाती है॥६९॥

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। नाशौचं कीर्त्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते॥७०॥

विद्वानों ने कहा है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी और पतित की मृत्यु होने पर अशौच नहीं लगता॥७०॥

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः। नाश्रुपातो न पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित्॥७१॥

पतित व्यक्तियों की मृत्यु होने पर उनका दाह-संस्कार नहीं करना चाहिए और उनकी अन्त्येष्टि और अस्थिचयन भी नहीं करना चाहिए। उनके लिए आँसू नहीं बहाने चाहिए और उनका पिण्डदान और श्राद्ध आदि भी नहीं करना चाहिए॥७१॥

व्यापादयेत्तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम्॥७२॥

१. तासान्तु, २. सर्पादिमरणेऽपि च, ३. स्वज्ञातिमरणे

जो व्यक्ति स्वयं अग्नि में जल कर या विषपान आदि करके स्वयं आत्महत्या करता है, उसका अशौच विहित नहीं है और न उसका शवदाह एवं जलाञ्जलि (तर्पण) और पिण्डदान आदि करना चाहिए॥७२॥

अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः। तस्याशौचं विधातव्यं कार्यञ्चैवोदकादिकम्॥७३॥

किन्तु यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु असावधानी के कारण अग्नि में जलकर या भोजन में विष मिल जाने आदि कारणों से हो जाती है तो उसका अशौच मानना चाहिए तथा उसके [शव दाह एवं] तर्पण आदि सभी कृत्य करने चाहिए॥७३॥

जाते कुमारे तदहः दानं कुर्यात् यथाक्षमम्[१]। हिरण्यधान्यगोवासस्तिलांश्च गुडसर्पिषाम्॥७४॥

पुत्र का जन्म होने पर पिता को स्वर्ण, धान्य (अन्न), गाय, वस्त्र, तिल, गुड़, घृत का दान करना चाहिए॥७४॥

फलानि पुष्पं शाकञ्च लवणं काष्ठमेव च। तक्रं दधि घृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च।
आशौचिनो गृहाद् ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः॥७५॥

अशौच युक्त व्यक्ति के घर से फल, पुष्प, शाक, लवण (नमक), काष्ठ, तक्र (छाछ), दधि, धृत, तेल, औषध, दूध तथा सूखा अन्न नित्य ग्रहण किया जा सकता है॥७५॥

आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः। अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जनः॥७६॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण का दाह-संस्कार यथाविधि तीनों प्रकार की अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) से करना चाहिए और जिसने अग्न्याधान नहीं किया हो उसका दाह-संस्कार गृार्हपत्य अग्नि से तथा अन्य व्यक्तियों की चिता को लौकिक अग्नि से दग्ध करना चाहिए॥७६॥

देहाभावात्पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिं पुनः। दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः॥७७॥

जिस व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसकी देह कहीं से प्राप्त न हो सके तो पलाश के पत्तों से उसके समान आकृति बनाकर सपिण्ड सम्बन्ध के लोग श्रद्धापूर्वक उसका दाह-संस्कार करें॥७७॥

सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः। दशाहं बान्धवाः सार्धं[२] सर्वे चैव सुसंयताः॥७८॥

दश दिन तक सभी बान्धव संयम पूर्वक रहते हुए तथा वाणी में भी संयम रखते हुए उस प्रेत को एक बार जलाञ्जलि दें अर्थात् तर्पण करें॥७८॥

पिण्डं प्रतिदिनं दद्युः सायं प्रातर्यथाविधि। प्रेताय च गृहद्वारि चतुर्थे भोजयेद् द्विजान्॥७९॥

वे प्रतिदिन प्रातः से सायंकाल तक (दिन में एक बार) प्रेत को यथाविधि पिण्डदान करें तथा चौथे दिन घर के द्वार पर आये हुए ब्राह्मणों को भोजन करावें॥७९॥

द्वितीयेऽहनि कर्तव्यं क्षुरकर्म सबान्धवैः। चतुर्थे बान्धवैः सर्वैरस्थनां सञ्चयनं भवेत्।
पूर्वं तु भोजयेद् विप्रानयुग्मान् श्रद्धया शुचीन्॥८०॥

दूसरे दिन सभी बान्धवों को क्षौरकर्म (मुण्डन) करना चाहिए। चौथे दिन सभी बान्धव अस्थिचयन

१. कामं कुर्यात् प्रतिग्रहम्, २. श्राद्धं

करें, किन्तु उससे पहले श्रद्धापूर्वक विषम संख्या में शुद्ध ब्राह्मणों को भोजन करावें॥८०॥

पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि। अयुग्मान् भोजयेद्विप्रानूनवश्राद्धंतु तद्द्विजाः॥८१॥
एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः। द्वादशे वाह्नि कर्तव्यमनिन्द्ये त्वथवाहनि।
एकं पवित्रमेकोऽर्घः पिण्डपात्रं तथैव च॥८२॥

पाँचवें, नवें तथा ग्यारहवें दिन विषम संख्या में ब्राह्मणों को भोजन करावें। प्रेत के निमित्त ग्यारहवें या बारहवें दिन या किसी अन्य प्रशस्त दिन में श्रद्धा भाव से श्राद्ध करें। उस श्राद्ध में एक पवित्र, एक अर्घ पात्र तथा एक ही पिण्ड पात्र होता है॥८१-८२॥

एवं मृताह्नि कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। सपिण्डीकरणं प्रोक्तं पूर्णे संवत्सरे पुनः॥८३॥

इसी प्रकार एक वर्ष पर्यन्त प्रतिमास मृत्यु की तिथि को श्राद्ध करना चाहिए। तब जिस तिथि को एक वर्ष पूर्ण होता हो उस तिथि के दिन सपिण्डीकरण श्राद्ध करना चाहिए॥८३॥

कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः। प्रेतार्थे पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्ततः॥८४॥
ये समाना[1] इति द्वाभ्यां सपिण्डानप्येवमेव हि। सपिण्डीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं विधीयते॥८५॥

उस श्राद्ध में प्रेत तथा पितरों (उस प्रेत के दिवंगत पिता, पितामह और प्रपितामह) के निमित्त चार पात्र (अर्घ पात्र) बनावे और तब प्रेत पात्र के जल को पितरों के पात्र में मिलाने तथा 'ये समाना समनसः' इन दो मन्त्रों से प्रेतपिण्ड को उसके दिंवगत पितृ-पितामह-प्रपितामह के पिण्डों में मिलावे। यह सपिण्डीकरण श्राद्ध देव-श्राद्ध के अनन्तर करना चाहिए॥८४-८५॥

पितॄनावाहयेत्तत्र पुनः प्रेतं विनिर्दिशेत्। ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां स्युः पृथक्क्रियाः।
यस्तु कुर्यात्पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते॥८६॥

(सपिण्डीकरण में) पहले पितरों का आवाहन करे और तब प्रेत का आवाहन करे। जिन प्रेतों का सपिण्डीकरण हो जाता है, उनके लिए पृथक् पिण्डदान का कृत्य नहीं होता। जो व्यक्ति पृथक् पिण्डदान करता है, वह पितृघाती होता है॥८६॥

मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डानब्दं समाचेत्। दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहं प्रेतधर्मतः॥८७॥

पिता की मृत्यु होने पर पुत्र एक वर्ष तक पिण्डदान करे। प्रेतकृत्य में विहित विधानानुसार प्रतिदिन जलपूर्ण घट सहित अन्न का भी दान करना चाहिए॥८७॥

पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते। प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेष सनातनः॥८८॥

प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध की विधि से वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए। यह सनातन विधि है॥८८॥

मातापित्रोः सुतैः कार्यं पिण्डदानादिकं च यत्। पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः॥८९॥

माता-पिता का पिण्डदान एवं श्राद्ध आदि कृत्य पुत्रों को करना चाहिए। पुत्र के अभाव में पत्नी यह कार्य करे और पत्नी के अभाव में सोदर भ्राता यह कार्य करे॥८९॥

१. ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥४५॥
ये समाना समनसो जीवा जीवेषु मामकाः। तेषां ँ श्रीर्मयि कल्पताभस्मिंल्लोके शतं समाः॥ यजुर्वेद १९/४५-४६

अनेनैव विधानेन जीवः श्राद्धं समाचरेत्। कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः॥९०॥

प्रत्येक व्यक्ति इसी विधि के अनुसार एकाग्र मन से और श्रद्धापूर्वक अपने माता-पिता आदि के निमित्त यथोक्त दान आदि देकर उनका श्राद्ध करे॥९०॥

एष वः कथितः सम्यग्गृहस्थानां क्रियाविधिः। स्त्रीणां भर्तृषु शुश्रूषा धर्मो नान्य इहोच्यते॥९१॥

इस प्रकार मैंने आप लोगों को गृहस्थों की क्रिया-विधि सम्यक् रूप से कह दी है। स्त्रियों का धर्म केवल पति की सेवा करना है, उसके अतिरिक्त उनका कोई अन्य धर्म नहीं है॥९१॥

स्वधर्मतत्परा नित्यमीश्वरार्पितमानसाः। प्राप्नुवन्ति परं स्थानं यदुक्तं वेदवादिभिः॥९२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पे त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

परमेश्वर में अपना मन अर्पित करके स्वधर्म-पालन में तत्पर मनुष्य वेद के विद्वानों द्वारा कथित परम पद को प्राप्त करते हैं॥९२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के वर्णन-प्रसंग में 'श्राद्धकल्प' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

द्विजानामग्निहोत्रादिकृत्यम्

व्यास उवाच

अग्निहोत्रंतु जुहुयात्सायम्प्रातर्यथाविधि। दर्शे चैव हि पक्षान्ते नवसस्ये तथैव च॥१॥

गृहस्थ द्विज को सायंकाल तथा प्रातःकाल यथाविधि अग्निहोत्र करना चाहिए तथा अमावास्या एवं पूर्णिमा को क्रमशः दर्शेष्टि एवं पौर्णमासेष्टि तथा फसल तैयार होने पर नवशस्येष्टि करनी चाहिए॥१॥

इष्ट्वा चैव यथान्यायमृत्वन्ते च द्विजोऽध्वरः। पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सौभिकैर्मखैः॥२॥

ऋतु के समाप्त होने पर भी यथाविधि विहित यज्ञ करना चाहिए। अयन के अन्त में पशु-याग (निरुढ पशुबन्ध) तथा वर्ष के अन्त में सोमयाग करना चाहिए॥२॥

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना वाग्निमान्द्विजः। न त्वेवान्नाद्यमश्नीयात्[1] दीर्घमायुर्जिजीविषुः॥३॥

दीर्घायु तक जीवित रहने की कामना वाला अग्निहोत्री द्विज नवान्न से इष्टि (याग) किये बिना नये अन्न का भक्षण न करे॥३॥

नवेनान्नेन चानिष्ट्वा योऽश्नात्यन्नं तु तस्य ते[2]। प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः॥४॥

१. न चान्नमान्मांसं वा, २. पशुहव्येन चाग्नयः

नवान्न से इष्टि किये बिना जो द्विज उस नवान्न का भक्षण करता है, उसके प्राणों को ही नवान्न भोजन की इच्छा वाले प्राणी खा लेना चाहते हैं॥४॥

सावित्रान्शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः। पितृंश्चैवाष्टकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकासु च॥५॥

पर्वों के समय सदैव सावित्री मन्त्र से होम तथा शान्ति होम करना चाहिए और अष्टकाओं (पौष, माघ और फागुन के कृष्ण पक्ष की अष्टमी) तथा अन्वष्टकाओं (पौष, माघ, फागुन के कृष्णपक्ष की नवमी तिथियों) में पितरों का श्राद्ध करना चाहिए॥५॥

एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते। त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥६॥

गृहस्थाश्रम में रहने वाले त्रैवर्णिक द्विजातियों का नित्य-धर्म यही (पिछले अध्यायायों से लेकर यहाँ तक कथित) है। इससे भिन्न आचरण को अपधर्म कहा गया है॥६॥

नास्तिक्यादथवालस्याद्योऽग्नीनाधातुमिच्छति। यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून्॥७॥

नास्तिक भाव के कारण या आलस्य वश जो द्विज अग्नियों का आधान [स्थापन अपने घर में] नहीं करता तथा यज्ञ से [देवों का] यजन नहीं करता वह अनेक नरकों में गिरता है॥७॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ। कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा॥८॥
अन्यांश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्नोति सुदुर्मतिः। अन्त्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते॥९॥

तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, वैतरणी, असिपत्रवन तथा अन्य अनेक घोर नरकों में यातना भोगने के बाद वह दुबुद्धि द्विज अन्त्यजों के कुल में जन्म लेने के बाद अन्त में शूद्र योनि में जन्म पाता है॥८-९॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः। आधायाग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्॥१०॥

अतः विशेषतः विशुद्ध आत्मा वाला ब्राह्मण पूर्ण प्रयास करके अग्न्याधान (अग्नि-स्थापन) करके परमेश्वर का यजन-पूजन करे॥१०॥

अग्निहोत्रात्परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते। तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम्॥११॥

ब्राह्मणों के लिए अग्निहोत्र से बड़ा अन्य कोई धर्म नहीं है। अतः ब्राह्मण को नित्यमेव अग्निहोत्र से सनातन परमात्मा की आराधना करनी चाहिए॥११॥

यश्चाधायाग्निमालस्यान्न यष्टुं देवमिच्छति। स संमूढो न सम्भाष्यः किं पुनर्नास्तिको जनः॥१२॥

जो द्विज अग्न्याधान करके बाद में आलस्य के कारण यज्ञेश्वर भगवान् का यजन नहीं करना चाहता उस मूर्ख से वार्तालाप भी नहीं करना चाहिए। वह तो परम नास्तिक है॥१२॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये। अधिकं वा भवेद्यस्य स सोमं पातुमर्हति॥१३॥

जिस व्यक्ति के पास अपने परिवार तथा आश्रितों के लिए तीन वर्ष तक या उससे अधिक समय तक भरण-पोषण हेतु पर्याप्त अन्न धन आदि विद्यमान हो वही सोमपान का अधिकारी होता है॥१३॥

एष वै सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते। सोमेनाराधयेद् देवं सोमलोकमहेश्वरम्॥१४॥

यह सोमयाग सभी यज्ञों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सोमलोक के देवता महेश्वर शिव की आराधना सोमयाग से ही करनी चाहिए॥१४॥

न सोमयागादधिको महेशाराधने क्रतुः। समो वा विद्यते तस्मात्सोमेनाभ्यर्चयेत्परम्॥१५॥

भगवान् शिव की आराधना हेतु सोमयाग से बड़ा या उसके समान कोई अन्य यज्ञ नहीं हो सकता। अतः परम श्रेष्ठ देव शिव की आराधना सोमयाग से ही करनी चाहिए॥१५॥

पितामहेन विप्राणामादावभिहितः शुभः। धर्मो विमुक्तये साक्षाच्छ्रौतः स्मार्तो द्विधा पुनः॥१६॥

साक्षात् पितामह ब्रह्मा ने आदिकाल में ही ब्राह्मणों की मुक्ति हेतु श्रौत-स्मार्त नामक द्विविध धर्म का उपदेश दिया था॥१६॥

श्रौतस्त्रेताग्निसम्बन्धात् स्मार्तः पूर्वं मयोदितः। श्रेयस्करतमः श्रौतस्तस्माच्छ्रौतं समाचरेत्॥१७॥

श्रौत-धर्म तीन अग्नियों (आहनीय, दक्षिणाग्नि तथा गार्हपत्य अग्नि) से सम्बन्धित है। स्मार्तधर्म को मैंने पहले ही बतला दिया है (वर्णाश्रम धर्म ही स्मार्त धर्म है)। श्रौत धर्म सर्वाधिक श्रेयस्कर है। अतः श्रौत धर्म का ही पालन करना चाहिए॥१७॥

उभावपि हितौ धर्मौ वेदादेव विनिःसृतौ। शिष्टाचारस्तृतीयः स्याच्छ्रुतिस्मृत्योरभावतः॥१८॥

श्रौत और स्मार्त संज्ञक दोनों धर्म वेद से ही निकले हैं, और दोनों ही मनुष्यों के हित में हैं। श्रुति (वेद) एवं स्मृति [प्रतिपादित धर्म] के अतिरिक्त शिष्टाचार भी धर्म का तीसरा स्रोत है॥१८॥

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणाः प्रोक्ताः नित्यमात्मगुणान्विताः॥१९॥

तेषामभिमतो यः स्याच्चेतसा नित्यमेव हि। स धर्मः कथितः सद्भिर्नान्येषामिति धारणा॥२०॥

जिन्होंने धर्मानुसार वेद तथा उसके उपबृंहण करने वाले ग्रन्थों-इतिहास पुराण आदि का धर्मानुसार अध्ययन किया हो तथा दया क्षमा सत्य अहिंसा आदि आत्मगुणों से जो युक्त हों उन ब्राह्मणों को शिष्ट कहा गया है तथा उनको सच्चे मन से जो नित्यमेव अभीष्ट या सुसंगत लगे उसको ही सत्पुरुषों ने धर्म कहा है। अन्य व्यक्तियों के द्वारा कहे गये वचनों को धर्म नहीं कहा जा सकता है॥१९-२०॥

पुराणं धर्मशास्त्राणि वेदानामुपबृंहणम्। एकस्माद् ब्रह्मविज्ञानं धर्मज्ञानं तथैकतः॥२१॥

पुराण और धर्मशास्त्रों के ग्रन्थ वेदों के विस्तृत ज्ञान-स्वरूप हैं। वेद से ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है तथा पुराणों से धर्म का ज्ञान होता है॥२१॥

धर्मं जिज्ञासमानानां तत्प्रमाणतरं स्मृतम्। धर्मशास्त्रं पुराणानि ब्रह्मज्ञानेतराश्रमम्[1]॥२२॥

धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद, पुराण और धर्मशास्त्रों के ग्रन्थ परम प्रमाण स्वरूप कहे गये हैं। ब्रह्मज्ञान वेदों के आश्रय से प्राप्त होता है॥२२॥

नान्यतो ज्ञायते[2] धर्मो ब्राह्मी विद्या च वैदिकी। तस्माद्धर्मं पुराणं च श्रद्धातव्यं मनीषिभिः॥२३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु द्विजानामग्निहोत्रादिकृत्यनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

१. ब्रह्मज्ञानेतराश्रमम्, २. जायते

धर्म का ज्ञान तथा वैदिक ब्रह्मविद्या का ज्ञान अन्य किसी विद्या से प्राप्त नहीं होता। अतः विद्वान् पुरुषों को [वेद] पुराण और धर्मशास्त्रों में श्रद्धा रखनी चाहिए॥२३॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के वर्णन-प्रसंग में 'द्विजों के अग्निहोत्रादि कर्म-निरूपण' नामक चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥२४॥

❖❖❖

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

द्विजातीनां वृत्तिः

व्यास उवाच

एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिनः। द्विजातेः परमो धर्मो वर्तनानि निबोधत॥१॥

व्यास जी बोले- मैंने आप लोगों को गृहस्थाश्रम में निवास करने वाले ब्राह्मणों का परम धर्म पूर्णतः बतलाया है। अब उनकी आजीविका के विषय में सुनें॥१॥

द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः। अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहुः प्रतिग्रहम्।
कुसीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वन्तः स्वयं कृतम्॥२॥

गृहस्थ साधक और असाधक भेद से दो प्रकार के होते हैं- यह समझना चाहिए। इनमें से प्रथम साधक गृहस्थ की आजीविका अध्यापन, याजन (यज्ञ कराना) तथा प्रतिग्रह (दान लेना) ही है। इनके अभाव में गृहस्थ ब्राह्मण कुसीद (व्याज लेना), कृषि तथा वाणिज्य (व्यापार) भी आजीविका हेतु कर सकते हैं या करवा सकते हैं॥२॥

कृषेरभावे वाणिज्यं तदभावे कुसीदकम्। आपत्कल्पस्त्वयं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते॥३॥

कृषि के अभाव में वाणिज्य तथा उसके भी अभाव में कुसीद (ब्याज) से भी आजीविका चला सकते हैं। यह कृषि, वाणिज्य और कुसीद की वृत्ति आपत्ति काल की है। ब्राह्मण की आजीविका के मुख्य साधन तो पूर्वोक्त अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह ही हैं॥३॥

स्वयं वा कर्षणं कुर्याद्वाणिज्यं वा कुंसीदकम्। कष्टा पापीयसी वृत्तिः कुसीदं तद्विवर्जयेत्॥४॥

आपत्ति काल में ही ब्राह्मण स्वयं कृषि, वाणिज्य या कुसीद की वृत्ति को अपनावे, किन्तु कुसीद से आजीविका अत्यन्त कष्टकारी और पाप-प्रद है। अतः उसे वर्जित करे॥४॥

क्षात्रवृत्तिं परां प्राहुर्न स्वयं कर्षणं द्विजैः। तस्मात्क्षात्रेण वर्तेत वर्ततेऽनापदि द्विजः॥५॥

ब्राह्मण के लिए स्वयं कृषि करना प्रशस्त नहीं है। उसके लिए कृषि की अपेक्षा क्षत्रिय की वृत्ति (क्षत्रियोचित कर्म) से आजीविका चलाना अधिक प्रशस्त कहा गया है। अतः ब्राह्मण आपत्तिकाल में एवं आपत्तिकाल न होने पर भी क्षत्रियोचित कर्म से आजीविका चला सकता है॥५॥

तेन चैवाप्यजीवंस्तु[१] वैश्यवृत्तिं कृषिं व्रजेत्। न कथञ्चन कुर्वीत ब्राह्मणः कर्म कर्षणम्॥६॥

क्षत्रियोचित कर्म से आजीविका संभव न हो सकने पर ही ब्राह्मण को वैश्य के लिए विहित वृत्ति कृषि को अपनी आजीविका का साधन बनाना चाहिए। किन्तु वह ब्राह्मण स्वयं कर्षण कर्म (खेत जोतने का काम) न करे॥६॥

लब्धलाभः पितॄन्देवान् ब्राह्मणांश्चापि पूजयेत्। ते तृप्तास्तस्य तं दोषं शमयन्ति न संशयः॥७॥

ब्राह्मण को क्षत्रियोचित वृत्ति या वैश्योचित कृषि कर्म से जो लाभ प्राप्त हो उससे वह पितरों, देवों तथा ब्राह्मणों का पूजन करे। वे तृप्त होकर उसके [आजीविका के लिए किये गये] उस दोष को शान्त कर देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है॥७॥

देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्याद्भागं तु विंशकम्। त्रिंशद्भागं ब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन्न दुष्यति॥८॥

कृषि करने वाला ब्राह्मण देवों और पितरों को अन्न का बीसवां भाग (पांच प्रतिशत) तथा ब्राह्मणों को तीसवां भाग (३½ प्रतिशत) प्रदान करे। ऐसा करने पर उसे कृषि कर्म का कोई दोष नहीं लगता॥८॥

वाणिज्ये द्विगुणं दद्यात् कुसीदी त्रिगुणं पुनः। दद्यात् चेत् स न[२] दोषेण युज्यते नात्र संशयः॥९॥

वाणिज्य (व्यापार) करनें वाला ब्राह्मण उसका दुगुना और कुसीद वृत्ति (ब्याज लेने वाला) तिगुना प्रदान करे। ऐसा करने पर वह दोष मुक्त होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है॥९॥

शिलोञ्छं वाप्याददीत गृहस्थः साधकः पुनः। विद्याशिल्पादयस्त्वन्ये बहवो वृत्तिहेतवः॥१०॥

अथवा साधक गृहस्थ शिलोञ्छ (फसल कट जाने के बाद खेत में गिरे हुए अनाज के दानों तथा बालियों को बटोरकर घर में रखने) से जीविका निर्वाह करे। अनेक विद्याएँ तथा अनेक शिल्प भी जीविका निर्वाह के साधन हैं॥१०॥

असाधकस्तु यः प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः। शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः॥११॥

जो असाधक गृहस्थ गृहस्थाश्रम में रहता है, उसके लिए महर्षियों ने जीविका के साधन रूप में शिल और उञ्छ नामक दो वृत्तियाँ बतलायी हैं। (यहाँ शिल का तात्पर्य खेत में छूटी बालियाँ से है तथा खेत में छूटे दोनों को बटोरना उञ्छ वृत्ति कहलाता है)॥११॥

अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा यदि। अयाचितं स्यादमृतं मृतं भैक्षन्तु याचितम्॥१२॥

अथवा असाधक गृहस्थाश्रमी अमृत या मृत साधन पर जीविका के लिए निर्भर रहे। बिना याचना किये जो प्राप्त हो जाय वह अमृत कहलाता है तथा याचना करने पर भिक्षा रूप में प्राप्त (खाद्यान्न आदि) वस्तु को मृत कहा जाता है॥१२॥

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव च। त्र्यह्निको वापि च भवेदश्वस्तनिक एव च॥१३॥

असाधक ब्राह्मण कुशूलधान्यक (तीन वर्षों के लिए सञ्चित अन्न वाला) या कुम्भीधान्यक (एक वर्ष के लिए सञ्चित अन्न वाला) या तीन दिनों के लिए अन्न को सञ्चित रखने वाला अथवा अश्वस्तनिक (अगले दिन के लिए भी अन्न को सञ्चित न रखने वाला) भी होता है॥१३॥

१. तेन चावाप्य जीवंस्तु, २. कृषिपालान्न

चतुर्णामपि वै तेषां द्विजानां गृहमेधिनाम्। श्रेयान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः॥१४॥

उन चार प्रकार के गृहस्थ ब्राह्मणों में क्रमशः प्रथम की अपेक्षा अग्रिम कोटि का ब्राह्मण अधिक श्रेष्ठ होता है और वह अपने धर्म के बल पर स्वर्गादि लोकों को जीत लेता है॥१४॥

षट्कर्मको[१] भवेत्तेषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते। द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति॥१५॥

कुछ ब्राह्मण छः कर्मों (अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान प्रतिग्रह) को करते हैं तो कुछ केवल तीन कर्म (यज्ञ, वेद का अध्ययन-अध्यापन तथा प्रतिग्रह) करते हैं, कुछ केवल दो कर्म (याजन और अध्यापन) करते हैं और कुछ केवल ब्रह्मसत्र (वेदाध्यापन) नामक एक वृत्ति से जीविका चलाते हैं॥ ।१५॥

वर्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः। इष्टीः पार्वायणान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा॥१६॥

शिल और उच्छ वृत्ति से जीविका चलाने वाले ब्राह्मण को अग्निहोत्र करते रहना चाहिए तथा पर्व और उत्तरायण एवं दक्षिणायन के दिन इष्टियों को भी करना चाहिए॥१६॥

न लोकवृत्तिं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन। अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम्॥१७॥

ब्राह्मण को आजीविका हेतु हास-परिहास या मनोविनोद के कार्य या निम्नस्तरीय मूर्खोचित कार्य नहीं करने चाहिए। अपितु अजिह्म (कुटिलता रहित) तथा दुष्टता रहित शुद्ध कार्य करना चाहिए॥१७॥

याचित्वा चापि सद्भ्योऽन्नं पितॄन्देवांस्तु तोषयेत्। याचयेद्वा शुचीनूदान्तान् न तृप्येत् स्वयं ततः॥१८॥

सद्गृहस्थों से अन्न को माँग करके भी ब्राह्मण उससे पितरों और देवों का अर्चन करे। वह शुचि और संयमी गृहस्थों से भी अन्न आदि की याचना कर सकता है, किन्तु उसका उपयोग स्वयं अपनी तृप्ति के लिए नहीं, देवों पितरों की उपासना आदि के लिए भी करे॥१८॥

यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा गृहस्थस्तोषयेन्न तु। देवान्पितॄंस्तु विधिना शुनां योनिं व्रजत्यधः॥१९॥

जो गृहस्थ धनार्जन करके विधिपूर्वक देवों और पितरों का पूजन तर्पण आदि नहीं करता उसका अधःपतन होता है और वह कुत्ते की योनि में जन्म पाता है॥१९॥

धर्मश्चार्थश्च कामश्च श्रेयो मोक्षश्चतुष्टयम्। धर्माविरुद्धः कामः स्याद् ब्राह्मणानान्तु नेतरः॥२०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक ये चार श्रेयस्कर पुरुषार्थ हैं। ब्राह्मणों का काम नामक पुरुषार्थ धर्मानुकूल होना चाहिए, धर्म-विरुद्ध नहीं॥२०॥

योऽर्थो धर्माय नात्मार्थे सोऽर्थो नार्थस्तथेतरः। तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद्वै जुहुयाद् द्विजः॥२१॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु द्विजातीनां वृत्तिनिरूपणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

जो धन अपने लिए नहीं, अपितु धर्म के लिए है, वही वास्तव में धन है। जो धर्म के लिए नहीं वह धन नहीं के समान है। अतः धर्मानुकूल धन प्राप्त करके ब्राह्मण उससे दान-पुण्य तथा यज्ञ-याग करे॥२१॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के वर्णन-प्रसंग में 'श्राद्धकल्प' नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥२५॥

१. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजनमनः॥ मनुस्मृति १०/७५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

दानधर्मनिरूपणम्

व्यास उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम्। ब्रह्मणाभिहितं पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम्॥१॥

व्यास जी बोले- अब मैं अति उत्तम दान-धर्म का वर्णन करूँगा। इसे पूर्वकाल में ब्रह्मा ने ब्रह्मवादी ऋषियों को बतलाया था॥१॥

अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्। दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥२॥

सत्पात्र को श्रद्धापूर्वक धन प्रदान करना ही दान कहलाता है। यह दान इस जीवन में अभीष्ट भोग-साधनों को तथा मृत्यु के बाद मोक्ष रूपी फल को देता है॥२॥

यद्ददाति विशिष्टेभ्यः शिष्टेभ्यः श्रद्धया युतः। तत्तुवित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥३॥

जो धन सद्गुण सम्पन्न सज्जन धार्मिकों को श्रद्धापूर्वक दिया जाता है, उसी को मैं धन मानता हूँ। शेष धन तो गृहस्थ मानो किसी और का समझ कर उसकी रक्षा मात्र करता है॥३॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते। चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥४॥

नित्य, नैमित्तिक और काम्य-भेद से दान तीन प्रकार का कहा जाता है और चौथा दान विमल (पवित्र) दान है जो सभी दानों में सर्वोत्तम दान है॥४॥

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे। अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥५॥

किसी फल की कामना किये बिना किसी अनुपकारी (जिससे उपकार अपेक्षित न हो) ब्राह्मण को जो कुछ भी श्रद्धापूर्वक दिया जाता है, उसे नित्यदान कहते हैं॥५॥

यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे। नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम्॥६॥

पाप-शान्ति हेतु विद्वानों के हाथ में जो दान दिया जाता है, उसको नैमित्तिक दान कहते हैं। सज्जनों के द्वारा यह दान दिया जाता है॥६॥

अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते। दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥७॥

पुत्र प्राप्ति की कामना या विजय-प्राप्ति, ऐश्वर्य-लाभ या स्वर्ग-प्राप्ति की कामना से जो दान दिया जाता है, उसको धर्मशास्त्रों का चिन्तन करने वाले ऋषियों ने काम्यदान कहा है॥७॥

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते। चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद् विमलं शिवम्॥८॥

जो दान धर्म-भावना युक्त मन से ईश्वर की प्रसन्नता हेतु ब्रह्मज्ञानियों को दिया जाता है, उस कल्याणकारी दान को विमल अर्थात् विशुद्ध दान कहा जाता है॥८॥

दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः। उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः॥९॥

दान का सत्पात्र उपलब्ध होने पर अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार दान-धर्म अवश्य करना

चाहिए। ऐसा करते रहने पर कभी दान का कोई सत्पात्र भी मिल सकता है जो दाता का सभी कष्टों से उद्धार कर उसका तारण कर सकता है॥९॥

कुटुम्बभक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते। अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानं फलप्रदम्॥१०॥

कुटुम्ब के भरण-पोषण और वस्त्र आदि की आवश्यकता पूर्ति के बाद जो द्रव्य शेष बचे उसी में से दान करना चाहिए। अन्यथा जो दान [कुटुम्ब की आवश्यकता पूर्ति किये बिना] दिया जाता है, वह फलप्रद नहीं (निष्फल) होता है॥१०॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने। व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्॥११॥

श्रोत्रिय, कुलीन, विनीत, तपस्वी, व्रतपरायण और निर्धन ब्राह्मण को ही दान देना चाहिए॥११॥

यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये। स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥१२॥

जो व्यक्ति अग्निहोत्री ब्राह्मण को भक्तिभाव से भूमिदान करता है, वह उस परम पद को प्राप्त करता है जहाँ जाकर कोई शोक-दुःख नहीं होता॥१२॥

इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्। ददाति वेदविदुषे यः स भूयो न जायते॥१३॥

जो व्यक्ति ईख (गन्ना) के खेतों वाली या जौ और गेहूँ की उपज वाली भूमि का दान वेद के विद्वान् को दान में देता है, उसका इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है॥१३॥

गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिं सम्प्रयच्छति। ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१४॥

जो व्यक्ति गोचर्म[१] मात्र भूमि का दान भी निर्धन ब्राह्मण को करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१४॥

भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन। अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्॥१५॥

भूमिदान से बड़ा कोई दान नहीं होता। अन्नदान भी उसी (भूमिदान) के तुल्य होता है और विद्यादान तो उससे भी बड़ा दान है॥१५॥

यो ब्राह्मणाय शान्ताय शुचये धर्मशालिने[२]। ददाति विद्यां विधिना ब्रह्मलोके महीयते॥१६॥

जो व्यक्ति शान्त स्वभाव वाले, शुद्ध आचरण वाले एवं स्वधर्म का पालन करने वाले ब्राह्मण को विधिवत् विद्या-प्रदान करता है, वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥१६॥

दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः स्थानमाप्नुयात्॥१७॥

जो व्यक्ति प्रतिदिन ब्रह्मचारी को श्रद्धापूर्वक अन्न प्रदान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मा के स्थान-ब्रह्मलोक में जाता है॥१७॥

गृहस्थायान्नदानेन फलम्प्राप्नोति मानवः। आममेवास्य दातव्यं दत्त्वाप्नोति परां गतिम्॥१८॥

गृहस्थ द्विज को अन्न-दान करने पर मनुष्य महा पुण्य फल प्राप्त करता है। किन्तु ब्राह्मण को

१. सवृषं गोसहस्रं तु यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम्। बालवत्सप्रसूतानां तद् गोचर्म इति स्मृतम्॥ गोचर्म के सपष्टीकरण हेतु धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम भाग पृ. ४५७ को देखें।

२. शुचये धर्मशीलिने

[पकाया हुआ अन्न नहीं] कच्चा (बिना पकाया) अन्न ही देना चाहिए। उस अन्न को देकर दाता परम गति प्राप्त करता है॥१८॥

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा। उपोष्य विधिना शान्तः शुचिः प्रयतमानसः॥१९॥
पूजयित्वा तिलैः कृष्णैर्मधुना च विशेषतः। गन्धादिभिः समभ्यचर्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत्॥२०॥
प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्तते। यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥२१॥

वैशाख पूर्णिमा के दिन यथाविधि उपवास रखकर शान्त और संयमित मन से पाँच या सात ब्राह्मणों की काले तिलों तथा मधु एवं गन्ध-पुष्पादि से पूजा करके उनसे यह कहलवाये या स्वयं कहे कि [इस पूजन से] धर्मराज प्रसन्न होवें, अथवा अपने मन की बात को वह स्वयं कहे कहलवाये। ऐसा करने से उसके द्वारा आजीवन किया हुआ पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है॥१९-२१॥

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी। ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्॥२२॥

कृष्ण वर्ण के मृग के चर्म में तिलों को तथा मधु और घृत को रखकर जो व्यक्ति ब्राह्मण को दान रूप में प्रदान करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥२२॥

कृतान्नमुदकुम्भञ्च वैशाख्याञ्च विशेषतः। निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात्॥२३॥

वैशाखी पूर्णिमा के दिन कृतान्न (पक्वान्न अथवा सत्तू) तथा जल पूर्ण कलश या घट को धर्मराज को उद्देश्य में रखकर [अर्थात् धर्मराज के निमित्त] ब्राह्मण को प्रदान करने वाला मनुष्य भय से मुक्त हो जाता है॥२३॥

सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा। तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥२४॥

उसी पूर्णिमा के दिन सुवर्ण और तिलों से युक्त जल-पात्रों से सात या पाँच ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने वाला व्यक्ति ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है॥२४॥

माघमासे तु यो विप्रो द्वादश्यां समुपोषितः। शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्॥२५॥
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु विप्रेभ्यः सुसमाहितः। जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः॥२६॥

जो ब्राह्मण माघमास [के कृष्ण पक्ष] की द्वादशी के दिन उपवास रखकर और शुक्लवर्ण के वस्त्र धारण करके एकाग्र मन से कृष्णवर्ण के तिलों से अग्नि में हवन करके ब्राह्मणों को तिलों का ही दान देता है, वह आजीवन किये हुए सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥२५-२६॥

अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने। यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याच्चोद्दिश्य शङ्करम्॥२७॥
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः। सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥२८॥

जो व्यक्ति माघ कृष्णपक्ष की अमावास्या के दिन भगवान् शिव के निमित्त जो कुछ भी दान किसी ब्राह्मण को देते हुए 'इस दान से पार्वती सहित सनातन ईश्वर महादेव प्रसन्न होवें' ऐसा कहे उसके सात जन्मों का पाप तत्काल नष्ट हो जाता है॥२७-२८॥

यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्। आराधयेद् द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः॥२९॥

जो व्यक्ति कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को स्नान करके पिनाकधारी महादेव की आराधना ब्राह्मण के

मुख में (अर्थात् ब्राह्मण को भोजन कराके) करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, [वह मोक्ष को प्राप्त करता है]॥२९॥

कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये। स्नात्वाभ्यर्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः॥३०॥
प्रीयतां मे महादेवो दद्याद् द्रव्यं स्वकीयकम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम्॥३१॥

जो व्यक्ति कृष्ण पक्ष की अष्टमी को स्नान करके विशेष रूप से धार्मिक ब्राह्मण के चरणों को धोकर उसका यथाविधि पूजन करके देवाधिदेव महादेव प्रसन्न होवें- ऐसा कहते हुए अपना द्रव्य उस ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करता है॥३०-३१॥

द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः। अमावास्यान्तु[1] वै भक्तैः पूजनीयस्त्रिलोचनः॥३२॥

ब्राह्मण भक्तों को कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, विशेषतः कृष्ण पक्ष की अष्टमी एवं अमावास्या को त्रिलोचन भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए॥३२॥

एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्। अर्चयेद् ब्राह्मणमुखे स गच्छेत्परमं पदम्॥३३॥

एकादशी के दिन निराहार रहकर द्वादशी को पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु का पूजन करके ब्राह्मण को [विष्णु भगवान् के निमित्त] भोजन कराने वाला परम पद को प्राप्त करता है॥३३॥

एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद् द्वादशी शुक्लपक्षके। तस्यामाराधयेद्देवं प्रयत्नेन जनार्दनम्॥३४॥

शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि भगवान् विष्णु की तिथि है। इस तिथि को प्रयत्नपूर्वक जनार्दन देव विष्णु की पूजा करनी चाहिए॥३४॥

यत्किञ्चिचद् देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ। दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम्॥३५॥

इस तिथि के दिन भगवान् शिव अथवा विष्णु की प्रसन्नता हेतु किसी पवित्र ब्राह्मण को जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह अनन्त फल-प्रद होता है॥३५॥

यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः। ब्राह्मणान् पूजयेत्यत्नात् स तस्यास्तोषहेतवे॥३६॥

जो भी मनुष्य जिस देवता की आराधना करना चाहता है, वह उस देवता को प्रसन्न करने के लिए यत्नपूर्वक [भक्ति भाव से] ब्राह्मणों का पूजन करे॥३६॥

द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः। पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित्॥३७॥

देवता सदैव ब्राह्मणों के शरीर में निवास करते हैं। ब्राह्मणों के उपलब्ध न होने पर ही कहीं पर [भक्तों के द्वारा] देवताओं को मूर्तियों आदि में उनकी पूजा की जाती है॥३७॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्तत्फलमभीप्सुभिः। द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः॥३८॥

अतः सभी लोगों को अपने लिए जो भी अभीष्ट फल [की इच्छा] हो उसकी सिद्धि हेतु विशेष रूप से ब्राह्मणों की ही देवता रूप में पूजा करनी चाहिए॥३८॥

विभूतिकामः सततं पूजयेद्वै पुरन्दरम्। ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः॥३९॥

---

१. अमास्यान्तु पाठ अशुद्ध है। यह अमावास्याया- (शुद्ध पाठ) के स्थान पर प्रयुक्त है।

ऐश्वर्य की कामना करने वाले को सदैव इन्द्र की पूजा करनी चाहिए। ब्रह्मतेज और ब्रह्मज्ञान की कामना वाले को ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए॥३९॥

आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम्। कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद्वै विनायकम्॥४०॥

आरोग्य लाभ की कामना वाला सूर्य की तथा धन की कामना वाला अग्नि की एवं अपने अभीष्ट कार्य की निर्विघ्न सिद्धि की कामना वाला विनायक (गणेश जी) की पूजा करे॥४०॥

भोगकामस्तु शशिनं बलकामः समीरणम्। मुमुक्षुः सर्वसंसारात्प्रयत्नेनार्चयेद्हरिम्॥४१॥

लौकिक सुख-भोग की कामना वाला चन्द्रमा की, शारीरिक बल की कामना वाला वायु की तथा समस्त संसार के बन्धनों से मुक्ति की कामना वाला भगवान् विष्णु की पूजा करे॥४१॥

यस्तु योगं तथा मोक्षमिच्छेत् तज्ज्ञानमैश्वरम् सोऽर्चयेद्वै विरूपाक्षं प्रयत्नेन महेश्वरम्॥४२॥

जो व्यक्ति योग तथा मोक्ष और ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसको विरूपाक्ष प्रयत्नपूर्वक महेश्वर शिव की पूजा करनी चाहिए॥४२॥

ये वाञ्छति महायोगान् ज्ञानानि च महेश्वरम्। ते पूजयन्ति भूतेशं केशवञ्चापि भोगिनः॥४३॥

जो पुरुष महायोग तथा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे भूतनाथ भगवान् महेश्वर शिव की पूजा करते हैं तथा जो सांसारिक सुख-भोगों की कामना करते हैं, वे भगवान् विष्णु की पूजा करते हैं॥४३॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः। तिलप्रदः प्रजामिष्टांदीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥४४॥

जल-प्रदान करने वाला तृप्ति (संतोष) प्राप्त करता है, अन्न का दान देने वाला अक्षय सुख प्राप्त करता है। तिलों का दान देने वाला मनोवांछित सन्तान प्राप्त करता है तथा दीप-दान करने वाला उत्तम नेत्र अर्थात् स्वस्थ आँखें प्राप्त करता है॥४४॥

भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः। गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥४५॥

भूमि दान देने वाला सभी वाञ्छित वस्तुओं को प्राप्त करता है। स्वर्ण दान करने वाला दीर्घ आयु प्राप्त करता है। गृह दान देने वाला ऊँचें सुन्दर भवनों को प्राप्त करता है और चाँदी का दान देने वाला उत्तम रूप प्राप्त करता है॥४५॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः। अनडुद्दः श्रियं पुष्टां गोदो व्रध्नस्य विष्टपम्॥४६॥

वस्त्रदान देने वाला चन्द्रलोक में जाता है तथा अश्व का दान देने वाला अश्विनीकुमारों के लोक में जाता है। वृषभ का दान देने वाला पुष्ट लक्ष्मी (धन सम्पत्ति) को प्राप्त करता है तथा गौ का दान देने वाला ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है॥४६॥

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः। धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसात्म्यताम्॥४७॥

यान (वाहन) तथा शय्या का दान वाले को प्रतिव्रता पत्नी की प्राप्ति तथा किसी भयार्त को अभयदान देने वाले को एश्वर्य की प्राप्ति होती है। अन्नदाता को सदैव सुख प्राप्प होता है तथा ब्रह्मज्ञान देने वाला ब्रह्मपद को प्राप्त करता है॥४७॥

धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्। वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥४८॥

वेद के ज्ञाता विशिष्ट विद्वान् ब्राह्मणों को यथाशक्ति अन्न का दान देने वाला मृत्यु के बाद स्वर्ग में सुख भोगता है॥४८॥

गवां वा सम्प्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते। इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः॥४९॥

[ब्राह्मणों को] गायों का दान देने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इन्धन का दान देने से मनुष्य की जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है॥४९॥

फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदायुक्तः सदा भवेत्॥५०॥

ब्राह्मणों को फल, मूल, शाक तथा अन्य विविध भोज्य पदार्थों का दान देने वाला सदा आनन्दित रहता है॥५०॥

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणे रोगशान्तये। ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥५१॥

रोगी को उसके रोग की शान्ति (अर्थात् चिकित्सा में सहायता) हेतु औषध, स्नेह (तेल, घी आदि) तथा पथ्य भोजन देने वाला रोग-रहित, सुखी एवं दीर्घायु होता है॥५१॥

असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम्। तीव्रतापञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः॥५२॥

छाता और जूता दान करने वाला मनुष्य मृत्यु के बाद छुरे की धार के समान तीखे पत्तों वाले असिपत्र वन को तथा सूर्य के तीव्र ताप से तपे हुए मार्ग को [सुख पूर्वक] पार कर लेता है॥५२॥

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे। तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥५३॥

इस संसार में जो वस्तु स्वयं को सर्वाधिक अभीष्ट हो तथा घर में सर्वाधिक प्रिय हो यदि उसको सदैव अपने घर में अक्षय रूप में चाहता हो तो उसका दान सद्गुण-सम्पन्न ब्राह्मण को देना चाहिए॥५३॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥५४॥

उत्तरायण और दक्षिणायन के दिन तथा विषुव अर्थात् मेष और तुला संक्रान्ति के दिन तथा अन्य संक्रान्तियों एवं सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण के समय दिया गया दान अक्षय होता है॥५४॥

प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च। दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च॥५५॥

प्रयाग आदि तीर्थों तथा पवित्र धामों-मन्दिरों एवं नदी-तटों और नैमिष आदि वनों में दान का अक्षय पुण्य-फल दान देने वाले को प्राप्त होता है॥५५॥

दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते। तस्माद् विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः॥५६॥

इस जगत् में प्राणियों के लिए दान देने से बड़ा अन्य कोई धर्म नहीं है। अतः सभी द्विजातियों को चाहिए कि वे श्रोत्रिय ब्राह्मण को दान दें॥५६॥

स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये। मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथान्वहम्॥५७॥

स्वर्ग-प्राप्ति, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य-लाभ की कामना से या पाप को शान्त करने के लिए तथा मोक्ष-प्राप्ति की कामना से ब्राह्मणों को प्रतिदिन दान देना चाहिए॥५७॥

दीयमानं तु यो मोहाद् गोविप्राग्निसुरेषु च। निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत् तु सः॥५८॥

जो व्यक्ति मूर्खतावश गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवों के निमित्त दिये जा रहे दान को देने से रोकता है, वह पापी [मृत्यु के बाद] पशु योनि में जाता है॥५८॥

यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेद् ब्राह्मणान् सुरान्। सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत्[१]॥५९॥

जो व्यक्ति धन अर्जित करके देवों और ब्राह्मणों की पूजा नहीं करता उसका सर्वस्व हरण करके राजा उसे राष्ट्र से निर्वासित कर दे॥५९॥

यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति। म्रियमाणेषु सत्त्वेषु[२] ब्रह्महा[३] स तु गर्हितः॥६०॥

दुर्भिक्षकाल में जब लोग भूखे मर रहे हों तब अन्न आदि का दान जो नहीं करता है, वह ब्रह्महत्या करने वाला अत्यन्त निन्दनीय है॥६०॥

तस्मान्न प्रतिगृह्णीयान्न वै देयञ्च तस्य हि। अङ्कयित्वा स्वकाद्राष्ट्रात्तं राजा विप्रवासयेत्॥६१॥

उसे न तो दान लेना चाहिए और न उसे दान देना चाहिए। राजा को चाहिए कि उसके शरीर में [चोर जैसे] अपराधी का चिन्ह अङ्कित करके उसे अपने राष्ट्र से निर्वासित कर दे॥६१॥

यस्त्वसद्भ्यो[४] ददातीह स्वद्रव्यं[५] धर्मसाधनम्। स पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः॥६२॥

[द्रष्टव्य- गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः। स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान्॥ मनुस्मृति ९/२३७।] जो व्यक्ति धर्म के साधन रूप अपने धन को धर्मकार्य में या सत्पुरुषों को दान देने में न लगाकर दुष्टों को देता है, वह पूर्वोक्त [श्लोक ६१ में कथित] पापी से भी अधिक पापी होता है और मृत्यु के बाद उसे नरक में यातना दी जाती है॥६२॥

स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः। सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमाः॥६३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! जो ब्राह्मण स्वाध्याय में संलग्न हों, विद्याओं का अध्ययन किये हुए हों, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ और संयमी हों उनको ही दान देना चाहिए॥६३॥

सुभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकं भोजयेद् द्विजम्। न तु मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम्॥६४॥

धार्मिक और विद्वान् ब्राह्मण यदि अच्छी तरह भोजन कर चुका हो तथापि उसी को भोजन कराना चाहिए किन्तु मूर्ख और दुराचारी ब्राह्मण दश दिनों से भी भूखा हो तो तब भी [पूजा या यज्ञानुष्ठान आदि के अवसर पर] उसे भोजन नहीं कराना चाहिए॥६४॥

सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति। स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम्॥६५॥

जो गृहस्थ अपने निकटस्थ श्रोत्रिय ब्राह्मण को छोड़कर किसी अन्य साधारण ब्राह्मण को दान देता है, वह पापी उस पाप कर्म से अपने कुल के आगामी सात पीढ़ियों तक के वंशजों को दग्ध करता है॥६५॥

यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम्। तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम्॥६६॥

यदि कोई ब्राह्मण अपेक्षाकृत अधिक शीलवान (सच्चरित्र) और अधिक विद्वान् है तो अपने निकटस्थ ब्राह्मण को छोड़कर भी उसे ही दान देना चाहिए॥६६॥

---

१. राष्ट्राद् विप्रतिवासयेत्, २. विप्रेषु, ३. ब्राह्मणः, ४. यस्तु सद्भ्यो, ५. न द्रव्यं

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव वा। तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकन्तु विपर्यये॥६७॥

जो ब्राह्मण आदर पूर्वक प्रदत्त दान को ग्रहण करता है और जो दाता आदर के साथ दान देता है, वे दोनों स्वर्ग में जाते हैं और उसके विपरीत (अनादर) करने वाले नरक में जाते हैं॥६७॥

न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हेतुकेऽपि च। पाषण्डेषु च सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित्॥६८॥

धर्म के ज्ञाता को चाहिए कि वह नास्तिक, कुतर्की, पाषण्डी और वेद-ज्ञान से रहित ब्राह्मण को जल का भी दान न करे। [किन्तु साधारण रूप से प्यासे को पानी पिलाने का निषेध इन वचनों से नहीं समझना चाहिए)]॥६८॥

अपूपञ्च हिरण्यञ्च गामश्वं पृथिवीं तिलान्। अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत्॥६९॥

अपूप (पूआ), सोना, गौ, अश्व, भूमि और तिलों का दान लेने वाला ब्राह्मण यदि विद्वान् नहीं है तो वह काष्ठ के समान भस्म हो जाता है॥६९॥

द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः। अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथञ्चन॥७०॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण को केवल प्रशस्त (शुद्ध-सात्त्विक) द्विजातियों से ही दान रूप में धन लेना चाहिए। अथवा नाम मात्र से जो द्विजाति (त्रैवर्णिक) हैं, उनसे तो दान में धन लेना चाहिए, किन्तु शूद्र से किसी [प्रकार भी] कुछ नहीं लेना चाहिए॥७०॥

वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेत् नेहेत धनविस्तरम्। धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥७१॥

ब्राह्मण को अपनी आजीविका के साधनों में कमी करनी चाहिए। अपने धन की वृद्धि की कामना नहीं करनी चाहिए। धन के लोभ में आसक्त ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व से ही रहित (हीन) हो जाता है॥७१॥

वेदानधीत्य सकलान् यज्ञान् निष्पाद्य[1] सर्वशः। न तां गतिमवाप्नोति सङ्कोचाद् यामवाप्नुयात्॥७२॥

सभी वेदों का अध्ययन करके तथा सभी यज्ञों का अनुष्ठान करके भी उस गति को नहीं प्राप्त किया जा सकता जिसे कि वृत्ति के संकोच (आजीविका के साधनों को सीमित) करने से पाया जा सकता है॥७२॥

प्रतिग्रहरुचिर्न स्याद्यात्रार्थन्तु धनं हरेत्। स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥७३॥

प्रतिग्रह (दान लेने) में ब्राह्मण को आसक्ति (रुचि) नहीं रखनी चाहिए। केवल जीवन निर्वाह के लिए धन को ग्रहण करना चाहिए। जीवन-यापन हेतु अपेक्षित धन से अधिक धनग्रहण करने वाले ब्राह्मण की अधोगति होती है॥७३॥

यस्तु स्याद् याचको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम्। उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः॥७४॥

जो ब्राह्मण नित्य याचना करता रहता है, वह स्वर्ग का भागी नहीं होता। वह प्राणियों [जहाँ याचना करता है, उन गृहस्थों] को उद्विग्न कर देता है। वह चोर के समान होता है॥७४॥

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन् अर्चिष्यन्देवतातिथीन्। सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः॥७५॥

१. यज्ञांश्चावाप्य

गुरुजनों तथा भरण-पोषण योग्य पारिवारिक जनों के पालन-पोषण हेतु और देवताओं के पूजन तथा अतिथियों के सत्कार हेतु ब्राह्मण सभी से दान ले सकता है, किन्तु उस दान में प्राप्त अन्न-धन आदि से स्वयं अपने को तृप्त न करे॥७५॥

एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः। वर्तमानः संयतात्मा याति तत्परमं पदम्॥७६॥

इस प्रकार स्वधर्म में संलग्न संयत आत्मा वाला देवों तथा अतिथियों का पूजन करने वाला गृहस्थ परम पद को प्राप्त करता है॥७६॥

पुत्रे निधाय वा सर्वं गत्वारण्यन्तु तत्त्ववित्। एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीनः समाहितः॥७७॥

अथवा तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण पुत्र को कुटुम्ब का समग्र दायित्व सौंपकर विरक्त और इन्द्रिय संयमी होकर वन में जाकर एकाकी विचरण करे॥७७॥

एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः। ज्ञात्वाऽनुतिष्ठेत् नियतं तथानुष्ठापयेद् द्विजान्॥७८॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! मैंने आप लोगों को यह गृहस्थों का धर्म बतलाया है। इसे ज्ञात करके नित्य इसका पालन करना चाहिए तथा अन्य द्विजों से भी इसका पालन करवाना चाहिए॥७८॥

इति देवमनादिमेकमीशं गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम्।
समतीत्य स सर्वभूतयोनिं प्रकृतिं याति परं न याति जन्म॥७९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु दानधर्मनिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

इस प्रकार जो व्यक्ति गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए अनादि अद्वितीय देवेश्वर शिव की अनवरत उपासना करता है, वह समस्त प्राणियों की मूल कारण परा प्रकृति को पार कर परं पद को प्राप्त कर लेता है और तब उसका इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होता॥७९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के अन्तर्गत उत्तरार्ध में व्यासगीता में 'दानधर्मनिरूपण' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रमधर्माः

व्यास उवाच

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागमायुषः। वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् सदारः साग्निरेव वा॥१॥

व्यास जी ने कहा- अपनी आयु के द्वितीय भाग तक गृहस्थाश्रम में रहने के बाद [सद्गृहस्थ] अपनी पत्नी को साथ में ले जाकर तथा अग्नि को भी साथ ले जाकर वानप्रस्थ आश्रम में जावे॥१॥

निक्षिप्य भार्यां पुत्रेषु गच्छेद्वनमथापि वा। दृष्ट्वाऽपत्यस्य चापत्यं जर्जरीकृतविग्रहः॥ २॥

अथवा शरीर के जर्जर हो जाने पर तथा अपने पुत्र के पुत्र को देख लेने पर अपनी पत्नी को पुत्रों के संरक्षण में सौंप कर वन को जावे॥ २॥

शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ने प्रशस्ते चोत्तरायणे। गत्वारण्यं नियगवांस्तपः कुर्यात्समाहितः॥ ३॥

उत्तरायण में शुक्ल पक्ष के किसी प्रशस्त दिन के पूर्वाह्न में वन को जाकर वहाँ नियमानुसार एकाग्र मन से तपस्या करे॥ ३॥

फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत्। यथाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः॥ ४॥

वन में पवित्र फलों और कन्दमूल आदि को नित्य अपने आहार हेतु लावे और उसी से पितरों और देवों का पूजन करके संयमित भोजन करे॥ ४॥

पूजयित्वाऽतिथीन्नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत्सुरान्। गृहादादाय चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः॥ ५॥

स्नान करके नित्य देवों का पूजन और अतिथियों का सत्कार करने के बाद शान्त मन से घर से लाकर आठ गास भोजन करे॥ ५॥

जटां वै बिभृयान्नित्यं नखरोमाणि नोत्सृजेत्। स्वाध्यायं सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद्वाचमन्यतः॥ ६॥

वह नित्य जटाधारण करे तथा नख और रोम (मुख के बाल) न कटवाये। वह सदैव स्वाध्याय करता रहे। तथा अपनी वाणी में संयम रखे और निरर्थक वचन न बोले॥ ६॥

अग्निहोत्रञ्च जुहुयात् पञ्च यज्ञान् समाचरेत्। मुन्यन्नैर्विविधैर्वन्यैः शाकमूलफलेन च॥ ७॥

वह नित्यमेव अग्निहोत्र करे तथा मुनियों के लिए वन में सुलभ विविध प्रकार के अन्नों एवं शाक और मूल तथा फलों से पञ्चयज्ञों को करे॥ ७॥

चीरवासा भवेन्नित्यं स्नायात् त्रिषवणं शुचिः। सर्वभूतानुकम्पी स्यात् प्रतिग्रहविवर्जितः॥ ८॥

वह नित्य दिन में तीन बार (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) स्नान करे तथा वल्कल वस्त्र धारण करे। सभी प्राणियों पर दया करे तथा किसी से भी प्रतिग्रह (दान) न ले॥ ८॥

स दर्शपौर्णमासेन यजेत नियतं द्विजः। ऋक्षेष्वाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्॥ ९॥
उत्तरायणञ्च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च। वासन्तैः शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः॥ १०॥
पुरोडाशांश्चरुञ्चैव द्विविधं निर्वपेत्पृथक्। देवताभ्यश्च तद्हुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः।
शेषं समुपभुञ्जीत लवणञ्च स्वयं कृतम्॥ ११॥

उसको दर्श-पौर्णमास (अमावास्या तथा पूर्णिमा के दिन) नियत रूप से यज्ञ करना चाहिए तथा विशेष नक्षत्रों में यज्ञ एवं आग्रयण (अर्थात् नयी फसल के अन्न की इष्टि), चातुर्मास याग (?) एवं उत्तरायण तथा दक्षिणायन के दिन भी यज्ञ करना चाहिए। वसन्त ऋतु तथ शरद ऋतु में सुलभ और स्वयं लाये हुए मुनियों के अन्नों से पुरोडाश (चावलों को पीस कर बनाई गई आहुति) तथा चरु प्रस्तुत करके उनकी पवित्र हवि को पृथक्-पृथक् रूप से देवताओं के लिए होम करने के बाद शेष हवि को स्वयं नमक मिला कर भोजन रूप में ग्रहण करे॥ ९-११॥

वर्जयेन्मधुमांसानि भौमानि कवकानि च। भूस्तृणं शिग्रुकं चैव[१] श्लेष्मातकफलानि च॥ १२॥

मधु, मांस, भूमि में उत्पन्न कवक (कुकुरमुत्ता), भूस्तृण [शाक], शिग्रु (सहिजन) तथा श्लेष्मातक (लिसोड़ा) के फलों का भक्षण न करे॥ १२॥

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्। न ग्रामजातान्यार्तोऽपि पुष्पाणि च फलानि च॥ १३॥

हल से जोती हुई भूमि में उत्पन्न अन्न तथा दूसरों के द्वारा परित्यक्त खाद्य वस्तु का भी भक्षण न करे। संकट में होने पर भी गाँव में उत्पन्न फल-फूल आदि का भक्षण न करे॥ १३॥

श्रावणेनैव विधिना वह्निं परिचरेत्सदा। न द्रुह्येत्सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्॥ १४॥

श्रावण मास हेतु विहित विधि के अनुसार अग्नि की परिचर्या करे। किसी भी प्राणी से द्रोह न करे और सदा निर्द्वन्द्व (सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से रहित) और निर्भीक रहे॥ १४॥

न नक्तं किञ्चिदश्नीयात्[२] रात्रौ ध्यानपरो भवेत्। जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः॥ १५॥

रात में कुछ भी न खाये। रात में केवल [अपने आराध्य का] ध्यान करे। उसे जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसे क्रोध को जीतकर तत्त्वज्ञान का चिन्तन करना चाहिए॥ १५॥

ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत्। यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत्।
तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः॥ १६॥

वह सदैव ब्रह्मचारी रहे। पत्नी के साथ शारीरिक सम्पर्क न करे। जो व्यक्ति पत्नी के साथ वन में जाकर वहाँ कामातुर होकर उसके साथ संभोग करता है तो उसका वानप्रस्थ धर्म नष्ट हो जाता है और वह प्रायश्चित्त का भागी हो जाता है॥ १६॥

तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो द्विजातिभिः[३]। न च वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि॥ १७॥

वहाँ उस दम्पती से जिस सन्तान का जन्म होता है, वह द्विजातियों के लिए अस्पृश्य होता है और वह सन्तान वेदाध्ययन का अधिकारी नहीं होता तथा उसके वंश के लिए भी यही नियम लागू होता है॥ १७॥

अधः शयीत नियतं सावित्रीजपतत्परः। शरण्यः सर्वभूतानां संविभागरतः सदा॥ १८॥

वानप्रस्थाश्रमी नित्यभूमि पर शयन करे और सदा गायत्री मन्त्र के जप में लगा रहे। वह सभी प्राणियों को शरण प्रदान करे तथा उसे दानशील भी होना चाहिए॥ १८॥

परिवादं मृषावादं निद्राऽऽलस्यं विवर्जयेत्। एकाग्निरनिकेतः स्यात्प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत्॥ १९॥

वह परनिन्दा न करे, मिथ्या वचन न बोले तथा निद्रा और आलस्य को त्याग दे। वह केवल एक बार अग्नि प्रज्वलित करे, घर में नहीं रहे (गृहविहीन रहे) और जल से पवित्र की गयी भूमि पर ही निवास करे॥ १९॥

मृगैः सह चरेद्वापि तैः सहैव च संविशेत्। शिलायां शर्करायां वा शयीत सुसमाहितः॥ २०॥

१. शिशुकं चैव, २. न नक्तञ्चैवमश्नीयात्, ३. भवेद् द्विजः

अथवा वह मृगों के साथ विचरण करे और उनके साथ ही रहे। अथवा वह शिला के ऊपर या रेतीली धरती पर शान्त चित्त होकर शयन करे॥२०॥

सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयकोऽपि वा। षण्मासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव च॥२१॥

[वानप्रस्थ अपनी जीविका के साधन रूप में] या तो शीघ्र समाप्त होने वाले फल-मूल आदि का संग्रह करे या एक मास तक खाद्य सामग्री का संग्रह करने वाला या छः मास तक अथवा एक वर्ष तक के लिए फल-मूल आदि का संग्रहकर्ता हो सकता है॥२१॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि सम्पन्नं पूर्वसञ्चिन्तितम्। जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च॥२२॥

वानप्रस्थ को आश्विन मास में जो पूर्व-सञ्चित शाक, मूल, फल आदि पर्युषित हो गये हों उनको तथा जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को त्याग देना चाहिए॥२२॥

दन्तोलूखलिको वा स्यात्कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत्। अश्मकुट्टो भवेद्वापि कालपक्वभुगेव वा॥२३॥

कोई वानप्रस्थ दाँतों को ही ओखली के समान [फल मूल को काटकर खाने के लिए] प्रयोग कर सकता है। कोई कबूतर के समान वृत्ति वाला [दाना चुग कर खाने वाला] तो कोई पत्थर से कूट कर अन्न या फल-मूल आदि को खाने वाला तथा कोई समयानुसार पके हुए फल-मूल आदि को खाने वाला होता है॥२३॥

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा चाहृत्य शक्तितः। चतुर्थकालिको वा स्यात् स्याद् वा चाष्टमकालिकः॥२४॥

दिन में यथाशक्ति अन्न (या फल-मूल) को लाकर उसको रात में खाना चाहिए। अथवा उसे चौथे काल में (चौथे पहर में) या आठवें काल में (आठवें पहर में) खाना चाहिये॥२४॥

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत्। पक्षे पक्षे समश्नीयाद् यवागूं[1] क्वथितान् सकृत्॥२५॥

अथवा शुक्ल पक्ष में और कृष्ण पक्ष में चान्द्रायण व्रत की विधि का पालन करते हुए शुक्ल और कृष्ण पक्ष में उसी क्रम के अनुसार भोजन करे [चान्द्रायण[2] व्रत में पूर्णिमा के दिन पन्द्रह गास खाकर अग्रिम तिथियों में क्रमशः एक-एक गास कम खाया जाता है और अमावस्या को निराहार रहना होता है और तदनन्तर शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा आदि तिथियों में क्रमशः एक गास, दो गास आदि क्रमशः बढ़ाते हुए पूर्णिमा को पूरे पन्द्रह गास खाये जाते हैं] इस व्रत को करने वाला प्रत्येक गास में उबले हुए यवागू (जौ आदि किसी सात्विक अन्न की कांजी) का ही भक्षण करे॥२५॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा। स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः॥२६॥

अथवा वैखानस (वानप्रस्थ) के लिए विहित नियम का पालन करते हुए स्वाभाविक रूप से गिरे पड़े पुष्पों, कन्द-मूल और फलों को खाकर जीवन यापन करे॥२६॥

भूमौ वा परिवर्तेत तिष्ठेद् वा प्रपदैर्दिनम्। स्थानासनाभ्यां विहरेत् न क्वचिद्धैर्यमुत्सृजेत्॥२७॥

वह भूमि पर लेट कर करवट बदलता रहे अथवा पंजों के बल पर उठना बैठना और चलना-फिरना करे और कभी भी धैर्य को न छोड़े॥२७॥

१. द्विजाग्रान्, २. द्रष्टव्य धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ३, पृ. १०८४

ग्रीष्मे पञ्चतपा सःस्यात् वर्षास्वभ्रावकाशकः। आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः॥ २८॥

वह ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तप करे (अर्थात् धूप में बैठकर अपने चारों ओर आग जलाकर बैठ कर तप करे) एवं वर्षा ऋतु में वर्षा करते हुए बादलों के नीचे रहे तथा हेमन्त ऋतु में गीले वस्त्र धारण करके क्रमशः अपने तपोबल की वृद्धि करता रहे॥ २८॥

उपस्पृश्य त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत्। एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन् वा पिबेत् तदा॥ २९॥

दिन में तीन बार (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) स्नान एवं आचमन करके तथा पितरों का तर्पण एवं देवों का पूजन करे। वह एक पैर से खड़ा रहे तथा सूर्य की किरणों का पान करे (धूप में रहे)॥ २९॥

पञ्चाग्निर्धूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽथवा। पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च गोमयम्॥ ३०॥

वह पञ्चाग्नि तप करे या धूम्रपान करे या उष्मा (सूर्य के ताप) का पान करे अर्थात् ग्रीष्मकाल में धूप में रहे शीतकाल में सोमपान करे (चन्द्रमा की किरणों को देखता रहे)। शुक्ल पक्ष में दुग्ध पान और कृष्ण पक्ष में गोमय का सेवन करे॥ ३०॥

शीर्णपर्णाशनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा। योगाभ्यासरतश्चैव रुद्राध्यायी भवेत्सदा॥ ३१॥

वह वृक्ष के गिरे हुए पत्तों को भोजन रूप में ग्रहण करे अथवा सदैव कृच्छ्र व्रत करता रहे। वह सदा योगाभ्यास तथा रुद्राध्याय का पाठ करता रहे॥ ३१॥

अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः। यमान् सेवेत सततं नियमांश्चाप्यतन्द्रितः॥ ३२॥

वह अथर्वशीर्षोपनिषत् एवं वेदान्त के अध्ययन-पारायण में संलग्न रहे। सदैव जागरूक रहकर यमों और निमयों का पालन करे॥ ३२॥

कृष्णाजिनी सोत्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान्। अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः॥ ३३॥

वह कृष्णमृग के अजिन को तथा उत्तरीय वस्त्र और शुक्लवर्ण के यज्ञोपवीत को धारण करे और गृह्याग्नि को अपनी आत्मा में प्रतिष्ठापित करके सदैव परमात्मा के ध्यान में तत्पर रहे॥ ३३॥

अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत्। तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत्॥ ३४॥

अग्नि का तथा गृह का त्याग करके वह मुनिव्रत का पालन करते हुए मोक्ष-लाभ का यत्न करे। जीवन यात्रा (अर्थात् जीवन-यापन) हेतु तपस्वी ब्राह्मणों के घरों से ही भिक्षा लाया करे॥ ३४॥

गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु। ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन्।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना करकेन[1] वा॥ ३५॥

वन में रहते हुए सज्जन गृहस्थों तथा अन्य वनवासी ब्राह्मणों से अथवा गाँव के सद्गृहस्थों से पत्र-पुट (दोने) में या करक (मिट्टी का पात्र) में या हाथ में भिक्षा लेकर केवल आठ गास ही खाया करे॥ ३५॥

विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत्। विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च॥ ३६॥

---

१. शकलेन

आत्म-सिद्धि हेतु वह विविध उपनिषदों का अभ्यास करे। वह अनेक विशिष्ट विद्याओं का अध्ययन, रुद्राध्यायी का पाठ तथा गायत्री मन्त्र का जप करे॥३६॥

महाप्रास्थानिकं वासौ कुर्यादनशनन्तु वा। अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः॥३७॥

अथवा स्वयं को ब्रह्म में अर्पित करने के उद्देश्य से महाप्रस्थान या अनशन या अग्निप्रवेश या अन्य कृत्य (पर्वत से कूदना आदि) करे॥३७॥

ये तु सम्यगिममाश्रमं शिवं संश्रयन्त्यशिवपुञ्जनाशनम्।
[1]तापसाः परमैश्वरं पदं तं यान्ति यत्र जगतोऽस्य संस्थितिः॥३८॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्धे व्यासगीतासु वानप्रस्थाश्रमधर्मो नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

जो मनुष्य समस्त अमंगलों का प्रशमन करने वाले इस कल्याणारी वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं, वे परमेश्वर के उस परम स्थान को प्राप्त करते हैं, जिसमें यह जगत् स्थित है॥३८॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता में 'वानप्रस्थ-धर्म' नागक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥२७॥

❖❖❖

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

यतिधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः। चतुर्थमायुषो भागं संन्यासेन नयेत् क्रमात्॥१॥

व्यास जी बोले- इस प्रकार अपनी आयु के तीसरे भाग को वानप्रस्थ आश्रम में बिता कर क्रमानुसार अपनी आयु के चौथे भाग को संन्यास लेकर व्यतीत करे॥१॥

अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत्। योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः॥२॥

पूर्वाश्रम में स्थापित अग्नियों को अपने आत्मा में स्थापित करके ही द्विज को संन्यास ग्रहण करना चाहिए। [संन्यासाश्रम में जाकर] उसे योगाभ्यास में निरत, शान्त और ब्रह्मविद्या (वेदान्त) के अध्ययन में निरत रहना चाहिए॥२॥

यदा मनसि सञ्जातं वैतृष्णयं सर्ववस्तुषु। तदा संन्यासमिच्छेत् सः पतितः स्याद्विपर्यये॥३॥

जब मन में सभी वस्तुओं के प्रति तृष्णा समाप्त हो जाय तभी संन्यास लेने की इच्छा करे। इसके विपरीत (अर्थात् यदि तृष्णा बनी रहे तब) संन्यास लेने वाले का पतन हो जाता है॥३॥

१. ते विशन्ति पदमैश्वरं पदं यान्ति यत्र गतमस्य संस्थितेः।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः। दान्तः पक्वकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्॥४॥

प्राजापत्य इष्टि अथवा आग्नेयी इष्टि को सम्पन्न करके संयतेन्द्रिय और पूर्ण वैराग्ययुक्त होने पर ही द्विज को ब्रह्माश्रम (अर्थात् संन्यास आश्रम) में जाना चाहिए॥४॥

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्वेदसंन्यासिनः परे। कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः[1] परिकीर्तिताः॥५॥

संन्यासी तीन प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ ज्ञानसंन्यासी तो कुछ वेदसंन्यासी तथा कुछ कर्मसंन्यासी होते हैं॥५॥

यः सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः। प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थितः॥६॥

जो सभी आसक्तियों से मुक्त, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित तथा निर्भय और आत्मा में ही रमण करने वाला अर्थात् परमात्म चिन्तन में लीन हो उसे ज्ञानसंन्यासी कहते हैं॥६॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः। प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः॥७॥

जो नित्य वेद आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय में संलग्न तथा द्वन्द्वरहित हो और अपने पास कुछ भी संग्रह करके नहीं रखता हो उस जितेन्द्रिय मोक्षार्थी को वेदसंन्यासी कहते हैं॥७॥

यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः। स ज्ञेयः कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः॥८॥

जो तीनों अग्नियों को आत्मसात् अर्थात् अपने आत्मा में भावना से अन्तर्लीन करके अपने सभी शुभ कृत्यों को ब्रह्म को अर्पित करता हो और ब्रह्मचिन्तन रूपी महायज्ञ के अनुष्ठान में निरत हो उसे कर्मसंन्यासी समझना चाहिए॥८॥

त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानी त्वभ्यधिको मतः। न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विपश्चितः॥९॥

इन तीन प्रकार के संन्यासियों में से ज्ञानी अर्थात् ज्ञान-संन्यासी को सर्वाधिक श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि उस विद्वान् का न तो कोई कार्य शेष रहता है और न कोई प्रतीक चिह्न ही शेष रहता है॥९॥

निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः। जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः॥१०॥

संन्यासी को ममता रहित, निर्भीक, शान्त, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित, अपरिग्रही (सञ्चय की प्रवृत्ति से रहित) होना चाहिए। उसे जीर्ण कौपीन को पहनना चाहिए अथवा वह नग्न भी रह सकता है। उसे सदैव ईश्वर के ध्यान में लगे रहना चाहिए॥१०॥

ब्रह्मचारी मिताहारो ग्रामादन्नं समाहरेत्। अध्यात्ममतिरासीत निरपेक्षो निरामिषः॥११॥

वह सदा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, स्वल्प आहार ले, ग्राम से अन्न को भिक्षा रूप में मांग कर लाये। अपनी बुद्धि को अध्यात्म चिन्तन में लगावे तथा सदैव निरपेक्ष (कामना-रहित) तथा निरामिष रहे॥११॥

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह। नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्॥१२॥

स्वयं अपने आत्मा को अपना सहायक बनाकर (एकाकी रहकर) सुखपूर्वक विचरण करे तथा जीवन या मरण का भी अभिनन्दन न करे अर्थात् तटस्थ रहे॥१२॥

१. विविधाः

कालमेव प्रतीक्षेय निदेशम्भृतको यथा। नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन। एवं ज्ञात्वा परो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते॥१३॥

जिस प्रकार भृत्य अपने स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा करता है तद्वत वह अपने अन्त काल की प्रतीक्षा करे। उसे न तो अध्ययन करना चाहिए, न प्रवचन करना चाहिए, न कुछ श्रवण करना (सुनना) चाहिए। ऐसा जान कर वह परमोत्तम योगी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥१३॥

एकवासाथवा विद्वान् कौपीनाच्छादनस्तथा। मुण्डी शिखी वाथ भवेत् त्रिदण्डी निष्परिग्रहः। काषायवासाः सततं ध्यानयोगपरायणः॥१४॥

विद्वान् संन्यासी [कौपीन सहित] एक वस्त्र को धारण करे अथवा केवल कौपीन को धारण करे। वह या तो शिर का मुण्डन कराते रहे अथवा जटा धारण करे तथा त्रिदण्ड[1] (एक दण्ड में बँधे दो छोटे डण्डों) को धारण करे और कुछ भी परिग्रह (संचय) न करे। वह सदा काषाय वस्त्र धारण करे और ध्यान योग करता रहे॥१४॥

ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपि वा। समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः॥१५॥

वह गाँव की अन्तिम सीमा में किसी वृक्ष के नीचे अथवा देवालय में निवास करे। मान-अपमान एवं शत्रु और मित्र में समान भाव रखे॥१५॥

भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यन्नैकान्नादी भवेत्क्वचित्। यस्तु मोहेन वाऽऽलस्यादेकान्नादी भवेद्यतिः। न तस्य निष्कृतिः काचिद् धर्मशास्त्रेषु कथ्यते॥१६॥

वह सदैव भिक्षाटन करके भोजन करे और नित्य किसी एक ही गृहस्थ के घर का अन्न ग्रहण न करे। जो संन्यासी मोहवश या आलस्यवश किसी एक गृहस्थ के घर का अन्न खाता है, उसके लिए कोई भी प्रायश्चित्त धर्मशास्त्रों में नहीं विहित है॥१६॥

रागद्वेषविमुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः। प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात्सर्वनिःस्पृहः॥१७॥

संन्यासी को राग-द्वेष से रहित, मिट्टी-पत्थर और सोना आदि को समान भाव से देखने वाला तथा प्राणियों की हिंसा नहीं करने वाला, मौन धारण करने वाला तथा सभी वस्तुओं के प्रति आसक्ति से रहित होना चाहिए॥१७॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। शास्त्रपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत्॥१८॥

संन्यासी को भूमि को अच्छी तरह देखकर शुद्ध स्थान पर पैर रखकर चलना चाहिए, वस्त्र से छान कर जल पीना चाहिए, शास्त्र-सम्मत सत्य वचन बोलने चाहिए तथा जो मन को धर्मसम्मत लगे वही कर्म करना चाहिए॥१८॥

नैकत्र निवसेद्देशे वर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः। स्नानशौचरतो नित्यं कमण्डलुकरः शुचिः॥१९॥

उसको वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में कभी भी किसी एक स्थान में नहीं रहना चाहिए। वह नित्य स्नान करे, सदा शौच परायण (शुद्ध) रहे तथा हाथ में कमण्डलु धारण करे और पवित्र रहे॥१९॥

१. द्रष्टव्य- वाग्दडोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च। यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते॥ मनु १२/१०

ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत्। मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥२०॥
दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः। आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्॥२१॥

वह नित्य ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करे और वन में निवास करे। वह मोक्ष का मार्ग बतलाने वाले शास्त्रों का अध्ययन करे तथा ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय (इन्द्रियों में संयम रखने वाला) रहे तथा दम्भ (पाखण्ड) और अहंकार न करे, पर-निन्दा और पैशुन्य (चुगली) करने से बचे। उसे आत्मज्ञान कराने वाले गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। ऐसा संन्यासी मोक्ष प्राप्त करता है॥२०-२१॥

अभ्यसेत् सततं वेदं प्रणवाख्यं सनातनम्। स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु॥२२॥

संन्यासी को प्रतिदिन स्नान और आचमन करके देवालय आदि में जाकर निरन्तर यथाविधि वेद का अध्ययन और सनातन प्रणव (ओङ्कार) का जप करना चाहिए॥२२॥

यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः। धौतकाषायवसनो भस्मच्छन्नतनूरुहः॥२३॥
अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव वा। आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्॥२४॥

वह यज्ञोपवीत धारण करे तथा शान्त मन और एकाग्र भाव वाला होकर, अपने हाथ में कुश ग्रहण कर एवं धुले हुए काषाय (गेरुए) वस्त्र धारण कर तथा शरीर में भस्म-लेपन करके वेदान्त-प्रतिपादित अधियज्ञ (यज्ञ-सम्बन्धी) वेद वचनों तथा आधिदैविक (देवता-सम्बन्धी) एवं आध्यात्मिक (आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी) वेद-मन्त्रों तथा वेदान्त के वचनों का जप करे[1]॥२३-२४॥

पुत्रेषु वाथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः। वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम्॥२५॥

अथवा अपने पुत्रों के साथ [उनके कुटुम्ब में] निवास करते हुए वह संन्यासी मुनि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए नित्य वेद का ही अध्ययन करते रहने पर परम गति को प्राप्त करता है॥२५॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तपः परम्। क्षमा दया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः॥२६॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य का पालन, परम उत्कट तप, क्षमा, दया और सन्तोष ये सभी संन्यासी के द्वारा पालनीय विशेष व्रत है॥ ।२६॥

वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्चयज्ञान् समाहितः। कुर्यादहरहश्चैव भिक्षान्नेनैव तेन हि[2]॥२७॥

अथवा वेदान्त ज्ञान में निष्णात संन्यासी प्रतिदिन एकाग्र मन से भिक्षा में प्राप्त अन्न से ही पञ्चयज्ञों को संपादित करे॥२७॥

होममन्त्रान्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः। स्वाध्यायञ्चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत्॥२८॥

वह प्रतिदिन यथासमय एकाग्र मन से होममन्त्रों का जप, स्वाध्याय का अध्ययन करे तथा प्रातःकाल एवं सायंकाल दोनों सन्ध्याओं के समय गायत्री मन्त्र का जप करे॥२८॥

ध्यायीत सततं देवमेकान्ते परमेश्वरम्। एकान्ते वर्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥२९॥

---

१. द्रष्टव्य- अधियज्ञं ब्रह्मजपेदाधिदैविकमेव च। आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्॥ मनुस्मृति ६/८३

२. ज्ञानध्यानसमायुक्तो भिक्षार्थेनैव तेन हि

तदनन्तर वह एकान्त में निरन्तर देव परमात्मा का ध्यान करे। वह एकान्त में काम और क्रोध के भावों को त्याग दे तथा धन-वैभव आदि को ग्रहण न करे॥२९॥

एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान्। कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम्॥३०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्धे व्यासगीतासु यतिधर्मेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

एकवस्त्र धारण करने वाला या दो वस्त्र धारण करने वाला, शिखा और यज्ञोपवीत धारण करने वाला, हाथ में कमण्डलु धारण करने वाला त्रिदण्डी विद्वान् संन्यासी परम पद को प्राप्त करता है॥३०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के अन्तर्गत 'यतिधर्म' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

यतिधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं स्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम्। भैक्ष्येण वर्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापि वा॥१॥

व्यास जी बोले- इस प्रकार निष्ठापूर्वक और संयम का पालन करते हुए अपने आश्रम में रहने वाले संन्यासियों के लिए भिक्षा में प्राप्त भोजन या फलों या कन्दमूल पर निर्भर रहकर जीवन-यापन विहित किया गया है॥१॥

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे। भैक्ष्यप्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति॥२॥

संन्यासी दिन में केवल एक बार भिक्षाटन करे। अधिक भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए। अधिक भिक्षाटन में आसक्त संन्यासी विषय-वासना में आसक्त हो जाता है॥२॥

सप्तागारांश्चरेद्भैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत्। प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीयादद्भिः प्रक्षालयेत्पुनः॥३॥

संन्यासी को भिक्षा मांगने के लिए सात घरों में जाना चाहिए। वहाँ भिक्षा नहीं मिलने पर पुनः अन्य घरों में भिक्षाटन हेतु जाना चाहिए। भिक्षा-पात्र को धोकर ही उसमें भिक्षा माँगकर खावे और खाने के बाद उस भिक्षापात्र को पुनः धो देना चाहिए॥३॥

अथवाऽन्यदुपादाय पात्रे भुञ्जीत नित्यशः। भुक्त्वा तत्संमृजेत्पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः॥४॥

अथवा लोभ-रहित संन्यासी जीवनयापन हेतु नित्य अन्य पात्र को लाकर उसमें भिक्षान्न का भोजन करे और भोजन के पश्चात् उस पात्र को त्याग दे॥४॥

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने। वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्॥५॥

जब गृहस्थों के घर से [चूल्हे की आग बुझने पर] धुँआ निकलना बन्द हो जाय, ओखली में (अनाज कूटने वाले) मुसल की ध्वनि रुक जाय और सभी जन जब भोजन कर चुके हों और जूठे कसोरे तथा पत्ते या पात्र घरों के बाहर रखे जा चुके हों तब संन्यासी को भिक्षाटन हेतु जाना चाहिए॥५॥

गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः। भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद्वाग्यतः शुचिः॥६॥
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च समाचम्य यथाविधि। आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखः शुचिः॥७॥
हुत्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः। आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम्॥८॥

एक बार 'भिक्षा' शब्द बोल कर संन्यासी घर के बाहर नीचे की ओर मुख झुकाकर और मौन होकर जितना समय गाय को दुहने में लगता है, उतने समय तक प्रतीक्षा करे और भिक्षा प्राप्त होने पर उसे ले जाकर शुद्ध मन से और मौन रह कर उसे सूर्य को दिखाने बाद पूर्वाभिमुख होकर ग्रहण करे। भोजन ग्रहण करते समय आचमन करके और अन्न को सूर्य को दिखाकर एकाग्र मन से पाँच गास पाँच प्राणों के निमित्त आहुति रूप में (प्राणाय स्वाहा, अपान स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा कहते हुए) समर्पित करने के बाद आठ गास खाकर आचमन करके परमेश्वर देव ब्रह्मा का ध्यान करे॥६-८॥

अलाबुं दारुपात्रं च मृण्मयं वैणवं ततः। चत्वार्येतानि पात्राणि मनुराह प्रजापतिः॥९॥

प्रजापति मनु ने संन्यासी के लिए [भोजन पात्र रूप में] लौकी के या लकड़ी अथवा मिट्टी या बाँस के बने हुए चार प्रकार के भिक्षा पात्र (भोजन पात्र) बतलाये हैं॥९॥

प्रागूरात्रे पररात्रे च मध्यरात्रे तथैव च। सन्ध्यास्वह्नि विशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरम्॥१०॥

संन्यासी को रात्रि के प्रथम पहर तथा अन्तिम पहर एवं मध्यरात्रि और दोनों सन्ध्याओं के समय एवं विशेषतः दिन में भी नित्य ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए॥१०॥

कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वेशं[1] विश्वसम्भवम्। आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसः स्थितम्॥११॥
सर्वस्याधारमव्यक्त[2]-मानन्दं ज्योतिरव्ययम्। प्रधानपुरुषातीतमाकाशं दहनं[3] शिवम्॥१२॥

वह अपने हृदय-कमल रूपी घर में विश्व के जनक और विश्व के स्वामी, सभी प्राणियों के आत्मा-स्वरूप, तमोगुण से रहित, सबके आश्रय (आधार) स्वरूप, अव्यक्त, आनन्दमय, अविनाशी, ज्योति-स्वरूप, प्रकृति और पुरुष से परे, आकाश रूप तथा अग्नि रूप शिव का ध्यान करे॥११-१२॥

तदन्तः सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम्। ध्यायेदनादिमध्यान्तमानन्दादिगुणालयम्॥१३॥

उसके अन्दर समस्त जड़-चेतन जीवों के स्वामी ब्रह्मरूपी ईश्वर का ध्यान करे जो कि आदि मध्य और अन्त से रहित है तथा आनन्दादि गुणों का आश्रय अर्थात् आनन्दादि गुणों से युक्त है॥१३॥

महान्तं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्माणं सत्यमव्ययम्। तरुणादित्यसङ्काशं महेशं विश्वरूपिणम्॥१४॥
ओङ्कारेणाथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि। आकाशे देवमीशानं ध्यायीताकाशमध्यगम्॥१५॥

१. विश्वाख्यं, २. सर्वस्याधारभूतानामानन्दं, ३. कुहरं

उस महानतम, परम पुरुष परम सत्य रूप अविनाशी ब्रह्म को जो कि मध्याह्नकालीन सूर्य के समान दीप्तिमान है और जो विश्वस्वरूप वाले महेश्वर हैं, उन परमात्मा में ओङ्कार का उच्चारण करते हुए अपने आत्मा को उन परमात्मा में स्थापित अर्थात् तद्रूप करते हुए आकाश के मध्य में स्थित उन देव ईशान शिव का (आकाश की ओर देखते हुए) उस आकाश में ध्यान करे॥१४-१५॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्। पुराणं पुरुषं शुभ्रं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात्॥१६॥

सभी भावों के कारण-स्वरूप और आनन्द के एकमात्र आश्रय पुराण पुरुष भगवान् शिव का ध्यान करने वाला संन्यासी बन्धन से मुक्त हो जाता है॥१६॥

यद्वा गुहायां प्रकृतौ जगत्सम्मोहनालये। विचिन्तयेत्[1] परमं व्योम सर्वभूतैककारणम्॥१७॥

अथवा संसार को सम्मोहित करने वाली प्रकृति रूपी गुफा में समस्त प्राणियों के आविर्भाव का जो मूलकारण परम व्योम है, उसका चिन्तन यति को करना चाहिए॥१७॥

जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते। आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः॥१८॥

जो सभी प्राणियों के जीवन का स्रोत है तथा जिसमें [प्रलय होने पर] समस्त संसार विलीन हो जाता है, उस सूक्ष्म ब्रह्म के आनन्द का दर्शन (अर्थात् अनुभव) मोक्षार्थी यति-जन ही कर पाते हैं॥१८॥

तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्। अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संयतः॥१९॥

संयत मन वाले संन्यासी को परम व्योम के मध्य में स्थित ज्ञान लक्षण वाले (अर्थात् ज्ञान-स्वरूप), अनन्त एवं सत्य संज्ञक ईशान (शिव) का चिन्तन करना चाहिए॥१९॥

गुह्याद् गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्। योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम्॥२०॥

संन्यासियों के लिए यह अत्यन्त गोपनीय ज्ञान मैंने कहा है। जो संन्यासी अपने लिए विहित इस ज्ञान के अनुसार आचरण करता है, वह महेश्वर शिव के सान्निध्य में ईश्वरीय योग को प्राप्त करता है॥२०॥

तस्माद्ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः। ज्ञानं समभ्यसेद् ब्राह्मं येन मुच्येत बन्धनात्॥२१॥

अतः संन्यासी नित्य ध्यान में संलग्न रहे, आत्म-विद्या के चिन्तन-मनन में निरत रहते हुए ब्रह्म-विषयक ज्ञान का अध्ययन-चिन्तन करता रहे। उससे वह [जन्म-मरण के] बन्धन से मुक्त हो सकता है॥२१॥

मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम्। आनन्दमजरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः परम्॥२२॥

अपने आत्मा को सम्पूर्ण जगत्-प्रपञ्च से पृथक् और अद्वितीय, आनन्दमय अजर-अमर और ज्ञान स्वरूप होने के विषय में पुनः पुनः चिन्तन करना चाहिए॥२२॥

यस्माद्भवन्ति भूतानि यद्गत्वा नेह जायते। स तस्मादीश्वरो देवः परस्ताद् योऽधितिष्ठति॥२३॥

जिस परम सत्ता परमेश्वर से सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिसे प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता वही देव ईश्वर हैं, वह नश्वर जगत् से परे हैं। वह सब के अधिष्ठाता हैं॥२३॥

यदन्तरे तद्गगनं शाश्वतं शिवमुच्यते। यदाहुस्तत्परो यः स्यात्स देवस्तु महेश्वरः॥२४॥

१. विचिन्त्य

जिस परम सत्ता के अन्तर्गत सनातन आकाश और शिव (कल्याणकारी) परमात्मा स्थित हैं तथा जो सबसे परे कहे गये हैं, वही देव महेश्वर हैं॥२४॥

व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च। एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते॥२५॥

संन्यासियों के लिए जो व्रत और उपव्रत बतलाये गये है, उनमें से किसी एक का भी अतिक्रमण (उल्लंघन) करने पर उनको प्रायश्चित्त करना पड़ता है॥२५॥

उपेत्य तु स्त्रियं कामात्कृच्छ्रँ संयतमानसः। प्राणायामसमायुक्तः कुर्यात्सान्तपनं शुचिः॥२६॥

कामातुर होकर जो संन्यासी किसी स्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध बनाता है तो उसे शुद्ध होकर प्राणायाम करके संयमित मन से प्रायश्चित्त रूप में कृच्छ्र-सान्तपन करना चाहिए॥२६॥

ततश्चरेत नियमात् कृच्छ्रं संयतमानसः। पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः॥२७॥

तदनन्तर वह संन्यासी अपने आश्रम में आकर शुद्ध मन से और तन्द्रारहित (सावधान) होकर नियमानुसार पुनः कृच्छ्र व्रत करे॥२७॥

न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः। तथापि च न कर्तव्यं प्रसङ्गो ह्येष दारुणः॥२८॥

कुछ विद्वानों ने कहा है कि धर्मानुकूल (धर्म की रक्षा हेतु) बोले गये अनृत से कोई हानि नहीं होती। तथापि अनृत (झूठ) नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि ऐसा करना दारुण कर्म है॥२८॥

एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा। उक्त्वाऽनृतं प्रकर्तव्य यतिना धर्मलिप्सुना[1]॥२९॥

धर्म-कामना वाले संन्यासी को चाहिए कि वह अनृत बोलने के प्रायश्चित्त रूप में एक रात्रि का उपवास तथा एक सौ प्राणायाम करे॥२९॥

परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः। स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः।
हिंसा चैवापरा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका॥३०॥

अत्यन्त विपत्ति की स्थिति में भी अन्य व्यक्ति की किसी वस्तु की चोरी नहीं करनी चाहिए। चोरी से बड़ा अन्य कोई अधर्म नहीं है, ऐसा स्मृति का वचन है। इसी प्रकार हिंसा करना भी परम अपराध है हिंसा की प्रवृत्ति हिसंक व्यक्ति के आत्मज्ञान अर्थात् सदसत् विवेक का विनाश कर देती है॥३०॥

यदेतद् द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम्॥३१॥

यह धन नामक जो वस्तु है, वह मनुष्य का [शरीर के] बाहर विद्यमान प्राण ही है जो मनुष्य किसी के धन का अपहरण करता है, वह मानो उसके प्राणों का ही हरण करता है॥३१॥

एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताहतः। भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥३२॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः। भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः॥३३॥

ऐसा करने वाला वह दुष्टात्मा और दुराचारी सदाचार और अपने व्रत-नियम से च्युत हो जाता है। अतः उसे पुनः निर्वेद (पश्चात्ताप) करते हुए शास्त्र-विहित विधि के अनुसार एक वर्ष तक चान्द्रायण व्रत

१. कर्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना वरमव्ययम्

करना चाहिए और तदनन्तर भी पश्चात्ताप करते हुए जागरूक रहते हुए अपने आश्रम धर्म का पालन करना चाहिए॥३२-३३॥

अकस्मादेव हिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत्। कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा॥३४॥

यदि संन्यासी से अकस्मात् हिंसा हो जाय तो वह प्राश्यश्चित्त हेतु कृच्छ्रातिकृच्छ्र या चान्द्रायण व्रत करे॥३४॥

स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि। तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश।
दिवा स्कन्ने त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतं तथा॥३५॥

यदि कोई संन्यासी जननेन्द्रिय की शिथिलता के कारण किसी स्त्री को देखकर स्खलित हो जाय तो उसको सोलह बार प्राणायाम करना चाहिए। यदि वह दिन में ही स्खलित हो जाता है तो उसे तीन रात तक उपवास एवं एक सौ बार प्राणायाम करना चाहिए॥३५॥

एकान्ने मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च। प्रत्यक्षलवणे प्रोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम्॥३६॥

यदि संन्यासी अनेक बार केवल एक ही घर का अन्न खाता है या मधु या मांस खाता है या नव श्राद्ध का अन्न खाता है या केवल नमक को ही खा लेता है तो प्राजापत्य व्रत करने से वह शुद्ध होता है॥३६॥

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम्। तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत्॥३७॥

निरन्तर ध्यान करते रहने पर सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः महेश्वर शिव को ज्ञात करके निरन्तर उनका ध्यान करना चाहिए॥३७॥

यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम्। योऽन्तराऽत्र परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः॥३८॥

जो परम ब्रह्म परम ज्योति स्वरूप, सर्वत्र प्रतिष्ठित (व्याप्त) अक्षर (अविनाशी) एवं अविकारी है और जो परं ब्रह्म सम्पूर्ण जीव-जगत् के अन्दर विद्यमान है, उसको ही महेश्वर शिव समझना चाहिए॥३८॥

एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः। तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम्॥३९॥

यह अद्वितीय देव महोदव परम शिव (कल्याणकारी) हैं। वह अक्षर (अविनाशी), अद्वैत (अद्वितीय), और सूर्य मण्डल के अन्दर विद्यमान परमेश्वर हैं॥३९॥

यस्मान्महीयसो देवः स्वधाम्निज्ञानसंज्ञिते। आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः॥४०॥

वह शिव आत्मयोग संज्ञक तत्व से सम्पन्न, ज्ञान रूपी तेज से युक्त और सभी देवों में महानतम (महीयस) हैं, अतः उनको महादेव कहा जाता है॥४०॥

नान्यं देवं महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति। तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परमं पदम्॥४१॥

जो संन्यासी महादेव के अतिरिक्त किसी भी दूसरे देव को नहीं देखता (नहीं जानता) और उन्हीं को आत्मा-परमात्मा मानता है, वह परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है॥४१॥

मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्। न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः॥४२॥

जो स्वयं अपने आत्मा को उन परमेश्वर से भिन्न समझते हैं, वे उन देवेश्वर शिव का दर्शन नहीं प्राप्त कर सकते। उनका परिश्रम [तप, ध्यान आदि] व्यर्थ होता है॥४२॥

एकमेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम्। स देवस्तु महादेवो नैतद् विज्ञाय बध्यते॥४३॥

एकमात्र परम ब्रह्म ही अविकारी (अविनाशी) तत्व है और वही देवाधिदेव महादेव हैं। इस तथ्य को जानकर (संन्यासी) बन्धन में नहीं पड़ता॥४३॥

तस्माद्यजेत नियतं यतिः संयतमानसः। ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः॥४४॥

अतः संन्यासी को एकाग्र मन से और शान्त होकर नियमित रूप से ज्ञान-योग का आश्रय लेकर महादेव [की भक्ति में] तल्लीन हो जाना चाहिए॥४४॥

एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः। पितामहेन विभुना मुनीनां पूर्वमीरितम्॥४५॥

हे ब्राह्मणो! पूर्वकाल में पितामह ब्रह्मा ने संन्यासियों के आश्रम विषयक जो शुभ उपदेश दिया था, वह मैंने आप लोगों को बतला दिया है॥४५॥

नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम्। ज्ञानं स्वयंभुवा प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम्॥४६॥

स्वयंभू ब्रह्मा के द्वारा संन्यासियों के धर्म से सम्बन्धित जो यह उपदेश दिया था, उसे अपने पुत्र या शिष्य या योगी (संन्यासी) जनों के अतिरिक्त अन्य किसी को न कहे॥४६॥

इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं पशुपतिपरितोषे यद्भवेदकहेतुः।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः प्रणिहितमनसो ये नित्यमेवाचरन्ति॥४७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्धे व्यासगीतासु यतिधर्मो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

इस प्रकार संन्यासियों के नियमों का यह विधान कहा है। यह भगवान् शिव को तुष्ट (प्रसन्न) करने का एक मात्र उपाय है। जो व्यक्ति समर्पित मन से इस उपदेश का नित्य पालन करते हैं, उनका पुनर्जन्म और मरण नहीं होता॥४७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में व्यासगीता के वर्णन-प्रसंग में 'यतिधर्म' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥२९॥

❖❖❖

अथ त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्महत्या प्रायश्चित्तविधिः

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्। हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये॥१॥

व्यास जी बोले- अब मैं सभी ब्राह्मणों के हित में दोषों (पापों) के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए प्रायश्चित्त की शुभ विधि बतलाता हूँ॥१॥

अकृत्वा विहितं कर्म कृत्वा निन्दितमेव च। दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम्॥ २॥

विहित कर्म नहीं करने और निन्दित या वर्जित कर्म करने से मनुष्य को दोष लगता है और उस की शुद्धि केवल प्रायश्चित्त करने से ही होती है॥ २॥

प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मणः क्वचित्। यद् ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत् समाचरेत्॥ ३॥

ब्राह्मण अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त किये बिना न रहे। [निषिद्ध कृत्य करने वाला ब्राह्मण अपने पाप के प्रायश्चित्त हेतु] शान्त स्वभाव वाले ब्राह्मण जो प्रायश्चित्त बतलायें उसे करे॥ ३॥

वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्मकामोऽग्निमान् द्विजः। स एव स्यात्परो धर्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति॥ ४॥

वेदार्थ के ज्ञाताओं में श्रेष्ठतम, शान्त स्वभाव वाला और धर्मकृत्यों को करने वाला अग्निहोत्री एक ही ब्राह्मण भी जो व्यवस्था बतलाये अर्थात् जो निर्णय कह दे वही परम धर्म होता है॥ ४॥

अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः। यद् ब्रूयुर्धर्मकामास्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम्॥ ५॥

जिन ब्राह्मणों ने अग्निहोत्र की अग्नि स्थापित नहीं की हो, किन्तु वेदार्थ में पारंगत हों और धर्माचरण की कामना करते हों, वे जो निर्णय रूप में कहें वही धर्म होता है॥ ५॥

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः। वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्तिताः॥ ६॥

अनेक धर्मशास्त्रों के ज्ञाता तथा ऊहापोह (तर्क-वितर्क करके उचित अनुचित निर्णय) में कुशल और वेदाध्ययन में पारंगत सात ब्राह्मण भी धर्म-निर्णय में सक्षम कहे गये हैं॥ ६॥

मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः। एकविंशतिविख्याताः प्रायश्चित्तं वदन्ति वै॥ ७॥

मीमांसा दर्शन (वेदार्थ और धर्म-विचार सम्बन्धी ज्ञान) के तत्त्वज्ञ और वेदान्त ज्ञान में कुशल इक्कीस प्रसिद्ध ब्राह्मण भी पापकर्म के प्रायश्चित्त को बतला सकते हैं॥ ७॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च। महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह संविशेत्॥ ८॥

ब्रह्महत्या करने वाला, मद्यपान करने वाला, चोर [स्वर्ण चोरी करने वाला], गुरुपत्नीगामी तथा इनके साथ रहने वाला- ये सब पाँच प्रकार के महापापी होते हैं॥ ८॥

संवत्सरन्तु पतितैः संसर्गं कुरुते तु यः। यानशय्यासनैर्नित्यं जानन् वै पतितो भवेत्॥ ९॥

जो व्यक्ति पापियों के पापकर्मों के विषय में जानते हुए भी उन पतितों के साथ एक वाहन में यात्रा या एक शय्या में शयन करता है या एक आसन में उनके साथ बैठता है, वह पतित हो जाता है॥ ९॥

याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः। कृत्वा सद्यः पतेद् ज्ञानात् सह भोजनमेव च॥ १०॥

जानते हुए भी उन पतितों का यज्ञ कराने, उनके साथ योनि-सम्बन्ध (विवाह) करने, उनका अध्यापन करने या उनके साथ बैठकर भोजन करने वाला शीघ्र पतित हो जाता है॥ १०॥

अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्यादध्यापनं द्विजः। संवत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च॥ ११॥

जो अज्ञान में या मोहवश पतितों का एक वर्ष तक अध्यापन करता है या उनके साथ अध्ययन करता है, वह पतित हो जाता है॥ ११॥

ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटिं कृत्वा वने वसेत्। भैक्षमात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्॥ १२॥

ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत्। विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तञ्च संस्मरन्॥१३॥
असङ्कल्पितयोग्यानि सप्तागाराणि संविशेत्। विधूमे शनकैर्नित्यं व्यङ्गारे भुक्तवज्जने॥१४॥

ब्रह्महत्या करने वाला बारह वर्षों तक वन में कुटी बनाकर उसमें निवास करे। वह एक शव के शिर को ध्वजा के समान धारण कर आत्मशुद्धि हेतु भिक्षाटन करे। किन्तु उसे ब्राह्मणों के घरों में तथा देव-मन्दिरों में नहीं जाना चाहिए। वह अपने द्वारा मारे गये उस ब्राह्मण का स्मरण करते हुए तथा स्वयं अपनी निन्दा करते हुए भिक्षाटन हेतु पूर्वतः निश्चय किये बिना अकस्मात किन्हीं सात घरों के द्वार पर धीरे से तब जाया करे जब कि जब वहाँ से धुआँ निकलना बन्द हो गया हो, आग बुझ चुकी हो और सभी लोग भोजन कर चुके हों॥१२-१४॥

एककालं चरेद्भैक्षं दोषं विख्यापयन् नृणाम्। वन्यमूलफलैर्वापि वर्तयेद् धैर्यमाश्रितः॥१५॥

वह लोगों के समक्ष अपने पाप-दोष को बतलाते हुए दिन में केवल एक बार ही भिक्षा माँगे। अथवा धैर्य धारण करके वन से मूल या फलों को लाकर जीवन यापन करे॥१५॥

कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः। पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥१६॥

वह खोपड़ी को हाथ में पकड़कर या उसे सोटा या लकड़ी के टुकड़े में बाँध कर अपने साथ ले जाया करे और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है॥१६॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम्। कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित्॥१७॥

अनजाने में या बिना इच्छा के अकस्मात हो बैठी ब्रह्महत्या का यही प्रायश्चित्त शुभावह होता है, किन्तु इच्छापूर्वक की गयी ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मरने पर ही मिलती है, अन्य किसी उपाय से नहीं॥१७॥

कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेव वा। ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत्स्वयम्॥१८॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत्। ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा[1] वा मृतस्य तु॥१९॥
दीर्घामयान्वितं विप्रं कृत्वानामयमेव वा। दत्त्वा चान्नं सुविदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥२०॥

[इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करने वाला] वह व्यक्ति [मृत्यु होने तक] अनशन करे या भृगु (पर्वत की ढाल वाली चट्टान) से गिरने पर या जलती अग्नि में प्रवष्टि होने पर या स्वयं जल में डूबने पर या ब्राह्मण अथवा गाय की रक्षा हेतु प्राण त्यागने पर अथवा मारे हुए ब्राह्मण के बदले दीर्घकाल से रोगाक्रान्त ब्राह्मण को रोग-मुक्त करने पर या विद्वान् ब्राह्मण को अन्नदान करने से ब्रह्महत्या से मुक्त होता है॥१८-२०॥

अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वै शुध्यते द्विजः। सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय च॥२१॥

अथवा अश्वमेध यज्ञ के अन्त में होने वाले अवभृथ स्नान करने पर या वेद के विद्वान् ब्राह्मण को सर्वस्व दान देकर ब्रह्महत्या करने वाला द्विज शुद्ध होता है॥२१॥

सरस्वत्यास्त्वरुणया सङ्गमे लोकविश्रुते। शुध्येत् त्रिषवणस्नानात् त्रिरात्रोपोषितो द्विजः॥२२॥

---

१. 'अन्तरा वा मृतस्य' - पाठ निरर्थक है।

सरस्वती तथा अरुणा (?) नदी के लोक-प्रसिद्ध संगम में त्रिषवण स्नान (प्रातः मध्याह्न तथा सायंकाल स्नान) करने और तीन रात्रियों तक उपवास करने पर द्विज ब्रह्महत्या के पाप से शुद्ध होता है॥२२॥

गत्वा रामेश्वरं पुण्यं स्नात्वा चैव महोदधौ। ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रं विमुच्यते॥२३॥

पवित्र रामेश्वर तीर्थ में जाकर वहाँ समुद्र में स्नान करके ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करते हुए वहाँ भगवान् शिव का दर्शन करके ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो सकता है॥२३॥

कपालमोचनं नाम तीर्थे देवस्य शूलिनः। स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥२४॥

हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले भगवान् शिव के कपालमोचन नामक तीर्थ में स्नान करके पितरों और देवों का पूजन करने से ब्रह्महत्या का पाप छूट जाता है॥२४॥

यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितौजसा। कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥२५॥
समभ्यर्च्य महादेवं तत्र भैरवरूपिणम्। तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥२६॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

पूर्वकाल में जहाँ अमित तेजस्वी देवाधिदेव भैरव ने परमेष्ठी ब्रह्मा के कपाल को स्थापित किया था, वहाँ स्नान करके पितरों का तर्पण करके भैरव रूपी देव महादेव का पूजन करने से ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिल जाती है॥२५-२६॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'ब्रह्महत्या-प्रायश्चित्त-वर्णन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

कपालमोचनमाहात्म्यम्

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन रुद्रेण शङ्करेणातितेजसा। कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजं भुवि॥१॥

ऋषियों ने कहा- अत्यन्त तेजस्वी देव शंकर रुद्र ने ब्रह्मा के शरीर से निकले कपाल को पृथिवी पर कैसे स्थापित किया था॥१॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः पुण्यां कथां पापप्रणाशिनीम्। माहात्म्यं देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः॥२॥

सूत जी बोले- आप सभी ऋषिगण परम बुद्धिमान् देवाधिदेव महादेव के माहात्म्य का बोध कराने वाली, पापनाश करने वाली और पुण्य प्रदान कराने वाली कथा को सुनें॥२॥

पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः। प्रोचुः प्रणम्य लोकादिं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥३॥

प्राचीन काल में मेरु पर्वत के शिखर पर बैठे लोक के आदि पुरुष पितामह देव ब्रह्मा को प्रणाम करके महर्षियों ने उनसे पूछा कि [इस संसार में] एक मात्र अविनाशी तत्त्व क्या है॥३॥

स मायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः। अविज्ञाय परं भावं स्वात्मानं प्राह गर्वितः[१]॥४॥
अहं धाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः। अनादिमत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्य विमुच्यते॥५॥

तब समस्त लोकों के जनक ब्रह्मा ने महेश्वर शिव की माया से मोहित होकर महर्षियों के परम भाव (आशय) से अनजान रहकर गर्व में आकर यह कहा कि मैं विधाता, जगत् की सृष्टि करने वाला, स्वयंभू, एकमात्र ईश्वर और अनादि परम ब्रह्म हूँ। मेरी आराधना करने पर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है॥४-५॥

अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्तकनिवर्तकः। न विद्यते चाभ्यधिको मत्तो लोकेषु कश्चन॥६॥

मैं ही सभी देवों का [तत्तत् कार्य में प्रवर्तक] और निवर्तक भी हूँ। इस लोक में मुझसे अधिक श्रेष्ठ कोई नहीं है॥६॥

तस्यैवं मन्यमानस्य जज्ञे नारायणांशजः। प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं रोषितोऽयं त्रिलोचनः॥७॥
किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्तते तव साम्प्रतम्। अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतदुचितं तव[२]॥८॥

उन पितामह के इस प्रकार के विचारों को कहते समय ही भगवान् विष्णु के अंश से प्रादुर्भूत त्रिलोचन रोषाविष्ट होने पर भी हँसते हुए यह बोले कि हे ब्रह्मा! सम्प्रति आप जो ऐसा कह रहे हैं, उसका क्या कारण है? आप अज्ञान योग से युक्त हैं। आपको ऐसे अनुचित वचन नहीं कहने चाहिए॥७-८॥

अहं कर्तादिलोकानां जज्ञे नारायणात्प्रभोः। न मामृतेऽस्य जगतो जीवनं सर्वथा क्वचित्॥९॥

मैं प्रभु नारायण विष्णु से प्रकट हुआ हूँ। मैं ही लोकों की आदि सृष्टि का कर्ता हूँ। मेरे बिना इस संसार में किसी का जीवन कहीं भी और कभी भी संभव नहीं है॥९॥

अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः। मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम्॥१०॥

मैं ही परम ज्योति और में ही परम गति हूँ। मेरे द्वारा प्रेरित किये जाने पर ही आपने इस भुवन-मण्डल की सृष्टि की है॥१०॥

एवं विवदतोर्मोहात्परस्परजयैषिणोः। आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि॥११॥

इस प्रकार मोहवश विवाद करने वाले तथा एक-दूसरे पर विजय की कामना करने वाले उन दोनों देवों के पास चारों वेद आ गये थे॥११॥

अन्वीक्ष्य देवं ब्रह्माणं तथा देवं महेश्वरम्[३]। प्रोचुः संविग्नहृदया याथात्म्यं परमेष्ठिनः॥१२॥

उन्होंने वहाँ पर देव ब्रह्मा तथा देव महेश्वर को देखकर उद्विग्न चित्त होने पर ब्रह्मा से यथार्थ तथ्य को कहा॥१२॥

---

१. धर्षिणम्, २. न त्वेतत् त्वयि विद्यते, ३. यज्ञात्मानं च संस्थितम्

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्तः स्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते। यदाहुस्तत्परंतत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः॥१३॥

ऋग्वेद बोला- जिसके अन्दर सभी प्राणी स्थित हैं तथा जिससे समस्त सृष्टि का संचालन होता है और जिसको परम तत्त्व कहा गया है, वह देव महेश्वर शिव ही हो सकते हैं॥१३॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते। यमाहुरीश्वरं देवं स देवः स्यात्पिनाकधृक्॥१४॥

यजुर्वेद बोला- जिस देव ईश्वर को कहा जाता है, जिसकी आराधना सभी यज्ञों से तथा योग-साधना से की जाती है, वह देव पिनाकधारी शिव ही हो सकते हैं॥१४॥

सामवेद उवाच

येनेदं भ्राम्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम्। योगिभिर्वेद्यते तत्त्वं महादेवः स शङ्करः॥१५॥

सामवेद बोला- जिस देव के द्वारा इस संसार- चक्र का संचालन किया जाता है, जो आकाश में शिव रूप में विद्यमान है तथा जिस शिव तत्त्व का ज्ञान योगियों को होता है, वही महादेव शङ्कर हैं॥१५॥

अथर्ववेद उवाच

यं प्रपश्यन्ति देवेशं यजन्तो यतयः परम्। महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः॥१६॥

अथर्ववेद ने कहा- संन्यासी जन परम यत्न के साथ जिस परमेश्वर की आराधना करते हैं, वह देव ही परम पुरुष महेश, रुद्र और भगवान् भव शिव हैं॥१६॥

एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम्। श्रुत्वा विहस्य विश्वात्मा ततश्चाह विमोहितः॥१७॥
कथं तत्परमं ब्रह्म सर्वसङ्गविवर्जितम्। रमते भार्यया सार्धं प्रमथैश्चातिगर्वितैः॥१८॥

वेदों के इस प्रकार के शुभ वचनों को सुन कर विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा ने मोहवश हँसते हुए यह कहा कि जब वह शिव सभी आसक्तियों से रहित परम ब्रह्म हैं तो अपनी पत्नी के साथ कैसे रमण करते हैं तथा अति गर्वित होकर प्रमथ गणों के साथ कैसे और क्यों रहते हैं?॥१७-१८॥

इतीरितेऽथ भगवान् प्रणवात्मा सनातनः। अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा वचः प्राह पितामहम्॥१९॥

ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर प्रणव रूप आत्मा वाले सनातन ओङ्कार ने अमूर्त होने पर भी मूर्तिमान (साकार रूप वाला) होकर पितामह ब्रह्मा से यह कहा॥१९॥

प्रणव उवाच

न ह्येष भगवानीशः स्वात्मनो व्यतिरिक्तया। कदाचिद् रमते रुद्रगस्तादृशो हि महेश्वरः॥२०॥

प्रणव बोला- यह भगवान् ईश्वर अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी से कदापि रमण नहीं करते हैं, ऐसे हैं ये रुद्र महेश्वर॥२०॥

अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः। स्वानन्दभूता कथिता देवी आगन्तुका शिवा॥२१॥

यह सनातन भगवान् महेश्वर स्वयं ज्योति स्वरूप हैं। देवी पार्वती उनकी स्वात्मानन्द स्वरूपिणी है। वह उनसे भिन्न कहीं से आयी हुई नहीं, अपितु उनकी अर्धाङ्गिनी है॥२१॥

इत्येवमुक्तेऽपि तदा पद्मयोनेरजस्य च[१]। नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैव मायया॥२२॥

ऐसा कहे जाने पर भी ईश्वर शिव की माया के ही कारण पद्मयोनि (कमल में उत्पन्न) ब्रह्मा का अज्ञान नष्ट नहीं हुआ था॥२२॥

तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः। प्रादर्शदद्भुतं दिव्यं पूरयन् गगनान्तरम्॥२३॥

उसी समय विश्व के रचियता ब्रह्मा ने अत्यन्त अद्भुत और दिव्य महाज्योति को देखा, जिसका प्रकाश नभ-मण्डल में व्याप्त हो रहा था॥२३॥

तन्मध्यसंस्थं विमलं[२] मण्डलं तेजसोज्ज्वलम्। व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः॥२४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उस महाज्योति के मध्य में से आकाश के मध्य में निर्मल और उज्जवल दिव्य तेज प्रकट हुआ था॥२४॥

तं च तत्राद्भुतं[३] दिव्यं मूर्ध्नि लोकपितामहः। तैजसं मण्डलं घोरमालोकं यदनिन्दितम्॥२५॥

तब ब्रह्मा ने अपने ऊपर (आकाश में) अद्भुत दिव्य अनिन्दनीय किन्तु घोर (भयानक) तेजोमण्डल को देखा था॥२५॥

प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः। क्षणाददृश्यत[४] महान् पुरुषो नीललोहितः॥२६॥

तभी अत्यन्त क्रोधावेग से ब्रह्मा का पाँचवाँ शिर जलने लगा था। उसी क्षण वहाँ नीललोहित पुरुष (रुद्र) प्रकट हो गये थे॥२६॥

त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान्। तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शङ्करं नीललोहितम्॥२७॥
जानामि पूर्वं भवतो ललाटादेव शङ्कर। प्रादुर्भूतं महेशान मामतः शरणं व्रज॥२८॥

वह त्रिशूल धारण किये हुए थे, पिङ्गल (पीत वर्ण) के थे, नाग को यज्ञोपवीत के समान धारण किये हुए थे। उन नीललोहित से ब्रह्मा ने कहा- हे महेश्वर! हे शंकर! मैं यह जानता हूँ कि पूर्वकाल में मेरे ही ललाट से आपका प्रादुर्भाव हुआ था। अतः आप मेरी शरण में आवें॥२७-२८॥

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः। प्राहिणोत्पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम्॥२९॥

ब्रह्मा की गर्वोक्ति को सुन कर भगवान् शंकर ने लोक को दग्ध करने वाले पुरुष कालभैरव को ब्रह्मा के पास भेजा॥२९॥

स कृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः। प्रचकर्तास्य वदनं विरिञ्चस्याथ पञ्चमम्॥३०॥

उस कालभैरव ने ब्रह्मा के साथ अति भीषण युद्ध करके उनके पाँचवें शिर को काट दिया था॥३०॥

निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना। ममार चेशोयोगेन जीवितं प्राप विश्वसृक्॥३१॥

शिर काट दिये जाने पर ब्रह्मा की मृत्यु हो गयी थी, किन्तु भगवान् शिव ने ईश्वरीय योगबल से विश्व की सृष्टि करने वाले उस ब्रह्मा को पुनर्जीवित कर दिया था॥३१॥

अथान्वपश्यदीशानं मण्डलान्तरसंस्थितम्। समासीनं महादेव्या महादेवं सनातनम्॥३२॥

---

१. यज्ञमूर्तेरजस्य च, २. संस्थितं ज्योतिर्मण्डलं, ३. सदृष्ट्वा वदनं दिव्यं, ४. क्षणादपश्यम् स

तब ब्रह्मा ने तत्क्षण सनातन देव महादेव को महादेवी पार्वती के साथ आकाशस्थ ज्योतिर्मण्डल के अन्दर विराजमान देखा था॥३२॥

भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम्। कोटिसूर्यप्रतीकाशं जटाजूटविराजितम्॥३३॥

वह शिव नागराज को कंगन रूप में धारण किये हुए थे। अर्धचन्द्र को शिरोभूषण रूप में धारण किये हुए थे। वह जटाजूट धारण किये हुए थे तथा करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान हो रहे थे॥३३॥

शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम्। त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम्॥३४॥

वह व्याघ्रचर्म को वस्त्र रूप में धारण किये हुए थे तथा उनके कण्ठ में दिव्यमाला शोभित हो रही थी। उनके हाथ में त्रिशूल था। वह योगी शिव भस्म से विभूषित थे और उनका दर्शन [सर्व-साधारण के लिए] कठिन था॥३४॥

यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम्। तमादिदेवं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह॥३५॥

योगनिष्ठ योगीजन जिन ईश्वर शिव को अपने हृदय के अन्दर देखते हैं, उन परम ब्रह्म आदि देव महादेव को ब्रह्मा ने तब प्रत्यक्ष देखा था॥३५॥

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंज्ञिता। सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल॥३६॥

[तब ब्रह्मा ने अनुभव किया कि] आकाश में स्थित देवी जिनकी परम शक्ति है, वह अनन्त ऐश्वर्यशाली योगात्मा महादेव दृष्टिगत हो रहे हैं॥३६॥

यस्याशेषजगद्बीजं विलयं याति मोहनम्। सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते॥३७॥

जिनको एक बार प्रणाम करने मात्र से सम्पूर्ण जगत् के बीज स्वरूप मोह का समूल नाश हो जाता है, वह रुद्र दृष्टिगत हो रहे हैं॥३७॥

येऽथ नाचारनिरतास्तद्भक्ताश्चैव केवलम्। विमोचयति लोकात्मा नायको दृश्यते किल॥३८॥

जो मनुष्य विहित आचार के पालन में संलग्न नहीं हैं, किन्तु उन भगवान् शिव के भक्त हैं तो उनको मोक्ष प्रदान करने वाले वह लोकात्मा दृष्टिगत हो रहे हैं॥३८॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः। अर्चयन्ति सदा लिङ्गं स शिवः खलु दृश्यते॥३९॥

जिनके लिङ्ग का पूजन ब्रह्मा आदि देवता तथा ब्रह्मवादी ऋषि भी करते हैं, वह शिव दिखलायी दे रहे हैं॥३९॥

यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरः। न मुञ्चति सदा पार्श्वं शङ्करोऽसौ च दृश्यते॥४०॥

सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली प्रकृति जिनका साथ कभी नहीं छोड़ती वह विज्ञान-मय देह वाले शङ्कर दृष्टिगत हो रहे हैं॥४०॥

विद्यासहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम्। हिरण्यगर्भपुत्रोऽसौ ईश्वरो दृश्यते परः॥४१॥

विद्या जिनकी रहायक (या साथ में) है, ऐसे वह भगवान्, जो कि हिरण्यगर्भ के पुत्र हैं, वह इस तेजो-मण्डल के अन्दर दृष्टिगत हो रहे हैं॥४१॥

पुष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगले जलम्। दत्त्वा तरति संसारं रुद्रोऽसौ दृश्यते किल॥४२॥

जिनके चरण-युगल में पुष्प या पत्र या जल अर्पित करने पर मनुष्य संसार-सागर से तर जाता है, वह रुद्र दिखलाई पड़ रहे हैं॥४२॥

तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः। कालः[1] किल स योगात्मा कालः कालो हि दृश्यते॥४३॥

जिनके सान्निध्य में रहने वाला काल सम्पूर्ण जगत् को नियन्त्रित या सञ्चालित करता है, उस काल के भी काल योगात्मा शिव दृष्टिगत हो रहे हैं॥४३॥

जीवनं सर्वलोकानां त्रिलोकस्यैव भूषणम्। सोमः स दृश्यते देवः सोमो यस्य विभूषणम्॥४४॥

जो सम्पूर्ण लोकों के जीवनदाता एवं तीनों लोकों के आभूषण-स्वरूप हैं और सोम (चन्द्रमा) जिनका आभूषण है, वह शिव उमा सहित दृष्टिगत हो रहे हैं॥४४॥

देव्या सह सदा साक्षात् यस्य योगःस्वभावतः। गीयते परमा मुक्तिर्महादेवः स दृश्यते॥४५॥

देवी पार्वती के साथ जिनका स्वाभाविक संयोग सदैव अटल रहता है और जिस देवी को परम मुक्ति कहा जाता है? वह शिव [उस देवी के साथ] दिखलायी दे रहे हैं॥४५॥

योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखाः सदा[2]। योगं ध्यायन्ति देव्याऽसौ स योगी दृश्यते किल॥४६॥

वैराग्य की ओर सदैव उन्मुख रहने वाले योग के तत्त्वज्ञाता योगी जन जिनके देवी पार्वती सहित योग का ध्यान करते हैं, वह योगी शिव दृष्टिगत हो रहे हैं॥४६॥

सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम्। वरासने समासीनमवाप परमां स्मृतिम्॥४७॥

महादेवी पार्वती के साथ सनातन देव महादेव को सुन्दर आसन में विराजमान देखकर ब्रह्मा को परम [ज्ञान का] स्मरण हो गया था॥४७॥

लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यां संस्मृतिं भगवानजः। तोषयामास वरदं सोमं सोमार्धभूषणम्॥४८॥

महेश्वर शिव के विषय में दिव्य स्मृति होने पर ब्रह्मा ने अर्धचन्द्र को आभूषण रूप में धारण करने वाल उमा सहित विराजमान उन वरदान देने वाले शिव की स्तुति [इस प्रकार] की थी॥४८॥

ब्रह्मोवाच

नमो देवाय महते महादेव्यै नमो नमः। नमः शिवाय शान्ताय शिवायै सततं नमः॥४९॥

ब्रह्मा बोले- महादेव को नमस्कार है, महादेवी को नमस्कार है। शान्त स्वभाव वाले शिव को नमस्कार है। देवी शिवा को बारंबार नमस्कार है॥४९॥

ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यं विद्यायै ते नमो नमः। महेशाय नमस्तुभ्यं मूलप्रकृतये नमः॥५०॥

ओङ्कार स्वरूप पर ब्रह्म आपको नमस्कार है। हे विद्या-स्वरूपिणी देवी आपको नमस्कार है। हे महेश्वर आपको नमस्कार है और मूल-प्रकृति स्वरूपिणी देवी (पार्वती) को नमस्कार है॥५०॥

नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमो नमः। नमोऽस्तु कालकालाय ईश्वरायै नमो नमः॥५१॥

विज्ञानमय देह वाले शिव को नमस्कार और चिति (विचार-शक्ति) स्वरूपा देवी को नमस्कार है। काल के भी काल-स्वरूप शिव को नमस्कार है। देवी ईश्वरी को नमस्कार है॥५१॥

१. कालं, २. वियोगाभिमुखोऽनिशम्

नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमो नमः। नमो नमस्ते कालाय मायायै ते नमो नमः॥५२॥

रुद्र देव को बार-बार नमस्कार और हे रुद्राणी आपको बार-बार नमस्कार है। काल-स्वरूप शिव को नमस्कार है नमस्कार है और माया स्वरूपा देवी! आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥५२॥

नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमो नमः। नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च॥५३॥

सभी कार्यों को नियन्त्रित करने वाले शिव को और [सृष्टि हेतु] प्रेरित करने वाली देवी (उमा) को बार-बार नमस्कार है। हे प्रकृति आपको नमस्कार और हे नारायण आपको नमस्कार है॥५३॥

योगदायै नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः। नमः संसारनाशाय[1] संसारोत्पत्तये नमः॥५४॥

योग-सिद्धि प्रदान करने वाली देवी आपको नमस्कार है। योगीजनों के गुरु भगवान् शिव को नमस्कार है। संसार का नाश करने वाले देव को नमस्कार है और संसार की जननी आपको नमस्कार है॥५४॥

नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्तये। नमः कार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः॥५५॥

नित्यानन्द स्वरूप विभु (प्रभु) शिव को नमस्कार आनन्दमूर्ति स्वरूपा देवी को नमस्कार है। कार्य-विहीन (निर्विकार) देव शिव को नमस्कार है और विश्व की प्रकृति स्वरूपा देवी को नमस्कार है॥५५॥

ओङ्कारमूर्तये तुभ्यं तदन्तः संस्थिताय च। नमस्ते व्योमसंस्थाय व्योमशक्त्यै नमो नमः॥५६॥

ओङ्कार-मूर्ति स्वरूप और ओङ्कार के अन्दर स्थित तथा आकाश में स्थित देव को नमस्कार तथा व्योमशक्तिस्वरूपा देवी को नमस्कार है॥५६॥

इति सोमाष्टकेनेशं प्रणिपत्य पितामहः। पपात दण्डवद्भूमी गृणन्वै शतरुद्रियम्॥५७॥

इस प्रकार सोमाष्टक-स्तोत्र से शिव की स्तुति करके पितामह ब्रह्मा ने शतरुद्रिय का पाठ करते हुए भूमि में दण्डवत् लेट कर प्रणाम किया था॥५७॥

अथ देवो महादेवः प्रणतार्तिहरो हरः। प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव साम्प्रतम्॥५८॥

तब प्रणाम करने वाले भक्त के कष्ट को दूर करने वाले महादेव शिव ने अपने हाथों से ब्रह्मा को उठाकर उनसे कहा कि अब मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ॥५८॥

दत्त्वास्मै परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत्। प्रोवाचाग्रस्थितं रुद्रं नीललोहितमीश्वरम्॥५९॥
एष ब्रह्मास्य जगतः सम्पूज्यः प्रथमः स्थितः। आत्मना रक्षणीयस्ते गुणज्येष्ठः पिता तव॥६०॥

तब भगवान् शिव ने ब्रह्मा को परम योग और असीम ऐश्वर्य प्रदान करके अपने सम्मुख स्थित नीललोहितेश्वर रुद्र से यह कहा कि यह ब्रह्मा इस जगत् में तुम्हारे लिए सर्वप्रथम पूजनीय देव हैं। यह गुणों में ज्येष्ठ ब्रह्मा तुम्हारे पिता हैं। तुमको इनकी रक्षा करनी चाहिए॥५९-६०॥

अयं पुराणः पुरुषो न हन्तव्यस्त्वयानघ। स योगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेव शरणङ्गतः॥६१॥

हे अनघ! तुम इन पुराणपुरुष ब्रह्मा की हत्या मत करना। यह मेरे योग और ऐश्वर्य के प्रताप के कारण मेरी शरण में आये हैं॥६१॥

---

१. संसारवासाय

यत् त्वया गर्वितस्यास्य शिरश्छिन्नं तु पञ्चमम्। हस्ते चादाय तं चैव पर्यटन् पृथिवीमिमाम्[1]॥६२॥
ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोके प्रदर्शयन्। चरस्व सततं भिक्षां संस्थापय सुरद्विजान्॥६३॥

जो आपने मिथ्याभिमानी ब्रह्मा के पाँचवें शिर को काट कर अलग किया है आप उसे हाथ में लेकर पृथिवी में भ्रमण करते हुए ब्रह्महत्या के पाप को दूर करने के लिए व्रत करते हुए लोक में भ्रमण करो और [अपने पाप का ख्यापन करते हुए] सदैव भिक्षा माँगो और देवताओं तथा ब्राह्मणों को स्थापित करते रहो॥६२-६३॥

इत्येतदुक्त्वा वचनं भगवान् परमेश्वरः। स्थानं स्वाभाविकं दिव्यं ययौ तत्परमंपदम्॥६४॥

ऐसा कह कर भगवान् परमेश्वर शिव अपने दिव्य परम पद रूप स्वाभाविक स्थान को चले गये थे॥६४॥

ततः स भगवानीशः कपर्दी नीललोहितः। ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम्॥६५॥

तब कपर्दी भगवान् नीललोहित शिव ने ब्रह्मा का वह पाँचवाँ शिर कालभैरव को ग्रहण करवाया था॥६५॥

चर त्वं पापनाशार्थं व्रतं लोके हितावहम्। कपालहस्तो भगवान् भिक्षां गृह्णातु सर्वतः॥६६॥

उन्होंने कालभैरव से कहा था कि तुम अपने ब्रह्महत्या के पाप के नाश हेतु इस लोक में अपने हित-साधक व्रत को करते हुए हेतु विचरण करो और इस कपाल को हाथ में लेकर सभी गृहस्थों से भिक्षा माँगा करो॥६६॥

उक्त्वैवं प्राहिणोत् कन्यां ब्रह्महत्येति विश्रुताम्। दंष्ट्राकरालवदनां ज्वालामालाविभूषणाम्॥६७॥
यावद्वाराणसीं दिव्यां पुरीमेष गमिष्यति। तावद्विभीषणाकारा ह्यनुगच्छ त्रिशूलिनम्॥६८॥

ऐसा कहकर उन भगवान् नीललोहित शिव ने भंयकर दाढ़ों और विकराल मुख वाली एवं ज्वाला-माला रूपी आभूषण वाली ब्रह्महत्या नामक कन्या को यह कह कर वहाँ भेजा कि जब तक यह त्रिशूलधारी कालभैरव वाराणसी नामक दिव्यपुरी में पहुँचें तब तक तुम इनके पीछे चलती रहो॥६७-६८॥

एवमाभाष्य कालाग्निं प्राह देवो महेश्वरः। अटस्व लोकानखिलान् भिक्षार्थी मन्नियोगतः॥६९॥

उस ब्रह्महत्या से ऐसा कह कर देव महेश्वर ने उन कालभैरव से कहा कि आप मेरे निर्देशानुसार भिक्षाटन करते हुए सम्पूर्ण जगत् में भ्रमण करें॥६९॥

यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम्। तदासौ वक्ष्यति स्पष्टमुपायं पापशोधनम्॥७०॥

जब आप भगवान् विष्णु का दर्शन करेंगे तो तब वे आपको ब्रह्महत्या के पाप से शुद्धि का स्पष्ट उपाय बतला देंगे॥७०॥

स देवदेवतावाक्यमाकर्ण्य भगवान् हरः। कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम्॥७१॥

उन देवाधिदेव महादेव के वचन को सुनकर कपाल को हाथ में धारण करने वाले वह विश्वात्मा कालभैरव तीनों लोकों में विचरण करने लगे थे॥७१॥

१. अयञ्च यज्ञो गर्वोऽसौ सगर्वो भवतानघ। शासितव्यो विरिञ्चस्य धारणीयं शिरस्त्वया॥

आस्थाय विकृतं वेषं दीप्यमानं स्वतेजसा। श्रीमत्पवित्रं रुचिरं लोचनत्रयसंयुतम्॥७२॥

विकृत वेश धारण करने पर भी वह अपने तेज से देदीप्यमान, श्रीसम्पन्न (शोभायमान), पवित्र और रुचिकर लग रहे थे। वह तीन नेत्र से युक्त थे॥७२॥

सहस्रसूर्यप्रतिमं सिद्धैः प्रमथपुङ्गवैः। भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः॥७३॥

वह सहस्र सूर्यों के समान तेजोमय और कालाग्नि के समान नेत्रों वाले महादेव सिद्धों और प्रमथगणों से घिरे हुए थे॥७३॥

पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दं परमेष्ठिनः। लीलाविलासबहुलो लोकानागच्छतीश्वरः॥७४॥

वह परमेश्वर मानो परमेष्ठी के आनन्दमय दिव्य अमृत का पान करके लीला-विलास करते हुए तीनों लोकों में विचरण कर रहे थे॥७४॥

तं दृष्ट्वा कालवदनं शङ्करं कालभैरवम्। रूपलावण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु॥७५॥

रूप-लावण्य से सम्पन्न उन कालस्वरूप काल भैरव संज्ञा वाले शिव को देखकर उनका अनुसरण नारी समूह भी करने लगा था॥७५॥

गायन्ति गीतैर्विविधैर्नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः। संस्मितं प्रेक्ष्य वदनञ्चक्रुर्भ्रूभङ्गमेव च॥७६॥

वे स्त्रियाँ उन प्रभु के समक्ष विविध प्रकार के गीत गा रही थी और नृत्य कर रही थी। वे उनके मुख को देखकर मुस्कराते हुए भौंहों से अपने हाव-भाव प्रदर्शित कर रही थी॥७६॥

स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक्। जगाम विष्णोर्भवनं यत्रास्ते पुरुषोत्तमः॥७७॥

वह त्रिशूलधारी कालभैरव देवों और दानवों आदि के देशों से चलने के बाद भगवान् विष्णु के भवन में गये थे जहाँ वह पुरुषोत्तम निवास करते थे॥७७॥

सम्प्राप्य दिव्यभवनं शङ्करो लोकशङ्करः। सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे॥७८॥

लोककल्याणकर्ता वह कालभैरव संज्ञक शंकर [भगवान् विष्णु के उस] दिव्य भवन तक पहुँचकर अपने साथ चल रहे श्रेष्ठ भूतगणों के साथ उसके अन्दर प्रवेश का प्रयास करने लगे थे॥७८॥

अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्पारमेश्वरम्। न्यवारयत् त्रिशूलाङ्कं द्वारपालो महाबलः॥७९॥

उन त्रिशूलधारी कालभैरव के परम दिव्य परमेश्वर भाव से अनभिज्ञ होने के कारण महाबलशाली द्वारपाल ने उनको प्रवेश करने से रोका था॥७९॥

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा महाभुजः। विष्वक्सेन इति ख्यातो विष्णोरंशसमुद्भवः॥८०॥

वह महाभुजाओं वाला द्वारपाल विष्वकसेन नाम से प्रसिद्ध था और भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न हुआ था। वह पीतवस्त्रधारी अपने हाथों में शंख, चक्र और गदा धारण करता था॥८०॥

अथ तं शङ्करगणो युयुधे विष्णुसम्भवम्। भीषणो भैरवादेशात्कालवेग इति स्मृतः॥८१॥

तब कालभैरव के आदेशानुसार शिव के कालवेग नाम से प्रसिद्ध भयंकर गण ने विष्णु के उस द्वारपाल के साथ युद्ध किया था॥८१॥

विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः। दुद्रावाभिमुखं रौद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम्॥८२॥

[भगवान् विष्णु के] विष्वकसेन नामक द्वारपाल ने, जिसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे, उस कालवेग पर विजय प्राप्त करके कालभैरव रुद्र की ओर दौड़ कर उन पर सुदर्शन चक्र को फैंका था॥८२॥

अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत्। तमापतन्तं सावज्ञमालोकयदमित्रजित्॥८३॥

तब शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले त्रिशूलधारी त्रिपुरारी महादेव संज्ञक कालभैरव ने उस आते हुए चक्र को अवज्ञापूर्वक देखा था॥८३॥

तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम्। शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि॥८४॥

उसी समय प्रलयकालीन अग्नि के समान प्रचण्ड एक महाभूत (शिव के गण विशेष) ने शूल से उसके (विष्वक्सेन के) वक्षस्थल को विदीर्ण कर उसे भूमि में गिरा दिया था॥८४॥

स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वं परमं बलम्। तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव॥८५॥

तब उस विष्वक्सेन ने त्रिशूल से आहत होने पर अपने परम बल को त्याग कर उस प्रकार अपने प्राण त्याग दिये जिस प्रकार व्याधिग्रस्त प्राणी मृत्यु (यमराज) को देखकर प्राण त्याग देते हैं॥८५॥

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्धं प्रमथपुङ्गवैः। विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम्॥८६॥

तब विष्णु के उस पुरुष विष्वक्सेन का वध करके उसके कलेवर (अर्थात् निष्प्राण देह) को अपने साथ ले जाकर वह कालभैरव प्रमथगणों सहित विष्णु के भवन के अन्दर प्रविष्ट हुए थे॥८६॥

वीक्ष्य तं जगतो हेतुमीश्वरं भगवान्हरिः। शिरां ललाटात्सम्भिद्य रक्तधारामपातयत्॥८७॥

गृहाण भिक्षां भगवन् मदीयाममितद्युते। न विद्यतेऽन्या ह्युचिता तव त्रिपुरमर्दन॥८८॥

जगत् के हेतु (सृष्टि के मूल कारण) उन कालभैरव नामक ईश्वर को देखकर भगवान् विष्णु ने अपने ललाट की एक शिरा का भेदन करके रक्त की धारा को प्रवाहित करके उनसे कहा हे अमित तेज वाले भगवन्! आप मेरी ओर से यह भिक्षा ग्रहण करें। हे त्रिपुरारी! आपके लिए [इसके अतिरिक्त] देने योग्य कोई अन्य उचित भिक्षा मेरे पास सुलभ नहीं है॥८७-८८॥

न सम्पूर्णं कपालं तद् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता॥८९॥

भगवान् विष्णु के ललाट से रक्त की धारा बहते हुए सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी कालभैरव के हाथ में स्थित ब्रह्मा का वह कपाल [उस रक्त से] नहीं भरा जा सका था॥८९॥

अथाब्रवीत्कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः। संस्तूय विदिकैमन्त्रै[१]र्बहुमानपुरःसरम्॥९०॥

किमर्थमेतद्वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम्। प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः॥९१॥

तब भगवान् नारायण विष्णु ने उन काल भैरव रुद्र की वेद-मन्त्रों से स्तुति करके अत्यन्त सम्मान के साथ उनसे यह कहा था कि आपने ब्रह्मा के इस कपाल को क्यों धारण किया है? तो इसके उत्तर में देवदेव महेश्वर कालभैरव ने सम्पूर्ण वृत्तान्त उन भगवान् विष्णु को बतलाया था॥९०-९१॥

समाहूय हृषीकेशो ब्रह्महत्यामथाच्युतः। प्रार्थयामास भगवान्विमुञ्चेति त्रिशूलिनम्॥९२॥

---

१. विविधैर्भवैः

तब भगवान् विष्णु ने ब्रह्महत्या को अपने पास बुला कर उससे यह प्रार्थना की थी कि आप इन त्रिशूलधारी [कालभैरव] को मुक्त कर दो॥९२॥

न तत्त्याजाथ सा पार्श्वं व्याहृतापि मुरारिणा। चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शङ्करं प्राह सर्ववित्॥९३॥
व्रजस्व दिव्यां भगवन्पुरीं वाराणसी शुभाम्। यत्राखिलजगद् दोषं क्षिप्रं नाशयतीश्वरः॥९४॥

भगवान् विष्णु के कहने पर भी ब्रह्महत्या ने कालभैरव का पीछा नहीं छोड़ा। तब सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ने चिरकाल तक ध्यान लगा कर जगत्स्रष्टा काल भैरव से कहा- हे भगवान् कालभैरव! आप परम दिव्य एवं शुभ वाराणसी पुरी में जाइए। वहाँ भगवान् शिव जगत् के सभी दोषों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं॥९३-९४॥

ततः सर्वाणि गुह्यानि[1] तीर्थान्यायतनानि च। जगाम लीलया देवो लोकानां हितकाम्यया॥९५॥

तब वह देव कालभैरव लीला करते हुए और लोकहित की कामना से भी सभी तीर्थों और पवित्र धामों की यात्रा करने लगे थे॥९५॥

संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः। नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः॥९६॥

उस समय प्रमथगण और महान योगीजन उनकी स्तुति करते हुए साथ चल रहे थे। हाथ में कपाल धारण किये हुए वह महायोगी कालभैरव नृत्य करते हुए चल रहे थे॥९६॥

तमभ्यधावद्भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः। समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः॥९७॥

उन कालभैरव का नृत्य देखने की लालसा से स्वयं भगवान् विष्णु अपना स्वरूप बदलकर उनके पीछे दौड़ रहे थे॥९७॥

निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः। सस्मितोऽनन्तयोगात्मा नृत्यति स्म पुनः पुनः॥९८॥

वृभष के चिह्न से अंकित ध्वजा वाले अनन्त योगात्मा कालभैरव उन भगवान् विष्णु को देखकर मुस्कुराते हुए बार-बार नृत्य करते जा रहे थे॥९८॥

अथ सानुचरो रुद्रः सहरिर्धर्मवाहनः। भेजे महादेवपुरीं वाराणसीति विश्रुताम्॥९९॥

तब [चलते-चलते] अपने पीछे चलने वाले प्रमथों और भगवान् विष्णु सहित वह वृषभ रूपधारी धर्म में आरूढ़ कालभैरव भगवान् शिव की वाराणसी नाम से प्रसिद्ध पुरी में पहुँच गये थे॥९९॥

प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि। हाहेत्युक्त्वा सनादं सा पातालं प्राप दुःखिता॥१००॥

उन कपर्दी देवेश्वर कालभैरव के वाराणसी में प्रवष्टि होते ही [उनका अनुसरण करने वाली] ब्रह्महत्या उच्च स्वर से हाहाकार करती हुई दुःखी होकर पाताल में प्रवष्टि हो गयी थी॥१००॥

प्रविश्य परमं स्थानं कपालं ब्रह्मणो हरः। गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शङ्करः॥१०१॥

काशी में अपने परम धाम में प्रवेश करने के बाद उन कालभैरव शिव ने ब्रह्मा के उस कपाल को गणों के सम्मुख भूमि में स्थापित किया था॥१०१॥

स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम्। उक्त्वा सजीवमस्त्विति विष्णवेऽसौ घृणानिधिः॥१०२॥

१. भूतानि

तदनन्तर दयालु महादेव कालभैरव ने ब्रह्मा के उस पाँचवें शिर को 'यह जीवित हो जाय' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु को प्रदान किया था॥१०२॥

ये स्मरन्ति ममाजस्त्रं कापालं वेषमुत्तमम्। तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्॥१०३॥

तब कालभैरव ने कहा था कि जो निरन्तर मेरे इस कपालधारी वेश का स्मरण करेंगे इनका इहलोक तथा परलोक (या पूर्व जन्म) में किया गया पाप भी शीघ्र विनष्ट हो जायेगा॥१०३॥

आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः। तर्पयित्वा पितॄन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥१०४॥

इस कपालमोचन नामक श्रेष्ठ तीर्थ में आकर विधि-विधानानुसार स्नान करके पितरों और देवों का तर्पण करने से ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल जाती है॥१०४॥

अशाश्वतं जगद्ज्ञात्वा येऽस्मिन् स्थाने वसन्ति वै[1]। देहान्ते तान् परं ज्ञानं ददामि परमं पदम्॥१०५॥

इस संसार को नश्वर जान कर जो मनुष्य इस स्थान में आकर वास करते हैं, उनके देहान्त होने पर मैं उनको परम ज्ञान और परम पद प्रदान करता हूँ॥१०५॥

इतीदमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्य जनार्दनम्। सहैव प्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयत॥१०६॥

इतना कहकर जनार्दन विष्णु का आलिङ्गन करके भगवान् कालभैरव तत्क्षण प्रथमगणों सहित अन्तर्धान हो गये थे॥१०६॥

स लब्ध्वा भगवान्कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः। स्वं देशमगमत्तूर्ष्णीं गृहीत्वा परमं वपुः॥१०७॥

तद्नन्तर भगवान् विष्णु उन त्रिशूलधारी कालभैरव से अपने द्वारपाल विष्वक्सेन को जीवित प्राप्त कर अपने परम स्वरूप को धारण कर अपने धाम को चले गये थे॥१०७॥

एतद् वः कथितं पुण्यं महापातकनाशनम्। कपालमोचनं तीर्थं स्थाणोः प्रियकरं शुभम्॥१०८॥

[तब व्यास जी बोले] यह मैंने आप लोगों को भगवान् शिव के प्रिय और पवित्र कपालमोचन तीर्थ को बतलाया, जो कि महापापों का नाश करने वाला है॥१०८॥

य इमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः। मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च प्रमुच्यते॥१०९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे कपालमोचनमाहात्म्यं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

जो मनुष्य ब्राह्मणों के समीप इस अध्याय का पाठ करता है, वह मनसा, वाचा और कर्मणा किये गये पापों से मुक्त हो जाता है॥१०९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'कपालमोचन-माहात्म्य' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३१॥

१. व्रजध्वं परमांपुरीम्

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तकथनम्

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरां तप्तामग्निवर्णां पिबेत तदा। निर्दग्धकायः स तया मुच्यते च द्विजोत्तमः॥१॥

सुरापान करने वाला द्विजोत्तम प्रायश्चित्त रूप में अग्नि के समान वर्ण वाली (अर्थात् आग में तपा कर खौलती हुई) सुरा का पान करे। उससे शरीर दग्ध होने पर वह पाप-मुक्त हो जाता है॥१॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा। पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात्ततः॥२॥

अथवा अग्निवर्ण (अग्नि में खौलता हुआ) गोमूत्र या खौलता हुआ गोबर का रस या खौलता हुआ दूध या वैसे ही खौलता हुआ घृत या खौलता हुआ जल पीने से वह पाप-मुक्त होता है॥२॥

जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वा नारायणं हरिम्। ब्रह्महत्याव्रतञ्चाथ चरेत्पापप्रशान्तये॥३॥

अथवा सुरापान जनित पाप की शान्ति हेतु जल से भीगे वस्त्र पहनकर नारायण विष्णु का ध्यान करके ब्रह्महत्या के लिए विहित प्रायश्चित्त करे॥३॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु। स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयात्मा भवाननुशास्त्विति॥४॥

सुवर्ण की चोरी करने वाला द्विज राजा के पास जाकर अपने पाप को बतलाते हुए कहे कि आप मुझे दण्डित करें॥४॥

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद् हन्यात्तु तं स्वयम्। वधे तु शुद्ध्यते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा॥५॥

तब राजा स्वयं मुसल पकड़ कर उससे एक बार उस चोर पर प्रहार करे। राजा के द्वारा प्रहार किये जाने पर वह द्विज शुद्ध हो जाता है अथवा वह तपस्या करने पर शुद्ध होता है॥५॥

स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम्। शक्तिञ्चादाय तीक्ष्णाग्रामायसं दण्डमेव वा॥६॥
राजा तेन च गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता। आचक्षाणेन तत्पापमेतत्कर्मास्मि शाधि माम्॥७॥

अथवा वह चोर अपने कन्धे में मुसल या खैर की लकड़ी का डण्डा या तीखीधार वाली शक्ति (भाला या बर्छी) अथवा लोहे का डण्डा लेकर एवं अपने शिर के बालों को खोलकर दौड़ते हुए राजा के पास जाकर अपने पाप को बतलाते हुए यह कहे कि मैंने यह पापकर्म किया है। अतः आप मुझे दण्ड दीजिए॥६-७॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते। अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम्॥८॥

राजा के द्वारा दण्डित किये जाने पर अथवा क्षमा दान देकर (विना दण्डित किये) मुक्त कर दिये जाने पर चोर उस चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है। यदि राजा चोर को दण्डित नहीं करता है तो वह उस चोर के पाप को प्राप्त करता है॥८॥

तपसापनोतुमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्। चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम्॥९॥

जो द्विज सुवर्ण की चोरी के पाप को प्रायश्चित्त रूपी तप से दूर करना चाहता हो वह जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को पहन कर वन में जाकर ब्रह्महत्या करने वाले के लिए विहित प्राश्यचित्त करे॥९॥

स्नात्वाश्वमेधावभृथे पूतः स्यादथवा द्विजः। प्रदद्याद् वाथ विप्रेभ्यः स्वात्मतुल्यं हिरण्यकम्॥१०॥
चरेद्वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यपरायणः। ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये॥११॥

अथवा वह द्विज अश्वमेध यज्ञ के [अन्त में होने वाले] अवभृथस्नान करने पर शुद्ध होता है। अथवा वह ब्राह्मणों को अपने शरीर के भार के तुल्य स्वर्ण का दान दे। अथवा वह स्वर्ण की चोरी करने वाला ब्राह्मण उस पाप से मुक्ति हेतु ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए एक वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करे॥१०-११॥

गुरोर्भार्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः। अवगूहेत् स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम्॥१२॥

काम-वासना के वशीभूत होकर गुरुपत्नी-गमन करने वाला द्विज प्रायश्चित्त हेतु काले लोहे की बनायी गयी और आग में तपा कर लाल हुई स्त्री-मूर्ति का आलिङ्गन करे॥१२॥

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ। अभिगच्छेद् दक्षिणाशामानिपातादजिह्मगः॥१३॥

अथवा वह स्वयं अपने लिङ्ग को अण्डकोश सहित काट कर अपनी अञ्जली में रखकर दक्षिण दिशा में सीधे तब तक चलता रहे जब तक उसका देहान्त न हो जाय॥१३॥

गुर्वङ्गनागमः शुद्ध्यै चरेद् ब्रह्महणो व्रतम्। शाखां वा कण्टकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरम्॥१४॥
अधःशयीत नियतो मुच्यते गुरुतल्पगः। कृच्छ्रं वाब्दं चरेद् विप्रश्चीरवासाः समाहितः॥१५॥

अथवा वह गुरुपत्नीगामी पुरुष ब्रह्महत्या करने वाले के लिए जो व्रत विहित है, उसी व्रत का पालन करे। अथवा किसी पेड़ की काँटों से युक्त शाखा का एक वर्ष तक आलिङ्गन करके नियत रूप से भूमि में एक वर्ष तक शयन करे। ऐसा करने से वह गुरुपत्नीगामी पाप से मुक्त होता है। अथवा चीर वस्त्र पहन कर वह समाहित चित्त होकर एक वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करे॥१४-१५॥

अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुद्ध्यते द्विजः। कालेऽष्टमे वा भुञ्जानो ब्रह्मचारी सदाव्रती॥१६॥

ऐसा करने के बाद अश्वमेध यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान करने पर वह पाप-मुक्त होता है। अथवा वह सदा व्रत का पालन करे और ब्रह्मचारी रहे और आठवें काल में (चौथे दिन सांय काल?) भोजन करे[1]॥१६॥

स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः। अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तद् व्यपोहति पातकम्॥१७॥

एक ही स्थान में खड़ा रहे या एक ही आसन में बैठा रहे या यत्र तत्र विचरण[2] करते हुए तीसरे दिन केवल जल पीकर और भूमि में शयन करते हुए तीन वर्ष बाद वह गुरुतल्पगामी पाप-मुक्त होता है॥१६-१७॥

चान्द्रायणानि वा कुर्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः। पतितैः संप्रयुक्तात्मा अथ वक्ष्यामि निष्कृतिम्॥१८॥

अथवा वह पाप-मुक्ति हेतु पाँच या चार बार चान्द्रायण करे। अब मैं पतित के साथ संसर्ग करने वाले के लिए प्रायश्चित्त बतलाता हूँ॥१८॥

१. द्रष्टव्य- मनृस्मृति ११/२१८, २. द्रष्टव्य- मनुस्मृति ११/२२४

पतितेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विजः। स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्॥१९॥

जो द्विज जिस पतित के साथ [एक वर्ष तक] संसर्ग करता है, वह अपने उस पाप से मुक्ति हेतु उसी पतित के लिए विहित व्रत (प्रायश्चित्त) करे॥१९॥

तप्तकृच्छ्रञ्चरेद्वाथ संवत्सरमतन्द्रितः। षाण्मासिके तु संसर्गं प्रायश्चित्तार्धमाचरेत्॥२०॥

अथवा वह सदैव जागरूक रहकर एक वर्ष तक तप्तकृच्छ्र करे। छः मासं तक पतित के संसर्ग में रहने वाला उपर्युक्त का आधा प्रायश्चित्त करे॥२०॥

एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम्। पुण्यतीर्थाभिगमनात्पृथिव्यां वाथ निष्कृतिः॥२१॥

इन व्रतों (प्रायश्चित्तों) को करने से महापातकी जन अपने पाप को दूर करते हैं। अथवा इस पृथिवी में पवित्र तीर्थों की यात्रा करने से भी उनके पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है॥२१॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। कृत्वा तैश्चापि संसर्गं ब्राह्मणः कामकारतः॥२२॥

कुर्यादनशनं विप्रः पुण्यतीर्थे समाहितः। ज्वलन्तं वा विशेदग्निं ध्यात्वा देवं कपर्दिनम्॥२३॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णस्तेय (सोने की चोरी) तथा गुरुपत्नी से संभोग करने वाला अथवा ऐसा करने वाले पापियों के साथ इच्छापूर्वक संसर्ग करने वाला ब्राह्मण पवित्र तीर्थ में जाकर संयम पूर्वक अनशन करे अथवा भगवान् शिव का ध्यान करते हुए जलती हुई अग्नि में प्रवेश करे॥२२-२३॥

न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्धर्मवादिभिः। तस्मात्पुण्येषु तीर्थेषु दहन्वापि स्वदेहकम्॥२४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे प्रायश्चित्तप्रकरणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

धर्म का प्रवचन करने वाले मुनियों ने उसके लिए अन्य कोई प्रायश्चित्त नहीं बतलाया है। अतः उसको पवित्र तीर्थों में जाकर अपनी देह को अग्नि में जाकर भस्म कर देना चाहिए॥२४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'प्रायश्चित्तकथन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३२॥

❖❖❖

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तकथनम्

व्यास उवाच

गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्नुषामपि। प्रविशेज्ज्वलनंदीप्तं मतिपूर्वमि[illegible] स्थितिः॥१॥

अपनी पुत्री, बहन या पुत्रवधू के साथ जान-बूझ कर संभोग करने वाला द्वि[illegible] प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करे, ऐसा धर्मशास्त्रीय विधान है॥१॥

मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम्। भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ॥२॥

चान्द्रायणञ्च कुर्वीत तस्य पापस्य शान्तये। ध्यायन्देवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम्॥३॥

मौसी, मामी, बुआ एवं भाञ्जी के साथ व्यभिचार करने वाला उस पाप से मुक्ति हेतु जगत्कर्ता अनादि अनन्त भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए कृच्छ्रातिकृच्छ्र और चान्द्रायण करे॥२-३॥

भ्रातृभार्यां समारुह्य कुर्यात्तत् पापशान्तये। चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहितः॥४॥

अपने भ्राता की पत्नी के साथ दुराचार करने पर प्रायश्चित्त रूप में एकाग्र-मन से चार या पाँच बार चान्द्रायण व्रत करे॥४॥

पितृष्वस्रेयीं गत्वा तु स्वस्रीयां मातुरेव च। मातुलस्य सुतां वापि गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥५॥

बुआ की लड़की या मौसी की लड़की या मामा की लड़की के साथ दुराचार करके चान्द्रायण व्रत करे॥५॥

सखिभार्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च। अहोरात्रोषितो भूत्वा ततः कृच्छ्रं समाचरेत्॥६॥

अपने मित्र की पत्नी या साली के साथ संभोग करने पर एक आहोरात्र (एक दिन और एक रात) तक उपवास करके तप्तकृच्छ्र करे॥६॥

उदक्यागमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति। चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः।
शुद्धिः सान्तपनेन स्यान्नान्यथा निष्कृतिः स्मृता॥७॥

रजस्वला स्त्री के साथ संभोग करने पर द्विज तीन रातों के बाद शुद्ध होता है। चाण्डाली के साथ संभोग करने पर तीन बार तप्तकृच्छ्र तथा तदनन्तर सान्तपन करने पर ही उसकी शुद्धि होती है। उसके अतिरिक्त उसकी कोई निष्कृति (प्रायश्चित्त) संभव नहीं है॥७॥

मातृगोत्रां समारुह्य समानप्रवरां तथा। चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मा समाहितः॥८॥

माता के गोत्र की स्त्री अथवा समान प्रवर (अपने ही प्रवर) की स्त्री के साथ संभोग करने पर संयमित और एकाग्रचित्त होकर चान्द्रायणव्रत करने पर शुद्ध होता है॥८॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणींगत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत्। कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥९॥

ब्राह्मणीगमन करने पर ब्राह्मण एक बार कृच्छ्रव्रत करे और कन्या को संभोग से दूषित करने पर चान्द्रायण व्रत करे॥९॥

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु। रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्॥१०॥

पशुयोनि की मादा पशु या रजस्वला स्त्री या योनि से भिन्न स्थान (गुदा) में या जल में वीर्यपात करने पर कृच्छ्र-सान्तपन करे॥१०॥

बन्धकीगमने[१] विप्रस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति। गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥११॥

बन्धकी[२] (व्यभिचारिणी) स्त्री के साथ मैथुन करने वाला ब्राह्मण तीन रात्रियों तक व्रत करने पर शुद्ध होता है। गाय की योनि में मैथुन करने पर प्रायश्चित्त रूप में चान्द्रायण व्रत करे॥११॥

१. वार्द्धिकीगमने- यह अशुद्ध पाठ है। शुद्ध शब्द 'बन्धकी' है। प्रमाण हेतु द्रष्टव्य- प्रायश्चित्तयमूख पृ. १५८-१५९

२. द्रष्टव्य- अतः परं स्वैरिणीस्याद् बन्धकी पञ्चमे भवेत्। आदि पर्व १२२/७७

वेश्यायां मैथुनं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद् द्विजः। पतितां च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति॥१२॥

वेश्या में मैथुन करने पर द्विज प्राजापत्य करे। पतित स्त्री के साथ मैथुन करने पर वह तीन बार कृच्छ्रव्रत करने पर शुद्ध होता है॥१२॥

पुल्कसीगमने चैव कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्। नटीं शैलूषकीं चैव रजकीं वेणुजीविनीम्। गत्वा चान्द्रायणंकुर्यात् तथा चर्मोपजीविनीम्॥१३॥

पुक्कशी (शूद्रा में निषाद से उत्पन्न स्त्री) के साथ संभोग के प्रायश्चित्त रूप में कृच्छ्र और चान्द्रायण करे। नट की स्त्री, शैलूष स्त्री (नर्तक स्त्री), धोबिन, बाँस सम्बन्धी कार्य करने वाले की स्त्री तथा चर्मकार के व्यवसाय वाली स्त्री के साथ मैथुन करने वाला द्विज चान्द्रायण करे॥१३॥

ब्रह्मचारी स्त्रियंगच्छेत्कथञ्चित्काममोहितः। सप्तागारं चरेद् भैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम्॥१४॥
उपस्पृशेत् त्रिषवणं स्वपापं परिकीर्तयन्। संवत्सरेण चैकेन तस्मात्पापात् प्रमुच्यते॥१५॥

यदि ब्रह्मचारी कदाचित् कामवासना से पीडित होकर किसी स्त्री के साथ समागम करता है तो उसे गदर्भ का चर्म पहन कर सात घरों से भिक्षा मांग कर लानी चाहिए तथा अपने पाप कर्म को बतलाते हुए दिन में तीन बार (प्रातः, मध्याह्न एवं सांयकाल) स्नान करना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष तक विहित व्रत करने पर वह उस पाप से मुक्त हो जाता है॥१४-१५॥

ब्रह्महत्याव्रतं चापि षण्मासान् विचरन्यमी। मुच्यते ह्यवकीर्णी तु ब्राह्मणानुमते स्थितः॥१६॥

अवकीर्णी[१] (वीर्य त्याग करने वाला) ब्रह्मचारी ब्राह्मण से अनुमति पाकर छः मास तक संयम पूर्वक ब्रह्महत्या के लिए विहित प्रायश्चित्त करे॥१६॥

सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम्। रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥१७॥
संवत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तं भिक्षाशनः शुचिः। ओङ्कारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा॥१८॥
सावित्रीञ्च जपेन्नित्यं श्रद्धया क्रोधवर्जितः। नदीतीरेषु तीर्थेषु तस्मात् पापाद्विमुच्यते॥१९॥

यदि ब्रह्मचारी सात अहोरात्र तक भिक्षाटन और अग्नि-पूजन नहीं करता अथवा वीर्य-त्याग कर देता है तो वह प्रायश्चित्त हेतु एक वर्ष तक शुद्ध रहकर तथा रात्रि में भिक्षा माँगकर भोजन करे और क्रोध रहित होकर ओङ्कार तथा महाव्याहृतियों (=भूर्भुवः स्वः) के साथ गायत्री मन्त्र का जप नदी-तटों या तीर्थों में जाकर (एक वर्ष तक) करे, जिससे वह उस पाप से मुक्त हो जाता है॥१७-१९॥

हत्वा तु क्षत्रियं विप्रः कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्। अकामतो वै षण्मासान् दद्यात्पञ्चशतंगवाम्॥२०॥

क्षत्रिय की हत्या करने वाला ब्राह्मण प्रायश्चित्त हेतु ब्रह्महत्या करने वाले के लिए विहित व्रत[२] (प्रायश्चित्त) करे। अनचाहे या अनजाने क्षत्रिय की हत्या हो जाय तो तब वह छः मास तक व्रत (ब्रह्महत्या के लिए विहित व्रत) करके पाँच सौ गायों का दान करे[३]॥२०॥

---

१. अवकीर्णी भवेद्गत्वा ब्रह्मचारी त योषितम्। गर्दभं पशुमालभ्य नैऋतं स विशुध्यति॥ याज्ञवल्क्य स्मृति ३/२८०

२. तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः। मनु ११/१२६,

३. अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः। वृषभैका सहस्रा गा दृद्यात् सुचरितव्रतः॥ मनु ११/१२७

अब्दं चरेद्ध्यानयुतो वनवासी समाहितः। प्राजापत्यं सान्तपनं तप्तकृच्छ्रंतु वा स्वयम्॥ २१॥

(छः महीने तक पाँच सौ गायों का दान विषयक अर्थ अनुचित है) अथवा एक वर्ष तक स्वयं वन में निवास करते हुए ध्यान निरत होकर प्राजापत्य, सान्तपन या तप्तकृच्छ्र करे॥ २१॥

प्रमाप्याकामतो वैश्यं कुर्यात्संवत्सरत्रयम्। गोसहस्रंतुपादन्तु प्रदद्याद् ब्रह्महणो व्रतम्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा॥ २२॥

अकामतः (अनचाहे) वैश्य की हत्या कर देने पर ब्राह्मण तीन वर्ष[1] तक ब्रह्महत्या के लिए विहित व्रत (प्रायश्चित्त) करे तथा एक हजार दो सौ पचास (वस्तुतः दो सौ पचास अर्थ अपेक्षित है) गायों का दान करे। अथवा वह कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण करे॥ २२॥

संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादतः। गोसहस्रार्द्धपादञ्च दद्यात्तत्पापशान्तये॥ २३॥

प्रमादवश शूद्र की हत्या कर बैठने पर एक वर्ष तक ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त रूप में विहित व्रत को करे तथा एक हजार दो सौ पचास (?) गायों का दान करे[2]॥ २३॥

अष्टौ वर्षाणि वा त्रीणि कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्। हत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं चैव यथाक्रमम्॥ २४॥

क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की (बुद्धिपूर्वक) हत्या करने पर द्विज क्रमशः आठ वर्ष, छः वर्ष, तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या के लिए विहित प्रायश्चित्त करे॥ २४॥

निहत्य ब्राह्मणीं विप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतं चरेत्। राजन्यां वर्षषट्कं तु वैश्यां संवत्सरत्रयम्॥ २५॥

ब्राह्मण किसी ब्राह्मण स्त्री की हत्या करने पर आठ वर्ष तक ब्रह्महत्या के लिए विहित व्रत (प्रायश्चित्त) करे, क्षत्राणी की हत्या करने पर छः वर्ष तक तथा वैश्य-स्त्री की हत्या करने पर तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या के लिए विहित व्रत करे॥ २५॥

वत्सरेण विशुद्ध्येत शूद्रीं हत्वा द्विजोत्तमः। वैश्यां हत्वा प्रमादेन किञ्चिद् दद्याद् द्विजातये॥ २६॥

शूद्र-स्त्री की हत्या करने पर द्विज एक वर्ष तक ब्रह्महत्या व्रत का पालन करने पर शुद्ध होता है। प्रमादवश (अनजाने) वैश्या स्त्री की हत्या कर बैठने पर द्विज यत्किञ्चित् दान ब्राह्मण को दे॥ २६॥

अन्त्यजानां वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्। पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः॥ २७॥

अन्त्यजों का वध करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। अथवा पराक व्रत करने से भी पाप से शुद्धि हो जाती है, ऐसा भगवान् ब्रह्मा ने कहा है॥ २७॥

मण्डूकं नकुलं काकं बिडालं खरमूषकौ। श्वानं हत्वा द्विजः कुर्यात्षोडशांशं महाव्रतम्॥ २८॥

मण्डूक (मेंढक), नेवला, कौआ, विलाव, गधा, मूषक (चूहा) तथा कुत्ता इनमें से किसी की भी हत्या करने वाला द्विज प्रायश्चित्त रूप में महाव्रत[3] (?) का सोलहवां अश (१/१६) तक व्रत करे॥ २८॥

पयः पिबेत् त्रिरात्रन्तु श्वानं हत्वा ह्यतन्द्रितः। मार्जारं वाथ नकुलं योजनञ्चाध्वनो व्रजेत्॥ २९॥

१. अनचाहे हत्या पर तीन वर्ष के स्थान पर तीन मास होना चाहिए था।

२. द्रष्टव्य- शूद्रं हत्वा चरेद् वर्ष ऋषभैकादशाश्च गाः। हारीत, प्रायश्चितमयूख पं. ७५

३. बारह वर्ष तक चलने वाला व्रत विशेष (?)

कुत्ते, बिल्ली या नेवले की हत्या करने पर तीन रातों तक अतन्द्रित (जागते) रहकर केवल दूध पीकर रहे तथा एक योजन तक पैदल चले॥२९॥

कृच्छ्रं द्वादशरात्रं तु कुर्यादश्ववधे द्विजः। अर्चां कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः॥ ३०॥

अश्व की हत्या करने पर द्विज बारह अहोरात्र तक कृच्छ्रव्रत करे और सर्प की हत्या करने पर काले लोहे की बनी हुई सर्प की आकृति का दान करे॥३०॥

पलालभारकं षण्ढे सीसकञ्चैकमाषकम्। घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणंतु तित्तिरे॥ ३१॥

नपुंसक की हत्या करने पर प्रायश्चित्त रूप में एक भार (१८०० तोला) पुआल तथा एक माषा के तोल को बराबर सीसा दान करना चाहिए। वराह का वध करने पर एक घड़ा भर कर घृत का दान करना चाहिए। तीतर की हत्या करने पर एक द्रोण के तिल का दान करना चाहिए॥३१॥

शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम्। हत्वा हंसं बलाकाञ्च बकं बर्हिणमेव च॥ ३२॥

वानरं श्येनभासञ्च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम्।
क्रव्यादांस्तु मृगानूहत्वा धेनुंदद्यात्पयस्विनीम्॥ ३३॥

तोता को मारने पर प्रायश्चित्त रूप में दो वर्ष की गाय की बछिया तथा कौञ्च की हत्या करने पर गाय की तीन वर्ष की बछिया का दान करना चाहिए। हंस, बलाक (बगला) मोर, वानर, श्येन (बाज) एवं भास (गिद्ध) का वध करने पर ब्राह्मण को गाय का दान करे। मांस- भक्षी वन्य-पशुओं (सिंह, व्याघ्र आदि) की हत्या के प्रायश्चित्त रूप में दूध देने वाली गाय का दान करे॥३२-३३॥

अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्। किञ्चिद्देयंतु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति॥ ३४॥

शाकाहारी (मांस न खाने वाले) पशुओं-मृग आदि की हत्या के प्रायश्चित्त रूप में बछिया का दान करे। ऊँट की हत्या करने पर एक कृष्णल सिक्का का दान करे तथा हड्डी वाले पशुओं की हत्या करने पर प्रायश्चित्त हेतु ब्राहाण को कुछ न कुछ दान दे देना चाहिए। बिना अस्थि (हड्डी) वाले प्राणियों की हत्या करने पर केवल प्राणायाम करने से शुद्धि हो जाती है॥३४॥

फलदानान्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्। गुल्मवल्लीलतानान्तु पुष्पितानाञ्च वीरुधाम्॥ ३५॥

फलदार वृक्ष को काटने पर एक सौ ऋचाओं का जप करना चाहिए तथा गुल्म (अंगूर आदि की लता) वल्ली (गिलोय आदि की बेल) पुष्पित वीरुधों (कूष्माण्ड आदि की बेलों) को काटने पर प्रायश्चित्त रूप में एक सौ ऋचाओं का जप करे (द्रष्टव्य- तत्र वृक्ष-गुल्म-लता-वीरुधां फल पुष्पादिभिरुपकारिणां छेदे गायत्र्यादीनामृचां शतकृत्वो जपः। तावद्गायत्री जपो वा। - विधानपारिजात चतुर्थ खण्ड, पृ. ५७२)॥३५॥

अन्नजानां तु सत्त्वानां रसजानां[१] च सर्वशः। फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम्॥ ३६॥

अन्न आदि में उत्पन्न तथा रस युक्त तरल द्रव्य में उत्पन्न एवं फल-पुष्प आदि में उत्पन्न जीवों के वध के बाद (प्रायश्चित्त रूप में) घृत-प्राशन करने से शुद्धि होती है॥३६॥

१. अण्डजानां च सर्वेषां स्वेदजानां च

हस्तिनाश्च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्। चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः।
मतिपूर्ववधे चास्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते॥३७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे प्रायश्चित्तनिरूपणो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

हाथी की हत्या करने पर तप्तकृच्छ्र करने से शुद्धि होती है। प्रमादवश गौ की हत्या हो जाय तो प्रायश्चित्त रूप में चान्द्रायण या पराकव्रत करना चाहिए, किन्तु जान-बूझकर गोहत्या करने वाले के लिए कोई प्रायश्चित्त विहित नहीं है। (तात्पर्य यह है कि ऐसे पापी की निष्कृति मृत्यु से ही होती है।)॥३७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'प्रायश्चित्तकथन' नामक तैतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तविधानम्

व्यास उवाच

मनुष्याणान्तु हरणं कृत्वा स्त्रीणां गृहस्य च। वापीकूपजलानाञ्च शुद्ध्येच्चान्द्रायणेन तु॥१॥

व्यास जी बोले- मनुष्यों (पुरुषों), स्त्रियों तथा किसी अन्य व्यक्ति के घर, वापी एवं कूप के जल का अपहरण करने वाला चान्द्रायण करने पर शुद्ध होता है (मनु ११/१६३)॥१॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः। चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये॥२॥

दूसरों के घर से अल्प सार (कम महत्त्व) की वस्तुओं की चोरी करने वाला प्रायश्चित्त रूप में चोरी की वस्तु को लौटा कर आत्मशुद्धि हेतु कृच्छ्र-सान्तपन करे (मनु ११/१६४)॥२॥

धान्यान्नधनचौर्यं तु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः। स्वजातीय गृहादेव कृच्छ्रार्धेन विशुध्यति॥३॥

ब्राह्मण यदि सजातीय ब्राह्मण के घर से जान-बूझ कर धान्य, अन्न या धन की चोरी करता है तो वह अर्धकृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध होता है[1]॥३॥

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च। पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनम्॥४॥

भक्ष्य और भोज्य[2] पदार्थों के अपहरण एवं यान (वाहन), शय्या, आसन, पुष्प, मूल तथा फलों की चोरी करने वाला [उन वस्तुओं को लौटा कर] पञ्चगव्य पीने पर शुद्ध होता है॥४॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च। चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम्॥५॥

तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चमड़ा तथा मांस जैसी किसी भी वस्तु के अपहरण पर प्रायश्चित्त रूप में तीन अहोरात्र तक भोजन नहीं करना चाहिए॥५॥

१. द्रष्टव्य मनु ११/१६२, २. भक्ष्यं मोदक-शष्कुल्यादि भोज्यं यावकादि। मनु ११/१६४ पर मेधातिथि भाष्य

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च। अयस्कांस्योपलानाञ्च द्वादशाहं कणाशनम्॥६॥

मणि, मोती, मूँगा, तांबा, चाँदी लोहा, कांसा और पत्थर की चोरी करने वाला बारह दिन तक चावल के टूटे कणों का भोजन ही प्रायश्चित्त रूप में करे॥६॥

कार्पासस्यैव हरणे द्विशफैकशफस्य च। पुष्पगन्धौषधीनाञ्च पिबेच्चैव त्र्यहं पयः॥७॥

कपास की चोरी तथा दो खुर वाले पशुओं (घोड़ा आदि) और पुष्प, सुगन्धित द्रव्य (इत्र आदि) तथा औषधियों की चोरी के प्रायश्चित्त रूप में तीन दिन तक केवल दूध पीकर रहे॥७॥

नरमांसाशनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्। काकञ्चैव तथा श्वानं जग्ध्वा हस्तिनमेव वा।
वराहं कुक्कुटं वाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥८॥

मनुष्य का मांस-भक्षण करने पर प्रायश्चित्त रूप में चान्द्रायण करे। कौआ, कुत्ता, हाथी, सुअर तथा मुर्गे का मांस खाने वाला प्रायश्चित्त रूप में तप्तकृच्छ्र करने पर शुद्ध होता है॥८॥

क्रव्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव वा। गोगोमायुकपीनां च तदेव व्रतमाचरेत्॥९॥

कच्चा मांस खाने वाले पशुओं का मांस या मल-मूत्र खाने पर तथा गो (वृषभ), सियार या बन्दर का मांस खाने पर भी वही पूर्वोक्त व्रत (तप्तकृच्छ्र) करे॥९॥

शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च। उपोष्य द्वादशाहञ्च कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्॥१०॥

शिशुमार (सूँस नामक जल-जीव), चाष (नीलकण्ठ) और मत्स्य का मांस खाने पर बारह दिनों तक उपवास करने के बाद कूष्माण्ड-संज्ञक मन्त्रों से घृत की आहुति देकर होम करना चाहिए॥१०॥

नकुलोलूकमार्जारानूजग्ध्वा सान्तपनं चरेत्। श्वापदोष्ट्रखरानूजग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।
प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु॥११॥

(कूष्माण्ड संज्ञक मन्त्र यजुर्वेद में (२०/१४-१६) यद् देवा देवहेलनंत्र... इत्यादि, यदि दिवा यदि नक्तं.... इत्यादि तथा यदि जाग्रद् यदि स्वप्न... इत्यादि हैं।) नेवला, उल्लू तथा बिल्ली का मांस खाने पर सान्तपन करे। हिंसक पशुओं (व्याघ्र, सिंह आदि), ऊँट और गधे का मांस खाने पर तप्तकृच्छ्र करने से शुद्धि होती है। पीछे कहे गये विधान (कूष्माण्ड होम) से संस्कार (होम) भी करना चाहिए॥११॥

बकं चैव बलाकां च हंसं कारण्डवं तथा। चक्रवाकं प्लवं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम्॥१२॥

बक (बगुला) बलाका (बत्तख), हंस, कारण्डव (बत्तख की श्रेणी का पक्षी), चक्रवाक (चकोर) एवं प्लव (?मेंढक) का मांस खाने पर प्रायश्चित्त रूप में बारह दिन तक निराहार रहे॥१२॥

कपोतटिट्टिभांश्चैव शुकं सारसमेव च। उलूकं जालपादञ्च जग्ध्वाप्येतद् व्रतञ्चरेत्॥१३॥

कबूतर, टिटिहरी, तोता, सारस, उल्लू तथा जालपाद (कलहंस) का मांस खाने पर प्रायश्चित्त हेतु वही (पीछे कहा गया) व्रत करे॥१३॥

शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च। जग्ध्वा चैव कटाहारमेतदेव व्रतं चरेत्॥१४॥

शिशुमार (सूँस) तथा चाष (नीलकण्ठ) का मांस, मछली का मांस तथा कट अर्थात् गीदड़ (सियार) का मांस खाने पर वही (पीछे कथित) व्रत करे॥१४॥

कोकिलं चैव मत्स्यांश्च मण्डूकं भुजगं तथा। गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति॥ १५॥

कोयल, मछली, मेंढक एवं सर्प का मांस भक्षण करने वाला एक मास तक गोमूत्र तथा यावक (जौ के आटे) के भोजन (या गोमूत्र पकाये हुए जौ के आटे अर्थात् सत्तू के भोजन) से शुद्ध होता है॥ १५॥

जलेचरांश्च जलजान्प्रणुदानथ विष्किरान्। रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत्॥ १६॥

जलचर जीवों या जल में उत्पन्न जीवों, प्रणुदों अर्थात् कठफोड़वा जैसे चौंच मारने वाले पक्षी, विष्किरों (बिखरे हुए दानों को चुगने वाली गौरैया जैसे पक्षी) तथा रक्त चरणों वाले पक्षियों (तोता आदि) का मांस भक्षण करने पर शुद्धि हेतु भी पूर्वोक्त शुद्धि विधान एक सप्ताह तक करे॥ १६॥

शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थं च तथा कृतम्। भुक्त्वा मांसं चरेदेतत् तत्पापस्यापनुत्तये॥ १७॥

कुत्ते का मांस, सूखा हुआ मांस तथा केवल अपने लिए पकाये हुए मांस को खाकर भी उस पाप से शुद्धि हेतु वही पूर्वोक्त शुद्धि विषयक विधान का पालन करे॥ १७॥

वृन्ताकं भूस्तृणं शिग्रुं कवकं[1] चटकं तथा। प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा खड्गं कुम्भीरमेव[2] च॥ १८॥

वृन्ताक (बैगन), भूस्तृण (?मूली आदि), शिग्रु (सहजन), कवक (कुकुरमुत्ता) तथा गौरया, खड्ग (गैंडा) तथा कुम्भीर (घड़ियाल) का मांस खाने पर प्राजापत्य करे॥ १८॥

पलाण्डुं लशुनं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्। नालिकां तण्डुलीयं च प्राजापत्येन शुध्यति॥ १९॥

प्याज तथा लहसुन खाने पर चान्द्रायण करे। नालिका (कमलनाल) तथा तण्डुलीय (चौलाई) का शाक खाने पर प्राजापत्य व्रत करने से शुद्धि होती है॥ १९॥

अश्मान्तकं तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति। प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्कुसुम्भस्य च भक्षणे॥ २०॥
अलाबुंकिंशुकञ्चैव भुक्त्वाप्येद्व्रतञ्चरेत्। एतेषाञ्च विकाराणि पीत्वा मोहेन वा पुनः॥ २१॥
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति। उदुम्बरञ्च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥ २२॥

अश्मन्तक नामक पौधा या अरुई (घुइयाँ) तथा पोत (किसी पौधे का अंकुर) को खाने पर तप्कृच्छ्र करने से शुद्धि होती है। तथा कुसुम्भ (?) खाने पर प्राजापत्य करने से शुद्धि होती है॥ २०॥ अलाबु (गोल लौकी) तथा किंशुक (पलाश) का भक्षण करने पर भी उसी प्राजापत्य व्रत को करना चाहिए। इन वस्तुओं के विकारों (अर्थात् मदिरा या सुरा) को मोहवश पीने वाला गोमूत्र के साथ यावक (जौ का आटा या सत्तू) को सात रात्रियों तक खाकर रहे तभी वह शुद्ध होता है। स्वेच्छया उदुम्बर (गूलर) को खाने वाला तप्तकृच्छ्र करने पर शुद्ध होता है॥ २१-२२॥

भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा। चान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणः सुसमाहितः॥ २३॥

नव श्राद्ध (मृत्यु के बाद प्रथम दिन से लेकर दशवें दिन तक के श्राद्ध) एवं मरणाशौच वाले तथा जननाशौच वाले के हाथ का भोजन करने पर ब्राह्मण संयमित होकर चान्द्रायण करके शुद्ध होता है॥ २३॥

यस्याग्नौ हूयते नैव न चैवाग्रं च दीयते[3]। चान्द्रायणं चरेत् सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः॥ २४॥

१. कुटकं, २. कुम्भीकमेव, ३. यस्यागनो हूयते नित्यमन्नस्याग्रं न दीयते।

जिस घर में नित्य अग्नि में हवन नहीं होता है और आगन्तुक अतिथि या भिक्षुक आदि को अन्न का अग्र (चार गास) भी नहीं जाता है, उस घर का अन्न खाने वाला ब्राह्मण सम्यक् रूप से चान्द्रायण करे॥ २४॥

अभोज्यान्नन्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम्। अन्तावसायिनाञ्चैव तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति॥ २५॥

सभी वर्णों का पकाया हुआ अभोज्य अन्न खाने पर तथा सात अन्त्यावसायियों (चाण्डाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, मागध, वैदेहेक एवं आयोगव) का अन्न खाने वाला तप्तकृच्छ्र करने पर शुद्ध होता है॥ २५॥

चाण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणञ्चरेत्। बुद्धिपूर्वन्तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च।
असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्॥ २६॥

चाण्डाल का अन्न खाने पर सम्यक् रूप से चान्द्रायण करे और यदि वह जान बूझ कर ऐसा करता है तो एक वर्ष तक कृच्छ्र करके पुनः संस्कार करने पर शुद्ध होता है। सुरा से भिन्न जो मद्य हो उसे पीने पर प्रायश्चित्त रूप में चान्द्रायण करे॥ २६॥

अभोज्यान्नन्तु भुक्त्वा च प्राजापत्येन शुध्यति। विण्मूत्रप्राशनं कृत्वा रेतसश्चैतदाचरेत्॥ २७॥

अभोज्य अन्न खाने पर ब्राह्मण प्राजापत्य करने से शुद्ध होता है। मल-मूत्र एवं वीर्य का भक्षण करने पर भी वह प्राजापत्य करे॥ २७॥

अनादिष्टे तु चैकाहं सर्वत्र तु यथार्थतः। विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः॥ २८॥
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्। अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च॥ २९॥
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः। क्रव्यादां पक्षिणां चैव प्राश्य मूत्रपुरीषकम्॥ ३०॥
महासांतपनं मोहात् तथा कुर्याद् द्विजोतमः। भासमण्डूककुररे विष्किरे कृच्छ्रमाचरेत्॥ ३१॥
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने। क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद्वैश्ये चैवातिकृच्छ्रकम्॥ ३२॥
शूद्रोच्छिष्टंद्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्। सुराया भाण्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ३३॥

जिन अन्य अभक्ष्य वस्तुओं के विषय में कोई प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है, उनका भक्षण करने पर एक दिन उपवास करे। [मनु ११/१५४ के अनुसार] ग्राम (गाँव) का सूकर, गधा, ऊँट, गोमायु (शृगाल, गीदड़), वानर तथा कौआ जैसे प्राणियों का मल (विष्ठा) या मूत्र को निगलने पर द्विज प्रायश्चित्त हेतु चान्द्रायण करे। [मनु ११/१५० के अनुसार] तीनों द्विजाति वर्णों के लोग अज्ञान से विष्ठा, मूत्र या सुरा के स्पर्श वाली वस्तु का भक्षण करने पर पुनः संस्कार (यज्ञोपवीत संस्कार) करने पर शुद्ध हो सकते हैं। अज्ञान में मांस-भक्षी पशुओं तथा पक्षियों का मल-मूत्र का भक्षण करने पर द्विजश्रेष्ठ को शुद्धि हेतु महासान्तपन करना चाहिए। भास (गिद्ध), मेढ़क, कुररनामक पक्षी, विष्किर (गौरैया जैसे) पक्षी का मांस भक्षण करने पर द्विज को कृच्छ्र करना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण किसी अन्य ब्राह्मण का जूठा भोजन खा बैठे तो वह प्राजापत्य व्रत करने पर शुद्ध होता है, क्षत्रिय का जूठा भोजन खाने पर तप्तकृच्छ्र, वैश्य का जूठा भोजन खाने पर अतिकृच्छ्र और शूद्र का उच्छिष्ट भोजन खाने पर चान्द्रायण करने पर शुद्ध होता है। सुरा (मदिरा) के पात्र में रखा हुआ जल पीने पर भी ब्राह्मण को शुद्धि हेतु चान्द्रायण करना चाहिए॥ २८-३३॥

शुनोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति। गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषञ्च वा गवाम्॥ ३४॥

कुत्ते का जूठा भोजन खाने वाला तथा गायों के पीने के बाद शेष बचे हुए जल को पीने वाला ब्राह्मण गोमूत्र युक्त यावक (सत्तू) के भोजन पर तीन रात तक निर्भर रहने के बाद शुद्ध होता है॥३४॥

अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद्यदि। तदा सान्तपनं कृच्छ्रं व्रतं पापविशोधनम्॥३५॥

मल (विष्ठा) और मूत्र से दूषित जल को यदि ब्राह्मण पी लेता है तो वह पाप से शुद्धि हेतु कृच्छ्र और सान्तपन व्रत करे॥३५॥

चाण्डालकूपे भाण्डेषु यदि ज्ञानात् पिबेज्जलम्। चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोधनम्॥३६॥

यदि ब्राह्मण किसी चाण्डाल के कूप से अथवा उसके पात्र से ज्ञान पूर्वक जल पीता है तो वह पाप से शुद्धि हेतु सान्तपन कृच्छ्र (कृच्छ्र और सान्तपन) करे॥३६॥

चाण्डालेन तु संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः। त्रिरात्रव्रतमुख्येन पञ्चगव्येन शुध्यति॥३७॥

चाण्डाल के द्वारा स्पर्श किये हुए जल को पीने पर ब्राह्मण तीन अहोरात्र तक व्रत करते हुए पञ्चगव्य का पान करने पर शुद्ध होता है॥३७॥

महापातकिसंस्पर्शे भुंक्तेऽस्नात्वा द्विजो यदि। बुद्धिपूर्वं यदा मोहात् तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्॥३८॥

जानबूझकर महापातकी का स्पर्श करने के बाद यदि कोई ब्राह्मण मूर्खतावश बिना स्नान किये भोजन कर लेता है तो वह शुद्धि हेतु तप्तकृच्छ्र करे॥३८॥

स्पृष्ट्वा महापातकिनं चाण्डालं वा रजस्वलाम्। प्रमादाद्भोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति॥३९॥

महापातकी, चाण्डाल या रजस्वला स्त्री का स्पर्श करके यदि कोई ब्राह्मण प्रमादवश (लापरवाही के कारण) बिना स्नान किये भोजन कर लेता है तो वह तीन अहोरात्र तक उपवास रखने के बाद शुद्ध होता है॥३९॥

स्नानार्हो यदि भुञ्जीत ह्यहोरात्रेण शुध्यति। बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः॥४०॥

भगवान् ब्रह्मा ने कहा है कि स्नान करने में सक्षम होते हुए यदि कोई व्यक्ति बिना स्नान किये भोजन करता है तो वह अहोरात्र [पर्यन्त उपवास रखने] से शुद्ध होता है, किन्तु यदि वह जानबूझ कर ऐसा करता है तो कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है॥४०॥

भुक्त्वा पर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषितम्। भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा॥४१॥

बासी भोजन या गाय आदि के द्वारा जूठा किया गया भोजन खाने पर आत्मशुद्धि हेतु उपवास करे अथवा कृच्छ्र का चौथाई व्रत करे॥४१॥

संवत्सरान्ते कृच्छ्रं तु चरेद् विप्रः पुनः पुनः। अज्ञानभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥४२॥

अज्ञान में अशुद्ध और अभक्ष्य भोजन खाने तथा विशेषतः जानबूझ कर ऐसा भोजन खाने के प्रायश्चित्त हेतु सदैव वर्ष के अन्त में ब्राह्मण को विशेष रूप से पुनः कृच्छ्र व्रत करना चाहिए॥४२॥

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च। अभिचारमहीनञ्च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति॥४३॥

व्रात्यों (जाति बहिष्कृत पतितों) का यज्ञ कराने तथा अपने सपिण्डों से पृथक् जनों की अन्त्येष्टि

स्वयं करने, अभिचार (मारण, मोहन आदि तान्त्रिक कृत्य) तथा अहीन-याग (?) करने वाला द्विज तीन बार कृच्छ्र करने पर शुद्ध होता है (द्रष्टव्य मनु ११/१९७)॥४३॥

ब्राह्मणादिहतानां तु कृत्वा दाहादिकं द्विजः। गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येन शुध्यति॥४४॥

बाह्मण आदि के द्वारा मारे गये मनुष्यों का दाह-संस्कार आदि कृत्य करने वाला द्विज गोमूत्र युक्त यावक (जौ का आटा या सत्तू) के आहार पर निर्भर रहते हुए प्राजापत्य करने पर शुद्ध होता है॥४४॥

तैलाभ्यक्तो[१] द्विजो यश्च कुर्यान्मूत्रपुरीषके। अहोरात्रेण शुद्ध्यते श्मश्रुकर्मणि मैथुने॥४५॥

शरीर में तेल लगा कर मल-मूत्र त्याग करने, दाढ़ी बनाने अथवा मैथुन करने पर द्विज अहोरात्र पर्यन्त उपवास करके शुद्ध होता है॥४५॥

एकाहेन विवाहाग्निं[२] परिहाप्य द्विजोत्तमः। त्रिरात्रेण विशुद्ध्येत त्रिरात्रात्षडहः परम्॥४६॥

जो द्विज एक दिन के लिए भी विवाहाग्नि का त्याग (अर्थात् विवाह के दिन से स्थापित गृह्याग्नि में हवन का त्याग) करने पर तीन दिनों तक उपवास करने पर शुद्ध होता है और तीन दिनों तक गृह्याग्नि में हवन का त्याग करने पर छः दिनों तक उपवास करने पर शुद्ध होता है॥४६॥

दशाहं द्वादशाहं वा परिहाप्य प्रमादतः। कृच्छ्रं चान्द्रायणं कुर्यात् तत्पापस्योपशान्तये॥४७॥

प्रमादवश दश या बारह दिन तक गृह्याग्नि में हवन का त्याग करने पर द्विज को उस पाप की शान्ति हेतु कृच्छ्र और चान्द्रायण करना चाहिए॥४७॥

पतिताद् द्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति। चरेच्च विधिना कृच्छ्रमित्याह भगवान्मनुः॥४८॥

पतित व्यक्ति से द्रव्य (धन या कोई भी मूल्यवान वस्तु) लेने पर द्विज उसको त्याग देने के बाद प्रायश्चित्त रूप में यथाविधि कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है, ऐसा भगवान् मनु ने कहा है॥४८॥

अनाशकात्निवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा। चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च॥४९॥

पुनश्च जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः। शुद्ध्येयुस्तद् व्रतं सम्यक् चरेयुर्धर्मदर्शिनः॥५०॥

आमरण अनशन का व्रत लेकर उससे भ्रष्ट होने वाले तथा संन्यास ग्रहण करके तदनन्तर उससे भ्रष्ट होने वाले द्विज तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायण करें तथा तदनन्तर पुनः जातकर्म आदि संस्कार किये जाने पर ही वे शुद्ध होते हैं। तदनन्तर वे धर्म को देखते-विचारते हुए अपने द्विजोचित व्रत (धर्म) का सम्यक् रूप से पालन करें॥४९-५०॥

अनुपासितसन्ध्यस्तु तदहर्यापको भवेत्। अनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद् रात्रिमेव हि॥५१॥

यदि ब्राह्मण ने प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन नहीं किया हो तो उसे वह दिन बिना भोजन किये संयमित रहकर बिताना चाहिए और यदि सायंकालीन सन्ध्या-वन्दन न किया हो तो उस रात्रि को भोजन किये बिना व्यतीत करे॥५१॥

अकृत्वा समिदाधानं शुचिः स्नात्वा समाहितः। गायत्र्यष्टसहस्रस्य जप्यं कुर्याद विशुद्धये॥५२॥

१. तैलाभ्यक्तोऽथ वान्तो वा, २. विहायाग्निं

गार्हपत्य अग्नि में समिधा डाल कर नित्य होम नहीं करने पर प्रायश्चित्त हेतु स्नान करके शुद्ध होकर एकाग्र मन से गायत्री मन्त्र का आठ हजार संख्या तक जप करे॥५२॥

उपासीत न चेत् सन्ध्यां[1] गृहस्थो हि प्रमादतः। स्नात्वा विशुद्ध्यते सद्यः परिश्रांतश्च संयतः॥५३॥

यदि कोई गृहस्थ प्रमादवश या अत्यन्त श्रान्त (थका) होने के कारण सन्ध्या-वन्दन नहीं करता है तो वह स्नान करके संयमित होने पर शुद्ध हो जाता है॥५३॥

वेदोदितानि नित्यानि कर्माणि च विलोप्य तु। स्नातको व्रतलोपं तु कृत्वा चोपवसेद्दिनम्॥५४॥

वेद में कथित नित्यकर्मों का लोप (अर्थात् पालन नहीं) करने तथा अपने लिए विहित व्रत का पालन न करने पर भी स्नातक को एक दिन का उपवास करना चाहिए। (द्र० मनु ११/२०३)॥५४॥

संवत्सरं चरेत्कृच्छ्रमग्न्युत्सादी[2] द्विजोत्तमः। चान्द्रायणं चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन शुद्ध्यति॥५५॥

अपने घर में अग्नि (अग्निहोत्री?) का त्याग करने वाले ब्राह्मण को एक वर्ष तक कृच्छ्र करना चाहिए और व्रात्य को चान्द्रायण करके गोदान करना चाहिए तभी वह शुद्ध होता है॥५५॥

नास्तिक्यं यदि कुर्वीत प्राजापत्यं चरेद् द्विजः। देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति॥५६॥

नास्तिकता करने वाला ब्राह्मण प्राजापत्य करे। देवता के प्रति द्रोह तथा गुरु के प्रति द्रोह करने पर तप्तकृच्छ्र से शुद्ध होता है॥५६॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः। त्रिरात्रेण विशुद्ध्येच्च नग्नो वा प्रविशेज्जलम्॥५७॥

ऊँट की सवारी या गधे की सवारी स्वेच्छया करने पर तथा नग्न होकर स्नान हेतु जल में प्रवेश करने पर भी शुद्धि हेतु तीन रात तक उपवास करे (द्रष्टव्य- मनु ११/२०१)॥५७॥

षष्ठान्नकालतामासं संहिताजप एव च। होमाश्च शाकला नित्यं अपाङ्क्तानां विशोधनम्॥५८॥

जिन ब्राह्मणों को अपाङ्क्तेय (ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठने के अयोग्य) घोषित किया गया हो वे शुद्धि हेतु एक मास तक तीसरे दिन सायंकाल एक बार भोजन करें, अपने वेद की संहिता के मन्त्रों का जप करें तथा [ऋग्वेद की] शाकल शाखा के मन्त्रों से होम करें। इससे अपांक्तेय द्विज शुद्ध हो जाते हैं॥५८॥

नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि। अहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥५९॥

ब्राह्मण यदि नीले या लाल रंग का वस्त्र पहनता है तो वह एक अहोरात्र तक उपवास रख कर स्नान करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है॥५९॥

वेदधर्मपुराणानां चाण्डालस्य तु भाषणे। चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्न ह्यन्या तस्य निष्कृतिः॥६०॥

चाण्डाल को वेद, पुराण और धर्मशास्त्र विषयक उपदेश देने वाले ब्राह्मण की शुद्धि चान्द्रायण से होती है, उसके अतिरिक्त उसके लिए अन्य कोई प्रायश्चित्त विहित नहीं है॥६०॥

उद्बन्धनादिनिहतं संस्पृश्य ब्राह्मणः क्वचित्। चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात् प्राजापत्येन वा पुनः॥६१॥

उद्बन्धन (फाँसी लगाने) आदि से आत्महत्या करने वाले मृतक का स्पर्श करने पर ब्राह्मण की शुद्धि चान्द्रायण अथवा प्राजापत्य करने पर होती है॥६१॥

---

१. उपवासी चरेत् सन्ध्यां, २. मन्योत्सादी

उच्छिष्टो यद्यनाचांतश्चाण्डालादीन् स्पृशेद् द्विजः। प्रमादाद् वै जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम्॥६२॥
द्रुपदानां शतं वापि ब्रह्मचारी समाहितः। त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥६३॥

यदि कोई ब्राह्मण जूठे मुख से तथा आमचन किये बिना ही प्रमादवश चाण्डाल आदि का स्पर्श करता है तो शुद्धि हेतु स्नान करके गायत्री मन्त्र का आठ हजार जप करे। अथवा वह ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तीन अहोरात्रों तक उपवास रख कर एकाग्र मन से और सम्यक् रूप से 'द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव (इत्यादि यजर्वेद २०/२० के) मन्त्र का जप करने और तब पञ्चगव्य को पीने से वह शुद्ध होता है॥६२-६३॥

चाण्डालपतितादींस्तु कामाद्यः संस्पृशेद् द्विजः। उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये॥६४॥

जो ब्राह्मण जूठे मुख वाला होने पर भी जान-बूझ कर चाण्डाल और पतित आदि व्यक्तियों का स्पर्श करता है, वह शुद्धि हेतु प्राजापत्य करे॥६४॥

चाण्डालसूतकिशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम्। स्पृष्ट्वा स्नायाद् विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टपतितांस्तथा॥६५॥

चाण्डाल, सूतकी (जननाशौच वाला व्यक्ति), एवं शव तथा रजस्वला नारी का स्पर्श करने पर शुद्धि हेतु स्नान करे तथा उनको स्पर्श करने वाले का तथा पतितों का स्पर्श करने पर भी शद्धि हेतु स्नान करे॥६५॥

चाण्डालसूतकिशवैः संस्पृष्टं संस्पृशेद् यदि। ततः स्नात्वाथ आचम्य जपं कुर्यात्समाहितः॥६६॥

चाण्डाल, सूतक वाले व्यक्ति तथा शव के स्पर्श से अशुद्ध व्यक्ति का स्पर्श यदि कोई द्विज करता है तो वह स्नान और आचमन करके एकाग्र भाव से जप (गायत्री जप) करे॥६६॥

तत्स्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः। स्नात्वाचामेद्विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः पितामहः॥६७॥

जो द्विजश्रेष्ठ जानबूझकर उन चाण्डाल आदि के द्वारा स्पर्श किये गये व्यक्ति का स्पर्श करता है, वह शुद्धि हेतु स्नान करके आचमन करे, ऐसा पितामह ब्रह्मा ने कहा है॥६७॥

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् संस्रवेद्गुदम्[१]। कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद् घृतम्[२]॥६८॥

भोजन करते समय यदि कदाचित् किसी द्विज के गुदा से मल निकल जाय तो वह शौच करके स्नान करे और तब उपवास करके घृत से हवन करे॥६८॥

चाण्डालान्त्य शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद्विशुद्धये। स्पृष्ट्वाभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्यमहोरात्रेण शुद्ध्यति॥६९॥

चाण्डाल और अन्त्यज के शव का स्पर्श करने पर द्विज कृच्छ्र करके शुद्ध होता है। जब शरीर में उबटन या तेल लगाया हुआ हो उस समय अस्पृश्य व्यक्ति का स्पर्श करने पर एक अहोरात्र के बाद स्नानोपरान्त शुद्ध होता है॥६९॥

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात्प्राणायामत्रयं शुचिः। पलाण्डुं लशुनञ्चैव घृतं प्राश्य ततः शुचिः॥७०॥

सुरा का स्पर्श करने पर द्विज तीन बार प्राणायाम करने पर शुद्ध होता है। प्याज और लहसुन का स्पर्श करने पर द्विज घृत-प्राशन करने पर शुद्ध होता है॥७०॥

१. संस्पृशेद् यदि, २. जुहुयाद् व्रतम्

ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायं पयः पिबेत् । नाभेरूर्ध्वन्तु दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत्॥७१॥
स्यादेतत् त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम् । स्नात्वा जपेद् वा सावित्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तमः॥७२॥

कुत्ते के द्वारा काटे जाने पर ब्राह्मण तीन दिन तक सायंकाल केवल दूध पीकर बितावे। कुत्ते के द्वारा नाभि के ऊपर काटे जाने पर उसी विधि का दुगुना करे अर्थात् छः दिन तक दूध पर निर्भर रहे एवं बाहु में काटे जाने पर उपर्युक्त का तिगुना तथा शिर में काटे जाने पर उसका चौगुना अर्थात् बारह दिन तक दूध पीकर बितावे। अथवा कुत्ते के द्वारा काटे जाने पर द्विज स्नान करके गायत्री मन्त्र का जप करे॥७१-७२॥

अनिर्वर्त्य महायज्ञान्यो भुंक्ते तु द्विजोत्तमः । अनातुरःसति धने कृच्छ्रार्द्धेन स शुद्ध्यति॥७३॥

जो ब्राह्मण स्वस्थ और धन-सम्पन्न होने पर भी प्रतिदिन पञ्च-महायज्ञों को किये बिना भोजन करता है, वह अर्धकृच्छ्र करने पर शुद्ध होता है॥७३॥

आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद् यस्तु पर्वणि । ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोऽपि कृच्छ्रार्धमाचरेत्॥७४॥

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण पर्वकाल में उपस्थान अर्थात् देवों की उपासना (पूजा) नहीं करता तथा जो गृहस्थ अपनी पत्नी के साथ ऋतुकाल में मैथुन नहीं करता वह भी कृच्छ्र का आधा (कृच्छ्राध) व्रत करने पर शुद्ध होता है॥७४॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं[१] सन्निवेश्य च । सचैलो जलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति॥७५॥

जल के अभाव में मल-मूत्र त्याग कर शौच (शुद्धि) नहीं करने वाला तथा मल-मूत्र के आवेग को रोक पाने में असमर्थ होने के कारण जल में मल-मूत्र का त्याग करने वाला ब्राह्मण भी सवस्त्र जल के अन्दर प्रविष्ट होकर स्नान करने के बाद गाय को स्पर्श करके शुद्ध होता है (द्रष्टव्य- मनु ११/२०२)॥७५॥

बुद्धिपूर्वं त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः । गायत्र्यष्टसहस्रं तु त्र्यहं चोपवसेद् द्विजः॥७६॥

यदि वह जान बूझकर सूर्योदय काल तक सोया हो तो उस पाप के प्रायश्चित्त रूप में जल में प्रविष्ट होकर आठ हजार की संख्या में गायत्री जप करे तथा तीन दिन तक उपवास करे॥७६॥

अनुगम्येच्छया शूद्रं प्रेतीभूतं द्विजोत्तमः । गायत्र्यष्टसहस्रञ्च जपं कुर्यान्नदीषु च॥७७॥

यदि ब्राह्मण स्वेच्छया किसी शूद्र की मृत्यु होने पर उसकी शव-यात्रा में साथ जाता है तो शुद्धि हेतु नदी तट में जाकर गायत्री मन्त्र का आठ हजार जप करे॥७७॥

कृत्वा तु शपथं विप्रो विप्रस्य वधसंयुतम्[२] । स चैव यावकान्नेन कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्॥७८॥

किसी ब्राह्मण के वध विषयक मिथ्या शपथ करने वाला द्विज जौ के अन्न (सत्तू) पर [आहार हेतु] निर्भर रहकर चान्द्रायण व्रत करे॥७८॥

पङ्क्तौ विषमदानन्तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति।
छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम॥७९॥

एक पंक्ति में भोजन हेतु बैठे हुए ब्राह्मणों में किसी को कुछ और किसी को उससे भिन्न भोज्य

१. नाप्यार्तःशरीरं, २. विप्रस्यावधिसंयतम्

पदार्थ परोसने वाला कृच्छ्र करने पर शुद्ध होता है। चाण्डाल की छाया में पैर रखने वाला द्विज स्नान करके घृत-प्राशन करे॥७९॥

ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाग्निं चन्द्रमेव वा। मानुषं चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति॥८०॥

अशुद्ध अवस्था में अग्नि या चन्द्रमा का दर्शन करने वाला द्विज सूर्य का दर्शन करे। मनुष्य की अस्थि का स्पर्श करने पर द्विज स्नान करने पर शुद्ध होता है॥८०॥

कृत्वा तु मिथ्याध्ययनं चरेद्भैक्षं तु वत्सरम्। कृतघ्नो ब्राह्मणगृहे पञ्चसंवत्सरव्रती॥८१॥

मिथ्या अध्ययन (असत् विषयों का अध्ययन या अध्ययन का दिखावा) करने पर द्विज प्रायश्चित्त हेतु एक वर्ष तक भिक्षाटन करे। कृतघ्न द्विज को प्रायश्चित्त रूप में पाँच वर्ष तक किसी ब्राह्मण के घर में सेवा-व्रत का पालन करते हुए रहना चाहिए॥८१॥

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः। स्नात्वा नाश्नन्नहः शेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८२॥

ब्राह्मण को हुङ्कार (हूँ कहकर धमकाने) तथा अपने गुरुजनों को 'तू' या 'तुम' कहने पर [प्रायश्चित्त हेतु] स्नान करके दिन भर भूखा रहे और उन गुरुजनों को प्रणाम करके [क्षमा माँगते हुए] प्रसन्न करे (मनु ११/२०४)॥८२॥

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठं बद्ध्वाऽथ वाससा। विवादे चापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८३॥

उनको एक तिनके मात्र से भी ताड़ित करने पर या उनके कण्ठ को वस्त्र से बाँधने पर या वाद-विवाद में उनको परास्त (पराजित) करके उनके चरणों में विनत होकर उन्हें प्रसन्न करे (मनु ११/२०५)॥८३॥

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने। कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्॥८४॥

ब्राह्मण पर [शस्त्र आदि से] प्रहार करने पर कृच्छ्र करे और उसे पटक कर गिरा देने पर अतिकृच्छ्र करे तथा मार-पीट कर उसके शरीर से रक्त बहा देने पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र करे (मनु ११/२०८)॥८४॥

गुरोराक्रोशमनृतं कुर्यात् कृत्वा विशोधनम्। एकरात्रं निराहारः तत्पापस्यापनुत्तये॥८५॥

गुरु के प्रति आक्रोश करने (निन्दा या कटु वचन कहने) या अनृत वचन बोलने के पाप को दूर करने के लिए प्रायश्चित्त रूप में एक अहोरात्र तक निराहार रहे॥८५॥

देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते। उल्मुकेन दहेज्जिह्वां दातव्यं च हिरण्यकम्॥८६॥

देवताओं और ऋषियों (पुण्यात्मा महापुरुषों, योगियों) की ओर थूकने या उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करने (अपशब्द कहने) पर [प्रायश्चित्त रूप में] जलती हुई लकड़ी से जिह्वा को दग्ध करे और स्वर्ण का दान करे॥८६॥

देवोद्यानेषु यः कुर्यात् मूत्रोच्चारं सकृद् द्विजः। छिन्द्याच्छिश्नं विशुध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्॥८७॥

देवता को समर्पित उद्यान में जो ब्राह्मण एक बार भी मूत्र त्याग करता है, वह अपने पाप से शुद्धि हेतु अपने लिङ्ग का छेदन (काट) करके चान्द्रायण करे॥८७॥

देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तमः। शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा चान्द्रागणमथाचरेत्॥८८॥

मोहवश (नासमझ होकर) देवालय [के परिसर] में मूत्र त्याग करने वाला द्विज अपनी मूत्रेन्द्रिय को काट कर चान्द्रायण करे॥८८॥

देवतानामृषीणां च गुरूणां[1] चैव कुत्सनम्। कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्यं द्विजोत्तमः॥८९॥

देवों, ऋषियों तथा गुरुजनों (माता-पिता, आचार्य, शिक्षक) की निन्दा करने पर द्विज को [अपने पाप से शुद्धि हेतु] सम्यक् रूप से प्राजापत्य करना चाहिए॥८९॥

तैस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्चयेत्। दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्तं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरेत्॥९०॥

देवों, ऋषियों आदि की निन्दा करने वालों के साथ वार्तालाप करने पर द्विज स्नान करके देव-पूजन करे। उनको देखने के बाद शुद्धि हेतु भगवान् सूर्य का दर्शन करे तथा उनका स्मरण होने पर भगवान् विश्वेश्वर शिव का स्मरण करे॥९०॥

यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥९१॥

जो व्यक्ति सभी प्राणियों के स्वामी विश्वनाथ शिव की निन्दा करता है, उसकी निष्कृति (प्रायश्चित्त) सौ वर्षों में भी संभव नहीं है॥९१॥

चान्द्रायणं चरेत्पूर्वं कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्। प्रपन्नः शरणं देवं तस्मात्पापाद् विमुच्यते॥९२॥

वह प्रायश्चित्त हेतु पहले चान्द्रायण करे तब कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करे। तब भगवान् शिव की शरण में जाने पर वह अपने उस पाप से मुक्त हो जाता है॥९२॥

सर्वस्वदानं विधिवत्सर्वपापविशोधनम्। चान्द्रायणं च विधिना कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्॥९३॥

विधिपूर्वक अपना सर्वस्व दान करने वाले व्यक्ति के सभी पाप दूर हो जाते हैं। यथाविधि चान्द्रायण, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करने से सभी पाप दूर हो जाते हैं॥९३॥

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविशोधनम्। अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद्भवम्।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९४॥

पवित्र तीर्थों में जाने से भी सभी पाप दूर हो जाते हैं। अमावास्या की तिथि में जो व्यक्ति ब्राह्मणों का पूजन करके भगवान् शिव की आराधना करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥९४॥

कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथा कृष्णचतुर्दशीम्। सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९५॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन भगवान् शिव का पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन कराने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥९५॥

त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम्। दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः॥९६॥

[कृष्ण पक्ष की] त्रयोदशी तिथि की रात्रि के प्रथम पहर में भगवान् शिव का दर्शन करने तथा उनको उपहार समर्पित करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥९६॥

उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च॥९७॥

---
१. देवानां

वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च। प्रत्येक तिलसंयुक्तानूदद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन्।
स्नात्वा दद्याच्च पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः॥९८॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन उपवास रखकर पूर्वाह्न में नदी में स्नान करके एकाग्र मन से यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल तथा सर्वप्राणियों के प्राणहर्ता के प्रत्येक नाम से को तिल-मिश्रित सात जलाञ्जलि प्रदान करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥९७-९८॥

ब्रह्मचर्यमधः शय्यामुपवासं द्विजार्चनम्। व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः॥९९॥

[प्रायश्चित्त प्रकरण में विहित] इन सभी व्रतों में शान्त और संयमित मन से ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि में शयन तथा उपवास और ब्राह्मण-पूजन करना चाहिए॥९९॥

अमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम्। ब्राह्मणांस्त्रीन् समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः॥१००॥

अमावास्या तिथि के दिन पितामह ब्रह्मा की सन्तुष्टि के उद्देश्य से तीन ब्राह्मणों का पूजन करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१००॥

षष्ठ्यामुपोषितो देवं शुक्लपक्षे समाहितः। सप्तम्यामर्चयेद् भानुं मुच्यते सर्वपातकैः॥१०१॥

शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को संयमित रहकर उपवास करके सप्तमी तिथि के दिन भगवान् सूर्य की उपासना करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१०१॥

भरण्यां च चतुर्थ्यां च शनैश्चरदिने यमम्। पूजयेत्सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नरः॥१०२॥

भरणी नक्षत्र एवं चतुर्थी तिथि यदि शनिवार के दिन हो तो उस दिन यमराज का पूजन करने पर मनुष्य अपने सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है॥१०२॥

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्। द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते॥१०३॥

शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि के दिन निराहार रहकर द्वादशी तिथि के दिन भगवान् विष्णु की पूजा करके मनुष्य महापापों से मुक्त हो जाता है।१०३॥

तपो जपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम्। ग्रहणादिषु कालेषु महापातकशोधनम्॥१०४॥

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण आदि के समय में जप, तप, तीर्थ-स्नान तथा देवों और ब्राह्मणों का पूजन करने से महापापों से शुद्धि (मुक्ति) होती है अर्थात् महापाप दूर हो जाते हैं॥१०४॥

यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः। नियमेन त्यजेत्प्राणान् मुच्यते सर्वपातकैः॥१०५॥

सभी पापों से युक्त होने पर भी जो मनुष्य पवित्र तीर्थों में नियम-पालन करते हुए निवास करके प्राण-त्याग करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है॥१०५॥

ब्रह्मघ्नं वा कृतघ्नं वा महापातकदूषितम्। भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम्।
एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः॥१०६॥

अपने पति के निष्प्राण शरीर की चिता में प्रवेश करने वाली नारी अपने ब्रह्मघ्न या कृतघ्न अथवा महापातकों से दूषित पति का भी उद्धार कर देती है। [पति की चिता में प्रवेश का] यही प्रायश्चित्त विद्वानों ने स्त्रियों के द्वारा किये जाने वाले पापों के लिए भी विहित किया है॥१०६॥

पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणे रता। न तस्या विद्यते पापमिहलोके परत्र च॥१०७॥

पति की सेवा में तत्पर रहने वाली नारी को न तो इस लोक में और न परलोक में काई पाप लगता है॥१०७॥

पतिव्रता धर्मरता भद्राण्येव लभेत्सदा। नास्याः पराभवं कर्तुं शक्नोतीह जनः क्वचित्॥१०८॥

पतिव्रता और धर्म-निष्ठ नारी सदैव शुभता और कल्याण को ही प्राप्त करती है। इस संसार में कहीं भी कोई भी उसका पराभव (अपमान) नहीं कर सकता॥१०८॥

यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता। पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम्॥१०९॥

[इस तथ्य के समर्थन में देवी सीता के चरित्र का गुणगान करते हुए यह कहा गया है कि] जैसे कि दशरथ के पुत्र राम की तीनों लोकों में विख्यात पत्नी सौभाग्यवती सीता ने राक्षसराज रावण पर विजय प्राप्त की थी॥१०९॥

रामस्य भार्यां सुभगां रावणो राक्षसेश्वरः। सीतां विशालनयनां चकमे कालनोदितः॥११०॥

काल से प्रेरित राक्षस राज रावण ने भगवान् राम की विशाल नेत्रों वाली सौभाग्यशालिनी पत्नी सीता को प्राप्त करने की कामना की थी॥११०॥

गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने। समाहर्तुं मतिं चक्रे तापसः किल कामिनीम्॥१११॥

उसने माया के बल पर तपस्वी का छद्म वेश धारण करके निर्जन वन में विचरण (निवास) करने वाली उस कामिनी सीता के अपहरण का विचार किया था॥१११॥

विज्ञाय सा च तद् भावं स्मृत्वा दाशरथिं पतिम्। जगाम शरणं वह्निमावसथ्यं शुचिस्मिता॥११२॥

तब पवित्र मुस्कान वाली देवी सीता उस रावण के कुत्सित मनोभाव को जान कर स्वयं आवसथ्य अग्नि (अग्निहोत्र हेतु स्थापित गृह्याग्नि) की शरण में गयी थी॥११२॥

उपतस्थे महायोगं सर्वलोकविदाहकम्। कृताञ्जली रामपत्नी साक्षात्पतिमिवाच्युतम्॥११३॥

सभी लोकों को दग्ध करने में सक्षम महायोग स्वरूप अग्नि को अपना साक्षात् पति विष्णु [के अवतार राम] के समान मानती हुई राम की पत्नी सीता ने हाथ जोड़ कर उनसे यह प्रार्थना की थी॥११३॥

नमस्यामि महायोगं कृशानुं गहनं[१]परम्। दाहकं सर्वभूतानां कृशानुं कालरूपिणम्॥११४॥

सीता बोली- महायोग-स्वरूप, परम गहन (रहस्य स्वरूप), सभी प्राणियों को दग्ध करने वाले, कालस्वरूप कृशानु (अग्नि) को नमस्कार है॥११४॥

प्रपद्ये पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम्। योगिनं कृत्तिवसनं भूतेशं परमम्पदम्॥११५॥

मैं शाश्वत (सनातन) विश्वस्वरूपी, योगी, कृत्तिवासा, सभी भूतों (प्राणियों) के स्वामी, परम पद स्वरूप, योगी देव अग्नि की शरण में आयी हूँ॥११५॥

आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम्। तं प्रपद्ये जगन्मूर्तिं प्रभवं सर्वतेजसाम्।
महायोगीश्वरं वह्निमादित्यं परमेष्ठिनम्॥११६॥

---

१. गह्वरं

मैं दीप्तिमान् देह वाले, सभी प्राणियों के हृदय में विराजमान आत्मा-स्वरूप, सभी तेजों के जनक, जगत् की मूर्ति महायोगीश्वर परमेष्ठी आदित्य-स्वरूप अग्नि की शरण में हूँ॥११६॥

प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम्। कालाग्निं योगिनामीशं भोगमोक्षफलप्रदम्॥११७॥

मैं महाग्रास (संसार का अन्त करने वाले) त्रिशूलधारी योगीश्वर, भोग और मोक्षरूपी फल को देने वाले कालाग्नि रुद्र की शरणागत हूँ॥११७॥

प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भूर्भुवःस्वःस्वरूपिणम्। हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम्॥११८॥

मैं स्वर्णिम गृह में गुप्त रूप से विराजमान, भूर्भुवः स्वः स्वरूपी (पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग स्वरूपी) अतुलित तेजस्वी और महान् विरूपाक्ष की शरणागत हूँ॥११८॥

वैश्वानरं प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम्। हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम्॥११९॥

सभी प्राणियों के शरीर में वैश्वानर रूप में विद्यमान एवं देवों तथा पितरों को हव्य-कव्य प्राप्त कराने वाले देवेश्वर अग्नि की शरण में आयी हूँ॥११९॥

प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं वरेण्यं सवितुः शिवम्। स्वर्ग्यमग्निं परं ज्योतिः रक्ष मां हव्यवाहन॥१२०॥

मैं सविता देव के वरणीय परमतत्त्व वाले तेजोरूप परम ज्योति और कल्याणकारी (शिव) अग्नि की शरणागत हूँ। हे हव्यवाहन अग्नि! आप मेरी रक्षा करें॥१२०॥

इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी। ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा॥१२१॥

इस प्रकार अग्नि के आठ श्लोकों वाली स्तुति का पाठ करके भगवान् राम की यशस्विनी पत्नी मन से राम का ध्यान करती हुई अपने नेत्रों को ईशत् उन्मीलित (खोल) कर वहाँ स्थित हो गयी थी॥१२१॥

अथावसथ्याद्भगवान् हव्यवाहो महेश्वरः। आविरासीत्सुदीप्तात्मा तेजसा निर्दहन्निव॥१२२॥

तभी आवस्थ्य अग्नि (अग्निहोत्र हेतु स्थापित अग्नि) से अत्यन्त उद्दीप्त स्वरूप वाले और अपने तेज से मानो सब कुछ दग्ध करने को उद्यत हों ऐसे महेश्वर अग्निदेव प्रकट हुए थे॥१२२॥

सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेच्छया। सीतामादाय रामेष्टा पावकोऽन्तरधीयत॥१२३॥

तब रावण के वध की कामना से वहाँ पर मायामयी सीता की सृष्टि करके वह अग्निदेव राम की प्रेयसी (जनकसुता) सीता को लेकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये थे॥१२३॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः। समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम्॥१२४॥

उस मायामयी सीता को देख उसे वास्तविक जानकर राक्षस राज रावण उसे लेकर समुद्र के मध्य में स्थित लंका को चला गया था॥१२४॥

कृत्वा तु रावणवधं रामो लक्ष्मणसंयुतः। समादायाभवत् सीतां शङ्काकुलितमानसः॥१२५॥

लक्ष्मण सहित राम ने लङ्केश रावण का वध करके सीता को ले आने पर भी राम का मन शंका से व्याकुल हो गया था॥१२५॥

सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पुनः। विवेश पावकं क्षिप्रं ददाह ज्वलनोऽपि ताम्॥१२६॥

तब वह मायामयी सीता सभी लोगों को वास्तविकता का विश्वास दिलाने के लिए शीघ्र ही अग्नि में प्रवष्टि हो गयी थी और अग्नि ने भी उसे तत्क्षण जला कर भस्म कर दिया था॥१२६॥

दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुष्णदीधितिः। रामायादर्शयत्सीतां पावकोऽभूत्सुरप्रियः॥१२७॥

उष्ण किरणों वाले भगवान् अग्नि ने मायामयी सीता को दग्ध करके राम को [वास्तविक] सीता का दर्शन कराया था। अतः तबसे अग्निदेव सभी देवों के प्रिय बन गये थे॥१२७॥

प्रगृह्य भर्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा। चकार प्रणतिं भूमौ रामाय जनकात्मजा॥१२८॥

तब सुन्दर मध्यम भाग (कमर) वाली जनकात्मजा सीता ने अपने पति भगवान् राम के चरणों को अपने दोनों हाथों से स्पर्श कर भूमि में लेट कर प्रणाम किया था॥१२८॥

दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः। प्रणम्य वह्निं शिरसा तोषयामास राघवः॥१२९॥

तब सीता को देखकर आश्चर्य चकित नेत्रों वाले एवं प्रसन्न मन वाले राम ने नतमस्तक होकर अग्नि को प्रणाम करके उसकी प्रशंसा की थी॥१२९॥

उवाच वह्निं भगवान् किमेषा वरवर्णिनी। दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता॥१३०॥

भगवान् राम ने अग्नि से कहा था कि सुन्दर रंग-रूप वाली जो यह सीता मेरे समीप आयी है इसे आपने पूर्वकाल में कैसे दग्ध किया था?॥१३०॥

तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः। यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव सन्निधौ॥१३१॥

तब सभी लोगों को दग्ध करने वाले और [देवों को] हव्य पहुंचाने वाले अग्नि ने सभी जनों के समक्ष दशरथ पुत्र भगवान् राम को समस्त वृत्तान्त बतलाया था॥१३१॥

इयं सा मिथिलेशेन पार्वतीं रुद्रवल्लभाम्। आराध्य लब्ध्वा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा॥१३२॥

अग्नि ने कहा- मिथिला नरेश जनक ने भगवान् शिव की प्रिया पार्वती की तपस्या से आराधना करके इस देवी सीता को प्राप्त किया था। यह देवी पार्वती को अत्यन्त प्रिय थी॥१३२॥

भर्तुः शुश्रूषणोपेता सुशीलेयं पतिव्रता। भवानी पार्श्वमानीता मया[1] रावणकामिता॥१३३॥

पति सेवा में संलग्न रहने वाली, सच्चरित्र और पतिव्रता सीता को रावण प्राप्त करना चाहता था, अतः मैंने उस देवी सीता को देवी पार्वती के पास पहुँचा दिया था॥१३३॥

या नीता राक्षसेशेन सीता भगवती हृता। मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधेच्छया॥१३४॥

जिस भगवती सीता को रावण हरण करके ले गया है, उस मायामयी सीता की सृष्टि मैंने रावण के वध की इच्छा से ही की थी॥१३४॥

तदर्थं भवता दुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः। मायोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशनः॥१३५॥

उस मायामयी सीता के निमित्त ही आपने लोक-विनाशक राक्षसराज रावण का वध किया है और मैंने उस मायामयी सीता को उपसंहृत (अपने) में लीन कर दिया है॥१३५॥

गृहाण चैतां विमलां जानकीं वचनान्मम। पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम्॥१३६॥

१. भवानीवेश्वरे गुप्ता माया

अब आप इस विशुद्ध माता जानकी को मेरे वचनानुसार स्वीकार करें। आप स्वयं अपने को जगत् की सृष्टि करने वाले अविनाशी देव नारायण के रूप में देखें॥१३६॥

इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः। मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत॥१३७॥

ऐसा कहने के बाद उन सभी ओर धधकती ज्वालाओं वाले एवं सभी ओर मुख वाले प्रचण्ड अग्निदेव को जब भगवान् राम तथा अन्य भूतों (प्राणियों) के द्वारा सम्मानित किया गया तब वह अन्तर्धान हो गये थे॥१३७॥

एतत्पतिव्रतानां वै माहात्म्यं कथितं मया। स्त्रीणां सर्वाघशमनं प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्॥१३८॥

यह मैंने आप को पतिव्रता स्त्रियों का महत्त्व बतलाया है। इसे स्त्रियों के सभी पापों का नाशक प्रायश्चित्त कहा गया है॥१३८॥

अशेषपापसंयुक्तः पुरुषोऽपि सुसंयुतः।
स्वदेहं पुण्यतीर्थेषु त्यक्त्वा मुच्येत किल्बिषात्॥१३९॥

सभी पापों से युक्त पुरुष संयमित रहकर पवित्र तीर्थों में देह-त्याग करने पर पाप-मुक्त हो जाता है॥१३९॥

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा पुण्येषु वा द्विजः। मुच्यते पातकैः सर्वैः सञ्चितैरपि पूर्वतः॥१४०॥

पृथिवी में स्थित सभी पवित्र तीर्थों में स्नान करने वाला द्विज [इस जन्म में किये गये] सभी पापों तथा पूर्व (जन्म के) सञ्चित पापों से भी मुक्त हो जाता है॥१४०॥

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकं कथितो मया। महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगश्च शाश्वतः॥१४१॥

व्यास जी बोले- इस प्रकार मैंने आप लोगों को मानव धर्म तथा भगवान् शिव की आराधना हेतु शाश्वत (सनातन) ज्ञानयोग को भी बतलाया है॥१४१॥

योऽनेन विधिना युक्तो ज्ञानयोगं समाचरेत्। स पश्यति महादेवं नान्यः कल्पशतैरपि॥१४२॥

जो व्यक्ति इस विधि के अनुसार ज्ञानयोग का आचरण करता है, वही महादेव शिव का दर्शन कर सकता है, अन्य व्यक्ति सौ कल्पों तक भी उनका दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता॥१४२॥

स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम्। न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः॥१४३॥

जो व्यक्ति परम धर्म तथा परमेश्वर विषयक परम ज्ञान की लोक में प्रतिष्ठा या प्रचार करता है, उससे श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं होता। उसी को परम श्रेष्ठ योगी माना गया है॥१४३॥

यः संस्थापयितुं शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः। स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रियः॥१४४॥

जो मुनि [परं धर्म तथा परमेश्वर विषयक ज्ञान की] स्थापना अर्थात् लोक में प्रचार प्रसार करने में समर्थ होने पर भी मोहवश ऐसा नहीं करता वह योग में सिद्ध होने पर भी भगवान् को अत्यधिक प्रिय नहीं होता है॥१४४॥

तस्मात्सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः। धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै॥१४५॥

[अतः प्रबुद्ध योगीजनों को चाहिए कि] वे सदैव धर्म, योग और ईश्वर विषयक ज्ञान का उपदेश दें। यह उपदेश विशेष रूप से धार्मिक, शान्त स्वभाव वाले तथा श्रद्धालु द्विजों को ही देना चाहिए॥ १४५॥

यः पठेद्भवतां नित्यं संवादं मम चैव हि। सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमां गतिम्॥ १४६॥

जो व्यक्ति मेरे तथा आप लोगों के बीच हुए इस संवाद का नित्य पाठ करेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करेगा॥ १४६॥

श्राद्धं वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानां च सन्निधौ। पठेत् नित्यं सुमनाः श्रोतव्यं च द्विजातिभिः॥ १४७॥

द्विजातियों को श्राद्ध अथवा देवपूजा आदि के अवसरों पर ब्राह्मणों के सान्निध्य में नित्यमेव मन लगाकर इसका पाठ करना चाहिए तथा द्विजातियों को इसका श्रवण करना चाहिए॥ १४७॥

योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद्वा द्विजान् शुचीन्। स दोषकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम्॥ १४८॥

जो युक्तात्मा (सिद्धयोगी) इस अध्याय के अर्थ का विचार करके शुद्ध तन-मन वाले ब्राह्मणों को सुनाता है, वह दोषरूपी कञ्चुक (आवरण) को त्याग कर देव महेश्वर के सान्निध्य को प्राप्त करता है॥ १४८॥

एतावदुक्त्वा भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः। समाश्वास्य मुनीन्सूतं जगाम च यथागतम्॥ १४९॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे प्रायश्चित्तविधानं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इतना कह कर सत्यवती के पुत्र भगवान् व्यास जी वहाँ उपस्थित मुनियों तथा सूत जी को आश्वस्त करके जैसे आये थे, वैसे ही चले गये थे॥ १४९॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'प्रायश्चित्तविधान' नामक चौतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

तीर्थप्रकरणम्

ऋषय ऊचुः

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन्विश्रुतानि महान्त्यपि। तानि त्वं कथयास्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम्॥ १॥

ऋषियों ने कहा- हे रोमहर्षण! अब आप इस भूलोक में जितने भी प्रसिद्ध और महान् तीर्थ हैं, उनके विषय में हमें बतलाइए॥ १॥

रोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं कथयिष्येऽहं तीर्थानि विविधानि च। कथितानि पुराणेषु मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ २॥

रोमहर्षण बोले- हे मुनियो! अब आप लोग सुनें, ब्रह्मवादी मुनियों ने पुराणों में विविध तीर्थों का जो वर्णन किया है, उसको मैं कहूँगा॥ २॥

यत्र स्नानं जपो होमः श्राद्धदानादिकं कृतम्। एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥३॥

जिन तीर्थों में स्नान, जप, होम, श्राद्ध, दान आदि में से किसी एक को करने पर भी मनुष्य अपने कुल की सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है॥३॥

पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रयागं प्रथितं तीर्थं यस्य माहात्म्यमीरितम्॥४॥

परमेष्ठी ब्रह्मा का प्रयाग नामक तीर्थ पाँच योजन तक विस्तृत है। उसका माहात्म्य पीछे (पूर्वार्द्ध अध्याय ३५-३९) में बतलाया गया है॥४॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं कुरूणां देववन्दितम्। ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम्॥५॥

एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ कुरुओं का है, वह (कुरुक्षेत्र नामक) तीर्थ देवताओं के द्वारा भी पूजित और ऋषियों के आश्रमों से सुशोभित है और सभी पापों का नाश करने वाला है॥५॥

तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः। ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम्॥६॥

दम्भ (पाखण्ड) और ईर्ष्या द्वेष से रहित विशुद्ध आत्मा वाला मनुष्य वहाँ स्नान करके जो कुछ और जितना भी अपनी क्षमतानुसार दान करता है, उससे वह अपने माता और पिता के दोनों कुलों को पवित्र कर देता है॥६॥

परं गुह्यं गयातीर्थं पितॄणाञ्चातिदुर्लभम्। कृत्वा पिण्डप्रदानन्तु न भूयो जायते नरः॥७॥

गया नामक परम गुह्य तीर्थ पितरों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। वहाँ पिण्ड-दान करने वाले मनुष्य का इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता, तात्पर्य यह है कि वह मोक्ष को प्राप्त करता है॥७॥

सकृद् गयाभिगमनं कृत्वा पिण्डं ददाति यः। तारिताः पितरस्तेन यास्यन्ति परमाङ्गतिम्॥८॥

जो मनुष्य एक बार भी गया में जाकर पितरों को पिण्डदान करता है, उससे उसके पितरों का उद्धार हो जाता है और वे परम गति को प्राप्त करते हैं॥८॥

तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना। शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितॄन्प्रसादयेत्॥९॥

वहाँ भगवान् शिव ने लोकहित की कामना से एक शिला पर अपना चरण रखा था। [जिससे उस शिला पर उनके चरण का चिह्न बन गया था] अतः वहाँ पर श्राद्ध करके पितरों को प्रसन्न करना चाहिए॥९॥

गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्तो नाधिगच्छति। शोचन्ति पितरस्तं वै वृथा तस्य परिश्रमः॥१०॥

गया तीर्थ तक जाने में समर्थ होने पर भी जो व्यक्ति वहाँ नहीं जाता है, उसके पितर उस पर खिन्न होकर रुदन करते हैं। उस व्यक्ति का अन्य कृत्यों में किया गया परिश्रम व्यर्थ हो जाता है॥१०॥

गायन्ति पितरो गाथाः कीर्तयन्ति महर्षयः।
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान् संतारयिष्यति॥११॥

पितर इस गाथा (धार्मिक सूक्ति) को गाते हैं तथा महर्षिगण भी यह कहते हैं कि जो कोई भी [हमारा वंशज] गया में जायेगा, वह हमें तारेगा॥११॥

यदि स्यात् पातकोपेतः स्वधर्मपरिवर्जितः। गयां यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान्संतारयिष्यति॥१२॥

हमारे वंश में उत्पन्न कोई पुरुष भले ही पापी हो, स्वधर्म पालन से रहित हो यदि वह गया तीर्थ की यात्रा में जायेगा तो वह हमारा उद्धार कर देगा॥१२॥

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः। तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥१३॥

सभी गृहस्थों को सच्चरित्र और सद्गुण सम्पन्न अनेक पुत्रों की कामना करनी चाहिए ताकि उनमें से कोई तो गया की यात्रा में जाने वाला हो जाय॥१३॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः। प्रदद्याद्विधिवत्पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः॥१४॥

अतः सभी जनों को तथा ब्राह्मण को तो विशेषतः गया में जाकर एकाग्र मन से पितरों को यथाविधि पिण्डदान करना चाहिए॥१४॥

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः। कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याप्नुयुः परम्॥१५॥

गया में पितरों को पिण्डदान करने वाले मनुष्य वास्तव में धन्य होते हैं, क्योंकि वे माता तथा पिता दोनों के कुलों के सात पीढ़ियों के पितरों का उद्धार करके स्वयं भी परम पद को प्राप्त करते हैं॥१५॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम्। प्रभासमिति विख्यातं यत्रास्ते भगवान्भवः॥१६॥

एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ प्रभासतीर्थ के नाम से विख्यात है जहाँ भगवान् शिव विराजमान हैं। उस तीर्थ में सिद्धों का निवास स्थान भी बतलाया गया है॥१६॥

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं ब्राह्मणानाञ्च पूजनम्। कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्राह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम्॥१७॥

वहाँ स्नान करके पितरों का श्राद्ध एवं ब्राह्मणों का पूजन करके ब्रह्मा के अविनश्वर अति उत्तम लोक की प्राप्ति होती है॥१७॥

तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम्। पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलं लभेत्॥१८॥

त्रैयम्बकम् नामक तीर्थ सभी देवों के द्वारा पूजित (नमस्कृत) है। वहाँ भगवान् रुद्र (शिव) का पूजन करके मनुष्य ज्योतिष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त करता है॥१८॥

सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्दिनम्। ब्राह्मणान् पूजयित्वा च गाणपत्यं लभेत सः॥१९॥

वहाँ कपर्दी तथा सुवर्णाक्ष महादेव का पूजन करके तथा ब्राह्मणों का पूजन करके मनुष्य गाणपत्य पद (गणों के अधिपति के पद) को प्राप्त करता है॥१९॥

सोमेश्वरं तीर्थवरं रुद्रस्य परमेष्ठिनः। सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रसालोक्यकारणम्॥२०॥

परमेष्ठी रुद्र के सोमेश्वर नामक श्रेष्ठ तीर्थ [में स्नान, शिव पूजन आदि से] सभी व्याधियाँ दूर होती हैं और शिव-लोक की प्राप्ति होती है॥२०॥

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयं नाम शोभनम्। तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयं नाम विश्रुतम्॥२१॥

सभी तीर्थों में परम शोभन एक तीर्थ विजय नामक है। वहाँ भगवान् शिव का विजय नामक प्रख्यात लिङ्ग है॥२१॥

षण्मासान्नियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः। उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा याति तत्[1] परमम्पदम्॥२२॥

---

१. यास्यन्ति

छः मास तक नियत आहार पर निर्भर रहकर ब्रह्मचारी और संयमित रहते हुए वहाँ निवास करने वाला भगवान् के उस परम पद को प्राप्त करता है॥२२॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशे सुशोभनम्। एकाम्रं[१] देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम्॥२३॥

पूर्ववर्ती देश में देवाधिदेव शिव का एकाम्र नामक सुन्दर और श्रेष्ठ तीर्थ है जो [शिव भक्तों को] गणों के अधिपति [सदृश] बनाने में फलीभूत होता है॥२३॥

दत्त्वात्र शिवभक्तेभ्यः किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम्। सार्वभौमो भवेद्राजा मुमुक्षर्मोक्षुमाप्नुयात्॥२४॥

[यह स्मरणीय है कि यह एकाम्रक तीर्थ वर्तमान में उड़ीसा के कटक क्षेत्र में रुद्रतीर्थनाम से विख्यात है। द्रष्टव्य- धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, पृष्ठ १४११] इस तीर्थ में शिवभक्तों को अल्प मात्रा में भी पवित्र भूमि का दान देने वाला व्यक्ति सार्वभौम राजा होता है तथा मोक्ष कामना वाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है॥२४॥

महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम्। ग्रहणे तदुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः॥२५॥

महानदी का जल पवित्र और सभी पापों का नाश करने वाला है। ग्रहणकाल में उस जल का स्पर्श [स्नान, आमचन] करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है॥२५॥

अन्या च विरजा नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता। तस्यां स्नात्वा नरो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते॥२६॥

हे ब्राह्मणो! वहाँ एक अन्य नदी विरजा नाम वाली है, जो कि तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उसमें स्नान करने वाला व्यक्ति ब्रह्मलोक में महिमा प्राप्त करता है॥२६॥

तीर्थं नारायणस्यान्यन्नाम्ना तु पुरुषोत्तमम्। तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपुरुषः॥२७॥

भगवान् नारायण का एक अन्य तीर्थ पुरुषोत्तम नामक है। वहाँ परम पुरुष श्रीमान् नारायण स्वयं विराजमान रहते हैं॥२७॥

पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः। ब्राह्मणान्पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥२८॥

वहाँ स्नान करके विष्णु का पूजन करने के बाद ब्राह्मणों का पूजन करने वाला द्विजोत्तम विष्णुलोक में जाता है॥२८॥

तीर्थानां परमं तीर्थङ्गोकर्णं नाम विश्रुतम्। सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः॥२९॥

तीर्थों में परमश्रेष्ठ एक तीर्थ गोकर्ण नाम से प्रसिद्ध है। उसमें परमेष्ठी शिव-शम्भु का निवास है। यह तीर्थ सभी पापों को दूर करता है॥२९॥

दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णेश्वरमुत्तमम्।
ईप्सिताँल्लभते कामानूरुद्रस्य दयितो भवेत्॥३०॥

भगवान् शिव के गोकर्णेश्वर नामक परम उत्तम लिङ्ग का दर्शन करके मनुष्य की मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं तथा वह व्यक्ति भगवान् शिव की अनुकम्पा का प्रिय पात्र होता है॥३०॥

उत्तरं चापि गोकर्णं लिङ्गं देवस्य शूलिनः। महादेवं चार्चयित्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥३१॥

१. एकान्तं

गोकर्ण के उत्तर में भी त्रिशूलधारी महादेव शिव का लिङ्ग विद्यमान है। उसका पूजन करके मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है॥३१॥

तत्र देवो महादेवः स्थाणुरित्यभिविश्रुतः। तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणान्मुच्यते नरः॥३२॥

वहाँ पर देवाधिदेव महादेव 'स्थाणु' नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य तत्काल सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥३२॥

अन्यत्कुब्जाश्रमं पुण्यं स्थानं विष्णोर्महात्मनः। सम्पूज्य पुरुषं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयते॥३३॥

भगवान् विष्णु का एक अत्यन्त पवित्र स्थान कुब्जाश्रम नाम से विख्यात है। वहाँ भगवान् विष्णु का पूजन करने वाला श्वेतद्वीप में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥३३॥

यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा। कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्य तु विसर्जितः॥३४॥
समन्ताद्योजनं क्षेत्रं सिद्धर्षिगणसेवितम्। पुण्यमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः॥३५॥

जहाँ पर त्रिपुरारि शिव ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करके भगवान् विष्णु को लाकर स्थापित किया था। वहाँ चारों ओर सौ योजन विस्तृत क्षेत्र में सिद्ध और ऋषिगण आराधनारत रहते हैं। वहाँ भगवान् विष्णु अपने पवित्र मन्दिर में पुरुषोत्तम नाम से विराजमान रहते हैं॥३४-३५॥

अन्यत्कोकामुखं विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः। मुक्तोऽत्र पातकैर्मर्त्यो विष्णुसारूप्यमाप्नुयात्॥३६॥

अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् विष्णु का एक अन्य तीर्थ कोकामुख नामक है। यहाँ मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के सारूप्य को प्राप्त करता है॥३६॥

शालग्रामं महातीर्थं विष्णोः प्रीतिविवर्धनम्। प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशं प्रपश्यति॥३७॥

शालिग्राम नामक महातीर्थ भगवान् विष्णु की प्रसन्नता को बढ़ाता है। वहाँ पर प्राण त्याग करने वाला मनुष्य भगवान् हृषीकेश (विष्णु) का दर्शन प्राप्त करता है॥३७॥

अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्। आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणः स्वयम्॥३८॥

अश्वतीर्थ नामक अति सुन्दर पवित्र तीर्थ में सिद्ध निवास करते हैं। वहाँ पर भगवान् नारायण विष्णु नित्यमेव हयग्रीव रूप में विराजमान रहते हैं॥३८॥

तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम्॥३९॥

परमेष्ठी ब्रह्मा का तीनों लोकों में विख्यात पुष्कर तीर्थ सभी पापों का नाशक है और वहाँ देहत्याग करने वालों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराता है॥३९॥

मनसा संस्मरेद्यस्तु पुष्करं वै द्विजोत्तमः। पूयते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते॥४०॥

जो श्रेष्ठ द्विज अपने मन से भी पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता है, वह सभी पापों से मुक्त और पवित्र होकर देवराज इन्द्र के साथ आनन्द से रहता है॥४०॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। उपासते सिद्धसङ्घा ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्॥४१॥

वहाँ (पुष्कर क्षेत्र में) देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस एवं सिद्धों के समूह कमलोद्भव ब्रह्मा की उपासना करते हैं॥४१॥

तत्र स्नात्वा व्रजेच्छुद्धो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्। पूजयित्वा द्विजवरं ब्रह्माणं सम्प्रपश्यति॥४२॥

वहाँ स्नान करके शुद्ध होकर परमेष्ठी ब्रह्मा के मन्दिर में जाकर उनकी पूजा करके तथा तब किसी द्विजवर की पूजा करने वाला साक्षात् ब्रह्मा के दर्शन करता है॥४२॥

तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम्। तद्रूपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥४३॥

पुष्कर क्षेत्र में ही अनिन्दित (अर्थात् सर्वत्र प्रशंसित) देवराज इन्द्र का दर्शन करने वाला उन्हीं के समान सुन्दर रूप वाला हो जाता है और उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥४३॥

सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम्। पूजयित्वा तत्र रुद्रमश्वमेधफलं लभेत्॥४४॥

सप्तसारस्वत नामक श्रेष्ठ तीर्थ का सेवन ब्रह्मा आदि देव भी करते हैं। वहाँ रुद्र का पूजन करके अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है॥४४॥

यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नं परमेश्वरम्। आराधयामास शिवं तपसा गोवृषध्वजम्।
प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा॥४५॥

ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समागतम्। तं प्राह भगवान् रुद्रः किमर्थं नर्तितं त्वया॥४६॥

वहाँ मङ्कणक मुनि ने परमात्मा वृषभध्वज शिव की शरण में जाकर तपस्या करते हुए उनकी आराधना की थी। वह मुनि मङ्कणक अपने तपोबल से जाज्वल्यमान (दीप्तिमान) हो गये थे और वहाँ भगवान् शिव को आया हुआ देखकर हर्ष के आवेग से नृत्य करने लगे थे। तब भगवान् शिव ने उनसे कहा कि तुमने नृत्य किसलिए किया है॥४५-४६॥

दृष्ट्वापि देवमीशानं नृत्यति स्म पुनः पुनः। सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगर्वं गर्वशान्तये॥४७॥
स्वकं देहं विदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत्। पश्येमं मच्छरीरोत्थं भस्मराशिं द्विजोत्तम॥४८॥

वह भगवान् शिव को देखकर भी पुनः पुनः नृत्य करते जा रहा था। तब उस मुनि को गर्वयुक्त देखकर उसके गर्व को शान्त करने के लिए भगवान् शिव ने अपने शरीर को विदीर्ण (फाड़) कर उसमें से भस्म की राशि उस मुनि को दिखलाई थी और यह कहा था कि हे द्विजोत्तम! तुम मेरे शरीर से निकली हुई इस भस्म की राशि को देखो॥४७-४८॥

माहात्म्यमेतत् तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते। यत्सगर्वं हि भवता नर्तितं मुनिपुङ्गव॥४९॥
न युक्तं तापसस्यैतत् त्वत्तोऽप्यभ्यधिको ह्यहम्। इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रोऽखिल विश्वदृक्॥५०॥
आस्थाय स्वं परं[१] भावं ननर्त जगतो हरः। सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्।
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामाली भयङ्करः॥५१॥

यह सब तपस्या का ही माहात्म्य है। तुम्हारे समान अन्य व्यक्ति भी हो सकता है। हे मुनिवर! तुमने गर्व के साथ जो नृत्य किया है, ऐसा करना एक तपस्वी के लिए उचित नहीं है। तुमसे अधिक [नृत्य कुशल] तो मैं हूँ। उस मुनिवर से ऐसा कहकर अखिल जगद्द्रष्टा भगवान् रुद्र ने अपने परम ईश्वरी भाव में स्थित होकर नृत्य किया था। उस नृत्य के समय वह हजारों शिर,

१. आख्यया परमं भावं

हजारों नेत्र, हजारों चरण वाले तथा भयंकर दाढ़ों से युक्त मुख वाले और ज्वाला-मालाओं से दीप्तिमान और भयंकर लग रहे थे॥४९-५१॥

सोऽन्वपश्यदथेशस्य पार्श्वे तस्य त्रिशूलिनः। विशाललोचनामेकां देवीञ्चारुविलासिनीम्।
सूर्यायुतसमाकारां प्रसन्नवदनां शिवाम्॥५२॥

तभी उस मङ्कणक मुनि ने त्रिशूलधारी भगवान् शिव के पास विशाल नेत्रों वाली, सुन्दर विलास (हावभाव) वाली दश सहस्र सूर्यों के समान दीप्ति (कान्ति) वाली तथा प्रसन्नमुख वाली देवी पार्वती को देखा था॥५२॥

सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशन्तिष्ठन्तममितद्युतिम्। दृष्ट्वा संत्रस्तहृदयो वेपमानो मुनीश्वरः॥५३॥
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायं जपन्वशी। प्रसन्नो भगवानीशेस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः॥५४॥

तब मुस्कराते हुए अमित द्युतिमान भगवान् शिव को वहाँ स्थित देखकर मुनीश्वर मङ्कणक ने हृदय से भयभीत और कम्पायमान होते हुए भी संयमित होकर रुद्राध्याय का पाठ करते हुए उन भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था। तब भक्तवत्सल त्र्यम्बक भगवान् शिव प्रसन्न हो गये थे॥५३-५४॥

पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत्। आलिङ्ग्य भक्तं प्रणतं देवदेवः स्वयं शिवः॥५५॥

तब शिव ने पूर्ववर्ती वेश धारण किया था और देवी पार्वती भी उसी समय अन्तर्धान हो गयी थी। तब देवाधिदेव शिव ने स्वयं उस शरणागत भक्त का आलिङ्गन किया था॥५५॥

न भेतव्यं त्वया वत्स प्राह किं ते ददाम्यहम्। प्रणम्य मूर्ध्ना गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम्॥५६॥
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः। नमोऽस्तु ते महादेव महेश्वर नमोऽस्तु ते॥५७॥

[शिव ने] उससे कहा था कि हे वत्स! तुमको भयभीत नहीं होना चाहिए। मैं तुमको क्या दूँ? तब उस मुनि ने त्रिपुरनाशक गिरीश शिव को नत-मस्तक होकर प्रणाम करके प्रसन्न होकर उनसे कुछ पूछने का मन बना कर कहा- हे महादेव आपको नमस्कार है। हे महेश्वर आपको नमस्कार है॥५६-५७॥

किमेतद्भगवद्रूपं सुघोरं विश्वतोमुखम्। का च सा भगवत्पार्श्वे राजमाना व्यवस्थिता॥५८॥
अन्तर्हिते च सहसा सर्वमिच्छामि वेदितुम्। इत्युक्ते व्याजहारेशस्तदा मङ्कणकं हरः॥५९॥
महेशः स्वात्मनो योगं देवीं च त्रिपुरानलः। अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥६०॥

हे शिव! आपका अति भंयकर और चारों ओर मुख वाला यह कौन सा रूप है? तथा आपके पार्श्व में व्यवस्थित होकर विराजमान होकर सहसा अन्तर्धान होने वाली वह देवी कौन है? यह सब मैं जानना चाहता हूँ। ऐसा कहे जाने पर उन महेश्वर भगवान् त्रिपुरनाशक शिव ने अपने योग बल के विषय में तथा देवी पार्वती के विषय में यह कहा था कि मैं सहस्र नेत्रों वाला, सबका आत्मा तथा सभी दिशाओं में मुख वाला हूँ॥५८-६०॥

दाहकः सर्वपाशानां[१] कालः कालकरो हरः। मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम्॥६१॥
सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः। तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥६२॥

१. सर्वपापानां

मैं सभी पाशों को दग्ध करने वाला (पशु पाशविनाशक) हूँ तथा कालस्वरूप, काल का जनक एवं हर [नाम वाला] हूँ। सम्पूर्ण चेतन और अचेतन (जड़) जगत् को मेरे द्वारा ही प्रेरित किया जाता है। मैं ही वह अन्तर्यामी पुरुष और पुरुषोत्तम हूँ जिसकी परमा माया यह त्रिगुणात्मक प्रकृति है॥६१-६२॥

प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनिः सनातनी। स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्वकृत्॥६३॥

उस सनातनी शक्ति को मुनियों ने जगत् की योनि (जगत् जननी) कहा है। वह विश्व के कर्ता शिव इसी माया से विश्व को व्यामोह (मायामोह) में लिप्त करते हैं॥६३॥

नारायणः परोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रुतिः। एवमेतज्जगत्सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम्॥६४॥

परम अव्यक्त नारायण भी माया-स्वरूप हैं- ऐसा श्रुति कहती है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण जगत् को मैं सदैव स्थापित करता हूँ अर्थात् जगत् की स्थिति पालन करता रहता हूँ॥६४॥

योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पञ्चविंशकम्। तया वै सङ्गतो देवः कूटस्थः सर्वगोऽमलः॥६५॥
सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्तेः प्रकृतेरजः। स देवो भगवान् ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः॥६६॥

मैं ही पच्चीसवें तत्त्व पुरुष को प्रकृति के साथ संयोजित करता हूँ। उस प्रकृति के साथ संगत (मिलन) होने पर ही कूटस्थ (निर्विकार), सर्वव्यापी, निर्मल और अजन्मा नित्य पुरुष अपनी ही मूर्ति से इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है। उसी देव को भगवान् ब्रह्मा, पितामह और विश्वरूप भी समझना चाहिए॥६५-६६॥

तवैतत्कथितं सम्यक् स्रष्टृत्वं परमात्मनः। एकोऽहं भगवान्कालो ह्यनादिश्चान्तकृद् विभुः॥६७॥

यह सब मैंने तुमको अच्छी तरह बतला दिया है कि परमात्मा सृष्टि कैसे करता है। एक मात्र मैं ही अनादि, [सृष्टि कारक] तथा सृष्टि का संहारक काल एवं विभु (सर्वशक्तिमान) हूँ॥६७॥

समास्थाय परं भावं प्रोक्तो रुद्रो मनीषिभिः। ममैव सा परा शक्तिर्देवी विद्येति विश्रुता॥६८॥

जब मैं अपने परम भाव में स्थित होता हूँ तो तब ज्ञानी पुरुष मुझे रुद्र कहते हैं। विद्या के नाम से विख्यात देवी भी मेरी ही परा शक्ति है॥६८॥

दृष्टो हि भवता नूनं विद्यादेहः स्वयं ततः। एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वरः॥६९॥

आपने मेरे उस विद्या स्वरूपा शक्ति का दर्शन किया है। मैं उसी देवी से संगत (अभिन्न) हूँ, अतः स्वयं विद्या रूप देह वाला कहलाता हूँ। इस प्रकार ये सभी तत्त्व प्रधान (प्रकृति) पुरुष और ईश्वर कहलाते हैं॥६९॥

विष्णुर्ब्रह्मा च भगवान्रुद्रः काल इति श्रुतिः। त्रयं मे तदनाद्यन्तं ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम्॥७०॥

वेद में इन्हीं पूर्वोक्त शक्तियों को ब्रह्मा, विष्णु तथा काल संज्ञक रुद्र कहा गया है। ये तीनों अनादि अनन्त देव ब्रह्म में ही स्थित हैं॥७०॥

तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः। आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परमम्पदम्॥७१॥

श्रुति का कथन है कि ये तीनों देव परम ब्रह्म से तादात्म्य सम्बन्ध वाले हैं और वह परमब्रह्म अव्यक्त और अक्षर (अविनाशी), आत्मानन्द स्वरूप, परम तत्त्व, चिन्मात्र (विशुद्ध ज्ञानमय) तथा परम पद स्वरूप है॥७१॥

आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यत्र विद्यते। एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु॥७२॥
सम्पूज्यो वन्दनीयोऽहं ततस्तं पश्यसीश्वरम्। एतावदुक्त्वा भगवान् जगामादर्शनं हरः॥७३॥

वह ब्रह्म आकाश रूप और निष्कल है। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी [वास्तविक और शाश्वत] नहीं है। इस तथ्य को ज्ञात करके आपको भक्तियोग का आश्रय लेकर मेरी उपासना और वन्दना करनी चाहिए। उसी के फलस्वरूप तुम उस परम ब्रह्म परमेश्वर का दर्शन कर सकोगे। उस मुनि मङ्कणक से इतना कह कर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये थे॥७२-७३॥

तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः। एतत्पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम्।
संसेव्य ब्राह्मणो विद्वान्मुच्यते सर्वपातकैः॥७४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे तीर्थप्रकरणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

तब उस मुनि मङ्कणक ने भक्तियोग का आश्रय लेकर वहीं उसी [सारस्वत] तीर्थ में भगवान् शिव की आराधना की थी। यह सारस्वत तीर्थ अत्यन्त पवित्र है। ब्रह्मर्षिगण इस तीर्थ का सेवन करते हैं। इस तीर्थ का सेवन करके विद्वान् ब्राह्मण सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥७४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'तीर्थ-प्रकरण' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

तीर्थमाहात्म्ये कालवधवर्णनम्

सूत उवाच

अन्यत्पवित्रं विपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। रुद्रकोटिरिति ख्यातं रुद्रस्य परमेष्ठिनः॥१॥

परमेष्ठी रुद्र का रुद्रकोटि नामक एक अन्य अति पवित्र विशाल तीर्थ है जो तीनों लोकों में विख्यात है॥१॥

पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्पराः। कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमनूपरम्॥२॥

प्राचीन काल में किसी पवित्र (शुभ) समय में एक करोड़ संयमी ब्रह्मर्षि देवदर्शन के लिए तत्पर होकर उस स्थान पर आये थे॥२॥

अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम्। अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां विवादोऽभून्महान् किल॥३॥

उनमें से प्रत्येक भक्त यह कहता था कि पिनाकधारी भगवान् शिव का दर्शन सर्वप्रथम मैं करूँगा। अतः इस विषय में उनमें परस्पर अत्यन्त विवाद होने लगा था॥३॥

तेषां भक्तिं तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः। कोटिरूपोऽभवद्रुद्रो रुद्रकोटिस्ततोऽभवत्॥४॥

उनकी वैसी प्रगाढ भक्ति को देखकर योगीजनों के गुरु वह भगवान् शिव कोटि (एक करोड़) रुद्रों के रूप में प्रकट हो गये थे। अतः तब से वह रुद्रकोटि नाम से वहाँ प्रख्यात हुए थे॥४॥

ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम्। अपश्यन् पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन्॥५॥

तब वे सभी एक करोड़ भक्त पर्वत की गुफा में स्थित पार्वती के पति उन महादेव शिव का दर्शन करके हृष्ट-पुष्ट और बुद्धिमान् बन गये थे॥५॥

अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम्। दृष्ट्वानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन्॥६॥

उनमें से प्रत्येक भक्त यह मान रहा था कि सर्वप्रथम मैंने ही अनादि, अनन्त ईश्वर महादेव का दर्शन किया है। इस प्रकार की भावना के कारण उनकी बुद्धि भगवान् रुद्र की भक्ति में तन्मय हो गयी थी॥६॥

अथान्तरिक्षे विमलं पश्यन्ति स्म महत्तरम्। ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्तः परम्पदम्॥७॥

तभी उन्होंने अन्तरिक्ष में अत्यन्त महान् और उज्ज्वल ज्योति का दर्शन किया था और तब उन सभी ने वहीं परम पद (मोक्ष) प्राप्ति की कामना की थी॥७॥

यतः स देवोऽध्युषितस्तीर्थं पुण्यतमं शुभम्। दृष्ट्वा रुद्रान्समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥८॥

उस अत्यन्त पवित्र और शुभ तीर्थ में भगवान् रुद्र का निवास है। वहाँ रुद्रों का दर्शन करके उनकी पूजा करने से रुद्र का सामीप्य प्राप्त होता है॥८॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं शुभम्। तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत्॥९॥

एक अन्य श्रेष्ठ और शुभ तीर्थ मधुवन नामक है। उस तीर्थ में नियम पूर्वक जाने वाले को इन्द्र का आधा आसन प्राप्त होता है॥९॥

अथान्या पुष्पनगरी[१] देशः पुण्यतमः शुभः। तत्र गत्वा पितॄन्पूज्य कुलानां तारयेच्छतम्॥१०॥

इसके अतिरिक्त एक पुष्पनगरी (पुष्पपुर) नामक अत्यन्त पवित्र देश है, वहाँ जाकर अपने पितरों का [श्राद्ध-तर्पण आदि से] पूजन करके मनुष्य अपने सौ कुलों का उद्धार कर देता है॥१०॥

कालञ्जरं महातीर्थं लोके रुद्रो[२] महेश्वरः। कालं जरितवान् देवो यत्र[३] भक्तप्रियो हरः॥११॥

इस लोक में एक कालञ्जर नामक महान् तीर्थ है। वहाँ पर भक्तों के प्रिय महोदव महेश्वर शिव ने काल को जीर्ण किया था॥११॥

श्वेतो नाम शिवे भक्तो राजर्षिप्रवरः पुरा। तदाशीस्तन्नमस्कारैः पूजयामास शूलिनम्॥१२॥

प्राचीनकाल में श्वेत नामक एक श्रेष्ठ राजर्षि शिव के परम भक्त थे। वह नित्य उन भगवान् शिव की प्रार्थना और पूजन तथा नित्य नमस्कार किया करते थे॥१२॥

संस्थाप्य विधिना रुद्रं भक्तियोगपुरःसरः। जजाप रुद्रमनिशं तत्र संन्यस्तमानसः॥१३॥

वह राजा विधिपूर्वक शिव को स्थापित करके भक्तियोग पूर्वक उन्हीं भगवान् रुद्र के ध्यान में मन लगाकर निरन्तर उनके मन्त्र का जप करते थे॥१३॥

१. पद्मनगरी, २. रुद्र लोके, ३. कालंजरं भजन्दवं तत्र

तदा कार्ष्णायसं कालो[1] शूलमादाय भीषणम्। नेतुमभ्यागतो देशं स राजा यत्र तिष्ठति॥१४॥

तब एक बार जिस स्थान पर वह राजा थे, वहाँ पर उनको ले जाने के लिए काल अपने साथ काले लोहे का भीषण शूल लेकर आ पहुँचा था॥१४॥

वीक्ष्य राजा भयाविष्टः शूलहस्तं समागतम्। कालं कालकरं घोरं भीषणं चण्डदीपितम्॥१५॥

उस कालकर (मृत्यु करने वाले) अत्यन्त भयंकर और प्रचण्ड दीप्ति वाले काल को अपने हाथ में शूल लेकर आया हुआ देखने पर राजा भय से व्याकुल हो गया था॥१५॥

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वासौ लिङ्गमुत्तमम्। ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम्॥१६॥

तब वह राजा दोनों हाथों से भगवान् शिव के लिङ्ग का स्पर्श करके अपने शिर से उनको प्रणाम करते हुए शतरुद्रिय का जप करने लगा था॥१६॥

जपन्तमाह राजानं नमन्तं मनसा भवम्। एह्येहीति पुरःस्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव॥१७॥

शतरुद्रिय का जप करते हुए तथा मन से शिव को नमस्कार करते हुए उस राजा के सम्मुख स्थित होकर यम ने हँसते हुए अब 'आओ, आ जाओ' ऐसा कहा था॥१७॥

तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः। एकमीशार्चनरतं विहायान्यान्निषूदय॥१८॥

तब रुद्र भक्ति में लीन राजा ने भयभीत होकर उस यम से कहा था कि शिव के पूजन में संलग्न एक व्यक्ति को छोड़कर तुम किसी दूसरे को मारो॥१८॥

इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद्भीतमानसम्। रुद्रार्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति॥१९॥

ऐसा कहने वाले उस भयभीत मन वाले राजा से यम ने कहा कि भले ही कोई रुद्र के पूजन में संलग्न हो या कोई अन्य हो, ऐसा कौन है जो मेरे वश में न हो सके॥१९॥

एवमुक्त्वा स राजानं कालो लोकप्रकालनः। बबन्ध पाशै राजापि जजाप शतरुद्रियम्॥२०॥

ऐसा कहकर लोक संहारक काल ने राजा को पाशों से बाँध दिया था और तब भी राजा शतरुद्रिय के जप में संलगन रहा था॥२०॥

अथान्तरिक्षे विपुलं दीप्यमानं तेजोराशिं भूतभुर्तुः पुराणम्।
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं प्रादुर्भूतं संस्थितं संददर्श॥२१॥

तभी राजा ने अन्तरिक्ष में सभी प्राणियों के पालनहार पुराण पुरुष की दीप्तिमान, निर्मल एवं ज्वालामालाओं से परिवेष्टित (घिरी हुई) और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त तेजो-राशि को देखा था॥२१॥

तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम्।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो मेने [2]तन्मे नाथ आगच्छतीति॥२२॥

उस तेजो राशि के मध्य में चन्द्रलेखा के समान उज्ज्वल अङ्गवाले और स्वर्णिम (सुनहले) वर्ण वाले तेजस्वी (तेजोरूप) पुरुष को देवी के साथ देखकर राजा ने प्रसन्न होकर यह मान लिया था कि मेरे नाथ आ गये हैं॥२२॥

---

१. सितं कार्ष्णायसंदीप्तं, २. चात्मानमप्यागच्छतीति

आगच्छन्तं नातिदूरेति दृष्ट्वा कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम्।
व्यपेतभीरखिलस्यैकनाथं राजर्षिस्तंनेतुमभ्याजगाम॥२३॥

देवी पार्वती सहित शिव को समीप में आते हुए देखकर तथा उस राजर्षि को अखिल विश्व के स्वामी भगवान् शिव की शरण में निर्भीक देखकर भी वह काल उस राजर्षि को ले जाने के लिए उसके पास आ गया था॥२३॥

आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्मा देवो रुद्रो भूतभर्ता पुराणः।
एनं भक्तं मत्परं मां स्मरन्तं देहीतीमं कालमूचे ममेति॥२४॥

यह देखकर सभी प्राणियों के स्वामी उग्रकर्मा पुराण पुरुष भगवान् महादेव रुद्र ने काल से कहा कि यह राजा मेरा भक्त है, मेरी शरण में आया है और मेरा स्मरण कर रहा है। तुम मेरे इस भक्त को मुझे दे दो॥२४॥

श्रुत्वा वाक्यं गोपते रुग्रभावः[1] कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम्।
बध्वा भक्तं पुनरेवाथ पाशैः क्रुद्धो रुद्रमभिदुद्राव[2] वेगात्॥२५॥

तब वृषभ वाहन वाले शिव के वचनों को सुनकर वह उग्र स्वभाव वाला काल [अपने स्वभावानुसार] मनमानी पर उतारू होकर उस शिवभक्त राजा को पाशों से बाँधकर पुनः क्रुद्ध होकर वेगपूर्वक भगवान् शिव की ओर दौड़ा था॥२५॥

प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञः।
सावज्ञं वै वामपादेन कालं श्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान॥२६॥

तब उस काल को आते हुए देखकर विश्व-माया के विधि-विधान के ज्ञाता भगवान् शिव ने पार्वती की ओर कटाक्ष करके (तिरछे नेत्रों से) देखते हुए तथा उस श्वेत नामक राजा के देखते देखते [उस काल को] बाँये पैर से लात मार कर गिरा दिया था॥२६॥

ममार सोऽतिभीषणो महेशपादघातितः। विराजते सहोमया महेश्वरः पिनाकधृक्॥२७॥

तब महेश्वर शिव के पैर से ताडित होने पर वह अत्यन्त भीषण काल मर गया था और वह पिनाकधारी देवाधिदेव महादेव पार्वती के साथ वहाँ विराजमान हो रहे थे॥२७॥

निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम्। ननाम वै तमव्ययं स राजपुङ्गवस्तदा॥२८॥

तब प्रसन्न मन वाले उस श्वेत नामक श्रेष्ठ राजा ने देवेश्वर शिव को देखकर पार्वती सहित उन शिव को प्रणाम किया था॥२८॥

नमो भवाय हेतवे हराय विश्व शम्भवे। नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने॥२९॥

[उनकी स्तुति करते हुए राजा ने कहा-] जगत् सृष्टि का कारण-स्वरूप भव एवं हर को नमस्कार है। परम ज्ञानी शिव को नमस्कार है। मोक्ष देने वाले शिव को नमस्कार है॥२९॥

नमो नमो नमो नमो महाविभूतये नमः। विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते॥३०॥

१. रुद्रभावः, २. रुद्रो रौदं चामि

महा विभूतिस्वरूप शिव को नमस्कार है, नमस्कार है, बारंबार नमस्कार है। हे विभागहीन रूप वाले (अखण्ड रूप वाले) आपको नमस्कार है॥३०॥

नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदुःखनाशनं। अनादिनित्य भूतये वराहशृङ्गधारिणे॥३१॥

नरों के अधिपति शरणागत के दुःख-नाशक हे गणेश्वर आपको नमस्कार है। आप अनादि, नित्य, ऐश्वर्यवान् और वराह का शृङ्ग धारण करने वाले को नमस्कार है॥३१॥

नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः। नमो महानटाय ते शिवाय शङ्कराय ते॥३२॥

हे वृषभध्वज वाले देव! आपको नमस्कार है। कपाल की माला धारण करने वाले आपको नमस्कार है। हे महानट, शिव, शङ्कर आपको नमस्कार है॥३२॥

अथानुगृह्य शङ्करः प्रणामतत्परं नृपम्। स्वगाणपत्यमव्ययं स्वरूपतामयो ददौ॥३३॥

तब प्रणाम करने में तत्पर उस राजा पर अनुकम्पा करके भगवान् शिव ने उसे सदा के लिए अपने गणों का अधिपति और अपने समान स्वरूप वाला बना दिया था॥३३॥

सहोमया सपार्षदः सराजपुङ्गवो हरः। मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात्॥३४॥

तदनन्तर देवी उमा तथा पार्षदों और उस श्वेत नामक श्रेष्ठ राजा सहित मुनीश्वरों तथा सिद्धों के द्वारा स्तुति गान से सम्मानित होते हुए वह भगवान् शिव तत्क्षण अदृश्य हो गये थे॥३४॥

काले महेशनिहते लोकनाथः पितामहः। अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवत्विति॥३५॥

भगवान् शिव के द्वारा काल का वध कर दिये जाने पर लोकनाथ ब्रह्मा ने उन भगवान् रुद्र से यह वर माँगा कि यह काल पुनर्जीवित हो जाय॥३५॥

नास्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज। कृतान्तस्यैव भवता तत्कार्ये विनियोजितः॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा हे ईशान्! हे वृषध्वज! इस कृतान्त- काल का कोई दोष नहीं है। इसको तो उस कार्य में आपने ही नियुक्त किया है॥३६॥

स देवदेववचनाद्देवदेवेश्वरो हरः। तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत्॥३७॥

तब देवों के देव ब्रह्मा के वचनानुसार देवाधिदेव महादेव विश्वात्मा शिव ने 'तथास्तु' कहा और तभी वह काल जैसा पहले था, वैसा ही (अर्थात् पुनर्जीवित) हो गया था॥३७॥

इत्येतत्परमं तीर्थं कालञ्जरमिति श्रुतम्। गत्वाभ्यर्च्य महादेवं गाणपत्यं स विन्दति॥३८॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे तीर्थमाहात्म्ये कालवध वर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

इस प्रकार यह श्रेष्ठतीर्थ 'कालञ्जर' नाम से विख्यात हुआ था। इस तीर्थ में जाकर महादेव शिव का पूजन करने वाला व्यक्ति शिव के गणों के अधिपति का पद प्राप्त करता है॥३८॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में तीर्थ-माहात्म्य में 'कालवध' वर्णनात्मक नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

महालयकेदारादितीर्थवर्णनम्

सूत उवाच

इदमन्यत्परं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरं महत्। महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम्॥१॥

देवाधिदेव महादेव का एक अन्य परम गोपनीय स्थान है जो महालय नाम से प्रसिद्ध है॥१॥

तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा। शिलातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम्॥२॥

वहाँ देवों के आदि देव त्रिपुरारि महोदव ने नास्तिकों को प्रदर्शित करने के लिए शिलातल पर अपने चरण को रख कर उसका चिह्न स्थापित किया था॥२॥

तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः। उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः॥३॥

वहाँ पर पशुपति शिव के पाशुपत संज्ञक भक्त सम्पूर्ण शरीर में भस्मलेपन करके वेद के अध्ययन में तत्पर रहकर उन भगवान् शिव की आराधना में संलग्न रहते हैं॥३॥

स्नात्वा तत्र पदं शार्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम्। नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥४॥

वहाँ भक्तिभाव से भगवान् शिव के चरण का दर्शन तथा नतमस्तक होकर नमस्कार करने वाला भक्त भगवानू शिव का सामीप्य प्राप्त होता है॥४॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं शम्भोर्महात्मनः। केदारमिति विख्यातं सिद्धानामालयं शुभम्॥५॥

देवाधिदेव महात्मा (महादेव) शिव का एक अन्य तीर्थ केदार के नाम से विख्यात है। वह शुभ स्थान ही सिद्धों की निवास भूमि [के रूप में प्रसिद्ध] है॥५॥

तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम्। पीत्वा चैवोदकं शुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥६॥

वहाँ स्नान करके वृषभध्वज वाले महादेव का पूजन करके तथा वहाँ के शुद्ध जल को पीकर मनुष्य गणों के अधिपति का पद प्राप्त करता है॥६॥

श्राद्धं दानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभते फलम्। द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्जितमानसैः॥७॥

वहाँ श्राद्ध और दान आदि कृत्य करने पर अक्षय फल प्राप्त होता है। उस तीर्थ में श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा संयमित मन वाले योगी जन निवास करते हैं॥७॥

तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम्। तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते॥८॥

प्लक्षावतरण नामक तीर्थ [स्नानादि करने वाले के] सभी पापों का विनाश करता है। वहाँ श्रीनिवास भगवान् की पूजा करके मनुष्य विष्णुलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥८॥

अन्यच्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम्। अक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वा द्विजोत्तमः॥९॥

एक अन्य तीर्थ मगधारण्य नामक है जो सभी [धार्मिक जनों] को सद्‌गति प्रदान करता है। वहाँ की तीर्थयात्रा करके उत्तम द्विज अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है॥९॥

तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम्। यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः॥१०॥

पवित्र कनखल नामक तीर्थ सभी पापों का नाशक है। वहाँ महादेव रुद्र ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ को विध्वस्त किया था॥१०॥

तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः। मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः॥११॥

वहाँ पर शुद्ध मनोभाव से गङ्गा जल के आचमन तथा उसमें स्नान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में निवास करता है॥११॥

महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम्। तत्राभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति॥१२॥

महातीर्थ नाम से प्रख्यात पवित्र तीर्थ भगवान् नारायण को बहुत प्रिय है। वहाँ हृषीकेश विष्णु की पूजा करके मनुष्य श्वेतद्वीप में जाता है॥१२॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना श्रीपर्वतं शुभम्। तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रस्य दयितो भवेत्॥१३॥

एक अन्य शुभ और श्रेष्ठ तीर्थ श्रीपर्वत नामक है। वहाँ प्राण-त्याग करके मनुष्य भगवान् शिव का प्रियपात्र हो जाता है॥१३॥

तत्र सन्निहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः। स्नानपिण्डादिकं तत्र दत्तमक्षय्यमुत्तमम्॥१४॥

वहाँ पर भगवान् महेश्वर देवी पार्वती के साथ सदा स्थित रहते हैं। वहाँ स्नान और पिण्डदान आदि कृत्य करने का उत्तम और अक्षय फल प्राप्त होता है॥१४॥

गोदावरी नदी पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी। तत्र स्नात्वा पितॄन्देवांस्तर्पयित्वा यथाविधि।
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत्॥१५॥

गोदावरी नदी पवित्र और सभी पापों का विनाश करने वाली है। वहाँ स्नान करके विधि-विधानानुसार पितरों तथा देवों का तर्पण करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर विशुद्ध आत्मा वाला हो जाता है तथा उसे एक सहस्र गायों के दान के तुल्य पुण्य मिलता है॥१५॥

पवित्रसलिला पुण्या कावेरी विपुला नदी। तस्यां स्नात्वोदकं कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः।
त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेन वा॥१६॥

कावेरी नामक पवित्र महानदी अत्यन्त पवित्र जल वाली है। तीन रातों तक या एक रात तक उपवास करते हुए उसमें स्नान करके पितृतर्पण आदि करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१६॥

द्विजातीनांतु कथितं तीर्थानामिह सेवनम्। यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ।
अलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमाप्नुयात्॥१७॥

द्विजातियों के लिए यह तीर्थ-सेवन की विधि बतलायी गयी है। जिसकी वाणी और मन शुद्ध हो तथा हाथ-पैर ठीक हों और लोभी न हो तथा ब्रह्मचर्य का पालन करता हो वही तीर्थ सेवन का फल प्राप्त करता है॥१७॥

स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। तत्र सन्निहितो नित्यं स्कन्दोऽमरनमस्कृतः॥१८॥

स्वामी तीर्थ नामक महा-तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ पर देवों के द्वारा नमस्कार से सम्मानित स्कन्द सदैव विद्यमान रहते हैं॥१८॥

स्नात्वा कुमारधारायां कृत्वा देवादितर्पणम्। आराध्य षण्मुखं देवं स्कन्देन सह मोदते॥१९॥

वहाँ कुमारधारा में स्नान करके तथा [पितरों और] देवों आदि का तर्पण करके षडानन देव कार्तिकेय का पूजन करने वाला मनुष्य उन देव स्कन्द (कार्तिकेय) के साथ आनन्द से निवास का सुख पाकर प्रसन्न रहता है॥१९॥

**नदी त्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीति नामतः। तत्र स्नात्वा पितृन्भक्त्या तर्पयित्वा यथाविधि।
पापकर्तृनपि पितृंस्तारयेन्नात्र संशयः॥२०॥**

ताम्रपर्णी नामक नदी तीनों लोक़ों में विख्यात है। उसमें स्नान करके भक्तिभाव से यथाविधि पितरों का तर्पण करने वाला अपने पापी पितरों को भी तार देता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥२०॥

चन्द्रतीर्थमिति ख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम्। तीर्थे तत्र भवेद्दत्तं मृतानां सद्गतिप्रदम्॥२१॥

कावेरी नदी के उद्गम स्थान में चन्द्रतीर्थ नामक तीर्थ है। वहाँ मृतकों के लिए प्रदत्त श्राद्ध आदि अक्षय फल-प्रद होता है। उस तीर्थ में जिनकी मृत्यु होती है, उनको सद्गति प्राप्त होती है॥२१॥

विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम्। भक्ता ये ते न पश्यन्ति यमस्य वदनं द्विजाः॥२२॥

हे द्विजो! जो भक्तगण विन्ध्य-पर्वत के मूल (तलहटी) में देवाधिदेव सदाशिव का दर्शन करते हैं, वे कभी भी यमराज का मुख नहीं देखते हैं॥२२॥

देविकायां वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्। तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा योगसिद्धिञ्च विन्दति॥२३॥

देविका नामक नदी में एक तीर्थ वृष नामक है, जो सदैव सिद्धों के द्वारा सेवित है। वहाँ स्नान करके [पितरों को] जलाञ्जलि देने से योग-सिद्धि प्राप्त होती है॥२३॥

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्वपापविनाशकम्। दशानामश्वमेधानां तत्राप्नोति फलं नरः॥२४॥

दशाश्वमेघ नामक तीर्थ [वहाँ स्नानादि करने वाले के] सभी पापों को नष्ट कर देता है। वहाँ [स्नान, दान आदि करने पर] मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के तुल्य पुण्य फल प्राप्त करता है॥२४॥

पुण्डरीकं तथा तीर्थं ब्राह्मणैरुपशोभितम्। तत्राभिगम्य युक्तात्मा पुण्डरीकफलं लभेत्॥२५॥

पुण्डरीक नामक तीर्थ ब्राह्मणों से सदा सुशोभित रहता है। वहाँ की तीर्थयात्रा करके संयमित मन वाला धार्मिक व्यक्ति पुण्डरीक-याग का फल प्राप्त करता है॥२५॥

तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति स्मृतम्। ब्रह्माणमर्चयित्वात्र ब्रह्मलोके महीयते॥२६॥

तीर्थों में परम उत्कृष्ट तीर्थ ब्रह्मतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। उस तीर्थ में ब्रह्मा का पूजन करके मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है॥२६॥

**सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम्। व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकश्च नगोत्तमः।
यमुनाप्रभवश्चैव सर्वपापविनाशनः॥२७॥**

सरस्वती नदी के लुप्त होने का स्थान [विनशन], प्लक्ष-प्रस्रवण नामक शुभ तीर्थ, व्यासतीर्थ

नामक परम् प्रसिद्ध तीर्थ तथा मैनाक नामक श्रेष्ठ पर्वत एवं यमुना नदी के उद्गम स्थल को सभी पापों का नाशक बतलाया गया है॥२७॥

पितृणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता। तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत्॥२८॥

पितरों की पुत्री देवी गन्धकाली नामक नदी के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में जाता है। ऐसा व्यक्ति मृत्यु के बाद [पुनर्जन्म होने पर] पूर्वजन्म का स्मरण करने वाला होता है॥२८॥

कुबेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम्। प्राणांस्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत्॥२९॥

सिद्धों और चारणों से सेवित कुबेरतुङ्ग नामक पवित्र स्थान मनुष्यों के सभी पापों का नाशक है। वहाँ प्राण-त्याग करने वाला मनुष्य कुबेर का अनुचर होता है॥२९॥

उमातुङ्गमिति ख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा। तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत्॥३०॥

उमातुङ्ग नामक पवित्र धाम में भगवान् रुद्र-शिव की प्रिया पार्वती का निवास है। वहाँ उस देवी का पूजन करने वाला सहस्र गायों के दान के तुल्य पुण्य-फल को प्राप्त करता है॥३०॥

भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धं दानं तथा कृतम्। कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति मतिर्मम॥३१॥

भृगुतुङ्ग में तपस्या, श्राद्ध, दान आदि करने पर मनुष्य अपने माता और पिता दोनों के कुलों के सात सात पूर्वजों को पवित्र कर देता है, ऐसा मेरा मत है॥३१॥

काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम्। तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया॥३२॥

काश्यप का एक महातीर्थ कालसर्पि नाम से विश्रुत (प्रसिद्ध) है। अपने पापों का नाश करने की कामना करते हुए वहाँ श्राद्ध करने चाहिए॥३२॥

दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमं तपो जपः। अक्षयञ्चाव्ययञ्चैव कृतं भवति सर्वदा॥३३॥

दशार्णा [नदी] में किया गया दान, श्राद्ध, होम, तप तथा जप सदैव अक्षय और अव्यय रहता है अर्थात् चिरकाल तक बना रहता है॥३३॥

तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्ना वै कुरुजाङ्गलम्। दत्त्वा तु दानं विधिवद् ब्रह्मलोके महीयते॥३४॥

कुरु-जाङ्गल नामक तीर्थ नित्य द्विजों के द्वारा सेवित रहता है। वहाँ विधि-पूर्वक दान देने पर मनुष्य ब्रह्मलोक में सम्मानित होकर रहता है॥३४॥

वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैव च। धर्मपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे॥३५॥
भरतस्याश्रमे पुण्ये पुण्ये गृध्रवने शुभे। महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम्॥३६॥

वैतरणी महातीर्थ, स्वर्णवेदी, धर्मपृष्ठ (धर्मपीठ), परम शुभ ब्रह्म सरोवर, भरत के पवित्र आश्रम, शुभ और पवित्र श्राद्धवट एवं महाह्रद तथा कौशिकी में प्रदत्त दान [एवं श्राद्ध आदि] अक्षय होता है॥३५-३६॥

मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता। हिताय सर्वभूतानां नास्तिकानां निदर्शनम्॥३७॥

परम ज्ञानी देव महादेव ने सभी प्राणियों के हित के लिए तथा नास्तिकों को [अपनी शक्ति का] प्रमाण प्रदर्शन के लिए मुण्डपृष्ठ पर अपना चरण [-चिह्न] स्थापित किया था॥३७॥

अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः। पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः॥३८॥

वहाँ अल्प काल में ही धर्म-परायण पुरुष अपने पाप को उसी तरह त्याग देता है, जिस तरह सर्प अपनी जीर्ण त्वचा (केंचुल) का त्याग करता है॥३८॥

नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। उदीच्यां ब्रह्मपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥३९॥

ब्रह्मपृष्ठ के उत्तर में ब्रह्मर्षिगणों द्वारा सेवित तथा तीनों लोकों में प्रसिद्ध कनकनन्दा नामक तीर्थ है॥३९॥

**तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति सशरीरा द्विजातयः। दत्तं वापि सदा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम्।
ऋणैस्त्रिभिर्नरः स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्मषः॥४०॥**

वहाँ स्नान करने वाले द्विजाति सशरीर स्वर्ग में जाते हैं। वहाँ किया गया श्राद्ध सदा अक्षय होता है, तथा वहाँ स्नान करके मनुष्य निष्पाप और तीनों ऋणों [ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण] से मुक्त हो जाता है॥४१॥

मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत्। उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥४१॥

मानस-सरोवर (मानसरोवर) में स्नान करने वाला मनुष्य इन्द्र के आसन के आधे भाग में (इन्द्र के साथ) बैठने का सौभाग्य प्राप्त करता है। उत्तर मानस (मानसरोवर के उत्तरी क्षेत्र) में जाने पर मनुष्य अति उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है॥४१॥

तस्मान्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम्। स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च विन्दति॥४२॥

अतः वहाँ अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार श्राद्ध करना चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति मनोवाञ्छित सुखोपभोग की दिव्य वस्तुओं को प्राप्त करता है तथा मोक्ष के उपाय को भी वह जान लेता है॥४२॥

पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः। योजनानां सहस्राणि सोऽशीतिस्त्वायतो गिरिः॥४३॥

हिमालय नामक पर्वत नाना धातुओं से विभूषित है। वह पर्वत एक हजार अस्सी योजन तक विस्तृत है॥४३॥

सिद्धचारणसङ्कीर्णो देवर्षिगणसेवितः। तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम नामतः॥४४॥

वह सिद्धों तथा चारणों से व्याप्त एवं देवर्षिगणों से सेवित है। वहाँ सुषुम्ना नामक रमणीय पुष्करिणी (सरोवर) है॥४४॥

**तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्ब्रह्महत्यां विमुञ्चति। श्राद्धं भवति चाक्षय्यं तत्र दत्तं महोदयम्।
तारयेच्च पितॄन्सम्यग् दश पूर्वान्दशापरान्॥४५॥**

वहाँ की यात्रा में जाकर विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। वहाँ किया गया श्राद्ध अक्षय होता है तथा वहाँ दिया गया दान महान् अभ्युदय (सुख-समृद्धि) कारक होता है। वहाँ श्राद्ध-दान आदि करने वाला अपने कुल के दश पूर्वजों तथा अपनी भावी दश पीढ़ियों के वंशजों का तारण करता है॥४५॥

सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गा पुण्या समन्ततः। नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्रश्च विशेषतः॥४६॥

हिमालय पर्वत सर्वत्र पवित्र है तथा गङ्गा नदी भी सर्वत्र पवित्र है। समुद्र में मिलने वाली सभी नदियाँ पवित्र हैं तथा समुद्र भी विशेषतः पवित्र है॥४६॥

बदर्याश्रममासाद्य मुच्यते सर्वकिल्बिषात्। तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः।
अक्षयं तत्रं दानं स्याच्छ्राद्धदानादिकञ्च यत्॥४७॥

बदरिकाश्रम में पहुँचने वाला मनुष्य समस्त कल्मष (पाप) से मुक्त हो जाता है। सनातन नारायण देव वहाँ पर नर के साथ विराजमान हैं। वहाँ किया दान तथा श्राद्ध आदि अक्षय हो जाते हैं॥ ।४७॥

महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद्विशेषतः। तारयेच्च पितॄन्सर्वान्दत्त्वा श्राद्धं समाहितः॥४८॥

वहाँ (हिमालय में) वह पवित्र तीर्थ महादेव को विशेषतः प्रिय है। वहाँ श्राद्ध करने पर मनुष्य अपने सभी पितरों को मुक्त कर देता है॥४८॥

देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम्। महादेवेन देवेन तत्र दत्तं महद्वरम्[१]॥४९॥

सिद्धों और गन्धर्वों से सेवित देवदारु वन अत्यन्त पवित्र है। देवाधिदेव महादेव ने वहाँ महान् वरदान दिया था॥४९॥

मोहयित्वा मुनीनूसर्वानूसमस्तैः सम्प्रपूजितः। प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान्॥५०॥
इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा। मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ॥५१॥

भगवान् शिव ने वहाँ सभी मुनियों को मोहित किया था। तब उन सभी मुनियों के द्वारा पूजित भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उन भावितात्मा (पवित्र हृदय वाले) मुनियों से कहा था कि आप लोग सदैव इस श्रेष्ठ और सुरम्य आश्रम में निवास करें और मेरी भक्ति में संलग्न रहें। उससे आप सिद्धि को प्राप्त करेंगे॥५०-५१॥

ये तु[२] मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणाः। तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम्॥५२॥

जो धर्म-परायण लोग यहाँ मेरी पूजा करते हैं, उनको मैं परमश्रेष्ठ और सनातन गाणपत्य पद प्रदान करता हूँ॥५२॥

अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन तु। प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म विन्दति[३]॥५३॥

मैं यहाँ पर नारायण के साथ नित्य निवास करूँगा। जो मनुष्य यहाँ प्राण त्याग करता है, उसको पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता॥५३॥

संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगता जनाः। तेषाञ्च सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमाः॥५४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! अन्य देश में गये हुए लोग भी यदि इस तीर्थ का स्मरण करते हैं तो मैं उनके भी सभी पापों को नष्ट कर देता हूँ॥५४॥

श्राद्धं दानं तपो होमः पिण्डनिर्वपणं तथा। ध्यानं जपश्च नियमः सर्वमत्राक्षयं कृतम्॥५५॥

यहाँ पर किया गया श्राद्ध, दान, तप, होम, पिण्ड-दान, ध्यान, जप तथा नियम-पालन आदि अक्षय हो जाता है॥५५॥

१. महता देवदेवेन तत्र दत्तं महेश्वरम्, २. यत्र, ३. चापनुयात्

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः। देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम्॥५६॥

अतः द्विजातियों को समग्र प्रयास करके भगवान् शिव के द्वारा सेवित पवित्र देवदारु वन का दर्शन अवश्य करना चाहिए॥५६॥

यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः। तत्र सन्निहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च॥५७॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे महालयकेदार तीर्थवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

जहाँ भी ईश्वर महादेव शिव अथवा पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु विराजमान रहते हैं, वहाँ पर पवित्र गङ्गा तथा सभी तीर्थ और देवताओं के दिव्य धाम भी स्थित होते हैं॥५७॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'महालय तीर्थ-वर्णन' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

देवदारुवनोपाख्यानम्

ऋषय ऊचुः

कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान्गोवृषध्वजः। मोहयामास विप्रेन्द्रान् सूत तद्वक्तुमर्हसि॥१॥

ऋषियों ने कहा- हे सूत जी! अब आप यह बतलावें कि गोवृषध्वज भगवान् शिव देवदारु वन में क्यों गये थे और उन्होंने वहाँ ब्राह्मणों को क्यों मोहित किया था?॥१॥

सूत उवाच

पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते। सपुत्रदारतनयास्तपश्चेरुः सहस्रशः॥२॥

सूत जी बोले- प्राचीन काल में देवों और सिद्धों से सेवित सुरम्य देवदारु वन में हजारों मुनियों ने अपने स्त्री-पुत्रों सहित जाकर तपस्या की थी॥२॥

प्रवृत्तं विविधं कर्म प्रकुर्वाणा यथाविधि। यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः॥३॥

विविध प्रकार के [प्रवृत्तिमार्गी] कर्मों में प्रवृत्त होकर उन्हें यथाविधि सम्पन्न करते हुए उन महर्षियों ने विविध प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान किये थे और तपस्या भी की थी॥३॥

तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलभृत्। ख्यापयन् स महादोषं ययौ दारुवनं हरः॥४॥

प्रवृत्ति मार्ग में लीन मन वाले उन ऋषियों के महान् दोष को बतलाने के लिए वह त्रिशूलधारी महादेव देवदारु वन में गये थे॥४॥

कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पार्श्वे देवो महेश्वरः। ययौ निवृत्तविज्ञानस्थापनार्थञ्च शङ्करः॥५॥

वह महेश्वर देव शङ्कर अपने साथ विश्व के गुरु भगवान् विष्णु को अपने पार्श्व (बगल) में लेकर निवृत्ति मार्ग के विज्ञान की स्थापना हेतु वहाँ गये थे॥५॥

आस्थाय ललितं वेशमूनविंशतिवत्सरम्[१]। लीलारतो[२] महाबाहुः पीनाङ्गश्चारुलोचनः॥६॥
चामीकरवपुः श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभाननः। मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः॥७॥
जातरूपमयीं मालां सर्वरत्नैरलंकृताम्। दधानो भगवानीशः समागच्छति सस्मितः॥८॥

वह भगवान् शिव लीला करते हुए उन्नीस वर्ष के युवक के जैसा सुन्दर वेश धारण किये हुए थे। वह महा भुजाओं वाले शिव पुष्ट अङ्गों वाले, सुन्दर नेत्रों वाले, स्वर्णिम कान्ति युक्त शरीर वाले, मतवाले हाथी की जैसी चाल वाले, दिगम्बर (कौपीन मात्र धारण किये हुए) जगदीश्वर भगवान् शिव सभी रत्नों से अलंकृत स्वर्ण की माला धारण किये हुए थे और मुस्कुराते हुए वहाँ आ रहे थे॥६-८॥

योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययो हरिः। स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शूलिनम्॥९॥

अनन्त, पुराण पुरुष, सम्पूर्ण संसार के जनक, अव्यय (अविकारी, अविनाशी) नारायण विष्णु स्त्री का वेश धारण कर त्रिशूलधारी भगवान् शिव का अनुगमन कर रहे थे॥९॥

सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम्। शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणन्नूपुरकद्वयम्॥१०॥

उनका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा समान सुन्दर एवं पवित्र मुस्कान युक्त और प्रसन्न था तथा स्तन स्थूल और उन्नत थे। उनके चरणों में नूपुर झङ्कार कर रहे थे॥१०॥

सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलं चारुलोचनम्। उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम्॥११॥

उन्होंने अपने दिव्य श्यामल शरीर में सुन्दर पीले वस्त्र धारण किये हुए थे। उनके नेत्र अतीव सुन्दर थे, उनकी गति हंस के समान विलासितापूर्ण और मनोहर थी॥११॥

एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हरः। चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत्॥१२॥

इस प्रकार वह भगवान् शिव अपने साथ [स्त्री रूप धारी] भगवान् विष्णु को लेकर अपनी माया से जगत् को मोहित करते हुए देवदारु वन में विचरण करने लगे थे॥१२॥

दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम्। मायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयुः॥१३॥

उन भगवान् पिनाकधारी विश्वनाथ को यत्र तत्र विचरण करते हुए देखकर उनकी माया से मोहित वहाँ की नारियाँ उन देवाधिदेव शिव के पीछे पीछे चलने लगी थी॥१३॥

विस्रस्तवस्त्राभरणास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः। सहैव तेन कामार्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि॥१४॥

अस्त-व्यस्त वस्त्रों और आभूषणों वाली वे पतिव्रता नारियाँ निर्लज्ज और भोग-विलास के प्रति आसक्त और कामातुर होकर उन भगवान् शिव के साथ विचरण करने लगी थी॥१४॥

ऋषीणां पुत्रका येस्युर्युवानो जितमानसाः। अन्वगच्छन् हृषीकेशं सर्वे कामप्रपीडिताः॥१५॥

ऋषियों के जो युवा पुत्र अपने मन को वश में कर चुके थे, वे भी काम-भावना से पीडित होकर [नारी वेश धारी] भगवान् विष्णु के पीछे चलने लगे थे॥१५॥

---
१. विपुलं चैष जनं विशतिवत्सरम्, २. लीलालसो

गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणा नायकमेकमीशम्।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्तमिच्छन्त्यथालिङ्गिनमाचरन्ति॥१६॥

अत्यन्त सुन्दर प्रभु आदि देव मायावी भगवान् शिव को पत्नी सहित देखकर वहाँ समूह में आयी हुई महिलाएँ शृङ्गारिक हाव-भाव करते हुए गायन और नृत्य कर रही थी तथा कामातुर होकर भगवान् शिव का आलिङ्गन कर रही थी॥१६॥

ते सन्निपत्य स्मितमाचरन्ति गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः।
आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं शुभाङ्गमन्ये विचरन्ति तेन॥१७॥

वे मुनीश्वरों के पुत्र भी आदिदेव कमलापति भगवान् विष्णु के सौन्दर्य युक्त शुभाङ्ग (सुन्दर नारी स्वरूप) को देखकर मुस्कराते हुए उनके साथ-साथ चलने लगे थे॥१७॥

आसामथैषामपि वासुदेवो मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्टः।
करोति भोगान् प्रति मानसं च[1] मायानुभूयन्त इतीव सम्यक्॥१८॥

तब मायावी भगवान् मुरारि वासुदेव ने उन स्त्रियों तथा मुनियों के पुत्रों के मन में प्रविष्ट होकर उनके मन में विषय-भोगों के प्रति लालसा जागृत की थी। उन सभी ने भी भगवान् की माया को ठीक अर्थात् वास्तविक (सत्य) समझा था॥१८॥

विभाति विश्वामरविश्वनाथः समाधवस्त्रीगणसन्निविष्टः।
अशेषशक्त्यासनसन्निविष्टो[2] यथैकशक्त्या सह देवदेवः॥१९॥

स्त्रियों के समूह के मध्य में विराजमान अखिल विश्व के प्राणियों के स्वामी भगवान् शिव नारी स्वरूप वाले विष्णु के साथ ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे समस्त शक्तियों से युक्त आसन पर एक शक्ति पार्वती के साथ शिव सुशोभित होते हैं॥१९॥

करोति [3]नृत्यं परमप्रभावं तदा स रुद्रः पुनरेव भूयः।
ययौ समारुह्य हरिः स्वभावं [4]तदीशवृत्तामृतमादिदेवः॥२०॥

तब उस समय वह रुद्र परम प्रभावकारी नृत्य करने लगते थे। तभी उन आदि देवमहादेव शिव के स्वभाव को जानने वाले [नारी वेश वाले] भगवान् विष्णु ने (अपने नारी चरित्र का पालन करते हुए) उन देवाधिदेव रुद्र का अनुसरण किया था॥२०॥

दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्रानपि च केशवम्। मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं सन्दधिरे भृशम्॥२१॥

वहाँ नारी समूह को मोहित करते भगवान् शिव को और मुनिपुत्रों को मोहित करने वाले विष्णु को देखकर वहाँ के मुनिवर अत्यन्त क्रोध से भर गये थे॥२१॥

अतीव परुषं वाक्यं प्रोचुर्देवं कपर्दिनम्। शेपुश्च विविधैर्वाक्यैर्मायया तस्य मोहिताः॥२२॥

---

१. करोति भोगान् मनसि प्रवृत्तिं, २. अशेषशक्त्या समयं निविष्टो
३. नित्यं परमं प्रधानं तदा विरूढः, ४. तमीदृशं नाम तमादिदेवं,

उन कपर्दी भगवान् शिव की माया से मोहित होकर उन मुनियों ने उनको (शिवजी को) अत्यन्त कठोर वचन कहे थे तथा अनेक प्रकार के वचनों से उन्होंने शिव को शाप दिया था॥२२॥

तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शङ्करे। यथादित्यप्रकाशेन[1] तारका नभसि स्थिताः॥२३॥

जैसे सूर्य के प्रकाश से आकाश में स्थित तारे [निस्तेज होकर] लुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार उन मुनियों की तपस्या का बल भगवान् शिव के तेज के समक्ष क्षीण हो गया था॥२३॥

तं भग्न तपसो[2] विप्राः समेत्य वृषभध्वजम्। को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिताः॥२४॥

अपनी तपस्या के खण्डित हो जाने पर मोहग्रस्त हुए उन मुनियों ने वृषध्वज भगवान् शिव के पास जाकर उन देवेश से पूछा कि आप कौन हैं?॥२४॥

सोऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः। इदानीं भार्यया देशं भवद्भिरिह सुव्रताः॥२५॥

तब उन भगवान् शिव ने कहा हे सद्व्रती मुनियो! अभी मैं अपनी पत्नी के साथ इस देश में आप लोगों के साथ रहकर तपस्या करने के लिए यहाँ आया हूँ॥२५॥

तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुङ्गवाः। ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर॥२६॥

उन भगवान् शिव के वचन को सुनकर भृगु आदि मुनीश्वरों ने कहा आप पहले वस्त्र पहन लें और अपनी पत्नी को त्याग कर ही तप करें॥२६॥

अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीललोहितः। सम्प्रेक्ष्य जगतां योनिं पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम्॥२७॥

कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्सुकैः। त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मज्ञैः शान्तमानसैः॥२८॥

तब पिनाकधारी नीललोहित महादेव शिव ने अपने पास स्थित जगत्कर्ता जनार्दन विष्णु की ओर देखकर उन मुनियों से कहा कि आप लोग धर्म के ज्ञाता हैं और शान्तमन वाले हैं और अपनी पत्नी के पालन-पोषण में तत्पर हैं, तथापि आपने मुझसे पत्नी का त्याग करने को कैसे [और क्यों] कहा है?॥२७-२८॥

ऋषय ऊचुः

व्यभिचाररता भार्याः सन्त्याज्याः पतिनेरिताः। अस्माभिर्भक्ताः सुभगा नेदृशास्त्यागमर्हति॥२९॥

ऋषि बाले धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि पति को व्यभिचारिणी स्त्री का परित्याग कर देना चाहिए। हम मुनियों की सौभाग्यवती पत्नियाँ तो पतिव्रता हैं, अतः वे त्याज्य नहीं हैं॥२९॥

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रा मनसाप्यन्यमिच्छति। नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामि कदाचन॥३०॥

महादेव बोले- हे द्विजो! यह मेरी पत्नी मन से भी कदापि अन्य पुरुष की कामना नहीं करती तथा मैं भी कदापि किसी समय भी इसका त्याग नहीं करता हूँ॥३०॥

ऋषय ऊचुः

दृष्टा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभिः पुरुषाधम। उक्तं ह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेव हि॥३१॥

१. प्रतीकाशे, २. भर्त्स्यतपसा

ऋषि बोले- अरे अधम पुरुष! तुम्हारी पत्नी को [पर पुरुषों के साथ] विचरण करते हुए हमने देखा है। आप असत्य बोल रहे हो। आप शीघ्र यहाँ से चले जाओ॥३१॥

एवमुक्तो महादेवः सत्यमेव मयेरितम्। भवतां प्रतिभात्येषेत्युक्त्वाऽसौ विचचार ह॥३२॥

ऐसा कहे जाने पर महादेव शिव बोले कि मैंने तो सत्य कहा है, किन्तु आपको यह [मेरी पत्नी] वैसी लगती होगी। ऐसा कहकर वह भगवान् शिव वहाँ [यत्र तत्र] विचरण करने लगे थे॥३२॥

सोऽगच्छद्धरिणा सार्द्धं मुनीन्द्रस्य महात्मनः। वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थी परमेश्वरः॥३३॥

तब वह परमेश्वर शिव [नारी रूप धारण किये हुए भगवान्] विष्णु को साथ लेकर भिक्षाटन हेतु महात्मा मुनविर वसिष्ठ के पवित्र आश्रम में गये थे॥३३॥

दृष्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती। वसिष्ठस्य प्रिया भक्त्या प्रत्युद्गम्य ननाम तम्॥३४॥

भगवान् शिव को भिक्षुक के रूप में भिक्षाटन हेतु आया हुआ देखकर मुनि वसिष्ठ की प्रिया पत्नी अरुन्धती ने उनके पास जाकर भक्तिभाव से उनको प्रणाम किया॥३४॥

प्रक्षाल्य पादौ विमलं दत्त्वा चासनमुत्तमम्। सम्प्रेक्ष्य शिथिलं गात्रमभिघातहतं द्विजैः।
सन्धयामास भैषज्यैर्विषण्णवदना सती॥३५॥

चकार महतीं पूजां प्रार्थयामास भार्यया। को भवान्कुत आयातः किमाचारो भवानिति।
उच्यतामाह भगवान् सिद्धानां प्रवरो ह्यहम्॥३६॥

उसने उन भिक्षुक वेश में आये हुए शिव के चरणों को धोकर उन्हें [बैठने के लिए] उत्तम आसन देकर द्विजों के द्वारा किये गये प्रहार से आहत उनके शिथिल हुए शरीर को देखकर दुःखी मुखाकृति (अर्थात् दुःखी मन) वाली होकर उनके व्रणों पर औषधि लगायी तथा टूटी हड्डियों को औषधि से जोड़ा था तथा उनकी एवं उनके साथ आयी हुई उनकी पत्नी की पूजा (सत्कार) करके उनसे यह पूछा कि आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं तथा आपका आचार [आचरण या कार्य] कैसा है? आप यह बतलाइए। तब भगवान् शिव ने कहा मैं सिद्धों में श्रेष्ठ सिद्ध हूँ॥३५-३६॥

यदेतन्मण्डलं शुभ्रं भाति ब्रह्ममयं सदा। एषैव देवता मह्यं धारयामि सदैव तु॥३७॥

यह जो उज्ज्वल ब्रह्ममय मण्डल सदा दीप्तिमान् रहता है, वही मेरा आराध्य देवता है। मैं सदा उनको ही धारण करता हूँ॥३७॥

इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमाननुगृह्य पतिव्रताम्। ताडयाञ्चक्रिरे दण्डैर्लोष्टैश्चमुष्टिभिर्द्विजाः॥३८॥

ऐसा कहकर उस प्रतिव्रता अरुन्धती पर अनुग्रह करके वह श्रीमान् शिव वहाँ से चल दिये थे। तभी वहाँ के द्विज डण्डों से, ढेलों से तथा मुक्कों से उन भगवान् शिव पर प्रहार करने लगे थे॥३८॥

दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतलक्षणम्। प्रोचुरेतद्भवान् लिङ्गमुत्पाटय सुदुर्मतेः॥३९॥

उन भगवान् शिव को नग्न और विकृत लक्षणों से युक्त देखकर उन ब्राह्मण मुनियों ने कहा- हे दुर्बुद्धि! आप इस लिङ्ग को उखाड़ कर फेंक दो॥३९॥

तानब्रवीन्महायोगी करिष्यामीति शङ्करः। युष्माकं मामके लिङ्गे यदि द्वेषोऽभिजायते॥४०॥

तब महायोगी शङ्कर ने उनसे कहा कि यदि तुम सबको मेरे लिङ्ग के प्रति द्वेष है तो मैं वैसा ही करूँगा॥४०॥

उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान्भगनेत्रहा। नापश्यंस्तत्क्षणादीशं केशवं लिङ्गमेव च॥४१॥

यह कहकर भग के नेत्रों को फोड़ने वाले भगवान् शिव ने अपने लिङ्ग को उखाड़ दिया था। तब वहाँ उन ब्राह्मण मुनियों के आगे वह ईश्वर शिव तथा केशव (विष्णु) एवं वह लिङ्ग तीनों अदृश्य हो गये थे॥४१॥

तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः। न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुनः।
निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधिः॥४२॥

तभी सम्पूर्ण लोकों में भयजनक उत्पात (उपद्रव) होने लगे थे, सहस्रकिरणों वाले सूर्य तेजोहीन हो गये थे, पृथिवी काँपने लगी थी, सभी ग्रह प्रभावहीन हो गये थे तथा समुद्र उद्वेलित होने लगा था॥४२॥

अपश्यच्चानुसूयात्रेः स्वप्नं भार्या पतिव्रता। कथयामास विप्राणां भयादाकुलितेन्द्रिया॥४३॥
तेजसा भासयन्कृत्स्नं नारायणसहायवान्। भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति॥४४॥

तभी अत्रि की पतिव्रता पत्नी अनसूया ने जो स्वप्न देखा उसके कारण भय से व्याकुल इन्द्रियों वाली होकर उसने ब्राह्मणों से यह कहा कि नारायण सहित भगवान् शिव अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशमान करते हुए भिक्षा माँगते हुए हमारे घरों में देखे गये हैं॥४३-४४॥

तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः। सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम्॥४५॥

उसके वचन सुनकर वहाँ सभी महर्षिगण सशंकित होकर जगत् के सृष्टिकर्ता महायोगी ब्रह्मा के पास गये थे॥४५॥

उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः। चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिः सावित्र्या सहितं प्रभुम्॥४६॥
आसीनमासने रम्ये नानाश्चर्यसमन्विते। प्रभासहस्रकलिले ज्ञानैश्वर्यादिसंयुते॥४७॥

वहाँ उन्होंने शुद्ध आचरण वाले योगीजनों तथा मूर्तिमान् चारों वेदों के द्वारा ब्रह्मा को सावित्री के साथ सुन्दर आसन में विराजमान देखा था। उनका वह आसन नाना आश्चर्यों से सुसज्जित, सहस्रप्रभा विलसित तथा ज्ञान और ऐश्वर्य आदि से युक्त था॥४६-४७॥

विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम्। चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम्॥४८॥
विलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम्। शिरोभिर्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम्॥४९॥

दीप्तिमान देहवाले, मुस्कान युक्त मुख तथा उज्ज्वल नेत्रों वाले, महाबाहु, छन्दोमय, परम श्रेष्ठ एवं दिव्यदेह वाले तथा प्रसन्न मुख वाले पवित्र ब्रह्मा को देखकर उन महर्षियों ने भूमि में शिर रख प्रणाम करते हुए उन ईश्वर ब्रह्मा को प्रसन्न किया था॥४८-४९॥

तान्प्रसन्नमना देवश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः। व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्॥५०॥

तब प्रसन्न मन वाले चतुर्मूर्ति चतुर्मुख वाले देव ब्रह्मा ने कहा हे श्रेष्ठ मुनियो! आप किस कारण से आये हैं॥५०॥

ततस्तस्य वृत्तमखिलं ब्रह्मणः परमात्मनः। ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरस चाञ्जलिम्॥५१॥

तब उन सभी ऋषियों ने अपने मस्तक को झुकाकर और हाथ जोड़कर उन ब्रह्मा जी को सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया था॥५१॥

ऋषय ऊचुः

कश्चिद्दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः। भार्यया चारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्न एव हि॥५२॥

ऋषियों ने कहा - कोई अत्यन्त सुन्दर पुरुष नग्न अवस्था में ही अपनी सर्वाङ्ग सुन्दरी पत्नी के साथ पवित्र देवदारु वन में प्रविष्ट हो गया है॥५२॥

मोहयामास वपुषा नारीणां कुलमीश्वरः। कन्यकानां प्रिया चास्य[1] दूषयामास पुत्रकान्॥५३॥

उस पुरुष ने अपने शरीर [के सौन्दर्य] से हम लोगों की स्त्रियों को मोहित कर दिया है तथा उसकी पत्नी ने हमारे पुत्रों को दूषित कर दिया है॥५३॥

अस्माभिर्विविधाः शापाः प्रदत्तास्ते पराहताः। ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गं तु विनिपातितम्॥५४॥

हम लोगों ने उसे विविध प्रकार के शाप दिये थे, किन्तु सब निष्फल हो गये हैं। तब हम लोगों ने उसे अत्यधिक पीटा तथा उसके लिङ्ग को भी गिरा दिया था॥५४॥

अन्तर्हितश्च भगवान्सभार्यो लिङ्गमेव च। उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयङ्कराः॥५५॥

तभी वह भगवान् अपनी पत्नी सहित अन्तर्धान हो गये थे तथा वह लिङ्ग भी अन्तर्धान हो गया था। तब सभी प्राणियों को भयभीत करने वाले भीषण उत्पात होने लगे थे॥५५॥

क एष पुरुषो देव भीताः स्म पुरुषोत्तम। भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत॥५६॥

हे देव यह पुरुष कौन है? हे पुरुषोत्तम! हम भयभीत हो गये हैं। हे अच्युत! हम आप की ही शरण में आये हैं॥५६॥

त्वं हि वेत्सि जगत्यस्मिन्यत्किञ्चिदिह चेष्टितम्। अनुग्रहेण युक्तेन तदस्माननुपालय॥५७॥

इस संसार में जो कुछ भी घटित होता है, उसे आप जानते हैं। अतः आप यथोचित अनुग्रह करके हमारा पालन करें॥५७॥

विज्ञापितो मुनिगणैर्विश्वात्मा कमलोद्भवः। ध्यात्वा देवं त्रिशूलाङ्कं कृताञ्जलिरभाषत॥५८॥

उन मुनिगणों के द्वारा निवेदन किये जाने पर कमल में उत्पन्न विश्व की आत्मा वह ब्रह्मा त्रिशूल के चिह्न को धारण करने वाले महादेव शिव का ध्यान करके हाथ जोड़ कर यह बोले॥५८॥

ब्रह्मोवाच

हा कष्टं भवतामद्य जातं सर्वार्थनाशनम्। धिग्बलं धिक् तपश्चर्या मिथ्यैव भवतामिह॥५९॥

हाय! यह बड़े कष्ट की बात है। आज आप लोगों का सर्वस्व नष्ट (सर्वनाश) हो गया है। आप लोगों के बल को धिक्कार है। आप लोगों की तपश्चर्या को धिक्कार है। आप लोगों का यह तप मिथ्या (निरर्थक) हो गया है॥५९॥

सम्प्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनां परमं निधिम्। उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिह मोहितैः॥६०॥

---

१. प्रियो यस्तु

अपने पुण्य के संस्कार से (अर्थात् प्रभाव से) प्राप्त निधियों से भी परम उत्तम निधि को प्राप्त करके भी वृथाचारी आप लोगों ने मोहवश उसकी उपेक्षा कर दी है॥६०॥

काङ्क्षन्ते योगिनो नित्यं यतन्तो यतयो निधिम्। यमेव तं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्॥६१॥

योगीजन जिस निधि की कामना करते हैं, यति जन जिसे प्राप्त करने का यत्न करते हैं, उस निधि को प्राप्त करके भी आप लोगों ने उसकी उपेक्षा की है, यह बहुत कष्ट की बात है॥६१॥

यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्त्यै वेदवादिनः। महानिधिं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्॥६२॥

वेद के विद्वान् जिसे पाने के लिए विविध प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं, उस महानिधि को प्राप्त करके आप लोगों ने उसकी उपेक्षा की है॥६२॥

यमर्चयित्वा सततं विश्वेशत्वमिदं मम। स देवोपेक्षितो दृष्ट्वा निधानं भाग्यवर्जिताः॥६३॥

जिनका निरंतर पूजन करके मैं संसार का स्वामी बना हूँ उस परम निधि स्वरूप का दर्शन करने पर भी आप हतभाग्य लोगों ने उसकी उपेक्षा की है॥६३॥

यस्मिन्समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत्तदव्ययम्। तमासाद्य निधिं ब्रह्म हा भवद्भिर्वृथाकृतम्॥६४॥

जिस देव [भगवान् शिव] में दिव्य और अविनाशी ऐश्वर्य समाहित है, उस परं ब्रह्म रूपी निधि को प्राप्त करके भी हाय! आप लोगों ने व्यर्थ कर दिया है॥६४॥

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः। न तस्य परमं किञ्चित्पदं समभिगम्यते॥६५॥

इन देव को ही महादेव और महेश्वर जानना चाहिए। उनके परम पद के विषय में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है॥६५॥

देवतानामृषीणां वा पितृणाञ्चापि शाश्वतः। सहस्रयुगपर्यन्तं प्रलये सर्वदेहिनाम्।
संहरत्येष भगवान्कालो भूत्वा महेश्वरः॥६६॥

यह शाश्वत (सनातन) देव महादेव हजारों युगों के व्यतीत होने के बाद देवों, ऋषियों तथा पितरों एवं सभी प्राणियों का काल बनकर संहार करते हैं॥६६॥

एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येव स्वतेजसा। एष चक्री चक्रवर्ती श्रीवत्सकृतलक्षणः॥६७॥

यही देव अपने तेज से सम्पूर्ण प्रजाओं की सृष्टि करते हैं। यही देव चक्र धारण करने वाले, चक्रवर्ती तथा श्रीवत्स चिह्न से अंकित वक्षस्थल वाले हैं॥६७॥

योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ एव च। द्वापरे भगवान्कालो धर्मकेतुः कलौ युगे॥६८॥

यह देव कृतयुग में योगी, त्रेतायुग में यज्ञ (यज्ञ पुरुष), द्वापर में भगवान् काल तथा कलियुग में धर्मकेतु कहलाते हैं॥६८॥

रुद्रस्य मूर्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम्। तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति स्मृतम्॥६९॥

भगवान् रुद्र की तीन मूर्तियाँ हैं, जो इस सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। इनमें तमोगुण के अधिष्ठाता को अग्नि, रजोगुण के अधिष्ठाता को ब्रह्मा तथा सत्त्वगुण के अधिष्ठाता को विष्णु कहा गया है॥६९॥

मूर्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा सा शिवा ध्रुवा। यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्॥७०॥

इनकी एक मूर्ति (अर्थात् रूप) दिगम्बर स्वरूपा है जो सनातन और कल्याणकारी है। उसी में अवस्थित होकर वह पर-ब्रह्म योग-साधना में लीन रहते हैं॥७०॥

या चास्य पार्श्वगा भार्या भवद्भिरभिवीक्षिता[१]। स हि नारायणो देवः परमात्मा सनातनः॥७१॥

आप लोगों ने इनके समीप में जिनको इनकी पत्नी के रूप में देखा है, वह सनातन परमात्मा भगवान् नारायण हैं॥७१॥

तस्मात्सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयं व्रजेत्। स एव मोहयेत्कृत्स्नं स एव च परा गतिः॥७२॥

उनसे ही यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है तथा उनमें ही यह विलीन होता है। वही इस समस्त संसार को मोहित करते हैं। वही परमगति हैं॥७२॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। एकमूर्तिरमेयात्मा[२] नारायण इति श्रुतिः॥७३॥

वह एक मूर्ति अपरिमित आत्मा वाले नारायण ही सहस्रों शिरों वाले, सहस्रों आँखों वाले तथा सहस्रों चरणों वाले हैं, ऐसा श्रुति (वेद) का कथन है॥७३॥

ऋतऽस्य गर्भो भगवानापोभव तनुः प्रभुः[३]। स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्मोक्षकांक्षिभिः॥७४॥

ऋत (चिरन्तन सत्य) के स्रोत वह भगवान् प्रभु जलमय देहवाले हैं। मोक्ष की कामना करने वाले ब्राह्मणों के द्वारा विविध मन्त्रों से उनकी स्तुति की जाती है॥७४॥

संहृत्य सकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तमः। शेते योगामृतं पीत्वा यत्र विष्णोः परं पदम्॥७५॥

कल्पान्त होने पर वह भगवान् पुरुषोत्तम सम्पूर्ण विश्व का संहार करके योग रूपी अमृत का पान कर वहाँ शयन करते हैं, जहाँ उन भगवान् विष्णु का परम पद है॥७५॥

न जायते न म्रियते वर्द्धते न च विश्वदृक्। मूलप्रकृतिरव्यक्तो गीयते वैदिकैरजः॥७६॥

वह विश्व को देखने वाले परमात्मा न तो जन्म लेते हैं, न उनकी मृत्यु होती है, और न वह कभी बढ़ते हैं। [और न घटते हैं।] वैदिक विद्वान् उनको अजन्मा और अव्यक्त मूल प्रकृति कहते हैं॥७६॥

ततो निशायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलं जगत्। अजनाभौ तु तद्बीजं क्षिपत्येष महेश्वरः॥७७॥

तब प्रलय कालीन महानिशा के व्यतीत हो जाने पर यह महेश्वर सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की कामना से अज की नाभि में (अर्थात् जल में सृष्टि के) बीज को डालते हैं॥७७॥

तं मां वित्त महात्मानं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्। महान्तं पुरुषं विश्वमपां गर्भमनुत्तमम्॥७८॥

आप लोग यह जान लें कि वह अज मैं ही हूँ। मैं ही महात्मा ब्रह्मा, विश्वतोमुख (सभी दिशाओं में मुख वाला) महान पुरुष एवं विश्व स्वरूप हूँ तथा जलों का अति उत्तम गर्भ स्वरूप भी मैं ही हूँ॥७८॥

न तं जानीत जनकं मोहितास्तस्य मायया। देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम्॥७९॥

आप लोग उन देवाधिदेव की माया से मोहित होने के कारण सभी प्राणियों के जनक उन महादेव शिव को नहीं जानते हैं॥७९॥

एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान्हरः। विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च॥८०॥

१. रमिभाषिता, २. एकशृंगो महानात्मा, ३. रेतोऽस्य गर्भो भगवानापो माया तनुः प्रभुः।

यह अनादि देव महादेव भगवान् शिव ही विष्णु के साथ मिलकर जगत् की सृष्टि और संहार करते हैं॥८०॥

न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद्विद्यते परम्। स वेदान् प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम॥८१॥

उन भगवान् शिव को न तो कोई कार्य करना शेष है तथा उनसे श्रेष्ठ अन्य कोई भी नहीं है। उन्होंने योगमाया से शरीर धारण करके पूर्वकाल में मुझे चारों वेद प्रदान किये थे॥८१॥

स माया मायया सर्वं करोति विकरोति च। तमेव मुक्तये ज्ञात्वा व्रजध्वं शरणं शिवम्॥८२॥

वह मायाधीश अपनी माया के द्वारा सभी प्राणियों की सृष्टि एवं संहार करते हैं। उनको मुक्ति का कारण जान कर आप लोग उन भगवान् शिव की ही शरण में जावें॥८२॥

इतीरिता भगवता मरीचिप्रमुखा विभुम्। प्रणम्य देवं ब्रह्माणं पृच्छन्ति स्म समाहिताः॥८३॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे देवदारुवनोपाख्याने अष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

भगवान् ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मरीचि आदि महर्षियों ने उन प्रभु ब्रह्मा को प्रणाम करके एकाग्र चित्त होकर उनसे पुनः कुछ पूछा था॥८३॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में देवदारुवनोपाख्यान में अठतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

देवदारुवनोपाख्यानम्

मुनय ऊचुः

कथं पश्येम तं देवं पुनरेव पिनाकिनम्। ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम्॥१॥

मुनि बोले- हे समस्त देवों के स्वामी! आप शरणागतों के रक्षक हैं, अतः यह बतलाइए कि हम उन पिनाकधारी देव शिव का दर्शन कैसे कर सकते हैं॥१॥

ब्रह्मोवाच

यद् दृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम्। तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम्॥२॥
पूजयध्वं सपत्नीकाः सादरं पुत्रसंयुताः। वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिणः॥३॥
संस्थाप्य शाङ्करैर्मन्त्रैर्ऋग्यजुः सामसम्भवैः। तपः परं समास्थाय गृणन्तः शतरुद्रियम्॥४॥
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बन्धुभिः। सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यथ॥५॥

ब्रह्मा बोले- आप लोगों ने उन भगवान् शिव का भूमि में गिरा हुआ जो लिङ्ग देखा था, उसी लिङ्ग के समान भगवान् शिव के उत्तम लिङ्ग को बना कर अपनी पत्नियों तथा पुत्रों सहित ब्रह्मचर्य का तथा पूजा

के नियमों का पालन करते हुए ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों से उस लिङ्ग की प्राण-प्रतिष्ठा करके उसका वैदिक मन्त्रों से ही पूजन करें। उस समय परम तप करते हुए तथा शतरुद्रिय के मन्त्रों का पाठ करते हुए अपने पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवों सहित हाथ जोड़कर उन भगवान् शूलपाणि शिव की शरण में जावें॥२-५॥

ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः। यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति॥६॥

तभी आप उन देवेश्वर का दर्शन कर सकेंगे। दुष्कर्मी अधर्मी जनों को उनको दर्शन दुर्लभ है। उनका दर्शन पाकर मनुष्यों का समस्त अज्ञान और अधर्म नष्ट हो जाता है॥६॥

ततः प्रणम्य वरदं ब्रह्माणममितौजसम्। जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः॥७॥

तब अमित तेजस्वी और वरदान देने वाले ब्रह्मा को प्रणाम करके वे सभी ब्रह्मर्षि प्रसन्न मन से पुनः देवदारू वन को गये थे॥७॥

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा। अजानन्तः परं देवं वीतरागा विमत्सराः॥८॥

यद्यपि वह परं देव महादेव को नहीं जानते थे तथापि वीतराग अर्थात् आसक्ति रहित होकर तथा मात्सर्य रहित होकर उन्होंने ब्रह्मा के कथनानुसार शिव की आराधना आरम्भ कर दी थी॥८॥

स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च। नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥९॥

उन्होंने नाना प्रकार के स्थण्डिलों (यज्ञ की वेदियों), पर्वतों की गुफाओं, नदियों के जनशून्य पवित्र तटों पर भगवान् शङ्कर की आराधना की थी॥९॥

शैवालभोजनाः केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः। केचिदभ्रावकाशास्तु पादांगुष्ठे ह्यधिष्ठिताः॥१०॥

उनमें से कुछ मुनि केवल शैवाल (कायी या मोथा) का भोजन करते थे, कुछ जल के अन्दर शयन (निवास) करते थे, कुछ खुले आकाश के नीचे पैर के अँगूठे के बल पर खड़े रहते थे॥१०॥

दन्तोलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथा परे। शाकपर्णाशनाः केचित्संप्रक्षाला मरीचिपाः॥११॥

अन्य कुछ लोग दाँतों से कूटकर अनाज की भूसी अलग कर खाते थे तथा कुछ अन्य मुनि पत्थर से अन्न को कूटकर खाते थे। कुछ केवल शाक और पत्तों को खाकर रहते थे तथा कुछ केवल स्नान मात्र करते थे एवं कुछ सूर्य की किरणों का पान करते रहते थे॥११॥

वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे। कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम्॥१२॥

कुछ मुनि वृक्ष के मूल (जड़) में ही अपना घर समझ कर निवास करते थे तो कोई शिला पर शयन करते थे। इस प्रकार तपस्या एवं भगवान् महेश्वर शिव का पूजन करते हुए वे समय व्यतीत कर रहे थे॥१२॥

ततस्तेषां प्रसादार्थे प्रपन्नार्तिहरो हरः। चकार भगवान्बुद्धिं प्रबोधाय वृषभध्वजः॥१३॥

तब शरणागत भक्तों के कष्टहर्ता भगवान् शिव ने कृपा करने के उद्देश्य से उन्हें प्रबोधित करने का मन बनाया था॥१३॥

देवः कृतयुगे ह्यस्मिन्शृङ्गे हिमवतः शुभे। देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः॥१४॥

तब कृतयुग में वह परमेश्वर प्रसन्न होकर हिमालय के शुभ शिखर में स्थित देवदारु वन में गये थे॥१४॥

भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः। उल्मूकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः॥१५॥

उनका शरीर भस्म के लेपन से श्वेत-पीत वर्ण का था। वह निर्वस्त्र और विकृतलक्षणों वाले थे। वह अपने हाथ में जलती हुइ लकड़ी लिए हुए थे। उनके नेत्र लालिमा युक्त पीत वर्ण के थे॥१५॥

क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद्गायति विस्मितः। क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारी क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः॥१६॥

वह कभी भंयकर हास्य कर रहे थे, कभी आश्चर्यान्वित होकर गीत गा रहे थे, कभी शृङ्गार के भाव से नृत्य करने लगते थे तथा कभी बार-बार रोने लगते थे॥१६॥

आश्रमे ह्यटते भिक्षुर्याचते च पुनः पुनः। मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागतः॥१७॥

वह बार-बार भिक्षा माँगने के लिए आश्रम में आते थे। इस प्रकार अपना मायामय रूप बनाकर वह देव शिव उस देवदारु वन में आये थे॥१७॥

कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पार्श्वे देवः पिनाकधृक्। सा च पूर्ववद् देवेशी देवदारुवनं गता॥१८॥

वह पिनाकधारी भगवान् शिव अपने बगल में पार्वती को साथ लेकर चल रहे थे। वह देवी पार्वती पूर्व की भाँति (अर्थात् जो वेश विष्णु ने स्त्री बनकर बनाया था, उसी वेश में) ही देवदारु वन में आयी थी॥१८॥

दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्दिनम्। प्रणेमुः शिरसा भूमौ तोषयामासुरीश्वरम्॥१९॥

उन मुनियों ने देवी पार्वती के साथ आये हुए कपर्दी भगवान् शिव को देखकर भूमि में शिर रखकर उनको प्रणाम करके उनकी स्तुति की थी॥१९॥

वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैः स्तोत्रैर्माहेश्वरैः शुभैः। अथर्वशिरसा चान्ये रुद्राद्यैरर्चयन्भवम्॥२०॥

उन मुनियों ने विविध वैदिक मन्त्रों से, महेश्वर शिव से सम्बन्धित सूक्तों से, अथर्वशीर्षोपनिषत् तथा रुद्रसम्बन्धी अन्य वेद मन्त्रों से उन भगवान् शिव की पूजा करके स्तुति की थी॥२०॥

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः। त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे॥२१॥

[वे ऋषि बोले-] हे देवाधिदेव महादेव आपको नमस्कार है। श्रेष्ठ त्रिशूल को धारण करने वाले त्र्यम्बक को नमस्कार है॥२१॥

नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने। सर्वप्रणतदेवाय स्वयमप्रणतात्मने॥२२॥

दिगम्बर, विकृतवेश वाले एवं पिनाक धनुष को धारण करने वाले शिव को नमस्कार है। जिन भगवान् शिव को सभी प्रणाम करते हैं तथा जो कभी किसी के समक्ष नत-मस्तक नहीं होते उन भगवान् शिव को नमस्कार है॥२२॥

अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च। नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे॥२३॥

सबका अन्त करने वाले यमराज के भी जो अन्तकर्ता हैं तथा जो सबके संहारकर्ता हैं, उन भैरव रूपधारी एवं नृत्य परायण शिव को नमस्कार है॥२३॥

नरनारीशरीराय योगिनां गुरवे नमः। नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च॥ २४॥

नर-नारी शरीर वाले (अर्धनारीश्वर), योगी जनों के गुरु, दान्त, शान्त, तापस वेशधारी शिव को नमस्कार है॥ २४॥

विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे। नमस्ते लेलिहानाय श्रीकण्ठाय च ते नमः॥ २५॥

अत्यन्त भयानक रूप वाले कृत्तिवासा रुद्र को नमस्कार है। लेलिहान श्रीकण्ठ शिव को नमस्कार है॥ २५॥

अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः। नमः कनकमालाय देव्याः प्रियकराय च॥ २६॥

अघोर एवं घोर रूप वाले वामदेव को नमस्कार है। कनक (धतूरा) की माला धारण करने वाले तथा देवी पार्वती के प्रिय-कार्य के कर्ता शिव को नमस्कार है॥ २६॥

गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने। नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः॥ २७॥

गङ्गा जल की धारा को मस्तक में धारण करने वाले परमेष्ठी शिव को नमस्कार है। योगीश्वर को नमस्कार है तथा भूतनाथ को नमस्कार है॥ २७॥

प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गधारिणे। नमस्ते हव्यवाहाय दंष्ट्रिणे हव्यरेतसे॥ २८॥

प्राण-स्वरूप आपको नमस्कार है। भस्मधारण करने वाले शिव को नमस्कार है। हव्य वाहन को नमस्कार है। दाढ़ों वाले तथा हव्यरेता को नमस्कार है॥ २८॥

ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे। आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च॥ २९॥

ब्रह्मा के पाँचवे शिर का हरण करने वाले तथा काल-स्वरूप शिव को नमस्कार है। आपके आगमन के विषय में हम नहीं जानते तथा आपकी गति को भी हम नहीं जानते॥ २९॥

विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते। नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम्॥ ३०॥

हे विश्वेश्वर महादेव आप जो हैं, वही हैं, आपको नमस्कार है। प्रथमगणों के स्वामी, शुभ सम्पदाओं के दाता को नमस्कार है॥ ३०॥

कपालपाणये तुभ्यं नमो जुष्टतमाय ते। नमः कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः॥ ३१॥

अपने हाथ में कपाल धारण करने वाले, जुष्टतम आपको नमस्कार है। स्वर्णिम कान्त वाले तथा जलरूप लिङ्ग अर्थात् जलरूपी मूर्तिवाले आपको नमस्कार है॥ ३१॥

नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः। नमो भुजङ्गहाराय कर्णिकारप्रियाय च।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः॥ ३२॥

अग्नि और सूर्य रूप लिङ्ग वाले अर्थात् अग्नि रूप में तथा सूर्य के रूप में विद्यमान देव को नमस्कार है तथा ज्ञानलिङ्ग रूप वाले (ज्ञान रूप में स्थित) आपको नमस्कार है। सर्पो को माला के रूप में धारण करने वाले आपको नमस्कार है। जिनको कर्णिकार पुष्प बहुत प्रिय है, उन (महादेव) कों नमस्कार है। मुकुट धारण करने वाले, कुण्डल धारण करने वाले एवं काल के भी काल आपको नमस्कार है॥ ३२॥

महादेव महादेव देवदेव त्रिलोचन। क्षम्यतां यत्कृतं मोहात् त्वमेव शरणं हि नः॥ ३३॥

हे महादेव! महादेव! देवाधिदेव! त्रिलोचन! हमने मोहवश जो अपराध किया है, उसके लिए हमें क्षमा करें। अब हम आपकी ही शरण में है॥३३॥

चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च। ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽसि शङ्कर॥३४॥

हे शिव! आपके चरित (महान् कृत्य) अद्भुत, परम रहस्यमय और दुरूह हैं। हे शिव! आपको ब्रह्मा आदि सभी देव भी नहीं जान सकते हैं॥३४॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात् यत्किञ्चित्कुरुते नरः। तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥३५॥

मनुष्य अज्ञान में अथवा ज्ञान सहित जो कुछ करता है, वह सब हे भगवान्! आपके द्वारा योग-माया (अर्थात् योगबल) से करवाया जाता है॥३५॥

एवं स्तुत्वा महादेवं प्रहृष्टैरन्तरात्मभिः। ऊचुः प्रणम्य गिरिशं पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥३६॥

[ऐसा कहकर] प्रसन्न अन्तरात्माओं वाले उन मुनियों ने महादेव शिव को प्रणाम करके कहा कि हम आपके पूर्ववर्ती स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं॥३६॥

तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोमः सोमविभूषणः। स्वयमेव परं रूपं दर्शयामास शङ्करः॥३७॥

उन मुनियों की स्तुति सुनकर चन्द्रमा को आभूषण रूप में धारण करने वाले भगवान् शिव ने उनको उमा सहित अपने परम सौम्य रूप का दर्शन कराया था॥३७॥

तं ते दृष्ट्वाथ गिरिशं देव्या सह पिनाकिनम्।
यथापूर्वं स्थिता विप्राः प्रणेमुर्हृष्टमानसाः॥३८॥

उन मुनियों ने पिनाकधारी देवदेवेश्वर शिव को पूर्ववत् देवी पार्वती के साथ देखकर प्रसन्न मन होकर प्रणाम किया॥३८॥

ततस्ते मुनयः सर्वे संस्तूय च महेश्वरम्। भृग्वंगिरा वसिष्ठस्तु विश्वामित्रस्तथैव च॥३९॥
गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। मरीचिः कश्यपश्चापि संवर्तकमहातपाः।
प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन्॥४०॥

तब उन मुनियों ने भगवान् शिव की स्तुति की थी। भृगु, अङ्गिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, कश्यप एवं संवर्तक आदि महातपस्वी मुनियों ने देवदेवेश्वर शिव को प्रणाम करके यह वचन कहे थे॥३९-४०॥

कथं त्वां देवदेवेश कर्मयोगेन वा प्रभो। ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सदैव हि॥४१॥

हे देवदेवेश! हे प्रभु! आपका पूजन हम कर्मयोग से अथवा ज्ञानयोग से सदैव कैसे करें॥४१॥

केन वा देव मार्गेण सम्पूज्यो भगवानिह। किं तत्सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद् ब्रवीहि नः॥४२॥

हे देव! भगवान् की पूजा किस मार्ग अर्थात् किस विधि से करनी चाहिए। हमको क्या सेवन करना चाहिए और क्या नहीं? यह सब हमें बतलाइए॥४२॥

श्रीशिव उवाच

एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम्। ब्रह्मणे कथितं पूर्वं महादेवे महर्षयः॥४३॥

श्री शिव बोले- हे महर्षियो! यह परम गूढ़ (गुप्त), गम्भीर और उत्तम ज्ञान मैंने आदिकाल में ब्रह्मा को बतलाया था॥४३॥

सांख्ययोगो द्विधा ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम्। योगेन सहितं सांख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम्॥४४॥

पुरुषों के लिए सांख्य (ज्ञानयोग) तथा योग (कर्मयोग) दो प्रकार के साधन विहित हैं। योग सहित सांख्य (अर्थात् कर्मयोग सहित ज्ञानयोग) को ही मनुष्यों के लिए सिद्धि का साधन कहा गया है। वही मुक्ति-प्रद कहा गया है॥४४॥

न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुषः परः। ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम्॥४५॥

केवल योग से परम पुरुष का दर्शन नहीं हो सकता। केवल समुचित ज्ञान ही मोक्ष रूपी फल को देने वाला है॥४५॥

भवन्तः केवलं योगं समाश्रित्य विमुक्तये। विहाय सांख्यं विमलमकुर्वत परिश्रमम्॥४६॥

हे द्विजो! आप विशुद्ध सांख्य (ज्ञान) का परित्याग कर केवल योग का आश्रय लेकर व्यर्थ ही मुक्ति हेतु परिश्रम करते थे॥४६॥

एतस्मात्कारणाद्विप्रा नृणां केवलकर्मणाम्। आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन्मोहसम्भवम्॥४७॥

हे विप्रो! मैं यहाँ यही समझाने के लिए आया हूँ कि मोहवश ही मनुष्य केवल कर्मपरायण होता है॥४७॥

तस्माद्भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम्। ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च॥४८॥

अतः आप लोगों को मोक्ष के साधन भूत ज्ञान को प्रयत्न पूर्वक जानना, सुनना और देखना चाहिए॥४८॥

एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः। आनन्दो निर्मलो नित्यं एतद्वै सांख्यदर्शनम्॥४९॥

आत्मा केवल एक है, वह सर्वत्रगामी, चिन्मात्र (ज्ञानमय), आनन्दमय और निर्मल तथा नित्य विद्यमान है। यही सांख्य दर्शन का उपदेश है॥४९॥

एतदेव परं ज्ञानमथ मोक्षोऽनुगीयते। एतत्कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः॥५०॥

यही परम ज्ञान है। इसी को यहाँ मोक्ष कहा जाता है। यह मैंने विशुद्ध कैवल्य (मोक्ष) तथा ब्रह्मभाव का वर्णन कर दिया है॥५०॥

आश्रित्य चैतत्परमं तन्निष्ठास्तत्परायणाः। पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम्॥५१॥

उस श्रेष्ठ ज्ञान का आश्रय लेकर तथा उसी ज्ञान में निरत होकर और उसी में तत्पर (या उसी के आश्रित) होकर महात्मा लोग तथा संन्यासी जन मुझ विश्वरूप ईश्वर का दर्शन करते हैं॥ ।५१॥

एतत् तत् परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम्। अहं हि वेद्यो भगवान्मम मूर्तिरियं शिवा॥५२॥

यही वह सत् (अर्थात् वास्तविक), निरञ्जन (मिथ्यात्व-रहित, निर्दोष) परम (अर्थात् सर्वोत्तम) ज्ञान है। मुझे ही भगवान् जानना-समझना चाहिए। यह शिवा-पार्वती मेरी ही मूर्ति है॥५२॥

बहूनि साधनानीह सिद्धये कथितानि तु। तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गवाः॥५३॥

सिद्धि प्राप्ति हेतु यहाँ बहुत से साधन कहे गये हैं। हे श्रेष्ठ द्विजो! उन सभी साधनों की अपेक्षा मुझ विषयक ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है॥५३॥

ज्ञानयोगरताः शान्ता मामेव शरणं गताः। ये हि मां भस्मनिरता ध्यायन्ति सततं हृदि॥५४॥
मद्भक्तितत्परा नित्यं यतयः क्षीणकल्मषाः। नाशयाम्यचिरात्तेषां घोरं संसारसागरम्[1]॥५५॥

जो मनुष्य भस्म-लेपन करके मेरी शरण में आकर ज्ञानयोग में निरत एवं शान्त होकर अपने हृदय में सदैव मेरा ध्यान करते हैं और नित्य मेरी भक्ति में लीन रहते हैं, उनके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और मैं शीघ्रमेव उनके घोर संसार सागर को नष्ट कर देता हूँ॥५४-५५॥

निर्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं शुभम्। गुह्याद्गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये॥५६॥

मनुष्यों की मुक्ति हेतु मैंने गुह्य से भी अधिक गोपनीय एवं वेद के सार रूप परम श्रेष्ठ पाशुपत व्रत का विधान बनाया है॥५६॥

प्रशान्तः संयतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः। ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतं चरेत्॥५७॥

द्विज को चाहिए कि वह अपने शरीर में भस्म-लेपन करके, अपने मन को संयमित करके तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पाशुपत व्रत का पालन करे॥५७॥

यद्वा कौपीनवसनः स्यादेकवसनो मुनिः। वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पशुपतिं शिवम्॥५८॥

अथवा विद्वान् मुनि को चाहिए कि वह कौपीन धारण या एक वस्त्र पहन कर वेदाध्ययन में निरत रहते हुए भगवान् पशुपति शिव का ध्यान करे॥५८॥

एष पाशुपतो योगः सेवनीयो मुमुक्षुभिः। भस्मच्छन्नैर्हि सततं[2] निष्कामैरिति हि श्रुतम्॥५९॥

मोक्षाभिलाषी जनों को शरीर में भस्म लेपन करके निष्काम भाव से इस पाशुपत योग का पालन करना चाहिए, ऐसा श्रुति का वचन है॥५९॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः। बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः॥६०॥

राग (आसक्ति), भय और क्रोध से रहित होकर बहुत लोग मेरा आश्रय लेकर तथा मुझ पर समर्पित होकर इस योग का अनुपालन करके मेरे भाव (अर्थात् शिवत्व) को प्राप्त हुए हैं॥६०॥

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु। वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु॥६१॥

इस लोक में लोगों को मोहित करने वाले एवं वेद-वचनों का विरोध करने वाले अन्य अनेक शास्त्र भी मैंने ही कहे हैं॥६१॥

वामं पाशुपतं सोमं लाकुलं चैव भैरवम्। असेव्यमेतत्कथितं वेदबाह्यं तथेतरम्॥६२॥

वाममार्ग से सम्बन्धित शास्त्र, पाशुपत, सोम (?) लाकुल (लकुलीश कृत), तथा भैरवकृत शास्त्र भीं वेद-बाह्य (वेद-विरुद्ध) हैं, अतः असेवनीय है॥६२॥

वेदमूर्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः। ज्ञायते मत्स्वरूपं तु मुक्त्वा वेदं सनातनम्॥६३॥

---

१. संसार गह्वरम्, २. तस्मिन् स्थितैस्तु पठितं

हे ब्राह्मणो! मैं वेद-मूर्ति हूँ। सनातन वेद के अतिरिक्त जो अन्य शास्त्रों के ज्ञाता हैं, वे मेरे स्वरूप को नहीं जान सकते॥६३॥

स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम्। ततोऽचिराद्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः॥६४॥

आप लोग इस मार्ग (पाशुपत धर्म) की स्थापना करें तथा देव महेश्वर की पूजा करें। तब आप लोगों को शीघ्रमेव श्रेष्ठ (ईश्वरीय) ज्ञान मिल जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥६४॥

मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः। ध्यातमात्रो हि सान्निध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः॥६५॥

हे सज्जनो! मुझमें आप लोगों की असीम (विपुल) भक्ति हो जाय। हे श्रेष्ठ मुनियो! आप लोगों के द्वारा ध्यान किये जाने मात्र से मैं आप लोगों के समीप उपस्थित हो जाऊँगा॥६५॥

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत्। तेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शङ्करम्॥६६॥

इतना कहकर वह भगवान् सोम वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। वे मुनिगण भी वहीं देवदारु वन में रहकर भगवान् शिव की आराधना करने लगे थे।६६॥

ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः। समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः॥६७॥
विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान्। किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि॥६८॥
कोऽपि स्यात् सर्वभावानां हेतुरीश्वर एव च। इत्येव मन्यमानानां ध्यानमार्गावलम्बिनाम्।
आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा॥६९॥

उन ब्रह्मवादी महात्मा मुनियों ने ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शान्त तथा ज्ञानयोग में निरत रहते हुए एकत्रित होकर अध्यात्मज्ञान विषयक अनेक वाद-विवाद किये थे। इस जगत् का मूल कारण क्या है? [इसके उत्तर में कहा गया कि] वह हमारा आत्मा ही है। सभी पदार्थों का हेतु कौन है? [इसके उत्तर में कहा गया कि] ईश्वर ही सभी भावों का जनक है। इस प्रकार की मान्यताओं के साथ ध्यान मार्ग का अवलम्बन करने वाले उन मुनियों के समक्ष गिरिश्रेष्ठ हिमालय की पुत्री महादेवी पार्वती प्रकट हुई थी॥६७-६९॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता। स्वभाभिर्निर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम्॥७०॥

करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान, ज्वालामालाओं से परिवेष्टित वह देवी अपनी उज्जवल आभा से आकाशमण्डल को आपूरित कर रही थी॥७०॥

तामन्वपश्यन् गिरिजाममेयां ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम्।
प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति चैतत्परमस्य बीजम्॥७१॥

उन मुनियों ने सहस्र ज्वालाओं [सदृश तेजो राशि] के मध्य में विराजमान अतुलनीय तेज वाली एवं अखिलेश्वर भगवान् शिव की बीज-शक्ति स्वरूपा पत्नी गिरिजा को देखा तो उन्हें [साष्टाङ्ग] प्रणाम किया था॥७१॥

अस्माकमेषा परमेश पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना।
पश्यन्त्यथात्मानमिदं च कृत्स्नं तस्यामथैते मुनयः प्रहृष्टाः॥७२॥

उन मुनियों ने विचार किया कि यह परमेश्वर शिव की पत्नी हम सभी की गति, आत्मा तथा आकाश संज्ञक है। वे सभी मुनि और विप्र प्रसन्न होकर उस देवी में स्वयं अपने को तथा समस्त जगत् को [प्रतिबिम्बित] देख रहे थे॥७२॥

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम्।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम्॥७३॥

तभी परमेश्वर शिव की पत्नी पार्वती ने उन मुनियों पर कृपा करते हुए उन्हें देखा था। उसी समय उन मुनियों ने सम्पूर्ण जगत् के मूल कारण कवि, ईश्वर, शिव-शम्भु, रुद्र, बृहत्पुरुष (महादेव) पुराण-पुरुष को देखा था॥७३॥

आलोक्य देवीमथ देवमीशं प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम्।
ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादादाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु॥७४॥

देवी पार्वती तथा भगवान् शिव का दर्शन पाकर मुनियों ने उनको प्रणाम किया तथा अत्यन्त आनन्द का अनुभव किया था। भगवत् कृपा से उनको वह ज्ञान प्राप्त हुआ जो जन्म-मरण के विनाश का हेतु अर्थात् मोक्षप्रद होता है॥७४॥

इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च।
माहेश्वरीशक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिधानां दिवि राजतीव॥७५॥

[तब मुनियों ने अनुभव किया कि] यह जो देवी आकाश में विराजमान हो रही है और व्योम नाम वाली है, वही जगत् की एकमात्र योनि (मूल कारण) है, वही सर्वात्मिका (सर्वत्र व्याप्त), सबकी नियामक और वही अनादि-सिद्ध माहेश्वरी शक्ति है॥७५॥

अस्यां महान् परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः॥७६॥

महान् परमेष्ठी परात्पर एवं एकमात्र (अद्वितीय) देवाधिदेव महादेव रुद्र अपर नाम वाले भगवान् शिव ने इसी पराशक्ति में विद्यमान माया का आश्रय लेकर विश्व की सृष्टि की है॥७६॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति॥७७॥

वही एकमात्र देव सभी प्राणियों में गुप्त रूप से विद्यमान हैं। वह मायावी रुद्र कलायुक्त (साकार) तथा कला रहित (निराकार) रूप में भी विद्यमान हैं। वह भगवान् रुद्र ही देवी पार्वती के रूप में भी विद्यमान हैं। इस जगत् में उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इस तथ्य को जानने वाले अमृतत्त्व (अमरत्व) को प्राप्त करते हैं॥७७॥

अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो देव्या तया सह देवाधिदेवः।
आराधयन्ति स्म तमादिदेवं वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम्॥७८॥

तब देवाधिदेव भगवान् महादेव उस देवी पार्वती के साथ वहाँ से अन्तर्धान हो गये थे। तदनन्तर उस देवदारु वन के निवासी मुनिगण पुनः उन आदि देव रुद्र की आराधना करने लगे थे॥७८॥

एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम्। देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम्॥७९॥

[तब सूत जी ने कहा-] पूर्वकाल में देवदारु वन में देवाधिदेव की चेष्टा का जो वर्णन पुराण [की कथा] में मैंने सुना था, वह आप लोगों के समक्ष कह दिया है॥७९॥

यः पठेच्छृणुयान्नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः। श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान्स याति परमां गतिम्॥८०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे देवदारुवननोपाख्याने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

जो व्यक्ति नित्य इसका पाठ करेगा या इस कथा को सुनेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करेगा॥८०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'देवदारुवनप्रवेश' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्यम्

सूत उवाच

एषा पुण्यतमा देवी देवगन्धर्वसेविता। नर्मदा लोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी॥१॥

सूत जी बोले- यह तीर्थों में परम उत्तम और लोक- प्रसिद्ध तथा देवों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित नर्मदा नदी अत्यन्त पवित्र है॥१॥

तस्याः शृणुध्वं माहात्म्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्। युधिष्ठिराय तु शुभं सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥

उस नदी का जो सर्वपाप-नाशक शुभ माहात्म्य मार्कण्डेय मुनि ने युधिष्ठिर को बतलाया था, उसे आप लोग सुनें॥२॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतास्ते विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादान्महामुने। माहात्म्यं च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च॥३॥

युधिष्ठिर बोले- हे महामुनि! आपकी कृपा से मैंने विविध प्रकार के धर्मों को सुना तथा अन्य अनेक तीर्थों के साथ ही प्रयाग के माहात्म्य को भी सुना है॥३॥

नर्मदा सर्वतीर्थानां मुख्या हि भवतेरिता। तस्यास्त्विदानीं माहात्म्यं वक्तुमर्हसि सत्तम॥४॥

आपने कहा है कि नर्मदा सभी तीर्थों में प्रमुख है। अतः हे श्रेष्ठतम मुनि! इस समय आप उसके माहात्म्य का वर्णन करें॥४॥

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता। तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥५॥

मार्कण्डेय जी बोले- भगवान् रुद्र की देह से निकली नर्मदा नदी सभी नदियों में सर्वश्रेष्ठ है। यह सभी चराचर प्राणियों का उद्धार कर देती है॥५॥

नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्। इदानीं तत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः शुभम्॥६॥

नर्मदा का जो शुभ माहात्म्य मैंने पुराणों में से सुना है, उसे अब मैं बतलाता हूँ, आप एकाग्र मन से सुनें॥६॥

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती। ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥७॥

गङ्गा नदी कनखल में तथा सरस्वती नदी कुरुक्षेत्र में पवित्र है, किन्तु नर्मदा नदी चाहे गाँव से होकर बह रही हो या वन से बह रही हो, सर्वत्र ही पवित्र है॥७॥

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहाद्यामुनं जलम्। सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥८॥

सरस्वती का जल [पीने वाले को] तीन दिन में, यमुना का जल एक सप्ताह में तथा गङ्गा का जल तत्काल पवित्र करता है, किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शन पात्र से ही पवित्र कर देता है॥८॥

कलिङ्गदेशपश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके। पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा॥९॥

कलिङ्ग देश के पश्चिमी अर्ध-भाग में स्थित अमरकण्टक पर्वत ही तीनों लोकों में सबसे पवित्र, रमणीय और मनोरम [नर्मदा नदी का उद्गम स्थल है]॥९॥

सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः। तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र सिद्धिं तु परमां गताः॥१०॥

हे राजेन्द्र! वहाँ देवताओं सहित असुरों, गन्धर्वों तथा तपस्या ही जिनका धन है, ऐसे ऋषियों ने तपस्या करके परम सिद्धि प्राप्त की है॥१०॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः। उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्॥११॥

हे राजन्! वहाँ नियमानुसार स्नान करके जितेन्द्रिय होकर एक रात तक उपवास करके रहने वाला अपने कुल के सौ पीढ़ियों के पितरों को तार देता है॥११॥

योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा। विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता॥१२॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च। पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके॥१३॥

हे राजेन्द्र! यह सुना जाता है कि यह नर्मदा नदी सौ योजन से भी अधिक लम्बी तथा दो योजन विस्तार तक चौड़ी है। उस अमरकण्टक पर्वत के चारों ओर साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ हैं॥१२-१३॥

ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः। सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः॥१४॥
एवं शुद्धसमाचारो यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। तस्य पुण्यफलं राजन् शृणुष्वावहितोऽनघ॥१५॥

जो व्यक्ति ब्रह्मचारी और शुद्ध होकर तथा क्रोध में विजय प्राप्त करके एवं जितेन्द्रिय रहकर, सभी प्राणियों की हिंसा से निवृत्त होकर तथा सभी प्राणियों के हित में निरत रह कर शुद्ध आचरण करते हुए वहाँ-प्राण त्याग करता है, उसको जो पुण्य फल मिलता है, हे निष्पाप राजन! उसे आप सावधान होकर सुनें॥१४-१५॥

शतं वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति पाण्डव। अप्सरोगणसङ्कीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः॥१६॥

हे पाण्डव! वह स्वर्ग में सौ हजार वर्षों तक अप्सरागणों तथा दिव्य स्त्रियों से घिरा हुआ रहता है॥१६॥

दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः। क्रीडते दिव्यलोके तु विबुधैः सह मोदते॥१७॥

दिव्य-गन्धों से अनुलिप्त देह वाला वह दिव्य पुष्पों से अलंकृत होकर देव-लोक में देवों के साथ क्रीड़ा करते हुए आह्लादित होता है॥१७॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः। गृहं तु लभतेऽसौ वै नानारत्नसमन्वितम्॥१८॥

तब स्वर्ग भोगने के बाद धार्मिक राजा होता है। उसे नाना रत्नों से युक्त घर प्राप्त होता है॥१८॥

स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम्। आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीशतसमन्वितम्॥१९॥

राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः। जीवेद् वर्षशतं साग्रं तत्र भोगसमन्वितः॥२०॥

दिव्य मणियों तथा हीरे और वैदूर्य मणि से अलंकृत स्तम्भों तथा उत्तम चित्रों एवं वाहनों से सुसज्जित उस भवन में सैकड़ों दासियों के साथ निवास करते हुए वह श्रीसम्पन्न तथा सभी स्त्रीजनों का प्रिय बनकर नाना विषय-भोगों का उपभोग करते हुए वह राजराजेश्वर सौ वर्षों से भी अधिक आयु तक जीवित रहता है॥१९-२०॥

अग्निप्रवेशेऽथ जले वाऽथवाऽनशने कृते। अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा॥२१॥

अग्निप्रवेश या जल में प्रवेश करके या अनशन करके [अमरकण्टक क्षेत्रस्थ] तीर्थ में प्राण-त्याग करने वाले को पुनरागमन रहित गति अर्थात् मुक्ति प्राप्ति होती है जैसे कि आकाश में एक दिशा से बहने पर वायु पुनः वापस नहीं होती? [उसी प्रकार वह मुक्ति-प्राप्त राजा पुनः भूलोक में जन्म नहीं पाता है]॥२१॥

पश्चिमे पर्वततटे सर्वपापविनाशनः। ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥२२॥

अमरकण्टक पर्वत के पश्चिमी छोर में सभी पापों को नष्ट करने वाला जलेश्वर नामक सरोवर है, जो तीनों लोकों में विख्यात है॥२२॥

तत्र पिण्डप्रदानेन पितरः स्वर्गता नृणाम्[1]। दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्न संशयः॥२३॥

वहाँ पिण्ड-प्रदान करने से मनुष्यों के स्वर्गवासी पितर दश सहस्र वर्षों तक तृप्त रहते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥२३॥

दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्या महानदी। सरलार्जुनसञ्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥२४॥

नर्मदा नदी के दक्षिणी तट के समीप एक कपिला नामक महानदी है, जो सरल (=साल) तथा अर्जुन के वृक्षों से आच्छादित है॥२४॥

सा तु पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता। तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानान्तु युधिष्ठिर॥२५॥

वह महा भाग्यशालिनी पवित्र नदी तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। हे युधिष्ठिर! उस नदी में सौ करोड़ से भी अधिक तीर्थ हैं॥२५॥

१. सन्ध्योपासनकर्मणा

तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्। नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ २६॥

कालक्रमानुसार जो वृक्ष जीर्ण होकर उस नदी में गिरते हैं, वे सभी नर्मदा नदी के जल के स्पर्श से परम गति को प्राप्त करते हैं॥ २६॥

द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा। तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्॥ २७॥

वहाँ दूसरी महा भाग्यशालिनी नदी विशल्यकरणी नामक है। उस नदी के तीर्थ में स्नान करके मनुष्य तत्क्षण शल्य-मुक्त (अर्थात् पाप रूपी कण्टक से मुक्त) हो जाता है॥ २७॥

कपिला च विशल्या च श्रूयते सरिदुत्तमे। ईश्वरेण पुरा प्रोक्ता लोकानां हितकाम्यया॥ २८॥

यह सुना जाता है कि प्राचीन काल में ईश्वर ने स्वयं यह कहा था कि कपिला और विशल्या नामक नदियाँ लोकों अर्थात् सभी प्राणियों का हित (कल्याण) करें (?)॥ २८॥

अनाशकंतु यः कुर्यात् तत्र तीर्थे नराधिप। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके स गच्छति॥ २९॥

हे राजन्! वहाँ के तीर्थ में जाकर जो व्यक्ति अनशन कता है, वह सभी पापों से मुक्त विशुद्ध आत्मा वाला होकर रुद्रलोक में जाता है॥ २९॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्। ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते॥ ३०॥

हे राजन्! वहाँ स्नान करने वाले मनुष्य को अश्वमेध का फल मिलता है। जो उस तीर्थ के उत्तरी तट पर निवास करते हैं, उनको रुद्र लोक में निवास का सौभाग्य मिलता है॥ ३०॥

सरस्वत्यांच गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर। समं स्नानञ्च दानं च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत्॥ ३१॥

हे युधिष्ठिर! जैसा कि मुझे भगवान् शंकर ने बताया था कि सरस्वती में, गङ्गा में और नर्मदा में स्नान, दान का एक समान पुण्य मिलता है॥ ३१॥

परित्यजति यः प्राणानूपर्वतेऽमरकण्टके। वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते॥ ३२॥

ज़ो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत पर प्राण-त्याग करता है, वह सौ करोड़ वर्षों से भी अधिक समय तक रुद्रलोक में सम्मानित होकर रहता है॥ ३२॥

नर्मदायां जलं पुण्यं फेनोर्मिसमलङ्कृतम्। पवित्रं शिरसा धृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३३॥

नर्मदा के फेन और तरङ्गों से अलंकृत पवित्र जल को [शुद्ध मनोभाव से] शिर पर धारण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥ ३३॥

नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी। अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३४॥

नर्मदा नदी सर्वत्र पवित्र है, ब्रह्महत्या के पाप को दूर करने वाली है। नर्मदा तट के समीप एक अहोरात्र तक उपवास करने वाला ब्रह्महत्या के पाप से भी मुक्त हो जाता है॥ ३४॥

जालेश्वरं तीर्थवरं सर्वपापप्रणाशनम्। तत्र गत्वा नियमवानूसर्वकामाँल्लभेन्नरः॥ ३५॥

जालेश्वर नामक श्रेष्ठ तीर्थ सभी पापों का नाश करता है। वहाँ जाकर नियमानुसार धर्माचरण करने वाले मनुष्य की सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं॥ ३५॥

चन्द्रसूर्योपरागे च गत्वा ह्यमरकण्टकम्। अश्वमेधाद्दशगुणं पुण्यमाप्नोति मानवः॥ ३६॥

चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण के समय अमरकण्टक में जाने पर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का दश गुना पुण्य प्राप्त करता है॥३६॥

एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः। नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः॥३७॥

यह पवित्र पर्वतराज अमरकण्टक नाना वृक्षों और लताओं से परिपूर्ण एवं नाना पुष्पों से सुशोभित तथा देवों और गन्धर्वों से सेवित है॥३७॥

तत्र सन्निहितो राजन्देव्या सह महेश्वरः। ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो विद्याधरगणैः सह॥३८॥

हे राजन्! उस पर्वत में देवी पार्वती के साथ महेश्वर तथा विद्याधर गणों सहित ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र सदैव निवास करते हैं॥३८॥

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्पर्वतं ह्यमरकण्टकम्।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥३९॥

जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत की प्रदक्षिणा करता है, वह पौण्डरीक यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त करता है॥३९॥

कावेरी नाम विख्याता नदी कल्मषनाशिनी। तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयेद् वृषभध्वजम्।
सङ्गमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते॥४०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्यं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

कावेरी नामक प्रसिद्ध नदी पापों का नाश करने वाली है। उसमें स्नान करके वृषभध्वज वाले महादेव का पूजन करना चाहिए। कावेरी तथा नर्मदा के सङ्गम में स्नान करने वाला रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥४०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध का 'नर्मदा-माहात्म्य' नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदातीरस्थतीर्थानां वर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी। मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुवा॥१॥

नर्मदा नदी को पूर्वकाल में स्वयंभू ब्रह्मा ने तथा मुनियों ने सभी नदियों में सर्वश्रेष्ठ तथा सभी पापों का नाश करने वाली नदी कह दिया था॥१॥

मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी। रुद्रगात्राद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥२॥

मुनियों के द्वारा स्तुति (प्रार्थना) किये जाने पर यह श्रेष्ठ नर्मदा नदी लोक-कल्याण की कामना से भगवान् रुद्र-शिव की देह से निकली थी॥२॥

सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता। संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥३॥

सभी देवों के द्वारा प्रणम्य एवं सभी देवों गन्धर्वों तथा अप्सराओं के द्वारा स्तुत्य यह नदी नित्यमेव सभी पापों को नष्ट कर देती है॥३॥

उत्तरे चैव तत्कूले तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुत्। नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम्। तत्र स्नात्वा नरो राजनूदैवतैः सह मोदते॥४॥

इस नदी के उत्तरी तट पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध भद्रेश्वर नामक शुभ और पवित्र तीर्थ है यह सभी पापों को दूर करता है। वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द से रहता है॥४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्[1]। तत्र स्नात्वा नरो राजनूगोसहस्रफलं लभेत्॥५॥

हे राजेन्द्र! तदन्तर विमलेश्वर नामक उत्तम तीर्थ की यात्रा में जाना चाहिए। [इस प्रसंग में दिया गया आम्रातकेश्वर पाठ स्वीकार्य नहीं है। द्रष्टव्य- धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, पृ. १४८३ में 'विमलेश्वर'।] हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान करने पर हजार गायों के दान का पुण्यफल मिलता है॥५॥

ततोऽङ्गारकेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥६॥

तदनन्तर संयम का पालन करते हुए तथा संतुलित शुद्ध भोजन पर निर्भर रहते हुए अङ्गारकेश्वर की तीर्थ यात्रा में जाना चाहिए, उस तीर्थ की यात्रा से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में सम्मानित होकर रहता है॥६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र केदारं नाम पुण्यदम्। तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥७॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर पुण्यप्रद केदार नामक [नर्मदा क्षेत्रस्थ] तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करके तथा वहाँ का जल पीकर सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं॥७॥

निष्फलेशं[2] ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्। तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते॥८॥

तत्पश्चात् सर्वपापनाशक निष्फलेश [?] नामक तीर्थ में जाना चाहिए। हे महाराज! वहाँ स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में सम्मानित होकर रहता है॥८॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र बाणतीर्थमनुत्तमम्। तत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥९॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम बाण तीर्थ में जावे। वहाँ जाकर प्राणत्याग करने वाला मनुष्य रुद्रलोक में जाता है॥९॥

ततः पुष्करिणीं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। तत्र स्नात्वा नरो राजन् सिंहासनपतिर्भवेत्॥१०॥

तत्पश्चात् पुष्करिणी में जावे और वहाँ स्नान करे। हे राजन्! वहाँ स्नान करके [राज-] सिंहासन में बैठने वाला स्वामी हो जाता है॥१०॥

शक्रतीर्थं ततो गच्छेत्कूले चैव तु दक्षिणे। स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्धासनं लभेत्॥११॥

---

१. तीर्थमाम्रातकेश्वरम्, २. पिप्पलेशं

तत्पश्चात् नर्मदा के दक्षिण की ओर के तट में स्थित शक्रतीर्थ (इन्द्रतीर्थ) में जावे। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य इन्द्र का आधा आसन प्राप्त कर लेता है॥११॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र शूलभेद इति श्रुतम्। तत्र स्नात्वाऽर्चयेद् देवं गोसहस्रफलं लभेत्॥१२॥

हे राजेन्द्र! तब शूलभेद नाम से प्रसिद्ध तीर्थ में जावे। वहाँ स्नान करके महादेव भगवान् शिव की पूजा करे। इससे वह एक सहस्र गायों के दान का पुण्य फल प्राप्त करता है॥१२॥

उपोष्य रजनीमेकां स्नानं कृत्वा यथाविधि। आराधयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः। गोसहस्रफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति॥१३॥

वहाँ एक रात तक उपवास करने के बाद यथा-विधि स्नान करके पवित्र होकर जो व्यक्ति महायोगी देवाधिदेव की आराधना करता है, वह सहस्र गोदान का पुण्य फल प्राप्त करके विष्णु लोक में जाता है॥१३॥

ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम्। स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके महीयते॥१४॥

तदनन्तर मनुष्यों के सभी पापों को नष्ट करने वाले ऋषितीर्थ में जाकर स्नान करने मात्र से व्यक्ति शिवलोक में महिमा प्राप्त करके निवास करता है॥१४॥

नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्। स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥१५॥

वहीं नारद जी का परम सुन्दरतीर्थ है। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य सहस्र गोदान का पुण्य-फल प्राप्त करता है॥१५॥

यत्र तप्तं तपः पूर्वं नारदेन सुरर्षिणा। प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः॥१६॥

वहाँ पर पूर्वकाल में देवर्षि नारद ने तप किया था। तब देवाधिदेव महेश्वर ने प्रसन्न होकर उनको योग प्रदान किया था॥१६॥

ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम्। यत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते॥१७॥

वहाँ ब्रह्मा ने ब्रह्मेश्वर नामक लिङ्ग को निर्मित करके स्थापित किया था। वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है॥१७॥

ऋणतीर्थं ततो गच्छेदृणान्मुच्येन्नरो ध्रुवम्। वटेश्वरं ततो गच्छेत्पर्याप्तं जन्मनः फलम्॥१८॥

तदनन्तर ऋणतीर्थ की यात्रा में जाना चाहिए। वहाँ जाकर मनुष्य ऋणमुक्त हो जाता है। तदनन्तर वटेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ जाकर जन्म सफल हो जाता है॥१८॥

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम्। स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते॥१९॥

तदनन्तर सभी व्याधियों को विनष्ट करने वाले भीमेश्वर नामक तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है॥१९॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्। अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्॥२०॥

हे राजेन्द्र! तब पिङ्गलेश्वर नामक उत्तम तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ एक अहोरात्र तक उपवास करने पर तीन रात तक उपवास करने का फल मिल जाता है॥२०॥

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति। यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ २१॥

हे राजेन्द्र! जो व्यक्ति उस तीर्थ में कपिला गौ का दान देता है, वह उस गौ तथा उसकी सन्तान गायों के कुल में उत्पन्न गायों के शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षों तक रुद्रलोक में सम्मानित होकर निवास करता है॥ २१॥

यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप। अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ २२॥

हे राजन्! जो मनुष्य वहाँ प्राण-त्याग करता है, वह जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे उतने समय तक अमर होकर अक्षय सुख का आनन्द प्राप्त करता है॥ २२॥

नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठन्ति मानवाः। ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥ २३॥

नर्मदा तट का आश्रय लेकर जो मनुष्य वहाँ निवास करते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् पुण्ययात्मा सन्तों के समान स्वर्ग में जाते हैं॥ २३॥

ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम्। निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।
हुङ्कारिता तु व्यासेन दक्षिणेन[1] ततो गता॥ २४॥

तदनन्तर तपोवन के व्यासतीर्थ में स्थित दीप्तेश्वर के दर्शन हेतु जाना चाहिए। वहाँ व्यास जी के हुंकार से भयभीत महानदी नर्मदा लौटकर [दक्षिण दिशा को] चली गयी थी॥ २४॥

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तास्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर। प्रीतस्तस्य भवेद् व्यासो वाञ्छितं लभते फलम्॥ २५॥

हे युधिष्ठिर! जो व्यक्ति उस तीर्थ की परिक्रमा करता है, उस पर व्यास जी प्रसन्न हो जाते हैं तथा वह मनोवाञ्छित फल पाता है॥ २५॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु सङ्गमम्। त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्र सन्निहितः शिवः।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २६॥

हे राजन्! तदनन्तर इक्षु नदी के तीनों लोकों में विख्यात पवित्र संगम में जाना चाहिए। वहाँ भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य शिव के गणों का अधिपति बन जाता है॥ २६॥

स्कन्दतीर्थं[2] ततो गच्छेत् ऋणान्मुच्यते ध्रुवम्। आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति॥ २७॥

उसके बाद स्कन्दतीर्थ की यात्रा करे। वहाँ जो जाता है, वह निश्चयमेव ऋण-मुक्त हो जाता है। वहाँ स्नान करने से जीवन भर किया हुआ पाप दूर हो जाता है॥ २७॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा भर्गात्मजमनुत्तमम्। उपासते महात्मानं स्कन्दं शक्तिधरं प्रभुम्॥ २८॥

वहाँ गन्धर्वों सहित सभी देवता भगवान् शिव के श्रेष्ठ पुत्र जो कि शक्ति (भाला, बर्छी) धारण करते हैं, उन महात्मा स्वामी स्कन्द (कार्तिकेय) की उपासना करते हैं॥ २८॥

ततो गच्छेदाङ्गिरसं स्नानं तत्र समाचरेत्। गोसहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ २९॥

१. तत्क्षणेन, २. ऋणतीर्थं

तदन्तर आङ्गिरस तीर्थ में जाकर स्नान करे। वहाँ स्नान करने वाला एक सहस्र गोदान के तुल्य पुण्य फल प्राप्त करके रुद्रलोक में जाता है॥२९॥

अङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम्। तपसाराध्य विश्वेशं लब्धवान्योगमुत्तमम्॥३०॥

उस तीर्थ में ब्रह्मा के पुत्र अङ्गिरा ने तपस्या से देवाधिदेव विश्वेश्वर की आराधना करके उनसे उत्तम योग को प्राप्त किया था॥३०॥

कुशतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्। तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत्॥३१॥

तत्पश्चात् सर्वपापनाशक कुशतीर्थ में जावे। वहाँ स्नान करने पर अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है॥३१॥

कोटितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्। आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति॥३२॥

तदनन्तर सर्व-पापनाशक कोटितीर्थ की यात्रा करे, वहाँ स्नान करने से जीवन भर किया हुआ पाप दूर हो जाता है॥३२॥

चन्द्रभागां ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते॥३३॥

तब चन्द्रभागा नदी [के तीर्थ] में जाकर वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य सोमलोक में सम्मानित होता है॥३३॥

नर्मदादक्षिणे कूले सङ्गमेश्वरमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वयज्ञफलं लभेत्॥३४॥

नर्मदा के दक्षिणी तट में उत्तम संगमेश्वर तीर्थ है। हे राजन् वहाँ स्नान करने वाला सभी यज्ञों के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है॥३४॥

तत्र चैवोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्। आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेण तु निर्मितम्[1]॥३५॥

वहीं नर्मदा के उत्तरी तट पर परम सुन्दर तीर्थ है। वहाँ स्वयं ईश्वर के द्वारा निर्मित आदित्य का सुरम्य मन्दिर है॥३५॥

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्त्वा दानन्तु शक्तितः। तस्य तीर्थप्रभावेण लभते चाक्षयं फलम्॥३६॥
दरिद्रा व्याधिता ये तु ये तु दुष्कृतकर्मिणः। मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोके प्रयान्ति च॥३७॥

हे राजन्! वहाँ स्नान करके यथाशक्ति दान देने पर मनुष्य उस तीर्थ के प्रभाव से अक्षय फल प्राप्त करता है। दरिद्र, रोगी तथा पाप करने वाले मनुष्य भी वहाँ [स्नानादि करके] सभी पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक में जाते हैं॥३६-३७॥

मातृतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥३८॥

तब मातृतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य स्वर्गलोक में जाता है॥३८॥

ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुताशयमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः॥३९॥
काञ्चनञ्च यतेर्दद्याद्यथाविभवविस्तरम्। पुष्पकेन विमानेन वायुलोकं स गच्छति॥४०॥

१. भाषितम्

तदनन्तर पश्चिम की ओर उत्तम मरुताशय (मरुतों का स्थान) नामक उत्तम तीर्थ में जावे। उस तीर्थ में स्नान करके शुद्ध होकर एकाग्र मन से अपनी आर्थिक क्षमतानुसार किसी संन्यासी को स्वर्ण का दान करे। ऐसा करने वाला पुष्पक विमान में आरूढ होकर वायु लोक में जाता है॥ ३९-४०॥

ततो गच्छेतु राजेन्द्र अहल्यातीर्थमुत्तमम्। स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमुत्तमम्॥४१॥

हे राजन्! तत्पश्चात् परम श्रेष्ठ अहल्यातीर्थ में जावे। वहाँ स्नान करने मात्र से [स्वर्ग में जाकर] अप्सराओं के साथ दीर्घकाल तक आनन्द से रहता है॥४१॥

चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी। कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत्[१]॥४२॥
यत्र यत्र समुत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियो भवेत्। स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः॥४३॥

चैत्रमास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी कामदेव की तिथि है, उस दिन जो व्यक्ति अहल्या का पूजन करता है, वह जहाँ भी जन्म लेता है, वहाँ सभी को प्रिय होता है। वह कामदेव के समान श्री-सम्पन्न (सुन्दर) एवं स्त्रियों को अत्यन्त प्रिय होता है॥४२-४३॥

सरिद्वरां समासाद्य तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्। स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥४४॥

श्रेष्ठ नदी नर्मदा में स्थित इन्द्र के सुप्रसिद्ध तीर्थ में जाकर स्नान करने मात्र से मनुष्य एक सहस्र गोदान का पुण्य फल प्राप्त करता है॥४४॥

सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४५॥

तत्पश्चात् सोमतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे। वह स्नान करने मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥४५॥

सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत्। त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्॥४६॥

हे राजेन्द्र! चन्द्रग्रहण काल में सोमतीर्थ में स्नान से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। हे राजन् तीनों लोकों में प्रसिद्ध सोमतीर्थ महाफल देने वाला है॥४६॥

यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात्तत्र तीर्थे समाहितः। सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति॥४७॥

जो मनुष्य उस सोमतीर्थ में संयमित होकर चान्द्रायण करता है, वह सभी पापों से मुक्त विशुद्ध आत्मा वाला होकर सोमलोक में जाता है॥४७॥

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्सोमतीर्थे नराधिप। जले चानशनं वापि नासौ मर्त्यो हि जायते॥४८॥

जो मनुष्य सोमतीर्थ में जाकर अग्नि में प्रवेश करता है या जल में [प्रवेश करता है] अथवा अनशन करता है, वह [मुक्त हो जाता है और] पुनः जन्म नहीं लेता॥४८॥

स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते॥४९॥

तब स्तम्भतीर्थ की यात्रा में जावे और वहाँ जाकर स्नान करे। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य सोमलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥४९॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम्। योधीपुरमिति ख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम्॥५०॥

१. पूजयेत् ततः

हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम विष्णु तीर्थ में जावे। वह भगवान् विष्णु का अति उत्तम स्थान योधीपुर (योधनीपुर) नाम से प्रसिद्ध है॥५०॥

असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः। तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीको भवेदिह। अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥५१॥

वहाँ वासुदेव ने करोड़ों असुरों के साथ युद्ध किया था। तब से वहाँ यह तीर्थ भगवान् विष्णु की श्री से सम्पन्न हो गया था। वहाँ एक अहोरात्र (दिन और रात) तक उपवास करने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है॥५१॥

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्। कामतीर्थमिति ख्यातं यत्र कामोऽर्चयद्धरित्॥५२॥

नर्मदा के दक्षिणी तट में कामतीर्थ नाम से विख्यात परम सुन्दर तीर्थ बहुत विख्यात है। वहाँ कामदेव ने भगवान् विष्णु का पूजन किया था॥५२॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः। कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते॥५३॥

उस तीर्थ में स्नान करके उपवास में निरत मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर शरीर धारण करके शिव-लोक में सम्मानित होकर रहता है॥५३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्। अमोघमिति विख्यात तत्र सन्तर्पयेत्पितॄन्। पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि॥५४॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् परमोत्तम ब्रह्मतीर्थ में जावे। उस तीर्थ की यात्रा अमोघ (अर्थात् कभी भी व्यर्थ न होने वाली) होती है। वहाँ (स्नान करके) पितरों का तर्पण करे तथा अमावास्या और पूर्णमासी तिथि को वहाँ पर विधि-पूर्वक श्राद्ध करे॥५४॥

गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये व्यवस्थिता।
तस्मिंस्तु दापयेत्पिण्डान्वैशाख्यां तु समाहितः॥५५॥
स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जितः। तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावत्तिष्ठति मेदिनी॥५६॥

वहाँ जल के अन्दर हाथी के आकर की शिला स्थित है। वैशाख पूर्णिमा के दिन संयमित होकर उस शिला में पिण्डदान करना चाहिए। उस दिन स्नान करके एकाग्र मन से और दम्भ तथा ईर्ष्या-द्वेष रहित होकर पिण्डदान करने वाले के पितर तब तक तृप्त रहते हैं, जब तक यह पृथिवी रहेगी॥५५-५६॥

विश्वेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत्॥५७॥

तब विश्वेश्वर तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य भगवान् शिव के गणों के अधिपति का पद प्राप्त करता है॥५७॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र लिङ्गो यत्र जनार्दनः। तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते॥५८॥

हे राजेन्द्र तत्पश्चात् जहाँ भगवान् विष्णु लिङ्गरूप में विराजमान हैं, वहाँ जाकर भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य विष्णुलोक में सम्मानित होकर रहता है॥५८॥

यत्र नारायणो देवो मुनीनां भावितात्मनाम्। स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत्परमं पदम्॥५९॥

वहाँ नारायण देव विष्णु ने भक्तिभाव से पवित्र आत्मा वाले मुनियों को अपने परम पद स्वरूप को लिङ्ग रूप में दिखाया था॥५९॥

अङ्कोलं तु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्। स्नानं दानञ्च तत्रैव ब्राह्मणानाञ्च भोजनम्।
पिण्डप्रदानञ्च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम्॥६०॥

तत्पश्चात् अङ्कोल नामक सर्वपाप नाशक तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ किया गया स्नान, दान, ब्राह्मण-भोजन, पिण्डदान परलोक में अनन्त फलप्रद होता है॥६०॥

त्रियम्बकेन तोयेन यश्चरुं श्रपयेद् द्विजः। अङ्कोलमूले दद्याच्च पिण्डांश्चैव यथाविधि।
तारिताः पितरस्तेन तृप्यन्त्याचन्द्रतारकम्॥६१॥

जो द्विज त्रियम्बक मन्त्र (त्र्यम्बकं यजामहे, इत्यादि) से अभिमन्त्रित जल से चरु पका कर अङ्कोल वृक्ष के मूल (जड़) में विधि-विधान से पिण्डदान करता है, उसके द्वारा तारे गये पितर जब तक चन्द्रमा और तारे रहेंगे तब तक तृप्त रहेंगे॥६१॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र प्राप्नुयात्तपसः फलम्॥६२॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ तापसेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। हे राजन् वहाँ स्नान करने पर तपस्या का फल प्राप्त होता है॥६२॥

शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्। नास्ति तेन समं तीर्थं नर्मदायां युधिष्ठिर॥६३॥

तब सर्व पापनाशक शुक्ल तीर्थ में जाना चाहिए। हे युधिष्ठिर! नर्मदा में उसके समान उत्तम तीर्थ अन्य कोई नहीं है॥६३॥

दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य स्नान-दान-तपो जपात्। होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत्फलम्॥६४॥

उस शुक्ल तीर्थ के दर्शन एवं स्पर्श से तथा वहाँ स्नान, दान, तप, जप, होम और उपवास करने से महान् फल प्राप्त होता है॥६४॥

योजनं तत् स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम्। शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम्॥६५॥

देवों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित वह सर्वपापनाशक शुक्लतीर्थ नामक क्षेत्र एक योजन विस्तृत है॥६५॥

पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति। देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शङ्करः॥६६॥

इस तीर्थ-क्षेत्र के वृक्षों के अग्रभाग के दर्शन हो जाने पर भी ब्रह्महत्या का पाप दूर हो जाता है। देवी पार्वती के साथ भगवान् शिव सदैव वहाँ निवास करते हैं॥६६॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां वैशाखे मासि सुव्रत। लोकात्स्वकाद्विनिष्क्रम्य तत्र सन्निहितो हरः॥६७॥

हे सद्व्रती! वैशाख मास के कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन भगवान् शिव अपने लोक (कैलाश) से आकर इस [शुक्ल] तीर्थ में विराजमान रहते हैं॥६७॥

देवदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा। गणाश्चाप्सरसो नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुङ्गव॥६८॥

हे श्रेष्ठ राजन्! देवता, दानव गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरा-गण तथा नाग भी वहाँ (शुक्लतीर्थ) में विराजमान रहते हैं॥६८॥

**रञ्जितं हि यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा। आजन्मजनितं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति।
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते॥६९॥**

जैसे रंगा हुआ वस्त्र जल में धोने पर शुक्ल वर्ण का (निर्मल) हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य के द्वारा आजीवन किया गया पाप शुक्ल तीर्थ में छूट जाता है। वहाँ पर किये गये स्नान, दान और तप का अनन्त पुण्य फल मिलता है॥६९॥

**शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भविष्यति पावनम्। पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः।
अहोरात्रोपवासेन शुक्रतीर्थे व्यपोहति॥७०॥**

शुक्ल तीर्थ से श्रेष्ठ और पवित्र तीर्थ अन्य कोई नहीं हो सकता। मनुष्य के द्वारा अपने जीवन में जितना भी पाप किया गया हो वह सब शुक्लतीर्थ में अहारोत्र पर्यन्त उपवास करने पर छूट जाता है॥७०॥

**कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी। घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम्।
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात्॥७१॥**

कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन उपवास करके परमेश्वर शिव का घृत से स्नान करावे। ऐसा करके मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों सहित ईश्वर शिव के धाम (में जाता है और वहाँ) से कभी च्युत नहीं होता॥७१॥

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः। न तां गतिमवाप्नोति शुक्लतीर्थे तु यां लभेत्॥७२॥

तपस्या, ब्रह्मचर्य के पालन, यज्ञानुष्ठान और दान करने से भी वह गति प्राप्त नहीं होती जो कि शुक्ल-तीर्थ में स्नानादि से प्राप्त होती है॥७२॥

शुक्लतीर्थं महातीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्पुनर्जन्म न विन्दति॥७३॥

ऋषियों और सिद्धों के द्वारा सेवित शुक्ल तीर्थ एक महान तीर्थ है। हे राजन! वहाँ स्नान करके मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता, (वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है)॥७३॥

**अयने वा चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा। स्नात्वा तु सोपवासः सन् विजितात्मा समाहितः॥७४॥
दानं दद्याद्यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशङ्करौ। एतत्तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥७५॥**

अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन), चतुर्दशी तिथि, संक्रान्ति तथा विषुव (मेष-संक्रान्ति तथा तुला संक्रान्ति) के दिन वहाँ स्नान करके संयमित तथा एकाग्रचित्त होकर यथाशक्ति भगवान् विष्णु तथा शिव की प्रीति हेतु [ब्राह्मण को] दान देना चाहिए। इस तीर्थ के प्रभाव से वह समस्त दान अक्षय हो जाता है॥७४-७५॥

**अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा। उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्य फलं शृणु॥७६॥
यावत्तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च। तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥७७॥**

कोई ब्राह्मण युवक अनाथ या दुर्गति-ग्रस्त (निर्धन आदि) हो अथवा सनाथ हो उसका विवाह उस तीर्थ में करवाने वाले को जो पुण्य का फल प्राप्त होता है, उसको सुनो। उस ब्राह्मण के तथा उसके कुल में उत्पन्न पुरुषों के शरीर में जितने रोम हों उतने सहस्र वर्षों तक वह [विवाह कराने वाला] पुरुष रुद्रलोक में सम्मानित होकर निवास करता है॥७६-७७॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र यमतीर्थमनुत्तमम्। कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर।
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद्योनिसङ्कटम्॥७८॥

हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! तदनन्तर माघ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को परम उत्तम यमतीर्थ की यात्रा करे। वहाँ स्नान करके केवल रात्रि में भोजन करने वाले को पुनः किसी योनि में जन्म लेने का संकट नहीं भोगना पड़ता है॥७८॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र एरण्डीतीर्थमुत्तमम्। सङ्गमे तु नरः स्नात्वा उपवासपरायणः॥७९॥
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिताः। एरण्डीसङ्गमे स्नात्वा भक्तिभावात्तु रञ्जितः॥८०॥
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च तज्जलम्। नर्मदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥८१॥

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त अति उत्तम ऐरण्डी तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। वहाँ सङ्गम में स्नान करके उपवास करते हुए एक ब्राह्मण को भोजन कराने से एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है। भक्तिभाव से युक्त होकर ऐरण्डी संगम की मिट्टी को शिर पर लगाकर मनुष्य वहाँ संगम में नर्मदा के जल से युक्त जल में स्नान करके सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥७९-८१॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं कल्लोलकेश्वरम्। गङ्गावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः॥८२॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यथाविधि। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥८३॥

हे राजन्! तदनन्तर कल्लोलकेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ [वर्ष में] एक पवित्र दिन में गंगा नदी निःसन्देह अवतरित होती है। वहाँ यथाविधि स्नान करके, जल पीकर तथा दान देकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है॥८२-८३॥

नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत्। प्रीयते तत्र नन्दीशः सोमलोके महीयते॥८४॥

तब नन्दीतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे। उससे नन्दीश्वर शिव प्रसन्न होते हैं और वह स्नान करने वाला व्यक्ति सोम-लोक में महिमा प्राप्त करके रहता है॥८४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं त्वनरकं शुभम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्! नरकं नैव पश्यति॥८५॥
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत्। रूपवान्जायते लोके धनभोगसमन्वितः॥८६॥

हे राजन्! तत्पश्चात् अनरक नामक शुभ तीर्थ में जाना चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य नरक को नहीं देखता अर्थात् नरक में नहीं जाता। हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में अपनी [मृत्यु के पश्चात् अपने पारिवारिक जनों के द्वारा] अस्थि-प्रक्षेप करवाये। ऐसा व्यक्ति अगले जन्म में सुन्दर रूप वाला तथा धन-सम्पन्न होता है॥८५-८६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥८७॥

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त उत्तम कपिलातीर्थ में जाना चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करके वह एक सहस्र गायों के दान का पुण्य फल प्राप्त करता है॥८७॥

ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः। तत्रोपोष्य नरो भक्त्या दत्त्वा दीपं घृतेन तु॥८८॥

घृतेन स्नापयेद्रुद्रं सघृतं श्रीफलं दहेत्[१]। घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां वै प्रदापयेत्॥८९॥

ज्येष्ठ मास आने पर विशेषतः उस मास की चतुर्दशी के दिन मनुष्य वहाँ उपवास करके घृतपूर्ण दीपक का दान करे तथा घृत से ही भगवान् रुद्र को स्नान करावे और घृत युक्त श्रीफल का हवन करे एवं घण्टा सहित आभूषणों से युक्त गौ का दान करे॥८८-८९॥

सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः। शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत्क्रीडते सदा॥९०॥

ऐसा करने वाला व्यक्ति सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित तथा सभी देवों के द्वारा वन्दनीय एवं शिव के समान बलशाली होकर सदा शिव के समान क्रीडा करता है॥९०॥

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः। स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम्॥९१॥

यदि मङ्गलवार को चतुर्थी तिथि (अङ्गारक चतुर्थी) पड़े तो उस दिन विशेषतः भगवान् शिव को स्नान (अभिषेक) कराकर ब्राह्मणों को भोजन करावे॥९१॥

सर्वभोगसमायुक्तो विमाने सार्वकामिके। गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो धनवान् भोगवान्भवेत्॥९२॥

ऐसा करने वाला मनुष्य सभी भोग-साधनों से सम्पन्न होकर अपनी कामना के अनुसार नभ में चलने वाले विमान से इन्द्र के भवन में जाकर उसके साथ आनन्द से रहता है तथा स्वर्ग से च्युत होकर पुनर्जन्म में वह धनवान् तथा नाना भोग-विलास के साधनों से सम्पन्न होता है॥९२॥

अङ्गारकनवम्यां तु अमावास्यां तथैव च। स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत्॥९३॥

मंगलवार के दिन जब नवमी हो अथवा अमावास्या के दिन शिव को स्नान (अभिषेक) कराने से रूपवान् और सौभाग्यशाली होता है॥९३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र गणेश्वरमनुत्तमम्। श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥९४॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते। पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते स ऋणत्रयात्॥९५॥

हे राजेन्द्र! तब अति उत्तम गणेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। श्रावण मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन वहाँ केवल स्नान करने मात्र से मनुष्य रुद्रलोक में निवास करता है। वहाँ पितरों का तर्पण करने पर मनुष्य तीनों ऋणों (ऋषिऋण, देवऋण, और पितृऋण) से मुक्त हो जाता है॥९४-९५॥

गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम्। अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥९६॥

गङ्गेश्वर के समीप में ही गङ्गावदन नामक उत्तम तीर्थ है। वहाँ कामना पूर्वक अथवा निष्काम भाव से स्नान करके मनुष्य आजन्म किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥९६॥

तस्य वै पश्चिमे भागे समीपे नातिदूरतः। दशाश्वमेधिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥९७॥

उस तीर्थ के पश्चिमी भाग में अधिक दूरी पर नहीं अपितु समीप में ही दशाश्वमेधिक नामक तीनों लोकों में प्रसिद्ध तीर्थ है॥९७॥

१. ततो वै श्रीफलं लभेत्

उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे शुभे। अमावास्यां नरः स्नाप्य पूजयेद् गोवृषध्वजम्॥९८॥

वहाँ पर भद्रपद मास की अमावास्या की शुभ रात्रि में उपवास करके प्रातः स्नान करने के बाद वृषभध्वज भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिए॥९८॥

काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। गत्वा रुद्रपुरं रम्यं रुद्रेण सह मोदते॥९९॥

उससे (उस पूजा के पुण्य से) मनुष्य किंकिणी समूह (छोटी घाण्टियों या घुंघरुओं) की मालाओं से अलंकृत विमान में [आरूढ़ होकर] सुरम्य रुद्रपुर में जाकर वहाँ भगवान् रुद्र के साथ आनन्दपूर्वक निवास करता है॥९९॥

सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्। पितॄणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं लभेत्॥१००॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्ये एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

उस दशाश्वमेधिक तीर्थ में सर्वत्र सभी दिनों में स्नान करना चाहिए और वहाँ पितरों का तर्पण भी करना चाहिए। ऐसा करने वाला अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है॥१००॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'नर्मदा-माहात्म्य' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदातीरस्थतीर्थानां महिमा

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र भृगुतीर्थमनुत्तमम्। तत्र देवो भृगुः पूर्वं रुद्रमाराधयत्पुरा॥१॥

मार्कण्डेय जी बोले- हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम भृगुतीर्थ की यात्रा में जावे। वहाँ पूर्वकाल में भृगुदेव ने रुद्र की आराधना की थी॥१॥

दर्शनात्तस्य देवस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते। एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥

उन देव के दर्शन मात्र से मनुष्य (तत्काल) पाप से मुक्त हो जाता है। वह (भुगृतीर्थ) का क्षेत्र बहुत बड़ा है और सर्वपापविनाशकारक है॥२॥

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। उपानहौ तथा युग्मं देयमन्नञ्च काञ्चनम्॥३॥

वहाँ स्नान करने वाले मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं तथा वहाँ जिनकी मृत्यु होती है, उनका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वे मोक्ष प्राप्त करते हैं। वहाँ एक जोड़ा जूता (अर्थात् दो जूते), अन्न तथा स्वर्ण का दान देना चाहिए॥३॥

भोजनं च यथाशक्ति तदस्याक्षयमुच्यते। क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञाश्चैव तपः क्रिया॥४॥

अक्षयं तत्तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर। तस्यैव तपसोग्रेण रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
सान्निध्यं तत्र विहितं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर॥५॥

वहाँ अपनी क्षमता के अनुसार भोजन का भी दान करना चाहिए। उसका अक्षय फल होता है। सभी दानों, यज्ञों और तपश्चर्या का फल समाप्त हो जाता है, किन्तु हे युधिष्ठिर! भृगुतीर्थ में किया गया तप अक्षय (सदैव) फल-प्रद होता है। हे युधिष्ठिर! उन (महर्षि भृगु) के उग्र तप के प्रभाव से ही त्रिपुरारि भगवान् रुद्र ने वहाँ उस भृगुतीर्थ में अपना सान्निध्य (अर्थात् निवास) बनाया था॥४-५॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्। यत्राराध्य त्रिशूलांकं गौतमः सिद्धिमाप्तवान्॥६॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ तीर्थ गौतमेश्वर में जावे। वहाँ त्रिशूल को धारण करने वाले भगवान् शिव की आराधना करके गौतम ने सिद्धि प्राप्त की थी॥६॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः। काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते॥७॥

हे राजन्! वहाँ उपवास [करके शिवाराधन] करने वाला मनुष्य स्वर्ण निर्मित विमान से ब्रह्मलोक में जाकर सम्मानित होता है॥७॥

वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात्। न जानन्ति नरा मूढा विष्णोर्मायाविमोहिताः॥८॥

तत्पश्चात् वृषोत्सर्ग तीर्थ में जावे। वहाँ जाने वाला शाश्वत (सनातन) पद को प्राप्त करता है। विष्णु की माया से मोहित मूर्ख व्यक्ति उस तीर्थ [के महत्व] को नहीं जानते हैं॥८॥

धौतपापं ततो गच्छेद्धौतं यत्र वृषेण तु। नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम्॥९॥

हे राजन्! उसके बाद नर्मदा में स्थित धौतपाप नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। उस तीर्थ में सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। उसमें भगवान् वृष (धर्म) ने भी अपना पाप धोया था॥९॥

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति। तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च हरतुल्यबलो भवेत्॥१०॥

उस तीर्थ में स्नान करने वाला पुरुष ब्रह्महत्या के पाप से भी मुक्त हो जाता है। हे राजन्! जो व्यक्ति उस तीर्थ में प्राण-त्याग करता है, वह चार भुजाओं वाला, तीन नेत्रों वाला तथा भगवान् शिव के तुल्य बलशाली हो जाता है॥१०॥

वसेत्कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः। कालेन महता जातः पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥११॥

भगवान् शिव के समान पराक्रम वाला वह व्यक्ति दश हजार कल्पों से भी अधिक काल तक [शिव लोक में] रहता है तथा तब बहुत समय के बाद पृथिवी में [जन्म लेकर] चक्रवर्ती सम्राट् बनता है॥११॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते॥१२॥

हे राजन्! तत्पश्चात् अति पवित्र हंसतीर्थ में जाना चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥१२॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र यत्र सिद्धो जनार्दनः। वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम्॥१३॥

हे राजेन्द्र! उसके बाद विष्णु लोक की गति प्रदान करने वाले विख्यात वराहतीर्थ की यात्रा में जाना चाहिए। वहाँ भगवान् विष्णु ने सिद्धि प्राप्त की थी॥१३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्। पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराट् भवेत्॥१४॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम चन्द्रतीर्थ की यात्रा में जाना चाहिए। वहाँ विशेषतः पूर्णमासी तिथि के दिन स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य पृथिवी में चक्रवर्ती सम्राट् हो जाता है॥१४॥

देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थनमस्कृतम्। तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र! दैवतैः सह मोदते॥१५॥

तब सभी तीर्थों के द्वारा नमस्कृत [अतः श्रेष्ठतम] देवतीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है॥१५॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र शङ्खतीर्थमनुत्तमम्। यत् तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥१६॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम शङ्खतीर्थ की यात्रा करे। वहाँ जो दान दिया जाता है, वह कोटि (करोड़) गुना अधिक फल-प्रद होता है॥१६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं पैतामहं शुभम्। यत् तत्र दीयते श्राद्धं सर्वं तदक्षयं भवेत्॥१७॥

हे राजेन्द्र तब शुभावह पितामह के तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ जो श्राद्ध किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है॥१७॥

सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते॥१८॥

सावित्री तीर्थ में जाकर जो व्यक्ति प्राण-त्याग करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में महिमा (सम्मान) प्राप्त करता है॥१८॥

मनोहरं तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥१९॥

वहीं मनोहर नामक परम शोभा सम्पन्न तीर्थ है। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में आदर प्राप्त करके रहता है॥१९॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र! कन्यातीर्थमनुत्तमम्। स्नात्वा तत्र नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२०॥

हे राजन्! तब अति उत्तम कन्या तीर्थ में जावे। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥२०॥

शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानमात्रं समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥२१॥

शुक्ल-पक्ष की तृतीया को उस तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य इस पृथिवी में एकछत्र राज्य का सम्राट् बनता है॥२१॥

सर्गबिन्दुं ततो गच्छेत्तीर्थं देवनमस्कृतम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गतिं वै न पश्यति॥२२॥

इसके बाद सभी देवों के द्वारा नमस्कृत (अर्थात् पूजित) सर्गबिन्दु नामक तीर्थ में जाना चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य को अपनी दुर्गति नहीं देखनी पड़ती है॥२२॥

अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्। क्रीडते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभिः स मोदते॥२३॥

तत्पश्चात् अप्सरेश्वर तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे। ऐसा करके वह स्वर्गलोक में अप्सराओं के साथ प्रमुदित होकर रहता है॥२३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र! भारभूतिमनुत्तमम्। उपोषितो यजेतेशं रुद्रलोके महीयते। अस्मिंस्तीर्थे मृतो राजनूगाणपत्यमवाप्नुयात्॥२४॥

हे राजन्! तब अति उत्तम भारभूति तीर्थ में जावे और वहाँ उपवास करके भगवान् शिव की उपासना करने वाला रुद्रलोक में महिमा प्राप्त करके रहता है॥२४॥

कार्तिके मासि देवेशमर्चयेत्पार्वतीपतिम्। अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः॥२५॥

कार्तिक मास में देवेश्वर पार्वतीपति शिव की पूजा करे। उसका फल अश्वमेध यज्ञ से दुगुना होता है, ऐसा विद्वद्जन कहते हैं॥२५॥

वृषभं यः प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसप्रभम्। वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति॥२६॥

जो व्यक्ति वहाँ कुन्द के पुष्प के समान या चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के वृषभ का दान करता है, वह वृषयुक्त यान में आरूढ होकर रुद्रलोक में जाता है॥२६॥

एतत्तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति॥२७॥

उस तीर्थ में जाकर जो व्यक्ति प्राणत्याग करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर रुद्र-लोक में जाता है॥२७॥

जलप्रवेशं यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं स गच्छति॥२८॥

हे राजन्! जो व्यक्ति उस तीर्थ में जल में प्रवेश कर [देह त्याग] करता है, वह हंस-युक्त विमान से स्वर्गलोक में जाता है॥२८॥

एरण्ड्या नर्मदायास्तु सङ्गमं लोकविश्रुतम्। तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥२९॥

ऐरण्डी एवं नर्मदा का संगम सम्पूर्ण लोक में प्रसिद्ध है। वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र और सर्वपापनाशक है॥२९॥

उपवासरतो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया॥३०॥

हे राजन्! वहाँ उपवास करते हुए व्रत- परायण रहने वाला व्यक्ति वहाँ स्नान करके ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है॥३०॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र नर्मदोदधिसङ्गमम्। जमदग्निमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः॥३१॥

हे राजन्! तदनन्तर नर्मदा और समुद्र के संगम में जाना चाहिए। वहाँ जमदग्नि नाम से प्रसिद्ध जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुई थी॥३१॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदोदधिसङ्गमे। त्रिगुणञ्चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥३२॥

हे राजन्! वहाँ नर्मदा और समुद्र के संगम में स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का तिगुना फल प्राप्त करता है॥३२॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजनूब्रह्मलोके महीयते॥३३॥

हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम पिङ्गलेश्वर नामक उत्तम तीर्थ में जाना चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमा प्राप्त करता है॥३३॥

तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत पिङ्गलेश्वरम्। सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम्॥३४॥

वहाँ उपवास करके जो व्यक्ति पिंगलेश्वर का दर्शन करता है, वह सात जन्मों में किये हुए पाप को त्यागकर शिवलोक में जाता है॥३४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र अलकातीर्थमुत्तमम्[1]। उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥३५॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम अलका (? या अलि) तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ नियम पालन करते हुए तथा संयमित आहार लेकर तथा एक रात उपवास रखकर व्यतीत करने से उस तीर्थ के माहात्म्य के कारण मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है॥३५॥

एतानि तव संक्षेपात्प्राधान्यात्कथितानि च। न शक्या विस्तराद्वक्तुं संख्या तीर्थेषु पाण्डव॥३६॥

हे राजन्! ये तीर्थ मैंने संक्षेप में तुमसे कहे हैं। हे पाण्डव! इन तीर्थों की संख्या का विस्तार से वर्णन नहीं किया जा सकता॥३६॥

एषा पवित्रा विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता। नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा॥३७॥

यह विशाल और पवित्र नर्मदा नदी तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। यह नर्मदा नदी सभी नदियों में श्रेष्ठ है। यह भगवान् शिव को अति प्रिय है॥३७॥

मनसा संस्मरेद्यस्तु नर्मदां वै युधिष्ठिर। चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः॥३८॥

हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य मन से भी नर्मदा नदी का स्मरण करता है, वह एक सौ से भी अधिक चान्द्रायण के तुल्य फल को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥३८॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः। पतन्ति नरके घोरे इत्याह परमेश्वरः॥३९॥

श्रद्धा रहित एवं घोर नास्तिकता से दूषित मन वाले मनुष्य घोर नरक में गिरते हैं, ऐसा परमेश्वर ने स्वयं कहा है॥३९॥

नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः। तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी॥४०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्ये द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

नर्मदा नदी का सेवन स्वयं देव महेश्वर भी करते हैं। अतः इस नदी को ब्रह्महत्या जैसे महापाप को भी दूर करने वाली पवित्र नदी समझना चाहिए॥४०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'नर्मदा-माहात्म्य' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥४२॥

❖❖❖

---

१. अलितीर्थमनुत्तमम्

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नैमिषारण्य-जप्येश्वरतीर्थयोर्महिमा

सूत उवाच

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम्। महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम्॥१॥

सूत जी बोले- यह नैमिषारण्य नामक उत्तम तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है। यह महापापों को नष्ट करने वाला तीर्थ भगवान् शिव को बहुत प्रिय है॥१॥

महादेवं दिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिना। ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः॥२॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! परमेष्ठी ब्रह्मा ने भगवान् शिव के दर्शनाभिलाषी ऋषियों के लिए तपस्या करने हेतु ही इस स्थान को बनाया था॥२॥

मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा। भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥३॥
समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम्। पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमव्ययम्॥४॥

हे विप्रो! पूर्वकाल में मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा सहित उनके कुल के ऋषियों ने सबको वरदान देने वाले, चतुर्मूर्ति, चतुर्मुख एवं विश्व की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा के पास जाकर उनको प्रणाम करके यह पूछा था॥३-४॥

षट्कुलीया ऊचुः

भगवन्देवमीशानं तमेवैकं कपर्दिनम्। केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देव नमस्तव॥५॥

उन षट्कुलोत्पन्न ऋषियों ने कहा- हे देव! आपको नमस्कार है। हे भगवान्! आप यह बतलाइए कि हम कपर्दी देव ईशान का दर्शन किस उपाय से कर सकते हैं॥५॥

ब्रह्मोवाच

सत्रं सहस्रमासध्वं वाङ्मनोदोषवर्जिताः। देशञ्च वः प्रवक्ष्यामि यस्मिन्देशे चरिष्यथ॥६॥

ब्रह्मा बोले- आप लोग मन और वाणी के दोष से रहित होकर एक हजार वर्ष तक चलने वाले सत्र (दीर्घकालीन सोम-याग) का अनुष्ठान करें। आप लोग जिस देश में यह सत्र सम्पन्न करेंगे वह देश भी मैं बतलाता हूँ॥६॥

मुक्त्वा मनोमयं चक्रं संस्पृष्ट्वा तानुवाच ह। क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत मा चिरम्॥७॥

तब ब्रह्मा ने मनोमय चक्र का उत्सर्जन (लक्ष्य की ओर प्रेषित) कर उनको स्पर्श करके यह कहा कि मैंने यह चक्र [लक्ष्य की ओर] छोड़ दिया है अब आप लोग इसका अनुगमन करें, विलम्ब न करें॥७॥

यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपसः शुभः। ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत्समनुव्रजन्॥८॥

जहाँ इस चक्र की नेमि (पहिए का बाहरी घेरा) शीर्ण होगी (टूटकर गिरेगी) वही स्थान तपस्या के लिए शुभ होगा। तब ब्रह्मा के द्वारा मुक्त किये गये उस चक्र का उन ऋषि-मुनियों ने अनुगमन किया था॥८॥

तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत। नैमिषं तत् स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥९॥

तब द्रुत गति से जा रहे उस चक्र की नेमि जिस क्षेत्र में टूट कर गिरी थी वह पवित्र क्षेत्र नैमिष नाम से प्रसिद्ध और सर्वत्र पूजित हुआ था॥९॥

सिद्धचारणसम्पूर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्। स्थानं भगवतः शम्भोरेतन्नैमिषमुत्तमम्॥१०॥

यह नैमिष नामक भगवान् शिव का स्थान सिद्धों और चारणों से पूर्ण एवं यक्षों और गन्धर्वों से सेवित है॥१०॥

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान्वरान्॥११॥

देवों, गन्धर्वों, यक्षों, नागों और राक्षसों ने यहाँ प्राचीन काल में तपस्या करके उत्तम वरों को प्राप्त किया था॥ ।११॥

इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः। सत्रेणाराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥१२॥

इस देश में आश्रय बनाकर षट्कुलोत्पन्न ऋषि-मुनियों ने एकाग्र मन से सत्र (बारह दिन से अधिक दिनों तक किये जाने वाले यज्ञ) में देवाधिदेव महेश्वर की आराधना करके उनका दर्शन प्राप्त किया था॥१२॥

अन्नदानं तपस्तप्तं श्राद्धयागादिकञ्च यत्। एकैकं नाशयेत्पापं सप्तजन्मकृतं तथा॥१३॥

वहाँ पर किया गया अन्न का दान, तपश्चर्या, श्राद्ध तथा यज्ञ आदि प्रत्येक कृत्य से पिछले सात जन्मों में किया गया पाप नष्ट हो जाता है॥१३॥

अत्र पूर्वं स भगवानृषीणां सत्रमासताम्। स वै प्रोवाच ब्रह्माण्डं पुराणं ब्रह्मभाषितम्॥१४॥

पूर्वकाल में इस नैमिषारण्य क्षेत्र में सत्र (दीर्घकालीन यज्ञ) के अनुष्ठान में संलग्न ऋषियों को भगवान् शिव ने ब्रह्मा के द्वारा कथित ब्रह्माण्ड पुराण की कथा कही थी॥१४॥

अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वदृक्। रमतेऽद्यापि भगवान्प्रमथैः परिवारितः॥१५॥

यहाँ पर विश्वदर्शी देवाधिदेव भगवान् महादेव अपनी पत्नी रुद्राणी (पार्वती) तथा प्रमथगणों सहित आज भी रमण करते हैं॥१५॥

अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः। ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते॥१६॥

यहाँ पर नियम पूर्वक निवास करते हुए प्राण-त्याग करने वाले द्विजाति ब्रह्मलोक में जावेंगे, जहाँ जाकर पुनर्जन्म नहीं होता॥१६॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमितिश्रुतम्। जजाप रुद्रमनिशं यत्र नन्दी महागणः॥१७॥

एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ जाप्येश्वर नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर गणों में श्रेष्ठ गण नन्दी ने निरन्तर रुद्र [के मन्त्र] का जप किया था॥१७॥

प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकधृक्। ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च॥१८॥

तब प्रसन्न होकर महादेव शिव ने देवी पार्वती सहित वहाँ आकर उनको अपने समान स्वरूप तथा मृत्यु से बचने (अमरत्व) का वर प्रदान किया था॥१८॥

अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित्। आराधयन्महादेवं पुत्रार्थं वृषभध्वजम्॥ १९॥

प्राचीन काल में शिलाद नामक एक धर्मात्मा और धर्मज्ञ ऋषि हुए थे। उन्होंने पुत्र-प्रापित हेतु वृषभध्वज भगवान् शिव की आराधना की थी॥ १९॥

तस्य वर्षसहस्रान्ते तप्यमानस्य विश्वकृत्। शर्वः सोमो गणवृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ २०॥

उन शिलाद ऋषि को तपस्या करते हुए एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उमा (पार्वती) तथा गणों सहित विश्वकर्ता शिव ने वहाँ आकर कहा कि मैं वर प्रदान करता हूँ॥ २०॥

स वव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम्। अयोनिजं मृत्युहीनं याचे पुत्रं त्वया समम्॥ २१॥

तब शिलाद ने पार्वती के पति वरेण्य भगवान् शिव से कहा कि मैं आपके समान अयोनिज और अमर पुत्र की याचना करता हूँ॥ २१॥

तथास्त्वित्याह भगवान् देव्या सह महेश्वरः। पश्यतस्तस्य विप्रर्षेरन्तर्द्धानं गतो हरः॥ २२॥

तब देवी पार्वती सहित भगवान् महेश्वर ने 'तथास्तु' (वैसा ही हो) कहा और तभी उस विप्रर्षि [शिलाद] के देखते देखते वह भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये थे॥ २२॥

ततो यागाय[1] तां भूमिं शिलादो धर्मवित्तमः। चकर्ष लाङ्गलेनोर्वीं भित्वादृश्यत शोभनः॥ २३॥

संवर्तकाऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव। रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन्दिशः॥ २४॥

तब धर्मज्ञों में श्रेष्ठतम शिलाद ने [पुत्रेष्टि नामक] याग हेतु हल से भूमि को जोता तो उन्होंने उस भूमि में प्रकट हुए संवर्तक अग्नि के समान, तेजस्वी रूप-लावण्य सम्पन्न हँसते-मुस्कराते हुए कुमार को देखा, जो कि अपने तेज से चारों दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था॥ २३-२४॥

कुमारतुल्योऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा। शिलादं तात तातेति प्राह नन्दी पुनः पुनः॥ २५॥

वह कुमार (कार्तिकेय) के समान अतुलनीय तेज वाला नन्दी नामक बालक मेघ के समान गंभीर वाणी में शिलाद को बार-बार 'तात' 'तात' कह कर पुकार रहा था॥ २५॥

तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे। मुनीनां दर्शयामास तत्राश्रमनिवासिनाम्॥ २६॥

उस नवजात पुत्र को देखकर शिलाद ने उसका आलिङ्गन किया था और उसे आश्रम में निवास करने वाले मुनियों को भी दिखलाया था॥ २६॥

जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह। उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम्॥ २७॥

तब उसके जातकर्म आदि सभी संस्कार यथा-समय किये थे। उसका उपनयन संस्कार करके शास्त्रीय विधि के अनुसार स्वयं ही उसको वेद का अध्ययन कराया था॥ २७॥

अधीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुत्तमाम्। चक्रे महेश्वरं दृष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिति प्रभुम्॥ २८॥

वेद का अध्ययन करके बुद्धिमान् भगवान् नन्दी ने यह उत्तम विचार बनाया था कि मैं महेश्वर शिव का दर्शन करके मृत्यु पर विजय प्राप्त करूँगा॥ २८॥

स गत्वा सरितं[2] पुण्यामेकाग्रः श्रद्धयान्वितः। जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः॥ २९॥

१. युयोज, २. सागरं पुण्यं

वह पवित्र नदी के तट पर जाकर एकाग्र मन से और श्रद्धापूर्वक भगवान् शिव के ध्यान में आसक्त चित्त से निरन्तर रुद्र के मन्त्र जप करने लगा था॥२९॥

तस्य कोट्याञ्च पूर्णायां शङ्करो भक्तवत्सलः। आगत्य साम्बः सगणो वरदोऽस्मीत्यभाषत॥३०॥

उसके मन्त्र जप की एक करोड़ की संख्या पूर्ण होने पर भक्तवत्सल शिव ने पार्वती और गणों सहित वहाँ आकर 'मैं तुमको वर देता हूँ' ऐसा कहा॥३०॥

स वव्रे पुनरेवेशं जपेयं कोटिमीश्वरम्। तावदायुर्महादेव[1] देहीति वरमीश्वरम्[2]॥३१॥

उस नन्दी ने शिव से कहा कि मैं पुनः एक करोड़ जप करना चाहता हूँ। अतः हे महादेव मुझे उतनी अवधि तक आयु का वर दीजिए, ऐसा उन भगवान् शिव से कहा॥३१॥

एवमस्त्विति सम्प्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत। जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः॥३२॥

तब 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये थे। तब भगवान् नन्दी ने पुनः मन में शिव का ध्यान करते हुए शिव के मन्त्र का एक करोड़ की संख्या में जप किया था॥३२॥

द्वितीयायाञ्च कोट्यां वै पूर्णायाञ्च वृषध्वजः। आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥३३॥

दूसरी बार भी एक करोड़ जप पूर्ण होने पर वृषभध्वज वाले शिव ने भूतगणों सहित वहाँ आकर कहा कि मैं वर प्रदान करता हूँ॥३३॥

तृतीयां जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शङ्कर। तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देवो[3] चान्तरधीयत॥३४॥

तब नन्दी ने कहा- हे शङ्कर मैं तीसरी बार एक करोड़ जप करना चाहता हूँ। तब 'तथास्तु' कह कर विश्वात्मा भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये थे॥३४॥

कोटित्रयेऽथ सम्पूर्णे देवः प्रीतमना भृशम्। आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥३५॥

तीन करोड़ जप पूर्ण होने पर भगवान् शिव प्रसन्न होकर भूतगणों के साथ वहाँ आकर अत्यन्त प्रसन्न मन से बोले कि मैं तुमको वर प्रदान करता हूँ॥३५॥

जपेयं कोटिमन्यां वै भूयोऽपि तव तेजसा। इत्युक्ते भगवानाह न जप्तव्यं त्वया पुनः॥३६॥

तब नन्दी ने कहा कि मैं आपके तेज से सम्पन्न होकर पुनः एक करोड़ जप करना चाहता हूँ। ऐसा कहे जाने पर भगवान् शिव ने कहा कि अब तुमको पुनः जप नहीं करना है॥३६॥

अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वे गतः सदा। महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भव महेश्वर॥३७॥

अब तुम वृद्धावस्था से रहित और अमर होकर सदा मेरे समीप पार्षद बन कर रहोगे। तुम देवी पार्वती के पुत्र एवं महागणपति (गणों में प्रमुख) एवं महेश्वर हो जाओ॥३७॥

योगेश्वरो महायोगी गणानामीश्वरेश्वरः। सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वज्ञो मद्बलान्वितः[4]॥३८॥

तुम योगेश्वर, महायोगी, गणेश्वरों के ईश्वर (स्वामी), सर्वलोकाधिपति, ऐश्वर्य-सम्पन्न, सर्वज्ञ और मेरे बल से सम्पन्न हो जाओगे॥३८॥

ज्ञानं तन्मामकं दिव्यं हस्तामलकवत् तव। आभूतसम्प्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम्॥३९॥

१. भवदाहं महादेवं, २. परमेश्वरम्, ३. देव्या, ४. सर्वयज्ञमयोहितः

मेरा ज्ञान तुमको हाथ में रखे हुए आँवले के समान स्पष्ट होगा। तुम महाप्रलय पर्यन्त अपने पद पर स्थिर रूप से रहोगे और तत्पश्चात् तुम मेरे पद को प्राप्त करोगे॥३९॥

एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शङ्करः। अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्॥४०॥

इतना कहकर महादेव शिव ने अपने गणों को बुलाकर उन नन्दीश्वर का गणों के अधिपति (ईश्वर) के पद पर अभिषेक कर दिया था॥४०॥

उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक्। मरुताञ्च शुभां कन्यां सुयशेति च विश्रुताम्[१]॥४१॥

तदनन्तर स्वयं ही पिनाक धनुष को धारण करने वाले भगवान् शिव ने उन नन्दीश्वर का विवाह मरुद्गणों की सुयशा नाम से प्रसिद्ध कन्या से करवा दिया था॥४१॥

एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः। यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते॥४२॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे जप्येश्वरमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

यह जप्येश्वर नामक स्थान त्रिशूलधारी देवोधिदेव शिव का स्थान है। यहाँ पर जहाँ कहीं भी मृत्यु होने पर मनुष्य शिव-लोक में जाकर महिमा प्राप्त करता है॥४२॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'जाप्येश्वर-माहात्म्य' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः
विविधशैवतीर्थानां माहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जप्येश्वरसमीपतः। नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥

जप्येश्वर तीर्थ के समीप एक अन्य पवित्र और श्रेष्ठ तीर्थ पञ्चनद नामक तीर्थ है जो कि सभी पापों का नाश कर देता है॥१॥

त्रिरात्रमुषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम्। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥२॥

वहाँ तीन रात्रियों तक उपवास करके भगवान् महेश्वर शिव की पूजन करने वाला व्यक्ति सभी पापों से मुक्त और विशुद्ध आत्मा वाला होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है॥२॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं शङ्करस्यामितौजसः[१]। महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम्॥३॥

अमित तेजस्वी भगवान् शंकर का एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ महाभैरव नाम से प्रसिद्ध है, जो कि महापातक नाशक है॥३॥

१. स्वयमेति च विश्रुताम्

तीर्थानाञ्च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी। सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेव गिरीन्द्रजा॥४॥

वितस्ता नामक परम श्रेष्ठ नदी सभी तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। वह सर्वपाप हरण करने वाली नदी स्वयं साक्षात् पार्वती है॥४॥

तीर्थं पञ्चतपो नाम शम्भोरमिततेजसः। यत्र देवाधिदेवेन चक्रार्थं पूजितो भवः॥५॥

अमित तेजस्वी भगवान् शिव का एकतीर्थ पञ्चतप नाम का है। वहाँ आदिदेव भगवान् विष्णु ने चक्र की प्राप्ति हेतु भगवान् शिव का पूजन किया था॥५॥

पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्दसुखप्रदम्। मृतस्तत्राथ नियमाद् ब्रह्मलोके महीयते॥६॥

वहाँ पर किये गये पिण्डदान आदि कृत्यों से परलोक में आनन्द और सुख प्राप्त होता है। वहाँ नियमों का पालन करते हुए प्राण-त्याग करने वाला ब्रह्मलोक में महिमा प्राप्त करता है॥६॥

कायावरोहणं नाम महादेवालयं शुभम्। यत्र माहेश्वरा धर्मा मुनिभिः संप्रवर्तिताः॥७॥

भगवान् महादेव शिव का कायावरोहण नामक एक शुभ धाम है, जहाँ मुनियों ने माहेश्वर धर्मों (शैव धर्म) का प्रवर्तन किया था॥७॥

श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः। परित्यजति यः प्राणानूरुद्रलोकं स गच्छति॥८॥

वहाँ किया गया श्राद्ध, दान, तप, होम तथा उपवास अक्षय फल प्रदान करता है। वहाँ जो व्यक्ति प्राण-त्याग करता है, वह रुद्रलोक में जाता है॥८॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमनुत्तमम्। तत्र गत्वा त्यजेत्प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान्॥९॥

एक अन्य श्रेष्ठ और उत्तम तीर्थ कन्या तीर्थ है। वहाँ जाकर जो व्यक्ति प्राण-त्याग करता है, वह शाश्वत (सनातन) लोकों को प्राप्त करता है॥९॥

जामदग्न्यस्य च शुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः। तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत्॥१०॥

महाकालमिति ख्यातं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम्। गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात्॥११॥

जमदग्नि के पुत्र अक्लिष्टकर्मा (अनथक रूप से कार्य करने वाले) परशुराम के नाम से प्रसिद्ध जो शुभ तीर्थ है, उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करने पर सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है॥१०॥

गुह्याद् गुह्यतमं तीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम्। तत्र सन्निहितः श्रीमान् भगवान्नकुलीश्वरः॥१२॥

महाकाल नामक प्रसिद्ध तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है। वहाँ जाकर प्राण-त्याग करने वाला गणों के अधिपति का पद प्राप्त करता है॥११॥

हिमवच्छिखरे रम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने। देव्या सह महादेवो नित्यं शिष्यैश्च संवृतः॥१३॥

नकुलीश्वर नामक उत्तम तीर्थ गुह्य (गोपनीय) से भी अधिक गोपनीय तीर्थ है। वहाँ श्रीमान् नकुलीश्वर नामक भगवान् का सदैव सानिन्ध्य रहता है॥१२॥

तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम्। सर्वपापैर्विशुद्ध्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात्॥१४॥

हिमालय के सुरम्य शिखर [के निकट] अत्यन्त सुन्दर गङ्गाद्वार में महादेवी पार्वती तथा अपने शिष्य गणों के साथ भगवान् शिव सदा विराजमान रहते हैं॥१३॥

वहाँ स्नान करके वृषध्वज महादेव शिव की पूजा करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है तथा वहाँ मृत व्यक्ति को शिव विषयक [मोक्षप्रद] ज्ञान प्राप्त हो जाता है॥ १४॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम्। भीमेश्वरमिति ख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम्॥ १५॥

देवाधिदेव महादेव का एक अन्य अत्यन्त पवित्र और शुभ स्थान भीमेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है॥ १५॥

तथान्यश्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ १६॥

वैसा ही एक अन्य तीर्थ चण्वेगा नदी का उद्गम स्थल है, जो पाप-नाशक है, वहाँ स्नान करने तथा वहाँ का जल पीने से मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है॥ १६॥

सर्वेषामपि चैतेषां तीर्थानां परमा पुरी।
नाम्ना वाराणसी दिव्या कोटिकोट्ययुताधिका॥ १७॥

वाराणसी नामक श्रेष्ठ, पवित्र एवं दिव्यपुरी इन सभी तीर्थों से हजारों करोड़ गुना अधिक फलदायक है॥ १७॥

तस्याः पुरस्तान्माहात्म्यं भाषितं वो मया त्विह। नान्यत्र लभते मुक्तिं योगेनाप्येकजन्मना॥ १८॥

उस पुरी के माहात्म्य को मैंने इससे पहले ही आप लोगों को बतला दिया है। इस तीर्थ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी योगबल से भी मुक्ति एक जन्म में नहीं मिलती॥ १८॥

एते प्राधान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम्। गत्वा संक्षालयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृतम॥ १९॥

मैंने इन पापनाशक देशों (तीर्थों) का प्रमुखता से [अर्थात् प्रमुख क्षेत्रों को] बतलाया है। इनकी तीर्थयात्रा करके मनुष्य को अपने सैकड़ों जन्मों के पाप को धो डालना चाहिए॥ १९॥

यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि। न तस्य फलते तीर्थमिहलोके परत्र च॥ २०॥

जो व्यक्ति अपने धर्मों का पालन करना छोड़कर तीर्थयात्रा या तीर्थ में निवास करता है, उसको तीर्थ न तो इस लोक में और न परलोक में फलीभूत होते हैं॥ २०॥

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथा यायावरो जनः। प्रकुर्यात्तीर्थसंसेवां यश्चान्यस्तादृशो जनः॥ २१॥

जो व्यक्ति प्रायश्चित्त करना चाहता हो, जो विधुर हो तथा जो संन्यासी हो अथवा जो व्यक्ति उनके समान [गृहस्थी के मोह पाश से विरक्त] हो वह तीर्थ सेवन करे॥ २१॥

सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः। सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात्॥ २२॥

अग्निहोत्री गृहस्थ यत्नपूर्वक अग्निसहित तथा पत्नी सहित (सपत्नीक) ही तीर्थाटन करे। इससे वह सभी पापों से मुक्त होकर [अपने सत्कर्मानुसार] विहत गति-स्वर्ग आदि को प्राप्त करता है॥ २२॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य कुर्याद्वा तीर्थसेवनम्। विधाय वृत्तिं पुत्राणां भार्यां तेषु विधाय च॥ २३॥

गृहस्थ पुरुष् तीनों ऋणों (ऋषिऋण, देवऋण, पितृऋण) को चुकाकर ही तीर्थ-सेवा करनी चाहिए इससे पूर्व पुत्रों की आजीविका की व्यवस्था करनी चाहिए तथा पत्नी को उन पुत्रों के पास रख कर ही तीर्थ में जाना चाहिए॥ २३॥

प्रायश्चित्तप्रसङ्गेन तीर्थमाहात्म्यमीरितम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२४॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे शैव-तीर्थमाहात्म्यं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

यह तीर्थ-महात्म्य प्रायश्चित्त के प्रसंग में कहा गया है। जो इसे पढ़ता है अथवा जो इसे सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥२४॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'तीर्थ-महात्म्य' वर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विधप्रलयवर्णनम्

सूत उवाच

एतदाकर्ण्य विज्ञानं नारायणमुखेरितम्। कूर्मरूपधरं देवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम्॥१॥

सूत जी बोले- कूर्म रूप धारी भगवान् नारायण के मुख से ऐसी विशिष्ट ज्ञान की बातें सुनकर मुनियों से उन प्रभु से पूछा॥१॥

मुनय ऊचुः

कथितो भवता धर्मो मोक्षज्ञानं सविस्तरम्। लोकानां सर्गविस्तारो वंशो मन्वन्तराणि च॥२॥

मुनि बोले- आपने विस्तार से धर्म तथा मोक्ष विषयक ज्ञान, लोकों की सृष्टि का विकास तथा मन्वन्तरों को बतला दिया है॥२॥

प्रतिसर्गमिदानीं नो वक्तुमर्हसि माधव[1]। भूतानां भूतभव्येश यथा पूर्वं त्वयोदितम्॥३॥

हे भूत और भविष्य के स्वामी! हे माधव! जैसा कि आपने पूर्वकाल में कहा था, वैसे ही इस समय प्रतिसर्ग (प्रलय) के विषय में [विस्तार से] बतलाइए॥३॥

सूत उवाच

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान् कूर्मरूपधृक्। व्याजहार महायोगी भूतानां प्रतिसञ्चरम्॥४॥

तब उनके वचनों को सुनकर महायोगी कूर्म रूप धारी भगवान् ने प्राणियों के प्रतिसंचर (अर्थात् प्रलय) के विषय में बतलाया॥४॥

कूर्म उवाच

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृताऽत्यन्तिकौ तथा। चतुर्धायं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चरः॥५॥

कूर्म बोले- पुराणों में नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत तथा आत्यन्तिक नामक चार प्रकार के प्रलय का वर्णन किया गया है॥५॥

१. शक्रस्यामितेजसः

योऽयं संदृश्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्त्विह। नित्यः सङ्कीर्त्यते नाम्ना मुनिभिः प्रतिसञ्चरः॥६॥

जो इस संसार में नित्य प्राणियों की मृत्यु का दृश्य दृष्टिगत होता है, उसको मुनियों ने नित्य प्रलय कहा है॥६॥

ब्रह्मनैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति। त्रैलोक्यस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः॥७॥

कल्पान्त (सृष्टि के अन्त) में ब्रह्मा के शयन करने पर तीनों लोकों (भू लोक, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग) के प्रलय (विनाश) को विद्वानों ने नैमित्तिक प्रलय कहा है॥७॥

महदाद्यं विशेषान्तं यदा संयाति संक्षयम्। प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं प्रोच्यते कालचिन्तकैः॥८॥

महत् त्तत्व (बुद्धितत्त्व) से लेकर विशेष (प्रधान, प्रकृति) तक का जब विनाश हो जाता है तो काल चिन्तक विद्वानों ने उसे प्राकृत प्रलय कहा है॥८॥

ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि। प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः॥९॥
आत्यन्तिकस्तु कथितः प्रलयो ज्ञानसाधनः। नैमित्तिकमिदानीं वः कथयिष्ये समासतः॥१०॥

ज्ञान के द्वारा योगियों का परमात्मा में लीन होने को ही काल-चिन्तक द्विजों ने आत्यन्तिक प्रलय कहा है॥९॥ यह आत्यन्तिक प्रयल ज्ञान रूपी साधन से ही सिद्ध होता है। अब मैं आप लोगों को संक्षेप में नैमित्तिक प्रलय के विषय में बतलाता हूँ॥९-१०॥

चतुर्युग[१]-सहस्रान्ते सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे। स्वात्मसंस्थाः प्रजाः कर्तुमीहते स[२] प्रजापतिः॥११॥

ब्रह्मा की सृष्टि के एक सहस्र चतुर्युगी व्यतीत हो जाने के बाद प्रलय काल आने पर प्रजापति ब्रह्मा सम्पूर्ण प्रजाओं (प्राणियों) की सृष्टि को आत्मसात् (अपने आत्मा में लीन) करने का संकल्प करते हैं॥११॥

ततोऽभवत्यनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी। भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयङ्करी॥१२॥

तब एक सौ वर्षों तक अतितीव्र अनावृष्टि होती है। वह घोर अनावृष्टि सभी प्राणियों के विनाश का कारण बनती है॥१२॥

ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीपते। तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥१३॥

हे राजन्! तब सबसे पहले सभी अल्पबल वाले प्राणी विनष्ट होकर भूमि में विलीन हो जाते हैं॥१३॥

सप्तरश्मिरथारूढो[३] समुत्तिष्ठन् दिवाकरः। असह्यरश्मिर्भवति पिबन्नम्भो गभस्तिभिः॥१४॥

तब भगवान् सूर्य सात रश्मियों वाले रथ में आरूढ होकर उदित होते हैं और वह अपनी किरणों से [नदियों एवं सागरों के] समस्त जल को पीकर असहनीय करणों वाले हो जाते हैं॥१४॥

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे। तेनाहारेण ता दीप्त्वा सप्तसूर्या भवन्त्युत॥१५॥

तब सूर्य की सातों रश्मियाँ (किरणें) महासागर के समस्त जल को पी लेती हैं। उस जल के आहार से पुष्ट होकर वे सातों रश्मियाँ उद्दीप्त होकर सात सूर्यों के रूप में आकार ग्रहण कर लेती हैं॥१५॥

१. इदानीं देवदेवेश प्रलयं क्क्तुमर्हसि, १. चतुर्व्यूह..., २. कर्तुं प्रतिपेदे, ३. रथो भूत्वा

ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्याभूत्वा चतुर्दिशम्। चतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनो यथा॥१६॥

तब सूर्य की सात रश्यिमाँ [सात सूर्य बनकर] चारों दिशाओं के जल का शोषण करके (सुखाकर) अग्नि सदृश बनकर [ब्रह्माण्ड के] चारों लोकों (भू, भुवः, स्वः एव महर्लोक) को दग्ध कर देती हैं॥१६॥

व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊर्ध्वंचाधः स्वरश्मिभिः। दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिताः॥१७॥

युगान्तकारी अग्नि से युक्त होकर वे सातों दीप्तिमान सूर्य अपनी रश्मियों से ब्रह्माण्ड के ऊपर और नीचे सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं॥१७॥

ते सूर्या वारिणा दीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः। खं समावृत्य तिष्ठन्ति प्रदहन्तो वसुन्धराम्॥१८॥

वे सूर्य जल से दीप्तिमान होकर अनेकों सहस्ररश्मियों से युक्त एवं सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त होकर पृथिवी को जलाने लगते हैं॥१८॥

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा। साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निःस्नेहा सम्प्रपद्यते॥१९॥

तब उनके तेज से जलती हुई पृथिवी सभी पर्वतों, नदियों, सागरों और द्वीपों सहित नीरस हो जाती है अर्थात् सूख जाती है॥१९॥

दीप्ताभिः सन्तताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्ततः। अधश्चोर्ध्वं च लग्नाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम्॥२०॥

[कालानुसार] सूर्य की दीप्तिमान रश्मियों के नीचे ऊपर आड़े तिरछे सभी ओर व्याप्त होने से [वातावरण] आच्छादित हो जाता है॥२०॥

सूर्याग्निना प्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम्। एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत॥२१॥

सूर्य के ताप से सन्तप्त होकर संसार के समस्त पदार्थ परस्पर मिश्रित होकर एक ज्वाला के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं॥२१॥

सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली। चतुर्लोकमिमं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा॥२२॥

अग्नि रूप से समस्त लोकों को [दग्ध करके] नष्ट करने वाले वह सूर्य देव मण्डलाकार होकर अपने तेज से इन चारों लोकों (भूः, भूवः, स्वः मह) को शीघ्र दग्ध कर देते हैं॥२२॥

ततः प्रलीने सर्वस्मिन्जङ्गमे स्थावरे तथा। निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठा प्रकाशते॥२३॥

तब सम्पूर्ण चर और अचर (स्थावर) जगत् के नष्ट हो जाने पर वृक्षों और तृणों से रहित भूमि कछुए की पीठ के समान आभासित होती है॥२३॥

अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत्। सर्वमेव तदर्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते पुनः॥२४॥

सूर्य की रश्मियों से पूरित (भरा हुआ) सम्पूर्ण जगत् अम्बरीष (भड़भूजे की कढाई) सा प्रतीत होता है। उन सूर्य-किरणों से सम्पूर्ण जगत् निरन्तर जलने लगता है॥२४॥

पाताले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च। ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥२५॥

तब पाताल में स्थित तथा महासागर में स्थित समस्त प्राणी विनष्ट होकर भूमि में मिलकर तद्रूप हो जाते हैं॥२५॥

द्वीपांश्च पर्वतांश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन्। तान् सर्वान् भस्मसात्कृत्वा सप्तात्मा पावकः प्रभुः॥२६॥

समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च[1] सर्वशः। पिबन्नपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन्॥ २७॥

सभी द्वीपों, पर्वतों, वर्षों (देशों) तथा महासागरों को भस्मासात् करके वह सप्त रश्मियों वाले अग्नि देव प्रदीप्त होकर समुद्रों, नदियों तथा पातालों के सम्पूर्ण जल को पीकर पृथिवी को जलाने लगता है॥ २६-२७॥

ततः संवर्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा। लोकान्दहति दीप्तात्मा मारुतेन[2] विजृम्भितः॥ २८॥

तब महान् संवर्तक अग्नि वायु के वेग से प्रदीप्त और प्रवल होकर पर्वतों को पार करते हुए सभी लोकों को दग्ध करने लगता है॥ २८॥

स दग्ध्वा पृथिवीं देवो सर्वं चैव रसातलम्[3]। अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा दहत्येव दिवं तथा[4]॥ २९॥

वह अग्नि देव नीचे पृथवी को तथा सम्पूर्ण रसातल को दग्ध करके ऊपर द्युलोक को दग्ध कर देता है॥ २९॥

योजनानां शतानीह सहस्राण्ययुतानि च। उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य वह्नेः संवर्तकस्य तु॥ ३०॥

तब उस संवर्तक अग्नि की शिखायें आकाश में सैकड़ों, हजारों एवं दशहजार योजन तक उठती हैं॥ ३०॥

गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान्। तदा दहत्यसौ दीप्तः कालरुद्रप्रचोदितः॥ ३१॥

तब कालरुद्र के द्वारा उत्प्रेरित किया गया वह प्रदीप्त अग्नि गन्धर्वों, यक्षों, एवं पिशाचों एवं नागों को भी दग्ध कर देता है॥ ३१॥

भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा[5]। दहेदशेषं कालाग्निः कालाविष्टतनुः स्वयम्॥ ३२॥

तब काल से आविष्ट देह वाला कालाग्नि सम्पूर्ण भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक को सम्पूर्णतः दग्ध कर देता है॥ ३२॥

व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना। तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः।
अयोगुडनिभं[6] सर्वं तदेवैकं प्रकाशते॥ ३३॥

अग्नि के द्वारा इन सभी लोकों को तिरछी ओर (चौड़ाई पर) तथा ऊँचाई की ओर भी दग्ध किये जाने पर उस अग्नि के तेज से सम्पूर्ण जगत् शनैः शनैः अग्नि में दग्ध लोह-पिण्ड के समान एक रूप होकर दीप्तिमान् होने लगता है॥ ३३॥

ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः। उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घनाः॥ ३४॥

तब हाथियों के झुण्ड के समान आकार वाले विद्युत् से दीप्तिमान संवर्तक संज्ञक मेघ आकाश में छा जाते हैं॥ ३४॥

केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः। धूम्रवर्णास्तथा केचित्केचित्पीताः पयोधराः॥ ३५॥

कुछ मेघ नील कमल के समान श्याम वर्ण के तो कुछ कुमुद पुष्प के समान श्वेत वर्ण के, कुछ धूम्र वर्ण के तथा कुछ मेघ पीत वर्ण के होते हैं॥ ३५॥

---

१. आपः शुष्काश्च, २. मारुतेयो, ३. रसातलमशोषयत्, ४. दिवमूर्ध्वं दहिष्यति, ५. महर्लोकं तथैव च, ६. अतो गूढमिदं

केचिद्रासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभाः परे। शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा॥३६॥
मनःशिलाभाश्च परे कपोतसदृशाः परे। इन्द्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा॥३७॥

कुछ मेघ धूसर वर्ण के तो कुछ लाक्षा (लाख) के रस समान रक्तवर्ण के, कुछ मेघ शङ्ख के समान या कुन्द-पुष्प के समान तो कुछ जाती- पुष्प (चमेली) के समान, कुछ अञ्जन के समान तो कुछ मैनसिल के समान और कुछ कबूतर के समान, कुछ मेघ इन्द्रगोप (बीर बहूटी) के समान वर्ण के एवं कुछ मेघ हरिताल के समान वर्ण के होते हैं॥३६-३७॥

इन्द्रचापनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि। केचित्पर्वतसङ्काशाः केचिद्गजकुलोपमाः।
कूटागारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्वहाः॥३८॥

कुछ मेघ आकाश में इन्द्रधनुष के समान तो कुछ पर्वत के समान और कुछ हाथियों के समूह के समान, कुछ कूटागार (गृह-विशेष) के समान तो कुछ मछलियों के समूह के समान होते हैं॥३८॥

बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः। तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभस्तलम्॥३९॥

अनेक रूपों वाले और घोर गर्जन करने वाले ये भयानक मेघ सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त हो जाते हैं॥३९॥

ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजाः। सप्तधा संवृतात्मानं तमग्निं शमयन्ति ते॥४०॥

तत्पश्चात् सूर्य से जनित वे घोर गर्जन करने वाले मेघ उस सप्त सूर्यात्मक अग्नि को शान्त कर देते हैं॥४०॥

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्तीह महौघवत्। सुघोरमशिवं सर्वं[1] नाशयन्ति च पावकम्॥४१॥

तब वे मेघ महान् बाढ के समान जल की वर्षा करते हैं और उस अमंगलकारी भयंकर अग्नि को पूर्णतः नष्ट कर देते हैं॥४१॥

प्रवृष्टे च तदात्यर्थमम्भसा पूर्यते जगत्। अद्भिस्ततोऽभिभूतत्वात्दग्निः प्रविशत्यपः॥४२॥

अत्यधिक वर्षा करने वाले उन मेघों के जल से सम्पूर्ण जगत् भर जाता है। उन मेघों के जल से अग्नि का तेज अभिभूत (परास्त) अर्थात् शान्त हो जाने पर वह अग्नि जल में प्रविष्ट हो जाता है॥४२॥

नष्टे चाग्नौ वर्षशतैः पयोदाः क्षयसम्भवाः। प्लावयन्तो जगत्सर्वं महाजलपरिस्रवैः॥४३॥

एक सौ वर्षों तक निरन्तर वर्षा करने वाले प्रलयकालीन मेघ महाजल-वृष्टि से सम्पूर्ण जगत् को आप्लावित कर देते हैं॥४३॥

धाराभिः पूरयन्तीदं नोद्यमानाः स्वयम्भुवा। अत्यन्तसलिलौघैस्तु धारा इव महोदधेः।
साद्रिद्वीपा ततः पृथ्वी जलैः सञ्छाद्यते शनैः॥४४॥

स्वयंभू ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित किये जाने पर वे मेघ वर्षा की धाराओं से सम्पूर्ण जगत् को उसी प्रकार जलमग्न कर देते हैं, जैसे महासागर के जल के अत्यन्त वेग से तटवर्ती भूभाग जल-प्लावित हो जाता है। उस वर्षा से सभी पर्वतों तथा द्वीपों सहित सम्पूर्ण पृथिवी शनैः शनैः जल-मग्न हो जाती है॥४४॥

१. वर्षं

आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति। पुनः पतति तद्भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः॥४५॥

सूर्य की किरणों के द्वारा पिया गया जो जल मेघों में रहता है, वह पुनः भूमि में बरस जाता है और उससे समुद्र पूरे भर जाते हैं॥४५॥

ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रामन्ति[1] कृत्स्नशः।
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति॥४६॥

तब समुद्र अपने तटों का पूर्णतः अतिक्रमण कर [सर्वत्र फैल] जाते हैं और पर्वत उस समुद्र में विलीन हो जाते हैं तथा यह पृथ्वी भी समुद्र के जल में डूब जाती है॥४६॥

तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे। योगनिद्रां समास्थाय शेते देवः प्रजापतिः॥४७॥

उस घोर एकार्णव (एकमात्र समुद्र) में सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम (चराचर जगत्) के डूब कर नष्ट हो जाने पर प्रजापति (ब्रह्मा) योगनिद्रा का आश्रय लेकर सो जाते हैं॥४७॥

चतुर्युगसहस्रान्तं कल्पमाहुमहर्षयः[2]। वाराहो वर्तते कल्पो यस्य विस्तार ईरितः॥४८॥

महर्षियों ने एक हजार चतुर्युगी का एक कल्प बतलाया है। वर्तमान में वाराह कल्प चल रहा है, जिसका मैंने विस्तार से वर्णन कर दिया है॥४८॥

असंख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः।
कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः॥४९॥

काल का चिन्तन करने वाले विद्वान् मुनियों ने पुराणों में कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव से सम्बन्धित असंख्य कल्प होते हैं॥४९॥

सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः। तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषु प्रजापतेः॥५०॥

सात्त्विक अर्थात् सत्त्वगुण प्रधान कल्पों में भगवान् विष्णु का महत्त्व अधिक होता है, तामस कल्पों में शिव का तथा राजस कल्पों में ब्रह्मा का अधिक महत्व होता है॥५०॥

योऽयं प्रवर्तते कल्पो वाराहः सात्त्विको मतः। अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः॥५१॥

वर्तमान में प्रवर्तमान कल्प वाराह कल्प है, यह कल्प सात्त्विक है। भविष्य में जो अन्य सात्त्विक कल्प होंगे वे भी मेरे [कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु के] ही आधीन वाले अर्थात् मेरे ही होंगे॥५१॥

ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा ते योगिनः परम्। आराध्य तञ्च गिरिशं यान्ति तत्परमम्पदम्॥५२॥

उन विभिन्न कल्पों में ध्यान तप और परम ज्ञान प्राप्त करके तथा उन भगवान् शिव की आराधना करके योगी जन परम पद को प्राप्त करते हैं॥५२॥

सोऽहं सत्त्वं समास्थाय मायी मायामयीं स्वयम्।
एकार्णवे जगत्यस्मिन्योगनिद्रां व्रजामि तु॥५३॥

जब यह संसार एकार्णव (एक मात्र समुद्रमय) बन जाता है, तब मायाधीश्वर मैं सत्त्वगुण का आश्रय लेकर मायामयी योगनिद्रा में चला जाता हूँ॥५३॥

१. वेलामतिक्रान्तास्तु, २. मनीषिणः

मां पश्यन्ति महात्मानः सुप्तिकाले महर्षयः। जनलोके वर्तमानास्तापसा योगचक्षुषा॥५४॥

जब मैं शयन करता हूँ उस समय जनलोक में विद्यमान तपस्वी महर्षिगण योग विद्या रूपी नेत्रों से मुझे देखते रहते हैं॥५४॥

अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवः प्रभवो विभुः। सहस्रबाहुश्च[1] श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात्॥५५॥

मैं पराण-पुरुष, भूः भुवः आदि लोकों की सृष्टि करने वाला, विभु (सबका स्वामी), श्रीमान्, सहस्रबाहु, सहस्र नयन एवं सहस्र चरणों वाला हूँ॥५५॥

मन्त्रोऽग्नि[2]र्ब्राह्मणा गावः कुशोऽथ समिधो ह्यहम्।
प्रोक्षणी च सुचश्चैव[3] सोमो [4]घृतमथास्म्यहम्॥५६॥

मैं ही वेदमन्त्र, अग्नि, ब्राह्मण, कुश, समिधा, प्रोक्षणी, स्रुवा, सोम तथा घृत भी में ही हूँ॥५६॥

संवर्तको महानात्मा पवित्रं परमं यशः। मेधाप्यहं प्रभुर्गोप्ता गोपतिर्ब्रह्मणो मुखम्॥५७॥

मैं ही संवर्तक अग्नि, महत् तत्त्व, आत्मा, पवित्र तथा परम यश एवं मेधा भी मैं ही हूँ। मैं ही प्रभु, गोप्ता (रक्षक), गोपति ब्राह्मा का मुख हूँ॥५७॥

अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतां वरः। हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्तिः सनातनः॥५८॥
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम्। माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यो न विद्यते॥५९॥

मैं अनन्त, तारक (तारण करने वाला), योगी, गति तथा गतिशीलों में श्रेष्ठ हूँ। मैं ही हंस, प्राण, कपिल, विश्वमूर्ति, सनातन, क्षेत्रज्ञ, प्रकृति, काल जगत् का बीज, अमृत, माता, पिता तथा महादेव हूँ। मेरे से भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है॥५८-५९॥

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता नारायणः पुरुषो योगमूर्तिः।
तं पश्यन्ति यतयो योगनिष्ठा ज्ञात्वात्मानममृतत्त्वं[5] व्रजन्ति॥६०॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे प्रलयवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

मैं आदित्य के समान वर्णवाला, सम्पूर्ण भुवन का रक्षक, नारायण, परम पुरुष और योगमूर्ति हूँ। योग-साधना में संलग्न योगी ही मेरा दर्शन कर पाते हैं तथा आत्मज्ञान प्राप्त करके वे अमृतत्त्व को प्राप्त करते हैं॥६०॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण के उत्तरार्ध में 'प्रलसय-वर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥४५॥

❖❖❖

१. सहस्रचरणः, २. मन्त्रोऽहं, ३. प्रोक्षणीयं स्वयश्चैव, ४. व्रत...., ५. मम तत्त्वं

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

प्राकृतप्रलयवर्णनम्

कूर्म उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम्। प्राकृतं तत्समासेन शृणुध्वं गदतो मम॥१॥

कूर्म ने कहा- इसके अनन्तर मैं उत्तम प्राकृत प्रलय का वर्णन करूँगा। संक्षेप में किये गये इस वर्णन को आप लोग सुनें॥१॥

गते परार्धद्वितये काले लोकप्रकालनः। कालाग्निर्भस्मसात्कर्तुं चरते चाखिलं जगत्॥२॥

ब्रह्मा जी की आयु के द्वितीय परार्ध के व्यतीत हो जाने के बाद लोक का संहार करने वाला काल कालाग्नि बनकर सम्पूर्ण जगत् को भस्मसात् करने लगता है॥२॥

स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वा देवो महेश्वरः। दहेदशेषं ब्रह्माण्डं सदेवासुरमानुषम्॥३॥

तब देव महेश्वर अपने आत्मा में [सम्पूर्ण] जीवात्माओं को आत्मसात् करके [अग्नि स्वरूप बन कर] देवों, असुरों और मानवों सहित समस्त ब्रह्माण्ड को दग्ध कर देते हैं॥३॥

तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहितः। करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमाश्रितः॥४॥

भगवान् नीललोहित महादेव भीषण रूप धारण करके उस अग्नि में प्रविष्टि होकर लोक का संहार करते हैं॥४॥

प्रविश्य मण्डलं सौरं कृत्वाऽसौ बहुधा पुनः। निर्दहत्यखिलं लोकं सप्तसप्तिस्वरूपधृक्॥५॥

वह भगवान् शिव सौर मण्डल में प्रवेश करके सप्तरश्मि सूर्य के सात स्वरूप धारण कर अनेक रूप वाले होकर सम्पूर्ण लोकों को दग्ध कर देते हैं॥५॥

स दग्ध्वा सकलं विश्वमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत्। देवतानां शरीरेषु क्षिपत्यखिलदाहकम्॥६॥

सम्पूर्ण विश्व को दग्ध करके सूर्य रूप धारी रुद्र देवताओं के शरीर पर ब्रह्मशिर नामक अस्त्र को छोड़ते हैं, जो कि सब कुछ दग्ध कर देता है॥६॥

दग्धेष्वशेषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा। एषा सा साक्षिणी शम्भोस्तिष्ठते वैदिकी श्रुतिः॥७॥

सभी देवों के दग्ध हो जाने के बाद पर्वतराज हिमवान् की पुत्री पार्वती ही एकमात्र साक्षी रूप में शिव के पास रहती हैं, ऐसा वेदों में कहा गया है॥७॥

शिरः कपालैर्देवानां कृतस्रग्वरभूषणः। आदित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन्व्योममण्डलम्॥८॥

देवताओं के शिर के कपालों से बनी माला को आभूषण रूप में धारण करके वह शिव आकाश-मण्डल को सूर्य, चन्द्र आदि गणों से व्याप्त कर देते हैं॥८॥

सहस्रनयनो देवः सहस्राकृतिरीश्वरः[1]। सहस्रहस्तचरणः सहस्रार्चिर्महाभुजः॥९॥

---

१. सहस्राक्ष इतीश्वरः

दंष्ट्राकरालवदनः प्रदीप्तानललोचनः। त्रिशूल कृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थितः॥१०॥
पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम्। करोति ताण्डवं देवीमालोक्य परमेश्वरः॥११॥

सहस्र आकृतियों वाले, सहस्रनयनों वाले, सहस्र हाथों तथा सहस्र चरणों वाले, सहस्र किरणों वाले विकराल दाढ़ों के कारण भंयकर मुख वाले, प्रदीप्त अग्नि के समान नेत्रों वाले त्रिशूलधारी एवं कृत्तिवासा (व्याघ्रचर्मधारी) वह परमेश्वर शिव ईश्वरीय योग में स्थित होकर परम आनन्दरूपी अमृत का पान करके देवी पार्वती को देखते हुए ताण्डव करते हैं॥९-११॥

पीत्वा नृत्यामृतं देवी भर्तुः परममङ्गलम्। योगमास्थाय देवस्य देहमायाति शूलिनः॥१२॥

अपने पति के परम मंगलमय नृत्य रूपी अमृत को पीकर (अर्थात् आँखों से देखकर) देवी पार्वती योग-बल का आश्रय लेकर त्रिशूलधारी भगवान् शिव की देह में विलीन हो जाती हैं॥१२॥

स भुक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक्। ज्योतिः स्वभावं भगवान् दग्ध्वा ब्रह्माण्डमण्डलम्॥१३॥
संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मा-विष्णुः-पिनाकिषु। गुणैरशेषैः पृथिवी विलयं याति वारिषु॥१४॥

वह पिनाकधारी शिव स्वेच्छानुसार ताण्डव नृत्य के रस का आनन्द लेकर ज्योति-स्वभाव वाले ब्राह्मण्ड-मण्डल को दग्ध कर देते हैं। तदनन्तर जब केवल वह पिनाकधारी शिव तथा ब्रह्मा और विष्णु ही शेष रह जाते हैं, तब उस समय अपने रूप, रस, गन्ध आदि सभी गुणों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी जल-राशि (समुद्र) में विलीन हो जाती है॥१३-१४॥

सवारितत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहनः। तेजः स्वगुणसंयुक्तं वायौ संयाति संक्षयम्॥१५॥

तब अग्नि उस जल तत्त्व को उसके सभी गुणों सहित ग्रस्त (आत्मसात्) कर लेता है और वह तेज (अग्नि) अपने गुणों सहित वायु में विलीन हो जाता है॥१५॥

आकाशे सगुणो वायुः प्रलयं याति सत्तमाः। भूतादौ च तथाऽऽकाशो लीयते गुणसंयुतः॥१६॥

हे सज्जनो! तब वायु अपने गुणों सहित आकाश में विलीन हो जाता है तथा वह आकाश अपने गुण (शब्द गुण) सहित भूतादि (अर्थात् तामस) संज्ञक अहंकार में लीन हो जाता है॥१६॥

इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति संक्षयम्। वैकारिके देवगणाः प्रलयं यान्ति सत्तमाः॥१७॥

सभी इन्द्रियाँ तैजस (अर्थात् राजस) अहंकार में लीन हो जाती हैं तथा (इन्द्रियों के अधिष्ठाता) देवगण वैकारिक (अर्थात् सात्विक) अहंकार में विलीन हो जाती हैं॥१७॥

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चेति सत्तमाः। त्रिविधोऽयमहङ्कारो महति प्रलयं व्रजेत्॥१८॥
महान्तमेभिः सहितं ब्रह्माणममितौजसम्। अव्यक्तजगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम्॥१९॥

हे सज्जनो! वैकारिक, तैजस एवं भूतादि संज्ञक त्रिविध अहंकार महत् तत्त्व में लीन हो जाता है। इन सभी तत्त्वों से युक्त जो ब्रह्मा के समान अत्यन्त तेजस्वी महत् तत्त्व है, उसका संहार अव्यक्त जगत् की योनि (जनक) एक (अद्वितीय) प्रकृति स्वयं कर देती है॥१८-१९॥

एवं संहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वरः। वियोजयति चान्योऽन्यं प्रधानं पुरुषं परम्।
प्रधानपुंसोरजयोरेष संहार ईरितः॥२०॥

इस प्रकार महेश्वर शिव पञ्च भूतों तथा महदादि तत्त्वों का संहार करके प्रकृति और पुरुष को एक-दूसरे से पृथक् कर देते हैं। अजन्मा प्रधान (प्रकृति) और पुरुष के इसी वियोग को उनका संहार कहा गया है॥२०॥

महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्यते लयः। गुणसाम्यं तदव्यक्तं प्रकृतिः परिगीयते॥२१॥

प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम्। कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवलं पञ्चविंशकः।
गीयते मुनिभिः साक्षी महानेष पितामहः॥२२॥

प्रधान (प्रकृति) और पुरुष का यह वियोग रूपी लय (विनाश) भी स्वयं नहीं होता, अपितु महेश्वर शिव की इच्छा से ही होता है। सत्त्व, रज और तमोगुण की साम्यावस्था को ही प्रकृति कहा जाता है। उसी को अव्यक्त कहा जाता है, वही प्रधान (प्रकृति) है, जगत् की मूल कारण है तथा वही माया तत्त्व और अचेतन भी है। पच्चीसवाँ तत्त्व कूटस्थ, चिन्मय और केवल अर्थात् एकमात्र तत्त्व है, [जिसे पुरुष कहा गया है]। मुनियों ने उसे ही साक्षी, महान् और पितामह कहा है॥२१-२२॥

एवं संहारकरणी शक्तिर्माहेश्वरी ध्रुवा। प्रधानाद्यं विशेषान्तं देहे रुद्र इति श्रुतिः॥२३॥

इसी प्रकार भगवान् महेश्वर की दृढ़ शक्ति ही संहार करती है। प्रधान अर्थात् प्रकृति से लेकर सम्पूर्ण विशेष सृष्टि को भगवान् रुद्र प्रलयकाल में दग्ध कर देते हैं, ऐसा वेद का कथन है॥२३॥

योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानविन्यस्तचेतसाम्। आत्यन्तिकञ्चैव लयं विदधातीह शङ्करः।
इत्येष भगवान् रुद्रः संहारं कुरुते वशी॥२४॥

सभी ज्ञान-परायण चित्त वाले योगियों का आत्यन्तिक लय भी भगवान् शिव ही करते हैं। इस प्रकार वह इन्द्रिय संयमी भगवान् शिव ही सृष्टि का संहार करते हैं॥२४॥

स्थापिका[१] मोहिनी शक्तिर्नारायण इति श्रुतिः। हिरण्यगर्भो भगवान् जगत्सदसदात्मकम्।
सृजेदशेषं प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः॥२५॥

श्रुति (वेद) के अनुसार जगत् की स्थिति (पालन) करने वाली मोहिनी शक्ति को नारायण कहते हैं। पच्चीसवें पुरुष तत्त्व स्वरूप हिरण्यगर्भ संज्ञक ब्रह्मा सम्पूर्ण सत् तथा असत् तत्त्वों से युक्त सृष्टि का सृजन करते हैं॥२५॥

सर्वज्ञाः[२] सर्वगाः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः। शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥२६॥

स्वयं स्वकीय आत्मा में विद्यमान सर्वज्ञ एवं सर्वत्रगामी (सर्वत्र व्याप्त) ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नामक शान्त शक्तियाँ भोग और मोक्ष रूप फल को प्रदान करती हैं॥२६॥

सर्वेश्वराःसर्ववन्द्याः[३] शाश्वतानन्तभोगिनः। एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुंप्रधानेश्वरात्मकम्॥२७॥

ये शक्तियाँ सर्वेश्वरी, सर्व-पूज्य, शाश्वत तथा अनन्त भोग-सम्पन्न हैं। एकमात्र अविनाशी तत्त्व ही पुरुष, प्रधान (प्रकृति) तथा ईश्वर स्वरूप है॥२७॥

अन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः। इज्यन्ते[४] विविधैर्यज्ञैः शक्रादित्यादयोऽमराः॥२८॥

---

१. स्वापिका, २. दुर्बलाः, ३. सर्ववन्धाः, ४. इत्येते

उस ईश्वर में अन्य भी हजारों दिव्य शक्तियाँ हैं, जो इन्द्र तथा आदित्य (सूर्य) आदि देवों के रूप में हैं और विविध यज्ञों के द्वारा उनकी आराधना की जाती है॥२८॥

एकैकस्याः सहस्राणि देहानां वै शतानि च। कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा॥२९॥

इन (ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं इन्द्र, आदित्य आदि देवों) में से प्रत्येक देवता के सैकड़ों, हजारों शरीर बताये गये हैं। अपने माहात्म्य के कारण इतने नाम रूपों वाली इनकी मूल निर्गुण शक्ति एक ही है॥२९॥

तां तु शक्तिं समास्थाय स्वयं देवो महेश्वरः। करोति विविधान्देहान् ग्रसते[1] चैव लीलया॥३०॥

उस शक्ति का आश्रय लेकर ही स्वयं देव महेश्वर लीला करते हुए विविध देह धारण [या विविध सृष्टि] करते हैं तथा सृष्टि का संहार भी करते हैं॥३०॥

इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभिः। सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः॥३१॥

वेद के विद्वानों के द्वारा सभी मनोकामाओं को पूर्ण करने वाले रुद्र का यजन (पूजन) सभी यज्ञों में किया जाता है, ऐसा वेद का कथन है॥३१॥

सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। प्राधान्येन स्मृताः देवाः शक्तयः परमात्मनः॥३२॥

परमात्मा की सभी शक्तियों में प्रमुख देवों के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और शिव संज्ञक शक्तियाँ सर्व-प्रमुख होती हैं॥३२॥

आभ्यः परस्ताद्भगवान् परमात्मा सनातनः। गीयते सर्वशक्त्यात्मा[2] शूलपाणिर्महेश्वरः॥३३॥

सर्व-शक्ति सम्पन्न सनातन परमात्मा भगवान् शूलपाणि महेश्वर उन सभी शक्तियों से ऊपर हैं॥३३॥

एनमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे। इन्द्रमेके परे प्राणं ब्रह्माणमपरे जगुः॥३४॥

उन भगवान् शिव को किसी ने अग्नि तो किसी ने नारायण किसी ने इन्द्र कहा है। किसी ने प्राण तो किसी ने उनको ब्रह्मा कहा है॥३४॥

ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः। एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिताः॥३५॥

ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वरुण तथा अन्य सभी देवता और ऋषिगण भी एक रुद्र के ही अनेक भेद कहे गये हैं॥३५॥

यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्। तत्तद्रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः॥३६॥

भक्तजन उन परमेश्वर शिव के जिस-जिस स्वरूप का आश्रय लेकर पूजन करते हैं, वह शिव उसी रूप को धारण करके उनको अभीष्ट फल-प्रदान करते हैं॥३६॥

तस्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम्। आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम्॥३७॥

अतः परमात्मा शिव के किसी भी एक भेद को [आराध्य मानकर] सनातन महादेव की आराधना करने वाला उन भगवान् शिव के परम पद को प्राप्त करता है॥३७॥

किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम्। आराधयेद् वै गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम्॥३८॥

---

१. दृश्यते, २. सर्वमायात्मा

किन्तु भक्त को चाहिए कि वह सर्वशक्तिमान् सनातन गिरीश महादेव के सगुण अथवा निर्गुण किसी भी स्वरूप की आराधना अवश्य करे॥३८॥

मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः। आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत्परमेश्वरम्॥३९॥

मैंने आप लोगों को निर्गुण योग इससे पूर्व बतला दिया है। सगुण योग का आश्रय लेने की आकांक्षा वाला भक्त परमेश्वर शिव का [भक्ति भाव से] पूजन करे॥३९॥

पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम्। पद्मासनस्थं रुक्माभं[1] चिन्तयेद् वैदिकी श्रुतिः॥४०॥

वह भक्त पिनाक-धनुषधरी, त्रिनेत्र, जटाधरी, कृत्तिवासा और स्वर्णिम आभा वाले और पद्मासन में बैठे हुए शिव का चिन्तन करे। यह वेद का वचन है॥४०॥

एष योगः समुद्दिष्टः सबीजो मुनिपुङ्गवाः। अत्राप्यशक्तोऽथ हरं विष्णुं ब्रह्माणमर्चयेत्॥४१॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यह सबीज योग का वर्णन मैंने कर दिया है। जो व्यक्ति इस ध्यान योग में असमर्थ हो वह भगवान् शिव, विष्णु या ब्रह्मा का पूजन करे॥४१॥

अथ चेदसमर्थः स्यात् तत्रापि मुनिपुङ्गवाः। ततो वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद्भक्तिसंयुतः॥४२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यदि उन देवों के पूजन में भी असमर्थ हो तो वह भक्तिपूर्वक वायु, अग्नि, इन्द्र आदि देवों का पूजन करे॥४२॥

तस्मात्सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान्। आराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम्॥४३॥

अथवा उन ब्रह्मा आदि सभी देवों को छोड़कर आदि-मध्य और अन्त तक स्थित रहने वाले-सनातन देव विरूपाक्ष शिव की ही आराधना करे॥४३॥

भक्तियोगसमायुक्तः स्वधर्मनिरतः शुचिः। तादृशं रूपमास्थाय समायात्यन्तिकं[2] शिवम्॥४४॥

शुद्ध होकर अपने धर्म का पालन करते हुए भक्तियोग में लीन भक्त उन भगवान् शिव के समान रूप धारण करके उनके सान्निध्य को प्राप्त करता है॥४४॥

एष योगः समुद्दिष्टः सबीजोऽत्यन्तभावनः। यथाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरम्पदम्॥४५॥

यह अत्यन्त भावना (ध्यान) करने योग्य सबीज योग मैंने बतलाया है। उसका यथाविधि अनुष्ठान करने वाला ईश्वरीय पद (शिव-सान्निध्य) को प्राप्त करता है॥४५॥

द्वे चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह। अथापि कथितो योगो निर्बीजश्च सबीजकः।
ज्ञानं तदुक्तं निर्बीजं पूर्वं हि भवतां मया॥४६॥

इससे पूर्व मैंने आप लोगों को दो प्रकार की शुद्ध भावनाओं को बतलाया है तथा निर्बीज और सबीज योग के विषय में भी बतला दिया है। निर्बीज ज्ञान के विषय में मैंने पहले ही बतला दिया है॥४६॥

विष्णुं रुद्रं विरञ्चिं च सबीजे साधयेद् बुधः। अथ वाय्वादिकान्देवान् तत्परः संयतेन्द्रियः॥४७॥

विद्वान् व्यक्ति को चाहिए कि विष्णु, शिव और ब्रह्मा की भावना (ध्यान या उपसना) सबीज

१. रुक्माभं वा सहस्रांकाच्चिन्तयेद्, २. आसाद्यात्यन्तिकं

अर्थात् साकार रूप में करे। अथवा आरम्भ में जितेन्द्रिय और तत्पर (ध्यान परायण) होकर वायु आदि देवों का ध्यान या पूजन करे॥४७॥

पूजयेत्पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्तिधरं हरिम्। अनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम्॥४८॥

विष्णु-भक्त को चाहिए कि वह चतुर्मूति (श्रीकृष्ण, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध स्वरूप) भगवान् विष्णु संज्ञक अनादि, अनन्त और सनातन वासुदेव का पूजन करे॥४८॥

नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमम्पदम्। तल्लिङ्गधारी नियतं तद्भक्तस्तदुपाश्रयः॥४९॥

उन जगत्कर्ता, आकाशमय और परम पद स्वरूप नारायण का पूजन करने वाला संयमित होकर उनके चिह्नों को धारण करे तथा उनका भक्त बन कर उनका आश्रय ग्रहण करे॥४९॥

एष एव विधिर्ब्राह्मे भावने चान्तिमे मतः। इत्येतत्कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयम्परम्॥५०॥

ब्राह्मी भावना विषयक यही विधि मानी गयी है। भावना पर आश्रित यही परम ज्ञान कहा गया है॥५०॥

इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मया पुरा। अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतनं जगत्।
तदीश्वरः परं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्॥५१॥

यह सब ज्ञान मैंने पूर्वकाल में इन्द्रद्युम्न को बतलाया था। यह सम्पूर्ण चेतन और अचेतन जगत् अव्यक्त मय (अर्थात् अव्यक्त से व्यक्त या दृश्य रूप में प्रकट हुआ) है। वह ईश्वर (शिव) ही परम ब्रह्म है। उनकी सृष्टि का यह जगत् भी ब्रह्ममय ही है॥५१॥

सूत उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्विरराम जनार्दनः। तुष्टुवुर्मुनयो विष्णुं शक्रेण सह माधवम्॥५२॥

सूत जी बोले- इतना कहकर [कूर्मरूप धारी] भगवान् जनार्दन विष्णु मौन हो गये थे। तब इन्द्र सहित मुनियों ने उन माधव विष्णु की स्तुति की थी॥५२॥

मुनय ऊचुः

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने। नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः॥५३॥

मुनि बोले- कूर्म रूप धारी परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्वस्वरूप वासुदेव संज्ञक नारायण को नमस्कार है॥५३॥

नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः। माधवाय च ते नित्यं नमो यज्ञेश्वराय च॥५४॥

कृष्ण को नमस्कार है, नमस्कार है। गोविन्द को नमस्कार है नमस्कार है। माधव को तथा यज्ञेश्वर को नित्य नमस्कार है॥५४॥

सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः। नमः सहस्राहस्ताय सहस्रचरणाय च॥५५॥

सहस्र शिरों वाले तथा सहस्र नेत्रों वाले, सहस्र हाथों वाले तथा सहस्र चरणों वाले आपको नमस्कार है॥५५॥

ॐ नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने। आनन्दाय नमस्तुभ्यं मायातीताय ते नमः॥५६॥

प्रणव स्वरूप, ज्ञानरूप, परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। आनन्द-स्वरूप तथा माया से रहित देव को नमस्कार है॥५६॥

नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते। पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे॥५७॥

गुप्त देह वाले देव को नमस्कार है, आप निर्गुण स्वरूप वाले को नमस्कार है। पुराण पुरुष तथा सत्ता मात्र स्वरूप वाले देव को नमस्कार है॥५७॥

नमः सांख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते। धर्मज्ञानाभिगम्याय निष्कलाय नमोऽस्तु ते॥५८॥

सांख्य-योग स्वरूपी देव को नमस्कार है। केवल (एकमात्र) देव को नमस्कार है। धर्मज्ञान से ज्ञेय निष्कल देव को नमस्कार है॥५८॥

नमस्ते योगतत्त्वाय महायोगेश्वराय च। परावराणां प्रभवे वेदवेद्याय ते नमः॥५९॥

योग-तत्त्व वाले तथा महायोगेश्वर को नमस्कार है। पर तथा अवर (उत्कृष्ट तथा निकृष्ट) की सृष्टि करने वाले देव को नमस्कार है। वेद से वेद्य (ज्ञेय) देव को नमस्कार है॥५९॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे। नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः॥६०॥

बुद्ध स्वरूप तथा शुद्ध स्वरूप वाले देव को नमस्कार है। योगयुक्त तथा जगत् के कारण देव को नमस्कार है। हे मायावी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। वेधा (सृष्टिकर्ता) को नमस्कार है॥६०॥

नमोऽस्तु ते वराहाय नारसिंहाय ते नमः। वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः॥६१॥

आपके वाराह रूप को नमस्कार है, नृसिंह को नमस्कार है, वामन अवतार को नमस्कार और हृषीकेश को नमस्कार है॥६१॥

स्वर्गापवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने। नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने॥६२॥

स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाले एवं अप्रतिहत आत्मा वाले को नमस्कार है। योग से प्राप्य, योगी तथा योग को प्रदान करने वाले को नमस्कार है॥६२॥

देवानां पतये तुभ्यं देवार्तिशमनाय ते। भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम्॥६३॥
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते। श्रुताश्च विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तरः॥६४॥

देवों के स्वामी तथा देवों का कष्ट निवारण करने वाले देव को नमस्कार है। हे भगवान् आपकी कृपा से हमने समस्त सांसारिक कष्टों और बन्धनों का नाश करने वाला ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसको ज्ञात करके अमरत्व की प्राप्ति होती है। हमने विविध धर्मो तथा वंशों और मन्वन्तरों एवं सर्ग, प्रतिसर्ग तथा ब्रह्माण्ड के विस्तार के विषय में [आपके वचनों को] सुना है॥६३-६४॥

त्वं हि सर्वजगत्साक्षी विश्वो नारायणः परः।
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणं गताः॥६५॥

आप सम्पूर्ण जगत् के साक्षी, विश्व-स्वरूप तथा परम नारायण हैं। हे अनन्त आत्मा! आप हमारी रक्षा करें। हम आपकी शरण में आये हैं॥६५॥

सूत उवाच

एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम्। कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥६६॥

सूत जी बोले- हे ब्राह्मणो! भगवान् गदाधर विष्णु ने जो कहा (सुनाया) था, वह सम्पूर्ण कूर्मपुराण मैंने आप लोगों को कह दिया है। यह भोग और मोक्षप्रद है॥६६॥

अस्मिन् पुराणे लक्ष्म्यास्तु सम्भवः कथितः पुरा।
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजनम्॥६७॥

इस पुराण में सर्वप्रथम सम्पूर्ण प्राणियों को मोहित करने के लिए लक्ष्मी के आविर्भाव तथा भगवान् वासुदेव विष्णु से उनके संयोग (मिलन) का वर्णन है॥६७॥

प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णधर्माश्च वृत्तयः। धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम्॥६८॥

तदनन्तर प्रजापतियों की सृष्टि, वर्णों के धर्म और उनकी वृत्ति (आजीविका) का वर्णन है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के यथावत् शुभ लक्षण का वर्णन किया गया है॥६८॥

पितामहस्य विष्णोश्च महेशस्य च धीमतः। एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषश्चोपवर्णितः॥६९॥

इसमें पितामह ब्रह्मा, विष्णु तथा बुद्धिमान् महेश्वर शिव की एकता, पृथकता तथा विशेषताओं का वर्णन है॥६९॥

भक्तानां लक्षणम्प्रोक्तं सदाचारश्च शोभनम्। वर्णाश्रमाणां कथितं यथावदिह लक्षणम्॥७०॥

इसमें भक्तों के लक्षण, उनके सदाचार का समुचित वर्णन है। चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के लक्षणों को यथावत् बतलाया गया है॥७०॥

आदिसर्गस्ततः पश्चादण्डावरणसप्तकम्। हिरण्यगर्भसर्गश्च कीर्तितो मुनिपुङ्गवाः॥७१॥

इसके बाद आदि सर्ग का वर्णन तथा सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड का वर्णन किया गया है। हे श्रेष्ठ मुनियो! तदनन्तर हिरण्यगर्भ की सृष्टि का वर्णन किया गया है॥७१॥

कालसंख्याप्रकथनं माहात्म्यं चेश्वरस्य च। ब्रह्मणः शयनञ्चाप्सु नामनिर्वचनं तथा॥७२॥

काल-संख्या के वर्णन के बाद ईश्वर के माहात्म्य, जल में ब्रह्मा के शयन तथा भगवान् के नामों का निर्वचन किया गया है॥७२॥

वराहवपुषो भूयो भूमेरुद्धरणं पुनः। मुख्यादिसर्गकथनं मुनिसर्गस्तथापरः॥७३॥
व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापसः। धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात्पूर्वमेव तु॥७४॥

तब वराह अवतार के द्वारा [समुद्र के अन्दर से] पृथिवी के उद्धार, मुख्य आदि सर्गों का वर्णन तथा मुनियों की सृष्टि तथा रुद्रसर्ग, ऋषिसर्ग तथा तापस-सर्ग [अर्थात् तपस्वियों की सृष्टि] एवं प्रजा-सर्ग तथा तामस सर्ग के पूर्व धर्म की सृष्टि का वर्णन है॥७३-७४॥

ब्रह्मविष्णोर्विवादः स्यादन्तर्देहप्रवेशनम्। पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्य च धीमतः॥७५॥
दर्शनंच महेशस्य माहात्म्यं विष्णुनेरितम्। दिव्यदृष्टिप्रदानं च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥७६॥

ब्रह्मा एवं विष्णु के विवाद, उनके परस्पर एक-दूसरे के देह में प्रवेश, ब्रह्मा का कमल में प्रकट

होना, बुद्धिमान् ब्रह्मा के मोहग्रस्त होने तथा उनको महेश्वर शिव का दर्शन, विष्णु के द्वारा महेश्वर शिव के माहात्म्य का वर्णन तथा उनके द्वारा परमेष्ठी ब्रह्मा को दिव्य दृष्टि प्रदान का वर्णन है॥७५-७६॥

संस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना। प्रसादो गिरिशस्याथ वरदानं तथैव च॥७७॥

परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा देवाधिदेव शिव की स्तुति तथा भगवान् शिव का ब्रह्मा पर प्रसन्न होकर वरदान देने का वर्णन है॥७७॥

संवादो विष्णुना सार्धं शङ्करस्य महात्मनः। वरदानं तथा पूर्वमन्तर्धानं पिनाकिनः॥७८॥

भगवान् विष्णु के साथ महेश्वर शिव का संवाद उन भगवान् शिव के द्वारा विष्णु को वरदान देकर अन्तर्धान होने का वर्णन है॥७८॥

वधश्च कथितो विप्रा मधुकैटभयोः पुरा। अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात्॥७९॥
एकीभावश्च देवेन ब्रह्मणा कथितः पुरा। विमोहो ब्रह्मणश्चाथ संज्ञालाभो हरेस्ततः॥८०॥

हे विप्रो! पुरा काल में भगवान् विष्णु के द्वारा मधुकैटम के वध तथा भगवान् विष्णु के नाभि-कलम में ब्रह्मा के अवतार तथा तदनन्तर भगवान् विष्णु के साथ ब्रह्मा के एकीभाव का वर्णन एवं ब्रह्मा के मोहग्रस्त होने पर भगवान् विष्णु के द्वारा उनको सचेत करने का वर्णन है॥७९-८०॥

तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः। प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात्कथितस्ततः।
रुद्राणां कथिता सृष्टिर्ब्रह्मणः प्रतिषेधनम्॥८१॥

देवाधिदेव शिव की तपश्चर्या तथा ब्रह्मा के ललाट से उनका प्रादुर्भाव, शिव के द्वारा रुद्रों की सृष्टि तथा ब्रह्मा के द्वारा उस सृष्टि के विरोध का वर्णन किया गया है॥८१॥

भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ। अन्तर्धानञ्च देवस्य तपश्चर्याण्डजस्य च॥८२॥

तब देवाधिदेव शिव के ऐश्वर्य का तथा ब्रह्मा को वरदान एवं उपदेश देने का वर्णन, शिव के अन्तर्धान होने तथा ब्रह्मा की तपस्या का वर्णन किया गया है॥८२॥

दर्शनं देवदेवस्य नरनारीशरीरता। देव्या विभागकथनं देवदेवात्पिनाकिनः॥८३॥
देव्याश्च पश्चात्कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च। हिमवद्दुहितृत्वं च देव्या माहात्म्यमेव च॥८४॥

देवाधिदेव शिव का प्रकट होकर दर्शन देना, उनके अर्धनारीश्वर स्वरूप का वर्णन, उन पिनाकधारी शिव के द्वारा देवी पार्वती को अपने शरीर से पृथक् करना, उस देवी का दक्ष पुत्री सती के रूप में जन्म लेना तथा पुनः हिमवान् की पुत्री पार्वती के रूप में जन्म लेना तथा उन देवी के माहात्म्य का वर्णन किया गया है॥८३-८४॥

दर्शनं दिव्यरूपस्य विश्वरूपस्य दर्शनम्।
नानां सहस्रं कथितं पित्रा हिमवता स्वयम्॥८५॥

देवी के दिव्य रूप तथा विश्वरूप का दर्शन, पार्वती के पिता हिमवान् के द्वारा स्वयं उनके सहस्र नामों का कथन है॥८५॥

उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च। भृग्वादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः॥८६॥

तदनन्तर महादेवी पार्वती के द्वारा उपदेश तथा वरदान देने का वर्णन है। तत्पश्चात् भृगु आदि ऋषियों की सृष्टि (वंश) का वर्णन तथा राजवंशों का विस्तार से वर्णन किया गया है॥८६॥

प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्दनम्। दधीचस्य च दक्षस्य विवादः कथितस्तदा॥८७॥

दक्ष का दश प्रचेताओं के पुत्र रूप में जन्म, दक्ष के यज्ञ का विध्वंस और तदनन्तर दधीचि तथा दक्ष के विवाद का वर्णन है॥८७॥

ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुङ्गवाः। रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्धानं पिनाकिनः॥८८॥
पितामहस्योपदेशः कीर्त्यते रक्षणाय तु। दक्षस्य च प्रजासर्गः कश्यपस्य महात्मनः॥८९॥
हिरण्यकशिपोर्नाशो हिरण्याक्षवधस्तथा। ततश्च शापः कथितो देवदारुवनौकसाम्॥९०॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! तदनन्तर मुनियों के शाप का वर्णन, भगवान् रुद्र के आगमन एवं अनुग्रह करके अन्तर्धान होने का वर्णन, दक्ष की रक्षा हेतु पितामह ब्रह्मा का उपदेश, दक्ष तथा महात्मा कश्यप के द्वारा प्रजा की सृष्टि का वर्णन और तदनन्तर हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष के वध तथा देवदारु वन के निवासियों के शाप का वर्णन है॥८८-९०॥

निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम्। प्रह्लादेऽनुग्रहश्चैव बलेः संयमनं ततः॥९१॥
बाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिनः। ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञां वंशाः प्रकीर्तिताः॥९२॥
वसुदेवात्ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः। दर्शनं चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च॥९३॥
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम्। कैलासगमनं चाथ निवासस्तस्य शार्ङ्गिणः॥९४॥

तब अन्धकासुर का दमन तथा उसे गणों के अधिपति बनाने का वर्णन, प्रह्लाद पर अनुग्रह तथा बलिका दमन, बाणासुर का दमन करके उस पर शिव की कृपा, ऋषियों तथा राजाओं के वंश-विस्तार का वर्णन, भगवान् विष्णु का स्वेच्छानुसार वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के रूप में जन्म, श्रीकृष्ण के द्वारा उपमन्यु का दर्शन करके पुत्र-प्राप्ति हेतु तपश्चरण तथा शिव का दर्शन करके वरदान रूप में साम्ब नामक पुत्र की प्राप्ति एवं श्रीकृष्ण का कैलास में जाकर निवास करने का वर्णन है॥९१-९४॥

ततश्च कथ्यते भीतिर्द्वारवत्यां निवासिनाम्। रक्षणं गरुडेनाथ जित्वा शत्रून्महाबलान्॥९५॥

तदनन्तर द्वारिका निवासियों पर शत्रुओं के आतंक के भय तथा गरुड के द्वारा महाबली शत्रुओं को जीत कर उन द्वारकाविसयों की रक्षा॥९५॥

नारदागमनं चैव यात्रा चैव गरुत्मतः। ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामागतिस्ततः॥९६॥
नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा। मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम्॥९७॥

नारद का आगमन, गरुड की कैलास-यात्रा, कृष्ण का द्वारका आगमन, तब मुनियों का द्वारका में आगमन, वासुदेव श्रीकृष्ण के द्वारा शिवलिङ्ग का नित्य पूजन तथा तदनन्तर मार्कण्डेय मुनि के प्रश्न का वर्णन है॥९६-९७॥

लिङ्गार्चननिमित्तं च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः। याथात्म्यकथनं चाथ लिङ्गाविर्भाव एव[1] च॥९८॥

---

१. लिङ्गाद् वै भीतिरेव च

ब्रह्मविष्णोस्तथा मध्ये कीर्तितो मुनिपुङ्गवाः। मोहस्तयोर्वै कथितो गमनं चोऽप्यर्ध्वतोह्यधः॥ ९९॥
संस्तवो देवदेवस्य प्रसादः परमेष्ठिनः। अन्तर्धानंच लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्ततः परम्॥ १००॥
कीर्तिता चानिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः। कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणामागतिस्तथा॥ १०१॥

तब लिङ्ग-पूजा का प्रयोजन (उद्देश्य), लिङ्ग तथा लिङ्गी (शिव) की वास्तविकता का तथा हे श्रेष्ठ मुनियो! ब्रह्मा तथा विष्णु के मध्य में लिङ्ग आविर्भाव तथा उन दोनों को मोह एवं उस लिङ्ग को जानने के लिए ब्रह्मा का उसके उपर तथा विष्णु का उसके नीचे की ओर जाने तथा उनके द्वारा देवाधिदेव की स्तुति और उन परमेष्ठी शिव का अनुग्रह करके अन्तर्धान होना तथा साम्ब एवं अनिरूद्ध के जन्म के वर्णन के बाद कृष्ण के गोलोक के गमन का निश्चय करने पर ऋषियों के वहाँ आगमन का वर्णन है॥९८-१०१॥

अनुशासनंच कृष्णेन वरदानं महात्मनः। गमनश्चैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम्॥ १०२॥
कृष्णद्वैपायनस्योक्ता युगधर्माः सनातनाः। अनुग्रहोऽथ पार्थस्य वाराणस्यां गतिस्ततः॥ १०३॥
पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः। वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानांचैव वर्णनम्॥ १०४॥

उनको कृष्ण का उपदेश और वरदान, कृष्ण का गोलोक-गमन, अर्जुन को कृष्णद्वैपायन व्यास का दर्शन तथा उनको सनातन युग-धर्मो का उपदेश और अनुकम्पा, अद्भुत कर्म करने वाले पाराशर-पुत्र व्यास मुनि का वाराणसी को प्रस्थान, वाराणसी के माहात्म्य तथा वहाँ के तीर्थों का वर्णन भी किया गया है॥१०२-१०४॥

व्यासस्य तीर्थयात्रा च देव्याश्चैवाथ दर्शनम्। उद्वासनंच कथितं वरदानं तथैव च॥ १०५॥

व्यास जी की वहाँ के विभिन्न तीर्थों की यात्रा, वहाँ देवी का दर्शन, देवी के द्वारा व्यास जी को वाराणसी से निर्वासन तथा वरदान देने का वर्णन है॥१०५॥

प्रयागस्य च माहात्म्यं क्षेत्राणामथ कीर्तनम्। फलं च विपुलं विप्रा मार्कण्डेयस्य निर्गमः॥ १०६॥

तदनन्तर प्रयाग के माहात्म्य तथा वहाँ के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन, वहाँ की तीर्थयात्रा के महान फल तथा वहाँ से मार्कण्डेय मुनि के प्रस्थान का वर्णन किया गया है॥१०६॥

भुवनानां स्वरूपंच ज्योतिषां च निवेशनम्। कीर्तितश्चैव वर्षाणां नदीनां चैव निर्णयः॥ १०७॥

तदनन्तर विभिन्न भुवनों (लोकों) की स्थिति, ग्रह-नक्षत्रों के विन्यास एवं विभिन्न वर्षों (देशों) और नदियों का वर्णन किया गया है॥१०७॥

पर्वतानांच कथनं स्थानानि च दिवौकसाम्। द्वीपानां प्रविभागश्च श्वेतद्वीपोपवर्णनम्॥ १०८॥

तदनन्तर पर्वतों तथा देव-स्थानों और द्वीपों के विभाजन के वर्णन सहित श्वेतद्वीप का वर्णन किया गया है॥१०८॥

शयनं केशवस्याथ माहात्म्यंच महात्मनः। मन्वन्तराणां कथनं विष्णोर्माहात्म्यमेव च॥ १०९॥

तब भगवान् विष्णु के क्षीरसागर में शयन, उनका माहात्म्य, मनवन्तरों का वर्णन और पुनः विष्णु माहात्म्य का वर्णन किया गया है॥१०९॥

वेदशाखाप्रणयनं व्यासानां कथनं ततः। अवेदस्य च वेदस्य कथितं मुनिपुङ्गवाः॥ ११०॥

हे श्रेष्ठमुनियो! तदनन्तर वेद-शाखाओं के विभाजन, [विभिन्न द्वापरों में] व्यासों की चर्चा तथा अवेद (वेद-ब्राह्य) और वेद विषयक वर्णन किया गया है॥११०॥

योगेश्वराणां च कथा शिष्याणां चाथ कीर्तनम्। गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्तिताः॥१११॥

योगेश्वरों तथा उनके शिष्यों की चर्चा, ईश्वर कृत अनेक गुह्य गीताओं [के ज्ञान] का वर्णन किया गया है॥१११॥

वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः। कपालित्वं च रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च॥११२॥

तदनन्तर चारों वर्णों तथा आश्रमों के आचार का वर्णन, प्रायश्चित्त-विधान एवं शिव के कपालधारी होने तथा भिक्षाटन का वर्णन किया गया है॥११२॥

पतिव्रतानामाख्यानं तीर्थानां च विनिर्णयः। तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्तितो द्विजाः॥११३॥

हे द्विजो! इसके बाद पतिव्रता विषयक आख्यान, तीर्थों का निर्णय तथा मङ्कणक मुनि के निग्रह का वर्णन है॥११३॥

वधश्च कथितो विप्राः कालस्य च समासतः। देवदारुवने शम्भोः प्रवेशो माधवस्य च॥११४॥

दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः। वरदानं च देवस्य नन्दिने तु प्रकीर्तितम्॥११५॥

हे विप्रो! तदन्तर संक्षेप में काल के वध का वर्णन, देवदारु वन में शिव का तथा उनके साथ [पार्वती के वेश में] विष्णु का प्रवेश, षट्कुलीन (छः कुलों में उत्पन्न) ऋषियों का देवाधिदेव का दर्शन तथा महादेव के द्वारा नन्दी को वरदान देने का वर्णन है॥११४-११५॥

नैमित्तिकश्च कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम्। प्राकृतः प्रलयश्चोर्ध्वं सबीजो योग एव च॥११६॥

तदनन्तर नैमित्तिक प्रलय, प्राकृत प्रलय एवं सबीज योग को बतलाया गया है॥११६॥

एवं ज्ञात्वा पुराणस्य संक्षेपं कीर्तयेत्तु यः। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥११७॥

इस प्रकार इस पुराण [के विषयों] को संक्षेप में जानकर जो व्यक्ति इसका उपदेश देता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है॥११७॥

एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः। सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं स्वस्थानं च जगाम ह॥११८॥

यह कहकर भगवान् पुरुषोत्तम विष्णु अपने कूर्म स्वरूप को त्याग कर देवी लक्ष्मी को साथ लेकर अपने स्थान को चले गये थे॥११८॥

देवाश्च सर्वे मुनयः स्वानि स्थानानि भेजिरे। प्रणम्य पुरुषं विष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतं द्विजाः॥११९॥

हे द्विजो! सभी देवता तथा मुनिगण भी भगवान् विष्णु को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद रूपी अमृत प्राप्त करके अपने स्थानों को चले गये थे॥११९॥

एतत्पुराणं सकलं भाषितं कूर्मरूपिणा। साक्षाद्देवाधिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना॥१२०॥

यह सम्पूर्ण पुराण कूर्मरूप धारी विश्व के जनक देवाधिदेव भगवान् साक्षात् विष्णु के द्वारा कहा गया है॥१२०॥

यः पठेत्सततं विप्रा नियमेन समाहितः। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥१२१॥

हे विप्रो! जो व्यक्ति एकाग्र-चित्त होकर नियम से इस पुराण का पाठ करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥१२१॥

लिखित्वा चैव यो दद्याद्वैशाखे कार्तिकेऽपि वा। विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत॥१२२॥

जो व्यक्ति इस पुराण को लिखकर वैशाख या कार्तिक मास में वेद के विद्वान् ब्राह्मण को प्रदान करता है, उसके पुण्य को सुनिए॥१२२॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः। भुक्त्वा तु विपुलान् स्वर्गे भोगानुदिव्यान् सुशोभनान्॥१२३॥
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो विप्राणां जायते कुले। पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥१२४॥

वह मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर इस लोक में सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर स्वर्ग में भी अति शोभन दिव्य भोगों का प्रचुर भोग करके कालान्तर में स्वर्ग से भूलोक में आकर पुनः ब्राह्मणों के कुल में जन्म प्राप्त करता है और पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों के माहात्म्य से ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता है॥१२३-१२४॥

पठित्वाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते। योऽर्थं विचारयेत्सम्यक् प्राप्नोति परमं पदम्॥१२५॥

इस पुराण के केवल एक अध्याय का पाठ करने मात्र से भी मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा जो व्यक्ति इसके अर्थ पर सम्यक् प्रकार से विचार करता है, वह परम पद को प्राप्त करता है॥१२५॥

अध्येतव्यमिदं पुण्यं विप्रैः पर्वणि पर्वणि। श्रोतव्यंच द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्॥१२६॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! ब्राह्मणों को प्रत्येक पर्व पर महापातकों का नाश करने वाले इस पवित्र पुराण का अध्ययन करना चाहिए अथवा इसको सुनना चाहिए॥१२६॥

एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नशः। एकत्र परमं चेदमेतदेवातिरिच्यते॥१२७॥

एक ओर इतिहास ग्रन्थों सहित सभी पुराणों को तथा दूसरी ओर केवल इस परम श्रेष्ठ कूर्मपुराण को रखे जाने पर यही पुराण उन सबसे अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होगा॥१२७॥

इदं पुराणं मुक्त्वैकं नास्त्यन्यत्साधनं परम्। यथावदतु भगवान्देवो नारायणो हरिः।
कीर्त्यते हि यथा विष्णुर्न तथाऽन्येषु सुव्रताः॥१२८॥

इस पुराण के अतिरिक्त अन्य कोई परम साधन नहीं है॥ हे सद्व्रती द्विजो! जिस प्रकार इस पुराण में भगवान् देव नारायण हरि विष्णु का यथावत् कीर्तन (वर्णन) किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है॥१२८॥

ब्राह्मी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशनी। अत्र तत्परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः॥१२९॥

यह ब्राह्मी पौराणिकी संहिता पाप-नाशक है। इसमें उस परम ब्रह्म का यथार्थ रूप में वर्णन किया गया है॥१२९॥

तीर्थानां परमं तीर्थं तपसां च परं तपः। ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम्॥१३०॥

यह पुराण तीर्थों से भी परम श्रेष्ठ तीर्थ है, तपस्या से भी परम श्रेष्ठ तपस्या है, ज्ञानों में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है तथा व्रतों में परमश्रेष्ठ व्रत है॥१३०॥

नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च सन्निधौ। योऽधीते चैव मोहात्मा स याति नरकान् बहून्॥१३१॥

इस शास्त्र (पुराण) का अध्ययन वृषल (अधर्मी) व्यक्ति के समीप में बैठकर नहीं करना चाहिए। जो अज्ञानी व्यक्ति उस वृशल के समीप बैठकर इसका अध्ययन करता है, वह बहुत से नरकों में गिरता है॥१३१॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्राव्यं चेदं द्विजातिभिः। यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम्॥१३२॥

द्विजों को यह पुराण श्राद्ध के अवसर पर तथा देवपूजा आदि के अवसर पर सुनना-सुनाना चाहिए। विशेषतः यज्ञ के अवसर पर इस सर्वदोष-विनाशक पुराण को सुनना चाहिए॥१३२॥

मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः। श्रोतव्यं चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम्॥१३३॥

मोक्षाभिलाषी जनों को इस वेदार्थ का उपबृंहण (विस्तार) करने वाले पुराण का विशेषतः अध्ययन, श्रवण और मनन करना चाहिए॥१३३॥

ज्ञात्वा यथावप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान्। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥१३४॥

इस पुराण को यथावत् ज्ञात करके जो द्विज भक्तिभाव वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सुनाता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर परम ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करता है॥१३४॥

योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा। प्रेत्य गत्वा स निरयान् शुनां योनिं व्रजत्यधः॥१३५॥

जो व्यक्ति इस पुराण का ज्ञान श्रद्धारहित एवं अधार्मिक व्यक्ति को देता है, उसका अधःपतन होता है तथा वह नरक-यातना भोगने के पश्चात् कुत्तों की योनि में जन्म लेता है॥१३५॥

नमस्कृत्य हरिं विष्णुं जगद्योनिं सनातनम्। अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा॥१३६॥

इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः। पाराशर्यस्य विप्रर्षेर्व्यासस्य च महात्मनः॥१३७॥

संसार के जनक सनातन देव, हरि, विष्णु भगवान् को तथा कृष्णद्वैपायन मुनि व्यास को नमस्कार करके ही इस शास्त्र (पुराण) का अध्ययन करना चाहिए। ऐसी आज्ञा अमित तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा पराशर के पुत्र विपर्षि महात्मा व्यास जी ने दी है॥१३६-१३७॥

श्रुत्वा नारायणाद् देवात् नारदो भगवान् ऋषिः।
गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः॥१३८॥

पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः। मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम्॥१३९॥

भगवान् ऋषि नारद ने नारायण विष्णु से सुनकर इस पुराण का ज्ञान पूर्वकाल में गौतम को दिया था। हे मुनिश्वरो! उनसे पराशर को तथा पराशर ने गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में इस धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्रद पुराण का ज्ञान मुनियों को दिया था॥१३८-१३९॥

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते। सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम्॥१४०॥

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने बुद्धिमान् सनक तथा सनत्कुमार को इस सर्वपापनाशक पुराण का उपदेश दिया था॥१४०॥

सनकाद्भगवान् साक्षाद् देवलो योगवित्तमः। अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम्॥१४१॥

इस उत्तम पुराण का ज्ञान सनक से योग ज्ञानियों में श्रेष्ठ साक्षात् भगवान् देवल ने प्राप्त किया था। देवल से इस उत्तम पुराण का ज्ञान पञ्चशिख ने प्राप्त किया था॥१४१॥

सनत्कुमाराद् भगवान् मुनिः सत्यवतीसुतः। लेभे पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसञ्चयम्॥१४२॥

सभी अर्थों (विषयों) के संग्रह से युक्त इस परम श्रेष्ठ पुराण को सनत्कुमार से सत्यवती के पुत्र व्यास जी ने प्राप्त किया था॥१४२॥

तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवता पापनाशनम्। ऊचिवान्वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने॥१४३॥

उन व्यास जी के मुख से सुनकर मैंने (अर्थात् सूत जी ने) आप लोगों को इस पापनाशक पुराण को कहा है। आप लोग भी धार्मिक व्यक्ति को ही इस पुराण का उपदेश करें॥१४३॥

तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये। पाराशर्याय शान्ताय नमो नारायणात्मने॥१४४॥

पराशर मुनि के पुत्र नारायण स्वरूप शान्त और सर्वज्ञ मुनि महर्षि व्यास को नमस्कार है॥१४४॥

यस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्र चैव प्रलीयते। नमस्तस्यै सुरेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे॥१४५॥

॥इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुत्तरार्द्धे व्यासगीतासु प्राकृतप्रलयवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥

॥समाप्तोऽयं ग्रंथः॥

जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है और जिनमें विलीन भी हो जाता है, उन कूर्मरूपधारी देवेश भगवान् विष्णु को नमस्कार है॥१४५॥

॥इस प्रकार श्रीकूर्मपुराण की छः हजार श्लोकों वाली संहिता के उत्तरार्ध के व्यासगीता के अन्तर्गत वर्णन-प्रसंग में 'प्राकृतप्रलयवर्णन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥४६॥

॥श्रीकूर्मपुराण सम्पूर्ण॥

कूर्मपुराण-विषयसूची

[श्री रामशङ्कर भट्टाचार्य]

अथात्र कूर्मपुराण–विषयसूची प्रकाश्यते। १८४८ शकीय वेङ्कटेश्वरसंस्करणमत्र व्यवहृतम्।

संस्करणमिदमशुद्धपाठभूयिष्ठम्। तथाहि प्राचेतसदक्षकन्यानामगणनश्लोके खसा नाम न पठ्यते (पू।१६।१७)। दक्षकन्यान्वयवर्णनप्रसंगे (पू।१८।१३) अपि खसा नाम नास्ति। सर्वत्र खसा स्थाने तथेति पठ्यते। अत्र पुराणान्तरसंवादेन अस्माभिः खसेति पाठः स्थापितः। एवं क्वचित् अन्यत्रापि पाठसमीक्षा सूच्यामस्माभिः कृता।

न केवलमत्र पाठाशुद्धयः प्रत्युत अध्यायश्लोकसंख्यानिर्देशेऽपि अन्तरा अन्तरा प्रमादा दृश्यन्ते।[१] अस्माभिस्तु सर्वत्र शुद्धायाः संख्याया एव निर्देशोविहितः, अतो यदि क्वचन सूचीप्रदत्ताकरनिर्देशानुसारेण आकरस्थलं न दृष्टिपथमागच्छेत् तर्हि एतनूनिर्देशमनुसृत्याकरस्थलान्वेषणे यत्नो विधेयः।

व्यवहृतसङ्केत चिह्न–विवरणम्

१. आकर निर्देशे 'पू' 'उ' सङ्केताभ्यां यथाक्रमं पूर्वार्ध–उत्तरार्धौ ज्ञेयौ।

२. तथैव स्थूलोऽङ्कः अध्यायसंख्याज्ञापकः, तदनन्तरं सूक्ष्मोऽङ्कश्च लोकसंख्याज्ञापकः।

३. (   ) एतादृशे कोष्ठके उपात्त–विषयस्य प्रासङ्गिकं विवरणं प्रदत्तम्।

४. (   ) एतादृदशे कोष्ठके पाठान्तरादिविषयकं विववेचनं कृतम्।

५. – इति डैशचिह्नं विषयानुवृत्तिज्ञापकम्।

६. द्र०= द्रष्टव्यम्।

---

(१) पृ।१५।९९ श्लोकस्थाने १५।१९९ अङ्को मुद्रितः। उ।४६।१४६ श्लोकाङ्कः ४६।१४३ रूपेण मुद्रितः। तथैव उ।४६।१३२ श्लोकाङ्कः ४६।३२ रूपेण मुद्रितः। पू।१६ अध्याये शतसंख्यानन्तरं १०१ संख्या लेखनीया, परन्तु १ संख्या मुद्रिता। द्वितीये शतके सर्वत्र इत्थमेव श्लोकाङ्कः प्रदत्तः। पुराणान्तरेष्वपि क्वचित् इयमेव शैली दृश्यते; सा च नितरां भ्रमजनिका। पूर्वार्धे षोड़शाध्याय-पुष्पिकायां २६ संख्या मुद्रिता। पू।२४।५२ स्थले ८२ लोकसंख्या मुद्रिता। उ।२३।६४, ६९ स्थले यथाक्रमं ६०, ६७ संख्ये मुद्रिते। ग्रन्थस्यान्तिमे पत्रे (मार्जिनस्थले) अध्यायसंख्या ३४ इति मुद्रिता, सा च संख्या ४६ भवेत्।

प्रथमः खण्डः - सर्ग-प्रतिसर्गौ

विभागः-सर्गः

(२) विभागः - प्रतिसर्गः

द्वितीय-खण्डः-तीर्थ-भूगोल-भुवनकोशाः

(१) विभागः - तीर्थम्

(२) विभागः - भूगोलः

(यानि स्थानानि तीर्थत्वेन नोक्तानि, भूसंवद्धा अन्ये विषयाश्च)

(३) विभागः - भुवनकोशः

[भुवनकोशीय—धर्मदेवादयो विषयाः चरितानि च तत् तत् खण्डे द्रष्टव्यानि]

तृतीयः खण्डः - शास्त्राणि विद्याः कलाश्च (दर्शनवर्जितानि)

चतुर्थः खण्डः - दार्शनिकाः सम्प्रदायाः प्रमेयाश्च

पञ्चमः खण्डः - आचारः कर्मकाण्डश्च

षष्ठः खण्डः - कालः (कालावयव-युग-मन्वन्तर-कल्पाः)

(१) विभागः - कालकालावयवौ

(२) विभागः - युगम्

(३) विभागः - मन्वन्तरम्

(४) विभागः - कल्पः

सप्तमः खण्डः - संवाद-स्तुति-नीति-गाथा-उपदेशादयः

(१) विभागः - संवाद (वक्तृनामक्रमानुसारतः)

(२) विभागः - स्तुति-स्तव-स्तोत्रादीनि च

[पूजान्तर्गतस्तुतिवन्मन्त्रा नेह सङ्कलिताः]

देवी	हिमवान्	पू।१।२०७–२४४
देवी	अन्धकः	पू।१६।२१६–२१८
ब्रह्मा	वसुमनाः	पू।२०।५३–५५
भैरवः [शिवः]	अन्तरिक्षचराः	पू।१६।१८७–१८९
वराहः	ऋषयः	पू।६।११–२१
विष्णुः	आदित्याः	पू।१७।१९–२३
विष्णुः	इन्द्रद्युम्नः	पू।१।६९–७९
विष्णुः कूर्मरूपी	मुनयः	उ।४६।५४–६७
शिवः	अन्धकः	पू।१६।१९४–२०६
शिवः	कृष्णः	पू।२६।१०२–१०६ [स्तुतिवत् नमस्कारात्मकम्]
शिवः	कृष्णः	पू।२५।६०–७७
शिवः	मुनयः	उ।३९।२१–३५
शिवः	ब्रह्मा	पू।१०।४४–७३
शिवः	ब्रह्मा	उ।३१।४९–५६ [सोमाष्टकं, उ।३१।५७]
शिवः	ब्रह्मविष्णू	पू।२६।७८–८४ पू।२६।१०३–१०६ [नमस्कारात्मकम्]
शिवः	मुनयः	उ. १।३३–३५
शिवः	मुनयः	उ।५।२१–४०
।शेवः	वसुमनाः	पू।२०।६६ [नमस्कारात्मकम्]
शिवः	व्यासः	पू।३०।४४–५२ [नमस्कारात्मकम्]
शिवः	शङ्कुकर्णः	पू।३३।३६–४५
शिवः	श्वेतः	उ।३६।२९–३२
सरस्वती	नवरथनृपः	पू।२४।१७–२०
सूर्यः	ब्रह्मप्रदर्शितः	उ।१८।३५–४४ [सूर्यहृदयस्तवः]

(३) विभागः - मङ्गलाचरणम्

(४) विभागः - विशिष्टाः उपदेशनीतिगीतादयः

(५) विभागः - गाथा

(६) विभागः - नामानि (शतसहस्रनामादीनि)

अष्टमः खण्डः - वंश- वंशानुचरिते

विभागः - वंश (राजवंश एव; शब्दतः अर्थतो वा वंशत्वेन प्रतिज्ञाता वंशा एवात्र सङ्कलिताः)

विभागः - वंशानुचरितम् (राजवंशान्तर्गत विशिष्टचरितानि)

नवमः खण्डः - चरितम् (वंशप्रकरणबहिर्भूतम्)

विभागः - जातिः

दशमः खण्डः -निर्वचन-लक्षण-गणना-मत-वर्णनादयः

(१) विभागः - निर्वचनम् (विशिष्टम्)

(२) विभागः - लक्षणम् (विशिष्टपदार्थानाम्)

(३) विभागः - गणना (विशिष्टपदार्थानाम्)

(४) विभागः - वर्णनम्

(५) विभागः - मत-श्लोक-वचांसि (विशिष्टानि)

(६) विभागः - विविधम्

+++

कूर्मपुराण-श्लोकानुक्रमणी

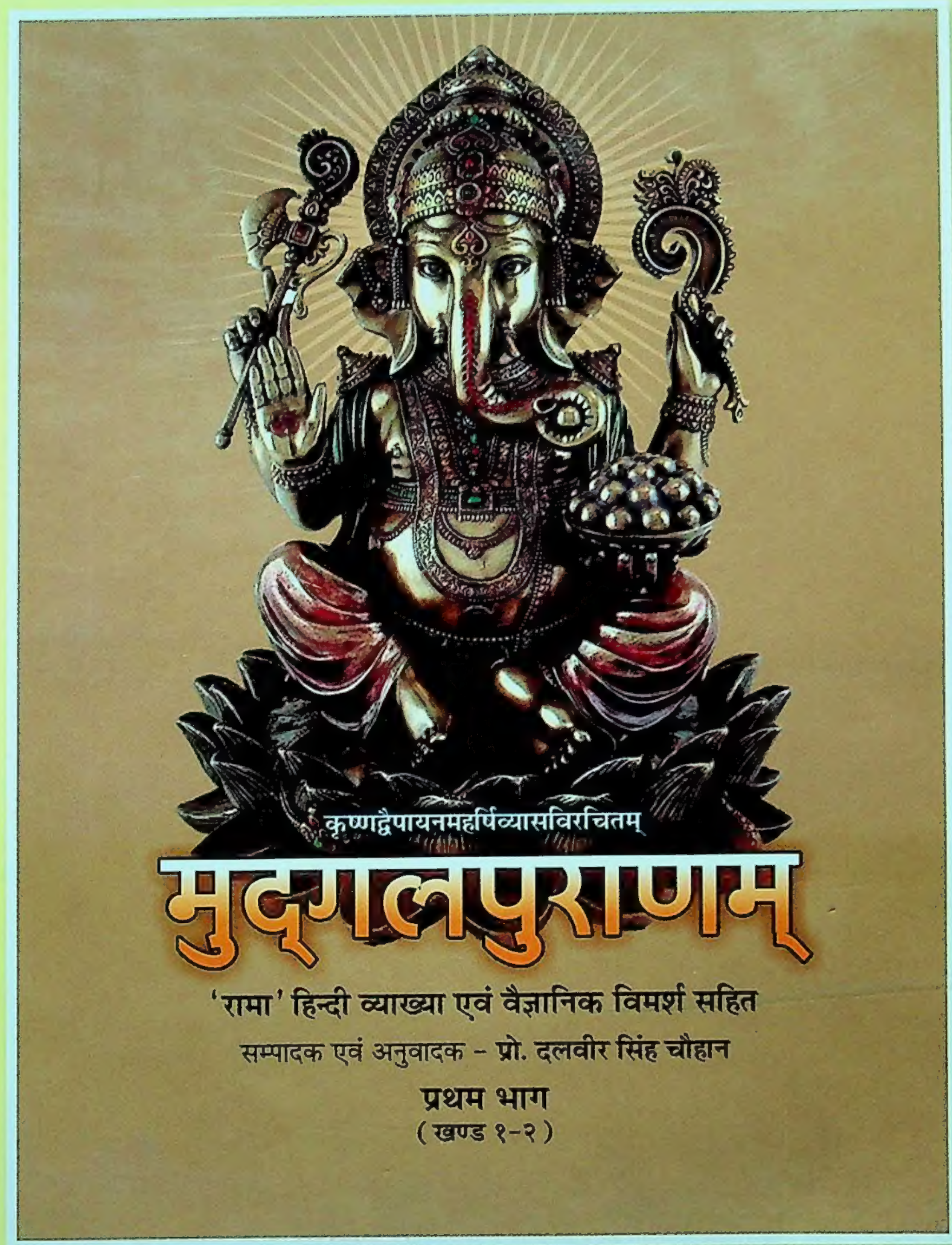
[इस अनुक्रमणी में श्लोक के प्रथम चरण के बाद पूर्वार्ध के लिए १ तथा उत्तरार्द्ध के लिए २ अंक लिखा गया है।]

[अ]

[ऐ]

[ओ]

❖❖❖



प्रथम भाग (खण्ड १-२)	द्वितीय भाग (खण्ड ३-४)	तृतीय भाग (खण्ड ५-६)	चतुर्थ भाग (खण्ड ७-८)	पञ्चम भाग (खण्ड ९)
₹ 1500.00	₹ 1750.00	₹ 1750.00	₹ 1250.00	₹ 1250.00

₹ 1100.00